

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

२४४०

क्रम संख्या

काल न०

वर्ष

(०४) २१२ (४४) २१२

भारतीय विद्या

बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] नवम्बर, ई० स० १९३९ * कार्तिक, संवत् १९९६ [अंक १



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-०

❁

वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

[इंग्रेजी षाण्मासिक]

✽

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक]

संपादक मण्डल

श्रीमान् क० मा० मुंशी बी. ए. एलएल. बी.; एम्. एल. ए.

[निवृत्त गृहमंत्री और न्यायसचिव, बंबई गवर्नमेंट]

दीवान-बहादुर श्री क० मो० झवेरी एम्. ए. एलएल. बी.

[निवृत्त न्यायमूर्ति, हाईकोर्ट, बंबई]

डॉ० आइ. जे. एस्. तारापोरवाला बी. ए. पीएच्. डी. बार-एट्-लॉ

प्रो० ब० प्रा० भट्ट एम्. ए. (बंबई) बी. ए. (केंण्टक्)

श्री जिन विजयजी मुनि (प्रधान संपादक, हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक)

डॉ० मणिलाल पटेल पीएच्. डी. (प्रधान संपादक, इंग्रेजी षाण्मासिक)

*

लेखानुक्रम

हिन्दी लेख

भारती देवी आह्वान मंत्र

१

किंचित् प्रास्ताविक - संपादकीय अग्र वचन

२-८

हेमचन्द्राचार्यकी प्रमाणमीमांसा - ले० पंडित श्री सुखलालजी शास्त्री ९-५०

उन्नीसवीं शतीकी कुछ आर्थिक-राजनीतिक संस्थायें

ले० पंडित श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकार

५१-६४

बर्बर और म्लेच्छ - ले० श्रीयुत वासुदेव शरण एम्. ए.

६५-७०

मीर सुसरोके चित्र - ले० श्रीयुत रायकृष्णदासजी

७१-७५

गुजराती लेख

चामुण्डराज चौलुक्यनुं सं० १०३३नुं ताम्रपत्र

ले० मुनि जिनविजय (संपादकीय लेख) ७३-१००

चित्रसूची

१. चामुण्डराज चौलुक्यका ताम्रपत्र । २. मीर सुसरोके तीन चित्र

भारतीय विद्या

वर्ष १]

कार्तिक, सं० १९९६

[अंक १]

लेखानुक्रमणिका

हिन्दी लेख -

पृष्ठ

- (१) भारती देवी आह्वान मंत्र १
(२) किंचित् प्रास्ताविक - संपादकीय अग्रवचन २-८
(३) हेमचन्द्राचार्यकी प्रमाणमीमांसा
ले० पंडित श्री सुखलालजी शास्त्री ९-५०
(४) उन्नीसवीं शतीकी कुछ आर्थिक-राजनीतिक संस्थायें
ले० पंडित श्री जयचन्द्रजी, विद्यालंकार ५१-६४
(५) बर्बर और म्लेच्छ
ले० श्रीयुत वासुदेव शरण, एम्. ए. ६५-७०
(६) मीर खुसरोके चित्र
ले० श्रीयुत रायकृष्णदासजी ७१-७५

गुजराती लेख -

- (७) चामुण्डराज चौलुक्यनुं सं० १०३३ नुं ताम्रपत्र
ले० मुनि जिन विजय (संपादकीय लेख) ७३-९७
(८) गुप्तसंवत् अने विक्रमसंवत् संबंधी एक नवीन समस्या
ले० मुनि जिन विजय (संपादकीय लेख) ९७-१००

साहित्य समालोचन -

- (९) राजस्थानी [हिंदी] - संपादकीय १०१-७
(१०) प्रमाणमीमांसा [गुजराती] - अ० स० गोपाणि १०७-८

चित्र संग्रह -

१. चामुण्डराज चौलुक्यनुं ताम्रपत्र, २. मीर खुसरोके तीन चित्र

*

भारतीय विद्या भवननी वार्षिक प्रवृत्तिनी नोंध विगेरे

BHĀRATĪYA VIDYĀ

Journal of the Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

[Published Twice a Year]

Editor—MANILAL PATEL, Ph. D. (Marburg)

Vol. I, Part I November 1939

CONTENTS

ARTICLES:	PAGES
INTRODUCING OURSELVES	3
FUNDAMENTALS OF ARYAN CULTURE	
K. M. MUNSHI	5
INTERPRETATION OF THE RĠVEDA	
MANILAL PATEL	17
INDIAN COSTUME FROM THE EARLIEST TIMES...	
MOTI CHANDRA	28
THE ACHAEMENIANS	
I. J. S. TARAPOREWALA	57
THE ACHIEVEMENTS AND FAILURES OF THE MARATHIAS	
G. S. SARDESAI	69
THE EARLY ARYANS IN GUJARĀTA	
K. M. MUNSHI	79
A HARI-HARA IMAGE FROM NORTH GUJARAT...	
M. R. MAJMUDAR	86
HOMAGE TO MAHATMA GANDHI	90
REVIEWS:	
RĠVEDA SAMHITA WITH THE COMMENTARY SĀYAṆĀCĀRYA	
MANILAL PATEL	92
RABINDRANATH TAGORE	
BALWANT BHATT	93
GUJARĀTANI ASMITĀ	
MANILAL PATEL	95
PRAMĀṆA-MIMĀNSĀ OF HEMACANDRA	
AMRITLAL S. GOPANI	96
THE RELIGION OF GOOD LIFE	
MANILAL PATEL	97
CHANDORACANĀ	
A. D. PUSALKAR	98
SANMATI TARKA OF SIDDHASENA DIVĀKARA...	
MANILAL PATEL	99
NOTES OF THE BHAVAN	100

PLATES-FIFTEEN.

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नि य मा व ली

- (अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं ।
उनका प्रकाशन क्रमशः कार्तिक, माघ, वैशाख, और श्रावण मासके अन्तमें होता है ।
- (आ) 'भारतीय विद्या' में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं । गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं ।
- (इ) 'भारतीय विद्या' में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्वज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं ।
- (ई) 'भारतीय विद्या' की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश्य भाषाओंमें ग्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके, मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है ।
- (उ) 'भारतीय विद्या' में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठसे छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेंट दी जायगी ।
- (ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकको करना होगा ।
- (ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि - 'भारतीय विद्या' में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जाँय वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए । कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए । टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों ।
- (ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है ।

(ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार—
 ‘संपादक-भारतीय विद्या’ इस नामसे करना चाहिए और
 ग्राहक वगैरह होनेके विषयका पत्र-व्यवहार—‘मंत्री, भारतीय
 विद्या भवन’ इस नामसे करना चाहिए ।

*

(औ) ‘भारतीय विद्या’—BHARATIYA VIDYA—इसी
 नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो
 षाण्मासिक है । उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं । उसका
 वार्षिक मूल्य ४-०-० है ।

आगामी—द्वितीय अंककी कुछ लेख सामग्री

*

(१) ‘सं० १४८२ नी सालमां लखाएली, पद्यानुकारी, गुजराती
 अनुप्रासपूर्ण गद्यमय एक जैन गुर्वावली’.

संग्राहक—श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देशाई.
 बी. ए. एल. एल. बी. एडवोकेट.

*

(२) सं० १७९५में लिखी हुई ‘कुतबुद्दीन शाहजादाकी शृंगार
 बात’ संग्राहक—श्री मुनि कांतिसागरजी.

*

(३) कवि समय सुन्दर रचित—‘सं० १६८७ के भयंकर दुष्कालकी
 गुजराती-राजस्थानी भाषामिश्रित खानुभव कविता’
 संग्राहक—श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा.

*

(४) ग्रीक संवर्ष पहेलानुं आर्य ज्योतिष
 ले०—प्रो० अमृतलाल सवचंद गोपाणि, एम्. ए.

*

(५) गुजराती नाटकोमां संस्कृत रूपकादीनां तत्त्वो
 ले०—प्रो० भानुशंकर बा० व्यास, एम्. ए.

*

(६) च्यवनारुण्यायिका—ले० श्रीयुत गौरीप्रसाद चु० झाला.

*

(७) जूनी अने मध्यकालीन गुजराती भाषा
 ले०—श्रीयुत शंकरप्रसाद छगनलाल रावल.



❁ **भारतीय विद्या** ❁

प्रथम वर्ष, प्रथम अंक]



[कार्तिक, वि० सं० १९९६]

भारती-सरस्वती-इळादेवी आह्वान मंत्र
 आनो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
 तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥

— ऋग्वेद संहिता, ९-६-९



भारती, सरस्वती और इळा ये तीनों सुकर्मा देवियां, हमारे यहां [इस विद्याध्ययरूप] यज्ञमें, मनुष्यकी तरह [अपना कर्तव्य] जानती हुई शीघ्र आवें और सुखकर इस [ज्ञानाञ्जलिरूप] बर्हि (कुश) को ग्रहण करें ।



[ऋग्वेदकी यह ऋचा 'भारतीय विद्या' के प्रारंभमें एक अत्युत्तम मंगल स्तुति-रूप प्रतीत होगी । इसमें आहूत भारती, सरस्वती और इळा ये तीनों देवियां क्रमशः दिव्य, मध्य और मर्त्य स्थानकी अधिष्ठात्री मानी गई हैं । वेदकालमें यज्ञके समय इनका आह्वान किया जाता था । हम भी आज इस 'भारतीय विद्या भवन'में किये जानेवाले स्वाध्याय स्वरूप यज्ञ कार्यमें, इन देवियोंका आह्वान करते हैं और कुशके प्रतीकस्वरूप जो ये हमारे लेख-निबन्धादि हैं, इन्हें समर्पित करते हैं ।]

किञ्चित् प्रास्ताविक

*

भारतीय विद्याका अनन्य आदर्श अमृतत्वकी प्राप्ति करना है। भारतीय महाजनोंकी समग्र जीवन-साधना अमृतत्वकी सिद्धिके लिये थी। मानव जातिके जीवन प्रभातमें, सबसे प्रथम जागृत और प्रबुद्ध होनेवाले भारतीय महर्षि, विश्वके अन्धकारको अपसारित करनेवाले विश्वज्योतिस्वरूप अपने उपास्यदेव आदित्य = ईशसे यही प्रथम प्रार्थना करते थे कि 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' मृत्युसे = मर्त्यभावसे = आत्माके अवनतरूपसे मुझे अमृतकी ओर = अनन्तके अक्षय धामकी ओर = आत्मविकासके उन्नत आकाशकी ओर ले चलो। अमृतत्वकी ओर प्रस्थान और प्रगमन करनेकी पावन कामना-ही-से, उन पुरातन भारतीय श्रेष्ठ सन्तानोंकी प्रतिप्रभात यह प्रार्थना होती रहती थी। संसारमें सबसे पहले इस अमृतत्वके अगम्य स्वरूपका गूढ़ ज्ञान और प्रकट प्रतिभान उन्हीं भारतीय सन्तानोंका हुआ था और उन्होंने जाना था कि —

‘मृत्युर्वासु सदमृतं’ मर्त्यभाव असत् है और अमृत सत् है।

‘शान्तिसमृद्धममृतं’ अमृत शांतिसे समृद्ध — परिपूर्ण है।

‘अमृतो हिरण्मयः’ अमृत ज्योतिर्मय है।

‘प्राणो वा अमृतं’ अमृत प्राणस्वरूप है।

‘अचलममृतमच्युतं’ अमृत अचल और अच्युत है।

और इस लिये उन्होंने इस अमृतकी प्राप्तिकी कामना और साधना-ही-में अपनी समग्र आत्मशक्ति समर्पित कर दी थी।

*

उन भारतीय महर्षियोंकी कण्ठध्वनिसे अहर्निश ‘कथं तेनामृता स्याम्’ — किस प्रकार हम अमृत हों? — यह चिन्तनामंत्र उद्गीर्ण होता था। इस सतत चिन्तनारूप साधनाके प्रभावसे उनको ज्ञात हुआ था कि —

‘ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति’ — उस ईशको ज्ञात करलेनेसे अमृत हो जाते हैं। अपनी तपस्या द्वारा उन्होंने उस ईशको ज्ञात किया और फिर वे उसमें तन्मय हो गये। श्रुति कहती है कि —

‘ते तन्मया अमृता वै बभूवुः’ — वे तन्मय हो जानेसे अमृत बन गये। उनको अमृतत्वकी प्राप्ति हो गई।

जिस अमृतकी यह स्तुति है और जिसके लिये भारतीय महर्षियोंने ऐसी कामना और चिन्तना की वह अमृत कहीं विश्वके बहार—जगत्के परपार नहीं है। वह तो अपने आत्मा-ही-में अन्तर्निहित है—आत्मस्वरूप ही है। श्रुतिका उपदेश है कि—‘आत्मस्यममृतं’। जो ब्रह्म है वही अमृत है—‘तद् ब्रह्म तदेवामृतम्’। जो हमारी आत्मा है वही ब्रह्म है और वही अमृत है—‘तद् ब्रह्म तदमृतं स आत्मा’। जिसने अपना आत्मस्वरूप जान लिया उसने उस अमृतको प्राप्त कर लिया।

*

उन भारतीय उपासकोंने, इस अमृतकी प्राप्ति परम साधन विद्याको बतलाया है। विद्याद्वारा ही इस अमृतकी प्राप्ति होती है। ‘विद्यया विन्दते अमृतम्’—‘विद्ययामृतमश्नुते’ इत्यादि सुप्रसिद्ध श्रुतिवाक्य इसके उपदेशक हैं। इस विद्याकी व्याख्या बहुत विस्तृत और सूक्ष्म है। स्थूल विचारसे, यों विद्या साधन है और अमृत साध्य है—परंतु सूक्ष्म विचारसे विद्या साध्य और साधन दोनों है। विद्या स्वयं आत्मज्योति मी है और आत्मज्योतिकी स्वरूपदर्शक मी है। जिस अर्थमें विद्या आत्म-विज्ञान स्वरूप है उस अर्थमें विद्या स्वयं अमृतस्वरूप है—और इस लिये विद्या को ही अमृत भी कहा गया है—‘अमृतं तु विद्या।’ जो विद्या है वही अमृत है।

*

इस अमृतस्वरूप विद्याको प्राप्त करना यही भारतीय संस्कृतिका सनातन ध्येय है। स्मरणातीत कालसे इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये भारतीय महापुरुष प्रयत्न करते आ रहे हैं और वे उसमें यथेष्ट सफल भी होते रहे हैं। भारतके वर्तमान महापुरुष महात्मा मोहनदास गांधी, भारतीय संस्कृतिके इस ध्येयके अनन्य प्रतीक हैं। महात्माजीकी संपूर्ण जीवन-साधना इसी अमृतस्वरूप विद्याकी प्राप्तिके निमित्त हुई है और हो रही है। बहिंसा और सत्यका जो अचल आदर्श महात्माजीने प्राप्त किया है वह इसी विद्याका फल है। इस विद्याके बलसे महात्माजीका जीवन शांतिसमृद्ध बन रहा है और जगत्को इस जीवनके जीनेका वे सदुपदेश दे रहे हैं। जिसका जीवन शांतिसमृद्ध है उसने अमृत पा लिया है। भारतीय विद्याका यह परम आदर्श, इस प्रकार महात्माजीमें आज मूर्तिमान् हो कर भारतीय जनताको उस अमृतत्वकी ओर अग्रसर होनेका आदेश दे रहा है।

अमृतत्वकी प्राप्ति करना यह जो भारतीय विद्याका आदर्श है वह आध्यात्मिक है। लेकिन बिना लौकिक आदर्शका ठीक परिचय प्राप्त किये, आध्यात्मिक आदर्शका वास्तवदर्शन नहीं हो सकता। इसलिये लौकिक आदर्शका सम्यक् परिचय प्राप्त करना यह हमारे इस सामाजिक जीवनके लिये परम कर्तव्य है। लौकिक आदर्शका सम्यग् ज्ञान लौकिक विद्याकी विशिष्ट प्राप्तिसे होता है। यह लौकिक विद्या नाना प्रकारकी है। भारतीय विद्याविदोंने इसका अत्यन्त विस्तार किया है। एक मनुष्यकी बुद्धिके लिये तो इसकी समप्रताका पार पाना भी अशक्य है। काव्यमीमांसामें कवि राजशेखरने एक प्राचीन उक्ति उद्धृत की है, जो कहती है कि—

विद्यास्थानानां गन्तुमन्तं न शक्तो

जीवेद् वर्षाणां योऽपि साग्रं सहस्रम् ।

अर्थात्—जो कोई मनुष्य एक हजारसे भी अधिक वर्ष जीए और विद्याध्ययन करता रहे तो भी वह इन विद्यास्थानोंके अन्तको पहुँच नहीं सकता—ऐसा अपार इस भारतीय विद्याका विस्तार है। तो भी, हमारे प्राचीन भारतीय विद्या-कोविदोंने, संक्षेपमें इनका विशिष्ट स्वरूप जान लेनेके लिये, प्रधान प्रधान विद्यास्थानोंका और विद्याके भेदों-उपभेदोंका, निरूपण करनेका समुचित प्रयत्न किया है। कोटिल्यके अर्थशास्त्रके विद्यासमुद्देश प्रकरणमें और इसी तरह राजशेखरकी काव्यमीमांसाके शास्त्रनिर्देश नामक अध्यायमें, भारतीय विद्याके इन भेद-प्रभेदोंका उपयुक्त नामावली प्राप्त होती है। इस नामावलीके पाठसे हमें यह ज्ञात होता है कि अपने इस लौकिक जीवनके स्वरूपको ठीक ठीक समझनेके लिये और जगत्का हमारे इस जीवनके साथ क्या संबंध है इसको जाननेके लिये, हमें कितना विद्योपासक बनना चाहिए—कितनी विद्याकी साधना करनी चाहिए। यथार्थमें मनुष्य-जीवनकी सच्ची समृद्धि विद्या ही है और विद्या ही जीवनकी महती विभूति है।

*

कहा जाता है कि वर्तमान समयमें संसारमें विद्याकी वृद्धि बहुत अधिक हुई है और हो रही है। मनुष्य जातिने अपने लाखों वर्षोंके भूत-जीवनमें जितनी विद्यावृद्धि की थी उससे कहीं शतगुण-सहस्रगुण अधिक विद्यावृद्धि इस वर्तमान एक ही शताब्दीमें कर ली है। वर्तमान विद्यासिद्ध मनुष्यगणने वह भौतिक

सिद्धि प्राप्त की है जिसकी कल्पना भी उन पूर्वज मनुष्योंको होनी अशक्य थी । क्या पृथ्वी, क्या समुद्र और क्या आकाश — वर्तमान विद्याधर मनुष्योंको एक प्रकारसे अब बहुत संकीर्ण और बहुत सामान्य पदार्थ मालूम दे रहे हैं । इन मनुष्योंने प्रकृतिके पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचों प्रधान भूतोंको अपना अनुचरसा बना लिया है और इनसे ये अपना इच्छित कार्य करा रहें हैं । इन मनुष्योंको इस प्रकार विद्याकी यह महती विभूति प्राप्त हो रही है ।

*

पर भारतीय विद्याकी दृष्टिसे, संसारकी यह विद्यावृद्धि हेय कोटीकी है । यह विद्यावृद्धि मनुष्य जातिको उन्नत बनानेकी अपेक्षा अवनत बनाती हुई दिखाई दे रही है । इस विद्यालाभसे मानवसमूहको सुख और शांतिकी अपेक्षा दुःख और उद्वेग ही अधिक प्राप्त होते प्रतीत हो रहे हैं । यह आसुरी कुविद्या है । इस कुविद्याके प्रभावसे, मनुष्यके अंतःकरणके किसी एक निम्नतर भागमें जो अहंकाररूप अधम असुर छिपा हुआ सोया रहता है वह जागृत हो उठता है और उसकी हुंकारशक्ति प्रबल हो उठती है । इस शक्तिके वश हो कर मनुष्य मदोन्मत्त हो जाता है और फिर परस्पर एक दूसरेका तिरस्कार, धिक्कार और संहार करनेको उद्यत हो जाता है । वर्तमान संसारके श्रेष्ठ समझे जानेवाले विद्यापारंगत मनुष्य, आज परस्पर एक दूसरेके भयंकर संहारकार्यमें जो अनन्यमनस्क हो गये हैं और वे अपनी सारी बुद्धि, सारी शक्ति और सारी संपत्तिको इस संहारक कार्यमें खाहा करनेको कृतनिश्चय हो गये हैं, वह इसी आसुरी विद्याका प्रताप है । अतएव भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिमें यह विद्या हेय है ।

*

अभिमानो ययाभिनिवर्तते सा विद्या — ‘जिससे अभिमान — अहंकारकी निवृत्ति हो वह विद्या है’ — यह भारतीय संस्कृतिका विद्याका एकमात्र लक्षण है । जिस मनुष्यमें, जितने अंशमें, निरभिमानताका — निरहंकारताका विकास हुआ है, उसमें उतने अंशमें, विद्याका विकास और विद्याकी वृद्धि हुई है — यह भारतीय दृष्टिमें विद्याविषयक परीक्षाका सिद्धान्त है । निरभिमान — निरहंकार मनुष्य ही मानवताकी उच्चताको प्राप्त कर सकता है — यह भारतीय सनातन

अनुभूति है। लेकिन, वर्तमानकालीन विश्वकी इस आसुरी विद्यावृद्धिके उग्र तेजमें, हम अपनी वह सनातन सौम्य अनुभूति और वह सांस्कृतिक सम्यग् दृष्टि खो बैठे हैं, और गतानुगतिकताके प्रवाहमें पतित हो कर भारतीय विद्याके महत्त्वको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं।

*

भारतके लिये वर्तमान काल संक्रमण काल है। इस कालमें हम अपनी उस प्राचीन विद्याज्योतिकी कुछ समय तक उपेक्षा करते रहे तो वह ज्योति क्षीण हो कर नष्ट हो जायगी और हमारे आध्यात्मिक और जातीय जीवनमें भयानक अंधकार फैल जायगा। देशके महापुरुष इस विषयमें सजग हो चुके हैं और वे इस ज्योतिकी रक्षामें यथेष्ट प्रयत्नशील हैं। भारतके ज्ञान्तदर्शी कबीन्द्र, गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस कार्यके प्रथम पुरस्कर्ता हैं। शान्तिनिकेतनमें विश्वभारतीकी स्थापना कर 'भारतीय विद्या' की ज्योतिकी अखण्डित ही नहीं बल्कि अधिक प्रदीप्त करनेकी प्राणवान् प्रेरणा उन्होंने देशको दी है। महामना मालवीजीका हिन्दु विश्वविद्यालय, और महात्मा गांधीजीके प्रभावसे देशके अनेक केन्द्रोंमें प्रस्थापित राष्ट्रीय विद्यापीठ, तथा और भी अनेक ऐसे जातीय विद्या भवन, इस विषयमें प्रोत्साहक प्रयत्न कर रहे हैं।

*

बंबई भारतवर्षका एक प्रधान प्रवृत्तिमय नगर है। आधुनिक विद्या-विषयक शिक्षा-संस्थाओंका यह एक बड़ा प्रसिद्ध केन्द्र है। बंबई विश्वविद्यालय आधुनिक विद्या-शिक्षाका यथेष्ट प्रचारक और पोषक है लेकिन भारतकी प्राचीन विद्या और संस्कृतिसे उसको कुछ प्रेम नहीं है। इस विषयके अध्ययन-अध्यापनमें उसका कोई उत्साह नहीं है। कलकत्ता, मद्रास, पंजाब आदिके विश्वविद्यालयोंने जिस तरह भारतीय विद्याके अध्ययन-अध्यापनका उचित प्रबन्ध किया है ऐसा कोई नाममात्रका प्रबन्ध भी बंबई विश्वविद्यालयने नहीं किया। बंबईकी राष्ट्रीय राजसत्ताके एक अग्रणी सूत्रधार और सामाजिक प्रवृत्तियोंके प्रमुख पुरस्कर्ता, मान्यवर गृहसचिव, श्रीमान् कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीको, बंबई जैसे व्यापारिक, सामाजिक, सांस्कारिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तिके सर्वाग्र नगरमें, भारतीय विद्याकी चर्चा-वार्ताका किंचित् भी कोई स्थान और साधन न देख कर वर्षोंसे बड़ी खटक लग रही थी। ई० स० १९२२ में 'गुजराती साहित्य संसद्'की स्थापना कर, इन्होंने इस प्रवृत्तिके एक

अंगका प्रारंभ किया था और तमीसे इसके विकास और विस्तारका सतत स्वप्न देखा करते थे । गत वर्षमें सेठजी श्री मुंगालालजी के अकल्पित और अमोघ दानने इनके इस स्वप्नको सफल किया और इस मूलनिधिके आधार पर, भारतकी प्राचीन विद्याका आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे अध्ययन, अन्वेषण, अवलोकन और आलोचन आदि कार्य करनेके साधन निमित्त इस

भारतीय विद्या भवन

का इन्होंने यह सुसंघटित प्रतिष्ठान किया ।

*

श्रीमान् मुंशीजी भारतीय विद्याके एक उत्कृष्ट प्रेमी, गुजराती भाषाके लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक, जातीय संस्कारिता और अस्मिताके उत्कट प्रचारक, अग्रगामी राष्ट्रभक्त, प्रखर प्रतिभावान् न्यायविद्य और अतिकुशल कार्यकर हैं । इन्हींके एकमात्र अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और व्यापक प्रभावसे इस संस्थाका ऐसा दृढमूल यह प्रादुर्भाव हुआ है और आशा है कि निकट भविष्यमें, बंबई नगरमें, यह अपने विषयकी एक सुप्रतिष्ठित और सुव्यवस्थित विशाल ज्ञानप्रपा बनेगी ।

*

यों तों इस विद्या भवनकी पुण्यप्रतिष्ठा करनेमें अनेक विद्याप्रेमी सज्जनों और सद्गृहस्थोंने, उचित धनदानादि द्वारा प्रशंसनीय सहयोगिता और सहाय-भूति प्रदान की है और कर रहे हैं—और एतदर्थ भवन इन सबका पूर्ण कृतज्ञताके साथ सदैव उपकृत बना रहेगा । पर इन सबमें, भवनके जन्म लेनेमें जिनका दान सबसे प्रधान और प्रथम निमित्तभूत हुआ है और जो जो दान भवनका एक अक्षयनिधि समान है—उस दानके निष्काम और निरभिमान दाता

श्रीमान् सेठ मुंगालालजी गोएनका

अनेकशः अभिनन्दनीय और अभिवादनीय है । सेठ मुंगालालजी जैसे मूक-प्रकृतिके महादानी देशदुर्लभ पुरुष होते हैं । राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ८-९ लाख जितने रूपयोंका भारी दान दे कर भी, इन्होंने न कभी किसी प्रकारके नाम पानेकी इच्छा की और न कभी किसी प्रकारके मान पानेकी अभिलाषा की । सेठजीका यह विद्याप्रेम इन्हें उसी अमृतकी प्राप्ति करानेवाला बनो, जिसका निदर्शन हमने ऊपरके कुछ वाक्योंमें कराया है ।

भारतीय विद्या भवनकी प्रवृत्तिके परिचायक रूप इस त्रैमासिक पत्रका यह प्रथम अंक, भवनके प्रथम वार्षिकोत्सव प्रसंग पर प्रकाशित हो रहा है। द्वितीय अंक माघ मासमें प्रकाशित होगा। इसी तरह तृतीय अंक वैशाख मासमें और चतुर्थ अंक श्रावण मासमें। 'भारतीय विद्या' के प्रेमी और अभ्यासी विद्वान् इस कार्यमें अपने लेखादिद्वारा सहयोग प्रदान कर हमें अनुग्रहित करें यह सविनय विज्ञप्ति है।

हेमचन्द्राचार्यकी प्रमाणमीमांसा

*

लेखक—पंडित श्रीमुखलालजी शास्त्री

[मुख्याध्यापक—जैनदर्शनशास्त्र, हिंदुयुनिवर्सिटी, बनारस ।]

—408—

§ १, ग्रन्थका आभ्यन्तर स्वरूप ।

हेमचन्द्राचार्यके बनाये हुए प्रमाणमीमांसा नामक ग्रंथका — जो कि अपूर्ण स्वरूपमें ही वर्तमानमें उपलब्ध होता है — ठीक-ठीक और वास्तविक परिचय पानेके लिये यह अनिवार्य रूपसे जरूरी है कि उसके आभ्यन्तर और बाह्य स्वरूपका स्पष्ट विश्लेषण किया जाय तथा जैन तर्क-साहित्यमें और तदुद्भूत तार्किक दर्शन-साहित्यमें प्रमाणमीमांसाका क्या स्थान है, यह भी देखा जाय ।

आचार्यने जिस दृष्टिको ले कर प्रमाणमीमांसाका प्रणयन किया है और उसमें प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय आदि जिन तत्त्वोंका निरूपण किया है उस दृष्टि और उन तत्त्वोंके हार्दका स्पष्टीकरण करना यही उस ग्रन्थके आभ्यन्तर स्वरूपका वर्णन करना है । इसके वास्ते यहां नीचे लिखे चार मुख्य मुद्दों पर तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाता है — (१) जैन दृष्टिका स्वरूप, (२) जैन दृष्टिकी अपरिवर्तिष्णुता, (३) प्रमाण-शक्तिकी मर्यादा, (४) प्रमेय प्रदेशका विस्तार ।

(१) जैन दृष्टिका स्वरूप

भारतीय दर्शन मुख्यतया दो विभागोंमें विभाजित हो जाते हैं जिनमें कुछ तो हैं वास्तववादी और कुछ हैं अवास्तववादी । जो स्थूल अर्थात् लौकिक प्रमाणगम्य जगत्को भी वैसा ही वास्तविक मानते हैं जैसा सूक्ष्म अर्थात् अलौकिक प्रमाणगम्य जगत्को — अर्थात् जिनके मतानुसार व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्यमें कोई भेद नहीं; सत्य सब एक कोटिका है; चाहे मात्र न्यूनाधिक हो — अर्थात् जिनके मतानुसार भान चाहे न्यूनाधिक और स्पष्ट-अस्पष्ट हो पर प्रमाण मात्रमें भासित होने वाले सभी स्वरूप वास्तविक हैं; तथा जिनके मतानुसार वास्तविक रूप भी वाणीप्रकाश्य हो सकते हैं; — वे दर्शन वास्तववादी हैं । इन्हें त्रिधिमुख, इदमित्थवादी या एकवादी भी

कह सकते हैं—जैसे चार्वाक, न्याय-वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, सांख्य-योग, वैभाषिक-सौत्रान्तिक बौद्ध और माध्वादि वेदान्त ।

जिनके मतानुसार बाह्य दृश्य जगत् मिथ्या है और आन्तरिक जगत् ही परम सत्य है;—अर्थात् जो दर्शन सत्यके व्यावहारिक और पारमार्थिक अथवा सांवृतिक और वास्तविक ऐसे दो भेद करके लौकिक प्रमाणगम्य और वाणीप्रकाश्य भावको अवास्तविक मानते हैं;—वे अवास्तववादी हैं । इन्हें निषेध-मुख या अनेकवादी भी कह सकते हैं । जैसे शून्यवादी-विज्ञानवादी बौद्ध और शाङ्कर वेदान्त आदि दर्शन ।

प्रकृतिसे अनेकान्तवादी होते हुए भी जैन दृष्टिका स्वरूप एकान्ततः वास्तववादी ही है । क्यों कि उसके मतानुसार भी इन्द्रिजन्य मतिज्ञान आदिमें भासित होने वाले भावोंके सत्यत्व का वही स्थान है जो पारमार्थिक केवलज्ञान में भासित होने वाले भावोंके सत्यत्वका स्थान है—अर्थात् जैनमतानुसार दोनों सत्त्वोंकी मात्रामें अन्तर है, योग्यता और गुणमें नहीं । केवलज्ञानमें द्रव्य और उनके अनन्त पर्याय जिस यथार्थतासे और जिम् रूपसे भासित होते हैं उसी यथार्थता और उसी रूपसे कुछ द्रव्य और उनके कुछ ही पर्याय मति आदि ज्ञानमें भी भासित हो सकते हैं । इसीसे जैन दर्शन अनेक सूक्ष्मतम भावोंकी अनिर्वचनीयताको मानता हुआ भी निर्वचनीय भावोंको यथार्थ मानता है । जब कि शून्यवादी और शाङ्कर वेदान्त आदि ऐसा नहीं मानते ।

(२) जैन दृष्टिकी अपरिवर्तिष्णुता

जैन दृष्टिका जो वास्तववादित्व स्वरूप ऊपर बतलाया गया वह, इतिहासके प्रारम्भसे अब तक एक ही रूपमें रहा है या उसमें कभी किसीके द्वारा थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है, यह एक बड़े महत्त्वका प्रश्न है । इसके साथ ही दूसरा प्रश्न यह होता है कि अगर जैन दृष्टि सदा एकसी स्थितिशील रही और बौद्ध व वेदान्त दृष्टिकी तरह उसमें परिवर्तन या चिन्तन विकास नहीं हुआ तो इसका क्या कारण ? ।

भगवान महावीरके पूर्व समयसे—जबसे थोड़ा बहुत भी जैन परम्पराका इतिहास पाया जाता है तबसे—ले कर आज तक जैन दृष्टिका वास्तववादित्व स्वरूप बिल्कुल अपरिवर्तिष्णु या ध्रुव ही रहा है । जैसा कि न्याय-वैशेषिक, पूर्व मीमांसक, सांख्य-योग आदि दर्शनोंका भी वास्तववादित्व अपरिवर्तिष्णु

रहा है। बेशक, न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंकी तरह जैन दर्शनके साहित्यमें भी प्रमाण प्रमेय आदि सब पदार्थोंकी व्याख्याओंमें, लक्षणप्रणयनमें और उनकी उपपत्तिमें उत्तरोत्तर सूक्ष्म और सूक्ष्मतर विकास तथा स्पष्टता हुई है, यहां तक कि नव्यन्यायके परिष्कारका आश्रय ले कर भी यशोविजयजी जैसे जैन विद्वानोंने व्याख्या एवं लक्षणोंका विश्लेषण किया है; फिर भी इस सारे ऐतिहासिक समयमें जैन दृष्टिके वास्तववादित्व स्वरूपमें एक अंश भी फर्क नहीं पड़ा है—जैसा कि बौद्ध और वेदान्त परंपरामें हम पाते हैं।

बौद्ध परंपरा शुरूमें वास्तववादी ही रही। पर महायानकी विज्ञानवादी और शून्यवादी शाखाने उसमें आमूल परिवर्तन कर डाला। उसका वास्तववादित्व ऐकान्तिक अवास्तववादित्वमें बदल गया। यही है बौद्ध परंपराका दृष्टि परिवर्तन। वेदान्तीय परम्परामें भी ऐसा ही हुआ। उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रमें जो अवास्तववादित्व के अस्पष्ट बीज थे और जो वास्तववादित्व के स्पष्ट सूचन थे उन सबका एक मात्र अवास्तववादित्व अर्थमें तात्पर्य बतला कर शङ्कराचार्यने वेदान्तमें अवास्तववादित्वकी स्पष्ट स्थापना की जिसके ऊपर आगे जा कर दृष्टि-सृष्टिवाद आदि अनेक रूपोंमें और भी दृष्टिपरिवर्तन व विकास हुआ। इस तरह एक तरफ बौद्ध और वेदान्त दो परम्पराओंकी दृष्टि-परिवर्तिष्णुता और बाकीके सब दर्शनोंकी यह दृष्टि-अपरिवर्तिष्णुता हमें इस भेदके कारणोंकी खोजकी ओर प्रेरित करती है।

स्थूल जगत्को असत्य या व्यावहारिक सत्य मान कर उससे भिन्न आन्तरिक जगत्को ही परम सत्य मानने वाले अवास्तववादका उद्गम सिर्फ तभी संभव है जब कि विश्लेषण क्रियाकी पराकाष्ठा—आत्यन्तिकता हो या समन्वयकी पराकाष्ठा हो। हम देखते हैं कि यह योग्यता बौद्ध परंपरा और वेदान्त परंपराके सिवाय अन्य किसी दार्शनिक परम्परामें नहीं है। बुद्ध देवने प्रत्येक स्थूल या सूक्ष्म भावका विश्लेषण यहां तक किया कि उसमें कोई स्थायी द्रव्य जैसा तत्त्व ही शेष न रहा। उपनिषदोंमें भी सब भेदोंका=विविधताओंका समन्वय एक ही ब्रह्म=स्थिर तत्त्वमें विश्रान्त हुआ। भगवान बुद्धके विश्लेषणको आगे जा कर उनके सूक्ष्मप्रज्ञ शिष्योंने यहां तक विस्तृत किया कि अन्तमें व्यवहारमें उपयोगी होने वाले अखण्ड द्रव्य या द्रव्यभेद सर्वथा नाम शेष हो गए; और क्षणिक किन्तु अनिर्वचनीय परम सत्य ही शेष रह गया। दूसरी

और शङ्कराचार्यने औपनिषद् परम् ब्रह्मकी समन्वय भावनाको यहां तक विस्तृत किया कि अन्तमें भेदप्रधान व्यवहार जगत् नामशेष या मायिक ही हो कर रह गया । बेशक, नागार्जुन और शङ्कराचार्य जैसे ऐकान्तिक विश्लेषणकारी या ऐकान्तिक समन्वयकर्ता न होते तो इन दोनों परम्पराओंमें व्यावहारिक और परम सत्यके भेदका आविष्कार ही न होता । फिर भी हमें यह मूलनां न चाहिए कि अवास्तववादी दृष्टिको योग्यता बौद्ध और वेदान्त परंपराकी भूमिकामें ही निहित रही जो न्याय वैशेषिक आदि वास्तववादी दर्शनोंकी भूमिकामें बिल्कुल नहीं है । न्याय-वैशेषिक, मीमांसक और सांख्य-योग दर्शन केवल विश्लेषण ही नहीं करते बल्कि समन्वय भी करते हैं । उनमें विश्लेषण और समन्वय दोनोंका सम प्राधान्य तथा समान बलत्व होनेके कारण दोनोंमेंसे कोई एक ही सत्य नहीं है; अत एव उन दर्शनोंमें अवास्तववादके प्रवेशकी न योग्यता है और न संभव ही है । अत एव उनमें नागार्जुन शङ्कराचार्य आदि जैसे अनेक सूक्ष्मप्रज्ञ विचारक होते हुए भी वे दर्शन वास्तववादी ही रहे । यही स्थिति जैन दर्शनकी भी है । जैन दर्शन द्रव्य द्रव्यके बीच विश्लेषण करते करते अन्तमें सूक्ष्मतम पर्यायोंके विश्लेषण तक पहुँचता है सही, पर यह विश्लेषणके अन्तिम परिणाम स्वरूप पर्यायोंको वास्तविक मान कर भी द्रव्यकी वास्तविकताका परित्याग, बौद्ध दर्शनकी तरह नहीं करता । इसी तरह वह पर्यायों और द्रव्योंका समन्वय करते करते एक सत् तत्त्व तक पहुँचता है और उसकी वास्तविकताका स्वीकार करके भी विश्लेषणके परिणाम स्वरूप द्रव्यभेदों और पर्यायोंकी वास्तविकताका परित्याग, ब्रह्मवादी दर्शनकी तरह नहीं करता । क्यों कि वह पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक दोनों दृष्टिओंको सापेक्ष भावसे तुल्य बल और समान सत्य मानता है । यही सबब है कि उसमें भी न बौद्ध परंपराकी तरह आत्यन्तिक विश्लेषण हुआ और न वेदान्त परंपराकी तरह आत्यन्तिक समन्वय । इसीसे जैन दृष्टिका वास्तववादित्व स्वरूप स्थिर ही रहा ।

(३) प्रमाणशक्तिकी मर्यादा

विश्व क्या वस्तु है, वह कैसा है, उसमें कौन-कौनसे और कैसे-कैसे तत्त्व हैं, इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर तत्त्वचिन्तकोंने एक ही प्रकारका नहीं दिया । इसका सबब यही है कि इस उत्तरका आधार प्रमाणकी शक्तिपर निर्भर है; और तत्त्वचिन्तकोंमें प्रमाणकी शक्तिके बारेमें माना मतामत हैं । भारतीय

तत्त्वचिन्तकोंका प्रमाणशक्तिके तारतम्य संबंधी मतभेद संक्षेपमें पांच पक्षोंमें विभक्त हो जाता है— १. इन्द्रियाधिपत्य, २. अनिन्द्रियाधिपत्य, ३. उभयाधिपत्य, ४. आगमाधिपत्य और ५. प्रमाणोपप्लव— ऐसे पांच पक्ष हैं ।

१. जिस पक्षका मन्तव्य यह है कि प्रमाणकी सारी शक्ति इन्द्रियोंके ऊपर ही अवलम्बित है; मन खुद इन्द्रियोंका अनुगमन कर सकता है पर वह इन्द्रियोंकी मददके सिवाय कहीं भी अर्थात् जहाँ इन्द्रियोंकी पहुँच न हो वहाँ कभी प्रवृत्त हो कर सच्चा ज्ञान पैदा कर ही नहीं सकता । सच्चे ज्ञानका अगर संभव है तो इन्द्रियोंके द्वारा ही— यह है इन्द्रियाधिपत्य पक्ष । इस पक्षमें चार्वाक दर्शन ही समाविष्ट है । यह नहीं कि चार्वाक अनुमान या शब्दव्यवहाररूप आगम आदि प्रमाणोंको, जो प्रतिदिन सर्वसिद्ध व्यवहारकी वस्तु है, उसे न मानता हो; फिर भी चार्वाक जो अपनेको प्रत्यक्षमात्रवादी=इन्द्रियप्रत्यक्षमात्रवादी कहता है, इसका अर्थ इतना ही है कि अनुमान, शब्द आदि कोई भी लौकिक प्रमाण क्यों न हो, पर उसका प्रामाण्य इन्द्रियप्रत्यक्षके संवादके सिवाय कभी संभव नहीं । अर्थात् इन्द्रिय-प्रत्यक्षसे बाधित नहीं ऐसा कोई भी ज्ञानव्यापार अगर प्रमाण कहा जाय तो इसमें चार्वाकको आपत्ति नहीं ।

२. अनिन्द्रियके अन्तःकरण=मन, चित्त और आत्मा ऐसे तीन अर्थ फलित होते हैं, जिनमेंसे चित्तरूप अनिन्द्रियका आधिपत्य मानने वाला अनिन्द्रियाधिपत्य पक्ष है । इस पक्षमें विज्ञानवाद, शून्यवाद और शाङ्कर वेदान्तका समावेश है । इस पक्षके अनुसार यथार्थ ज्ञानका संभव विशुद्ध चित्तके द्वारा ही माना जाता है । यह पक्ष इन्द्रियोंकी सत्यज्ञानजननशक्तिका सर्वथा इन्कार करता है और कहता है कि इन्द्रियाँ वास्तविक ज्ञान करानेमें पंगु ही नहीं बल्कि धोखेबाज भी अवश्य हैं । इसके मन्तव्य का निष्कर्ष इतना ही है, कि चित्त—खास कर ध्यानशुद्ध सात्त्विक चित्त—से बाधित या उसका संवाद प्राप्त न कर सकने वाला कोई ज्ञान प्रमाण हो ही नहीं सकता; फिर चाहे वह भले ही लोकव्यवहारमें प्रमाणरूपसे माना जाता हो ।

३. उभयाधिपत्य पक्ष वह है जो न चार्वाककी तरह इन्द्रियोंको ही सब कुछ मान कर इन्द्रियनिरपेक्ष मनका असामर्थ्य स्वीकार करता है और माही

इन्द्रियोंको पंगु या धोखेबाज मान कर केवल अनिन्द्रिय या चित्तका ही सामर्थ्य स्वीकार करता है। यह पक्ष मानता है कि चाहे मनकी मददसे ही सही, पर इन्द्रियाँ गुणसंपन्न हो सकती हैं और वास्तविक ज्ञान पैदा कर सकती हैं। इसी तरह यह पक्ष मानता है कि इन्द्रियोंकी मदद जहाँ नहीं है वहाँ भी अनिन्द्रिय चित्त यथार्थ ज्ञान करा सकता है। इसीसे इसे उभयाधिपत्य पक्ष कहा है। इसमें सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसक आदि दर्शनोंका समावेश है। सांख्य-योग इन्द्रियोंका सादृगुण्य मान कर भी अन्तःकरणकी स्वतन्त्र यथार्थशक्ति मानता है। न्याय-वैशेषिक आदि भी मनकी वैसी ही शक्ति मानते हैं पर फर्क यह है कि सांख्य-योग आत्माका स्वतन्त्र प्रमाण-सामर्थ्य नहीं मानते क्यों कि वे प्रमाणसामर्थ्य बुद्धिमें ही मान कर पुरुष या चेतनको निरतिशय मानते हैं। जब कि न्याय-वैशेषिक आदि, चाहे ईश्वरके आत्माका ही सही, पर आत्माका स्वतन्त्र प्रमाणसामर्थ्य मानते हैं। अर्थात् वे, शरीर तथा मनका अभाव होने पर भी, ईश्वरमें ज्ञानशक्ति मानते हैं। वैभाषिक और सौत्रान्तिक भी इसी पक्षके अन्तर्गत हैं, क्यों कि वे भी इन्द्रिय और मन दोनोंका प्रमाणसामर्थ्य मानते हैं।

४. आगमाधिपत्य पक्ष वह है—जो किसी न किसी विषयमें आगमके सिवाय किसी इन्द्रिय या अनिन्द्रियका प्रमाणसामर्थ्य स्वीकार नहीं करता। यह पक्ष केवल पूर्वमीमांसकका ही है। यद्यपि वह अन्य विषयोंमें सांख्य-योगादिकी तरह उभयाधिपत्य पक्षका ही अनुगामी है, फिर भी धर्म और अधर्म इन दो विषयोंमें वह आगम मात्रका ही सामर्थ्य मानता है। यद्यपि वेदान्तके अनुसार ब्रह्मके विषयमें आगमका ही प्राधान्य है, फिर भी वह आगमाधिपत्य पक्षमें इसलिये नहीं आ सकता कि ब्रह्म विषयमें ध्यानशुद्ध अन्तःकरणका भी सामर्थ्य उसे मान्य है।

५. प्रमाणोपप्लव पक्ष वह है—जो इन्द्रिय, अनिन्द्रिय या आगम किसीका सादृगुण्य या सामर्थ्य स्वीकार नहीं करता। वह मानता है कि ऐसा कोई साधन गुणसंपन्न है ही नहीं जो अबाधित ज्ञानकी शक्ति रखता हो। सभी साधन उसके मतसे या पंगु हैं या विप्रलम्भक हैं। इसका अनुगामी तत्त्वोपप्लववादी कहलाता है जो आखिरी हदका चार्वाक ही है। यह पक्ष जयराशिकृत तत्त्वोपप्लवमें स्पष्टतया प्रतिपादित हुआ है।

उक्त पाँचमेंसे तीसरा उभयाधिपत्य पक्ष ही जैन दर्शनका है। क्यों कि वह जिस तरह इन्द्रियोंका स्वतन्त्र सामर्थ्य मानता है, उसी तरह वह अनिन्द्रिय अर्थात् मन और आत्मा दोनोंका अलग अलग भी स्वतन्त्र सामर्थ्य मानता है। आत्माके स्वतन्त्र सामर्थ्यके विषयमें न्याय-वैशेषिक आदिके मन्तव्यसे जैन दर्शनके मन्तव्यमें फर्क यह है कि जैन दर्शन सभी आत्माओंका स्वतन्त्र प्रमाण-सामर्थ्य वैसा ही मानता है जैसा न्याय आदि ईश्वर मात्रका मानते हैं। जैन दर्शन प्रमाणोपप्लव पक्षका निराकरण इसलिये करता है कि उसे प्रमाणसामर्थ्य अवश्य इष्ट है। वह चार्वाकके प्रत्यक्षमात्र वादका विरोध इसलिये करता है कि उसे अनिन्द्रियका भी प्रमाणसामर्थ्य इष्ट है। वह विज्ञान, शून्य और ब्रह्म इन तीनों वादोंका निरसन इसलिये करता है कि उसे इन्द्रियोंका प्रमाणसामर्थ्य भी मान्य है। वह आगमाधिपत्य पक्षका भी विरोधी है, सो इसलिये कि धर्माधर्मके विषयमें अनिन्द्रिय अर्थात् मन और आत्मा दोनोंका प्रमाणसामर्थ्य इष्ट है।

(४) प्रमेयप्रदेशका विस्तार

जैसी प्रमाणशक्तिकी मर्यादा वैसा ही प्रमेयका क्षेत्र विस्तार; अतएव मात्र इन्द्रियसामर्थ्य मानने वाले चार्वाकके सामने सिर्फ स्थूल या दृश्य विश्वका ही प्रमेय क्षेत्र रहा, जो एक या दूसरे रूपमें अनिन्द्रिय प्रमाणका सामर्थ्य मानने वालोंकी दृष्टिमें अनेकधा विस्तीर्ण हुआ। अनिन्द्रिय सामर्थ्यवादी कोई क्यों न हो पर सबको स्थूल विश्वके अलावा एक सूक्ष्म विश्व भी नजर आया। सूक्ष्म विश्वका दर्शन उन सबका बराबर होने पर भी उनकी अपनी जुदी-जुदी कल्पनाओंके तथा परंपरागत भिन्न-भिन्न कल्पनाओंके आधार पर सूक्ष्म प्रमेयके क्षेत्रमें भी अनेक मत व संप्रदाय स्थिर हुए जिनको हम अति संक्षेपमें दो विभागोंमें बाँट कर समझ सकते हैं। इनमें एक विभाग तो वह जिसमें जड़ और चेतन दोनों प्रकारके सूक्ष्म तत्त्वोंको मानने वालोंका समावेश होता है। दूसरा वह जिसमें केवल चेतन या चैतन्य रूप ही सूक्ष्म तत्त्वको मानने वालोंका समावेश होता है। पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी अपेक्षा भारतीय तत्त्वज्ञानमें यह एक ध्यान देने योग्य भेद है कि इसमें सूक्ष्म-प्रमेयतत्त्व मानने वाला अभी तक ऐसा कोई नहीं हुआ जो स्थूल भौतिक विश्वकी तहमें एक मात्र सूक्ष्म जड़-तत्त्व ही मानता हो और सूक्ष्म जगत्में चेतन तत्त्वका अस्तित्व ही न मानता हो। इसके विरुद्ध ऐसे तत्त्वज्ञ भारतमें होते आये हैं जो स्थूल विश्वके

अन्तस्तलमें एक मात्र चेतन तत्त्वका सूक्ष्म जगत् मानते हैं। इसी अर्थमें भारतको चैतन्यवादी समझना चाहिए। भारतीय तत्त्वज्ञानके साथ पुनर्जन्म, कर्मवाद और बन्ध-मोक्ष की धार्मिक या आचरणलक्षी कल्पना भी मिली हुई है जो सूक्ष्म विश्व मानने वाले सभीको निर्विवाद मान्य है और सभीने अपने-अपने तत्त्वज्ञानके ढाँचेके अनुसार चेतन तत्त्वके साथ उसका मेल बिठाया है। इन सूक्ष्म तत्त्वदर्शी परंपराओंमें मुख्यतया चार वाद ऐसे देखे जाते हैं, जिनके बल पर उस-उस परंपराके आचार्यों ने स्थूल और सूक्ष्म विश्वका संबंध बतलाया है या कार्य-कारणका मेल बिठाया है। वे वाद ये हैं—१. आरंभवाद; २. परिणामवाद; ३. प्रतीत्यसमुत्पादवाद; और ४. विवर्तवाद।

१. आरंभवाद के संक्षेपमें चार लक्षण हैं—(अ) परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त मूल कारणोंका स्वीकार, (इ) कार्य और कारणका आत्यन्तिक भेद, (उ) कारण नित्य हो या अनित्य पर कार्योत्पत्तिमें उसका अपरिणामी ही रहना, (ऋ) अपूर्व अर्थात् उत्पत्तिके पहिले असत् ऐसे कार्यकी उत्पत्ति या किञ्चित्कालीन सत्ता।

२. परिणामवाद के लक्षण ठीक आरंभवाद से उल्टे हैं—(अ) एक ही मूल कारणका स्वीकार, (इ) कार्यकारणका वास्तविक अभेद, (उ) नित्य कारणका भी परिणामी हो कर ही रहना तथा प्रवृत्त होना, (ऋ) कार्य मात्रका अपने-अपने कारणमें और सब कार्योंका मूल कारणमें तीनों कालमें अस्तित्व अर्थात् अपूर्व वस्तुकी उत्पत्तिका सर्वथा इन्कार।

३. प्रतीत्यसमुत्पादवादके तीन लक्षण हैं—(अ) कारण और कार्यका आत्यन्तिक भेद, (इ) किसी भी नित्य या परिणामी कारण का सर्वथा अस्वीकार, (उ) और प्रथमसे असत् ऐसे कार्यमात्रका उत्पाद।

४. विवर्तवाद के तीन लक्षण ये हैं—(अ) किसी एक पारमार्थिक सत्यका स्वीकार जो न उत्पादक है और न परिणामी, (इ) स्थूल या सूक्ष्म भासमान जगत्की उत्पत्तिका या उसे परिणाम माननेका सर्वथा निषेध, (उ) स्थूल जगत्का अवास्तविक या काल्पनिक अस्तित्व अर्थात् मायिक भासमान।

१ आरंभवाद—इसका मन्तव्य यह है कि परमाणुरूप अनन्त सूक्ष्म तत्त्व जुड़े-जुड़े हैं जिनके पारस्परिक संबंधोंसे स्थूल भौतिक जगत्का नया ही निर्माण होता है और जो फिर सर्वथा नष्ट भी हो जाता है। इसके अनुसार वे

सूक्ष्म आरंभक तत्त्व अनादि-निधन हैं, अपरिणामी हैं। अगर फेर-फार होता है तो उनके गुणधर्मोंमें ही होता है। इस वादने स्थूल भौतिक जगत् का संबंध सूक्ष्म भूतके साथ लगा कर फिर सूक्ष्म चेतनतत्त्वका भी अस्तित्व माना है। उसने परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त चेतन तत्त्व माने जो अनादि-निधन एवं अपरिणामी ही हैं। इस वादने जैसे सूक्ष्म भूत तत्त्वोंको अपरिणामी ही मान कर उनमें उत्पन्न और नष्ट होने वाले गुणधर्मोंके अस्तित्वकी अलग कल्पना की; वैसे ही चेतन तत्त्वोंको अपरिणामी मान कर भी उनमें उत्पाद-विनाशशाली गुणधर्मोंका अलग ही अस्तित्व स्वीकार किया है। इस मतके अनुसार स्थूल भौतिक विश्वका सूक्ष्म भूतके साथ तो उपादानोपादेयभाव संबंध है पर सूक्ष्म-चेतन तत्त्वके साथ सिर्फ संयोग संबंध है।

२. परिणामवाद—इसके मुख्य दो भेद हैं—(अ) प्रधानपरिणामवाद और (आ) ब्रह्मपरिणामवाद।

(अ) प्रधानपरिणामवादके अनुसार स्थूल विश्वके अन्तस्तलमें एक सूक्ष्म प्रधान नामक ऐसा तत्त्व है जो जुदे जुदे अनन्त परमाणु रूप न हो कर उनसे भी सूक्ष्मतम स्वरूपमें अखण्ड रूपसे वर्तमान है और जो खुद ही परमाणुओंकी तरह अपरिणामी न रह कर अनादि अनन्त होते हुए भी नाना परिणामोंमें परिणत होता रहता है। इस वादके अनुसार यह स्थूल भौतिक विश्व इस सूक्ष्मतत्त्वके दृश्य परिणामोंके सिवाय और कुछ नहीं। इस वाद में परमाणुवादकी तरह सूक्ष्म तत्त्व अपरिणामी रह कर उसमेंसे स्थूल भौतिक विश्वका नूतन निर्माण नहीं होता। पर वह सूक्ष्म प्रधानतत्त्व जो स्वयं परमाणुकी तरह जड़ ही है, नाना दृश्य भौतिक रूपमें बदलता रहता है। इस प्रधान-परिणामवादने स्थूल विश्वका, सूक्ष्म पर जड़ ऐसे, एक मात्र प्रधान तत्त्वके साथ अमेद संबंध लगा कर सूक्ष्म जगत्में चेतन तत्त्वोंका भी अस्तित्व स्वीकार किया। इस वादके चेतन तत्त्व आरंभवाद की तरह अनन्त ही हैं पर फर्क दोनोंका यह है कि आरंभवादके चेतन तत्त्व अपरिणामी होते हुए भी उत्पाद-विनाशवाले गुणधर्म युक्त हैं; जब कि प्रधानपरिणामवादके चेतन तत्त्व ऐसे गुणधर्मोंसे युक्त नहीं। वे स्वयं भी कूटस्थ होनेसे अपरिणामी हैं और निर्धर्मक होनेसे किसी उत्पाद-विनाशशाली गुणधर्मको भी धारण नहीं करते। उसका कहना यह है कि उत्पाद-विनाश-

वाले गुणधर्म जब सूक्ष्म भूतमें देखे जाते हैं तब सूक्ष्म चेतन कुछ विलक्षण ही होना चाहिए । अगर सूक्ष्म चेतन, चेतन हो कर भी वैसे गुणधर्मयुक्त हों, तब जड़ सूक्ष्मसे उनका विलक्षण्य क्या रहा ? अतएव वह कहता है कि अगर सूक्ष्म चेतनका अस्तित्व मानना ही है तब तो सूक्ष्म भूतकी अपेक्षा विलक्षणता लानेके लिये उन्हें न केवल निर्धर्मक ही मानना उचित है बल्कि अपरिणामी भी मानना जरूरी है । इस तरह प्रधानपरिणामवादमें चेतन तत्त्व आये सही पर वे निर्धर्मक और अपरिणामी ही माने गए ।

(आ) ब्रह्म-परिणामवाद जो प्रधान-परिणामवादका ही विकसित रूप जान पड़ता है, उसने यह तो मान लिया कि स्थूल विश्वके मूलमें कोई सूक्ष्म तत्त्व है जो स्थूल विश्वका कारण है पर उसने कहा कि ऐसा सूक्ष्म कारण जड़प्रधान तत्त्व मान कर उससे भिन्न सूक्ष्म चेतन तत्त्व भी मानना, और वह भी ऐसा कि जो अजागलस्तन की तरह सर्वथा अकिञ्चित्किर, सो युक्तिसंगत नहीं । उसने प्रधानवादमें चेतन तत्त्वके अस्तित्वकी अनुपयोगिताको ही नहीं देखा बल्कि चेतन तत्त्वमें अनन्त संख्याकी कल्पनाको भी अनावश्यक समझा । इसी समझसे उसने सूक्ष्म जगत्की कल्पना ऐसी की जिससे स्थूल जगत्की रचना भी घट सके और अकिञ्चित्कर ऐसे अनन्त चेतन तत्त्वोंकी निष्प्रयोजन कल्पनाका दोष भी न रहे । इसीसे इस वादने स्थूल विश्वके अन्तस्तलमें जड़ चेतन ऐसे परस्पर विरोधी दो तत्त्व न मान कर केवल एक ब्रह्म नामक चेतन तत्त्व ही स्वीकार किया और उसका प्रधानपरिणाम की तरह परिणाम मान लिया जिससे उसी एक चेतन ब्रह्म तत्त्वमेंसे दूसरे जड़ चेतनमय स्थूल विश्वका आविर्भाव-तिरोभाव घट सके । प्रधान-परिणामवाद और ब्रह्म-परिणामवादमें फर्क इतना ही है कि पहिलेमें जड़ परिणामी ही है और चेतन अपरिणामी ही है; जब दूसरे में अन्तिम सूक्ष्म तत्त्व एक मात्र चेतन ही है जो स्वयं ही परिणामी है और उसी चेतनमेंसे आगेके जड़ चेतन ऐसे दो परिणामप्रवाह चले ।

३ प्रतीत्यसमुत्पादवाद—यह भी स्थूल भूतके नीचे जड़ और चेतन ऐसे दो सूक्ष्म तत्त्व मानता है जो क्रमशः रूप और नाम कहलाते हैं । इस बादके जड़ और चेतन दोनों सूक्ष्म तत्त्व परमाणु रूप हैं; आरंभवाद की तरह केवल जड़ तत्त्व ही परमाणु रूप नहीं । इस वादमें परमाणुका स्वीकार होते हुए भी उसका स्वरूप आरंभवादके परमाणुसे बिलकुल भिन्न

माना गया है। आरंभवादमें परमाणु अपरिणामी होते हुए भी उनमें गुणधर्मोंकी उत्पाद-विनाशपरंपरा अलग मानी जाती है। जब कि यह प्रतीत्यसमुत्पादवाद उस गुणधर्मोंकी उत्पाद-विनाशपरंपराको ही अपने मतमें विशिष्ट रूपसे ढाल कर, उसके आधारभूत स्थायी परमाणु द्रव्योंको बिल्कुल नहीं मानता। इसी तरह चेतन तत्त्वके विषयमें भी यह वाद कहता है कि स्थायी ऐसे एक या अनेक कोई चेतन तत्त्व नहीं। अलब्धत्वा सूक्ष्म जड़ उत्पाद-विनाशशाली परंपराकी तरह दूसरी चैतन्यरूप उत्पाद-विनाशशाली परंपरा भी मूलमें, जड़से भिन्न ही, सूक्ष्म जगत्में विद्यमान है, जिसका कोई स्थायी आधार नहीं। इस वादके परमाणु इसलिये परमाणु कहलाते हैं कि वे सबसे अतिसूक्ष्म और अविभाज्य मात्र हैं। पर इसलिये परमाणु नहीं कहलाते कि वे कोई अविभाज्य स्थायी द्रव्य हों। यह वाद कहता है कि गुणधर्मरहित कूटस्थ चेतन तत्त्व जैसे अनुपयोगी हैं वैसे ही गुणधर्मों का उत्पाद-विनाश मान लेने पर उसके आधार रूपसे फिर स्थायी द्रव्यकी कल्पना करना भी निरर्थक है। अतएव इस वादके अनुसार सूक्ष्म जगत्में दो धाराएँ फलित होती हैं, जो परस्पर बिल्कुल भिन्न हो कर भी, एक दूसरेके असरसे खाली नहीं। प्रधानपरिणाम या ब्रह्मपरिणाम वादसे इस वादमें फर्क यह है कि इसमें उक्त दोनों वादोंकी तरह किसी भी स्थायी द्रव्यका अस्तित्व नहीं माना जाता। ऐसा शंकु या कीलक स्थानीय स्थायी द्रव्य न होते हुए भी पूर्व परिणामक्षणका यह स्वभाव है कि वह नष्ट होते होते दूसरे परिणाम-क्षणको पैदा करता ही जायगा। अर्थात् उत्तर परिणामक्षण विनाशोन्मुख पूर्व परिणामके अस्तित्व मात्रके आश्रयसे आप ही निराधार उत्पन्न हो जाता है। इसी मान्यताके कारण यह प्रतीत्यसमुत्पाद वाद कहलाता है। वस्तुतः प्रतीत्यसमुत्पादवाद परमाणुवाद भी है और परिणामवाद भी। फिर भी तात्त्विकरूपमें वह दोनोंसे भिन्न है।

४ विवर्तवाद—विवर्तवादके मुख्य दो भेद हैं (अ) नित्यब्रह्मविवर्त और (आ) क्षणिकविज्ञानविवर्त। दोनों विवर्तवादोंके अनुसार स्थूल विश्व यह निराभासमात्र या कल्पनामात्र है, जो माया या वासनाजनित है। विवर्तवादका अभिप्राय यह है, कि जगत् या विश्व कोई ऐसी वस्तु नहीं हो सकती, जिसमें बाह्य और आन्तरिक या स्थूल और सूक्ष्म तत्त्व अलग और खण्डित हों।

विश्वमें जो कुछ वास्तविक सत्य हो सकता है वह एक ही हो सकता है क्यों कि विश्व वस्तुतः अखण्ड और अविभाज्य ही है। ऐसी दशामें जो बाह्यत्व-आन्तरत्व, ह्रस्वत्व-दीर्घत्व, दूरत्व-समीपत्व आदि धर्मद्वन्द्व मालूम होते हैं वे मात्र काल्पनिक हैं। अतएव इस वादके अनुसार लोकसिद्ध स्थूल विश्व केवल काल्पनिक और प्रातिभासिक सत्य है। पारमार्थिक सत्य उसकी तहमें निहित है जो विशुद्ध ध्यानगम्य होने के कारण अपने असली स्वरूपमें प्राकृत जनोंके द्वारा ग्राह्य नहीं।

न्याय-वैशेषिक और पूर्वमीमांसक आरंभवादी हैं। प्रधानपरिणामवाद सांख्य-योग और चरकका है। ब्रह्मपरिणामवादके समर्थक भर्तृप्रपञ्च आदि प्राचीन वेदान्ती और आधुनिक बल्लभाचार्य हैं। प्रतीत्यसमुत्पादवाद बौद्धोंका है और विवर्तवादके समर्थक शाङ्कर वेदान्ती, विज्ञानवादी और शून्यवादी हैं।

ऊपर जिन वादोंका वर्णन किया है उनके उपादानरूप विचारोंका ऐतिहासिक क्रम संभवतः ऐसा जान पड़ता है—शुरूमें वास्तविक कार्यकारणभाव की खोज जड़ जगत तक ही सीमित रही। वहीं तक वह परिमित रहा। क्रमशः स्थूलके उस पार चेतन तत्त्वकी शोध अर्थात् कल्पना होते ही, दृश्य और जड़ जगतमें प्रथमसे ही सिद्ध उस कार्यकारणभावकी परिणामिनित्यता रूपसे चेतन तत्त्व तक पहुँच हुई। चेतन भी जड़की तरह अगर परिणामिनित्य हो तो फिर दोनोंमें अन्तर ही क्या रहा? इस प्रश्नने फिर चेतनको कायम रख कर उसमें कूटस्थ नित्यता माननेकी ओर तथा परिणामिनित्यता या कार्यकारणभावको जड़ जगत तक ही परिमित रखनेकी ओर विचारकोंको प्रेरित किया। चेतनमें मानी जाने वाली कूटस्थ नित्यताका परीक्षण फिर शुरू हुआ। जिसमेंसे अन्ततो गत्वा केवल कूटस्थ नित्यता ही नहीं बल्कि जड़गत परिणामिनित्यता भी लुप्त हो कर मात्र परिणमनधारा ही शेष रह गई। इस प्रकार, एक तरफ आत्यन्तिक विश्लेषणने मात्र परिणाम या क्षणिकत्व विचारको जन्म दिया, तब दूसरी ओर आत्यन्तिक समन्वय बुद्धिने चैतन्य-मात्र पारमार्थिकवादको जन्माया। समन्वय बुद्धिने अन्तमें चैतन्य तक पहुँच कर सोचा कि जब सर्व व्यापक चैतन्य तत्त्व है तब उससे भिन्न जड़ तत्त्वकी वास्तविकता क्यों मानी जाय? और जब कोई जड़ तत्त्व अलग नहीं तब यह दृश्यमान परिणमनधारा भी वास्तविक क्यों? इस विचारने सारे भेद

और जड़ जगत्को मात्र काल्पनिक मनवा कर पारमार्थिक चैतन्यमात्र वादकी स्थापना कराई ।

उक्त विचारक्रमके सोपान इस तरह रखे जा सकते हैं—

१ जड़ मात्रमें परिणामिनित्यता ।

२ जड़ चेतन दोनोंमें परिणामिनित्यता ।

३ जड़में परिणामिनित्यता और चेतनमें कूटस्थनित्यताका विवेक ।

४ (अ) कूटस्थ और परिणामि दोनों नित्यताओंका लोप और मात्र परिणामप्रवाहकी सत्यता ।

(आ) केवल कूटस्थ चैतन्यकी ही या चैतन्यमात्रकी सत्यता और तद्विन्न सबकी काल्पनिकता या असत्यता ।

जैन परम्परा दृश्य विश्वके अलावा परस्पर अत्यन्त भिन्न ऐसे जड़ और चेतन अनन्त सूक्ष्म तत्त्वोंको मानती है । वह स्थूल जगत्को सूक्ष्म जड़ तत्त्वोंका ही कार्य या रूपान्तर मानती है । जैन परंपराके सूक्ष्म जड़ तत्त्व परमाणुरूप हैं । पर वे आरम्भवादके परमाणुकी अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म माने गये हैं । परमाणुवादी हो कर भी जैन दर्शन परिणामवादकी तरह परमाणुओंको परिणामी मान कर स्थूल जगत्को उन्हींका रूपान्तर या परिणाम मानता है । वस्तुतः जैन दर्शन परिणामवादी है । पर सांख्य, योग तथा प्राचीन वेदान्त आदि के परिणामवादसे जैन परिणामवादका खास अन्तर है । वह अन्तर यह है कि सांख्य-योगका परिणामवाद चेतन तत्त्वसे अस्पृष्ट होनेके कारण जड़ तक ही परिमित है और भर्तृप्रपञ्च आदिका परिणामवाद मात्र चेतनतत्त्वस्पर्शी है । जब कि जैन परिणामवाद जड़-चेतन, स्थूल-सूक्ष्म समग्र वस्तुस्पर्शी है अतः एव जैन परिणामवादको सर्व व्यापक परिणामवाद समझना चाहिए । भर्तृ-प्रपञ्चका परिणामवाद भी सर्व व्यापक कहा जा सकता है; फिर भी उसके और जैनके परिणामवादमें अन्तर यह है कि भर्तृप्रपञ्चका 'सर्व' चेतन ब्रह्ममात्र है—तद्विन्न और कुछ नहीं । जब कि जैनका 'सर्व' अनन्त जड़ और चेतन तत्त्वोंका है । इस तरह आरम्भ और परिणाम दोनों वादोंका जैन दर्शनमें व्यापकरूपमें पूरा स्थान तथा समन्वय है । पर उसमें प्रतीत्यसमुत्पाद तथा विवर्तवादका कोई स्थान नहीं है । वस्तुमात्रको परिणामी नित्य और समानरूपसे वास्तविक सत्य माननेके कारण जैनदर्शन प्रतीत्यसमुत्पाद तथा विवर्तवादका

सर्वथा विरोध ही करता है; जैसा कि न्याय-वैशेषिक सांख्य-योग आदि मी करते हैं। न्याय-वैशेषिक सांख्य-योग आदिकी तरह जैन दर्शन चेतनबहु-त्ववादी है सही, पर उसके चेतन तत्त्व अनेक दृष्टिसे भिन्न स्वरूप वाले हैं। जैन दर्शन, न्याय सांख्य आदिकी तरह चेतनको न सर्वव्यापक द्रव्य मानता है और न विशिष्टाद्वैत आदिकी तरह अणु मात्र ही मानता है। और ना ही बौद्ध दर्शनकी तरह ज्ञानकी निर्द्वयकधारा मात्र। जैनाभिमत समग्र चेतन तत्त्व मध्यम परिमाण वाले और संकोच-विस्तारशील होनेके कारण इस विषयमें वे जड़ द्रव्योंसे अत्यन्त विलक्षण नहीं हैं। न्याय-वैशेषिक और योगदर्शन मानते हैं कि आत्मत्व या चेतनत्व समान होने पर भी जीवात्मा और परमात्माके बीच मौलिक भेद है — अर्थात् जीवात्मा कभी परमात्मा या ईश्वर नहीं; और परमात्मा, सदासे ही परमात्मा या ईश्वर है; कभी जीव — बन्धवान नहीं होता। जैन दर्शन इससे बिल्कुल उल्टा मानता है — जैसा कि वेदान्त आदि मानते हैं। वह कहता है कि जीवात्मा और ईश्वरका कोई सहज भेद नहीं है। सब जीवात्माओं में परमात्मशक्ति एक-सी है जो साधन पा कर व्यक्त हो सकती है और होती भी रहती है। अलबत्ता जैन और वेदान्तका इस विषयमें इतना अन्तर अवश्य है कि वेदान्त एक-परमात्मवादी है जब जैनदर्शन चेतनबहुत्ववादी होनेके कारण-तात्त्विकरूपसे बहु-परमात्मवादी है।

जैन परम्पराके तत्त्वप्रतिपादक प्राचीन, अर्वाचीन, प्राकृत, संस्कृत कोई भी ग्रन्थ क्यों न हों और उन सबमें परस्पर निरूपण और वर्गीकरणका प्रकार कुछ भिन्न भी क्यों न हो, पर उनमें प्रतिपादक दृष्टि और प्रतिपाद्य प्रमेय, प्रमाता आदिका स्वरूप वही है जो संक्षेपमें ऊपर स्पष्ट किया गया है। यह 'प्रमाणमीमांसा' भी उसी जैन दृष्टिसे उन्हीं जैन मन्तव्योंका हार्द अपने ढंग से प्रगट करती है।

*

§ २. बाह्य स्वरूप ।

हेमचन्द्रकृत इस 'प्रमाणमीमांसा' के बाह्य स्वरूपका परिचय निम्न लिखित मुद्रोंके वर्णनसे हो सकेगा — शैली, विभाग, परिमाण, और भाषा ।

प्रमाणमीमांसा सूत्रशैलीका ग्रन्थ है। वह कणाद सूत्रों या तत्त्वार्थ सूत्रोंकी तरह न दश अध्यायोंमें, और न जैमिनीय सूत्रोंकी तरह बारह अध्यायोंमें है।

बादरायण सूत्रोंकी तरह इसके चार अध्याय भी नहीं और पातञ्जल सूत्रोंकी तरह मात्र चार पाद भी नहीं । यह अक्षपादके सूत्रोंकी तरह पांच अध्यायोंमें विभक्त है और प्रत्येक अध्याय कणाद या अक्षपादके अध्यायकी तरह दो दो आह्निकोंमें परिसमाप्त है । हेमचन्द्रने अपने जुदे जुदे विषयके ग्रन्थोंमें विभागके जुदे जुदे क्रमका अवलम्बन करके, अपने समय तकमें प्रसिद्ध, संस्कृत वाङ्मयके प्रतिष्ठित सभी शाखाओंके ग्रन्थोंके विभाग क्रमको अपने साहित्यमें अपनाया है । किसीमें उन्होंने अध्याय और पादका विभाग रखा; कहीं अध्याय-मात्रका; और कहीं पर्व, सर्ग, काण्ड आदिका । प्रमाणमीमांसा तर्क ग्रन्थ होनेके कारण इसमें उन्होंने अक्षपादके प्रसिद्ध न्यायसूत्रोंके अध्याय-आह्निकका ही विभाग रखा, जो हेमचन्द्रके पूर्व अकलङ्कने जैन वाङ्मयमें शुरू किया था ।

प्रमाणमीमांसा पूर्ण उपलब्ध नहीं । इसके मूलसूत्र भी उतने ही मिलते हैं जितनोंकी वृत्ति लभ्य है । अतएव अगर उन्होंने सब मूलसूत्र रचे भी हों तब भी पता नहीं चल सकता कि उनकी कुल संख्या कितनी होगी । उपलब्ध सूत्रोंकी संख्या १०० है और उतने ही सूत्रोंकी वृत्ति भी है । अन्तिम उपलब्ध सूत्र २. १. ३५ की वृत्ति पूर्ण होनेके बाद, एक नये सूत्रका उत्थान उन्होंने शुरू किया है और उस अधूरे उत्थानमें ही खण्डित लभ्य ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है । मालूम नहीं कि इसके आगे कितने सूत्रोंसे वह आह्निक पूरा होता होगा । जो कुछ हो पर उपलब्ध ग्रन्थ, दो अध्याय तीन आह्निक मात्र है, जो स्वोपज्ञ वृत्ति सहित है ।

यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं कि प्रमाणमीमांसा किस भाषामें है, पर उसकी भाषा विषयक योग्यताके बारेमें थोड़ा जान लेना जरूरी है । इसमें सन्देह नहीं कि जैन वाङ्मयमें संस्कृत भाषाके प्रवेशके बाद उत्तरोत्तर संस्कृत भाषाका वैशारथ और प्राञ्जल लेखपाटव बढ़ता ही आ रहा था फिर भी हेमचन्द्रसूरिका लेखवैशारथ, कमसे कम जैन वाङ्मयमें तो, मूर्धन्य स्थान रखता है । वैयाकरण, आलङ्कारिक, कवि और कोषकार रूपसे हेमचन्द्रका स्थान न केवल समग्र जैन परंपरामें बल्कि भारतीय विद्वत्परंपरामें भी असाधारण रहा । यही उनकी असाधारणता और व्यवहारदक्षता प्रमाणमीमांसाकी भाषा व रचनामें भी स्पष्ट होती है । भाषा उनकी वाचस्पति मिश्र की तरह नपी-तूली और शब्दाडंबर शून्य सहज प्रसन्न है । वर्णन न उतना

संक्षेपमें है जिससे वक्तव्य अस्पष्ट रहे; और न इतना विस्तीर्ण है जिससे ग्रन्थ केवल शोभाकी वस्तु बना रहे ।

§ ३. जैन तर्कसाहित्यमें प्रमाणमीमांसाका स्थान ।

जैन तर्क साहित्यमें प्रमाणमीमांसाका स्थान क्या है इसे समझनेके लिये जैन साहित्यके परिवर्तन या विकास संबन्धी युगोंका कुछ ऐतिहासिक अवलोकन करना जरूरी है । ऐसे युग संक्षेपमें तीन हैं—१ आगमयुग, २ संस्कृतप्रवेश या अनेकान्तस्थापन युग, ३ न्यायप्रमाणस्थापन युग ।

पहला युग भगवान महावीर या उनके पूर्ववर्ती भगवान पार्श्वनाथसे ले कर आगम संकलना पर्यन्तका — विक्रमीय पञ्चम-षष्ठ शताब्दी तकका — करीब हजार-बारह सौ वर्षका है । दूसरा युग करीब दो शताब्दियोंका है जो अनुमानतः विक्रमीय छठी शताब्दीसे शुरू हो कर सातवीं शताब्दीके अन्तमें पूर्ण होता है । तीसरा युग विक्रमीय आठवीं शताब्दीसे ले कर अठारहवीं शताब्दी तकका करीब एक हजार वर्षका है ।

सांप्रदायिक संघर्ष और दार्शनिक तथा दूसरी विविध विद्याओंके विकास—विस्तारके प्रभावके सबबसे जैन परंपराकी साहित्यकी अन्तर्मुख या बहिर्मुख प्रवृत्तिमें कितना ही युगान्तर जैसा स्वरूपभेद या परिवर्तन क्यों न हुआ हो, पर जैसा हमने पहिले सूचित किया है वैसा ही, अथ से इति तक देखने पर भी हमें न जैन दृष्टिमें और न उसके बाह्य-आभ्यन्तर तात्त्विक मन्तव्योंमें परिवर्तन हुआ मादूम होता है ।

१. आगमयुग—इस युगमें भाषाकी दृष्टिसे प्राकृत या लोक भाषाओंकी ही प्रतिष्ठा रही जिससे संस्कृत भाषा और उसके वाङ्मयके परिशीलनकी ओर आत्यन्तिक उपेक्षाका होना सहज था, जैसा कि बौद्ध परंपरा में भी हुआ था । इस युगका प्रमेयनिरूपण आचारलक्षी होनेके कारण उसमें मुख्यतया स्वमतप्रदर्शन का ही भाव है । राजसभाओं और इतर वादगोष्ठिओंमें विजयकी भावनासे प्रेरित हो कर शास्त्रार्थ करनेकी तथा खण्डनप्रधान ग्रन्थनिर्माणकी प्रवृत्तिका भी इस युगमें अभाव सा है । इस युगका प्रधान लक्षण जड-चेतनके भेद-प्रभेदोंका विस्तृत वर्णन तथा अहिंसा-संयम-तप आदि आचारोंका निरूपण करना है ।

आगम युग और संस्कृत युगके साहित्यका पारस्परिक अन्तर, संक्षेपमे इतने-ही-में कहा जा सकता है कि पहिले युगका जैन साहित्य, बौद्ध साहित्यकी तरह अपने मूल उद्देशके अनुसार लोकभोग्य ही रहा है। जब कि संस्कृत भाषा और उसमें निबद्ध तर्क साहित्यके अध्ययनकी व्यापक प्रवृत्तिके बाद, उसका निरूपण सूक्ष्म और विशद होता गया है सही पर साथ ही साथ वह इतना जटिल भी होता गया कि अन्तमें संस्कृतकालीन साहित्य लोकभोग्यताके मूल उद्देशसे द्युत हो कर केवल विद्वद्भोग्य ही बनता गया।

२. संस्कृतप्रवेश या अनेकान्तस्थापन युग

संभवतः वाचक उमास्वाति या तत्सदृश अन्य आचार्योंके द्वारा, जैन वाङ्मयमें संस्कृत भाषाका प्रवेश होते ही दूसरे युगका परिवर्तनकारी लक्षण शुरू होता है, जो कि बौद्ध परंपरामें अनेक शताब्दी पहिले ही शुरू हो गया था। इस युगमें संस्कृत भाषाके अभ्यासकी तथा उसमें ग्रन्थ-प्रणयनकी प्रतिष्ठा स्थिर होती है। इसमें राजसभाप्रवेश, परवादियोंके साथ वादगोष्ठी और परमतखण्डनकी प्रधान दृष्टिसे स्वमत स्थापक ग्रन्थोंकी रचना—ये कार्य प्रधानतया नजर आते हैं। इस युगमें सिद्धसेन जैसे एक-आध आचार्यने जैन न्यायकी व्यवस्था दर्शाने वाला एक-आध ग्रन्थ भले ही रचा हो, पर अब तक इस युगमें जैन न्याय या प्रमाण शास्त्रोंकी न तो पूरी व्यवस्था हुई जान पड़ती है और न तद्विषयक तार्किक साहित्यका निर्माण ही देखा जाता है। इस युगके जैन तार्किकोंकी प्रवृत्तिकी प्रधान दिशा दार्शनिक क्षेत्रोंमें एक ऐसे जैन मन्तव्यके स्थापनकी ओर रही है जिसके बिखरे हुए और कुछ स्पष्ट-अस्पष्ट बीज आगममें थे; और जो मन्तव्य आगे जा कर सभी भारतीय दर्शनपरंपरामें एक मात्र जैन परंपराका ही समझा जाने लगा, तथा जिस मन्तव्यके नाम पर आज तक सारे जैन दर्शनका व्यवहार किया जाता है। यह मन्तव्य है अनेकान्तवादका। दूसरे युगमें सिद्धसेन हो या समन्तभद्र, मल्लवादी हो या जिनभद्र—सभीने दर्शनान्तरोंके सामने, अपने जैनमतकी अनेकान्त दृष्टि, तार्किक शैलीसे तथा परमत खण्डनके अभिप्रायसे इस तरह रखी है कि जिससे इस युगको अनेकान्तस्थापन युग ही कहना समुचित होगा। हम देखते हैं कि उक्त आचार्योंके पूर्ववर्ती किसी प्राकृत या संस्कृत

ग्रन्थमें न तो वैसी अनेकान्तकी तार्किक स्थापना है, और न अनेकान्त मूलक सप्तभङ्गी और नयवादका वैसा तार्किक विश्लेषण है, जैसा हम सन्मति, द्वात्रिंशत्त्रिंशिका, न्यायावतार, खयंभूस्तोत्र, आप्त-मीमांसा, युक्त्यनुशासन, नयचक्र और विशेषावश्यक भाष्यमें पाते हैं। इस युगके तर्क-दर्शन निष्णात जैन आचार्योंने नयवाद, सप्तभङ्गी और अनेकान्तवाद की प्रबल और स्पष्ट स्थापना की; और इतना अधिक पुरुषार्थ किया कि जिसके कारण जैन और जैनेतर परंपराओंमें जैन दर्शन अनेकान्त दर्शनके नामसे ही प्रतिष्ठित हो गया और बौद्ध तथा ब्राह्मण दार्शनिक पण्डितोंका लक्ष्य अनेकान्त खण्डनकी ओर गया। तथा, वे किसी-न-किसी प्रकारसे अपने ग्रन्थोंमें मात्र अनेकान्त या सप्तभङ्गीका खण्डन करके ही जैन दर्शनके मन्तव्योंके खण्डनका इतिश्री समझने लगे। इस युगमें अनेकान्त और तन्मूलकवादोंकी स्थापना इतनी गहरी हुई कि जिसपर उत्तरवर्ती अनेक जैन आचार्योंने अनेकधा पल्लवन किया, लेकिन फिर भी उसमें नई मौलिक युक्तियोंका शायद ही समावेश हुआ है। दो सौ वर्षके इस युगकी साहित्यिक प्रवृत्तिमें जैन न्याय और प्रमाण शास्त्रकी पूर्वभूमिका तो तैयार हुई जान पड़ती है पर इसमें उस शास्त्रका व्यवस्थित निर्माण देखा नहीं जाता। इस युगकी परमतोंके सयुक्तिक खण्डन तथा दर्शनान्तरीय समर्थ विद्वानोंके सामने खमतके प्रतिष्ठित स्थापनकी भावनाने जैन परंपरामें संस्कृत भाषाके तथा संस्कृतनिबद्ध दर्शनान्तरीय प्रतिष्ठित ग्रन्थोंके परिशीलनकी प्रबल जिज्ञासा पैदा कर दी और उसीने समर्थ जैन आचार्योंका लक्ष्य अपने निजी न्याय तथा प्रमाण शास्त्रके निर्माणकी ओर खींचा, कि जिसकी कामी बहुत ही अखर रही थी।

३. न्याय-प्रमाणस्थापन युग

इसी परिस्थितिमेंसे अकलङ्क जैसे धुरंधर व्यवस्थापकका जन्म हुआ। संभवतः अकलङ्कने ही पहिले-पहल सोचा कि जैन परंपराके ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता आदि सभी पदार्थोंका निरूपण तार्किक शैलीसे संस्कृत भाषामें वैसा ही शास्त्रबद्ध करना आवश्यक है जैसा ब्राह्मण और बौद्ध परंपराके साहित्यमें बहुत पहिलेसे हो गया है और जिसका अध्ययन अनिवार्य रूपसे जैन तार्किक करने लगे हैं। इस विचारसे अकलङ्कने द्विमुखी प्रवृत्ति शुरू की। एक

और तो बौद्ध और ब्राह्मण परंपराके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सूक्ष्म परिशीलन किया और दूसरी ओर समस्त जैन मन्तव्योंका तार्किक विश्लेषण किया । केवल परमतोंका निरास करने ही से अकलङ्कका उद्देश्य सिद्ध हो नहीं सकता था; अतएव दर्शनान्तरीय शास्त्रोंके सूक्ष्म परिशीलनमेंसे और जैन मतके तलस्पर्शी ज्ञानसे उन्होंने छोटे-छोटे, पर समस्त जैन तर्क और प्रमाण शास्त्रके आधारस्तम्भभूत, अनेक न्याय-प्रमाण विषयक प्रकरण रचे जो दिङ्नाग और खास कर धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध तार्किकोंके तथा उद्योतकर, कुमारिल आदि जैसे ब्राह्मण तार्किकोंके प्रभावसे भरे ढुबे होने पर भी, जैन मन्तव्योंकी, बिलकुल नये ढंग और स्वतन्त्रभावसे स्थापना करते हैं । अकलङ्कने न्याय-प्रमाण शास्त्रका जैन परंपरामें जो प्राथमिक निर्माण किया, जो परिभाषाएँ बनाई, जो लक्षण व परीक्षण किया, जो प्रमाण-प्रमेय आदिका वर्गीकरण किया और परार्थानुमान तथा वादकथा आदि परमतप्रसिद्ध वस्तुओं के संबंधमें जो जैन प्रणाली स्थिर की, संक्षेपमें तबतक जैन परंपरामें नहीं पर अन्य परंपराओंमें प्रसिद्ध ऐसे तर्क शास्त्रके अनेक पदार्थोंका जैन दृष्टिसे जैन परंपरामें जो सात्मीभाव किया तथा आगम सिद्ध अपने मन्तव्योंको जिस तरह दार्शनिकोंके सामने रखने योग्य बनाया, वह सब उनके छोटे-छोटे ग्रन्थोंमें विद्यमान उनके असाधारण पाण्डित्यका तथा न्यायप्रमाणस्थापन युगका द्योतक है ।

अकलङ्कके द्वारा प्रारब्ध इस युगमें साक्षात् या परंपरासे अकलङ्कके शिष्य-प्रशिष्योंने ही उनके सूत्रस्थानीय ग्रन्थोंको बड़े-बड़े टीकाग्रन्थोंसे वैसे ही अलङ्कृत किया जैसे धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंको उनके शिष्योंने ।

अनेकान्त युगकी मात्र पद्यप्रधान रचनाको अकलङ्कने गद्य-पद्यमें परिवर्तित किया था पर उनके उत्तरवर्ती अनुगामियोंने उस रचनाको नानारूपोंमें परिवर्तित किया, जो रूप बौद्ध और ब्राह्मण परंपरामें प्रतिष्ठित हो चुके थे । माणिक्यनन्दी अकलङ्कके ही विचार दोहनमेंसे सूत्रोंका निर्माण करते हैं । विद्यानन्द अकलङ्कके ही सूक्तों पर या तो भाष्य रचते हैं या तो पद्यवार्तिक बनाते हैं या दूसरे छोटे छोटे अनेक प्रकरण बनाते हैं । अनन्तवीर्य, प्रभाचन्द्र और वादिराज जैसे तो अकलङ्कके संक्षिप्त सूक्तों पर इतने बड़े और विशद तथा जटिल भाष्य व विवरण कर ढालते हैं कि जिससे तब तकमें

विकसित दर्शनान्तरीय विचार परंपराओंका एक तरहसे जैन वाक्यमें पूरा समावेश हो जाता है । दूसरी तरफ श्वेताम्बर परंपराके आचार्य भी उसी अकलङ्क स्थापित प्रणालीकी ओर झुकते हैं । हरिभद्र जैसे आगमिक और तार्किक ग्रन्थकारने तो सिद्धसेन और समन्तभद्र आदिके मार्गका प्रधानतया अनेकान्त-जयपताका आदिमें अनुसरण किया पर धीरे-धीरे न्याय-प्रमाण विषयक स्वतंत्र ग्रन्थ प्रणयनकी प्रवृत्ति भी श्वेताम्बर परंपरामें शुरू हुई । श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेनने न्यायावतार रचा था । पर वह निरा प्रारंभ मात्र था । अकलङ्कने जैन न्यायकी सारी व्यवस्था स्थिर कर दी । हरिभद्रने दर्शनान्तरीय सब वार्ताओंका समुच्चय भी कर दिया । इस भूमिकाको ले कर शान्त्याचार्य जैसे श्वेतांबर तार्किकने तर्कवार्तिक जैसा छोटा किन्तु सारगर्भ ग्रन्थ रचा । इसके बाद तो श्वेताम्बर परंपरामें न्याय और प्रमाण ग्रन्थोंके संग्रहका, परिशीलनका और नये-नये ग्रन्थ निर्माणका ऐसा पूरा आया कि मानों समाजमें तबतक ऐसा कोई प्रतिष्ठित विद्वान् ही न समझा जाने लगा, जिसने संस्कृत भाषामें खास कर तर्क या प्रमाण पर मूल या टीका रूपसे कुछ न कुछ लिखा न हो । इस भावनामेंसे ही अभयदेवका वादार्णव तैयार हुआ जो संभवतः तब तकके जैन संस्कृत ग्रन्थोंमें सबसे बड़ा है । पर जैन परंपरा पोषक गुजरात गत सामाजिक-राजकीय सभी बलोंका सबसे अधिक उपयोग वादी-देवसूरिने किया । उन्होंने अपने ग्रन्थका स्याद्वादरत्नाकर यथार्थ ही नाम रखा । क्यों कि उन्होंने अपने समय तकमें प्रसिद्ध सभी श्वेताम्बर दिगम्बर तार्किकोंके विचारोंका दोहन अपने ग्रन्थमें रख दिया जो स्याद्वाद ही था । और साथ ही उन्होंने अपनी जानीबसे ब्राह्मण और बौद्ध परंपराकी किसी भी शाखाके मन्तव्योंकी विस्तृत चर्चा अपने ग्रन्थमें न छोड़ी । चाहे विस्तारके कारण वह ग्रन्थ पाठ्य रहा न हो पर तर्क शास्त्रके निर्माणमें और विस्तृत निर्माणमें प्रतिष्ठा मानने वाले जैनमतकी बंदौलत एक रत्नाकर जैसा समग्र मन्तव्यरत्नोंका संग्रह बन गया, जो न केवल तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे ही उपयोगी है, पर ऐतिहासिक दृष्टिसे भी बड़े महत्त्व का है ।

आगमिक साहित्यके प्राचीन और अति विशाल खजानेके उपरान्त तत्त्वार्थसे ले कर स्याद्वादरत्नाकर तकके संस्कृत व तार्किक जैन साहित्यकी भी बहुत बड़ी राशि हेमचन्द्रके परिशीलन पथमें आई जिससे हेमचन्द्रका सर्वाङ्गीण सर्जक

व्यक्तित्व सन्तुष्ट होनेके बजाय एक ऐसे नये सर्जनकी ओर प्रवृत्त हुवा जो तब तकके जैन वाङ्मयमें अपूर्व स्थान रख सके ।

दिङ्नागके न्यायमुख, न्यायप्रवेश आदिसे प्रेरित हो कर सिद्धसेनने जैन परंपरामें न्याय—परार्थानुमानका अवतार कर ही दिया था । समन्तभद्रने, अक्षपादके प्रावादुक्तोंके (अध्याय चतुर्थ) मतनिरासकी तरह, आसकी मीमांसाके बहाने सप्तभङ्गीकी स्थापनामें पर प्रवादियोंका निरास कर ही दिया था । तथा उन्होंने जैनेतर शासनोंसे जैन शासनकी विशेष सयुक्तिकताका अनुशासन भी युक्त्यनुशासनमें कर ही दिया था । धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिक, प्रमाणविनिश्चय आदिसे बल पा कर तीक्ष्णदृष्टि अकलङ्कने जैन न्यायका विशेष निश्चय—व्यवस्थापन तथा जैन प्रमाणोंका संग्रह अर्थात् विभाग, लक्षण आदि द्वारा निरूपण अनेक तरहसे कर दिया था । अकलङ्कने सर्वज्ञत्व, जीवत्व आदिकी सिद्धिके द्वारा धर्मकीर्ति जैसे प्राज्ञ बौद्धोंको जवाब भी दिया था । मूक्षमप्रज्ञ विद्यानन्दने आसकी, पत्रकी और प्रमाणोंकी परीक्षा द्वारा धर्मकीर्तिकी तथा शान्तरक्षितकी विविध परीक्षाओंका जैन परंपरामें सूत्रपात भी कर ही दिया था । माणिक्यनन्दीने परीक्षामुखके द्वारा न्यायविन्दुकेसे सूत्र ग्रन्थकी कमी को दूर कर ही दिया था । जैसे धर्मकीर्तिके अनुगामी विनीतदेव, धर्मोत्तर, प्रज्ञाकर, अर्चट आदि प्रखर तार्किकोंने उनके सभी मूल ग्रन्थों पर छोटे बड़े भाष्य या विवरण लिख कर उनके ग्रन्थोंको पठनीय तथा विचारणीय बना कर बौद्ध न्यायशास्त्रको प्रकर्षकी भूमिका पर पहुँचाया था; वैसे ही एक तरफ से दिगम्बर परंपरामें अकलङ्कके संक्षिप्त पर गहन सूक्तों पर उनके अनुगामी अनन्तवीर्य, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र और वादिराज जैसे विशारद तथा पुरुषार्थी तार्किकोंने विस्तृत व गहन भाष्य-विवरण आदि रच कर जैन न्याय शास्त्रको अतिसमृद्ध बनानेका सिलसिला भी जारी कर ही दिया था और दूसरी तरफसे श्वेताम्बर परंपरामें सिद्धसेनके संस्कृत तथा प्राकृत तर्क प्रकरणोंको उनके अनुगामीओंने टीका ग्रन्थोंसे भूषित करके उन्हें विशेष सुगम तथा प्रचारणीय बनानेका भी प्रयत्न इसी युगमें शुरू किया था । इसी सिलसिलेमेंसे प्रभाचन्द्र के द्वारा प्रमेयोंके कमल पर मार्तण्डका प्रखर प्रकाश तथा न्यायके कुमुदों पर चन्द्रका सौम्य प्रकाश डाला गया था । अभयदेवके द्वारा तत्त्वबोधविधायिनी टीका या वादार्णव रचा जा कर तत्त्वसंग्रह तथा प्रमाणवार्तिकालङ्कार जैसे

बड़े ग्रन्थोंके अभावकी पूर्ति की गई थी । वादि देवसूत्रिने रत्नाकर रच कर उसमें सभी पूर्ववर्ती जैन ग्रन्थोंका पूर्णतया संग्रह कर दिया था । यह सब हेमचन्द्रके सामने था । पर उन्हें मादूम हुआ कि उस न्याय-प्रमाण विषयक साहित्यमें कुछ भाग तो ऐसा है जो अति महत्त्वका होते हुए भी एक एक विषयकी ही चर्चा करता है या बहुत ही संक्षिप्त है । दूसरा भाग ऐसा है कि जो है तो सर्वविषयसंग्राह्य पर यह उत्तरोत्तर इतना अधिक विस्तृत तथा शब्दवृद्धि है कि जो सब साधारणके अभ्यासका विषय बन नहीं सकता । इस विचारसे हेमचन्द्रने एक ऐसा प्रमाण विषयक ग्रन्थ बनाना चाहा जो कि उनके समय तक चर्चित एक भी आदर्शनिक विषयकी चर्चामे ग्याली न रहे और फिर भी वह पाठ्यक्रम योग्य मध्यम कदका हो । 'प्रमाणमीमांसा' का जन्म इसी दृष्टिसे हुआ । इसमें हेमचन्द्रने पूर्ववर्ती आगमिक -- तार्किक सभी जैन मन्तव्योंको विचार व मननमे पचा कर अपने ढंगकी विशद व अपुनरुक्त मूत्रशैलीमें तथा सर्वसंग्राहिणी विशदतम खोपड़ा वृत्तिमें सन्निविष्ट किया । यद्यपि पूर्ववर्ती अनेक जैन ग्रन्थोंका सुमंत्रद्वर दोहन इस मीमांसामें है जो हमारे टिप्पणोंमें की गई तुलनासे स्पष्ट हो जाता है; फिर भी उसी अधूर्ण तुलनाके आधारसे यहाँ यह भी कह देना समुचित है कि प्रस्तुत ग्रन्थके निर्माणमें हेमचन्द्रने प्रधानतया किन किन ग्रन्थों या ग्रन्थकारोंका आश्रय लिया है । निर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य और तत्त्वार्थ जैसे आगमिक ग्रन्थ, तथा सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलङ्क, माणिक्यनन्दी और विद्यानन्दकी प्रायः समस्त कृतियाँ इसकी उपादान सामग्री बनी हैं । प्रभाचन्द्रके मार्तण्डका भी इसमें पूरा असर है । अगर अनन्तवीर्य सचमुच हेमचन्द्रके पूर्ववर्ती या समकालीन वृद्ध रहे होंगे तो यह भी सुनिश्चित है कि इस ग्रन्थकी रचनामें उनकी छोटीसी प्रमेयरत्नमालाका भी यथेष्ट उपयोग हुआ है । वादी देवसूत्रिकी कृतिका भी उपयोग इसमें स्पष्ट है; फिर भी जैन तार्किकोंमेंसे अकलङ्क और माणिक्यनन्दीका ही मार्गानुगमन प्रधानतया देखा जाता है । उपर्युक्त जैनग्रन्थोंमें आए हुए ब्राह्मण व बौद्ध ग्रन्थोंका उपयोग हो जाना तो स्वाभाविक ही था; तदुपरांत प्रमाणमीमांसाके सूक्ष्म अवलोकन तथा तुलनात्मक अभ्याससे यह भी पता चल जाता है कि हेमचन्द्रने बौद्ध व ब्राह्मण परंपराके किन किन विद्वानोंकी कृतिओंका अध्ययन व परिशीलन विशेषरूपसे किया था जो प्रमाणमीमांसामें उपयुक्त हुआ हो । दिङ्नाग, खास कर धर्म-

कीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट और शान्तरक्षित ये बौद्ध तार्किक इनके अध्ययनके विषय अवश्य रहे हैं। कणाद, भासर्वज्ञ, व्योमशिव, श्रीधर, अक्षपाद, वात्स्यायन, उद्घोतकर, जयन्त, वाचस्पति मिश्र, शबर, प्रभाकर, कुमारिल आदि जुदी जुदी वैदिक परंपराओंके प्रसिद्ध विद्वानोंकी सब कृतियाँ प्रायः इनके अध्ययनकी विषय रहीं। चार्वाक एकदेशीय जयराशि भट्टका तत्त्वोपप्लव भी इनकी दृष्टिके बाहर नहीं था। यह सब होते हुए भी हेमचन्द्रकी भाषा तथा निरूपण शैली पर धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट, भासर्वज्ञ, वात्स्यायन, जयन्त, वाचस्पति, कुमारिल आदिका ही आकर्षक प्रभाव पड़ा हुआ जान पड़ता है। अतएव यह अधूरे रूपमें उपलब्ध प्रमाणमीमांसा भी ऐतिहासिक दृष्टिसे जैन तर्कसाहित्यमें तथा भारतीय दर्शनसाहित्यमें एक विशिष्ट स्थान रखती है।

*

§ ४. भारतीय प्रमाणशास्त्रमें प्रमाणमीमांसाका स्थान।

भारतीय प्रमाणशास्त्रमें प्रमाणमीमांसाका तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे क्या स्थान है इसे ठीक ठीक समझनेके लिये मुख्यतया दो प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक होगा— १. जैन तार्किकोंकी भारतीय प्रमाणशास्त्रको क्या देन है, जो प्रमाणमीमांसा में सन्निविष्ट हुई हो और जिसको बिना जाने किसी तरह भारतीय प्रमाणशास्त्रका पूरा अध्ययन हो नहीं सकता हो। २. पूर्वाचार्योंकी उस देनमें हेमचन्द्र ने अपनी ओरसे कुछ भी विशेष अर्पण किया है या नहीं और किया है तो किन मुद्दों पर ?

१. जैनाचार्योंकी भारतीय प्रमाणशास्त्रको देन

१. अनेकान्तवाद—सबसे पहली और सबसे श्रेष्ठ सब देनोंकी चाबी रूप जैनाचार्योंकी मुख्य देन है अनेकान्त तथा नयवादका शास्त्रीय निरूपण।

विश्वका विचार करने वाली परस्पर भिन्न ऐसी मुख्य दो दृष्टियाँ हैं। एक है सामान्यगामिनी और दूसरी है विशेषगामिनी। पहली दृष्टि शुरूमें तो सारे विश्वमें समानता ही देखती है पर वह धीरे-धीरे अभेदकी ओर झुकते झुकते अंतमें सारे विश्वको एक ही मूलमें देखती है और फलतः निश्चय करती है कि जो कुछ प्रतीतिका विषय है वह तत्त्व वास्तवमें एक ही है। इस तरह समानताकी प्राथमिक भूमिकासे उतर कर अंतमें वह दृष्टि तात्त्विक एकताकी भूमिका पर आ कर ठहरती है। उस दृष्टिमें जो एक मात्र विषय स्थिर होता

है, वही सत् है। सत् तत्त्वमें आत्यंतिक रूपसे निमग्न होनेके कारण वह दृष्टि या तो भेदोंको देख ही नहीं पाती या उन्हें देख कर भी वास्तविक न समझनेके कारण व्यावहारिक या अपारमार्थिक या बाधित कह कर छोड़ ही देती है। चाहे फिर वे प्रतीतिगोचर होने वाले भेद कालकृत हों अर्थात् कालपट पर फैले हुए हों, जैसे पूर्वाग्रसरूप बीज, अंकुर आदि; या देशकृत हों अर्थात् देशपट पर वित्त हों, जैसे समकालीन घट, पट आदि प्रकृतिक परिणाम; या द्रव्यगत अर्थात् देशकाल-निरपेक्ष साहजिक हों, जैसे प्रकृति, पुरुष तथा अनेक पुरुष।

इसके विरुद्ध दूसरी दृष्टि सारे विश्वमें असमानता ही असमानता देखती है और धीरे-धीरे उस असमानताकी जड़की खोज करने करते अंतमें वह विश्लेषणकी ऐसी भूमिका पर पहुँच जाती है, जहाँ उसे एकताकी तो बात ही क्या, समानता भी कृत्रिम मालूम होती है। फलतः वह निश्चय कर लेती है कि विश्व एक दूसरेसे अत्यंत भिन्न ऐसे भेदोंका पुंज मात्र है। वस्तुतः उसमें न कोई वास्तविक एक तत्त्व है और न साम्य ही। चाहे वह एक तत्त्व समग्र देशकाल-व्यापी समझा जाता हो, जैसे प्रकृति; या द्रव्यभेद होने पर भी मात्र काल व्यापी एक समझा जाता हो, जैसे परमाणु।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियाँ मूलमें ही भिन्न हैं। क्यों कि एकका आधार समन्वय मात्र है और दूसरीका आधार विश्लेषण मात्र। इन मूलभूत दो विचार सरणियोंके कारण तथा उनमेंसे प्रस्फुटित होने वाली दूसरी वैसी ही अवान्तर विचारसरणियोंके कारण अनेक मुद्दों पर अनेक विरोधी वाद आप ही आप खड़े हो जाते हैं। हम देखते हैं कि सामान्यगामिनी पहली दृष्टिमेंसे समग्र देश-काल-व्यापी तथा देश-काल-विनिर्मुक्त ऐसे एक मात्र सत्-तत्त्व या ब्रह्मा-द्वैतका वाद स्थापित हुआ; जिसने एक तरफसे सकल भेदोंको और तद्ग्राहक प्रमाणोंको मिथ्या बतलाया और साथ ही सत्-तत्त्वको वाणी तथा तर्ककी प्रवृत्तिसे शून्य कह कर मात्र अनुभवगम्य कहा। दूसरी विशेषगामिनी दृष्टिमेंसे भी केवल देश और काल भेदसे ही भिन्न नहीं बल्कि स्वरूपसे भी भिन्न ऐसे अनंत भेदोंका वाद स्थापित हुआ; जिसने एक ओरसे सब प्रकारके अमेदोंको मिथ्या बतलाया और दूसरी तरफसे अंतिम भेदोंको वाणी तथा तर्ककी प्रवृत्तिसे शून्य कह कर मात्र अनुभवगम्य बतलाया। ये दोनों वाद अंतमें

शून्यताके तथा स्वानुभवागम्यताके परिणाम पर पहुँचे सही, पर दोनोंका लक्ष्य अत्यंत भिन्न होनेके कारण वे आपसमें बिल्कुल ही टकराने और परस्पर विरुद्ध दिखाई देने लगे ।

उक्त मूलभूत दो विचारधाराओंमेंसे फूटने वाली या उनसे सम्बन्ध रखने वाली भी अनेक विचारधाराएँ प्रवाहित हुईं । किसीने अमेदको तो अपनाया, पर उसकी व्याप्ति काल और देश पट तक अथवा मात्र कालपट तक रखी । स्वरूप या द्रव्य तक उसे नहीं बढ़ाया । इस विचारधारामेंसे अनेक द्रव्योंको मानने पर भी उन द्रव्योंकी कालिक नित्यता तथा दैशिक व्यापकताके वाद का जन्म हुआ जैसे सांख्यका प्रकृति-पुरुषवाद । दूसरी विचारधाराने उसकी अपेक्षा भेदका क्षेत्र बढ़ाया । जिससे उसने कालिक नित्यता तथा दैशिक व्यापकता मान कर भी स्वरूपतः जड़ द्रव्योंको अधिक संख्यामें स्थान दिया जैसे परमाणु, विभुद्रव्यवाद ।

अद्वैतमात्रको या सन्मात्रको स्पर्श करने वाली दृष्टि किसी विषयमें भेद सहन न कर सकनेके कारण अमेदमूलक अनेकवादोंका स्थापन करे, यह स्वाभाविक ही है । हुआ भी ऐसा ही । इसी दृष्टिमेंसे कार्य-कारणके अमेदमूलक मात्र सत्कार्यवादका जन्म हुआ । धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, आधार-आधेय आदि द्वंद्वोंके अमेदवाद भी उसीमेंसे फलित हुए । जब कि द्वैत और भेदको स्पर्श करने वाली दृष्टिने अनेक विषयोंमें भेदमूलक ही नाना वाद स्थापित किये । उसने कार्य-कारणके भेदमूलक मात्र असत्कार्यवादको जन्म दिया तथा धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, आधार-आधेय आदि अनेक द्वंद्वोंके भेदोंको भी मान लिया । इस तरह हम भारतीय तत्त्वचिंतनमें देखते हैं कि मौलिक सामान्य और विशेष दृष्टि तथा उनकी अवान्तर सामान्य और विशेष दृष्टियोंमेंसे परस्पर विरुद्ध ऐसे अनेक मतों—दर्शनोंका जन्म हुआ, जो अपने विरोधिवादकी आधारभूत भूमिकाकी सत्यताकी कुछ भी परवा न करनेके कारण एक दूसरेके प्रहारमें ही चरितार्थता मानने लगे ।

सद्वाद अद्वैतगामी हो या द्वैतगामी जैसा कि सांख्यादिका, पर वह कार्य-कारणके अमेद मूलक सत्कार्यवादको बिना माने अपना मूल लक्ष्य सिद्ध ही नहीं कर सकता; जब कि असद्वाद क्षणिकगामी हो जैसे बौद्धोंका, स्थिरगामी

हो या नित्यगामी हो जैसे वैशेषिक आदिका—पर वह अस्तकार्यवादका स्थापन बिना किये अपना लक्ष्य स्थिर कर ही नहीं सकता । अतएव सत्कार्यवाद और अस्तकार्यवादकी पारस्परिक टकराई हुई । अद्वैतगामी और द्वैतगामी सद्वादमेंसे जन्मी हुई कूटस्थता जो कालिक नित्यता रूप है और विभुता जो दैशिक व्यापकरूप है उनकी—देश और कालकृत निरंश अंशवाद अर्थात् निरंश क्षणवादके साथ टकराई हुई; जो कि वस्तुतः सदृशनेके विरोधी दर्शनमें से फलित होता है । एक तरफसे सारे विश्वको अखण्ड और एक तत्त्वरूप मानने वाले और दूसरी तरफसे उसे निरंश अंशपुंज मानने वाले अपने-अपने लक्ष्यकी सिद्धि तभी कर सकते थे जब वे अपने अभीष्ट तत्त्वको अनिर्वचनीय अर्थात् अनमित्यप्य—शब्दागोचर मानें । क्यों कि शब्दके द्वारा निर्वचन मानने पर न तो अखण्ड सत् तत्त्वकी सिद्धि हो सकती है और न निरंश भेदतत्त्वकी । निर्वचन करना ही मानों अखण्डता या निरंशताका लोप कर देना है । इस तरह अखण्ड और निरंशवादमेंसे अनिर्वचनीयत्ववाद आप ही आप फलित हुआ । पर उस वादके सामने लक्षणवादी वैशेषिक आदि तार्किक हुए, जो ऐसा मानते हैं कि वस्तुमात्रका निर्वचन करना या लक्षण बनाना शक्य ही नहीं बल्कि वास्तविक भी हो सकता है । इसमेंसे निर्वचनीयत्ववादका जन्म हुआ और वे—अनिर्वचनीय तथा निर्वचनीयवाद आपसमें टकराने लगे ।

इसी प्रकार कोई मानते थे कि प्रमाण चाहे जो हो पर हेतु अर्थात् तर्कके सिवाय किसीमें अन्तिम निश्चय करना भयास्पद है । जब दूसरे कोई मानते थे कि हेतुवाद स्वतंत्र बल नहीं रखता । ऐसा बल आगममें ही होने से नहीं मूर्धन्य प्रमाण है । इसीसे वे दोनों वाद परस्पर टकराते थे । दैवज्ञ कहता था कि सब कुछ दैवाधीन है; पौरुष स्वतन्त्ररूपसे कुछ कर नहीं सकता । पौरुषवादी ठीक इससे उल्टा कहता था कि पौरुष ही स्वतन्त्रभाव से कार्यकर है । अतएव वे दोनों वाद एक दूसरेको असत्य ही मानते रहे । अर्थनय—पदार्थवादी शब्दकी और शब्दनय—शाब्दिक अर्थकी परवा न करके परस्पर खण्डन करनेमें प्रवृत्त थे । कोई अभावको भावसे पृथक् ही मानता, तो दूसरा कोई उसे भाव स्वरूप ही मानता था और वे दोनों भावसे अभावको पृथक् मानने न माननेके बारेमें परस्पर प्रतिपक्षभाव धारण करते रहे । कोई प्रमातासे प्रमाण और प्रमितिको अत्यन्त भिन्न मानते, तो दूसरे कोई

उससे उन्हें अभिन्न मानते थे । कोई वर्णाश्रम विहित कर्म मात्र पर भार दे कर उसीसे इष्ट प्राप्ति बतलाते, तो कोई ज्ञानमात्रसे आनन्दाप्ति प्रतिपादन करते; जब तीसरे कोई भक्तिको ही परम पदका साधन मानते रहे और वे सभी एक दूसरेका आवेशपूर्वक खण्डन करते रहे । इस तरह तत्त्वज्ञानके व आचारके छोटे-बड़े अनेक मुद्दों पर परस्पर विलकुल विरोधी ऐसे अनेक एकान्त मत प्रचलित हुए ।

उन एकान्तोंकी पारस्परिक वाद-लीला देख कर अनेकान्तदृष्टिके उत्तराधिकारी आचार्योंको विचार आया कि असलमें ये सब वाद, जो कि अपनी अपनी सत्यता का दावा करते हैं, आपसमें इतने लड़ते हैं क्यों ? क्या उन सबमें कोई तथ्यांश ही नहीं है, या सबमें तथ्यांश है, या किसी किसीमें तथ्यांश है, या सभी पूर्ण सत्य है ! इस प्रश्नके अन्तर्मुख जबाबमेंसे उन्हें एक चाबी मिल गई जिसके द्वारा उन्हें सब विरोधोंका समाधान हो गया और पूरे सत्यका दर्शन हुआ । वही चाबी अनेकान्तवादकी भूमिका रूप अनेकान्तदृष्टि है । इस दृष्टिके द्वारा उन्होंने देखा कि प्रत्येक सयुक्तिक वाद अमुक अमुक दृष्टिसे अमुक अमुक सीमा तक सत्य है । फिर भी जब कोई एक वाद दूसरे वादकी आधारभूत विचार-सरणी और उस वादकी सीमाका विचार नहीं करता और अपनी आधारभूत दृष्टि तथा अपने विषयकी सीमामें ही सब कुछ मान लेता है, तब उसे किसी भी तरह दूसरे वादकी सत्यता मादूम ही नहीं हो पाती । यही हालत दूसरे विरोधी वादकी भी होती है । ऐसी दशामें न्याय इसीमें है कि प्रत्येक वादको उसीकी विचार-सरणीसे उसीकी विषय-सीमा तक ही जाँचा जाय और इस जाँचमें वह ठीक निकले तो उसे सत्यका एक भाग मान कर ऐसे सब सत्यांशरूप मणियोंको एक पूर्ण सत्यरूप विचार-सूत्रमें पिरो कर अविरोधी माला बनाई जाय । इस विचारने जैनाचार्योंको अनेकान्तदृष्टिके आधार पर तत्कालीन सब वादोंका समन्वय करनेकी ओर प्रेरित किया । उन्होंने सोचा कि जब शुद्ध और निःस्वार्थ चित्त वालोंमेंसे किन्हींको एकत्वपर्यवसायी साम्यप्रतीति होती है और किन्हींको निरंश अंश पर्यवसायी भेदप्रतीति होती है; तब यह कैसे कहा जाय कि अमुक एक ही प्रतीति प्रमाण है और दूसरी नहीं । किसी एक को अप्रमाण मानने पर तुल्य युक्तिसे दोनों प्रतीतियाँ अप्रमाण ही सिद्ध होंगी । इसके सिवाय किसी एक प्रतीतिको

प्रमाण और दूसरीको अप्रमाण मानने वालोंको भी अन्तमें अप्रमाण मानी हुई प्रतीतिके विषयरूप सामान्य या विशेषके सार्वजनिक व्यवहारोंकी उपपत्ति तो किसी न किसी तरह करनी ही पड़ती है। यह नहीं कि अपनी इष्ट प्रतीतिको प्रमाण कहने मात्र से सब शास्त्रीय और लौकिक व्यवहारोंकी उपपत्ति भी हो जाय। यह भी नहीं कि ऐसे व्यवहारोंको उपपन्न बिना किये ही छोड़ दिया जाय। ब्रह्मैकत्ववादी भेदोंको व उनकी प्रतीतिको अविद्यामूलक ही कह कर उनकी उपपत्ति करेगा; जब कि क्षणिकत्ववादी साम्य या एकत्वको व उसकी प्रतीतिको ही अविद्यामूलक कह कर ऐसे व्यवहारोंकी उपपत्ति करेगा।

ऐसा सोचने पर अनेकान्तके प्रकाशमें अनेकान्तवादियोंको मात्तूम हुआ कि प्रतीति अभेदगामिनी हो या भेदगामिनी, हैं तो सभी वास्तविक। प्रत्येक प्रतीतिकी वास्तविकता उसके अपने विषय तक तो है, पर जब वह विरुद्ध दिखाई देनेवाली दूसरी प्रतीतिके विषयकी अयथार्थता दिखाने लगती है तब वह खुद भी अवास्तविक बन जाती है। अभेद और भेदकी प्रतीतियाँ विरुद्ध इसीसे जान पड़ती हैं कि प्रत्येकको पूर्ण प्रमाण मान लिया जाता है। सामान्य और विशेषकी प्रत्येक प्रतीति स्वविषयमें यथार्थ होने पर भी पूर्ण प्रमाण नहीं। वह प्रमाणका अंश अवश्य है। वस्तुका पूर्ण स्वरूप तो ऐसा ही होना चाहिए, जिससे कि वे विरुद्ध दिखाई देनेवाली प्रतीतियाँ भी अपने स्थानमें रह कर उसे अविरोधीभावसे प्रकाशित कर सकें और वे सब मिल कर वस्तुका पूर्ण स्वरूप प्रकाशित करनेके कारण प्रमाण मानी जा सकें। इस समन्वय या व्यवस्था-गर्भित विचारके बल पर उन्होंने समझाया कि सद्-अद्वैत और सद्-द्वैतके बीच कोई विरोध नहीं, क्यों कि वस्तुका पूर्ण स्वरूप ही अभेद और भेद या सामान्य और विशेषात्मक ही है। जैसे हम स्थान, समय, रंग, रस, परिमाण आदिका विचार किये बिना ही विशाल जलराशि मात्रका विचार करते हैं तब हमें एक ही एक समुद्र प्रतीत होता है। पर उसी जलराशिके विचारमें जब स्थान, समय आदिका विचार दाखिल होता है तब हमें एक अखण्ड समुद्रके स्थानमें अनेक छोटे बड़े समुद्र नजर आते हैं; यहाँ तक कि अन्तमें हमारे ध्यानमें जलकण तक नहीं रहता उसमें केवल कोई अविभाज्य रूप या रस आदिका अंश ही रह जाता है और अन्तमें वह भी शून्यवत् भासित होता है। जल-राशिमें अखण्ड एक समुद्रकी बुद्धि भी वास्तविक है और अन्तिम अंशकी

बुद्धि भी । एक इसलिए वास्तविक है कि वह भेदोंको अलग अलग रूपसे स्पर्श न करके सबको एक साथ सामान्यरूपसे देखती है । स्थान, समय आदि कृत भेद जो एक दूसरेसे व्यावृत्त हैं उनको अलग अलग रूपसे विषय करनेवाली बुद्धि भी वास्तविक है । क्यों कि वे भेद वैसे ही हैं । जलराशि एक और अनेक उभयरूप होनेके कारण उसमें होने वाली समुद्रबुद्धि और अंशबुद्धि अपने अपने स्थानमें यथार्थ हो कर भी कोई एक बुद्धि पूर्ण स्वरूपको विषय न करनेके कारण पूर्ण प्रमाण नहीं है । फिर भी दोनों मिल कर पूर्ण प्रमाण है । वैसे ही जब हम सारे विश्वको एक मात्र सत्-रूपसे देखें अथवा यों कहिए कि जब हम समस्त भेदोंके अन्तर्गत एक मात्र अनुगमक सत्ता स्वरूपका विचार करें तब हम कहते हैं कि एकमात्र सत् ही है; क्यों कि उस सर्वग्राही सत्ताके विचारके समय कोई ऐसे भेद भासित नहीं होते जो परस्परमें व्यावृत्त हों । उस समय तो सारे भेद समष्टिरूपमें या एक मात्र सत्तारूपमें ही भासित होते हैं । और तभी सद्-अद्वैत कहलाता है । एकमात्र सामान्यकी प्रतीतिके समय सत् शब्दका अर्थ भी उतना विशाल हो जाता है कि जिसमें कोई शेष नहीं बचता । पर हम जब उसी विश्वको गुणधर्म कृत भेदोंमें जो कि परस्पर व्यावृत्त हैं, विभाजित करते हैं, तब वह विश्व एक सत् रूपसे मिट कर अनेक सत् रूप प्रतीत होता है । उस समय सत् शब्दका अर्थ भी उतना ही छोटा हो जाता है । हम कभी कहते हैं कि कोई सत् जड़ भी है और कोई चेतन भी । हम और अधिक भेदोंकी ओर झुक कर फिर यह भी कहते हैं कि जडसत् भी अनेक हैं और चेतनसत् भी अनेक हैं । इस तरह जब सर्वग्राही सामान्यको व्यावर्तक भेदोंमें विभाजित करके देखते हैं तब हमें नाना सत् मादृश होते हैं और वही सत्-द्वैत है । इस प्रकार एक ही विश्वमें प्रवृत्त होनेवाली सद्-अद्वैत बुद्धि और सद्-द्वैत बुद्धि दोनों अपने अपने विषयमें यथार्थ हो कर भी पूर्ण प्रमाण तभी कही जायँगी जब वे दोनों सापेक्ष रूपसे मिलें । यही सद्-अद्वैत और सद्-द्वैत वाद जो परस्पर विरुद्ध समझे जाते हैं उनका अनेकान्त दृष्टिके अनुसार समन्वय हुआ ।

इसे वृक्ष और वनके दृष्टान्तसे भी स्पष्ट किया जा सकता है । जब अनेक परस्पर भिन्न वृक्ष व्यक्तियोंको उस उस व्यक्ति रूपसे ग्रहण न करके सामूहिक या सामान्य रूपमें वन रूपसे ग्रहण करते हैं; तब उन सब विशेषोंका

अभाव नहीं हो जाता । पर वे सब विशेष सामान्य रूपसे सामान्यग्रहणमें ही ऐसे लीन हो जाते हैं मानो वे हैं ही नहीं । एक मात्र वन ही वन नज़र आता है यही एक प्रकारका अद्वैत हुआ । फिर कभी हम जब एक-एक वृक्षको विशेष रूपसे समझते हैं तब हमें परस्पर भिन्न व्यक्तियाँ ही व्यक्तियाँ नज़र आती हैं, उस समय विशेष प्रतीतिमें सामान्य इतना अन्तर्लीन हो जाता है कि मानों वह है ही नहीं । अब इन दोनों अनुभवोंका विश्लेषण करके देखा जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि कोई एक ही सत्य है और दूसरा असत्य । अपने अपने विषयमें दोनोंकी सत्यता होते हुए भी किसी एकका पूर्ण सत्य दोनों अनुभवोंका समुचित समन्वय ही है । क्यों कि इसीमें सामान्य और विशेषात्मक वन-वृक्षोंका अबाधित अनुभव समा सकता है । यही स्थिति विश्वके सम्बन्धमें सद्-अद्वैत किंवा सद्-द्वैत दृष्टिकी भी है ।

कालिक, दैशिक और देश-कालातीत सामान्य-विशेषके उपर्युक्त अद्वैत-द्वैतवादमें आगे बढ़ कर एक कालिक सामान्य-विशेषके सूचक नित्यत्ववाद और क्षणिकत्ववाद भी हैं । ये दोनों वाद एक दूसरेके विरुद्ध ही जान पड़ते हैं; पर अनेकान्त दृष्टि कहती है कि वस्तुतः उनमें कोई विरोध नहीं । जब हम किसी तत्त्वको तीनों कालोंमें अखण्डरूपसे अर्थात् अनादि-अनन्तरूपसे देखेंगे तब वह अखण्ड प्रवाह रूपमें आदि अंत रहित होनेके कारण नित्य ही है । पर हम जब उस अखण्ड प्रवाह पतित तत्त्वको छोटे बड़े आपेक्षिक काल भेदोंमें विभाजित कर लेते हैं, तब उस उस काल पर्यंत स्थायी ऐसा परिमित रूप ही नज़र आता है, जो सादि भी है और सान्त भी । अगर विवक्षित काल इतना छोटा हो जिसका दूसरा हिस्सा बुद्धिशक्ति कर न सके तो उस कालसे परिच्छिन्न वह तत्त्वगत प्रावाहिक अंश सबसे छोटा होनेके कारण क्षणिक कहलाता है । नित्य और क्षणिक ये दोनों शब्द ठीक एक दूसरेके विरुद्धार्थक हैं । एक अनादि-अनन्तका और दूसरा सादि-सान्तका भाव दरसाता है । फिर भी हम अनेकान्तदृष्टिके अनुसार समझ सकते हैं कि जो तत्त्व अखण्ड प्रवाहकी अपेक्षासे नित्य कहा जा सकता है वही तत्त्व खण्ड खण्ड क्षणपरिमित परिवर्तनों व पर्यायोंकी अपेक्षासे क्षणिक भी कहा जा सकता है । एक वादकी आधार-दृष्टि है अनादि-अनन्तताकी दृष्टि । जब दूसरेकी आधार है सादि-सान्तताकी दृष्टि । वस्तुका कालिक पूर्ण स्वरूप अनादि-अनन्तता और सादि-सान्तता इन

दो अंशोंसे बनता है । अतएव दोनों दृष्टियाँ अपने अपने विषयमें यथार्थ होने पर भी पूर्ण प्रमाण तभी बनती हैं जब वे समन्वित हों ।

इस समन्वयको दृष्टान्तसे भी इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है । किसी एक वृक्षका जीवन-व्यापार मूलसे ले कर फल तकमें कालक्रमसे होने वाली बीज, मूल, अंकुर, स्कन्ध, शाखा-प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प और फल आदि विविध अवस्थाओंमें हो कर ही प्रवाहित और पूर्ण होता है । जब हम अमुक वस्तुको वृक्षरूपसे समझते हैं तब उपर्युक्त सब अवस्थाओंमें प्रवाहित होने वाला पूर्ण जीवन-व्यापार ही अखण्डरूपसे मनमें आता है; पर जब हम उसी जीवन-व्यापारके परस्पर भिन्न ऐसे क्रमभावी मूल, अंकुर, स्कन्ध आदि एक एक अंशको ग्रहण करते हैं तब वे परिमित काल लक्षित अंश ही हमारे मनमें आते हैं । इस प्रकार हमारा मन कभी तो उस समूचे जीवन-व्यापारको अखण्ड रूपमें स्पर्श करता है और कभी उसे खण्डित रूपमें एक-एक अंशके द्वारा । परीक्षण करके देखते हैं तो साफ जान पड़ता है कि न तो अखण्ड जीवन-व्यापार ही एक-मात्र पूर्ण वस्तु है या काल्पनिक मात्र है और न खण्डित अंश ही पूर्ण वस्तु है या काल्पनिक । भले ही उस अखण्डमें सारे खण्ड और सारे खण्डोंमें वह एक मात्र अखण्ड समा जाता हो फिर भी वस्तुका पूर्ण स्वरूप तो अखण्ड और खण्ड दोनोंमें ही पर्यवसित होनेके कारण दोनों पहलुओंसे गृहीत होता है । जैसे वे दोनों पहलू अपनी-अपनी कक्षामें यथार्थ हो कर भी पूर्ण तभी बनते हैं जब समन्वित किये जायँ । वैसे ही अनादि-अनन्त कालप्रवाह रूप वृक्षका ग्रहण नित्यत्वका व्यञ्जक है और उसके घटक अंशोंका ग्रहण अनित्यत्व या क्षणिकत्वका द्योतक है । आधारभूत नित्य-प्रवाहके सिवाय न तो अनित्य घटक सम्भव हैं और न अनित्य घटकोंके सिवाय वैसा नित्य प्रवाह ही । अतएव एकमात्र नित्यत्वको या एकमात्र अनित्यत्वको वास्तविक कह कर दूसरे विरोधी अंशको अवास्तविक कहना ही नित्य अनित्यवादोंकी टक्करका बीज है जिसे अनेकान्तदृष्टि हटाती है ।

अनेकान्तदृष्टि अनिर्वचनीयत्व और निर्वचनीयत्व वादकी पारस्परिक टक्करको भी मिटाती है । वह कहती है कि वस्तुका वही रूप प्रतिपाद्य हो सकता है जो संकेतका विषय बन सके । सूक्ष्मतम बुद्धिके द्वारा किया जाने वाला संकेत भी स्थूल अंशको ही विषय कर सकता है । वस्तुके ऐसे अपरिमित भाव हैं जिन्हें

संकेतके द्वारा शब्दसे प्रतिपादन करना संभव नहीं । इस अर्थमें अखण्ड सत् या निरंश क्षण अनिर्वचनीय ही हैं जब कि मध्यवर्ती स्थूल भाव निर्वचनीय भी हो सकते हैं । अतएव समग्र विश्वके या उसके किसी एक तत्त्वके बारेमें जो अनिर्वचनीयत्व और निर्वचनीयत्वके विरोधी प्रवाद हैं वे वस्तुतः अपनी-अपनी कक्षामें यथार्थ होने पर भी प्रमाण तो समूचे रूपमें ही हैं ।

एक ही वस्तुकी भावरूपता और अभावरूपता भी विरुद्ध नहीं । मात्र विधि-मुखसे या मात्र निषेधमुख से ही वस्तु प्रतीत नहीं होती । दूध, दूध रूपसे भी प्रतीत होता है और अर्धाध या दधिभिन्न रूपसे भी । ऐसी दशामें वह भाव-अभाव उभय रूप सिद्ध हो जाता है और एक ही वस्तुमें भावत्व या अभावत्वका विरोध प्रतीतिके स्वरूप भेदसे हट जाता है । इसी तरह धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, कार्य-कारण, आधार-आधेय आदि द्वन्द्वोंके अभेद और भेदके विरोधका परिहार भी अनेकान्त दृष्टि कर देती है ।

जहाँ आत्मत्व और उसके मूलके प्रामाण्यमें संदेह हो वहाँ हेतुवादके द्वारा परीक्षा पूर्वक ही निर्णय करना क्षेमकर है; पर जहाँ आत्मत्वमें कोई संदेह नहीं वहाँ हेतुवादका प्रयोग अनवस्थाकारक होनेसे त्याज्य है । ऐसे स्थानमें आगम-वाद ही मार्गदर्शक हो सकता है । इस तरह विषयभेदसे या एक ही विषयमें प्रतिपाद्य भेदसे हेतुवाद और आगमवाद दोनोंको अवकाश है । उनमें कोई विरोध नहीं । यही स्थिति दैव और पौरुषवादकी भी है । उनमें कोई विरोध नहीं । जहाँ बुद्धि-पूर्वक पौरुष नहीं, वहाँका समस्याओंका हल दैववाद कर सकता है; पर पौरुषके बुद्धिपूर्वक प्रयोगस्थलमें पौरुषवाद ही स्थान पाता है । इस तरह जुदे जुदे पहलूकी अपेक्षा एक ही जीवनमें दैव और पौरुष दोनों वाद समन्वित किये जा सकते हैं ।

कारणमें कार्यको केवल सत् या केवल असत् माननेवाले वादोंके विरोधका भी परिहार अनेकान्त दृष्टि सरलतासे कर देती है । वह कहती है कि कार्य उपादानमें सत् भी है और असत् भी, कटक बननेके पहले भी सुवर्णमें बननेकी शक्ति है इसलिए उत्पत्तिके पहले भी शक्ति रूपसे या कारणभेददृष्टिसे कार्य सत् कहा जा सकता है । शक्ति रूपसे सत् होने पर भी उत्पादक सामग्रीके अभावमें वह कार्य आविर्भूत या उत्पन्न न होनेके कारण उपलब्ध नहीं होता, इसलिए वह असत् भी है । तिरोभाव दशामें जब कि कटक उपलब्ध नहीं होता

तब भी कुण्डलाकारधारी सुवर्ण कटक रूप बननेकी योग्यता रखता है इसलिए उस दशामें असत् भी कटक योग्यताकी दृष्टिसे सुवर्णमें सत् कहा जा सकता है ।

बौद्धोंका केवल परमाणु-पुञ्ज-वाद और नैयायिकोंका अपूर्वावयवी वाद ये दोनों आपसमें टकराते हैं । पर अनेकान्तदृष्टिने स्कन्धका — जो कि न केवल परमाणु-पुञ्ज है और न अनुभववाधित अवयवोंसे भिन्न अपूर्व अवयवी रूप है— स्वीकार करके विरोधका समुचित रूपसे परिहार व दोनों वादोंका निर्दोष समन्वय कर दिया है । इसी तरह अनेकान्तदृष्टिने, अनेक विषयोंमें प्रवर्तमान विरोधी वादोंका समन्वय, मध्यस्थ भावसे किया है । ऐसा करते समय अनेकान्त-वादके आसपास नयवाद और भंगवाद आप ही आप फलित हो जाते हैं; क्यों कि जुदे जुदे पहलू या दृष्टिबिन्दुका पृथक्करण, उनकी विषयमर्यादाका विभाग और उनका एक विषयमें यथोचित विन्यास करने-ही-से अनेकान्त सिद्ध होता है ।

मकान किसी एक कोनेमें पूरा नहीं होता । उसके अनेक कोने भी किसी एक ही दिशामें नहीं होते । पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, आदि परस्पर विरुद्ध दिशावाले एक-एक कोने पर खड़े रह कर किया जाने वाला उस मकानका अवलोकन पूर्ण तो नहीं होता, पर वह अयथार्थ भी नहीं । जुदे जुदे संभवित सभी कोनों पर खड़े रह कर किये जाने वाले सभी संभवित अवलोकनोंका सार समुच्चय ही उस मकानका पूरा अवलोकन है । प्रत्येक कोणसंभवी प्रत्येक अवलोकन उस पूर्ण अवलोकनके अनिवार्य अंग हैं । वैसे ही किसी एक वस्तु या समग्र विश्वका तात्त्विक चिंतन-दर्शन भी अनेक अपेक्षाओंसे निष्पन्न होता है । मनकी सहज रचना, उस पर पड़ने वाले आगन्तुक संस्कार और चिन्त्य वस्तुका स्वरूप इत्यादिके सम्मेलनसे ही अपेक्षा बनती है । ऐसी अपेक्षाएँ अनेक होती हैं; जिनका आश्रय ले कर वस्तुका विचार किया जाता है । विचारको सहारा देनेके कारण या विचार स्रोतके उद्गमका आधार बननेके कारण वे ही अपेक्षाएँ दृष्टिकोण या दृष्टिबिन्दु भी कही जाती हैं । संभवित सभी अपेक्षाओंसे—चाहे वे विरुद्ध ही क्यों न दिखाई देती हों—किये जाने वाले चिंतन व दर्शनोंका सार समुच्चय ही उस विषयका पूर्ण-अनेकान्त दर्शन है । प्रत्येक अपेक्षासंभवी दर्शन, उस पूर्ण दर्शनका एक एक अङ्ग है, जो परस्पर विरुद्ध हो कर भी पूर्ण दर्शनमें समन्वय पानेके कारण वस्तुतः अविरुद्ध ही है ।

जब किसीकी मनोवृत्ति विश्वके अन्तर्गत सभी भेदोंको—चाहे वे गुण धर्म या स्वरूप कृत हों या व्यक्तित्व कृत हों—भुला कर अर्थात् उनकी ओर झुके बिना ही एक मात्र अखण्डताका ही विचार करती है, तब उसे अखण्ड या एक ही विश्वका दर्शन होता है। अभेदकी उस भूमिका परसे निष्पन्न होने वाला 'सत्' शब्दके एक मात्र अखण्ड अर्थका दर्शन ही संप्रहर्ष है। गुणधर्म कृत या व्यक्तित्व कृत भेदोंकी ओर झुकने वाली मनोवृत्तिसे किया जाने वाला उसी विश्वका दर्शन व्यवहारनय कहलाता है; क्योंकि उसमें लोकसिद्ध व्यवहारोंकी भूमिका रूप भेदोंका खास स्थान है। इस दर्शनमें 'सत्' शब्दकी अर्थ मर्यादा अखण्डित न रह कर अनेक खण्डोंमें विभाजित हो जाती है। वही भेदगामिनी मनोवृत्ति या अपेक्षा सिर्फ कालकृत भेदोंकी ओर झुक कर सिर्फ वर्तमानको ही कार्यक्षम होनेके कारण जब सत् रूपसे देखती है और अतीत अनागतको 'सत्' शब्दकी अर्थ मर्यादासे हटा देती है तब उसके द्वारा फलित होने वाला विश्वका दर्शन ऋजुमूत्र नय है। क्योंकि वह अतीत-अनागतके चक्रव्यूहको छोड़ कर सिर्फ वर्तमानकी सीधी रेखा पर चलता है।

उपर्युक्त तीनों मनोवृत्तियाँ ऐसी हैं जो शब्दका या शब्दके गुण-धर्मोंका आश्रय बिना लिये ही किसी भी वस्तुका चिंतन करती हैं। अतएव वे तीनों प्रकारके चिंतन अर्थनय हैं। पर ऐसी भी मनोवृत्ति होती है जो शब्दके गुण-धर्मोंका आश्रय ले कर ही अर्थका विचार करती है। अतएव ऐसी मनोवृत्तिसे फलित अर्थचिंतन शब्दनय कहे जाते हैं। शाब्दिक लोग ही मुख्यता शब्दनयके अधिकारी हैं; क्योंकि उन्हींके विविध दृष्टि बिन्दुओंसे शब्दनयमें विविधता आई है।

जो शाब्दिक सभी शब्दोंको अखण्ड अर्थात् अव्युत्पन्न मानते हैं वे व्युत्पत्ति भेदसे अर्थ भेद न मानने पर भी लिंग, पुरुष, काल आदि अन्य प्रकारके शब्द धर्मोंके भेदके आधार पर अर्थका वैविध्य बतलाते हैं। उनका वह अर्थ-भेदका दर्शन शब्दनय या साम्प्रतनय है। प्रत्येक शब्दको व्युत्पत्ति सिद्ध ही मानने वाली मनोवृत्तिसे विचार करने वाले शाब्दिक पर्याय अर्थात् एकार्थक समझे जाने वाले शब्दोंके अर्थमें भी व्युत्पत्ति भेदसे भेद बतलाते हैं। उनका वह शक्र—इन्द्र आदि जैसे पर्याय शब्दोंके अर्थभेदका दर्शन समभिरूढनय कहलाता है। व्युत्पत्तिके भेदसे ही नहीं, बल्कि एक ही व्युत्पत्तिसे फलित होने वाले

अर्थकी मौजूदगी और गैर-मौजूदगीके भेदके कारणसे भी जो दर्शन अर्थभेद मानता है वह एवंभूतनय कहलाता है । इन तार्किक छः नयोंके अलावा एक नैगम नामका नय भी है । जिसमें निगम अर्थात् देश रूढ़िके अनुसार अभेदगामी और भेदगामी सब प्रकारके विचारोंका समावेश माना गया है । प्रधानतया ये ही सात नय हैं । पर किसी एक अंशको अर्थात् दृष्टिकोणको अवलंबित करके प्रवृत्त होने वाले सब प्रकारके विचार उस उस अपेक्षाके सूचक नय ही हैं ।

शास्त्रमें द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे दो नय भी प्रसिद्ध हैं; पर वे नय उपर्युक्त सात नयोंसे अलग नहीं हैं किन्तु उन्हींका संक्षिप्त वर्गीकरण या भूमिकामात्र हैं । द्रव्य अर्थात् सामान्य, अन्वय, अभेद या एकत्वको विषय करने वाला विचारमार्ग द्रव्यार्थिकनय है । नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीनों द्रव्यार्थिक ही हैं । इनमेंसे संग्रह तो शुद्ध अभेदका विचारक होनेसे शुद्ध या मूल ही द्रव्यार्थिक है जब कि व्यवहार और नैगमकी प्रवृत्ति भेदगामी हो कर भी किसी न किसी प्रकारके अभेदको भी अवलंबित करके ही चलती है । इसलिये वे भी द्रव्यार्थिक ही माने गए हैं । अलबत्ता वे संग्रहकी तरह शुद्ध न हो कर अशुद्ध मिश्रित ही द्रव्यार्थिक हैं ।

पर्याय अर्थात् विशेष, व्यावृत्ति या भेदको ही लक्ष्य करके प्रवृत्त होने वाला विचारपथ पर्यायार्थिक नय है । ऋजुसूत्र आदि बाकीके चारों नय पर्यायार्थिक ही माने गये हैं । अभेदको छोड़ कर मात्र भेदका विचार ऋजुसूत्रसे शुरू होता है इसलिये उसीको शास्त्रमें पर्यायार्थिक नयकी प्रकृति या मूल आधार कहा है । पिछले शब्दादि तीन नय उसी मूलभूत पर्यायार्थिकके एक प्रकारसे विस्तारमात्र हैं ।

मात्र ज्ञानको उपयोगी मान कर उसके आश्रयसे प्रवृत्त विचारधारा ज्ञान-नय है, तो मात्र क्रियाके आश्रयसे प्रवृत्त विचारधारा क्रियानय है । नयरूप आधार-स्तम्भोंके अपरिमित होनेके कारण विश्वका पूर्णदर्शन — अनेकान्त भी निस्सीम है ।

भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं, दृष्टिकोणों या मनोवृत्तियोंसे जो एक ही तत्त्वके नाना दर्शन फलित होते हैं उन्हींके आधार पर भङ्गवादकी सृष्टि खड़ी होती है । जिन दो दर्शनोंके विषय ठीक एक दूसरेके विलकुल विरोधी पड़ते हों ऐसे दर्शनोंका समन्वय बतलानेकी दृष्टिसे उनके विषयभूत भाव-अभावात्मक दोनों

अंशोंको ले कर उन पर जो संभवित वाक्य-भङ्ग बनाये जाते हैं वही सप्तभङ्गी है । सप्तभङ्गीका आधार नयवाद है । और उसका ध्येय तो समन्वय अर्थात् अनेकान्त कोटिका व्यापक दर्शन कराना है । जैसे किसी भी प्रमाणसे जाने हुए पदार्थका बोध दूसरेको करानेके लिए परार्थ अनुमान अर्थात् अनुमान वाक्यकी रचना की जाती है; वैसे ही विरुद्ध अंशोंका समन्वय श्रोताको समझानेकी दृष्टिसे भङ्ग-वाक्यकी रचना भी की जाती है । इस तरह नयवाद और भङ्गवाद अनेकान्तदृष्टिके क्षेत्रमें आप ही आप फलित हो जाते हैं ।

यह ठीक है कि वैदिक परंपराके न्याय, वेदान्त आदि दर्शनोंमें तथा बौद्ध दर्शनमें किसी एक वस्तुका विविध दृष्टिओंसे निरूपणकी पद्धति तथा अनेक पक्षोंके समन्वयकी दृष्टि भी देखी जाती है फिर भी प्रत्येक वस्तु और उसके प्रत्येक पहलू पर संभवित समग्र दृष्टिविन्दुओंसे विचार करनेका आत्यन्तिक आग्रह तथा उन समग्र दृष्टिविन्दुओंके एक मात्र समन्वयमें ही विचारकी परिपूर्णता माननेका दृढ़ आग्रह जैन परंपराके सिवाय अन्यत्र कहीं देखा नहीं जाता । इसी आग्रहमेंसे जैन तार्किकोंने अनेकान्त, नय और सप्तभङ्गी वादका बिल्कुल स्वतंत्र और व्यवस्थित शास्त्र निर्माण किया जो प्रमाण शास्त्रका एक भाग ही बन गया और जिसकी जोड़का ऐसा छोटा भी ग्रन्थ इतर परंपराओंमें नहीं बना । विभज्यवाद और मध्यम मार्ग होते हुए भी बौद्ध परंपरा किसी भी वस्तुमें वास्तविक स्थायी अंश देख न सकी, उसे मात्र क्षणभंग ही नजर आया । अनेकान्त शब्दसे ही अनेकान्त दृष्टिका आश्रय करने पर भी नैयायिक परमाणु, आत्मा आदिको सर्वथा अपरिणामी ही मानने मनवानेकी धुनसे बच न सके । व्यावहारिक-पारमार्थिक आदि अनेक दृष्टिओंका अवलम्बन करते हुए भी वेदान्ती अन्य सब दृष्टिओंको ब्रह्मदृष्टिसे कम दर्जेकी या बिल्कुल ही असत्य मानने मनवानेसे बच न सके । इसका एक मात्र कारण यही जान पड़ता है कि उन दर्शनोंमें व्यापकरूपसे अनेकान्त भावनाका स्थान न रहा जैसा कि जैनदर्शनमें रहा । इसी कारणसे जैनदर्शन सब दृष्टिओंका समन्वय भी करता है और सभी दृष्टिओंको अपने अपने विषयमें तुल्य वल व यथार्थ मानता है । भेद-अभेद, सामान्य-विशेष, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि तत्त्वज्ञानके प्राचीन मुद्दों

१ उदाहरणार्थ देखो मांख्यप्रवचनभाष्य पृ० २ । सिद्धान्तविन्दु पृ० ११९ । वेदान्तसार पृ० २५ । तर्कसंग्रहटीपिका पृ० १७५ । महावक्त्र ६. ३१ । २ न्यायभाष्य २. १. १८

पर ही सीमित रहनेके कारण वह अनेकान्त दृष्टि और तन्मूलक अनेकान्त व्यवस्थापक शास्त्र, पुनरुक्त चर्वितचर्वण या नवीनता शून्य जान पड़नेका आपाततः संभव है, फिर भी उस दृष्टि और उस शास्त्र निर्माणके पीछे जो अखण्ड और सजीव सर्वांश सत्यको अपनानेकी भावना जैन परंपरामें रही और जो प्रमाण शास्त्रमें अवतीर्ण हुई, उसका जीवनके समग्र क्षेत्रोंमें, सफल उपयोग होनेकी पूर्ण योग्यता होनेके कारण ही उसे प्रमाणशास्त्रको जैन-चार्योंकी देन कहना अनुपयुक्त नहीं ।

तत्त्वचिन्तनमें अनेकान्त दृष्टिका व्यापक उपयोग करके जैन तार्किकोंने अपने आगमिक प्रमेयों तथा सर्वसाधारण न्यायके प्रमेयोंमेंसे जो जो मन्तव्य तार्किक दृष्टिसे स्थिर किये और प्रमाण शास्त्रमें जिनका निरूपण किया, उनमेंसे थोड़े मन्तव्योंका भी निर्देश, उदाहरणके तौर पर यहां कर देना जरूरी है, जो एक मात्र जैन तार्किकोंकी विशेषता दरसाने वाले हैं—प्रमाणविभाग, प्रत्यक्षका तात्त्विकत्व, इन्द्रियज्ञानका व्यापारक्रम, परोक्षके प्रकार, हेतुका रूप, अवयवोंकी प्रायोगिक व्यवस्था, कथाका स्वरूप, निग्रहस्थान या जय-पराजय व्यवस्था, प्रमेय और प्रमाताका स्वरूप, सर्वज्ञत्वसमर्थन आदि ।

१. प्रमाणविभाग—जैन परंपराका प्रमाण विषयक मुख्य विभाग दो दृष्टिओंसे अन्य परंपराओंकी अपेक्षा विशेष महत्त्व रखता है । एक तो यह कि ऐसे सर्वानुभवसिद्ध वैलक्षण्य पर मुख्य विभाग अवलंबित है जिससे एक विभागमें आने वाले प्रमाण दूसरे विभागसे असंकीर्ण रूपमें अलग हो जाते हैं जैसा कि इतर परंपराओंके प्रमाण विभागमें नहीं हो पाता । दूसरी दृष्टि यह है कि चाहे किसी दर्शनकी न्यून या अधिक प्रमाण संख्या क्यों न हो पर वह सब बिना खींचतानके इस विभागमें समा जाती है । कोई भी ज्ञान या तो सीधे तौरसे साक्षात्कारात्मक हो सकता है या असाक्षात्कारात्मक, यही प्राकृत-पंडित जनसाधारण अनुभव है । इसी अनुभवको सामने रख कर जैन चिन्तकोंने प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो मुख्य विभाग किये जो एक दूसरेसे विलकुल विलक्षण हैं । दूसरी इसकी खूबी यह है कि इसमें न तो चार्वाककी तरह परोक्षानुभवका अपलाप है, न बौद्धदर्शन संमत प्रत्यक्ष-अनुमान द्वैविध्यकी तरह आगम आदि इतर प्रमाण व्यापारोंका अपलाप है या खींचा-

तानीसे अनुमानमें समावेश करना पड़ता है। और, न त्रिविध प्रमाणवादी सांख्य तथा प्राचीन वैशेषिक, चतुर्विध प्रमाणवादी नैयायिक, पंचविध प्रमाणवादी प्रभाकर, षड्विध प्रमाणवादी मीमांसक, सप्तविध या अष्टविध प्रमाणवादी पौराणिक आदिकी तरह अपनी अपनी अभिमत प्रमाण संख्याको स्थिर बनाये रखनेके लिए इतर संख्याका अपलाप या उसे तोड़ मरोड़ करके अपनेमें समावेश करना पड़ता है। चाहे जितने प्रमाण मान लो पर वे सीधे तौर पर या तो प्रत्यक्ष होंगे या परोक्ष। इसी सादी किन्तु उपयोगी समझ पर जैनोंका मुख्य प्रमाण विभाग कायम हुआ जान पड़ता है।

२. प्रत्यक्षका तात्त्विकत्व—प्रत्येक चिन्तक इन्द्रियजन्य ज्ञानको प्रत्यक्ष मानता है। जैन दृष्टिका कहना है कि दूसरे किसी भी ज्ञानसे प्रत्यक्षका ही स्थान ऊँचा व प्राथमिक है। इन्द्रियाँ जो परिमित प्रदेशमें अतिस्थूल वस्तुओंसे आगे जा नहीं सकतीं, उनमें पैदा होने वाले ज्ञानको परोक्षसे ऊँचा स्थान देना इन्द्रियोंका अति मूल्य आँकनेके बराबर है। इन्द्रियाँ कितनी ही पटु क्यों न हों पर वे अन्ततः हैं तो परतन्त्र ही। अतएव परतन्त्रजनित ज्ञानको सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्ष माननेकी अपेक्षा स्वतन्त्रजनित ज्ञानको ही प्रत्यक्ष मानना न्यायसंगत है। इसी विचारसे जैन चिन्तकोंने उसी ज्ञानको वस्तुतः प्रत्यक्ष माना है जो स्वतन्त्र आत्माके आश्रित है। यह जैन विचार तत्त्वचिन्तनमें मौलिक है। ऐसा होते हुए भी लोकसिद्ध प्रत्यक्षको सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष कह कर उन्होंने अनेकान्त दृष्टिका उपयोग कर लिया है।

३. इन्द्रियज्ञानका व्यापारक्रम—नव दर्शनोंमें एक या दूसरे रूपमें थोड़े या बहुत परिमाणमें ज्ञानव्यापारका क्रम देखा जाता है। इसमें ऐन्द्रियक ज्ञानके व्यापारक्रमका भी स्थान है। परंतु जैन परंपरामें सन्निपातरूप प्राथमिक इन्द्रिय व्यापारसे ले कर अंतिम इन्द्रिय व्यापार तकका, जिस विश्लेषण और जिस स्पष्टताके साथ अनुभव सिद्ध, अतिविस्तृत वर्णन है वैसा दूसरे दर्शनोंमें नहीं देखा जाता। यह जैन वर्णन है तो अतिपुराना और विज्ञानयुगके पहिलेका, फिर भी आधुनिक मानस शास्त्र तथा इन्द्रियव्यापार शास्त्रके वैज्ञानिक अभ्यासियोंके वास्ते भी बहुत महत्त्वका है।

४. परोक्षके प्रकार—केवल स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और आगमके ही प्रामाण्य-अप्रामाण्य माननेमें मतभेदोंका जंगल न था; बल्कि अनुमान तकके प्रामाण्य-अप्रामाण्यमें विप्रतिपत्ति रही । जैन तार्किकोंने देखा कि प्रत्येक पक्षकार अपने पक्षको आत्यन्तिक खींचनेमें दूसरे पक्षकारका सत्य देख नहीं पाता । इस विचारमेंसे उन्होंने उन सब प्रकारके ज्ञानोंको प्रमाणकोटिमें दाखिल किया जिनके बल पर वास्तविक व्यवहार चलता है और जिनमेंसे किसी एकका अपलाप करने पर तुल्य युक्तिसे दूसरेका अपलाप करना अनिवार्य हो जाता है । ऐसे सभी प्रमाण प्रकारोंको उन्होंने परोक्षमें डाल कर अपनी समन्वय-दृष्टिका परिचय कराया^१ ।

५. हेतुका रूप—हेतुके स्वरूपके विषयमें मतभेदोंके अनेक अखाड़े कायम हो गये थे । इस युगमें जैन तार्किकोंने यह सोचा कि क्या हेतुका एक ही रूप ऐसा मिल सकता है या नहीं, जिस पर सब मतभेदोंका समन्वय भी हो सके और जो वास्तविक भी हो । इस चिन्तनमेंसे उन्होंने हेतुका एक मात्र अन्यथानुपपत्ति रूप निश्चित किया जो उसका निर्दोष लक्षण भी हो सके और सब मतोंके समन्वयके साथ जो सर्वमान्य भी हो । जहाँ तक देखा गया है हेतुके ऐसे एकमात्र तात्त्विक रूपके निश्चित करनेका तथा उसके द्वारा तीन, चार, पाँच और छः, पूर्वप्रसिद्ध हेतु रूपोंके यथासंभव स्वीकारका श्रेय जैन तार्किकोंको ही है^२ ।

६. अवयवोंकी प्रायोगिक व्यवस्था—परार्थानुमानके अवयवोंकी संख्याके विषयमें भी प्रतिद्वन्दीभाव प्रमाण क्षेत्रमें कायम हो गया था । जैन तार्किकोंने उस विषयके पक्षभेदकी यथार्थता-अयथार्थताका निर्णय श्रोताकी योग्यताके आधार पर ही किया, जो वस्तुतः सच्ची कसौटी हो सकती है । इस कसौटीमेंसे उन्हें अवयव प्रयोगकी व्यवस्था ठीक ठिक सूझ आई जो वस्तुतः अनेकान्तदृष्टि मूलक हो कर सर्वसंग्राहिणी है और वैसी स्पष्ट अन्य परंपराओंमें शायद ही देखी जाती है^३ ।

७. कथाका स्वरूप—आध्यात्मिकता-मिश्रित तत्त्वचिन्तनमें भी साम्प्रदायिक बुद्धि दाखिल होते ही उसमेंसे आध्यात्मिकताके साथ असंगत ऐसी चर्चाएँ

१ प्रमाणमीमांसा १. २. २ । टिप्पण पृ० ७२ पं० २१ । पृ० ७५ पं० ३ । पृ० ७६ पं० २५ । २ टिप्पण पृ० ८० पं० ३० । ३ टिप्पण पृ० ९४ पं० १४ ।

जोरोंसे चलने लगीं, जिनके फल स्वरूप जल्प और वितंडा कथाका चलाना भी प्रतिष्ठित समझा जाने लगा—जो छल, जाति आदिके असत्य दाव-पेचों पर ही निर्भर था। जैन तार्किक साम्प्रदायिकतासे मुक्त तो न थे, फिर भी उनकी परम्परागत अहिंसा व वीतरागत्वकी प्रकृतिने उन्हें वह असंगति सुझाई जिससे प्रेरित हो कर उन्होंने अपने तर्कशास्त्रमें कथाका एक वादात्मक रूप ही स्थिर किया; जिसमें छल आदि किसी भी चालवाजीका प्रयोग वर्ज्य है और जो एक-मात्र तत्त्वजिज्ञासाकी दृष्टिसे चलाई जाती है। अहिंसाकी आत्यंतिक समर्थक तो, जैन परंपराकी तरह बौद्ध परम्परा भी रही, फिर भी छल आदिके प्रयोगोंमें हिंसा देख कर निश्चय ठहरानेका तथा एक मात्र वादकथाको ही प्रतिष्ठित बनानेका मार्ग तो जैन तार्किकोंने ही प्रशस्त किया, जिसकी ओर तत्त्व-चिंतकोंका लक्ष्य जाना जरूरी है^१।

८. निग्रहस्थान या जय-पराजय व्यवस्था—वैदिक और बौद्ध परम्पराके संघर्षने निग्रह-स्थानके स्वरूपके विषयमें विकास सूचक बड़ी ही भारी प्रगति सिद्ध की थी; फिर भी उस क्षेत्रमें जैन तार्किकोंने प्रवेश करते ही एक ऐसी नई बात सुझाई जो न्यायविकासके समग्र इतिहासमें बड़े मार्केकी और अब तक सबसे अंतिम है। वह बात है जय-पराजय व्यवस्थाका नया निर्माण करनेका। यह नया निर्माण सत्य और अहिंसा दोनों तत्त्वों पर प्रतिष्ठित हुआ जो पहलेकी जय-पराजय व्यवस्थामें न थे^२।

९. प्रमेय और प्रमाताका स्वरूप—प्रमेय जड़ हो या चेतन, पर सबका स्वरूप जैन तार्किकोंने अनेकान्त-दृष्टिका उपयोग करके ही स्थापित किया और सर्व व्यापक रूपसे कह दिया कि वस्तुमात्र परिणामी नित्य है। नित्यताके ऐकान्तिक आग्रहकी धुनमें अनुभव-सिद्ध अनित्यताका इनकार करनेकी अशक्यता देख कर कुछ तत्त्वचिंतक गुण, धर्म आदिमें अनित्यता घटा-कर उसका जो मूल नित्यद्रव्यके साथ खींचानार्नासे विठा रहे थे और कुछ तत्त्वचिंतक अनित्यताके ऐकान्तिक आग्रहकी धुनमें अनुभव सिद्ध नित्यताको जो कल्पना मात्र बतला रहे थे, उन दोनोंमें जैन तार्किकोंने स्पष्टतया अनुभवकी आंशिक असंगति देखी और पूरे विश्वासके साथ बलपूर्वक प्रतिपादन कर दिया कि जब अनुभव न केवल नित्यताका है और न केवल अनित्यताका तब किसी

१ टिप्पण पृ० १०८ पृ० १५। पृ० ११५ पं० २८। २ टिप्पण पृ० ११९ पं० १४।

एक अंशको मान कर दूसरे अंशका बलात् मेल बैठानेकी अपेक्षा दोनों अंशोंको तुल्य सत्य-रूपमें स्वीकार करना ही न्यायसंगत है । इस प्रतिपादनमें दिखाई देने वाले विरोधका परिहार उन्होंने द्रव्य और पर्याय या सामान्य और विशेष ग्राहिणी दो दृष्टियोंके स्पष्ट पृथक्करणसे कर दिया । द्रव्य-पर्यायकी व्यापक दृष्टिका यह विकास जैन परम्पराकी ही देन है^१ ।

जीवात्मा, परमात्मा और ईश्वरके संबन्धमें सद्गुण-विकास या आचरणसा-फल्यकी दृष्टिसे असंगत ऐसी अनेक कल्पनाएँ तत्त्व-चिंतनके प्रदेशमें प्रचलित थीं । एकमात्र परमात्मा ही चेतन है अथवा उससे भिन्न अनेक जीवात्मा भी चेतन हैं, पर तत्त्वतः वे सभी कूटस्थ निर्विकार और निर्लेप ही हैं । जो कुछ दोष या बन्धन है वह या तो निरा भ्रान्ति मात्र है या जड़प्रकृतिगत है । एक ओर तो इस मतलबका तत्त्व-चिंतन था । दूसरी ओर ऐसा भी चिंतन था जो कहता कि चैतन्य तो अवश्य है, और उसमें दोष, वासना आदिका लगाव तथा उससे अलग होनेकी योग्यता भी है; पर उस चैतन्यकी प्रवाह-बद्ध धागमें कोई स्थिर तत्त्व नहीं है । इन दोनों प्रकारके तत्त्व-चिंतनोंमें सद्गुण-विकास और सदाचार-साफल्यकी संगति सरलतासे नहीं बैठ पाती । वैयक्तिक या सामूहिक जीवनमें सद्गुण विकास और सदाचारके निर्माणके सिवाय और किसी प्रकारसे सामंजस्य जम नहीं सकता । यह सोच कर जैन चिंतकोंने आत्माका स्वरूप ऐसा माना जिसमें एक-सी परमात्म-शक्ति भी रहे और साथ दोष, वासना आदिके निवारण द्वारा जीवन-शुद्धिकी वास्तविक जवाबदेही भी रहे । आत्मविषयक जैन चिंतनमे वास्तविक परमात्म-शक्ति या ईश्वर-भावका तुल्य रूपसे स्थान है, अनुभव सिद्ध आगन्तुक दोषोंके निवारणार्थ तथा सहजशुद्धिके आविर्भावार्थ प्रयत्नका पूरा अवकाश है । इसी व्यवहार-सिद्ध बुद्धिमेंसे जीवभेदवाद तथा देहप्रमाणवाद स्थापित हुए जो संमिलित रूपसे एक मात्र जैन परम्परामें ही हैं^२ ।

१०. सर्वज्ञत्व समर्थन—प्रमाण-शास्त्रमें जैन सर्वज्ञवाद दो दृष्टियोंसे अपना खास स्थान रखता है । एक दृष्टि तो वह जीव-सर्वज्ञ वादकी है, जिममें हर कोई अधिकारीकी सर्वज्ञत्व पानेकी शक्ति मानी गई है; और दूसरी दृष्टि यह है कि, जैन पक्ष निरपवाद रूपसे सर्वज्ञवादी ही रहा है, जैसा न बौद्ध

१. पृ० ५३. पं० ६ । पृ० ५४. पं० ९७ । पृ० ५७. पं० २१ । २. पृ० ७० पं० ८ । पृ० १३६. पं० १११ ।

परम्परामें हुआ है और न वैदिक परम्परामें । इस कारणसे काल्पनिक, अकाल्पनिक, एवं मिश्रित आदि सर्वज्ञत्व समर्थक यावत् युक्तियोंका संग्रह अकेले जैन प्रमाणशास्त्रमें ही मिल जाता है, जो सर्वज्ञत्वके सम्बन्धमें होने वाले विचारविमर्श का, भूतकालीन बुद्धिविषयक ऐतिहासिक अवलोकन करनेके इच्छुक गवेषक अभ्यासियोंके लिये तथा साम्प्रदायिक भावना वालोंके वास्ते कामकी चीज है ।

२. भारतीय प्रमाणशास्त्रमें हेमचंद्रका अर्पण

परम्परा प्राप्त उपर्युक्त तथा दूसरे अनेक छोटे बड़े तत्त्वज्ञानके मुद्दों पर हेमचन्द्रने ऐसा कोई विशिष्ट चिंतन किया है या नहीं, और किया है तो वह किस किस मुद्दे पर किस प्रकारका है जो जैन तर्क शास्त्रके अलावा भारतीय प्रमाणशास्त्र मात्रको उनकी देन कही जा सके । इसका जवाब हमने अपने हिंदी टिप्पणोंमें उस उस स्थान पर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दृष्टि द्वारा विस्तारसे दिया है । विशेष जिज्ञासु जन हमारे उन टिप्पणोंको देखें* ।

* 'सिंधी जैन ग्रन्थ माला'में प्रकाशित हेमचन्द्राचार्यकृत प्रमाणमीमांसा नामक ग्रन्थके उपोद्घातरूप यह विशिष्ट निबन्ध लेखक महोदयने लिखा, और इस को, उक्त ग्रंथके प्रकट होने के पूर्व ही भारतीय विद्या में प्रकाशित होनेके लिये भेज दिया था । पंडितजीके इस सौहार्द कृत्यके हम पूर्ण कृतज्ञ हैं । — संपादक

उन्नीसवीं शतीकी कुछ आर्थिक-राजनीतिक संस्थायें†

*

लेखक-पं० श्रीयुत जयचंद्रजी विद्यालंकार

[इतिहासाध्यापक, भारतीयविद्याभवन, बंबई]

—100—

हमारे प्राचीन इतिहासकी आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओंकी खोज अनेक बुजुर्गोंने की है। मध्य कालमें उन संस्थाओंका क्रम-परिपाक कैसे होता रहा इसकी खोज अभी तक बहुत कुछ बाकी है। उनमेंसे अनेक संस्थायें किसी न किसी रूपमें आधुनिक काल तक चलती आई हैं। उनके इस अंतिम रूप पर विचार करनेसे उनके पिछले इतिहासके मार्ग पर भी प्रकाश पड़ सकता है। इसी दृष्टिसे पिछली शताब्दी की कुछ आर्थिक-राजनीतिक संस्थाओंकी यहां आलोचना की जाती है।

हम यह पाते हैं कि

(१) ब्रिटिश शासनके आरम्भ-कालमें भारतके प्रायः सब राज्योंमें राजा और प्रजाके बीच जागीरदार, जमींदार, पाळयगार, सरंजामदार, सरदार, इनामदार, गिरासिये, ठाकुर, मालगुजार, तालुकेदार आदि नामके किसी न किसी किस्मके सामन्त थे। अनेक जगह कृषक प्रजा इन सामन्तोंकी “रैयत” थी। ये सामन्त अत्यन्त उच्छृंखल थे, और प्रायः सभी जगह इन्हींको इनके राजाओं और इनके देशके खिलाफ फोड़ कर अंग्रेजोंने भारतके राज्योंको जीता।

(२) करकी वसूली और स्थानीय शासनका काम प्रायः इन सामन्तोंके हाथोंमें था, पर जमीनके मालिक किसान ही माने जाते थे।

(३) कुछ प्रान्तों या जिलोंमें—जैसे तामिलनाडुके बारामहाल अर्थात् सेलम और कृष्णागिरि जिलोंमें और महाराष्ट्रके मुख्य भागमें—राजा और किसानोंके बीच किसी किस्मके सामन्त नहीं थे।

† ‘भारतीय विद्याभवन’ की तरफसे, बम्बई युनिवर्सिटीके हॉलमें श्री पं० जयचंद्र विद्यालंकार द्वारा गत ४ एप्रिलको दिया गया व्याख्यान।

(४) भारतीय शिल्पी और कारीगर प्रायः सब जगह महाजनोंके पंजेमें थे। वे महाजनोंसे अगाऊ रकम पाते और उसकी चुकाईमें माल देते रहते थे। इन शिल्पियोंकी कारीगरी कमालकी थी, शताब्दियोंकी साधना उन्होंने घुट्टीमें पाई थी। लेकिन यूरोपमें शिल्पकी जो नई प्रक्रियायें तभी निकल रहीं थीं उन्हें अपनाने लायक जागरूकता न तो हमारे इन शिल्पियोंमें और न हमारे राष्ट्रके नेताओंमें ही थी। हम सभी एक अत्यन्त अद्भुत मोहनिद्रामें सोये हुए थे।

(५) समूचे भारतमें ग्रामोंकी पंचायतें थीं जो कर-वसूली, शान्ति-रक्षा आदिके लिए जिम्मेदार थीं।

इनमेंसे एक एक बात पर अब हम विचार करते हैं।

सामन्तशाही

सामन्तशाही मध्य कालका खास चिह्न है। मध्यकालीन यूरोपमें भी वह थी; पर आधुनिक कालके शुरूमें आवाजाहीके साधन उन्नत होनेसे तथा सेनाका केन्द्रीकरण होनेसे राज्योंकी केन्द्रिक शक्ति प्रबल हुई; तब राजाओंने सामन्तोंके कोटले ढहा कर उन्हें काबू कर लिया। भारतके राज्य इस अंशमें यूरोपसे पिछड़े रहे, इमीमें अंग्रेजोंको उनमें दखल देनेका मौका मिला। अंग्रेजोंने अनेक जगह तो इन सामन्तोंको बिल्कुल कुचल दिया और जहां रहने भी दिया वहां इनकी सामरिक और राजनीतिक शक्ति बिल्कुल तोड़ दी। देखिये भारतके अनेक पाळयगार, जो कि आरम्भिक मध्य कालसे चौळ, होयशल और विजयनगर साम्राज्योंके भीतर बने रहे, जिनको काबू करनेकी समस्या बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानों, मुगल बादशाह और उसके सूबेदारों तथा शिवाजी और उसके उत्तराधिकारियोंको बगवर परेशान करती रही, अंग्रेजोंके हाथ कैसे मच्छरोंकी तरह मारे गये ! सर टामस मुनरोने क्या इल्केपनसे लिखा था — “मैंने विठ्ठल हेगाडे, उसके युवराज और उसके खास खास कारिन्दोंको फांसी चढ़ा दिया है; और मुझे जरा भी शक नहीं कि दूसरा कोई भी आवागारिद राजा बलवा करेगा तो उसकी भी बैसी ही गत बना सकूँगा।”^१

१. बसु, राजज ओव दि क्रिश्चियन पावर इन इंडिया, पृ० ७३४ पर उद्धृत।

प्रश्न यह होता है कि प्राचीन कालमें भी तो आवाजाहीके साधन बहुत घटिया थे, तब युद्धकला मध्य कालकी युद्धकलासे भी निचले दर्जेकी थी, तब प्राचीन इतिहासमें सामन्तशाही क्यों न थी ? इसका उत्तर यह है कि उस समय जनतामें सामूहिक जीवन उत्कट था; स्थानीय शासन सब जनताकी संस्थाओंके हाथोंमें था। उस समयके साम्राज्य या चातुरन्त राज्य संघटित और सजीव ग्रामों, श्रेणियों, पौरों, जानपदों और गणोंकी परिषदोंके धर्मों पर खड़े होते थे। मौर्य और सातवाहन साम्राज्योंकी बुनियादें वही थीं; गुप्त साम्राज्यमें भी वे मौजूद थीं, पर शायद उनके साथ साथ कुछ सामन्तपद्धतिका भी बीज पड़ गया हो। पहले (हिन्दू) मध्यकालीन राज्योंके भूमि-दान-सम्बन्धी और अन्य जो हजारों लेख पाये गये हैं, तथा पिछले (मुस्लिम) मध्य कालकी जो इतिहास-सामग्री उपस्थित है, उसकी खोजसे इस सामन्त-शाहीके क्रमविकासका पूरा इतिहास मिल सकना चाहिए।

ज मी न की म ि ल क ि य त

ये जागीरदार जमीनके मालिक नहीं थे; इनकी जागीरका अर्थ यह था कि ये राज्यकी तरफसे अपने इलाकेका कर वसूलते और प्रबन्ध करते थे। उस करको यदि वे खुद खर्च करते थे तो वह इनके शासन-प्रबन्ध-सम्बन्धी और सेना-सम्बन्धी कार्यका वेतन था। अंग्रेजोंने इनकी शासन और सेना-सम्बन्धी जिम्मेदारी सब छीन ली, पर अनेक जगह करकी वसूलीके लिए इन्हें जमींदार बना रहने दिया। जमीनकी आमदनीमेंसे जो अंश अंग्रेज सरकार इनके पास छोड़ने लगी वह कम्प्लीका कमीशन था। कार्नवालिसके बन्दोबस्तका यही अर्थ था। यह बात तथा बादमें ये लोग जमीनके मालिक कैसे बन गये सो भी लॉर्ड हेस्टिंग्सके सन् १८१९के इस लेखसे प्रकट है—

“बंगालमें जमीन-मिलकियतकी विद्यमान अवस्था उतनी गवर्नमेंण्टके अर्थ-नीतिक विधानोंसे पैदा हुई नहीं जान पड़ती जितनी कानूनी फैसलोंके चरितार्थ किये जानेसे हुई है। ठेका खरीदने वालोंने जो सब शक्तियाँ हथिया ली हैं, उससे किसानोंके पास किसी अधिकारकी परछाँही भी नहीं बची; और एक समृद्ध और खुशहाल जनता सर्वथा दरिद्र और भिखारी बन गई है।”

ध्यान देनेकी बात है कि आज जिन्हें जमीनका मालिक कहा जाता है, हेस्टिंग्स उन्हें ठेका खरीदने वाले — अर्थात् गवर्नमेंण्टकी खातिर कर वसूलनेका ठेका लेने वाले और उसके बदलेमें कमीशन पाने वाले — कहता है। कार्न-वालिसके समय वास्तवमें यही दशा थी। लॉर्ड रिपनने भी अपने शासन कालमें करीब करीब वही बात लिखी है —

“मुगल सरकारके अधीन भूमिकरको ठेकेदार या राजा लोग वसूलते थे, जो कई बार शासकों द्वारा सीधे नियुक्त किये होते थे और जिन्हें कई बार पहलेके और अधिकार भी होते थे। ब्रिटिश सरकारने इस मध्यस्थ वर्गको स्थायी बन्दोबस्तका जमींदार बना दिया और मुगलोंके भूमिकरको जमींदारी जागीरोंका लगान बना दिया। जमींदारोंको चाहे जमीनका असल मालिक कहा गया, पर वे रैयतोंके मुकाबलेमें पूरे मालिक न थे...।”^१

लॉर्ड हेस्टिंग्सके उक्त उद्धरणमें यह बात सबसे अधिक ध्यान देने लायक है कि किसानोंके हाथसे जमीनकी मिल्कियन छिन कर जो जागीरदारोंके हाथमें चली गई, सो ब्रिटिश शासनके किसी अर्थनीतिक विधानसे नहीं हुआ, प्रत्युत अंग्रेजी कचहरियोंके फैसलोंके लागू होनेसे धीरे धीरे होता गया। इस बातको समझना आवश्यक है।

इंग्लैण्डमें अठारहवीं शताब्दीमें व्यावसायिक क्रान्ति शुरू होनेसे पहले एक “कृषि-क्रान्ति” हो चुकी थी, जिसमें जागीरदारोंने कृषकोंके सब अधिकार जन्त कर अपनी जमीनोंकी हदबन्दी कर ली थी और उस जमीनके पूरे मालिक बन बैठे थे। इस प्रकार उन्नीसवीं सदीके अंग्रेजी कानूनकी दृष्टिमें जो राज्यको जमीनका कर देता था वही जमीनका पूरा पूरा मालिक था और असल खेती करने वाले उसके निरे मुजरे थे। भारतवर्षमें कार्नवालिसने जमीनके असल मालिक किसानोंसे कर वसूलने का ठेका जिन लोगोंको दिया, अंग्रेज जजोंने उन्हें अपने देशके नमूने पर जमीनका मालिक समझा, और उन जजोंके फैसलोंसे वे सचमुच मालिक बनते गये ! एक तरफ करोड़ों जनताकी ठोस सम्पत्ति और उनकी जीविका और स्वतन्त्र हैसियतके प्रत्यक्ष आधार थे, दूसरी तरफ मुट्ठी भर विदेशी शासकोंका एक दृष्टि-विभ्रम था। दोनोंका सम्पर्क होने पर उस विभ्रमकी जीत हुई, क्यों कि हिन्दुस्तानी प्रजा

अपने जीवनके ठोस अधिकारोंके विषयमें भी मूक थी, और अंग्रेजोंके बहम भी गरज कर बोलते थे । समाजशास्त्रकी दृष्टिसे यह एक अत्यन्त मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद नमूना है । अमेरिकन समाजशास्त्री सोरोकिनने सांस्कृतिक समास बनने (cultural integration) के चार तरीके बताये हैं । उनमें से दूसरा यह है कि विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्व परस्पर-सान्निध्य होने पर किसी बाहरी शक्ति द्वारा मिलकर एक नई चीज बना डालते हैं (indirect association through a common external factor)* । यह उस प्रकारके समासका एक अच्छा नमूना है । उन्नीसवीं शतीमें भारतीय संस्कृति-तत्त्वकी अत्यन्त क्षीणता और अंग्रेजी संस्कृति-तत्त्वकी उत्कट सजीवता भी इससे प्रकट है ।

परन्तु भारतीय किसानोंमें चेतनाके कुछ कण बाकी थे, और जब उन्होंने छटपटाना शुरू किया तो अंग्रेज मालिकोंने देखा कि उन्होंने बिना चाहे बिना समझे उन पर कितना बड़ा जुल्म ढा दिया है । कैनिंग, लॉरेंस, रिपन आदिके टिर्नैसी-कानून उस भूलको सुधारनेकी कोशिशें थीं । किसानोंसे मिलकियत छिन गई थी, अब उन्हें “द खी ल का री” (occupancy) हक दे कर सन्तुष्ट करनेकी कोशिश की गई । ब्रिटिश बहमकी पहली चोटोंने भारतीय कृषिकी पेंदी छेद डाली थी; गदरके बादके सब टिर्नैसी-कानून उन छेदोंमें टांके लगानेकी कोशिशें हैं । लेकिन एक टांका लग नहीं पाता कि दूसरा उखड़ जाता है । जमींदारीका वह समास जो भारतीय भू-स्वामित्व-पद्धतिमें ब्रिटिश कल्पनाका प्रभाव होनेसे बना है, अस्वाभाविक है । भारतीय कृषकमें ज्यों ज्यों गर्मी आयगी वह उस कल्पनाको ठोकरें लगा कर दूर गिरा देगा—दोनों तभी तक जुड़े रह सकते थे जब तक भारतीय कृषक ठंडा था । आज भारतके अनेक ग्रान्त इस प्रक्रियामेंसे गुजर रहे हैं, और इसे न समझनेके कारण उनके शासक परेशान हैं ।

इस विवेचनासे हमें अपने पिछले सांस्कृतिक इतिहासके लिए यह महत्त्वकी बात मिली कि इंग्लैण्डमें सत्रहवीं शती तक जागीरदारोंके आर्थिक अधिकारोंका जितना विकास हो गया था, भारतमें मध्य कालके अन्त तक भी उतना नहीं हुआ था । यहां किसान अन्त तक जमीनके मालिक बने रहे, और ब्रिटिश युगमें आ कर ही उनकी दुर्गति हुई ।

कृषक-भूस्वामित्व

हमारे बरामहालमें तथा महाराष्ट्र और पंजाबके अनेक हिस्सोंमें जैसे किसानोंने अपने ऊपर किन्हीं जागीरदारोंको स्थापित नहीं होने दिया, वैसी ही बात युरोपमें भी खिज़रलैण्डके इतिहासमें हुई है। जैसे खिज़रलैण्डमें यह अवस्था वहाँकी जनताके उत्कट स्वाधीनताप्रेमके कारण बनी रह सकी, वैसा ही भारतके इन प्रान्तोंमें भी हुआ होगा। महाराष्ट्र और पंजाबमें मुस्लिम शासनकालमें वस्तुतः जागीरदार स्थापित थे; पर मराठों और सिक्खोंके उत्थानमें वे उखड़ गये। शिवाजीका निश्चित ध्येय पुराने जागीरदारोंको उखाड़ देना और नयोंको न स्थापित होने देना था। लेकिन बादके मराठा और सिक्ख शासकोंने अपने कुल प्रदेशोंमें नये जागीरदार पैदा कर दिये। इसका अर्थ यह है कि अपने चारों तरफकी राजसंस्थामे मराठे और सिक्ख बहुत समय तक प्रभावित हुए बिना न रह सके। मराठा और सिक्ख इतिहासका यह आर्थिक और संस्था-सम्बन्धी पहलू अभी तक उपेक्षित है।

परन्तु उन्नीसवीं शतीके शुरूमें इन प्रदेशोंके स्वतंत्र कृषकोंमें भी विशेष ज्ञान न थी। इसीसे अंग्रेजोंने उन्हें आसानीसे अपना खेत-मजदूर बना लिया। इन प्रान्तोंमें रैयतवारी बन्दोबस्त किया गया। रैयतवारी बन्दोबस्तमें जमींदार नहीं थे, पर किसान जमींदारोंकी रैयतोंसे भी बुरी दशामें थे। कारण कि यहां ईस्ट इंडिया कंपनी खुद जमींदार बन बैठी। जमीनके मालिकको आमदनीमेंसे जो मुनाफा या लगान अंग्रेजी कल्पनाके अनुसार मिलना चाहिए, उसे कम्पनी खुद लेने लगी, और इस प्रकार महाराष्ट्रके मिराशदार (कृषक भूस्वामी) कम्पनीके निरे खेत-मजदूर बन गये। और क्यों कि रैयतवारी बन्दोबस्तमें जमीनकी मालिक परदेशी कम्पनी थी, और उस मालिककी तरफसे एक एक कलक्टर डेढ़ डेढ़ लाख किसानोंके साथ बन्दोबस्त करता था, इसलिए इन प्रदेशोंकी जनताकी इज्जत तुच्छ कारिन्दोंके हाथों छुटने लगी और इस जनता का जीना केवल कम्पनीका मुनाफा पैदा करनेके लिए रह गया। सन् १९०१ में जब लॉर्ड कर्जनने दक्खिनके किसानोंके जमीन बेचनेके अधिकारको भी परिमित कर दिया तब उनकी गुलामी पर अन्तिम मुहर लग गई। देखना है कि इन अन्यायोंको हमारी जनताकी सरकारें कैसे दूर करती हैं।

ब्रिटिश शासनके शुरूमें रैयवतवारी प्रदेशोंमें भी किसानोंमें जान न होनेका एक और उदाहरण यह है कि आंध्रतटके “उत्तरी सरकारों”के जिन हिस्सोंमें जमींदार नहीं थे, वहां भी अंग्रेजोंने कर वसूलीके ठेके नीलाम कर नये जमींदार खड़े कर दिये ।^५

आठवीं शताब्दी ई० तक भारतीय किसानोंका अपनी जमीन पर खत्व कितना पूरा और पक्का बना हुआ था सो गजा चन्द्रापीड और कश्मीरके एक चमारकी कहानीसे प्रकट है^६ । आठवींसे अठारहवीं शताब्दी तक भारतीय किसानोंका मानव चैतन्य और सामूहिक चेष्टा कैसे मन्द होते गये, सो मध्य-कालीन इतिहासकी खोजके लिए एक प्रश्न है ।

शिल्पियों की अवस्था

शिल्पियोंके महाजनोके पंजोंमें फंसे होनेकी बात बहुत ही गम्भीर है । कहां तो सातवाहन युगमें वह अवस्था कि जुलाहोंकी श्रेणिके पास राजा अपनी स्थायी निधिको धरोहर रखता है^७, और कहां यह हालत कि वही जुलाहे अब महाजनोके ऋणग्रस्त हैं, और विदेशी महाजन भी हमारे देशमें आ कर उन्हें दबोच लें तो हमारे राज्योंको कोई चिन्ता नहीं होती ! यह परिवर्तन कब और कैसे हुआ ? उसकी लम्बी प्रक्रिया कई मंजिलें पार कर पूरी हुई होगी और वह समूची टटोली जानी चाहिए । युरोपमें भी इस समय प्रायः कारीगरोंकी यही दशा थी । उनकी श्रेणियां या गिल्ड आधुनिक कारखाने शुरू होनेसे पहले ही टूट चुकीं थीं, और श्रेणि-पद्धति तथा आधुनिक कारखाना-पद्धतिके बीच एक ऐसा परिवर्तन-काल बीता जब पूंजीपति शिल्पियोंको कच्चा माल मुहय्या कर देते और उनसे तैयार माल ले लेते थे । यह घरेलू कारखाना-पद्धति (domestic system) या “माल देने” (“putting out”) की पद्धति थी । बड़ी मशीनोंका प्रयोग अभी शुरू नहीं हुआ था, तो भी शिल्पी सिर्फ भृति ले कर पूंजीपतिके नफेके लिए काम करने लगे थे । कच्चे मालको थोक रूपसे पूंजीपति मुहय्या करता और वही तैयार सामानको बेचता था ।

५. रमेश दत्त — इकनामिक हिस्टरी ऑफ इंडिया, अर्ली ब्रिटिश रूल ४, पृ० ११७ ।

६. इतिहास प्रवेश, पृ. २४० । ७ भारतीय इति० की रूपरेखा, पृ० ९४९-५०

किन्तु भारतमें भी शिल्पियोंकी श्रेणियां इसी प्रकार सत्रहवीं शतीसे कुछ ही पहले टूटी हों सो नहीं सोचा जा सकता । कारण कि इस अंशमें भारतीय और युरोपीय इतिहासमें एक स्पष्ट भेद है । युरोपमें श्रेणियों या गिल्डोंका अभ्युदय मध्य कालमें ही हुआ — मध्य कालकी गुलामीके अधियारे जमानेमें शिल्पियोंकी श्रेणियोंमें ही मानव स्वतंत्रताके दीपक टिमटिमाते रहे; परन्तु भारतमें श्रेणियोंका अभ्युदय प्राचीन कालमें हुआ था — यहां छठी शती ई० पू०से छठी शती ई० तक स्वाधीन सुसंगठित शिल्पियोंकी श्रेणियां थी जो स्वतंत्रताके वातावरणमें ही पनपीं और फूलीं-फलीं । प्राचीन भारतीय राज्य-संस्था ग्रामों और श्रेणियों पर निर्भर थी — वह ग्रामों और श्रेणियोंका संघ ही थी । जनताका धन्दोंके अनुसार संघटन उस राज्यसंस्थाकी बुनियाद थी । इस अंशमें उसकी तुलना रूसी सोवियत-संघटनसे की जा सकती है ।

भारतमें शिल्पियोंकी ये श्रेणियां छठी शती ई० तक परिपक्व अवस्था तक पहुंच चुकी थीं, और सत्रहवीं शती तक उनके सदस्य पूरी तरह पूंजीपतियोंके गुलाम बन चुके थे । प्रकट है कि उनका हास और पतन बहुत धीरे धीरे लम्बी अवधिमें हुआ । श्रेणियां धीरे धीरे पथरा कर जाते बन गईं, उनका काम अपने सदस्यों पर सामाजिक बन्धन लगाना और सामाजिक रिवाजोंको बनाये रखना मात्र रह गया, और जो उनकी असल आर्थिक शक्तियां थी वे सब महाजनोके हाथों गिरवी रखी गईं । यही मध्य-कालीन हासकी प्रक्रिया है जिसका बारीकीसे टटोला जाना आवश्यक है । किन्तु इस हास का सबसे करुण पहलू यह है कि हमारे शिल्पी और हमारा समूचा राष्ट्र बाहरी दुनियांकी तई विलकुल बेहोश रहे । यदि वह सहज चौकन्नापन उनमें होता जो प्रत्येक जीवित सत्तामें होता है तो युरोपकी नई प्रक्रियाओंको उन्होंने झट अपना लिया होता और अपने दो हजार वरसके अगुआपनको कभी हाथसे न जाने दिया होता ।

पर इस बेहोशीकी दशामें भी हमारे शिल्प आसानीसे मरने वाले नहीं थे यदि इंग्लैण्डने अपनी राजनीतिक शक्ति उन्हें कुचलनेको न लगाई होती । यह मानी हुई बात है और इससे यह प्रकट है कि हमारी कारीगरी कितनी परिपक्व थी । हमारे कारीगरोंका वह हस्त-कौशल आज भी मिट नहीं गया है । इस दृष्टिसे यह खोज बड़े महत्वकी होगी कि उन्नीसवीं शतीमें अथवा

आज भी हमारे मरते शिल्पोंमेंसे प्रत्येककी प्रक्रिया और कार्यशैली क्या थी । उन प्रक्रियाओंका क्रमविकास हमारे समूचे पिछले इतिहासमें हुआ था; इसलिए उनके मादूम होनेसे हमारे सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश पड़ेगा । मेरे आदरणीय मित्र राय कृष्णदासने बनारसके कुछ शिल्पों, उनके औजारों, उनकी प्रक्रियाओं और शैलियों और उनकी परिभाषाओंका अध्ययन इस दृष्टिसे किया है ।

आज हमारे उन ग्राम्य शिल्पोंके पुनरुद्धारकी चेष्टा हमारे सबसे बड़े नेताकी ओरसे की जा रही है । इस पुनरुद्धारके लिए भी सबसे पहला काम होना चाहिए था उन शिल्पोंकी अवस्था और उनकी प्रक्रियाओंकी पूरी सिलसिलेवार जाँच (सर्वे) । आश्चर्य है कि अनेक प्रान्तोंकी राजकीय शक्ति हाथमें आने पर भी हमारे नेताओंको आज तक यह बात नहीं सूझी !

ग्राम संस्थाएँ

ग्राम-संस्थाएँ अंग्रेजी शासनके शुरूमें समूचे भारतमें थीं; वे हिमालय और सह्याद्रिके समान पुरानी मानी जाती थीं, पर अंग्रेजी शासनने उनके हाथोंसे सब शक्ति खींच ली, जिससे वे निर्जीव हो कर सूख गईं, सूख कर गिर पड़ीं और गिर कर धूलमें मिल गईं । इस प्रसंग पर हमारे महान् पथ-दर्शी ऐतिहासिक स्व० रमेशचन्द्र दत्तने यों लिखा है—

“राष्ट्रीय संस्थाएँ राष्ट्रीय आवश्यकताओंकी अभिव्यक्ति और परिणाम होती हैं । भारतके लोगोंने ग्राम-समूहोंका विकास किया; वे पाळयगारों और जमींदारों, जागीरदारों और तालुकेदारों, सरदारों और पंचायतोंके अधीन रहते थे;

८ भारतके कई इलाकोंसे अंग्रेजोंने जो जागीरदारों आदिको समूल उखाड़ दिया, रमेश दत्त उनके लिए भी आहें भरते हैं । उनके समयमें उनकी यह बात ठीक थी, क्योंकि कि एक तो किसानोंकी कमाईका कुछ अंश जब दूसरोंके हाथमें जाना ही है तो विदेशी कम्पनीके बजाय वह स्वदेशी जमींदारोंको ही क्यों न मिले; दूसरे, रैयतवारीमें किसानोंकी बहुत ही दुर्गति थी; जमींदारी इलाकोंमें तब तक जमींदार पुरानी परम्पराके अनुसार किसानोंके बीच रहते, खेतीको उन्नत करनेके लिए पूंजी लगाते, समय पड़ने पर किसानोंको पूंजी आदिसे मदद करते तथा उनके सुख दुःखमें भाग लेते थे । पर बादमें वह परम्परा टूटती गई, जमींदार अपनी स्थायी आमदनीसे निश्चिन्त हो शहरोंमें आ बसे, जमीनोंकी सुध लेना उन्होंने छोड़ दिया । रमेश दत्तके समय तक यह बात पूरी न हो पाई थी; तब तक किसानोंमें भी यह जागृति न हुई थी कि वे अपनी पूरी कमाई पर अपना हक समझें । रमेश दत्त यह देखते थे कि विदेशी शासकोंके तुच्छ अमलोंसे पददलित रैयतवारी इलाकोंकी अपेक्षा जमींदारी इलाकोंमें किसान अपेक्षया कम दुखी हैं, इसीसे वे जमींदारीका पक्ष करते हैं । आज वे होते तो शायद दूसरे ढंगसे ही लिखते ।

क्यों कि उन्हें उनकी जरूरत थी। उनका सामाजिक संघटन उनकी अपनी सामाजिक आवश्यकताओंके अनुसार खड़ा हुआ था; वे अपनेको अपने सहज नेताओंके अधीन या अपने ग्राम्य-संघोंके बीच अधिक सुरक्षित और अधिक प्रसन्न अनुभव करते थे। किन्हीं भी शासकोंके लिए ऐसी योजनाओंमें फेरफार करना सयाना काम नहीं है; विदेशी शासकोंके लिए तो जनताकी संघटित संस्थाओंकी उपेक्षा करना मूर्खताका काम है।”^९

फिर, “यह शोककी बात है कि इन प्राचीन स्व-शासन-संस्थाओंका ब्रिटिश शासकोंके अत्यन्त केन्द्रीकृत प्रबन्धके अधीन हास और लोप हो गया। यदि गांधीके नेताओं पर कुछ भरोसा किया जाता; मालगुजारी, फौजदारी और पुलिसके प्रबन्धमें उन्हें कुछ शक्तियां दी जातीं; और (उनमें) बुराइयोंका पैदा होना रोकनेके लिए सावधानीसे पर सहानुभूतिके साथ उन पर देखरेख रक्खी जाती, तो यह हो सकता था कि ये समूह आज तक भी अच्छी सेवा कर रहे होते।”^{१०}

रमेश दत्तके समय घाव ताजा था, इस लिए उनका यों आंसू बहाना ठीक था। आज हम आंसू थाम कर और वेदनाके लम्बे अनुभवके फलस्वरूप चित्तको शान्त करके विचार सकते हैं। यदि राष्ट्रीय संस्थायें राष्ट्रीय आवश्यकताओंसे अभिव्यक्त होती हैं तो उन्नीसवीं शतीमें इन संस्थाओंका मिट जाना भी क्या उस समयकी राष्ट्रीय आवश्यकताओंका परिणाम न था? क्या वे इसी कारण नहीं गिरा कि वे जीर्ण थीं? अंग्रेज भारतीय राज्योंको इस कारण ढा सके कि वे कोढ़े थे, उन्हें जनताका जीवित सहयोग प्राप्त न था। लेकिन जनताकी इन संस्थाओंको वे क्यों ढा सकते यदि इनके अन्दर जीवन होता? भारतवर्षकी लाखों ग्राम-संस्थाओंसे लड़ाई करनेकी जिदमें क्या ब्रिटिश साम्राज्य धूलमें न मिट जाता यदि इनमें जान होती? और यदि वे इतनी बोदी, इतनी दीमककी खाई हुई थीं कि विदेशीके चार टुकड़ोंसे गिर पड़ीं, तो क्या एक ऐतिहासिककी सिफारिश और दयाप्रार्थनासे वे बच जातीं? रमेश दत्त उन पंचायतोंको मालगुजारी, फौजदारी और

९. इंडिया इन विक्टोरियन एज, पृ० ८९।

१०. वही, पृ० १९७।

पुलिस-प्रबन्धका कुछ अंश सौंपवाना चाहते थे । ग्राम-पंचायतोंके हाथमें ये शक्तियाँ हों तो खराब्यकी सच्ची नींव पड़ जाय । पर आज कांग्रेसी सरकारें अपने डेढ़ बरसके शासनमें भी अपने गांवोंको इतने अधिकार क्यों नहीं सौंप सकीं ? उन्हें यह क्यों नहीं सूझा कि जब तक अंग्रेजी सरकारसे समझौता है उस अरसेमें अपना ग्राम-संघटन खड़ा कर लें और अगली लड़ाई आनेके पहले पहले उसे इतना मजबूत बना लें कि अगली लड़ाइयोंमें वही हमारी रीढ़का काम दे ? और यदि हमारे नेताओंको यह नहीं सूझा तो गांवोंकी जनताने खुद ही संघटित हो कर इन अधिकारोंका दायित्व लेना क्यों नहीं शुरू किया ? जिन्दा जातियां लड़ाईके बीच ही अपना संघटन खड़ा कर लेती हैं; हमें समझौतेसे दम लेनेका मौका मिला है तो भी हम उस अंशमें बहुत ही कम कर पाये हैं । इसका अर्थ यही है; कि पिछले चालीस सालके पुनरुत्थान तथा महात्मा गांधीके नेतृत्वमें किये हुए बीस बरसके प्रयत्नोंके बावजूद भी अभी तक हमारा सामूहिक चैतन्य बहुत मन्द है; उन्नीसवीं शताब्दीमें तो वह करीब करीब न के बराबर ही था । इसलिए उस समय इन संस्थाओंका टूट जाना सर्वथा स्वाभाविक था । हम स्वयं इनमें समयानुकूल परिवर्तन न कर पाते । अंग्रेजोंने इन्हें मिटा कर साफ कर दिया तो नई रचनाके लिए मैदान तैयार हो गया ।

इस विवेचनासे यह पता चला कि ये संस्थायें अपने अन्तिम जीवन-कालमें ठीक किस अवस्था तक पहुँच चुकीं थीं । एक बात इनके सम्बन्धमें और समझनेकी है । ये ग्रामसंघ सजात समूह न थे, ये जनमूलक (tribal) — कबीलों पर निर्भर न थे । यह हो सकता है कि कुछ गांवोंमें एक ही वंशके लोग बसे रहे हों, और कहीं कहीं उनकी मंयुक्त संपत्ति भी रही हो । यह इस लिए कि आरम्भमें — वैदिक कालमें — हमारे ग्राम वस्तुतः जनकी टुकड़ियां ही थे । लेकिन भारतमें जनमूलक या साजाल्यमूलक समाज छठी शताब्दी ई० पू०में ही समाप्त हो चुका था — जनके साजाल्य और जनपदकी भक्तिमें पाणिनि स्पष्ट भेद करते हैं । और उसके बादसे हमारी संस्थाओंकी बुनियाद साजाल्य पर खड़ी न थी । इस विशाल देशके कुछ पिछड़े लोगोंमें सजात समूह फिर भी बने रहे, पर कौटिल्यके समान हमारे राजनेता उनके तथा चेतनापूर्वक बनाये हुए समूहोंके अन्तरको स्पष्ट सम-

झते थे^{११} । समूचे प्राचीन कालमें हमारे ग्राम चेतन समूह थे — अर्थात् उनकी मिल कर काम करनेकी प्रेरणा इस कारण न थी कि वे अपनेको सगोत्र मानते थे, प्रत्युत इस कारण कि वे उस सामूहिकताका लाभ देखते-समझते थे । सजात या सगोत्र हुए बिना भी वे मिल कर काम कर सकते थे ।

लेकिन अनेक ग्रामोंकी बस्तियां शुरूमें साजात्यमूलक थीं; उनमें एक वंशके लोग बसे हुए थे ही; और जब बादमें उनका सामूहिक चैतन्य मन्द हो गया तब फिर केवल साजात्यका भाव बाकी रह गया और फिरसे जाग उठा । जिस प्रकार श्रेणियोंसे जातें बन गईं, वैसे ही कई जगह ग्राम फिर सजात समूहसे दिखाई देने लगे । उनके लोग अपने अन्दर जिस एकताका अनुभव करते वह साजात्यकी एकता मात्र रह गई । और इस हास और पतनके कालमें अनेक विदेशी या सरहद्दी आक्रान्ता भी भारतमें आ कर बसे । इनमेंसे अनेक कबीलेबन्दीकी दशामे थे । जहां जहां इनकी बस्तियां बसीं वहां वहां कबीले या जन वाला साजात्यका भाव रहा और उसने पड़ोसियों पर भी प्रभाव किया । किन्तु उन्नीसवीं शतीके भारतीय ग्रामोंमें यदि कहीं साजात्यका भाव था तो वह सामाजिक संघटनकी प्रारम्भिक (primitive) दशाका सूचक न था, प्रत्युत एक बारके पूरे अभ्युदयके बाद परिपक्व हो कर जीर्ण हुए समाजकी जीर्णताका सूचक था — वह सभ्यताके आरम्भका द्योतक न था प्रत्युत सभ्यताके पतनके बाद उमड़े हुए वहशीपनका द्योतक था ।

अनेक अंग्रेज निरीक्षकोंने इस भेदको नहीं समझा, और सर हेनरी मेनकी विचारधारामें यही त्रुटि रही है । लेकिन हमारे पास इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि उन्नीसवीं शतीमें भी हमारे ग्रामोंकी सामूहिकताकी बुनियाद साजात्य नहीं थी । विगेंट और गोल्ड्समिडने, जिनमे बढ़ कर हमारी संस्थाओंको देखने-समझनेका मौका शायद ही किसी अंग्रेजको मिला हो, स्पष्ट लिखा है — “माल-गुजारी-अदायगीकी साक्षी जिम्मेदारी और ग्रामका साक्षात् प्रबन्ध दक्खिनमें शायद सार्वत्रिक थे, पर हम संयुक्त मिलकियतके कोई चिह्न कहीं नहीं पाते ।”^{१२}

११. भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ० ६४१ ।

१२. रमेश दत्त - इंडिया इन बि० एज., पृ० ५८ पर उद्धृत ।

लेकिन कुछ अंग्रेजोंको इस सम्बन्धमें जो भ्रम हुआ और उन्होंने इस सामूहिकताको साजाल्य समझ लिया, इससे भी यही परिणाम निकलता है कि यह सामूहिकता बहुत जीर्ण थी। और उसकी जीर्णताका परिपाक समूचे मध्य कालमें हुआ था।

इतनी बात स्पष्ट करनेके बाद यह प्रश्न आता है कि जागीरदार और ग्रामसंस्थायें दोनों साथ साथ कैसे थीं ? दोनों-ही-का काम तो स्थानीय शासन था ? एक म्यानमें ये दो तलवारें इकट्ठी कैसे रहती थीं ? इसका उत्तर यही होना चाहिए कि ग्राम-संस्थाओंके साथ साथ सामन्तोंका रहना ही इस बातका सूचक है कि उन संस्थाओंका जीवन मन्द था। जिस अंशमें वे अपने दायित्वको छोड़ती गईं उसी अंश तक शासन-शक्ति सामन्तोंके हाथ जाती गई। उदाहरणके लिए हम कौटिलीयमें श्रेणियोंकी सेनाकी तथा ग्रामोंके ऊपर सड़कोंकी मरम्मतकी जिम्मेदारीकी बात सुनते हैं। सामन्त-शाहीके जमानेमें राजाओंकी सेनायें सामन्तोंकी टुकड़ियोंसे बनती थीं। प्रकट है कि जब ग्राम, श्रेणि आदि छोटे समूहोंने अपने दायित्वको निभाना छोड़ दिया तब राजाओंने सामन्तोंसे काम लेना शुरू किया। आज भी हमारे किसानोंमें जैसे जैसे सामूहिक जीवन जाग रहा है वैसे वैसे उन्हें जमींदारीकी संस्थासे लड़ना पड़ रहा है। महात्मा गान्धीका कहना है कि जमींदारोंका जमींदारीका हक एक तरहकी थाती है। एककी थाती तभी दूसरेको सौपी जाती है जब पहला नाबालिग हो या नाबालिगकी तरह बर्त्तता हो। और जब वह बालिग हो जाय या अपने बालिगपनको अनुभव करने लगे, या जब थातीदार अमानतमें खयानत करने लगे तब थाती देर तक नहीं टिक सकती।

फलतः मध्य कालमें जागीरदारोंके पास जो भी शासनसम्बन्धी अधिकार थे, या उनके पास आज जो आर्थिक अधिकार हैं, वे सब वही अधिकार थे जो प्रजाने या प्रजाकी संस्थाओंने अपनी उपेक्षाके कारण उनके हाथोंमें जाने दिये थे। लेकिन किस किस प्रदेशमें, कब कब ग्रामसंस्थाओं और सामन्तोंके अधिकारोंकी ठीक हदबन्दी कैसे होती रही, यह मध्यकालीन इतिहासमें बड़ा खोजका विषय है।

ऊपरकी विवेचनामें अतीतका रास्ता टटोलते टटोलते कहीं कहीं मैं वर्तमान तक भी पहुँच गया हूँ, और वर्तमानकी खिड़कीमेंसे भविष्यकी ओर झाँकनेकी भी कोशिश की है। इस हिमाकतके लिए मेरी यही सफाई है कि यदि इतिहास हमारे भविष्य पर प्रकाश न डाल सके तो उसका लाभ ही क्या है।

बर्बर और म्लेच्छ

*

लेखक — श्रीयुत वासुदेवशरण एम्. ए.

[क्युरेटर, एन्टिकेरियन् म्युजियम, मथुरा]

§ १. बर्बर

बर्बर शब्द भारतीय साहित्यमें अत्यन्त प्राचीन है। इसकी निरुक्तिका संस्कृत भाषामें ठीक पता नहीं चलता। जान पड़ता है यह शब्द किसी दूसरी भाषासे लिया गया है। आधुनिक हिन्दी भाषामें 'बड़बड़ाना' एक धातु है। इस समय इसका प्रयोग क्रोधपूर्ण अस्पष्ट भाषणके लिए होता है। व्याकरणकी दृष्टिसे यह 'बर्बर' शब्दकी नामधातु प्रतीत होती है, अर्थात् 'बर्बर' की तरह बोलनेका नाम 'बर्बराना' या 'बड़बड़ाना' हो सकता है। यदि यह व्युत्पत्ति ठीक है, जैसी कि सम्भावना प्रतीत होती है, तो यह धातु हमारे प्राचीन इतिहासके एक युग पर विशेष प्रकाश डालती है।

भारतीय साहित्यमें सबसे पहले ऋक्प्रातिशाख्यमें बर्बर शब्दका प्रयोग मिलता है। १४ वें पटलके २६ वें सूत्रमें कहा है—

अतिस्पशो बर्बरता च रेफे।

इस प्रकरणमें उच्चारणसम्बन्धी दोष गिनाये गये हैं। उनमें रेफका अतिस्पश या कड़ा उच्चारण बर्बरता दोष माना गया है। ज्ञात होता है कि बर्बरोंकी भाषा 'र'कार बहुल थी और उसमें भी 'र'कारका उच्चारण कड़ा (असुकुमार) था। उसीकी अनुकृति जहां आर्य भाषाके उच्चारणमें पाई गई, तो उसको 'बर्बरता' दोष गिना गया। बर्बरता शब्दके हमारे भाषामें स्त्रीकार किये जानेसे पूर्व ही बर्बर जातिके साथ भारतवासियोंका परिचय हो चुका होगा।

पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें भी बर्बर शब्द कई गणोंमें पड़ा है, यथा 'कडा-रादि' (२।२।३८), 'काशादि' (४।२।८०), 'कृशाश्वादि' (४।२।८०), 'तक्षशिलादि' (४।३।९३), और 'धूमादि' (४।२।१२७)। इनमें तक्ष-शिलादि गणवाला पाठ असली जान पड़ता है। इस गणमें सभी शब्द देश-वाची हैं। और 'सोऽस्याभिजनः' इस अर्थमें गणस्थित शब्दोंसे प्रत्ययका

विधान किया गया है । निवास और अभिजन इन दो अर्थोंमें पाणिनिने प्रत्यय किये हैं । इनका मेद टीकाकारोंने इस प्रकार स्पष्ट किया है —

यत्र संप्रति उच्यते स निवासः ।

यत्र पूर्वैरुच्यते सोऽभिजनः । (काशिका)

अर्थात् वर्तमान कालमें रहनेकी जगहकी संज्ञा निवास है; जहां पूर्वज रहते थे, वह देश अभिजन कहलाता है । बर्बर देश जिनका अभिजन हो वे लोग इस कालमें 'बा बर' कहलाते थे । सम्भवतः भारतवर्षमें बर्बर लोग बर्बर देशसे आ कर बसे थे और उनके अभिजनके नाम पर उनको यहां 'बा बर' कहा जाता होगा । महाभारत हमारी सभ्यताका विश्वकोष है । उसमें भी कई स्थानों पर बर्बर जातिका उल्लेख है* । इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उल्लेख सभापर्वके नकुलके पश्चिम दिग्विजय पर्वमें आया है —

ततः सागरकुक्षिस्थान् म्लेच्छान् परमदारुणान् ।

पह्वान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान् ॥ ३२।१७

इस वर्णनमें बर्बरोंको परमदारुण म्लेच्छ कहा गया है । द्रोणपर्व ११।८।१५, २१ में भी बर्बर म्लेच्छ कहे गये हैं । एवं शान्तिपर्व ६५।१३ में बर्बरोंको दस्यु कहा है । म्लेच्छ शब्द भी हमारी भाषामें बाहरसे आया हुआ है । पश्चिमकी सामी जातियोंके लिए भारतीय शब्द म्लेच्छ था । बर्बर भी सामी (Semitic) वर्गमेंसे थे, अतएव भारतीय आचार्योंने उनकी गणना म्लेच्छोंमें ही की ।

दूसरी बात जो महाभारतके ऊपर लिखे वर्णनसे ज्ञात होती है वह यह कि बर्बर जाति भारतवर्षमें समुद्रके किनारे बसी हुई थी । 'सागरकुक्षिस्थ' पद विशेष महत्त्वका है । प्राचीन सौवीर राष्ट्र और सिन्धु नदीके सागरसे संगमका प्रदेश 'सागरकुक्षिस्थ' पदसे समझा जा सकता है† । प्राचीन 'सिन्धु' देश तो

* सभापर्व ३२।१७; ५१।२२ (युधिष्ठिरको उपहार लाने वालोंमें) । वनपर्व ५१।२३ (युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भाग लेने वाले लोगोंमें); २५३।१८ (कर्णदिग्विजयमें) । द्रोणपर्व १११।१५, २१, ४५ । शान्तिपर्व ६५।१३ । अनुशासनपर्व ३५।१७, १८ ।

† "नकुलके पश्चिम-दिग्विजयमें जिन 'सागरकुक्षिस्थ' (समुद्रकी कोखमें रहने वाले) शर्कोंका उल्लेख है, वे सिन्धु नदीके मुहानेके समुद्र पर नहीं, प्रत्युत कास्पियन समुद्र पर रहने वाले शक थे, [दे० ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ, विभाग ८, पृ० ९] 'सागर कुक्षिस्थ शक' ये शब्द दारय बहूके अभिलेखके 'सका तर दरया' का स्पष्ट अनुवाद हैं । (—'सका तर दरया' कास्पियन पर ही रहते थे । —भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ० ४०६) इसके

सौ वीर के उत्तरमें था जिसे अब सिन्ध सागर दोआब कहते हैं [देखिए—भारतभूमि० पृ० ३७] ।

समुद्र किनारेके एक प्रदेशमें बर्बरोका उपनिवेश रहा जान पड़ता है । यूनानी लेखकोंने भी इसी स्थान पर एक नामका उल्लेख किया है जो समापर्व वाले वर्णनका समर्थन करता है । प्रसिद्ध भूवृत्त-लेखक तोलमि (Ptolemy) ने लिखा है—

“And in the island formed by the river (Indus) are these towns:—Patala, Barberi.”

[मैकडलकृत अंग्रेजी अनुवाद, ‘एन्ड्रियन्ट इन्डिया बाइ टॉलमी, पृ. १४६]

अर्थात् सिन्धुनद और सागर संगमके बीचके एक द्वीप पर बर्बरी नगर था । ‘पेरी प्लस’ नामक ग्रन्थमें सिन्धुके विचले मुहाने पर स्थित ‘बर्बरी कन’ (Barbarikon) नगरका नाम आया है । हमारी सम्मतिमें यही बर्बर जातिका प्राचीन भारतीय उपनिवेश था* । बर्बर जातिने व्यापारके लिए भारतवर्षमें समुद्रके पास अपना एक उपनिवेश बनाया मालूम होता है । भारतीय

अलावा नकुलके रास्तेमें उनसे पहले जिन देशोंके नाम हैं उनके क्रमके अनुसार इन शकोंका देश कास्पियन पर ही आता है ।

तीसरे, सभा पर्वके अन्तर्गत दिग्विजय पर्वका भूवर्णन दूसरी शताब्दी ई० पू०का है और उस समय तक भारतमें शक न आये थे । तोलमि दूसरी शताब्दी ई०का लेखक है और ‘पेरिप्लस’ का लेखक लगभग ८० ई० का । उस समय तक शक लोग भारतमें आ चुके थे । शायद उनके साथ ही बर्बरोका कोई दल भी आया हो । लेखककी मुख्य स्थापना यह है कि बर्बर और म्लेच्छका अर्थ हामी और सामी है । मुझे यह ठीक जान पड़ती है ।” — जयचन्द्र विद्यालंकार

* संपादकीय — वराहमिहिरकी बृहत् संहिता [अध्याय १४ श्लोक १८] में ‘बर्बर-किरातखण्ड’ का नैऋत्य दिशामें होना सूचित किया है । राजशेखरने काव्य मीमांसा [अध्याय ७, पृ० ९४, गायकवाड ग्रंथमाला] में उत्तरापथके जिन देशोंके नाम गिनाये हैं उनमें, —‘तुषार-तुरुष्क-बर्बर’—इस प्रकार तुषारा और तुर्कके साथ बर्बर देशका भी नाम गिनाया है । विनयचन्द्र कविने अपने कविशिक्षा नामक ग्रन्थमें भारतवर्षके चक्रवर्ती सम्राट्के ८४ देश बतलाये हैं जिनमें ‘बर्बर’ का भी समावेश किया गया है ‘नेपाल-टक्क-तुरुष्क-ताइकार-बर्बर-जर्जर’ इत्यादि । इससे मालूम होता है कि यह ‘बर्बर’ उपनिवेश सिन्धुके मुहानेसे पर पश्चिमकी ओर कहीं बलुचीस्थानके प्रदेशान्तर्गत था । जैन ग्रन्थोंमें, कई जगह बर्बरकूल के नामसे भी इसका उल्लेख किया हुआ मिलता है जिससे यह सूचित होता है कि यह समुद्रतीरवर्ती प्रदेश था । जैन साहित्यमें—

व्यापारियोंसे यहां उनका मेल होता होगा । वह भी सम्भव है कि कुछ बर्बर लोग प्राचीन सिन्धु और तक्षशिला तक व्यापारके सम्बन्धसे जाते हों । तक्षशिला उस समय विद्याका विश्वव्यापी केन्द्र था । वहांसे बर्बरोंका परिचय उनकी भाषा और उच्चारणकी विशेषताके कारण सम्भवतः उत्तरापथके और लोगोंको भी प्राप्त हुआ । उच्चारणकी जिस विशेषताका उल्लेख ऋक्-प्रातिशाख्यमें आया है, उसके कारण कालान्तरके संस्कृत साहित्यमें बर्बर शब्द अपढ़, मूढ़, गंवारके अर्थमें प्रयुक्त होने लगा । सुहृद्भेदकी प्रसिद्ध कर्पूरपट रजकके गर्दभकी कथामें गधेने कुत्तेको सम्बोधन करते हुए बर्बर शब्दका प्रयोग किया है—

गर्दभो ब्रूते - 'शृणु रे बर्बर !' ।

सम्भव है अन्य साहित्यकारोंने भी इसका प्रयोग इसी विकृत अर्थमें किया हो । विशेषतः बाणभट्टमें इसका प्रयोग मिल जाना सम्भव है ।

वस्तुतः बर्बरोंका अपना देश उत्तरी अफ्रीकामें सहारा और भूमध्यसागरके बीच वाला वह प्रदेश था जो मिश्रसे ले कर अतलान्तिक समुद्रके किनारे तक

भागम और कथा ग्रन्थोंमें—यह नाम वारंवार मिलता है । बर्बरा या बर्बरिका जातिकी दासियोंका भी उल्लेख मिलता है, जो भारतीय नृपतियोंके अन्तःपुरोंमें रहती थीं । हेमचन्द्रसूरि ने देशीनाममाला में एक 'बर्बरी' शब्द दिया है जो एक प्रकारकी केशरचनाका वाचक है । गुजरातमें आज भी यह शब्द इस अर्थमें सर्वत्र प्रचलित है । कोली आदि जैसी कुछ कनिष्ठ जातियोंमें कई मनुष्योंका नाम भी 'बाबर' ऐसा रखा जाता है । इससे प्रतीत होता है कि बर्बर लोक बहुत प्राचीन कालसे भारतके पश्चिमीय समुद्रतीर पर अच्छी संख्यामें बसे हुए थे । काठियावाड़के दक्षिणके एक विभागका नाम बाबरियावाड है जिसका नामकरण भी इसी बर्बर जातिके संबन्धसे हुआ है । चालुक्य वंशीय चक्रवर्ती नृपति सिद्धराजका एक बिरुद 'बर्बरकजिण्ण' है जिसका कुछ इतिहास सिद्धराजके जीवनमें दिया गया है । सिद्धराजके प्रबन्धोंमें यद्यपि इसका वर्णन कुछ चमत्कारपूर्ण ढंगसे किया गया है और जिस बर्बरको उसने अपने वशमें किया था उसको एक अमानुषिक शक्ति धारण करने वाला राक्षस बतलाया गया है । लेकिन उस कथाका रहस्य यह बतलाता है कि वह बर्बर एक बलवान् शक्तिशाली और कुछ जादूगिरी जानने वाला विदेशी मनुष्य था जो अपनी टोलीका नायक था और शायद सिद्धराजके समयमें बर्बर कूलसे उत्तर गुजरातमें चला आया था और अम्बा और तारंगके समीपके पहाड़ी प्रदेशमें छिप कर सिद्धपुरके समीपके सारस्वत मंडलमें उपद्रव मचाये करता था । सिद्धराजने उस पर आक्रमण कर उसको अपना अनुचर बनाया और फिर उसकी सहायतासे राजाने कई कार्य सिद्ध किये । — जि० वि०

फैला हुआ था । उत्तरी अफ्रीकाकी लिबियन जाति आज तक 'बर्बर' कहलाती है । इस शब्दकी ठीक ठीक व्युत्पत्ति अनिश्चित है । यूनानी लोग असभ्य लोगोंको इसी प्रकार बर्बर (Barbaroi) कहते थे जैसे हम लोग कालान्तरमें म्लेच्छ और बर्बर शब्दोंका प्रयोग करने लगे । मिश्रके प्राचीन लेखोंमें (१७०० ई० पू०—१३०० ई० पू०) 'बरबर' यह जातीय उपाधि पाई जाती है । बर्बर जाति पर इस समय अरबोंका अधिक प्रभाव पड़ा है, परन्तु वह सदासे एक पृथक् जाति रही है । बर्बर भाषा आज तक एक जीवित भाषा है जिसका क्षेत्र मिश्रसे अतलान्तिक तक एवं भूमध्यसागरसे सूडान तक विस्तृत है । यह भाषा अफ्रीका महाद्वीपकी भाषाओं [Hamitic]* में गिनी जाती है । यद्यपि बर्बर भाषा म्लेच्छ भाषासे कुछ कुछ समता रखती है पर है उससे भिन्न । उत्तरी अफ्रीकामें बर्बर भाषाके अनेक प्राचीन शिलालेख पाये जाते हैं ।

§ २. म्लेच्छ

महाभारतकारने बर्बरोंको सामान्य रीत्या म्लेच्छ कहा है । वस्तुतः म्लेच्छ बर्बरोंसे पृथक् थे । वैदिक साहित्यमें बर्बर शब्दका कहीं प्रयोग नहीं हुआ । म्लेच्छ शब्दका प्रयोग केवल एक बार शतपथ ब्राह्मणमें आया है—

तेऽसुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलव इति वदन्तः पराबभूवुः । तत्रैतामपि वाचमूदुः । उपजिज्ञास्याः स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेदसुर्या ह्येषा वाक् । श० ३।२।१।२३-२४

अर्थात् 'हेलवः हेलवः' कहते हुए असुर हार गये । यह असुरोंकी बोली थी । ब्राह्मण म्लेच्छोंकी तरह न बोले । काण्वशाखाके शतपथमें 'हैलो हेलः' यह पाठ है । महाभाष्यमें 'हेलयो हेलयः' यह पाठ है । वहां स्पष्ट कहा है कि यह अपशब्द म्लेच्छ है अर्थात् म्लेच्छ भाषाका है† । स्वर्गीय श्रीकाशीप्रसादजी जायसवालने म्लेच्छ शब्दके सम्बन्धमें लिखा था—

* अफ्रीकाकी हॅमेटिक वर्गकी भाषाओंको हमने 'बर्बर' भाषा कहा है, और सेमेटिक वर्गकी भाषाओं जैसे हिब्रू, अरबी आदिको संस्कृतमें 'म्लेच्छ' भाषाकी संज्ञा दी जा सकती है ।

† तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः । तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै । म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः । म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम् ।—महाभाष्य पस्पशाहिक ।

‘म्लेच्छ is not a Sanskrit but a Semitic word: *melekh*, ‘king’; the Pali form of the same word is *milakkha*, (Childers) and the Jaina Prakrit, *malikkhu* (also *milukkhā*, *milekkha*, *milikkha*, *milakkha*, and Hindi *malichchha*). *Heleva* is *h* (Semitic article, or Semitic vocative, *he*)-*ellu* “holy” (Assyrian), “clowah”, “God”.’ [JBORS, 1920, p 196.]

अर्थात् म्लेच्छ शब्द असुर (असीरिअन्) भाषाका है। ब्राह्मणमें जो हेलव शब्द है, उसमें भी एल्लु शब्द आसुरी भाषाका है जिसका अर्थ ईश्वर है।

इस प्रकार म्लेच्छ भाषाका परिचय शतपथब्राह्मणके समयसे ही भारत-वासियोंको था। महाभारतमें लिखा है कि विदुरने युधिष्ठिरसे म्लेच्छ भाषामें लाक्षागृहके आगसे जलनेकी बात कह दी थी—

विदुरेण कृतो यत्र हितार्थं म्लेच्छभाषया । आदि २।१०३

उस संभाषणका अर्थ कुन्तीकी समझमें कुछ न आया था [आदि० १४७ । ३०-३३] इसलिए युधिष्ठिरने उस म्लेच्छ भाषाका अर्थ संस्कृतमें समझाया। यह सम्भव माह्रम होता है कि असुरोंके साथ परिचय होनेके कारण विशिष्ट व्यक्ति महाभारत कालमें असुरोंकी म्लेच्छ भाषाका ज्ञान भी रखते थे। प्राचीन असुर (असीरिअन्), फिर्नाशिअन् व हिब्रू भाषाओंके अध्ययनसे सम्भव है कि और भी उन भाषाओंके शब्द संस्कृतमें मिलें। जैसा जायसवालजीने लिखा है मलिक्खु या मिलक्खु शब्द हमारी प्राकृतोंमें उसी भाषासे आ गये थे। इस प्रकार प्राचीन भारतवासी अपने व्यापार अथवा साम्राज्य विस्तारके कारण म्लेच्छ और बर्बर (सेमेटिक और हॅमिटिक) इन दो बड़ी जातियोंके संपर्कमें आ चुके थे। उनका प्रभाव प्राचीन आर्यभाषाके कुछ शब्दों पर पड़ा हो, यह भी एक अनुसन्धानके योग्य विषय है। इस प्रकारके एक शब्दकी चर्चा हम अगले लेखमें करेंगे।

मीर खुसरोके चित्र

*

लेखक — श्रीयुत राय कृष्णदासजी

बोस्टन ललितकला म्यूजियममें एक मोटे व्यक्तिकी लेटी हुई शवीह है (सं० २१. १६७४), जिस पर उसका नाम मीर खुसरो लिखा है (देखिए प्लेट १)। डाक्टर कुमार स्वामीने इस शवीहको जहांगीरके अभागे पुत्र शाहजादा खुसरो (१५८७-१६२२ ई०) की माना है (बोस्टन म्यूजियम कैटलॉग जिल्द ६, पृ० ३६, ३७)। किन्तु उन्होंने ऐसा करनेका कोई कारण नहीं दिया है। इसी व्यक्तिकी पलथी मार कर बैठी हुई एक शवीह इंडिया आफिस लाइब्ररीके सुप्रसिद्ध जानसन संग्रहके ६४ वें मुरक्केके चौतीसवें चित्रमें है, जिसे इवान चुकिनने अपनी मुगल कालीन भारतीय चित्रकला नामक प्रामाणिक पुस्तकमें^१ प्रकाशित किया है (देखिए प्लेट २)।

मेरी रायमें यह किसी और ही मीर खुसरोका चित्र है। इसके कई कारण हैं —

- (१) मुगल शाहजादोंकी पदवी मीर नहीं मिरजा होती थी।
- (२) इस व्यक्तिका मुगलवंशसे ज़रा भी रूप-सादृश्य नहीं है, हालां कि उस कुलमें ऐसा सादृश्य बहुत अधिक था।
- (३) इसकी आकृति सुन्दर नहीं है। शाहजादा के विषयमें सर टॉमस रोके पादरीका लेख मिलता है कि वह बड़ा सुन्दर जवान था^२।
- (४) इस व्यक्तिके तन पर आभूषणोंका सर्वथा अभाव है जो मुगल राजवंशकी मर्यादाके सर्वथा विरुद्ध है।

१. ला पेंतियर इंडिएन आ लेपोक दे प्रां भोगोल, इवान चुकिन, पारी। (La Peinture Indienne à L'Époque Des Grands Moghols, Ivan Stchoukine, Paris) २. कुमार स्वामी, उक्त कैटलॉग, उक्त पृष्ठ।

(५) इसकी पगड़ी मुगल पगड़ीसे बिल्कुल भिन्न है । ऐसी पगड़ी अकसर उन व्यक्तियोंके सिर पर मिलती है जो भारतके बाहरसे आ कर मुगल दरबारमें स्थान पाते थे । अर्थात् यह विदेशी पगड़ी है ।

उक्त कारण काफी प्रबल हैं । इनके सिवा एक बात और है—लुव्र (फ्रांस) के संग्रहमें मुहम्मद नादिर समर-कन्दीकी अंकित एक एकचश्म शवीह है जो इसी व्यक्तिकी जान पड़ती है (प्लेट ३) । इसका मुटापा, ठुड्डो दाढ़ी और विदेशी पगड़ी उक्त शवीहसे ज्यों की त्यों मिलती है । समर-कन्दी शाहजहाँ कालीन चित्रकार है और उसकी यह शवीह १६४०—५० की बनी होनी चाहिए । क्यों कि जैसा बूटादार ओर ओछे पल्लेका पटका इस व्यक्तिकी कमरमें बँधा है वैसा पिछले शाहजहाँ कालसे चलता है । ऐसी अवस्थामें इस मीर खुसरोका काल मिरजा खुसरोसे बीसों बरस इधर आ जाता है ।

अब खोज इस बातकी होनी चाहिए कि यह मीर खुसरो कौन था । लोकमें एक खुसरोकी कहानी चलती है जो अकबर बादशाहका साला कहा जाता है और बीरबलको नीचा दिखानेके फेरमें स्वयं उपहासास्पद बना करता है । इन चित्रोंका व्यक्ति भी अपने मुटापे और शराहतके कारण उपहासकी मूर्ति है । कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसीकी भूलो भटकी स्मृति अकबर—बीरबलसे सम्बद्ध कर दी गई हो ?

मीर खुसरोके चित्र



२४

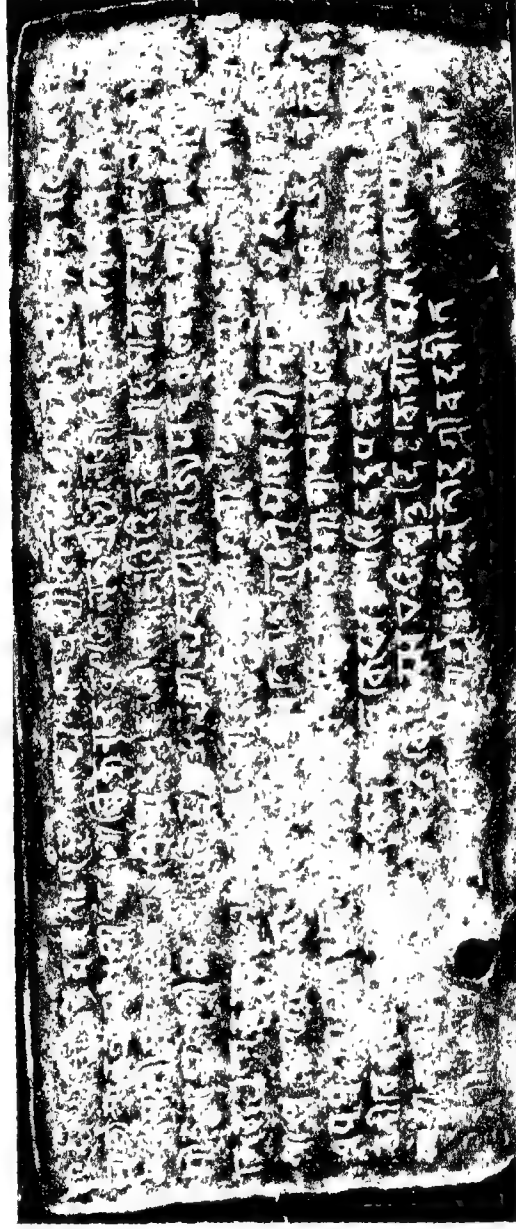


२५

भारतीय विद्या]



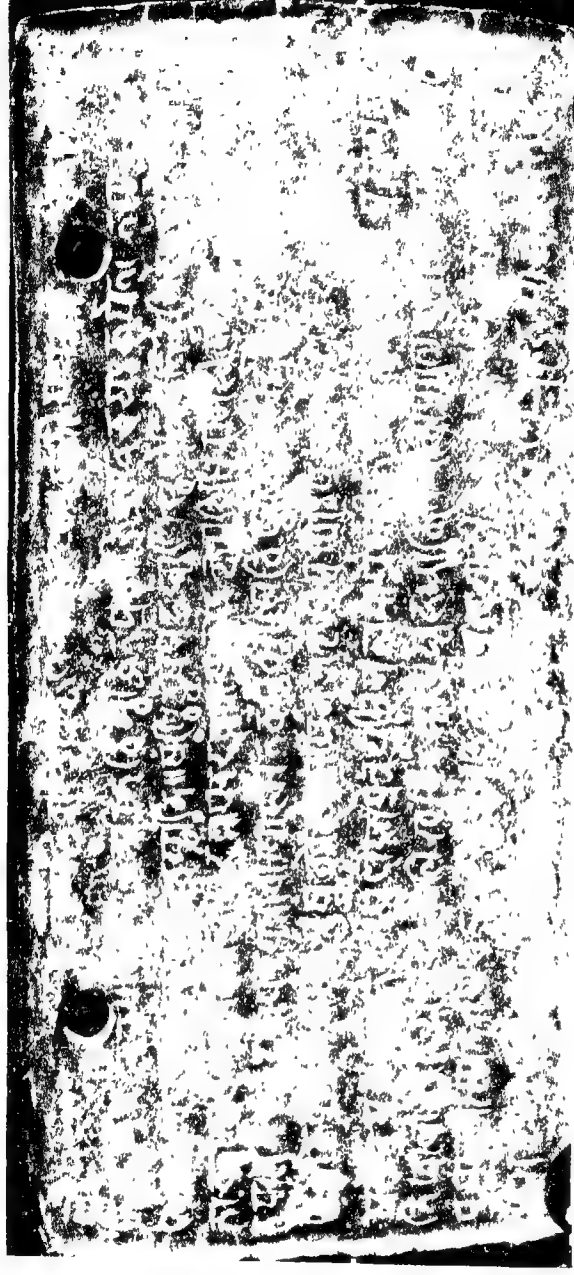
२६



वामुण्डराज चौलुक्यनं ताम्रपत्र — प्रथम पत्र

भारतीय विद्या]

[वर्ष १, अंक १]



चामुण्डागज चोत्तुक्यनु ताप्रपत्र — द्वितीय पत्र

દિવંગત સાધ્વરજ્ઞ શ્રીકેશવલાલ ધ્રુવવાલું
ચામુંડરાજ ચૌલુક્યનું સંવત્ ૧૦૩૩ નું
તામ્રપત્ર
[સંપાદકીય લેખ]

તામ્રપત્રની પ્રાપ્તિ

અહિ પ્રકટ કરવામાં આવતા તામ્રપત્રની પ્રથમ ફોટોકૉપી, સન્ ૧૯૩૩ના ઉનાળામાં, સ્વર્ગસ્થ સાધ્વરજ્ઞ દીવાન બહાદુર શ્રીકેશવલાલ હાલદરાય ધ્રુવતરફથી મને અમદાવાદમાં આપવામાં આવી હતી. અસ્સલ તામ્રપત્ર, એ અગાઉ તેમની પાસે આવેલું, ત્યારે તેમણે એના માલીક પાસેથી, જે તે આપે તો પોતે રાખી લેવાની ઇચ્છા પ્રદર્શિત કરી, પરંતુ માલીકે આપવાની અનિચ્છા બતાવતાં તેમણે એની એક ફોટોકૉપી કરાવી લીધી અને અસ્સલ તામ્રપત્ર એના માલીકને પાછું આપી દીધું. પછી તેમણે એ કૉપી ઉપરથી એ અનુશાસનની પોતાના હાથે નક્કલ કરી અને એમાં પોતાને કેટલાક અક્ષરો શંકિત અને સંદિગ્ધ લાગ્યા તેથી તેમણે એ ફોટોકૉપી અને જાતે ઉતારેલી નક્કલ મને બેઈજવા આપી. તેમની આજ્ઞાનુસાર મેં એની શુદ્ધ પ્રતિલિપિ કરી આપી અને એના વિષયમાં મેં મારો અભિપ્રાય જણાવ્યો. તેમનો વિચાર જાતે જ એ તામ્રપત્રને, કોઈ માસિક કે ત્રૈમાસિક પત્રમાં પ્રકટ કરી દેવાનો થઈ રહ્યો હતો અને તેથી એમાં સૂચવેલાં સ્થળ વિગેરેની કેટલીક માહિતી પણ મેળવી લેવાનો તેમણે પ્રયત્ન કર્યો હતો; પણ મારી પ્રતિલિપિ બેઈ તેમણે, પોતાની હમેશની અસામાન્ય સુજનતાની નીતિ પ્રમાણે, મને જ એ અનુશાસનનું સંપાદન કરી પ્રકાશિત કરવાની અનુજ્ઞા આપી, અને એ સંબંધમાં પોતે સ્થળાદિ સંબંધે જે કાંઈ માહિતી મેળવી હતી તે પણ સાથે આપી. મેં તેમની આજ્ઞાને શિરોધાર્ય કરી અને અવકાશ લઈ થોડા જ સમયમાં એ અનુશાસનને ક્યાંક પ્રકટ કરવા મોકલી આપવાનું સ્વીકાર્યું. એ અસ્સલ તામ્રપત્ર કોની પાસે છે એ વિષે મેં તેમને તે વખતે કાંઈક પૂછ્યું, પણ પોતે ‘એ પછી જણાવીશ’ એટલું કહીને મૌન રહ્યા. મને તો અસ્સલની ચોખ્ખી ફોટોકૉપી જ મળી ગઈ હતી તેથી એ મૂળ તામ્રપત્ર જોવાની તેવી કશી વિશેષ ઉત્કંઠા પણ હતી નહિ.

તે પછી તરત જ, ત્રીપ્તકાળનો વિશ્રાન્તિસમય પૂર્ણ થઈ જવાથી હું મારા કાર્ય-સ્થાને (શાન્તિનિકેતન) ચાલ્યો ગયો અને એ અનુશાસનની પ્રતિલિપિ વિગેરે પણ સાથે લેતો ગયો. તે વખતે જ સિંધી જૈન ગ્રંથ માલાનું કાર્ય શુરુ કરવામાં આવ્યું હતું અને પ્રબન્ધચિન્તામણિ વિગેરે ૩-૪ ગ્રંથોના સંપાદનનું કાર્ય એક સાથે હાથમાં લીધું હતું; એટલે તત્કાળ હું એ અનુશાસન તરફ લક્ષ્ય આપી શક્યો નહિં. પછી ફરી રજાઓ દરમ્યાન મારે અમદાવાદ તરફ આવવાનું થયું અને તે વખતે એ ફોટોકૉપી વિગેરેનાં કામગીરો, સરતચૂકથી કોઈ એક પુસ્તકમાં મૂકાઈ ગયાં જેથી બે-ત્રણ વર્ષ સુધી મને જાણાં જ નહિં. મુરબ્બી શ્રીકેશુલાલ જ્યારે જ્યારે પ્રસંગ

આવતો ત્યારે ત્યારે એ સંબંધમાં પુણ્ય-પરમ્પર કરતા અને હું તેમને મારી એ ગફલ તની વાત જણાવી ક્ષમા માંગતો. શાંતિનિકેતન અને અમરબાદ એમ એ સ્થાનો વચ્ચે મારાં પુસ્તકો અને કાંઈકો અઢિ તરેમર ફેરવાતાં હતાં, તેથી એ બધાં એકએક કરીને ફેરી યદય અને તેમાંથી એ પોત-એકા કાગળો શોધી નાદવાં અશક્ય થઈ પડ્યા. અમરબાદ ને શાંતિનિકેતન વચ્ચે અને તે સાથે મારાં બધા પુસ્તકો આદિ, એક જ હેકાગે. અમરબાદ માં બેઠાં હતાં ત્યાં ધીમે અવકાશનુસાર એ પુસ્તકો અને કાંઈકો અનુક્રમે તપાસવા. તો તો પાણી એ કાગળીયાં તથા નવાં મને એથી સ્વેચ્છ નિરંજન અને કાંઈકો પાણી થઈ જાય. શ્રીકેશવલાલનામને એ અમરબાદ તામ્રપત્ર કોની પાસે છે એ વિષે હું પુછવું પડે તેના જવાબમાં તેમણે જણાવ્યું કે એ અમરબાદ માં મારા પાસે આવ્યો નથી અને તેનો કંઈ પત્ર પાણી મળતો નથી વિખેરે. હું આથી મનમાં બહુ રાગ થયો અને મારા હાથમાં આવેલી એ તામ્રપત્રની નકલ આવી રીતે એ અદૃશ્ય થઈ ગઈ તેથી દિલ બહુ દુઃખિત થયું. હાથમાં આવેલું કોઈ અમરબાદ રત્ન જોઈ પોતાની પાસે લીધે તેમ મને તે વખતે કાંઈ.

એવામાં, અચાનક, એક દિવસ, એક ભાત મારી ભાગ દાદતા કહતા. ભારતી નિવસવાળા મારા સ્થાને આવ્યા અને તેમણે ટેટલીક પ્રાર્થના વાતચીત કર્યા પછી, ધીમે રહી, એક દ્વારમાં વીંટલા એ તામ્રપત્ર કાઢ્યાં અને મને તેવા આપ્યા. એ જોતાંની સાથે જ મને પારાવાર આશ્ચર્ય થયું અને ક્ષણભર તો જાણે હું અસપ્રજ્ઞાન સમાધિમાં લીન થઈ ગયો હોઉં તેમ ભાસ્યું. બીજી જ ક્ષણે ભાનમાં આવી મેં પૂર્ણપણે જાણી લીધું કે આ તો તે જ અસ્સલ અનુશાસન છે જેની કોટકાળી મારા હાથમાંથી અજબારીને અદૃશ્ય થઈ ગઈ છે અને જેની શોધ કરી કરીને હું થાકી ગયો છું. સ્વપ્નમાં પણ જેને જોવાની આશા ન રહી હતી તે આ તામ્રપત્ર, આમ અકસ્માત્ આજે સ્વયં ઉપસ્થિત થયું છે. મને અંતરમાં અત્યંત આનંદ થઈ રહ્યો હતો. જેમ, અકસ્માત્ નિર્ધન થઈ ગએલા અને અનેક ઉપાયો કરના છતાં પણ કશુંય દ્રવ્ય પ્રાપ્ત નહિ કરી શકનારા કોઈ કૃપણુરોખર ધનદાસ એકને અચાનક પોતાના ઘરમાંથી જ કોઈક અપૂર્વ નિધિ મળી આવે અને તેથી તેને જેટલો આનંદ થાય તે કરતાં પણ, કદાચ વધારે આનંદ, મને તે વખતે, એ અસ્સલ તામ્રપત્ર જોવાથી થઈ આવ્યો.

મેં એ બાંધને, એ તામ્રપત્રમાંની હકીકતની મતલબ જણાવી અને કહ્યું કે એની નકલ મારી પાસે ઘણા વખતથી આવી ગઈ હતી છે અને હું એને થોડા જ સમયમાં પ્રકટ કરવા ઇચ્છું છું. જો એમને હરકત ન હોય તો થોડા દિવસ હું એ તામ્રપત્રને પોતાની પાસે રાખવા ઇચ્છું છું. એ બાંધએ બહુ જ શ્રદ્ધા અને સૌજન્યપૂર્વક મારી પાસે એ તામ્રપત્ર મૂકી જવાની અને એમનો યથેષ્ટ ઉપયોગ કરવાની પોતાની ઉદારતા બતાવી. એ બાંધને શ્રીયુત માણેકલાલ ચકુલાલ દવે, ગુજરાતના ઇતિહાસના એ ખૂબ પ્રેમી અને ઉત્સાહી અભ્યાસી છે. ગાયકવાડ સરકારના કડી પ્રાંતના એક ગામડાની નાનકડી નીશાળમાં અમુક ગ્રામબાળકોને પ્રાથમિક કેળવણી આપવાનું પુણ્યતમ કાર્ય એ કર્યું કરે છે; અને તે ઉપરાંત જે કાંઈ વખત મળે તેમાં, કાં તો ગૂર્જર ભૂમિના જૂના ખંડીએરો ખોળતા ફેરે છે અને કાં તો જૂના ઇતિહાસનાં ઉદ્ધરણો અને

અવતરણો એકઠાં કર્યાં કરે છે; અને તે બધું બેઠું બેઠું, પોતાની શક્તિ અનુસાર માતૃભાષાના ચરણે, લેખાદિદ્વારા જે કાંઈ અદ્ય-સ્વદ્ય ભેટ ધરી શકાય તે ધરવા સતત પ્રયત્નવાન રહે છે. કોલેબેમાં અને તેવા બીજા સરકારી શોધખોળના ખાતાઓમાં વર્ષ દહાડે હબરોના પગારો ખાનારા આપણા પ્રોફેસરો અને મહાસાક્ષરોને જે કરવાની યત્કચિત્ત પણ આવશ્યકતા લાગતી નથી અને જેના માટે શનિવારનો અડધો દિવસ પણ ગુમાવવા ઇચ્છતા નથી, તેવા કામ માટે, એક બહુ જ સામાન્ય ગણના અને માંડ માંડ જેનાથી પોતાની ઉદરપૂર્તિ થાય તેટલું પણ પૂરું વેતન પ્રાપ્ત નહિ કરનારા, આ મહોતાજ અનેક ઉબગરાઓ કર્યાં કરે છે. દિવસો સુધી ભૂખ્યા તરસ્યા ગામડાઓમાં રખડ્યાં કરે છે, અને મહિનામાં અમુક દિવસ ઉપવાસ કરીને પણ જે અમુક પૈસા બચાવી શકાતા હોય અને તેનાથી અમુક ચોપડીઓ કે ચોપાનીઆઓ ખરીદી શકાતા હોય તો તે ખરીદવા, કાયાને કસ્યાં કરે છે. ભાઈ દવે જેવાનું એ તપ તે જ ભગવદ્ગીતામાં ભગવાને કહેલું સાચું વાજ્ઞયનપ છે.

ભાઈ દવેએ એ તામ્રપત્ર ક્યાંથી અને કેવીરીતે મેળવ્યું એ વિષે પૂછતાં તેમણે એનો કેટલોક ઇતિહાસ કહી બતાવ્યો અને એ મેળવવા માટે પોતે કેટલો શ્રમ ઉઠાવ્યો છે તે જણાવ્યું. મને તો એ તામ્રપત્ર, ખોવાઈ ગયેલું રત્ન પાછું હાથમાં આવ્યું હોય તેના જેવું, અત્યંત પ્રિયદર્શન લાગ્યું અને તેથી ભાઈ દવેને એના દર્શન કરાવવા માટે હાર્દિક ધન્યવાદ આપ્યો.

ભાઈ દવે ઉઠીને ગયા અને હું તરત જ એ તામ્રપત્રની નકલ કરવા બેઠો. નકલ કરી રહ્યા પછી રાત્રે પથારીમાં સૂતો સૂતો એ વિષે કાંઈક વિચારણા કરવા લાગ્યો. લગભગ રાત્રિના બારેક વાગ્યા હશે. ઇન્ડીઅન એન્ડીકવેરીના ૬ ઠા પુસ્તકમાં મૂળરાજ વિગેરેનાં કેટલાંક તામ્રપત્રો પ્રકટ થયાં છે તેમની સાથે આ અનુશાસનની સરખામણી કરવાની મનમાં ઉત્કંઠા થઈ આવી. હું પથારીમાંથી ઉઠ્યો અને કબાટ ઉઘાડી એ ૬ હું વાંલ્યુમ શોધી કાઢ્યું. પુસ્તક ઉઘાડીને બેઠું છું તો એમાં, જે પાનાઓમાં ચાંલુક્યોનાં તામ્રપત્રો મુદ્રિત થયેલાં છે તેમની વચ્ચે એ ખોવાયેલી ફોટો-કૉપી અને ઉતારેલી પ્રતિલિપિ વગેરે કાગળો મૂકેલાં નજરે પડ્યાં ! ઉપરથી દેખાતી અતિ ક્ષુદ્ર જેવી આ વસ્તુ, મને તે વખતે મહાન ચમત્કાર જેવી લાગી !

અમદાબાદમાં ભરાયેલા બારમા ગુજરાતી સાહિત્યસંમેલનના, ઇતિહાસ વિભાગના પ્રમુખ તરીકેના મારા ભાષણમાં, મેં આ તામ્રપત્ર વિષે ઉલ્લેખ કર્યો હતો અને પ્રમાદને લઇને એને પ્રકાશમાં ન મૂકી શક્યો તે માટે શ્રીકેશવલાલભાઈની-જેઓ તે વખતે વિદ્યમાન હતા-પ્રકટ ક્ષમા માંગી હતી. તે વખતે જ એવો મનમાં નિર્ધાર કર્યો હતો કે હવે એ તામ્રપત્રને જલ્દી જ ક્યાંયે પ્રકટ કરી દેવું પરંતુ એ નિર્ધાર પણ તરત સફળ ન થયો. વિધિનો સંકેત આ 'ભારતીય વિદ્યા' દ્વારા જ એને પ્રકાશમાં મૂકવાનો હશે એમ લાગે છે.

આ તામ્રપત્ર પ્રથમ શ્રીકેશવલાલભાઈને પ્રાપ્ત થયું હતું અને તેમણે જ મને એને પ્રકાશિત કરવાની પ્રેરણા કરી અને એની નકલ આપી તેથી આને હું એ સ્વર્ગસ્થના મુગ્ધહીત નામ સાથે અંકિત કરું છું અને મારો પોતાનો કૃતજ્ઞભાવ પ્રકટ કરું છું.

ચામુંડરાજના પિતા મૂળરાજનું સૌથી પહેલું તામ્રપત્ર જે સં. ૧૦૩૦નું બાણ-વામાં આવ્યું છે તેની પ્રાપ્તિ શ્રીકેશવલાલલાલના બંધુ શ્રીહરિલાલ ધ્રુવને થઈ હતી, પણ તેઓ પોતે તેની મૂળ નક્કલ પ્રસિદ્ધિમાં મૂકી ન શક્યા; તે જ રીતે મૂળરાજના પુત્ર ચામુંડરાજનું આ તામ્રપત્ર—જે ઉક્ત તામ્રપત્ર કરતાં માત્ર ત્રણ જ વર્ષ પછી લખવામાં આવ્યું છે—તેમના જ બંધુદ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ એ પણ પોતે એને પ્રસિદ્ધિમાં ન મૂકી શક્યા. ગુજરાતની એકતા અને મહત્તાના મહાલયનો પાયો ચણનારા ચાલુક્ય પિતા—પુત્રના સૌથી જૂના શાસનલેખોનો પ્રથમ પરિચય કરાવવાનું માન, એ દિવંગત બંને ધ્રુવબંધુઓને મળે છે અને એમનાં શુભનામો એ લેખોનાં સ્મરણ સાથે સદા ય સંયોજાએલાં રહેશે. કાંઈક અંગત, પણ પ્રસ્તુત તામ્રપત્રની પ્રાપ્તિના પૂર્વ ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ આવશ્યક એવી હકીકત જણાવી હવે મૂળ વસ્તુનો વિચાર કરીએ.

તામ્રપત્રોની સ્થિતિ

આ અનુશાસન એ પત્રાં ઉપર લખેલું છે. દરેક પત્રની લખાઈ લગભગ ૮ ઇંચની અને પહોળાઈ ૩ ઇંચ જેટલી છે. દરેક પત્ર ઉપર એકેક જ બાણએ લખાણ કોતરેલું છે. પ્રથમ પત્રની બીજી બાણ ઉપર અને બીજી પત્રની પ્રથમ બાણ ઉપર. દરેક પત્રમાં ૧૦-૧૦ પંક્તિઓ કોતરેલી હોઈ આખો લેખ ૨૦ પંક્તિનો છે. તામ્રપત્રોની સ્થિતિ હજી સુધી સારી છે અને લખાણ સ્પષ્ટતાપૂર્વક વાંચી શકાય છે. બન્ને પત્રોને એક સાથે કડીઓમાં ભેરવી રાખવા માટે, દરેકમાં બપ્પે છિદ્રો પાડેલાં છે. પ્રથમ પત્રમાં એ છિદ્રો લખાણની છેલ્લી પંક્તિની વચ્ચે અને બીજી પત્રમાં પહેલી પંક્તિની વચ્ચે આવેલાં છે. બીજી પત્રમાંનાં છિદ્રો લગભગ ગોળાકાર છે ત્યારે પ્રથમ પત્રમાંનું જમણી બાણનું છિદ્ર કાંઈક લંબગોળ છે. પત્રાં ઘડનારની બેકાળજીથી જ આ છિદ્ર વિષમાકાર બન્યું છે. પત્રાં અત્યારે તો છૂટાં જ છે—કડીઓમાં ભેરવેલાં નથી. બન્ને પત્રોની લખાણવાળી બાણની ફરતી કિનારો, ટીપીને ઠીક ઠીક ઉપસેલી બનાવવામાં આવી છે, જેથી કાળક્રમે પત્રોની સપાટી ઘસાઈ લખાણ જલ્દી ન ભુંસાઈ જાય. કેટલાંક તામ્રપત્રો એવાં બેવાં મળે છે જેમાં ફરતી કિનારો આવી રીતે ઉપસેલી બનાવેલી નથી હોતી અને તેથી પત્રોની સપાટી ઘસાતાં તે ઉપરનું લખાણ પણ ઘસાઈ ગયેલું હોય છે. આમાંનું પહેલું પત્ર જે જરા વધારે બેકાળજીથી ઘડવામાં આવેલું છે જેના લીધે વચ્ચે વચ્ચે નાનાં નાનાં છિદ્રો રહી ગયેલાં બેવામાં આવે છે. બીજી પત્રમાં આ બાબતનું એકે છિદ્ર દેખાતું નથી.

અનુશાસનની લિપિ

જેને પુરાવિદો ૧૦ મા શતકની ઉત્તરનાગરી લિપિ કહે છે તે લિપિમાં આ અનુશાસન લખવામાં આવ્યું છે. મૂળરાજના તામ્રપત્રોની લિપિ અને પ્રસ્તુત તામ્રપત્રની લિપિ એક જ પ્રકારની છે. લખનાર કે કોતરનાર બહુ ચોક્કસ નથી તેથી લિપિની દૃષ્ટિએ કેટલીક સામાન્ય ભૂલો થવા પામી છે.

લેખની ભાષા

આખો લેખ સંસ્કૃતમાં છે અને રચના મુખ્યતઃ પદ્યબદ્ધ છે (મૂળરાજના ઉપલબ્ધ તામ્રપત્રો મુખ્યરીતે ગદ્યબદ્ધ છે.) વચ્ચેની ૩-૪ પંક્તિઓ જેમાં દાન કરવામાં આવેલા

ક્ષેત્રની સીમાઓ બતાવવામાં આવી છે, ગદ્યમાં છે. છેવટમાં સંવત્ સૂચક નિર્દેશ અને ચામુંડરાજના હસ્તાક્ષર સૂચવતું વાક્ય પણ ગદ્યમાં છે. પદો બધાં મળીને ૧૦ છે. તેમાં, પ્રથમના ૩ શાર્દૂલવિક્રીડિત છંદનાં છે, ૪ શું પદ આર્યા છંદનું છે, ૫ થી ૮ સુધીનાં ૪ અનુષ્ટુપ્ છંદનાં છે. તે પછીનું ૯ સું પદ ફરી શાર્દૂલવિક્રીડિત છે, અને છેવટનું ૧૦ સું પદ અનુષ્ટુપમય છે. પદભાગમાં, દરેક પદના બીજા અને ત્રીજા પાદના અંતે '।' આવો એક દંડાત્મક પૂર્ણવિરામ મૂકવામાં આવ્યો છે. ૩ જ પદના અંતે-જે પછી ગદ્ય લખાણુ શુરુ થાય છે-'।' આવો બે દંડવાળો પૂર્ણવિરામ આપવામાં આવ્યો છે. દાન કરવામાં આવેલા ક્ષેત્રના પરિચય પછી પાછો બે દંડવાળો પૂર્ણવિરામ છે. ક્ષેત્રની આઘાટસીમા બતાવનારા કથનમાં વચ્ચે વચ્ચે એક દંડાત્મક અને છેવટે બે દંડવાળો વિરામ છે. પછીના પદોમાં, બીજા પાદના અંતે એક દંડાત્મક અને ૪ થી પાદના અંતે દરેક ઠેકાણે દ્વિદંડાત્મક વિરામરેખા છે. એટલે લખનારે વિરામ રેખાઓ કરવામાં બરાબર કાળજી રાખી છે એ સ્પષ્ટ બેઠ શકાય છે.

માતૃકાસંયોજના

અક્ષરબેડાણીની દૃષ્ટિએ બોતાં-'૨' પછી આવનારાં વ્યંજનો લગભગ બધાં જ દ્વિત્વભાવવાળાં (બેવડાં) લખનામાં આવ્યાં છે. નાસિકાસ્થાનીય વ્યંજનને કેટલીક જગ્યાએ પરસવર્ણ કંઈ છે અને કેટલીક જગ્યાએ અનુસ્વારરૂપે મૂક્યું છે. દા. ત. પ્રથમ જ પંક્તિમાંના 'સ્ત્રા' અને 'ત્રમાંગ' આ બે શબ્દો તથા બીજી પંક્તિમાંના 'સંતાને' અને 'દશેન્દ્ર' આ બે શબ્દો લઈ શકાય. આવી રીતે બીજી પણ પંક્તિઓમાં આ પરસવર્ણની વૈકલ્પિક પદ્ધતિ સ્વીકારેલી નજરે પડે છે. 'શ' 'સ' અને 'ષ' વિષે ઠીક કાળજી લેવામાં આવી છે. માત્ર પંક્તિ ૧૩ માં ષષ્ઠિર્વર્ષસહસ્રાણિ એ પાદમાં ષષ્ઠિર્વર્ષ આ પ્રમાણે કોતરેલું છે જે કોતરનારની સરતચૂકથી બની વચ્ચેની રેખા કોતરવી રહી ગઈ છે અને તેથી તે વ્-વ વંચાય છે. કોઈ કોઈ ઠેકાણે ત અને ન માં પણ બૂલ થએલી છે જે કદાચ કોતરનારના કીલક (ટાંકણા) ને લીધે થવા પામી હોય. દા. ત. પંક્તિ ૯માં છેવટે 'સ્થાનાનિ'ના બદલે સ્થાતાનિ અને પં ૧૨ માં અંતે નરામર'ના બદલે ત્રામર કોતરવામાં આવ્યું છે. પં ૯માં દક્ષિણના બદલે દક્ષિણ છે તે લખનારના ભાષારાજ્યને આભારી છે. પં ૧૧માં ગ્રામ' ને બદલે પામ' વંચાય છે તે પણ કોતરનારની ગફલતને લીધે થવા પામ્યું છે. પં ૧૮ માં હસ્તાકિત' માં 'સ્તા' ઉપર અનુસ્વાર કોતરવો રહી ગયો છે. પં ૧૦ માં લાંગણજ્ય અને પં. ૧૧ માં લાંગણજ્ઞ આમ એક જ નામનાં બે રૂપો આપેલાં મળે છે. એમાં પ્રથમરૂપ એ સંસ્કૃતમય છે અને બીજું દેશ્ય છે, એ સ્પષ્ટ સમન્વય તેવું છે. ૫૦ ૧૧ માં ક્ષેત્રાણિ પછી ચ અક્ષર લેખકના હાથે જ પ્રથમ લખવો રહી ગયો હતો તે પાછળથી જિ અક્ષરની નીચે બારીક રેખામાં કોતરી કાઢવામાં આવ્યો છે અને તેની આગળ '।' આવો એક દંડ પણ પૂર્ણવિરામ બતાવવા માટે મૂક્યો છે. એ અક્ષરે મને ઠીક ભ્રમમાં નાંખ્યો અને પોતાનું સ્વરૂપ સમજવામાં સારી પેઠે ભ્રમ આપ્યો.

તામ્રપટમાંની મુખ્ય હુકીકત સંવત્ ૧૦૩૩ ના માર્ગશિર માસની વદિ ૯ મીના દિવસે, વરુણ શર્મ ગ્રામમાં આવેલા જૈન મંદિરમાં ધૂપ, દીપ, અને પુષ્પ ચઢાવવા માટેના નિયમિત ખર્ચ નિમિત્તે યુવરાજ ચામુંડરાજે એક ખેતર દાન તરીકે આપ્યું, તે માટે આ અનુશાસનલેખ કરી આપવામાં આવ્યો છે. ઉપર જેમ જણાવવામાં આવ્યું છે તેમ, આ અનુશાસનમાં કુલ ૧૦ પદો છે; તેમાં પ્રથમનાં ૩ પદોમાં ભૂમિદાતા ચામુંડરાજનો સ્વરૂપ પરિચય આપવામાં આવ્યો છે. પહેલા પદમાં યુવરાજના પિતા મૂળરાજનો નિર્દેશ છે. એમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે-‘શૌલિક’ નામના રાજવંશમાં તિલક સમાન આ લકાંચિ નામે પૂર્વે રાજ થઈ ગયો, જેના સંતાન એટલે કે વંશમાં ત્રિદ-શેન્દ્ર એટલે દેવોના ઈન્દ્ર જેવો મહિમાવાળો મૂલરાજ નૃપતિ છે. એ મૂળરાજના ચરણ-કમળ, પ્રસિદ્ધ એવા અનેક નૃપતિઓના ગળામાં રહેલી પુષ્પમાળાઓથી અર્ચિત થાય છે, જે નૃપતિઓને મૂળરાજે, પોતાના જ અંગથી ઉત્પન્ન થએલ પ્રતાપરૂપી સૈન્યવડે વશ કર્યા છે. બીજા પદમાં ચામુંડરાજનો પોતાનો ગુણુપરિચય કરાવવામાં આવ્યો છે. એ યુવરાજ, આહ માન વશીય રાજ ભોજની પુત્રી માધવી નો પુત્ર છે. અનેક ગુણોના આકર જેવો છે. સુદર શીલ (સ્વભાવ અને સદાચાર) દ્વારા એ ખૂબ પ્રસિદ્ધ છે અને ઔદ્ઘત્યના સ્થાનસમા ગણાતા યુવરાજ પદની પ્રાપ્તિ થયાં છતાં પણ એ ગર્વરહિત છે. ત્રીજા પદમાં કહેવામાં આવ્યું છે, કે ભોગનો ત્યાગ કરી સધર્મનું સાધન કરવું એ જ માત્ર જેનું ફળ ગણાય એવી લક્ષ્મી પણ સ્થિર નથી એમ જાણી, એ યુવરાજે પોતાના આત્માના શ્રેયાર્થે, વરુણ શર્મ ગામમાંના જૈન મંદિરને ધૂપ, દીપ અને પુષ્પના સાધન માટે, ઉત્તરદિશામાં આવેલું એક સામાન્ય જાતિનું ક્ષેત્ર દાન તરીકે અર્પણ કર્યું છે.

એ કથન પછી ગદ્ય લખાણ આવે છે, જેમાં એ ખેતરમાં કેટલી જમીનનો સમાવેશ થાય છે તે બતાવવામાં આવ્યું છે. તેની વિગત આ પ્રમાણે છે. નાગરાજના ખેતરમાં ગણાતી કદંબવાલી કેદારી, ચંદ્રરાજ લુહારના ખેતરમાંનો એક કેદાર, શાલિલદ્ર પદ્મવ્રતના ખેતરમાંનો કેદાર, જનણુઘ ગામના રસ્તાની દક્ષિણ બાજુએ આવેલા ગોચરમાંનો એક કેદાર. આ રીતે ચાર કેદાર સાથેનું એ દાતવ્ય ક્ષેત્ર છે. એ ક્ષેત્રની ચતુર્સીમા આ પ્રમાણે છે. પૂર્વમાં લાંગણુધજ્જ ગામે જવાનો માર્ગ છે. ઉત્તરમાં ખોરડીના ઝાડનીચે આવેલી દુર્ગા (દેવીનું સ્થાન) છે, અને લાંગણુધજ્જ ગ્રામનાં ખેતરો છે. દક્ષિણમાં વરુણ શર્મ ગામના પાદરદેવતાનું ખેતર છે.

આ ગદ્ય લખાણ પછી દાનનું ફળ બતાવનારી એક આયાં આપવામાં આવી છે, તેમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે-જે મનુષ્ય જિનમંદિર, જિનમૂર્તિ, જિનપૂજા અને જિનમતનાં કાર્યો કરે છે તેને માટે મનુષ્યનાં, દેવનાં અને મોક્ષનાં સુખો હાથમાં રહેલાં જેવાં હોય છે.† એ પછી ૪ પદો છે તે પુરાણગત સુપ્રસિદ્ધ શ્લોકો છે.

† આ શ્લોક જૈન ગ્રંથોમાં સુપ્રસિદ્ધ છે અને અનેક ગ્રંથોમાં ઉદ્ધૃત થયેલો જોવામાં આવે છે. મારા જોવામાં આવેલા ગ્રંથોમાંના, સૌથી નૂતના જે ગ્રંથમાં આનું અવતરણ જાણવામાં આવ્યું છે તે જિનેશ્વરસૂરિ કથાકાષ છે. એ જિનેશ્વરસૂરિ ચામુંડરાજના પુત્ર દુર્લભરાજના સમકાલીન હતા.

એ શ્લોકો વધતી ઓછી સંખ્યામાં આ જાતનાં બધાં ય દાનપત્રોમાં આપવામાં આવેલા હોય છે. આ શ્લોકોમાં ભૂમિદાનના અપહારના પાતકનું વર્ણન કરેલું હોય છે. દા. ત. ૫ માં શ્લોકમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે—જે મનુષ્ય ભૂમિનું દાન કરે છે તે ૬૦ હજાર વર્ષ સુધી સ્વર્ગના સુખો ભોગવે છે અને જે મનુષ્ય ભૂમિના દાનને ખૂંચવી લે છે, તે તેટલાં જ વર્ષ નરકમાં જઈને વસે છે. ૬ ઠા શ્લોકમાં—પુરાણકાર યુધિષ્ઠિરને ઉદ્દેશીને ઉપદેશ કરે છે કે—રાજાઓમાં શ્રેષ્ઠ એવા હે યુધિષ્ઠિર! પોતે આપેલી કે બીજાએ આપેલી ભૂમિ [ના દાન]નું યત્નપૂર્વક રક્ષણ કર. [નવું] દાન કરવા કરતાંયે કરેલા દાનનું અનુપાલન કરવામાં વધારે શ્રેય રહેલું છે. ૭ માં શ્લોકમાં—પોતે આપેલી કે અન્યે આપેલી જમીનને જે મનુષ્ય લઈ લે છે તે પોતાના પિતૃઓ સાથે કીડાનો અવતાર પામી વિષામાં ગરક થાય છે. ૮ માં શ્લોકમાં કથન છે કે—જે જનો ભૂમિદાનનો અપહાર કરે છે તેઓ મરીને વિધ્યાચલની પાણી વગરની અટવીના વેરાન કોટરોમાં કાળા સર્પનો અવતાર પામે છે.

પછીના ૯ માં પદ્યમાં દાનપત્ર આપ્યાની મિતિ વિગેરે આપી છે. તે આ પ્રમાણે છે—ગુપ્ત સમયના દશસોને તેત્રીસ મા વર્ષના માર્ગશિરમાસમાં, વહિ પક્ષની ૯ મી તિથિ અને શનિવારના દિવસે, પોતાના સ્વામિના સ્વહસ્તાક્ષરથી અંકિત એવું આ અનુશાસન બાલાર્ક નામના લેખકે લખીને તૈયાર કર્યું. જે કોઈ પુરુષ આ અનુશાસનો લોપ કરશે તે આખા જગતના પાપને પ્રાપ્ત કરશે એ પછી ‘સંવત્ ૧૦૩૩’ આવો અંકમાં ફરી ઉલ્લેખ કર્યો છે, અને એ પછી પાછો એક શ્લોક આપેલો છે. એ શ્લોકમાં જણાવ્યું છે કે—આંબા, આમ્ર, દેપા, જજ્જ, સુંડન અને સિધ્ધુક આદિ શ્રાવકોને પંચની સાક્ષીએ આ અનુશાસન સંલગ્નાવવામાં આવ્યું છે, અને તે પછી ‘મંગલ’ શબ્દ લખી છેવટે ‘શ્રી ચામુંડરાજસ્ય મમ મત્તં—આ મને શ્રી ચામુંડરાજ ને સંમત છે’ એ વાક્યથી ચામુંડરાજે પોતાની સહી કરી છે. આ છેલ્લા શ્લોકમાં જે નામો આપેલાં છે તે વરુણશર્મ ગામના સ્થાનિક શ્રાવકો હોય એમ લાગે છે.

સ્થાન પરિચય

આ લેખમાં ૩ ગામોનો ઉલ્લેખ આવેલો છે. વરુણશર્મ, લાંગણધજ્જ અને જ્ઞેન-જુઘ. તપાસ કરતાં આ ત્રણે ગામોનો પત્તો કડીપ્રાંતના મહેસાણાતાલુકામાં મળી આવે છે. એ તાલુકાના નકાશામાં વડસમા કરીને એક ગામ આપેલું છે તે જ આ લેખમાંનું વરુણશર્મ ગ્રામ છે. લાંગણધજ્જ તે હાલનું લાંઘણજ છે જે આંબલીયાસણ-વીજપુરરેલ્વેનું સ્ટેશન પણ છે. વડસમાથી એ ગામ ઉત્તર-દિશામાં છે જે લેખમાં બતાવ્યા પ્રમાણે બરાબર મળી રહે છે. જ્ઞેનજુઘ ગામ તે હાલનું જોરણુગ છે જેની દક્ષિણ બાજુએ વડસમાના ખેતરો આવેલાં છે. વડસમામાં અત્યારે એક સાધારણ જૈન મંદિર છે ખરૂં પણ તેની કશી એવી વિશેષ પ્રાચીનતા જણાતી નથી, જેથી તેના વિષે કાંઈ શોધખોળ કરી શકાય. સ્થાનિક લોકોને એ જૂના ભૂમિદાન વિગેરેની કશી જ માહિતી નથી.

अनुशासननी प्रतिलिपि

प्रथम पत्र

- [१] ९ स्वस्ति स्वाङ्गभवप्रतापवृत्तनाव्यापारवश्यीकृतासंख्य-
रुयातनृपोत्तमांगविगलदुमा-
- [२] लार्च्यमानक्रमः । श्लाघ्यः शौलिकराजवंशतिलकश्री-
व्यालकांचिप्रभोः संताने त्रिदशेन्द्रतुल्य-
- [३] महिमा श्रीमूलराजो नृपः । [१] श्रीमान् सुन्दरशी-
लताप्रविदितः सच्चाहमानान्वयश्रीमद्भोजनराधि-
- [४] पोत्तमसुताश्रीमाधवीकुक्षिभूः । औद्धत्यास्पदयौवरा-
ज्यपदवीलाभेप्यनुत्सेकवान् तस्या-
- [५] नेकगुणाकरः समभवच्चासुण्डराजः सुतः । [२] भोग-
त्यागसुधर्मसाधनफला नैताः श्रियः
- [६] शाश्वता मत्वैवं वरुणादिशर्मकपुरे तेनात्मनः श्रेयसे ।
श्रीमज्जैनगृहाय वेतनकृते
- [७] धूपप्रदीपस्रजां क्षेत्रं दत्तमुदग्दिशिस्थितमदो(दः) सा-
मान्यकेदारकम् ॥ [३] नागराजक्षेत्रकदंब-
- [८] वती केदारी चंद्रराजलोहकारक्षेत्रे केदारः शालिभद्र-
पट्टहल्लक्षेत्रे केदारः जोनण-
- [९] घग्राममार्गादिकि(क्षि)णतः चरहके केदार एभिश्चतु-
[२]भिःकेदारैस्सह ॥ आघाटस्थाता(ना)नि
- [१०] पूर्वतो लांगणइज्जग्रामगामी मार्गः । उत्तरतो दुर्गा
बदरीतलस्थिता ।

द्वितीय पत्र

- [११] लांगणइज्जपा(ग्रा)मक्षेत्राणि च । दक्षिणतो वरुण-
शर्मकीयपट्टदेवताक्षेत्रमि-
- [१२] ति । दानफलं च ॥ जिनभवनं जिनबिम्बं जिनपूजां
जिनमतं च यः कुर्यात् । तस्य नरामर-

- [૧૩] શિવસુખફલાનિ કરપલ્લવસ્થાનિ ॥ [૪] ષષ્ઠિ(ષ્ઠિ)ર્વર્ષ
(ર્ષ)સહસ્રાણિ સ્વર્ગેં તિષ્ઠતિ ભૂમિદઃ । આક્ષેપ્તાચાનુમં-
[૧૪] તા ચ તાન્યેવ નરકં વસેત્ ॥ [૫] સ્વદત્તાં પરદત્તાં વા
યત્નાદ્રક્ષ યુધિષ્ઠિર । મહીં મહીભૃતાં શ્રેષ્ઠ દાનાચ્છેયો-
[૧૫] નુપાલનં ॥ [૬] સ્વદત્તાં પરદત્તાં વા યો હરેત વસુંધરાં ।
સ વિષ્ઠાયાં કૃમિર્ભૂત્વા પિતૃભિઃ સહ મજ્જતિ ॥ [૭]
[૧૬] વિંધ્યાટવીષ્વતોયાસુ શુષ્કકોટરવાસિનઃ । કૃષ્ણસર્પાઃ
પ્રજાયંતે ભૂમિદાનાપહારકાઃ ॥ [૮]
[૧૭] યાતે ગુપ્તસમાશતે દશગુણે સાગ્રે ત્રયચ્છિંશતી માર્ગે
માસિ તમિસ્ત્રપક્ષનવમીં સૂર્યાત્મજે મુંજ-
[૧૮] તિ । ચાલાર્ક્ષાહયલેખકો લિખદિદં સ્વામિસ્વહસ્તા(સ્તાં)-
કિતં યો લોપ્સ્યત્યનુશાસનં ય જગતાં પાપં
[૧૯] પુમાન્ લાસ્યતિ ॥ [૯] સંવત્ ૧૦૩૩ સહકામ્યામ્રદે-
વાદીં(દીન્) જેજ્ઞમુણ્ડનસિદ્ધુકાન્ । સ્વમતં શ્રાવ-
[૨૦] યિત્વૈતાન્ સમક્ષાન્ પંચ સાક્ષિણઃ ॥ [૧૦] મંગલં ॥
શ્રીચામુંડરાજસ્ય મમ મતં ॥

*

કેટલીક આનુષંગિક ऐतिहासिक चर्चा

*

ચૌલુક્યવંશનું પ્રથમ અનુશાસન

પ્રસ્તુત તામ્રપત્ર, ગૂર્જરપ્રજા-પિતામહ મૂળરાજના શાસનસૂર્યના મધ્યાહ્નસમયમાં લખાએલું હોઈ એના પોતાના તથા એના પુત્ર યુવરાજ ચામુંડરાજના પ્રભાવનો કાંઈક પ્રત્યક્ષ પરિચય આપનાર એક મૌલિક સાધનરૂપ છે. ચૌલુક્યવંશીય પ્રથમ યુવરાજના હસ્તાક્ષરથી અંકિત થએલું આ શાસનપત્ર, ગુજરાતની ઐતિહાસિક સાધનસંપત્તિની દૃષ્ટિએ મળી આવેલો એક મૂલ્યવાન મણિ છે. ચામુંડરાજના શાસનનો કે સમયનો નિર્દેશક તત્કાલીન એવો કોઈ લેખ અઘાવધિ ઉપલબ્ધ થયો જ ન હતો તેથી તેના સમયના મૌલિક દસ્તાવેજ તરીકે તો આપણે એને, આપણા ઐતિહાસિક ભંડોળના ભંડારમાં એક કિંમતી વસ્તુના ઉમેરા તરીકે લેખવું જોઈએ. ખરી રીતે, મૂળરાજના સમયનો પણ, આ પ્રથમ જ દસ્તાવેજ આપણી પાસે વિદ્યમાન છે એમ કહેવું જોઈએ. મૂળરાજનું સૌથી પહેલું તામ્રપત્ર જે જાણવામાં આવ્યું છે તે સં. ૧૦૩૦ ની સાલનું છે, પણ તે અત્યારે મૂળરૂપે કે તેના પ્રતિલેખરૂપે આપણને ઉપલબ્ધ નથી.

તેની સંપૂર્ણ નકલ અઘાપિ પ્રસિદ્ધ થઈ નથી અને તે મૂળપત્ર ક્યાં છે તેની કશી ખબર મળતી નથી. એ તામ્રપટવિષે એક માત્ર દંડી નોંધ સ્વર્ગસ્થ શ્રીહરિલાલ હં ધ્રુવ તરફથી, ડૉં બ્યુલ્હરના સંપાદકત્વ નીચે પ્રકટ થનારા વીએના ઓરિએન્ટલ જર્નલના પાંચમા પુસ્તકમાં (૫૦૩૦૦-૩૦૧) પ્રકટ કરવામાં આવી હતી. તેમના કથન પ્રમાણે, એ અસ્સલ તામ્રપત્ર તેમણે પાટણના ગોસાઈ નારાયણ-ભારતી યશવંતભારતી પાસે જોયું હતું. તેમણે પોતાની એ નોંધમાં, તે અનુશાસનના મૂળ લેખની સંપૂર્ણ પ્રતિલિપિ ન આપતાં માત્ર તેનો સાર જ આપ્યો હતો. શા કારણથી તેમણે લેખની પૂરી પ્રતિલિપિ ન આપી તેની કશી માહિતી આપણી પાસે નથી. તે પછી એ તામ્રપત્રનો કોઈને પત્તો લાગ્યો જણાતો નથી. એથી, આપણને મૂળરાજના શાસન સમયનો પણ, અત્યારે તો, આ પ્રથમ જ લેખ હસ્તગત થએલો છે એમ કહી શકાય. અને એ રીતે, અણહિલપુરના ચૌહાણોના જેટલા તામ્રપટો કે શિલાલેખો આજપર્યંત ઉપલબ્ધ થયા છે તે સૌમાં આ જૂનો અને પ્રથમ લેખ છે.

મૂળરાજનાં ત્રણ તામ્રપત્રો

અત્યાર સુધીમાં મૂળરાજનાં ૩ તામ્રપત્રો પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યાં છે, જેમાં પહેલું સંવત ૧૦૩૦નું, ઉપર જણાવેલી હકીકતવાળું છે. શ્રીહરિલાલ હં ધ્રુવની નોંધપ્રમાણે તેની મિતિ, સં ૧૦૩૦ના ભાદ્રપદ સુદિ પંચમી સોમવારની છે. ગંભૂતા^૧ વિષયના પાલધંજી ગામના નિવાસી બ્રાહ્મણ વચ્ચકાચાર્યને એક હલવાહ જેટલી જમીન દાનમાં આપવાની તેમાં હકીત છે. તેનો લેખક કે લા અને દૂતક મહાસાંધિવિચ્છિક શ્રીજય છે. મૂળરાજને તેમાં **સમસ્તરાજાવલિસમલંકૃત મહારાજાધિરાજ** એવા વિશેષણોથી સંબોધવામાં આવ્યાં છે.

બીજું તામ્રપત્ર, સં ૧૦૪૩નું છે જે વડોદરા રાજ્યના કડી ગામમાંથી મળી આવ્યાનું સમજાય છે. ડૉં બ્યુલ્હરે, ઇન્ડીઅન એન્ટીકવેરીના ૬૬૫ પુસ્તકમાં તેની પ્રથમ સંપૂર્ણ પ્રતિલિપિ પ્રકટ કરી હતી. તેના લેખનો સાર એ છે:—સં ૧૦૪૩ના માઘવદિ અમાવસ્યાના દિવસે સૂર્યગ્રહણ થયું તે નિમિત્તે મહારાજાધિરાજ શ્રીમૂળરાજે શ્રીસ્થળ—એટલે વર્તમાન સિદ્ધપુર સ્થાનમાં—ગ્રામી સરસ્વતીમાં સ્નાન કરી, તત્રસ્થ રુદ્રમહાલયમાં શંકર ભગવાનની પૂજા કરી, માતા-પિતા તથા પોતાના પુણ્યાર્થે, વર્જિત વિષયના મંડલી ગામમાં સ્થાપિત મૂલનાથ મહાદેવના ઉપ-ભોગ માટે, મોઢેરકીય અર્ધાદ્ય પ્રદેશમાં આવેલું કુંબોધકા નામનું ગામ દાન તરીકે અર્પણ કર્યું. તેનો લેખક કાયસ્થ જેજ્જનો પુત્ર કાંચણ હતો. એ અનુશાસનમાં મૂળરાજને નિમ્ન પ્રકારનાં વિશેષણો આપવામાં આવ્યાં છે.

રાજહંસ इव विमलोभयपक्षः ।

कमलयोनिरिव विततकमलाश्रयः ।

विष्णुरिव विक्रमाक्रान्तभूतलः ।

ज्यंबक इव विहिताचलाश्रयः ।

૧ આ ગંભૂતા તે પાટણની પાસે આવેલું ગાંભુ ગામ છે.

શતમલ્લ ઇવ વિભુધાનમ્દજનકઃ ।
 કલ્પવૃક્ષ ઇવ વાંછિતાર્થફલપ્રદઃ ।
 મેરુરિવ સર્વધામધ્યસ્થઃ ।
 તોયધિરિવ बहुसत्त्वाश्रयः ।
 जलद इव सर्वसत्त्वानुकंपी ।
 सुरेन्द्रद्विप इव सदा दानतोयार्द्रીकृतकरः ।
 चौलुकिकान्वयो महाराजाधिराजश्रीमूलराजः ।
 महाराजाधिराजश्रीराजिसुतः ।
 निजभुजोपार्जितसारस्वतमंडलः ।

આ બધાં વિશેષણો ઉપરથી મૂલરાજનાં સત્તા, સામર્થ્ય અને સદ્ગુણોની વિશિષ્ટતા સમજવા જેવી છે. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, શંકર અને ઇન્દ્ર જેવા મોટા દેવો ઉપરાંત, રાજહંસ, ઐરાવત્તુ ગજ, કલ્પવૃક્ષ, મેરુપર્વત, સમુદ્ર અને મેઘ જેવા મહાવિભૂતિ-માન્ પદાર્થોની તેને ઉપમા આપવામાં આવી છે. ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે આ બધા એક રાજકીય શાસનલેખમાં પ્રયોજાયેલા બિરુદો છે. રાજાના આવા શાસનલેખોક્ત વિશિષ્ટ બિરુદો પાછળ કાંઈક વિશિષ્ટ નિમિત્ત રહેલું હોય છે. કોઈ-ન-કોઈ આસ વસ્તુ ઘટનાને અનુલક્ષીને આવા બિરુદોની યોજના કરવામાં આવી હોય છે. માત્ર કાવ્યની દૃષ્ટિએ કલ્પી કાઢેલા કોરા અલંકારો રૂપે જ આ વિશેષણોને ન સમજવાં જોઈએ. મૂળરાજને બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને શંકરની ઉપમા, હે મચ્છંદ્રસૂરિ એ પણ સિદ્ધ હે મના પ્રથમ પાદના અંતે મુકેલા પ્રશસ્ત્યાત્મક પ્રથમ પદમાં આપેલી છે.^૧ આ વિશેષણો અને બિરુદોને સાર્થક કરે એવું મૂળરાજનું કર્તૃત્વ હતું એ એના જીવન કાર્યના ક્ષણ ઉપરથી આપણે તારવી શકીએ છીએ.

ત્રીજું તામ્રપત્ર, સં. ૧૦૫૧નું, મારવાડ રાજ્યના સાયોર પ્રાંતના બાલેરા નામના ગામમાં એક બ્રાહ્મણ પાસેથી મળી આવ્યું છે. તેની પણ પ્રથમ જાહેરાત, ઘણું કરીને, શ્રીહરિલાલ હં ધ્રુવે જ ઉક્ત વીએના ઓરિએન્ટલ જર્નલમાં કરી હતી. એ પિત્રાદિ આ ઈન્ડીકાના ૧૦ મા પુસ્તકમાં, પ્રો. સ્ટેન કોનોએ, આવશ્યક પરિચય સાથે તેની સંપૂર્ણ પ્રતિલિપિ પ્રકટ કરી છે. તેમાંની હકીકત આ પ્રમાણે છે:— સંવત્ ૧૦૫૧ના માઘસુદિ પૂર્ણિમાના દિવસે ચંદ્રચંદ્ર થયું તે નિમિત્તે શ્રીમૂલરાજ-દેવે, માતા-પિતા, તથા પોતાના પુણ્યાર્થે અંબિકાપતિ ભગવાન શંકરની પૂજા-અર્ચા કરી, પોતાના આધિપત્યમાં આવેલા સત્ત્વ પુર (વર્તમાન સાયોર) મંડલમાંનું વરણક નામે ગામ, તેની સઘળી સીમાઓ સાથે, કાન્યકુબ્જથી આવેલા અશેષ-વિદ્યાના પારગામી અને તપોનિધિ એવા શ્રીદુર્લભાચાર્યના પુત્ર શ્રીદીર્ઘાચાર્યને યાવચ્ચંદ્ર-દિવાકરૌ સુધી દાનતરીકે અર્પણ કર્યું. તેનો લેખક કાયસ્થ કાંચન અને દૂતક શ્રીશિવરાજ છે. તેમાં મૂળરાજના ઉક્ત બીજાં કશાં વિશેષણો નથી આપવામાં આવ્યાં અને સંક્ષેપમાં માત્ર પરમમહારક મહારાજાધિરાજ પરમેશ્વર

શ્રીમૂલરાજદેવ આ ભતના ઉલ્લેખ દ્વારા એક માત્ર સાર્વભૌમત્વસૂચક ખિરુદનો જ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. આ તામ્રપત્ર મૂળરાજના જીવનના અંતિમ વર્ષોનું કહી શકાય. તે પછી બે'ક વર્ષમાં જ એનું મૃત્યુ થયું હતું.

પ્રસ્તુત તામ્રપત્ર, મૂળરાજના શાસનસમયનું ૪ થું ગણી શકાય. આ શાસનનો દાતા ચામુંડરાજ છે. પણ એ પોતે પોતાની ભતને યુવરાજ તરીકે ઓળખાવે છે અને રાજ તરીકે પોતાના પિતાનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ કરે છે. આ તામ્રપત્રનાં લખાણ ઉપરથી સમજાય છે કે—રાજ તરીકે બે કે મૂળરાજની આજ્ઞા સર્વોપરિ લેખાતી હતી છતાં તે વખતે ચામુંડરાજ પણ રાજની જેટલી જ સત્તા ધરાવતો હતો અને તેના સ્વહસ્તાક્ષરોવાળાં શાસનપત્રો રાજનાં શાસનપત્રો જેટલાં જ માન્ય ગણાતાં હતાં એમ સ્પષ્ટ દેખાઈ આવે છે.

મૂળરાજવિષે કેટલીક પ્રાસંગિક વિચારણા

મૂળરાજનો વિસ્તૃત ઇતિહાસ રાસમાળા, મુંબઈ મેઝેટિઅર વિગેરે ગ્રંથોમાં લખેલો મળે છે. જૂના ગ્રંથોમાં—હેમાચાર્યના દ્વયાશ્રય કાવ્ય, પ્રબંધચિતામણી અને કુમારપાલ-ચરિત્ર આદિ ગ્રંથોમાં—એના વિષેની કેટલીક ત્રુટક ત્રુટક હકીકતો લખેલી મળી આવે છે. એ બધી હકીકતોની વિગતોમાં ઉતરવાનો કે એમની તથ્યાતથ્યતા વિષેની મીમાંસા કરવાનો અહિં પ્રસંગ નથી. જેમને એ વિષે વધુ જાણવા ઇચ્છા હોય તેમને, ગુજરાતના પ્રસિદ્ધ ઇતિહાસમર્મજ્ઞ અને લેખક સાક્ષર શ્રીદુર્ગાશંકર કેવળરામ-શાસ્ત્રીજીએ તાજે જ લખેલો ગુજરાતનો મધ્યકાલીન રાજપૂત ઇતિહાસ, ભાગ ૧ લો જોઈ જવાની ભલામણ છે. શાસ્ત્રીજીએ એ ઇતિહાસમાં, મૂળરાજવિષેની ખૂબ વિસ્તૃત અને સપ્રમાણ અઘયાવત્ વિચારણા કરી છે. હું અહિં, પ્રસ્તુત તામ્ર-પત્ર સાથે સંબંધ ધરાવતી અને તે ઉપરથી સ્કુરિત થતી કેટલીક બાબતોની વાર્તિક જેવી વિપ્રકીર્ણ વિચારણા કરવા ઇચ્છું છું.

અત્યાર સુધી, આપણને મૂળરાજની પટ્ટરાણીનું નામ કોઈ પ્રબંધ કે ચરિત્ર આદિમાંથી મળી આવ્યું ન હતું તે નામ આ તામ્રપત્રમાંથી મળે છે. આમાં ઉપર આપણે જોયું તેમ, એ રાણીનું નામ માધવી આપવામાં આવ્યું છે અને તે આ હમાન રાજ લોજની પુત્રી હતી એમ પણ એમાં સાથે જણાવ્યું છે. ચામુંડ-રાજ એનો જ પુત્ર થાય. આ આહમાન રાજ લોજ ક્યાંનો હતો તે વિષે આમાં કશું કહેવામાં આવ્યું નથી. આહમાનોની મુખ્યશાખાનું મૂળ રાજ્ય સપાદ લક્ષ દેશની શાકંભરી નગરીમાં હતું અને પાછળથી તેમણે અજયમેરુ નગર વસાવી તેને પોતાની રાજધાનીનું સ્થાન બનાવ્યું. મૂળરાજના સમયમાં એ રાજ્યનો સ્વામી વિઝહરાજ હતો અને તે તેનો એક પ્રતિસ્પર્ધી રાજ હતો. પ્રબંધચિતામણીમાં વર્ણવ્યા પ્રમાણે તેણે મૂળરાજ ઉપર ચઢાઈ પણ કરી હતી. એ વિઝહરાજના પિતાનું નામ સિહરાજ હતું. તેથી લોજરાજ નામનો એ આહમાન રાજ એ વંશનો તો નથી જ. સંભવ છે કે આહમાનોનું, બીજું પણ કોઈ નાનું મોટું રાજ્ય, બીજે ઠેકાણે હોય અને ત્યાંની કુમારી માધવી સાથે મૂળરાજના લગ્ન થયાં હોય. આહમાનો અને ચૌહાણોની વચ્ચે પરસ્પર લગ્ન સંબંધ સારી પેઢે ચાલુ હતો, તેનાં બેચાર

ઉદાહરણો મળી આવે છે. મૂળરાજના પૌત્ર દુર્લભરાજ અને નાગરાજે નાગેળ-ના આહમાન વિગ્રહપાલની કુમરીઓ સાથે લગ્ન કર્યા હતાં. સિદ્ધરાજે પોતાની પુત્રી અજમેરના આહમાન રાજા અર્જુનરાજને પરણાવી હતી અને અર્જુનરાજે પોતાની બહેન કુમારપાલને આપી હતી. વિગેરે. ચામુંડરાજ પોતાના માતામહ ભોજને નરાધિપના વિશેષજીથી ઉલ્લેખે છે તેથી એ કોઈક મોટા સ્થાનનો સ્વામી હતો એટલું તો ચોક્કસ માની શકાય તેમ છે.

મૂળરાજના પૂર્વજો વિષે કેટલીક નવી માહિતી

આ તામ્રલેખમાં મૂળરાજના એક પૂર્વજનો વિશિષ્ટરીતે નામોલ્લેખ કરેલો મળી આવે છે, જે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ વધારે અગત્યનો છે. એ ઉલ્લેખ તે—જેમાં મૂળ-રાજને, ચૌલિક રાજવંશના તિલક જેવા વ્યાલકાંચિ નામના રાજાના સંતાનોમાં ધન્વન્તરા જેવો મહિમાવાળો થયો બતાવ્યો છે—તે છે. મૂળરાજનો કોઈ નિકટનો પૂર્વજ વ્યાલકાંચિ નામે રાજા હતો, એ આ ઉલ્લેખથી સૂચિત થાય છે.

મૂળરાજના પિતાનું નામ રાજિ હતું, એ તો ચરિત્રો પ્રબંધો અને ખુદ મૂળરાજના પોતાના તામ્રલેખથી પણ સિદ્ધ થાય છે. પરંતુ માત્ર એ એકલા નામોલ્લેખ સિવાય, રાજિનું મૂળ વતન ક્યાં હતું અને તેના પૂર્વજો કોણ હતા એ વિષે કશી ચોક્કસ માહિતી હજી મળી નથી. હેમચંદ્રસૂરિ દ્વિતીયમાં એ વિષે કશુંય સૂચન કરતા નથી. તેમના કાવ્યમાંથી માત્ર એટલું જ જાણી શકાય છે કે એ ચૌલુક્યો સો મંવંશીય ક્ષત્રિય હતા અને ભારદ્વાજ તેમનું ગોત્ર હતું.* પ્રબંધાત્મક ગ્રંથોમાં એમના પૂર્વજોના સંબંધમાં ત્રણ જુદી જુદી પરંપરાઓ નોંધેલી મળી આવે છે. પ્રબંધચિંતામણીમાં જણાવ્યા પ્રમાણે, મૂળરાજના પિતાના પૂર્વજો કાન્યકુબ્જ દેશની કલ્યાણાકટક નામે રાજ-ધાનીમાં રાજ્યકર્તા હતા. એ પૂર્વજોમાં પ્રથમ ભૂયડ કે ભૂયદેવ નામે પ્રસિદ્ધ રાજા થઈ ગયો જેણે પોતાના ઇષ્ટદેવ ઉબ્બયિનીના મહાકાલેશ્વરને આખો માલવદેશ દાન કરી દીધો હતો અને તેની રક્ષામાટે પરમાર રાજપુત્રોને નિયુક્ત કર્યા હતા. એ ભૂયડના વંશમાં, કેટલીક પેઢીએ, મુંજલદેવ થયો જેનો પુત્ર મૂળરાજનો પિતા રાજિ કે રાજ થયો. એ રાજિને બીજા અને દંડક નામના બીજા પણ એ નાના ભાઈ હતા. જિનમંડનના કુમારપાલ પ્રબંધ અને તેની પૂર્વે રચાએલા તેવાજ એક જૂના પ્રબંધ પ્રબંધમાં, ભૂયડ પછી તેનો પુત્ર કર્ણદિત્ય, તેનો ચંદ્રદિત્ય, તેનો સોમદિત્ય, તેનો ભુવનાદિત્ય અને તેનો પુત્ર રાજિ એમ વંશાવળી આપવામાં આવી છે. એમાં મુંજલ નામ નથી. આ વંશા-વળી શા આધારે આપવામાં આવી છે તે જાણવાનું આપણને કશું સાધન પ્રાપ્ત નથી અને તેથી એની સિદ્ધાસિદ્ધતા સ્થાપન કરવાની કશી શક્યતા નથી. આણહિલપુરમાં એક મુંજલસ્વામીના નામથી ઓળખાતો શિવપ્રાસાદ હતો જેનો ઉલ્લેખ, પ્ર૦ ચિં ૦ માં સિદ્ધ-

* મુગુર્જરં હેતુરનેકમારદ્વાજં વરો મીતગુણસ્થિગઙ્ગમ્ ।

—આશ્રય, સર્ગ ૬, શ્લોક ૭

આ અવતરણમાં જે મારદ્વાજ શબ્દ છે તેના ઉપર ટીકાકારે અર્થ સ્ફોટ કરતાં કહ્યું છે કે—‘મારદ્વાજા હિ ચૌલુક્યાનામાયાઃ પ્રવર્તયિતારો ધર્મગુરવશ્ચ’ इति श्रुतिः ।’ આ ઉપરથી ચૌલુક્યોનું ગોત્ર ભારદ્વાજ છે એ સ્પષ્ટ જણાય છે.

† આ પ્રબંધ સિંધી જૈન ગ્રંથ માળામાં છપાય છે, જે થોડા જ સમયમાં પ્રકટ થશે.

રાજના વર્ણનમાં મળે છે. એ પ્રાસાદ ચૌલુક્યો તરફથી બનાવવામાં આવ્યો હોય એમ લાગે છે; કારણ કે એમાં કેટલીક વખતે મહત્વની રાજમંત્રણાઓ થતી હોવાની નોંધો મળી આવે છે. આ પરથી માનવાને કારણ મળે છે કે એમના પૂર્વજોમાં કોઈ મુંબલ નામની મહત્વની વ્યક્તિ થઈ ગયેલી હશે. હુમારપાલ પ્રબંધમાં જણાવેલા કર્ણાટિય ત્રિગેરે નામોને થોડી ઘણી પણ પુષ્ટિ આપે તેવો કોઈ બીજો જૂનો ઉલ્લેખ મળતો નથી. આ બે પરંપરાઓ કરતાં એક ત્રીજી ભતની ભુદી જ પરંપરા જયસિંહસૂરિના હુમાર-પાલચરિત્રમાં મળી આવે છે. તેમાં રાજિના પિતાનું નામ કાંચિક વ્યાલ એવું આપેલું છે. જયસિંહસૂરિએ આપેલી આ આખીય પરંપરા ભુદા જ પ્રકારની છે અને તે જરા ભણવા જેવી હોવાથી આદિ ઉદ્ધૃત કરવી ઉપયોગી જણાશે.

ચૌલુક્યવંશોત્તંસોઽભૂત્ કુમારક્ષમાપતિસ્તતઃ ।

પેતિહ્યતસ્તદુત્પત્તિઃ પ્રથમં પ્રથ્યતે પૃથુઃ ॥

પુરા મુરારિવદ્વિશ્વવિશ્વોદ્ધારધુરન્ધરઃ ।

ચુલુક્ય ઇતિ વિખ્યાતઃ સંજાતઃ ક્ષત્રિયોત્તમઃ ॥

ધૈર્યગાંભીર્યચાતુર્યૌદાર્યશૌર્યાદયો ગુણાઃ ।

શ્રાંતા ઇવ જગદ્ભ્રાંત્યા યત્રાશ્રાંતા વિશશ્રમુઃ ॥

યઃ સાંગ્રામિકકર્મકર્મઠમતિદૈત્યાનિવ પ્રાણિનાં

રૌદ્રોપદ્રવકારિણોઽરિનિકરાનુજ્ઞાસ્ય તીક્ષ્ણાસિના ।

નિર્માપ્યાકુતોભયં કુવલયં સ્વારાજ્યવૈદ્યાસિક-

શ્રીકં ગજ્યમતિષ્ઠિપત્ કિલ મધૂપદ્મા(દ્રા ?)ભિષ્ઠે પત્તને ॥

ચૌલુક્ય ઇતિ વંશોઽભૂત્ તન્નામ્ના વિશ્વવિશ્રુતઃ ।

આકરો નરરત્નાનાં સુપર્વશ્રેણિસંકુલઃ ॥

તદ્વંદ્યા વિશ્વશસ્યાભા બભૂવુર્મૂઘના ઘનાઃ ।

વલ્ગત્ત્રિવર્ગસંસર્ગપ્રિયં ભાવુકવૈભવાઃ ॥

શ્રીસિંહવિક્રમઇતિ ક્ષિતિભૃત્ ક્રમેણ જજ્ઞે મહેશ્વરવિતીર્ણસુવર્ણસિદ્ધિઃ ।

યઃ ક્ષોણિચક્રમનૃણં વિરચય્ય દાનૈઃ સંવત્સરં નિજમવીવૃત્તદાસમુદ્રમ્ ॥

પુસ્ફોર વીરકોટીરસ્તપુત્રો હરિવિક્રમઃ ।

સ્વકીર્તિકેતકૈર્યેન સુરમીચક્રિરે દિશઃ ॥

પંચાશીતિર્નૃપાસ્તસ્માદ્ વિસ્માપકવિભા બભુઃ ।

ન સેહે યત્પ્રતાપાગ્નિઃ શકવંશૈર્હૃદૈરપિ ॥

તદન્વયેઽભવત્ ક્ષુણ્ણસ્વરવૈદુષ્ણવૈભવઃ ।

રામો રામ ઇવ ન્યાયસદનં મેદિનીશ્વરઃ ॥

તતઃ સહજરામોઽભાદ્ યોઽશ્વલક્ષત્રયેશ્વરમ્ ।

હત્વા શકપતિં પત્તિમિવ વિશ્વેઽપ્યભૂદ્ ભટઃ ॥

અદીપ્યત શ્રિયા શ્રીદઃ શ્રીદઙ્કસ્તદાત્મજઃ ।

યઃ પિપાસાત્થરાષ્ટ્રેશં ગજં સિંહ ઇવાજયત્ ॥

भूपालः कांचिकद्व्यालस्तद्राज्यमथ मेजिवान् ।
 यद्दानैरर्थिनोऽप्यासन् दानशौंडा सुरद्रुवत् ॥
 राजा राजिरथाजिराजिविजयी राजेव रेजे शुचि-
 र्यो यात्रां विरचय्य देवनगरे श्रीसोमनाथोक्तितः ।
 वक्ष्यां गूर्जरशासनस्य भगिनीं सामंतसिंहप्रभो-
 र्लीलाख्यां जगदेकवीरजननीं लक्ष्मीमिव द्यूढवान् ॥
 तयोः सनुरनूनश्रीर्मूलराज इति श्रुतः ।
 अयोनिसंभवत्वेन सञ्चमत्कारकारणम् ॥
 सामंतसिंहमातुलं निजमातुलं यः शक्त्या निहत्य किल गूर्जराज्य माप ।
 लक्षं तथा समरकर्मणि बद्धकक्षं सोमेशवैभववशाद् दलयां बभूव ॥
 रेजे चामુંડराजोऽथ यश्चामુંडावरोद्धुरः ।
 सिंधुरेन्द्रमिवोन्मत्तं सिंधुराजं मृधेऽवधीत् ॥

—કુમારપાલ ચરિત્ર, સર્ગ ૧, શ્લોક ૧૫-૨૧

આ શ્લોકોનો સાર એ છે કે—પુરાકાળમાં વસુંધરાનો ઉદ્ધાર કરનાર એવો એક
 ‘યુલુક્ય’ નામે ક્ષત્રિયોત્તમ વીર પુરુષ થયો. તેણે સંગ્રામમાં, દૈત્યોની માફક મનુષ્યોને
 કદ આપનાર દુષ્ટ શત્રુઓનો, પોતાની તલવારની તીક્ષ્ણ ધારવડે સંહાર કરી, મધૂપદ્ર
 (કે મધૂપદ્ર ?) નામના પત્તન (નગર)માં પોતાનું સ્વરાજ્ય સ્થાપ્યું. તેનો વંશ ‘યૌલુક્ય’
 એવા નામે વિશ્વવિખ્યાત થયો. એ વંશમાં તે પછી અનેક પ્રસિદ્ધ રાજાઓ થઈ ગયા
 જેમાં સિંહવિક્રમ નામે એક વધારે પ્રતાપી રાજા થયો જેણે મહેશ્વરની કૃપાથી
 સુવર્ણસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી અને તેનાવડે પૃથ્વીને ઋણમુક્ત બનાવી, પોતાના નામનો નવીન
 સંવત્સર પ્રવર્તાવ્યો. એનો પુત્ર હરિવિક્રમ થયો. તે પછી બીજા ૮૫ રાજા થઈ ગયા
 જેમાંના કેટલાકનો પ્રતાપ તો દૃઢશક્તિવાળા શક વંશી રાજાઓથી પણ સહન થઈ
 શક્યો ન હતો. તેઓમાં, રામચંદ્ર જેવો ન્યાયવાન રામ નામનો રાજા થયો જેનો
 પુત્ર ભૂલટ સહજરામ થયો. જેણે ૩ લાખ અશ્વોના સ્વામી એવા શકપતિને
 હણ્યો. તેનો પુત્ર દડકકેદંડક નામે થયો. તેણે પિપાસાના રાજાને, સિંહ જેમ
 હાથીને જીતી લે તેમ, જીતી લીધો. તેનો પુત્ર કાંચિકબાલ ભૂપાલ થયો જે કલ્પવૃ-
 ક્ષની જેમ અર્થિજનોને ખૂબ દાન આપતો. તેનો પુત્ર રાગિ થયો. તેણે દેવનગર
 (દેવપત્તન—સોમનાથ પાટણ)ની યાત્રા કરી અને સોમેશ્વરના કથનથી ગૂર્જર શાસક
 સામંતસિંહની ભગિની લીલાદેવી સાથે લગ્ન કર્યું. તેમનો પુત્ર મૃગરાજ થયો. એ
 અયોનિજન્મા હોવાથી લોકોમાં એક ચમત્કાનું કારણ બન્યો. એણે પોતાના મામા
 સામંતસિંહને મારી પોતાની શક્તિવડે ગૂર્જરરાજ્ય પ્રાપ્ત કર્યું. સોમેશ્વરની કૃપાથી
 સંગ્રામમાં એણે લક્ષરાજ (લાખા)નો સંહાર કર્યો. તેનો પુત્ર ચામુંડરાજ થયો
 જે ચામુંડાના વરથી બલિષ્ઠ બનેલો હતો અને જેણે યુદ્ધમાં, ઉન્મત્ત હાથીની જેવા
 સિંધુરાજનો વધ કર્યો. ઇત્યાદિ.

જયસિંહસૂરિએ આપેલા આ વર્ણનમાં, ચૌલુક્ય વંશના સ્થાપક મૂળ પુરુષ ચુલુકની ઉત્પત્તિના વિષયમાં—જેમ પ્રબંધચિતામણી આદિમાં સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે તેમ—બ્રહ્માના ચુલુકમાંથી થઈ હોવાની કલ્પનાનું કશું સૂચન નથી. પુરાતન કાળમાં ચુલુક્ય નામનો કોઈ ક્ષત્રિય વીર પુરુષ થયો અને તેણે પોતાના પરાક્રમથી શત્રુઓનો સંહાર કરી, પોતાનું નવું સ્વરાજ્ય સ્થાપન કર્યું. તેની જે સંતાન થઈ તે ચૌલુક્યોના નામે પ્રસિદ્ધ થઈ, એટલોજ અર્થ આ વર્ણનમાં ઉદ્દિષ્ટ છે અને તે તદ્દન સંગત લાગે છે. યદુના સંતાનો જેમ યાદવ, પાંડુના સંતાનો જેમ પાંડવ, કુરુના સંતાનો જેમ કૌરવ તેમ ચુલુકના સંતાનો ચૌલુક્ય કહેવાય એ અર્થાત્ જ સિદ્ધ છે. પણ મહાપુરુષોની ઉત્પત્તિ કોઈ દૈવી અને ચમત્કારપૂર્ણરીતે થવી જોઈએ એવી આપણા દેશની રૂઢ માન્યતા થઈ જવાને લીધે, કવિઓ અને કુલ્લગુરુઓ એવા પુરુષોની જન્મકથાઓ અજબ રીતે પોતાની કલ્પનાથી જોડી કાઢે છે અને એ પુરુષોના નામાક્ષરો પરથી વિવ્રક્ષણ વ્યુત્પત્તિઓ ઉપજાવી કાઢે છે. ચૌલુક્ય વંશના મૂળ પુરુષનું નામ ચુલુક જેવું કાંઈક હતું અને તેથી એ ચુલુક શબ્દના અક્ષરાર્થ કે વ્યંજનાર્થનો મેળ એ પુરુષના જન્મવૃત્તાંતમાં બેસાડવા માટે, પાછળથી એ વંશના કોઈ ક્ષીર્તનકારોએ, બ્રહ્માના ચુલુકમાંથી એની ઉત્પત્તિની આખી કથા ઉપજાવી કાઢી છે. જયસિંહસૂરિના ઉપરોક્ત કથનમાં એ કથાનું સૂચન નથી તે નોંધવા જેવું છે.

એ ચુલુક ક્ષત્રિય વીરે મધૂપદ્મને પોતાની રાજધાની બનાવી હતી એવો આદિ ઉલ્લેખ છે. આ નામ વિષે મને શંકા છે. એ ચરિત્રની પ્રતોમાં આ ઠેકાણે પાઠભેદો મળે છે. મુખ્યત્વે ગોડીજીના ઉપાશ્રય તરફથી પ્રકટ કરવામાં આવેલી એ ગ્રંથની પ્રતિમાં **મધૂપદ્મ** એવો પાઠ છાપવામાં આવ્યો છે પણ મારી પાસેની નોંધોમાં—જે જુદી જુદી પ્રતો ઉપરથી કરવામાં આવેલી છે—**મધૂપદ્મ** એવો પાઠ મળે છે. એમાં જો **મધૂપદ્મ**ના સ્થાને **મધુપદ્મ** એવો પાઠ ઠીક હોય તો આપણે એ સ્થાનની શોધ કરવી જોઈએ. પણ જો **મધૂપદ્મ** એ પાઠ બરાબર હોય તો એ **મથુરા**નું બીજું નામ છે અને તેથી મથુરા એ એની રાજધાની હોય એમ કલ્પના થઈ શકે. એના વંશજોને શકલોકો સાથે યુદ્ધ કરવા પડ્યાં હતાં એવું જો કથન આ વર્ણનમાં કરવામાં આવ્યું છે તે પણ મથુરાસાથે એમનો સંબંધ સૂચવતું હોય એમ લાગે છે. મથુરાનો પ્રદેશ અમુક સમય સુધી શકોના અધિકાર નીચે હતો એ કુશાનવંશના લેખો ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે. રામ નામના રાજાએ ૩ લાખ ઘોડેસ્વારોના સ્વામી એવા શકપતિને માર્યો તથા દડક નામના રાજાએ પિપાસાના રાજા ઉપર વિજય મેળવ્યો, એ આખતના ઉલ્લેખો પણ, જો તેમાં કાંઈ ઐતિહાસિક તથ્ય રહેલું હોય તો, એ વંશનો મૂળ સંબંધ મથુરા અને તેની ઉત્તરના પ્રદેશ સાથે રહેલો હોવાનું સૂચવે છે.

જયસિંહસૂરિએ આપેલી આ પરંપરા પ્ર૦ ચિ૦ કથિત પરંપરાથી તદ્દન જુદી છે. પ્રબંધચિતામણીમાંની હકીકત જાણે કોઈ લોકકથા જેવી કિંવદંતીના આધારે લખાએલી હોય તેવી લાગે છે ત્યારે જયસિંહસૂરિની આ હકીકત કોઈ પુરાતન લિખિત સાધનના આધારે આલેખાયેલી હોય એવી દેખાય છે. અન્ધકાર પોતે એ ચૌલુક્યવંશની ઉત્પત્તિ **પેતિજ્ઞાત**: એટલે કે ઇતિહાસના કથનના આધાર ઉપરથી કહે

છે-એમ જણાવે છે, એટલે એમ માનવાને કારણ રહે છે કે તેમણે આ હકીકત કોઇ જુની શિલાપ્રશસ્તિ કે કાવ્યકૃતિના આધારે લખેલી હોવી બેધએ. એમની એ વર્ણ-નની શૈલી અને લાવાનું બે સૂક્ષ્મતાપૂર્વક અવલોકન કરવામાં આવે તો તેનાથી પણ એ જ વસ્તુ વધારે સિદ્ધ થતી દેખાય તેમ છે. ૨૮ માં પદ્યમાં જે વસ્તુનું સૂચન કરવામાં આવ્યું છે તેનું સમર્થક વર્ણન પ્રબંધચિંતામણીની મારી આવૃત્તિ ના પૃ. ૧૬ ઉપર આપેલા પદ્ય ૧૨-૧૩ માં મળી આવે છે. એ પદ્યો પણ પ્રબંધચિંતા-મણીના લિપિકારે કોઇ પુરાતન પ્રશસ્તિમાંથી ઉદ્ધૃત કરેલાં હોય તેમ સ્પષ્ટ લાગે છે.

જયસિંહસૂરિના આ કથનમાંના એક ઉલ્લેખને સ્પષ્ટ પુષ્ટિ આપનાર પ્રમાણ, આપણને ચામુંડરાજના પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં મળી આવે છે, જે ઘણું અગત્યનું છે. જયસિંહસૂરિની કૃતિમાંથી ઉપર જે શ્લોકો ઉતાર્યા છે તેમાંના ૨૭ માં શ્લોકમાં જણાવ્યા પ્રમાણે મૂળરાજના પિતા રાજિના પિતાનું નામ ‘કાંચિક વ્યાલ’ હતું. પ્રબંધચિંતામણી વિગેરે પ્રબંધોમાં આ નામ બિલકુલ નથી મળતું; ત્યારે પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં એ નામ મળી આવે છે. બે કે તામ્રપટમાં એ નામ ‘વ્યાલકાંચિ’ એવા રૂપમાં લખેલું છે અને ચરિત્રમાં ‘કાંચિક વ્યાલ’ એવા રૂપમાં આપેલું છે. પણ તે તો માત્ર શબ્દવ્યત્યય છે; નામાંતર જેવું કશું નથી. સંસ્કૃત લેખકો ઘણીક વખત, પદ્માદિમાં બંધબેસતું કરવાની દૃષ્ટિએ, નામોમાં આવી ભતતું શબ્દોનું પૌર્વાપર્ય કરી નાંખે છે. આ તેનું જ એક ઉદાહરણ હોઈ શકે. પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં મૂળરાજને વ્યાલકાંચિના સંતાનરૂપે ઓળખાવ્યો છે; એટલે તે ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ નથી થતું કે તે મૂળરાજનો પિતામહ જ હતો કે અન્ય કોઈ પૂર્વજ. પણ જયસિંહસૂરિ તેને સીધો રાજિનો જ પિતા કહે છે તેથી તે એનો પિતામહ જ હતો એમ માનવામાં કાંઈ વિરોધ આવતો નથી. પ્રબંધચિંતામણીમાં, એની જગ્યાએ ‘મુન્નલ’ એ નામ આપેલું છે. ચૌલુક્યોના પૂર્વ પુરૂષોમાં કોઈ મુન્નલ નામે પ્રસિદ્ધ વ્યક્તિ થઈ ગઈ હોવાનું આપણે ઉપર અનુમાન કર્યું છે; તેથી મને એમ લાગે છે કે એના પિતામહનું મૂળ નામ મુન્નલ એવું હશે અને વ્યાલકાંચિ કે કાંચિકવ્યાલ એ તેનો બિરુદ હશે અને તેથી તે શ્લોકોમાં મૂળ અને બિરુદવાચક એમ બન્ને નામે પ્રસિદ્ધિ પામ્યો હશે. જેમ સિદ્ધરાજ, પોતાના મૂળનામ જયસિંહદેવ અને ઉપનામ અર્થાત્ બિરુદનામ સિદ્ધ-રાજ એમ બન્ને નામે સુપ્રખ્યાત થયો તેમ એ પણ કદાચ થયો હોય. અર્થદૃષ્ટિએ વિચાર કરતાં વ્યાલકાંચિ કે કાંચિકવ્યાલ એ મૂળનામ ન હોઈ ઉપનામ કે બિરુદ જ હોવાનું વધારે સંભવિત લાગે છે. કાંચિકવ્યાલનો પર્યાયશબ્દ કાંચિભુજંગ^૧ થાય છે અને એનો અર્થ ‘કાંચિનો સ્વામી’ અથવા ‘કાંચિમાટે નાગ જેવો લયજનક’ એમ કરી શકાય. કાંચી એ દક્ષિણની સુપ્રસિદ્ધ પ્રાચીન નગરી છે જેને અત્યારે કાંચિવરમ્ કહેવામાં આવે છે. પલ્લવરાજવંશની કાંચી એ રાજધાની હતી. દક્ષિણના ચાલુક્યો અને

૧ કાંચિભુજંગ એ બિરુદ દક્ષિણના પણ કોઈ એક રાજાનો હતો જેના નામથી અંકિત કાંચિ-ભુજંગેશ્વર નામનું એક શિવમંદિર દક્ષિણ (મદરાસ)ના સાલેમ જિલ્લામાં આવેલા ધર્મપુરી નામના ગામમાં હોવાના બુના ઉલ્લેખો મળી આવે છે. બુચ્ચો, એપિ૦ ૬૮૬૦ પુ૦ ૧૬, પૃ૦ ૬૪.

કાંચીના પદ્મવો વચ્ચે કેટલીય વાર યુદ્ધો થયાના ઉદ્ધેખો દક્ષિણના ઇતિહાસમાં મળી આવે છે. સંભવ છે કે મૂળરાજના પિતામહે પણ કાંચીસાથે આવો કોઈ વિગ્રહ ખેલ્યો હોય અને તેની સ્મૃતિ તરીકે તેણે એ બિરુદ ધારણ કર્યું હોય.

કાંચિઆલ અને રાજિરાજ આ બન્ને નામો પોતાનું દાક્ષિણાત્ય પણ સૂચિત કરે છે. દક્ષિણમાં રાજિરાજ કે રાજરાજ એ નામ બહુ પ્રચલિત હતું. તેથી શંકા થાય છે કે મૂળરાજના આ બાપ-દાદાઓ દક્ષિણનિવાસી તો નહિં હોય ? ગૂર્જરભૂમિ ઉપર થતા આવતા દાક્ષિણાત્યના આધિપત્યના દાખલાઓ ગુજરાતના ઇતિહાસમાં ડગલે ને પગલે નજરે પડે છે. એ ચોલુક્યો પણ દક્ષિણી તરીકે આવ્યા હોય તો તેમાં અસંભવિતતા જેવું કાંઈ નથી.

મૂળરાજ વિષે, બીજી કશી વિશેષ હકીકત પ્રસ્તુત તાત્રપટમાં આપેલી નથી. માત્ર એવો સામાન્ય જ નિર્દેશ કરેલો છે કે એણે પોતાના અંગત પ્રતાપથી અનેક પ્રસિદ્ધ એવા રાજ્યોને પોતાના ચરણમાં મસ્તક નમાતા બનાવ્યા. આ ઉદ્ધેખ સામાન્ય હોવા છતાં, મૂળરાજના સામર્થ્ય અને સામ્રાજ્ય વિષે કાંઈક સૂચક છે ખરો. મૂળરાજે અણહિલપુરમાંની ચાવડાઓની રાજસત્તાનો નાશ કરી, પોતાનાં જ પરાક્રમવડે પોતાનું નવું રાજ્ય સ્થાપ્યું હતું એ તો સુવિદિત અને સર્વ સમ્મત હકીકત છે. સં. ૧૦૪૩ વાળા એના પોતાના જ દાનપત્રમાં **સ્વમુજોપાર્જિતસારસ્વતમંડલઃ**—પોતાના જ ભુજબળથી જેણે સારસ્વતમંડળ પ્રાપ્ત કર્યું—એવા વિશિષ્ટ વિશેષણથી એ વસ્તુનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યા છે. પણ એ સારસ્વતમંડળ ઉપરાંત બીજા ક્યા પ્રદેશો ઉપર એણે પોતાની સત્તા પ્રસ્થાપિત કરી અને ક્યા ક્યા રાજ્યોને એણે પોતાના સામંતો કે આજ્ઞાવર્તી બનાવ્યા એ બાબત વિવાદાસ્પદ અને શંકાસ્પદ છે. **વસન્તવિલાસ** કાવ્યનો કર્તા કવિ બાલચંદ્ર તો કહે છે કે મૂળરાજના બાહુરૂપી રાહુ એ યુદ્ધમાં ૮૪ એવા રાજ્યમંડળોને ઘસી લીધા હતા.^૧ આ તો કવિની અતિશયાલંકારવાળી એક ઉક્તિ માત્ર છે એમ આપણે એની શબ્દાવલીથી જ સમજી શકીએ છીએ. પણ આના ભાવાર્થને મળતું કાંઈક કથન આપણા પ્રસ્તુત તાત્રપટમાં પણ મળે છે, તો તેમાં પણ કાંઈક ઐતિહાસિક વસ્તુસૂચન છે કે માત્ર તે પણ કેવળ શબ્દાલંકાર જ છે એ વસ્તુ જરા વિચારણીય લાગે છે. તાત્રલેખમાં ‘અસંખ્યાત નૃપતિઓને પોતાના ચરણમાં નમાવ્યા’ આવો જે ઉદ્ધેખ કરેલો છે તે શું સર્વથા મિથ્યાસ્તુતિ છે કે તેમાં કાંઈક સત્યાંશ પણ રહેલો હશે ખરો ? સમકાલીન રાજશાસનોમાં આવા સર્વથા મિથ્યા ઉદ્ધેખો કરાય એ સંભવિત લાગતું નથી તેથી મૂળરાજે અસંખ્ય રાજ્યો સાથે યુદ્ધો કર્યાના ઉદ્ધેખને અલંકારરૂપે માનીએ પણ તે સાથે એ પાંચ એવા નામાંકિત રાજ્યો સાથે અને કદાચ તેથી વધારે નાના મોટા સામંતો સાથે તેણે યુદ્ધો અવશ્ય કરેલા હશે અને એ રાજ્યો ઉપર એણે પોતાની ધાક બેસાડી હશે—એટલું તો એ કથનમાંથી ફલિત થતું સત્ય આપણને સ્વીકારવું પડે તેમ છે.

૧ ચતુર્યુતાસીતિમિતાનિ ભૂપતેર્યં શીતલુતિમણ્ડલાનિ ।

યદ્વાહુરાહુસ્તરલાસિપટ્ટજિહ્વઃ સમિત્યર્વજિ ચર્વંતિ સ્મ ॥

વસન્તવિલાસકાવ્ય, સર્ગ ૩, શ્લોક ૬.

ચામુંડરાજ, જે પ્રસ્તુત તામ્રપત્રનો દાતા છે તેના વિષે, કશી વિશેષ હકીકત આમાંથી મળતી નથી. એના શીલ અને સ્વભાવ વિષે જે સંક્ષિપ્ત ગુણાત્મક કથન આમાં કરવામાં આવ્યું છે, તે હેમચંદ્રાચાર્યે દ્વયાશ્રયમાં આપેલા એના ગુણવર્ણનસાથે પ્રાયઃ શબ્દશઃ મળતું આવે છે. એ ઉપરથી એ યુવાવસ્થામાં એક સુશીલ, સંયમી અને સદ્ગુણી રાજકુમાર તરીકે સારી પ્રસિદ્ધિ પામ્યો હશે એમ માની શકાય. તામ્રશાસનમાંની

ઔદ્ધત્યાસ્પદયૌવરાજ્યપદવીલામેડપ્યનુત્સેકવાન્

આ પંક્તિના કથનને દ્વયાશ્રયમાંના

‘શક્તિ ક્ષમે યૌવનસંયમિત્વે યુતે ન દટ્ટે ઇતરેતરાં હિ’ તથા ‘નોત્સુકાયત સ ક્ષાપિ’ ઇત્યાદિ કથનો સાથે સરખાવી બેવાથી આ કથનની પ્રતીતિ થઈ શકે તેમ છે.

ચામુંડરાજ, આ તામ્રશાસન, સ્વતંત્રરીતે, વરુણશર્મ ગામના લોકોને સાક્ષી બનાવીને આપે છે. એમાં રાજધાનીનું નામ આપવામાં આવ્યું નથી, તેથી એમ લાગે છે કે યુવરાજ ફરતો ફરતો કોઈ વખતે એ વરુણશર્મ ગામમાં જઈ ચઢેલો હોવો બેઠોએ અને તે વખતે ગામના લોકોની—જૈન શ્રાવકોની વિનંતીથી—ત્યાંના જૈન મંદિરની સેવા-પૂજામાંટે આમાં વર્ણવેલું ક્ષેત્રદાન કરી આપ્યું હોવું બેઠોએ. એથી એમ પણ લાગે છે કે યુવરાજ એ વખતે સારી પેઠે મોટી ઉમરનો હોવો બેઠોએ—પિતાને પૂછ્યા વગર સ્વતંત્રરીતે પોતે ગ્રાસ આદિ આપી શકે એટલી સત્તા એને મળેલી હોવી બેઠોએ. અને એટલી સત્તા ભોગવનાર યુવરાજની ઉમર લગભગ ઓછામાં ઓછી ૨૫ થી ૩૦ વર્ષ જેટલી તો હશે જ. એ દૃષ્ટિએ ગણતરી કરતાં એનો જન્મ વિ. સં. ૧૦૦૦ થી ૧૦૦૫ ની આસપાસ થયેલો કદાચી શકાય. અર્થાત્ મૂળરાજે અણહિલપુરની ગાદી ૫૭ જે ક્યાં પછી ૫-૭ વર્ષની અંદર જ ચામુંડરાજનો જન્મ થયો હશે એમ અનુમાન કરી શકાય.

મૂળરાજે અણહિલપુરની રાજગાદી ક્યારે મેળવી એ એક જરા મતભેદનો પ્રશ્ન બનેલો છે. મેરુતુંગાચાર્યે પ્રબંધચિતામણીમાં એ માટે વિ. સં. ૯૯૮ ની સાલ આપેલી છે, અને ૫૫ વર્ષસુધી રાજ્ય કરી, સં. ૧૦૫૩માં એ મૃત્યુ પામ્યો એમ સ્પષ્ટ લખેલું છે. મેરુતુંગ પછીના બીજા ઘણા ખરા પ્રબંધકારોએ એ જ ઉલ્લેખને માન્ય રાખ્યો છે અને પોતપોતાના લખાણોમાં એનો સ્વીકાર કર્યો છે, પરંતુ વિચાર શ્રેણીના સંકલન કર્તા—કે જેમનું નામ પણ મેરુતુંગસૂરિ છે પણ જે પ્રબંધચિતામણીના કર્તાથી તદ્દન જુદા ગચ્છના અને તેમના પછી લગભગ ૫૦-૬૦ વર્ષ થયા છે,—તેમણે એ સાલ જુદી રીતે આપી છે. તેમના ઉલ્લેખ પ્રમાણે મૂળરાજે સં. ૧૦૧૮માં ગાદી લીધી હતી અને તે પછી ૩૫ વર્ષસુધી તેણે રાજ્ય કર્યું હતું. મુંબઈ ગેજેટીઅર વિગેરેના લેખકો આ કથનને વધારે પ્રમાણભૂત ગણે છે. મૂળરાજે ૫૫ વર્ષ જેટલા દીર્ઘકાળ સુધી રાજ્ય કર્યું હોય તેના બદલે ૩૫ વર્ષવાળું કથન વધારે સંભવિત માને છે. ૫૦-૫૦, ૬૦-૬૦ વર્ષ સુધી રાજ્ય કરનારા રાજાઓના દાખલાઓ, આપણા દેશના ઇતિહાસમાં અનેક જાડી આવે એમ છે તેથી એ દલીલમાં તો કાંઈ વિશેષ વજુદ નથી લાગતું; પણ વિચાર શ્રેણીના કર્તાએ ૯૯૮ના બદલે

૧૦૧૮ની સાલ કયા આધારે આપી છે તે પ્રશ્ન ખાસ વિચારણીય રહે છે ખરો. મૂળરાજે ૯૯૮માં ગાદી લીધી એ પ્રબંધચિંતામણીના કથનને તેના કરતાં ૫ વધારે જૂના એવા એક શિલાલેખથી સ્પષ્ટ પુષ્ટિ મળે છે. મારવાડના સાંમર નામના ગામ-માંથી સિદ્ધરાજના સમયનો એક શિલાલેખ મળી આવ્યો છે જેમાં મૂળરાજદેવે સં. ૯૯૮માં અણહિલપુરની ગાદી લીધી હોવાનો નિર્દેશ કરેલો છે. તેથી હવે પ્રબંધ-ચિંતામણીના કથનમાં તો શંકાને અવકાશ નથી રહેતો. આ ઉપરથી, કાં તો આપણે વિચારશ્રેણીના ઉલ્લેખને ભ્રમાત્મક માનવો જોઈએ અને કાં તો તેમાં કાંઈક ઐતિહાસિક સૂચન સમાજેલું હોવાનું કલ્પવું જોઈએ. મારી કલ્પના આ બીજા વિકલ્પ તરફ દોરાય છે પણ એ વિષય જરા વિસ્તારથી ચર્ચવો પડે તેમ છે તેથી કોઈ બીજા પ્રસંગે એની ચર્ચા કરવી ઠીક થઈ પડશે.

આ તામ્રશાસન કયા પ્રસંગે આપવામાં આવ્યું હતું તે એમાં કાંઈ સૂચવેલું નથી. સામાન્ય રીતે બ્રાહ્મણોને કે શૈવમંદિરોને, કોઈ સૂર્યચણ કે તેવા ખાસ પર્વદિવસના નિમિત્તે એવાં ભૂમિદાનો આપવામાં આવે છે. જૈન લોકો એવા લૌકિક પર્વવિશેષમાં માનતા ન હોવાથી, જૈન મંદિરોને આપવામાં આવતા આવા દાન માટે તેવા પર્વ-વિશેષની કશી અપેક્ષા રહેતી નથી. જૈન મંદિરોને દાન કાં તો તે નવા બંધાઈને તૈયાર થયા હોય અને તેમની પ્રતિષ્ઠા વિગેરેના ઉત્સવો ઉજવાતા હોય તેવે વખતે આપ-વામાં આવે છે, અથવા તો પછી ગમે તે કારણે કોઈક પ્રસંગે ઉપસ્થિત થતાં તે આપવામાં આવે છે. એથી એમ કલ્પના કરાય કે કાંતો એ વરુણશર્મ ગામનું જૈન મંદિર તે વખતે નવીન જ તૈયાર થયું હશે અને તેથી યુવરાજે તેની પૂજા-અર્ચના નિર્વાહ નિમિત્તે એ દાનપત્ર કરી આપ્યું હશે; અથવા તો, યુવરાજ દેશભુક્તિના નિરીક્ષણ અર્થે પ્રવાસે નીકળ્યો હોય અને ફરતો ફરતો એ ગામમાં આવ્યો હોય તે વખતે ત્યાંના જૈન શ્રાવકોએ સ્થાનિક મંદિરના નિર્વાહ અર્થે ભૂમિદાનની પ્રાર્થના કરી હોય અને તેથી યુવરાજે આ દાનપત્ર કરી આપ્યું હોય. સામાન્ય નિયમ પ્રમાણે આવા દાનપત્રોમાં ખુદ રાજાની આજ્ઞા અને તેના હસ્તાક્ષરોવાળી સહીની જરૂર હોય છે; પરંતુ જેમ મેં ઉપર કલ્પના કરી છે તેમ, ચામુંડરાજ તે વખતે એટલી પુખ્ત ઉમરનો અને સર્વાધિકાર પામેલો હોવો જોઈએ કે જેથી સાક્ષાત્ રાજાની જેમ જ તેની આજ્ઞા અને સહી માન્ય થતી હતી.

ચામુંડરાજનું આ તામ્રશાસન, તેની ધર્મભાવના વિષેની કાંઈક વિચારણા માંગી લે છે. આ તામ્રશાસન જૈન મંદિરને લગતું છે. ચૌલુક્યોના અત્યારસુધી જેટલાં તામ્ર-પત્રો મળ્યાં છે તે બધા બ્રાહ્મણોને કે શૈવ મંદિરોને અપાયેલાં દાનવિષેનાં છે. જૈનમંદિ-રને દાન આપવા બાબતનું આ પ્રથમ જ દાનપત્ર પ્રાપ્ત થાય છે. સિદ્ધરાજ વિગેરે-એ શત્રુંજય આદિ તીર્થોના જૈન મંદિરોને ગામના ગામ દાન કરી આપ્યાના ઉલ્લેખો જૂના પ્રબંધોમાં વારંવાર વાંચવામાં આવે છે, પણ એ જાતનું એકેય દાનપત્ર હજી સુધી મળી આવ્યું નથી. (-જે કે સિદ્ધરાજનું તો બીજું પણ કોઈ જાતનું એકેય તામ્રપત્ર હજી સુધી મળ્યું નથી!) તેથી જૈન સમાજના ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ આ તામ્રપત્ર ઘણું મૂલ્યવાન ગણી શકાય.

આ તામ્રપત્ર સંપૂર્ણ અર્થમાં જૈન તામ્રપત્ર છે. આનું લખાણ અને વર્ણન તદ્દન જૈન શૈલીનાં છે. દાનના ફળનું માહાત્મ્ય બતાવનારો જે શ્લોક (આર્યા છંદ) ટાંકવામાં આવ્યો છે તે જૈન સાહિત્યમાં એક સુપ્રસિદ્ધ ઉક્તિરૂપે વપરાતો આવ્યો છે. જૈન ધર્મમાં દાનનું માહાત્મ્ય ઘણા ભારપૂર્વક વર્ણવામાં આવ્યું છે. સંપત્તિશાલી પુરુષોએ લક્ષ્મીનો વિનિયોગ ધર્મકાર્યોમાં કરવો જોઈએ—એ ઉપદેશ ઉપર જેટલો ભાર જૈન ગ્રંથોમાં આપવામાં આવેલો જોવામાં આવે છે તેટલો ભાર અન્ય ધર્મગ્રંથોમાં આપેલો નથી જોવાતો; અને તેથી જૈનોમાં ધર્મકાર્ય નિમિત્તે કરવામાં આવતો લક્ષ્મીનો વ્યય, આજે પણ વિપુલ પ્રમાણમાં આપણે જોઈ શકીએ છીએ. એ ઉપદેશના પરિણામે જૈનોએ આજ સુધીમાં અસંખ્ય જૈન મંદિરો બંધાવ્યાં અને અનંત જિન મૂર્તિઓ કરાવી. પૂજા, ઉત્સવ, ઉદ્યાપન, સંઘયાત્રા આદિ કાર્યોમાં અઢળક લક્ષ્મી ખર્ચી અને તેમ કરી લોકોમાં જૈન ધર્મનો મહિમા વધાર્યો. ગુજરાતના જૈનોનો લગભગ છેલ્લા ૧૫૦૦ વર્ષનો ઇતિહાસ આ વિષયમાં અદ્ભુતરીતે ઉજ્જવલ અને એ સમાજને યથેષ્ટ અભિમાન લેવા લાયક છે. ચામુંડરાજના આ તામ્રશાસન પરથી જણાય છે કે જૈન ધર્મના આ જાતના ઉપદેશથી તે ખૂબ પરિચિત અને પ્રભાવિત થયેલો છે અને જિનમંદિર, જિનમૂર્તિ, જિનપૂજા આદિ જૈનમતના કાર્યો કરવાથી, મનુષ્યલોક, સ્વર્ગલોક અને મોક્ષનાં સુખો પણ કરતલગત જેવાં થઈ રહે છે—એમ માની પોતાના આત્માના શ્રેયાર્થે તે આ ભૂમિદાન કરી આપે છે.

આ ઉપરથી આપણે શું એમ સમજવું જોઈએ કે ચામુંડરાજ જૈન ધર્મ માનનારો હતો ? ધાર્મિક પક્ષપાતની ભાવનાવાળા જૈનવર્ગને એવી કલ્પના કે માન્યતા ધરાવવામાટે આ તામ્રપત્ર યથેષ્ટ સાધનરૂપ થઈ શકે તેમ છે. પરંતુ, જૈન પ્રબંધો આદિના અવલોકન અને ઐતિહાસિક અન્વેષણના આધારે હું એમ માનું છું કે જે અર્થમાં કુમારપાલ જૈન ધર્મ માનનારો થયો હતો તે અર્થમાં અણહિલપુરના ચૌલુક્યોમાંથી બીજે કોઈ રાજા થયો હોય તેમ લાગતું નથી. અણહિલપુરના ચાવડાઓ અને ચૌલુક્યો, જૈન ધર્મ અને જૈન સમાજ સાથે ઘણો ગાઢ પરિચય ધરાવતા હતા એમાં શંકા નથી જ. અણહિલપુર પ્રારંભથી જ જૈનધર્મનું મોટું કેન્દ્ર સ્થાન બન્યું હતું અને તે છેક સુધી તેવું જ ચાલુ રહ્યું હતું. જૈનધર્મનો જેટલો અને જેવો ઉત્કર્ષ અણહિલપુરના રાજ્યછત્રનીચે થયો, તેટલો અને તેવો બીજે કયાંએ થયો જણાતો નથી; અને તેની સાથે અણહિલપુરના સામ્રાજ્યના ઉત્કર્ષમાં પણ જૈનોએ એટલો અને એવો જ અદ્વિતીય ભાગ લીધો હતો, અને એથી અણહિલપુરના રાજ્યશાસનમાં જૈનોની સર્વાધિક વિશિષ્ટતા કે પ્રચંડ બહુમતી હતી એમ જો કહેવામાં આવે તો તેમાં કિંચિત્ પણ અતિશયોક્તિ નથી. જૈન પ્રબંધો ઉપરથી એમ પણ સ્પષ્ટ જણાય છે કે એ રાજકુટુંબસાથે કૌટુંબિક સંબંધ ધરાવતી કોઈ કોઈ વ્યક્તિએ જૈનધર્મની યતિદીક્ષા પણ લીધી હતી. એવી પરિસ્થિતિમાં, રાજકર્તા કુટુંબનો એ ધર્મસાથે પ્રગાઠ સંબંધ હોય એ સ્વાભાવિક જ છે. એ સંબંધને લઈને એ વંશના લગભગ બધા જ રાજાઓએ—જો અપવાદરૂપે ગણીએ તો એક અજયપાલને છોડીને—જૈનધર્મ તરફ પોતાના કુલધર્મ જેટલો જ મમત્વભાવ બતાવ્યો હતો. એ રાજાઓ અવાર—નવાર

જૈન મંદિરોમાં જતા અને જિનદેવતાની શ્રદ્ધાપૂર્વક પૂજા-ભક્તિ કરતા. પ્રસંગવશ, જૈન આચાર્યો પાસે જતા અને તેમનો ધર્મોપદેશ પણ સાંભળતા. જૈન વિદ્વાન્ મતિઓને રાજદરબારમાં આદરપૂર્વક સ્થાન આપતા અને રાજસભાના અગ્રણી પંડિત બનાવતા. પરંતુ, એમનો કુલધર્મ શૈવ હતો. એમના ઉપાસ્ય દેવતા સોમેશ્વર હતા અને રાજધર્મ તરીકે શૈવધર્મની પ્રતિષ્ઠા હતી. એક માત્ર કુમારપાલ રાજાએ પોતાની પાછલી જંદગીમાં વ્યક્તિગત રીતે જૈનધર્મનો વિશિષ્ટરૂપે સ્વીકાર કર્યો અને હેમચંદ્ર-સૂરિને પોતાના ધર્મગુરુ સ્વીકારી, તેમની પાસેથી જૈનધર્મના ગૃહસ્થોચિત વ્રત-નિયમોના પાલનમાટેની શ્રદ્ધાપૂર્વક શ્રાવક ધર્મની દીક્ષા લીધી. એ દીક્ષાની પ્રસિદ્ધિ અર્થે અને પોતે સ્વીકારેલા જૈન ધર્મના પ્રચાર માટે તેણે ઠેકઠેકાણે અનેક જૈન મંદિરો બંધાવ્યાં અને રાજસાહી ઠાટ સાથે મોટો સંઘ કાઢી શત્રુંજય અને ગિરનાર જેવા જૈન તીર્થોની ખાસ મહાયાત્રા કરી. પોતાના આખા ય રાજ્યમાં, અહિંસાનું પાલન થાય તે માટે અમારિની ઉદ્દ્યોષણા કરાવી અને ધર્મ નિમિત્તે થતી જીવહિંસા-પશુ બલિ બંધ કરાવી. ખાસ કરીને રાજધાનીમાં મદ્ય, માંસ, જીંગાર અને શિકાર ઉપર સખ્ત પ્રતિબંધ મુક્યો. એ નિયમિત જિનમંદિરમાં જતો અને જિનમૂર્તિની સેવા-ઉપાસના કરતો. ધાર્મિક પર્વવિશેષના દિવસોમાં શ્રાવક ધર્મના નિયમાનુસાર સામાયિક કે પોષધવ્રત પણ એ લેતો. એ રીતે એણે જૈનધર્મ ઉપરની પોતાની સંપૂર્ણ શ્રદ્ધા પ્રકટ કરી હતી.

કુમારપાલના આ રીતના જૈન ધર્મના સ્વીકારવિષે કેટલાક વિદ્વાનોનો મતભેદ દેખાય છે; પરંતુ અમારા વિચાર પ્રમાણે એ મતભેદ ઐતિહાસિક સત્યની સંદિગ્ધતા કરતાં ધાર્મિક ભાવનાની સંકુચિતતા ઉપર રચાયેલો જણાય છે અને તેથી અમને એમાં પ્રામાણિક ઐતિહાસિકની જિજ્ઞાસા દૃષ્ટિગોચર થતી નથી. કુમારપાલ સિવાય, એ વંશના બીજા કોઈ રાજાએ જૈન ધર્મનો એ અર્થમાં સ્વીકાર કર્યો હોય તેમ જૈન પ્રબંધો ઉપરથી તેમ જ અન્ય ઐતિહાસિક પ્રમાણોથી પણ જણાતું નથી. એટલે આમુંડરાજના પ્રસ્તુત તાત્ત્વશાસન ઉપરથી, તે જૈન ધર્મનો અનુયાયી હતો એમ માનવાને કશું કારણ નથી. જૈન ધર્મ તરફ તેનો સંપૂર્ણ સદ્ભાવ હતો અને જૈન સમાજ સાથે રાજકીય અને સામાજિક દરેક રીતે અતિનિકટતા ભરેલો સંબંધ હતો તેથી જૈન મંદિરને પણ શ્રદ્ધાપૂર્વક તે ભૂમિદાન કરે એ તદ્દન સ્વાભાવિક છે. હિંદુ રાજાઓ સામાન્ય પણે વ્યક્તિગતરીતે શિવ, વિષ્ણુ, બુદ્ધ કે જિન-ગમે તે દેવને પોતાના ઇષ્ટદેવ તરીકે પૂજતા-માનતા હોય, પણ રાજ્યના બધા ધર્મો અને બધા વર્ગોના દેવી-દેવતાઓ તરફ પોતાનો સમાન આદરભાવ પ્રકટ કરવાનો અને રાજ્ય તરફથી તે તે દેવસ્થાનોનાં નિર્વાહ આદિ માટે યથાયોગ્ય ભૂમિદાન કે અન્ય કોઈ ભતના વર્ષાસન જેવા કર અને લાગા બાંધી આપવાનો તેમનો ઉદાર રાજધર્મ મનાતો અને એ રાજધર્મનો ઘણા ભાગે બધા સારા રાજાઓ યોગ્યરીતે પાલન કરતા.

આમુંડરાજ વિષે વિશેષ ઐતિહાસિક વિગતો કશી મળતી નથી. દ્વયાશ્રયકાવ્યમાં એના યુવરાજ કાળમાં જ લાટના દંડનાયક આરપ ઉપર એ ચઢાઈ લઈ ગયો અને તેનો નાશ કર્યો એ હકીકત વિસ્તારથી આપવામાં આવી છે. રાજગાદીએ બેઠા

પછી એના રાજ્યની કોઈ ખાસ કારકીર્દીનું તેમાં કશુંય સૂચન નથી. ઉત્તરાવસ્થામાં એણે પોતાના પાટવી કુમાર વલ્લભરાજને માલવાના રાજ ઉપર સૈન્ય લઈને મોકલ્યો, જેમાં રસ્તામાં જ અકસ્માત્ વલ્લભરાજને શીતલાનો અસાધ્ય રોગ થઈ આવ્યો અને તેના લીધે તેનું મૃત્યુ થયું. શોકગ્રસ્ત થઈ સૈન્ય પાછું રાજધાનીમાં આવ્યું અને ચામુંડરાજ પોતાના બીજા પુત્ર દુર્લભરાજને રાજગાદી આપી, નર્મદા-તીરે શુકલતીર્થમાં જઈ રહ્યો અને ત્યાં તીર્થોપાસના કરતો મૃત્યુ પામ્યો.

ચામુંડરાજે, શા માટે આ પ્રમાણે માલવાના રાજ ઉપર સૈન્ય લઈને પોતાના પાટવી કુમારને મોકલ્યો તેનું કશું કારણ હેમાચાર્ય નથી આપતા; પણ ટીકાકારે એ ઠેકાણે ખાસ નોંધ કરી છે અને તે ચામુંડરાજના ચરિત્રમાં દૂષણ બતાવનારી છે. પોતાના વર્ણનાયકની ચરિત્રહીનતા સૂચવનારી હોવાથી એ હકીકતનો હેમાચાર્યે નિર્દેશ નથી કર્યો એમ પણ સાથે ટીકાકારે ટકોર કરી છે. ટીકાકારની એ નોંધનો સાર આ પ્રમાણે છે—‘ચામુંડરાજ’ [પાછલી અવસ્થામાં] અતિક્રાંત થઈ વિકલ બની ગયો હતો, તેથી તેની બહેન ચાચિણી (અગરવાચિણી) દેવીએ તેને રાજ્યગાદી ઉપરથી ઉઠાડી મુક્યો અને તેના પુત્ર વલ્લભને ગાદીએ બેસાડ્યાં. તેથી રાજ અભિમાનવશ થઈ, પોતાનું આત્મસાધન કરવા માટે બનારસ જવા નીકળ્યો. રસ્તામાં માલવા વાળાઓએ તેને લુંછ્યાં અને તેનાં છત્ર-ચામરાદિ રાજચિહ્ન ખોસી લીધાં. એથી તે ક્રોધે ભરાઈ પાછો પાટણ આવ્યો અને પોતાના પુત્ર વલ્લભને કહ્યું કે બે તું મારો પુત્ર હોય તો માલવા વાળાઓ પાસેથી મારાં છત્ર-ચામરાદિ પાછાં છીનવી લાવ, ઇત્યાદિ.—ટીકાકાર કહે છે કે, ખરી હકીકત આવી છે. પણ વર્ણનાયકના વિષયની આ હકીકત કાવ્યમાં જણાવવી અનુચિત લાગવાથી કાવ્યકારે (હેમાચાર્યે) એનું કશું સૂચન નથી કર્યું અને મોઘમરીતે જ ‘રાજ્યે માલવા ઉપર ચઢાઈ કરવાની આજ્ઞા આપી’ એમ કથન કર્યું છે.*

ચામુંડરાજ વિષે ટીકાકારે નોંધેલી આ હકીકત બીજા કોઈ પ્રબંધોમાં નથી મળતી પરંતુ તે નિર્મૂલ્ય હોય એમ નથી લાગતી. ટીકાકાર સામે એ બાબતની કોઈ વિશ્વાસ-ભૂત શ્રુતપરંપરા રહેલી હોય તેમ ચોક્કસ લાગે છે, અને તેથી તેની વિશ્વસનીયતા માની શકાય તેમ છે. પ્રબંધચિંતામણીમાં આ હકીકતને મળતી હકીકત છે, તેમાં જણાવ્યું છે કે—દુર્લભરાજને બનારસ જતાં રસ્તામાં માલવાના રાજ મુંજે અપ-માનિત કરી તેનાં છત્રચામરાદિ લઈ લીધાં અને તેથી તે સંન્યાસીના વેષે તીર્થયાત્રાએ ગયો અને તેની ખબર પોતાના ભત્રીજા બીમને આપી તેનો બદલો લેવાનું કહી મોકલ્યું ઇત્યાદિ. આમાં દુર્લભરાજનો સમકાલીન મુંજ જણાવ્યો છે તે અસંગત છે કારણ કે મુંજનું મૃત્યુ તો, ઘણું કરીને મલ્લરાજની હયાતીમાં જ અગર તો મૂળરાજન મૃત્યુથી ૬-૧૨ મહિના આગળ—પાછળ જેટલા અલ્પ સમયમાં જ થઈ ગયું હતું અને તેની ગાદીએ સિંધુ રાજ આવ્યો હતો, જે ચામુંડનો લગભગ સમકાલીન હતો.

* ચામુંડરાજ: કિલાતિકામાદ્ વિકલીમૃતઃ સન્ મગિન્યા ચા (વા ?) ચિણિદેવ્યા રાજ્યાત્ સ્ફેટયિત્વા તત્પુત્રો વલ્લભો રાજ્યે પ્રતિષ્ઠિતઃ । ચામુંડરાજેન ચામિમાનવશાદાત્મમાધનાર્થં વારા-ગણ્યાં ગચ્છતા માલવિકૈર્વિલુપ્તિતછત્રાદિરાજચિહ્નકેન પત્તન આગલ્ય વલ્લભસ્યાજ્ઞા દત્તા યદિ મદીયઃ પુત્રસ્તદા માલવિકેભ્યો મદીયચ્છત્રાદીન્ મોચયેતિ વસ્તુસ્વરૂપમ્ । एतच्च वर्ण्यत्वेनाधिकृतस्योपनि-बध्यमानमनुचितमिति ‘पित्राज्ञामाददानं’ इत्यनेन सूचितः । —ब्राह्मयकाव्य, सर्ग ७, श्लो ३१,

સિંધુરાજ અને આમુંડરાજ વચ્ચે યુદ્ધ થયાનો ઉલ્લેખ વડનગરવાળા કુમારપાલના સં. ૧૨૦૮ના શિલાલેખમાં તથા ઉપર ઉદ્ધરેલા જયસિંહસૂરિના કુમારપાલચરિત્રમાં મળે છે. કુમારપાલના પ્રશસ્તિલેખમાં આમુંડરાજ સાથેના યુદ્ધમાં સિંધુરાજ નષ્ટ થયો (નષ્ટઃ) એમ મોઘમ જણાવ્યું છે; ત્યારે જયસિંહસૂરિએ ‘આમુંડરાજે, સિંધુરાજને યુદ્ધમાં, ઉન્નત હાથીની જેમ મારી નાંખ્યો (અવધીત)’ એમ સ્પષ્ટ કહ્યું છે. મં. મં. પંડિતશ્રી ગૌં હીં ઓઝા જયસિંહસૂરિના કથનને વિશ્વસનીય માને છે (—બુઓ, નાગરી પ્રચારિણી પત્રિકા, ભાગ ૩, પૃ. ૫; તથા રાજપૂતાનેકા ઇતિહાસ, ભાગ ૧, પૃ. ૨૧૦) ત્યારે શાસ્ત્રીજી શ્રી દુ. કે. પોતાના ગુ. મં. ૨૦. ૬૦ માં ‘જયસિંહસૂરિના કથનમાં કશું ઐતિહાસિક સત્ય નથી’ (પૃ. ૧૭૪, ભાગ ૧) એવો પોતાનો મત જણાવે છે. શાસ્ત્રીજી, એ વડનગરના પ્રશસ્તિલેખમાં આવેલા ‘નષ્ટ’ શબ્દ ઉપરથી જે અર્થ કાઢે છે અને તેના આધારે જયસિંહસૂરિના કથનની જે અનૈતિહાસિકતા માને છે તેમાં તો મને તેટલી યુક્તિસંગતતા જણાતી નથી. કારણ સંસ્કૃતમાં ‘નષ્ટ’ એ શબ્દપ્રયોગના અનેક અર્થ થાય છે. નષ્ટનો અર્થ જેમ નાશવું—ભાગવું એવો થાય છે તેમ તેનો અર્થ નાશ પામવું—મરણ પામવું એવો પણ થાય છે. ‘મદ્દિર્નષ્ટો મારવિશ્વાપિ નષ્ટો’ ઇત્યાદિ શબ્દપ્રયોગોમાં ‘મૃત્યુ પામ્યો’ એવો જ અર્થ ઉદ્દિષ્ટ રહેલો છે. પણ જયસિંહસૂરિના કથનમાં મને એક બીજી રીતે સંદિગ્ધતા લાગે છે. તે એ છે કે પ્રબંધચિન્તામણી વિગેરે પ્રબંધોના ઉલ્લેખ પ્રમાણે, સિંધુરાજ નેવથી અન્ધ હતો* અને અન્ધ રાજ યુદ્ધમાં પ્રત્યક્ષ ભાગ લઈ શકે એ સંભવિત નથી જણાતું. તેથી આમુંડરાજના હાથે લઠાઈમાં તેનું મૃત્યુ થયું હોય એ, શાસ્ત્રીજીની જેમ મને પણ, સત્ય લાગતું નથી.

સિંધુરાજના રાજકવિ પરિમલેખનાવેલા નવસાહસાઢ્ઢ ચરિત્રમાં † વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે કે સિંધુરાજે લાટ, વાગડ અને અપરાંત જેવા ગુજરાતના અંતઃસીમાપ્રદેશો ઉપર પોતાના સૈન્યો મોકલ્યાં હતાં અને એ પ્રદેશો ઉપર પોતાનું પ્રભુત્વ સ્થાપ્યું હતું. આ ઉપરથી જણાય છે કે આમુંડરાજના કેટલાક રાજ્યપ્રદેશ ઉપર સિંધુરાજે આક્રમણ કરેલું હોવાથી તેના પ્રતિવારણ માટે આમુંડરાજે તે ઉપર ચઢાઈ કરી હોવી જોઈએ અને તેમાં સિંધુરાજની સખ્ત હાર થએલી હોવી જોઈએ જેનું સૂચન ઉક્ત વડનગરવાળા પ્રશસ્તિલેખમાં અને કુમારપાલચરિત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે.

આ ઘટનાને લીધે સિંધુરાજ, આમુંડરાજ ઉપર વંરલાવ ધારણ કરી રહ્યો હશે અને પાછળથી જ્યારે આમુંડરાજ, ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે રાજ્યબ્રષ્ટ થઈ તીર્થયાત્રા કરવા નીકળ્યો હશે, તે વખતે સિંધુરાજે, પોતાની હદમાંથી પસાર થતાં તેના ઉપર હલો લઈ જઈ તેનાં છત્ર ચામરાદિ રાજચિહ્નો ઝુંટવી લીધાં હશે. આથી આમું-

* જો કે સિંધુરાજના અંધત્વવિષે પણ વિદ્વાનોમાં મતભેદ છે અને પ્રબંધકારોની ઉપજની કાઢેલી તે એક કલ્પના માત્ર જ માનવામાં આવે છે; પણ મને તેમાં બીજાં કેટલાંક પ્રમાણોના આધારે સત્યતા લાગે છે, અને એ વિષે પ્રબંધચિન્તામણીની મારી આશ્રિતિની ટિપ્પણીમાં ચર્ચા કરવામાં આવી છે.

† બુઓ નવસાહસાઢ્ઢ ચરિત્ર, સર્ગ ૧૦, શ્લોક ૧૫, ૧૭, ૧૯.

ડરાજ પાછો વળી અણહિલપુરમાં આવ્યો હશે અને એ અપમાનનો બદલો લેવા તેણે પોતાના પુત્રને માલવા ઉપર ચઢાઈ લઈ જવા કહ્યું હશે, એટલે આ રીતે ટીકાકારે લખેલી હકીકત સંગત લાગે છે.

ચામુંડરાજના ચારિત્ર્ય વિષેના આ ઉલ્લેખમાં, ચાચિણીવિષેની હકીકત ખાસ ધ્યાન ખેંચે તેવી છે. એક રાજાની બહેન પાસે એટલી બધી સત્તા ક્યાંથી આવી ગઈ હોય કે જેથી તે ચામુંડરાજ જેવા પ્રભાવશાલી અને પરાક્રમી રાજાને આમ ગાદીએથી ઉઠાડી મુકે અને તેને દેશાંતરમાં ચાલ્યા જવાની ફરજ પાડી શકે. રાજાઓ તો એવા ઘણાંય કામાસક્ત થતા આવ્યા છે અને થયાં કરે છે. એવા નિકલ રાજાઓને, તેમના મંત્રીઓ, લાયાતો કે પ્રજાઓ વિગેરેના સંઘટિત તંત્રો ગાદીએથી ઉઠાડી મુકી તેમની જગ્યાએ બીજા લાયક વારસદારોને રાજ્ય આપવા-અપાવવાના દાખલાઓ તો ઇતિહાસોમાંથી કેટલાક મળી આવે છે; પણ કોઈ બહેન જેવી સ્ત્રીબક્તિ આવું કાર્ય કરવા જેટલી ક્ષમતા મેળવે એ એક ઇતિહાસદુર્લભ ઘટના ગણી શકાય. દુર્ભાગ્યે ચાચિણીવિષે આપણને બીજા ક્યાંયથી કશો ઉલ્લેખ મળતો નથી. પ્રબંધચિંતામણીમાં એક ઉલ્લેખ આવે છે,^૧ જેમાં જણાવવામાં આવ્યું છે, કે પાટણમાં ચામુંડરાજે ચંદનાથદેવ અને ચાચિણેશ્વરદેવ નામના બે શિવપ્રાસાદ બંધાવ્યા હતા. આમાં ચંદનાથદેવ તે કદાચ ચામુંડરાજના પોતાના સ્મારકરૂપે હશે અને ચાચિણેશ્વરદેવ તે એની બહેન ચાચિણીના સ્મારક રૂપે હશે.

*

પ્રભાવક ચરિત્ર નામના ગ્રંથમાંના વીરસૂરિચરિત નામના પ્રબંધમાં, ચામુંડરાજવિષે થોડોક ઉલ્લેખ મળી આવે છે, જેની નોંધ અન્યત્ર ક્યાંએ લેવામાં નથી આવી. વીરસૂરિ નામના એક વિદ્યાસિદ્ધ જૈન યતિ મારવાડ તરફથી ફરતા ફરતા અણહિલપુરમાં આવીને વસ્યા હતા. તેમના ઉપદેશને માન આપી ચામુંડરાજે, ધિરા નામના ગ્રામમાં આવેલા વિક્રુપનાથ ચક્ષુના મંદિરમાં બલિદાન નિમિત્તે જે પશુહિંસા થતી હતી તે ન કરવા માટે, એક શાસનપત્ર કરી આપ્યું હતું. એ રાજાને કેટલાય સમય સુધી કોઈ સંતતિ થઈ ન હતી તેથી તેણે પોતાના પ્રધાન મંત્રી વીર દ્વારા એ યતિવરને વિનંતિ કરી. યતિવરે મંત્રસાધનપૂર્વક સુગંધી ચૂર્ણ મંત્રીને રાજાની રાણીના મસ્તક ઉપર તેનો નિક્ષેપ કરાવ્યો જેના પ્રભાવે તેને વલ્લભરાજ આદિ પુત્રોની પ્રાપ્તિ થઈ, ઇત્યાદિ.*

*

ગુપ્ત સંવત્ અને વિક્રમ સંવત્ સંબંધી એક નવીન સમસ્યા

*

આ તામ્રપત્રમાં એક અન્ય નવી વસ્તુ ઉપલબ્ધ થાય છે જે ઐતિહાસિક અન્વેષણ અને સંશોધનની દૃષ્ટિએ બહુ મહત્વની અને કેટલેક અંશે ક્રાંતિ સૂચવનારી ગણી શકાય. એ વસ્તુ તે આ લેખમાં કરવામાં આવેલો સંવત્ વિષેનો વિલક્ષણ નિર્દેશ છે.

૧ જુઓ પ્ર૦ ત્રિ૦ સિંધી જૈનગ્રંથમાલામાં પ્રકાશિત, પા. ૫૦ ર૦.

* પ્રભાવકચરિત્ર [સિંધી જૈનગ્રંથમાલા] પૃ. ૧૩૦-૩૧.

આપણે અન્યથા એવાં અનેક પ્રમાણો અને લેખોના આધારે નિશ્ચિતરૂપે બાણીએ છીએ કે પ્રસ્તુત શાસનનો દાતા ચામુંડરાજ વિક્રમના ૧૧ મા સૈકાના મધ્યભાગમાં વિદ્યમાન હતો. વિં સં ૧૦૫૩ માં એ ગાદીએ બેઠો અને ૧૦૬૬ માં એ મૃત્યુ પામ્યો. તેથી આ તામ્રપત્રમાં જે સંવત્ ૧૦૩૩ નો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે તે વિક્રમીય સંવત્ ૭ છે એ અસંદિગ્ધરીતે માની શકાય તેવું છે. પણ આ શાસનલેખમાં એ સંવત્ને સ્પષ્ટરીતે ગુપ્ત સંવત્ કહેવામાં આવ્યો છે. ચાતે ગુપ્તસમ્રાટાતે એ શબ્દો પદ્યમાં ગુંથેલા છે અને તેથી એ કથનમાં લખનારની ભ્રાંતિ વિગેરે થઈ હોવાની કલ્પનાને કશોય અવકાશ રહેતો નથી. આ શાસનના ઉલ્લેખથી આપણને એમ માનવાની ફરજ પડે છે કે ચામુંડરાજના વખતમાં સુપ્રસિદ્ધ વિક્રમ સંવત્, એ ગુપ્ત સંવત્ તરીકે પણ ઓળખાતો હોવો જોઈએ. અર્થાત્ વિક્રમ સંવત્ અને ગુપ્ત સંવત્ બંને એક જ વર્ષગણનાના સૂચક છે એમ તે વખતે લખાતું અને મનાતું હોવું જોઈએ.

ગુપ્ત સંવત્ વિષે પુરાવિદોના મોટા ભાગની જે કલ્પના અને ગણના અત્યારે રૂઢ થઈ ગયેલી છે અને જેના આધારે આપણા પ્રાચીન ઇતિહાસના એ કાલની સમગ્ર ક્રમ-ઘટનાઓનું આલેખન અને પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે, તેમાં આ ઉલ્લેખ એક મોટી ક્ષાંતિ-કહો કે પછી તેને ભ્રાંતિ કહો-ઉત્પન્ન કરે તેવો છે.

ગુપ્ત સંવત્નો પ્રારંભ ક્યારે અને કોનાથી થયો એ વિષે અનેક વિદ્વાનોએ અનેક કલ્પનાઓ કરી છે, પણ એ વિષે નિર્ણાયક મત સ્થાપન કરવાનું માન ડૉ૦ જે૦ એફ૦ ફલીટના ભાગે બાય છે. ગુપ્તકાલીન શિલાલેખોના સંગ્રહ-ગ્રંથનું સંપાદન કરતી વખતે, એ પ્રખર પુરાવેત્તાએ, આ વિષયમાં અત્યંત શ્રમ લઈ, લિન લિન દૃષ્ટિએ ઘણો સૂક્ષ્મ ઊદ્ઘાષોહ કર્યો અને અનેક પ્રમાણોના અસ્તવ્યસ્ત અંકોડા બેડી નિર્ણૂત કર્યું કે વિં સં ૩૭૬ અને ઇં સં ૩૧૯-૨૦ માં ગુપ્તવંશીય પ્રથમ ચંદ્રગુપ્તના રાજ્યપ્રારંભ સાથે એ સંવત્નો પ્રારંભ થયો હતો. વિદ્વાનોના મોટા ભાગે ડૉ૦ ફલીટના એ નિર્ણયને ઘણા આદર સાથે વધાવી લીધો અને એ નિર્ણયાનુસાર, શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, મુદ્રાઓ, અને સાહિત્ય ગત ઉલ્લેખો-અવતરણો ઇત્યાદિકમાં નિર્દિષ્ટ અનેક ઐતિહાસિક વ્યક્તિઓ અને ઘટનાઓનો કાલક્રમ ગોઠવવાનો સિદ્ધાંત નિશ્ચિત કરવામાં આવ્યો. ભારતીય ઇતિહાસના સુમર્મજ્ઞ અને સુવ્યવસ્થાપક ડૉ૦ વીન્સેન્ટ એ૦ સ્મીથે, પોતાના ‘અર્લી હિસ્ટરી ઓફ ઇન્ડિયા’ નામના સુપ્રતિષ્ઠિત પુસ્તકમાં ડૉ૦ ફલીટના એ નિર્ણયને, નીચે આપેલા પ્રોત્સાહક શબ્દોવડે, અસંદિગ્ધભાવે માન્ય કરી લીધો.

“અનેક અસંખ્ય કલ્પનાઓનો જે વિષય બની રહ્યો હતો તે ગુપ્ત સંવત્ના સંબંધમાં ડૉ૦ ફલીટે કરેલા નિર્ણયથી પ્રગતિના પથમાં એક મોટું પગલું ઉમેરાણું છે. એ સંવત્નું પ્રથમ વર્ષ ઇં સં ૩૧૯-૨૦ ની બરાબર છે એ પ્રકારના એમના સંવિધાને એક સૌથી અગત્યના રાજવંશના કાલક્રમનું સ્થાન નિશ્ચિત કરી દીધું છે અને એ અનવસ્થાને વ્યવસ્થિત ક્રમમાં ગોઠવી દીધી છે.”^૧

હોં ફલીટિ આ વિષયનો ઉકેલ લાવવા માટે જે અસાધારણ અન્વેષક શુદ્ધિ અને અથક પરિશ્રમશીલતા દાખવી છે, તે માટે ભારતીય ઇતિહાસનો પ્રત્યેક અભ્યાસી વિદ્વાન્ તેમનો પૂર્ણ કૃતજ્ઞ છે. પરંતુ, જેમ જેમ એ વિષયમાં વધારે અન્વેષણ કરવામાં આવે છે તેમ તેમ એ નિર્ણયમાં કેટલીક વિશિષ્ટ ભ્રાંતિઓ જણાતી જાય છે અને તેથી આપણા દેશના પ્રાચીન ઇતિહાસની કેટલીય આંટીઓનો ઉકેલ બિલકુલ થતો નથી, એ વાત પણ આપણે ભૂલવી બેઘતી નથી. તેમના કરેલા નિર્ણય પ્રમાણે ગણતરી કરતાં, કેટલીક અગત્યની ઐતિહાસિક કાલક્રમની વિગતો તેથી બહુ વિરુદ્ધ જાય છે અને કેટલીક અવનવી ભ્રાંતિઓ ઉત્પન્ન થાય છે. એટલે તેમનો એ નિર્ણય સર્વથા નિર્જાત નથી એવું આપણે પ્રામાણિકપણે પ્રકટ કરવું પડે છે.

ગુપ્ત સંવત્, ગુપ્ત રાજવંશ સાથે સંબંધ ધરાવે છે એ તો સ્વતઃ સિદ્ધ છે; પણ એ વંશના કયા રાજાએ, કયે સમયે, એ સંવત્નું આદિ પ્રવર્તન કર્યું તે વિષેનો કોઈ લેખગત કે ગ્રંથગત પુરાવો હજી સુધી ઉપલબ્ધ થયો નથી. આને લગતો સમય-નિર્દેશક જે કાંઈ એકમાત્ર ઉલ્લેખ મળી આવે છે તે પ્રસિદ્ધ આર્ય ગ્રંથકાર અદ્ભેરુનીનો છે. એ વિદેશી વિચક્ષણ ગ્રંથકારે પોતાના સુપ્રસિદ્ધ ‘ભારત’ ઉપરના ગ્રંથમાં, વલ્લ્હી અને ગુપ્ત સંવત્ના પ્રારંભસમય માટે આ પ્રમાણે એક ટુંકી નોંધ કરેલી છે—

“વલ્લ્હી પુરના રાજા વલ્લ્હના નામથી વલ્લ્હી સંવત્ પ્રચારમાં આવ્યો, જેની શુરુઆત શક સં. ૨૪૧ પછી થઈ હતી. ગુપ્ત સંવત્ના વિષયમાં લોકોનું કહેવું છે કે ગુપ્ત લોકો દુષ્ટ તેમ જ પરાક્રમી હતા અને તેમનો નાશ થઈ ગયા પછી પણ લોકો તેમના ચલાવેલા સંવતનો વ્યવહાર કરતા રહ્યા હતા. અનુમાન થાય છે કે એમાંનો જ વલ્લ્હ એ નામનો અંતિમ રાજા હશે. કારણ કે વલ્લ્હી સંવત્ની માફક ગુપ્ત સંવત્ પણ, શક સંવત્ ૨૪૧ પછી શુરુ થયો હતો. વિક્રમ સંવત્ ૧૦૮૮, શક સંવત્ ૯૫૩ અને વલ્લ્હી તથા ગુપ્ત સંવત્ ૭૧૨ એ બધા પરસ્પર સમાન વર્ષ થાય છે.” (અદ્ભેરુની રચિત ‘ઇન્ડિયા’ નામનું પુસ્તક, ઇંગ્લેન્ડ લાષાંતર, ભાગ ૨, પૃ. ૭.)

અદ્ભેરુનીના આ ઉલ્લેખના આધારે જ ગુપ્ત સંવત્નો પ્રારંભ, વિ. સં. ૩૭૬ તથા ઇ. સં. ૩૧૯-૨૦ માં નિર્ણય કરવામાં આવ્યો છે, એ આપણે સ્પષ્ટ જોઈ શકીએ છીએ. અદ્ભેરુનીના લેખથી એ પણ જણાય છે કે, વલ્લ્હી નામનો જે સંવત્, કાઠીયાવાડના કેટલાક ભાગમાં એક કાળે પ્રચલિત હતો અને જેનો નિર્દેશ વેરાવલમાં મળેલા અર્જુનદેવના સમયના વિ. સં. ૧૩૨૦ ના લેખમાં મળી પણ આવે છે, તે ૧૧ મા સૈકામાં પણ સુપ્રસિદ્ધ હતો. વેરાવલવાળા એ લેખમાં “રસૂલ મહંમદ સંવત્ ૬૬૨, વિ. સં. ૧૩૨૦, વલ્લ્હી સંવત્ ૯૪૫ અને સિંહ સંવત્ ૧૫૧” એમ એક સાથે ૪ સંવતોનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે જેથી એ ચ્યારે સંવતો વચ્ચે પરસ્પર કેટલાં વર્ષોનું અંતર છે તે પણ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે, એમાં જણાવેલો રસૂલ મહંમદ સંવત્ તે ઇસ્લામી હીજરી સન્ છે; અને સિંહ સંવત્ તે સિદ્ધરાજ જયસિંહનો ચલાવેલો સંવત્ છે. વલ્લ્હી સંવત્ માટે અદ્ભેરુનીએ જે કહ્યું છે કે શક સંવત્ ૨૪૧ (અર્થાત્ વિક્રમ સંવત્ ૩૭૬) વર્ષે એનો પ્રારંભ થાય છે, તે કથન વેરાવલવાળા એ

જેમથી સત્ય ઠરે છે. અદ્ભુતનીના કથનના આધારે જ એ પણ ચોક્કસ માનવામાં આવ્યું કે—વલ્લભી સંવત્ અને ગુપ્ત સંવત્ બંને એક જ સમયમાનના નિર્દેશક છે અને તેથી તેમનું મૂળ પણ એક જ હોવું જોઈએ. એ ઉપરથી વિદ્વાનોએ એવી કલ્પના કરી કે—વલ્લભીના મૈત્રકો પ્રથમ ગુપ્તોના સામંતો હતા અને તેથી તેમણે પ્રોતાના લેખોમાં એ ગુપ્ત સંવત્નો વ્યવહાર ચાલુ કર્યો હતો. ગુપ્ત સામ્રાજ્યનું પતન થયાં પછી, પાછળથી તેઓ સ્વતંત્ર બન્યા, પણ વ્યવહારરૂઢ બનેલા એ સંવત્નો તેમણે ઠેઠ સુધી પૂર્વની માફક જ ઉપયોગ ચાલુ રાખ્યો. તેમના રાજ્યકારભારમાં ચાલુ રહેલો એ સંવત્ તેમના રાજ્યના નાશ થયાં પછી પણ લોકોમાં તદ્દત્ પ્રચલિત રહ્યો અને તેથી લોકો એને પાછળથી વલ્લભી સંવત્ના નામે ઓળખવા લાગ્યા. આ કલ્પનાના આધારે વલ્લભી સંવત્ અને ગુપ્ત સંવત્ બંને એક જ છે એમ સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું અને તેથી ગુપ્ત સંવત્નો પ્રારંભ વિ. સં. ૩૭૬ માં નિર્ધારિત કરવામાં આવ્યો. પરંતુ, આપણે ઉપર જોયું તેમ, આપણા આ પ્રસ્તુત તાત્કાલિકમાં તો વિક્રમ સંવત્ની જગ્યાએ જ ગુપ્ત સંવત્ લખવામાં આવ્યો છે, અને તેથી આ બંને સંવતો એક જ કાલમાનના નિર્દેશક હોવાથી બંને એક જ છે એ સ્વતઃ સિદ્ધ થાય છે. આ ઉલ્લેખ અદ્ભુતનીના શંક પહેલાં લગભગ ૫૫ વર્ષ જેટલો જૂનો છે અને તેના કથનનો સ્પષ્ટ આધાર છે. આથી તેણે એ બે સંવતો વચ્ચે જે ૩૭૬ વર્ષનું અંતર બતાવ્યું છે તે ચિંતનીય ઠરે છે. ૩૭૦ ફલીટની ગુપ્ત સંવત્ની બધી સ્થાપના અદ્ભુતનીના કથનના આધારે જ કરવામાં આવેલી હોવાથી એ બધી સ્થાપના પણ આ રીતે ચિંતનીય ઠરે છે અને તે સાંગોપાંગ પુનર્વિચારણા માંગી લે છે.

ગુપ્ત સંવત્ વિષે પ્રાપ્ત થએલા પ્રસ્તુત ઉલ્લેખના સખમે આ આખો વિષય બહુ જટિલ બની જાય છે, અને એના અંગે અનેક નવીન સમસ્યાઓ અને નવીન કલ્પનાઓ ઉત્પન્ન થાય છે. આ વિષયના મર્મજ્ઞ વિદ્વાનોને આ પ્રશ્ન ઉપર ગંભીર લક્ષ્ય આપવા હું સાચક નિવેદન કરે છું.

सा हि त्य स मा लो च न

*

राजस्थानी—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, का त्रैमासिक मुखपत्र

[संपादक—शम्भूदयाल सकसेना, साहित्यरत्न; अगरचन्द नाहटा । प्रकाशक—रघुनाथप्रसाद सिंहानिया, विद्याभूषण, विशारद, मंत्री राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता । आकार काउन साईज़ (२०×३०) अष्टपत्री । वार्षिक मूल्य, सर्वसाधारणके लिये ४ रूपया,—सार्वजनिक संस्थाओंके लिये ३ रूपया ।]

राजस्थान अर्थात् **राजपूताना** भारतवर्षका एक रत्नभूत प्रदेश है । वह सब तरहसे रत्नोंकी एक अपूर्व खान है । उसका भूगर्भ सोना, चांदी, तांबा, लोहा, हीरा, माणिक आदि सभी मूल्यवान् धातुओंसे भरा पड़ा है । उसके पहाड़ और जंगल असंख्य तरहकी अमूल्य वनस्पतियां, औषधियां, जड़ी-बूटियां और सब प्रकारके वृक्षोंसे आच्छादित हैं । उसके मैदान सब जातके धानोंके उत्कृष्ट उत्पादक और रस-कस परिपूर्ण हैं । उसके जल-वायु जीवनपोषक, स्वास्थ्य-वर्द्धक और बलदायक हैं । राजस्थानका पशुधन सारे भारतमें एक उत्तम कोटिका और आदर्शरूप माना जाता है । भारतीय आर्य जनताकी दृष्टिमें साक्षात् देवस्वरूप समझे जाने वाले और देवता-ही-के-समान पूजे जाने वाले गौ-वृषभ, जैसी श्रेष्ठ आकृति और प्रकृति वाले राजस्थानमें देखे जाते हैं वैसी जातिके भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देते । हमारे प्रतापी पूर्वज युगातीत कालसे, मरुस्थलके धोरी वृषभकी महती प्रशंसा करते चले आये हैं । यह वृषभ हमारे राष्ट्रके कल्याणकर देव 'शिव' का वाहन है—यह हमारे राष्ट्रका 'नन्दी' (मंगल कर) राष्ट्रवाहक है ।

और राजस्थानके निवासी मनुष्योंका तो कहनाही क्या—उन्होंने तो अपने सद्गुणोंके कारण संसारके इतिहासमें एक विशिष्ट नाम प्राप्त किया है । भारतकी अभिजातीय महत्ता और आर्यत्वकी स्वाभिमानिताका जैसा रक्षण, इस निकटपूर्व इतिहास कालमें, राजस्थानियोंने किया है वैसा और किसीने नहीं किया । अपने स्वधर्म और स्वदेशकी रक्षाके निमित्त जैसा महान् उत्सर्ग राजस्थानके वीरोंने किया वैसा संसारमें शायद ही अन्य किसीने किया हो । भारतके और सब प्रधान प्रदेश जब शता-

न्दियां पूर्व ही अपनी स्वतंत्रता संपूर्णतः खो बैठे हैं; तब, राजस्थानकी सन्तान, उस स्वतंत्रताको, अब तक भी किसी-न-किसी स्वरूपमें निभा रही है। यह राजस्थान-ही-के सत्पुत्रोंके सर्वस्व त्यागका सुफल है कि आज भी हम राजपूतानेके गाँव-गाँवमें, उन प्राचीन देव मन्दिरोंको, अखंड रूपमें खड़े देख रहे हैं, जो हमारी संस्कारिताके केन्द्र और कलाके अद्वितीय स्मारक हैं। इन देवमन्दिरोंके दिव्य दर्शन कर, हम अपने उन पूर्वजोंकी लोकोत्तर धर्मप्रवणता और दानशीलताका कुछ निदर्शन कर पाते हैं। शैवोंके एकलिंगेश्वर, वैष्णवोंके श्रीनाथजी और जैनोंके ऋषभदेव, जो विधर्मि म्लेच्छोंके पाप स्पर्शसे अद्यापि अस्पृष्ट रह सके, वह राजस्थान-ही-की सुकर्मी सन्तानोंके स्वर्गीय बलिदानका परिणाम है। काशीके विश्वेश्वरकी, सोरठके सोमेश्वरकी और उज्जयिनीके महा-कालेश्वरकी दीपक-ज्योति, इस पिछले एक हजार वर्षोंमें, म्लेच्छोंके दुष्ट आक्रमणोंके कारण अनेकों बार बुझ चुकी; परंतु, राजस्थानके राष्ट्रदेव एकलिंगेश्वरकी वह ज्योति, आज कमसे कम तेरह सौ वर्षसे तो, अखंड रूपमें जल रही है। इस दुनियामें इतनी पुरानी अखंड देवज्योति और कहीं नहीं जलती होगी। इस ज्योतिको खण्डित न होने देनेके लिये राजस्थानके कितने किशोर, युवा और वृद्ध वीरवरोंने, हँसते हँसते, युद्धकी वेदीमें अपने प्राणोंकी आहुती दे दी; और उन वीरोंकी कितनी सती मातायें, बहिनें, पुत्रियां और पत्नियां इसके लिये मंगल गीत गाती हुई अग्निकी भयंकर ज्वालामें स्वाहा हो गई—इसकी गिनती कौन कर सकता है।

राजस्थान निवासियोंका वह जातीय-राष्ट्रीय-जीवन इस प्रकार केवल वीर-रससे ही परिपूर्ण मात्र न था। वह जीवन तो उसी तरह खेह, प्रेम, हास्य, करुण, वत्सल और शान्त आदि अन्यान्य उत्तम रसोंसे भी परिपूर्ण था। राजस्थानके वीरजीवनकी इस अद्भुत गायकी तरह, उसके खेहजीवन, शान्तजीवन, करुणजीवन आदिकी गायायें भी वैसी ही अद्भुत और रोमांचक हैं। राजस्थानके महाराजनोंमें वीर, वीर, उदात्त और ललित आदि सभी प्रकारके उत्तम जीवनके आदर्शभूत, अनेक पुरुषपुंगव हो गये हैं। इनमेंसे, राजस्थानके वीरजीवनका कुछ परिचय तो, संसारको महामति इंग्रेज कर्नल जेम्स टॉडके 'राजस्थान' इतिहासके प्रकट होनेके प्रारंभसे ही होना शुरु हो चुका था; और यह अब विशेषरूपमें, राजस्थानके अद्वितीय इतिहास और निरुद्धत ३० म०

पंडितप्रवर श्रीयुत गौरीशंकरजी ओझा लिखित 'राजपूतानेका इतिहास' नामक महान् ग्रंथरत्नके प्रकाशनसे हो रहा है। लेकिन इस वीरजीवनकी कथाओंके सिवा, राजस्थानियोंके उक्त अन्यान्य रसपरिपूर्ण जीवनकी जो जातीय कथायें हैं उनका परिचय करने-करानेका अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुआ है। विद्वानोंका लक्ष्य, अभी तक, खास करके, राजवंशोंसे संबद्ध राजकीय इतिहासका संकलन और संशोधन करने तक ही सीमित है। समग्र प्रजाजीवनसे संबद्ध व्यापक इतिहासका अनुसन्धान कर, प्रजाकीय सामाजिक संस्कारों और सामूहिक व्यवहारोंके इतिहासके विषयमें व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करनेकी तरफ अभी तक हमारा कोई प्रयत्न नहीं है। जातीय और राष्ट्रीय जीवनका ठीक ठीक स्वरूप जाननेके लिये, प्रजासमूहके विविध धार्मिकभाव, सामाजिक संस्कार, लौकिक व्यवहार और वैयक्तिक कार्यकलाप इत्यादिके विषयमें हमें खूब अन्वेषण और पर्यालोचन करना चाहिए। राजस्थानमें इस विषयकी साधन-सामग्री अब भी यथेष्ट प्रमाणमें उपलब्ध हो सकती है। राजस्थान इस संपत्तिसे अब भी बहुत कुछ समृद्ध है। लेकिन उसकी यह संपत्ति न उन राजा-महाराजाओंके बड़े बड़े महालयोंमें रक्षित है और न श्रीमान् सेठ-साहुकारोंकी हवेलियों और हाटोंमें संचित है। यह तो दबी पड़ी है उज्जडप्राय बने हुए गाँवोंके टूटे-फूटे पुराने क्षुद्र घरोंमें। इस संपत्तिको बहुतसा भाग या तो उन घरोंमें रहने वाले अज्ञान और गरीब दीखाई देते वृद्ध नरनारियोंकी लूखी-सूखी जीममें भरा हुआ है या दुरवस्थ यतियों, ब्राह्मणों और चारणों जैसे भिक्षोपजीवी जनोंके पास, फटे-कटे कपड़ेके बस्तेमें बन्धे हुए, सड़े-गले कागजों और पोथियोंमें लिखा पड़ा है। इन लोगोंने, चाहे अज्ञानवश ही, आज तक इस संपत्तिको कुछ कामकी समझ कर अंधेरेकी ओटमें जैसे वैसे संमाल रखा। लेकिन हम शिक्षित और संपन्न समझे जाने वाले लोगोंने तो इसको कौड़ीकी भी किंमतकी नहीं समझा और इसकी रक्षाका किंचित भी प्रयत्न नहीं किया। विदेशीय विभुता, विक्रम, विद्या और विचारोंकी चक्का-चौन्धमें आ कर हम अपने जातीय जीवनके गौरवको खो बैठे; और हम कौन है और किस दशामें पड़े हुए हैं इसका भी हमें ठीक होंश नहीं रहा। पर, अब कुछ कुछ हमारी यह मोहनिद्रा दूर होती दिखाई दे रही है और हमें अपनी दशाका कुछ कुछ मार्मिक मान हो रहा है। हम अपनी बेहोशीमें क्या क्या

खो बैठे हैं और हमारी कौन संपत्ति किस तरह नष्ट हो गई है इसका थोड़ा बहुत खयाल हमें आ रहा है। हमारा प्रथम कर्तव्य अब यह है कि—हम शीघ्र ही अपनी इस जातीय और राष्ट्रीय जीवनसंपत्तिको, जो नाशोन्मुख हो रही है, गाँव गाँवमें भटक कर खोज निकालें और उसका रक्षण करें।

यों तो राजस्थाननिवासी धन—संपत्तिका उपार्जन करनेमें बड़े कुशल और साहसी है। इस विषयमें सारे भारतमें इनकी खूब ख्याति है। भारतवर्षके कौने कौनेमें ये इस कामके लिये पहुँचे हुए हैं और सब कहींसे ये सोना-चांदीरूप जड़ धन संग्रह करके अपने देशमें लाया करते हैं। लेकिन इनको अपने इस सांस्कृतिक जीवनधनकी कोई किंमत नहीं मालूम देती और इस लिये अपने ही घरमें, इस अमोल धनका प्रतिक्षण नाश होते देख, उसके रक्षणका कुछ प्रयत्न नहीं करते। सोना-चांदी जैसी मिट्टीमय धन—संपत्ति तो बिल्कुल मिट्टीके घड़े जैसी क्षुद्रस्वरूप और क्षणस्थायी वस्तु है। उद्यमी कुंभार, मिट्टीमेंसे एक दिनमें जैसे सैंकड़ों घड़े बना सकता है, वैसे ही उद्योगी व्यापारी एक दिनमें हजारों-लाखों रूपये पैदा कर सकता है। परंतु जातिके इस संस्कारस्वरूप जीवनधनके एक-एक कणके सर्जन होनेमें कई युगोंका समय और अनेक आदर्श साधकोंका स्वर्पण अपेक्षित होता है। सोना-चांदी पैदा करने वाले तो रोज हजारों जन्म लेते हैं, लेकिन इस जातीय जीवन-धनका उत्पादन करने वाला तो वर्षोंमें कोई एक ही जन्म लेता है। यह ठीक है कि हमारी परवशताके कारण हमारा सोना-चांदी जैसा क्षुद्र धन भी हमारे देशमेंसे लुप्तप्राय हो गया है और हम आज संसारकी जातियोंमें निर्धनतम दिखाई देते हैं; एवं हमारी यह बाह्य आर्थिक दरिद्रता हमें उस जातीय संपत्तिका रक्षण करनेमें भी असमर्थ बना रही है। तब भी हमें इस संपत्तिका तो प्राणार्पण करके भी रक्षण करना परम आवश्यक है। हमारे जातीय जीवनका प्राणाधार तो यही धन है। इसके नष्ट हो जाने पर फिर हमारे जीवनमें कोई सत्त्व ही क्या रहेगा। जिस दिन हमारे देशमें—हमारी जातिमें हेस्टिंग्स और क्लाइवकी प्रतिमूर्तिसा, कोई कौटिलीय राजनीतिका कुशल ज्ञाता पुरुष पैदा होगा, उसी दिन, हमारा देश सोना-चांदीकी ईंटोंसे फिर भर जायगा। एक प्रताप, एक शिवाजी, एक रणजीतसिंहके अवतार लेते ही, सात समुद्र पार गया हुआ हमारा वह सब सोना-चांदी, मय सूदके, वापस आ सकता है। लेकिन नष्ट हुए इस संस्कार धनको कौन कहाँसे वापस

ला सकता है?। अगर हमारे पास हमारा यह जातीय धन विद्यमान है और इसके संरक्षणकी हमने यथेष्ट सावचेती रखी तो—वह दिन अब दूर नहीं है, जिसमें हमारा इस आर्थिक दरिद्रता और राजकीय परवशतासे उद्धार होने वाला है। हमारी दृष्टिमें तो देशके वे ही पुरुष सच्चे रक्षक और उद्धारक हैं जो प्रजाकी इस जीवन-संपत्तिकी यथाशक्ति रक्षा करते रहते हैं।

*

हमें यह देख कर हर्ष होता है कि राजस्थानके इस जातीय जीवनधनके बिखरे हुए अणु-परमाणुओंका संचयन और संगठन करनेकी इच्छासे, कुछ संस्कृतिप्रिय सज्जनों द्वारा कलकत्तेमें, ‘राजस्थान रिसर्च सोसाइटी’ नामक एक संस्थाकी स्थापना की गई है और उसके प्रयत्नके फलस्वरूप यह समालोच्य ‘राजस्थानी’ नामक त्रैमासिक मुखपत्र प्रकाशित किया जाता है। इस पत्रके नियममें लिख गया है कि—“राजस्थानीमें राजस्थानी भाषा, साहित्य, पुरातत्त्व, इतिहास, कला एवं संस्कृतिसे संबंध रखने वाली रचनाएँ प्रकाशित होंगी। आधुनिक राजस्थानी भाषामें लिखी हुई नवीन रचनाओंको भी स्थान दिया जायगा।” इस पत्रके तीसरे वर्षका पहला अंक हमारे सामने है, जिसमें पत्रके बतलाए हुए उक्त उद्देशके समर्थक और परिचायक विविध प्रकारके उत्तम लेख—निबन्धादि हैं।

लेखादिके विभाग इस प्रकार किये गये हैं—

- (१) निबन्धमाला—इस शीर्षक वाले विभागमें कुछ स्वतंत्र लेख—निबन्ध दिये गये हैं।
- (२) प्रकीर्णिका—इस शीर्षकमें कुछ छोटे छोटे टिप्पण (नोट्स) जैसे लघु लेख दिये गये हैं।
- (३) आधुनिक राजस्थानी साहित्य—इस विभागमें राजस्थानके आधुनिक कवियोंकी वैसे कृतियां दी गई हैं जो पुरानी कृतियोंका आदर्श रखती हैं।
- (४) प्राचीन राजस्थानी साहित्य—इस खंडमें मीरांके कुछ अप्रकाशित पद्य, वीर रसके दोहे, आबू रास जैसी प्राचीन पद्य कृतियां प्रकाशित की गई हैं।

- (५) लोक साहित्य — इस शीर्षकके साथ कुछ गीत, दूहा, कहावतां आदिको संग्रह किया गया है ।
- (६) अमिलेख — इसमें कुछ प्राचीन मंदिर और मूर्तियां पर खुदे हुए लेख प्रकाशित किये गये हैं ।
- (७) हस्तलिखित ग्रंथोंका विवरण — इसमें 'जैतसी रौ रासौ' का संक्षिप्त परिचय लिखा गया है ।
- (८) राजस्थानके रत्न — इसमें म० म० श्रीमान् ओझाजीका जीवनचरित्र आलेखित है ।

इनके उपरांत आलोचना, संपादकीय निवेदन इत्यादि कुछ शीर्षक हैं ।

मुख्य निबन्धोंमें, साहित्यवाचस्पति, महामहोपाध्याय, रायबहादुर, डाक्टर श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा डी. लिट्. अजमेरका, लिखा हुआ "मध्य-कालीन भारतका एक अज्ञात राजवंश"; श्री नरोत्तमदास स्वामी एम्. ए. विशारद, विद्यामहोदधि, बीकानेर लिखित "राजस्थानी भाषा और साहित्य", श्रीदशरथ शर्मा एम्. ए. बीकानेर लिखित "देवानां प्रिय इति च मूर्खे" इस पर एक टिप्पणक; श्रीजगदीशसिंह गहलोत, इतिहासज्ञ, जोधपुर, लिखित "राजपूतानेके वातालार्थ" आदि प्रबन्ध विशेष पठनीय हैं ।

प्राचीन कृतिसंग्रहमें श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा संगृहीत 'आबूरास' विशेष महत्त्वका है । वि० सं० १२८९ में इस रासकी रचना की गई थी । इसमें, महामाल्य वस्तुपाल — तेजपालने आबू पहाड़ पर, शिल्पकलाका अद्भुत निदर्शक, जो जैन मंदिर बनवाया है उसके बनानेका बहुत कुछ दृष्टि-गोचर किया हुआ वर्णन दिया मादूम देता है । ऐतिहासिक वृत्तांतकी दृष्टिके सिवा, भाषाकी दृष्टिसे भी यह कृति बहुत अच्छी है । इसकी भाषा वह प्राचीन [पश्चिमीय] राजस्थानी है, जो उस समय, गुजरात और राजपूतानेके बहुतसे भागमें एकसी बोली और समझी जाती थी ।

इस पत्रके एक संपादक श्रीयुत नाहटाजी इस विषयके बड़े प्रेमी, उत्साही और अध्यवसायी हैं । स्वयं बहुत बड़े कारोबारवाले व्यवसायी हो कर भी, इतिहास संशोधनमें खूब व्यस्त रहते हैं और सतत साहित्यसेवा किया करते हैं । इन्होंने अपने घर पर बड़ा भारी प्राचीन साहित्य संग्रह किया है । जैन

પ્રમ્થમંડારોંકે સાથ ઘનિષ્ઠ સંપર્ક હોનેકે કારણ, ઇનકો ઇસ સંશોધન કાર્યમેં ઔર મીં બહુતસીં બહુમૂલ્ય સામગ્રી પ્રાપ્ત હો કસતીં હૈ, જો ઔરોંકે લિયે પ્રાયઃ દુષ્પ્રાપ્યસીં હૈ । હમકો મીં યે પુરાને પ્રંચાદિ મેજ કર સદૈવ સૌહાર્દપૂર્ણ સહાયતા દેતે રહતે હૈં — જિસકે લિયે હમ ઇનકે બહુત કૃતજ્ઞ હૈં ।

હમારી કામના હૈ કિ, ઇન સુયોગ્ય સંપાદકોંકે સમુચિત પ્રયત્નસે, યહ ‘રાજસ્થાની’ ભવિષ્યમેં રાજસ્થાનકે ઇસ અમૂલ્ય જીવનધનકા અચ્છા સંચય કર ઉસકા લોકમોગ્યકે રૂપમેં પ્રસાર કરે ઔર અપના ઉદ્દેશ સફલ કરે ।

— જિન વિજય મુનિ

*

પ્રમાણ-મીમાંસા:—(સ્વોપજ્ઞવૃત્તિસહિત) મૂળકાર ઠલિકાલ સર્વજ્ઞ શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય, વિસ્તૃત હિન્દી ટિપ્પણો સાથે સંપાદન કરનાર પંડિત સુખલાલજી સંઘવી. પ્રધાનાધ્યાપકઃ જૈનશાસ્ત્રપીઠ—હિન્દુ વિશ્વવિદ્યાલય, અનારસ. સહસંપાદક—પંડિત મહેન્દ્ર કુમાર, ન્યાયશાસ્ત્રી, જૈનદર્શનાધ્યાપક સ્વાદ્રાદ વિદ્યાલય, અનારસ; તથા પંડિત દલસુખ માલવણિયા, ન્યાયતીર્થ, જૈનાગમ અધ્યાપક—હિન્દુ વિશ્વવિદ્યાલય, અનારસ. પ્રકાશનકર્તા—સંચાલક—સિધી જૈન ગ્રંથમાલા, અમદાવાદ—કલકત્તા. મૂલ્ય રૂ ૫-૦-૦

સિધી જૈન ગ્રંથમાલાના સમર્થ સંચાલક અને સિદ્ધ હસ્ત વિદ્વાન મુનિશ્રી જિન વિજયજી દ્વારા, પંડિત પ્રવર સુખલાલજીના પ્રાંજળ અને મૌલિક વિદ્વત્તા લયારા ટિપ્પણ સાથે અને પંડિત મહેન્દ્રકુમાર ન્યાયશાસ્ત્રી તથા પંડિત દલસુખ બાઈ માલવણિયા ન્યાયતીર્થના સહયોગથી બહાર પડેલી, આચાર્યશ્રી હેમચંદ્રની પ્રમાણ મીમાંસા નામની અંતિમ કૃતિને વધાવતાં અમને ઘણું ગૌરવ અને હર્ષ થાય છે. ન્યાયશાસ્ત્રમાં આ ગ્રંથ મહત્વનું સ્થાન ભોગવે છે. મૂળ તો આ ગ્રંથ પાંચ અધ્યાયમાં હતો, અને એ પ્રત્યેક અધ્યાયમાં એકાધિક આદિક હતાં. એ બધાં ઉપર આચાર્યની સ્વોપજ્ઞવૃત્તિ હતી. કમલાગ્યે આ ગ્રંથ આજે આપણને સંપૂર્ણ સ્વરૂપમાં નથી મળતો. બે આદિક વાળો પ્રથમ અધ્યાય અને એક આદિક જેટલો બીજો અધ્યાય—એટલો ભાગ માત્ર જ આ ગ્રંથનો અત્યારે ઉપલબ્ધ થાય છે. “અનુહેમચન્દ્રાઃ સંગ્રહિતારઃ” એ સૂચનાનુસાર આચાર્ય હેમચંદ્રની સંગ્રહ કરવાની અદ્ભુત શક્તિ, વિષયને અસન્દિગ્ધપણે રજૂ કરવાની અમોઘ શૈલી અને વસ્તુને ટુંકવી લાક્ષણિક રીતે મૂકવાની એમની વિશિષ્ટતા આ ગ્રંથમાં પણ ખાસ તરી આવે છે. આચાર્ય હેમચંદ્રની જૈનન્યાય ઉપરની બે બત્રીશીઓ અને પ્રમાણમીમાંસા નામની બે જ કૃતિઓ અઘાવધિ જાણવામાં આવી છે. વિસ્તૃત ગ્રંથ વાંચવાનો જેને કંટાળો હોય તેને માટે આ ગ્રંથો ખૂબ જ માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. પ્રમાણમીમાંસાની સ્વોપજ્ઞવૃત્તિમાં સૂત્રનું જે લક્ષણ પોતે બાંધ્યું છે તે આચાર્યના સૂત્રોને તો ખાસ લાગૂ પડે છે. “અત્પાક્ષરમસન્દિગ્ધં સારવત્ વિશ્વતો મુલ્કમ્ । અસ્તોમમનવર્ણં ચ સૂત્રં સૂત્રવિદો વિદુઃ ॥” ગૌતમના ન્યાયસૂત્રનું આખું પ્રતિબિંબ આ

સૂત્રોમાં આપણને જરૂર સાંપડે છે પરંતુ તે આંધળું અનુકરણ નથી. એ સૂત્રોમાં વૈલક્ષણ્ય પણ છે. ગૌતમે ન લીધેલાં એવાં પ્રમાણ, અનપ્યવસાયાદિ ઘણા ઘણા વિષયો આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના આ ગ્રંથમાં ચર્ચ્યા છે. ગૌતમના મતે હેત્વાભાસ પાંચ છે. આ ૦ હેમચંદ્ર તે પાંચેયનો ત્રણમાં અંતર્ભાવ કરે છે. સમાસરૂપે કહેવાની આ પદ્ધતિ આચાર્ય હેમચંદ્રની પોતીકી જ છે. વાદ, તર્કના લક્ષણ ઇત્યાદિમાં ન્યાયસૂત્રકારથી સહેતુક જૂદા પડવાની હિંમતપણ આચાર્ય હેમચંદ્રમાં છે. ટુંકમાં મૂળકારવિષે એટલું જ કહેવું ખસ થશે કે અતિઅદ્ય મહેનતે અગાધ જ્ઞાનનો પરિચય કરાવનાર આ ગ્રંથ વાદિદેવસૂરિના પ્રમાણનયતત્ત્વલોકાલંકાર પછી બીજે નંબરે આવે તેમ છે.

આ પ્રમાણભીમાંસાના પ્રધાન સંપાદક પંડિતવર્ય સુખલાલજીના પ્રગટ પાંડિત્ય વિષે હું શું અભિપ્રાય ઉચ્ચારું? “હાથ કંકણકો આરસીકી ક્યા જરૂરત?” એ હિન્દી કથનાનુસાર અભ્યાસી પોતે જ પુસ્તકદ્વારા નિર્ણય કરી લેશે. પંડિતજીનું જૈનદર્શન વિષયક જ્ઞાન જેટલું ઉંડું છે તેટલું જ વેધક અને વિશાળ છે. તેઓ શ્રીની સમન્વયાત્મક દૃષ્ટિ તો વિરળને જ સાંપડે છે. તેમના તુલનાત્મક જ્ઞાન, ગંભીર ચિંતન અને તલસ્પર્શી અભ્યાસનો પરિચય “સન્મતિ તર્ક”ના સંપાદન દ્વારા આપણને થઈ ચૂક્યો છે. છતાં આ સંપાદનમાં મને જે વસ્તુ ખાસ આકર્ષી રહી છે તે એઓશ્રીએ એમાં અખત્યાર કરેલી મૌલિક પદ્ધતિ છે. આ ગ્રંથ ઉપર પંડિતજીએ જે ટિપ્પણ લખ્યું છે તે તો મારા નત્ર મત પ્રમાણે આચાર્ય હેમચંદ્રના મૂળ ગ્રંથ કરતાં પણ ચ્હડી જાય તેવું છે. આ ટિપ્પણોમાં સૂત્રને સમજાવવાની જ માત્ર ચેષ્ટા કરવામાં આવી હોય એમ નથી; પરંતુ આ વિચાર મૂળ કોનો, એની ઉત્પત્તિ, વિકાસ-ક્ષાસ, ખંડન-મંડન વગેરેનો જે ઐતિહાસિક પરિચય એમણે કરાવ્યો છે, તે તો અત્યાર સુધી કોઇએ કરાવ્યો હોય એવું મારી જાણમાં નથી (સરખાવો પૃષ્ઠ ૨. પંક્તિ ૨૦; પૃષ્ઠ ૪. પંક્તિ ૧૬; પૃષ્ઠ ૬. પં. ૧; પૃષ્ઠ ૭. પં. ૭; પૃષ્ઠ ૧૦. પં. ૧૪; પૃષ્ઠ ૧૪. પં. ૫; પૃષ્ઠ ૪૫. પં. ૨૦; પૃષ્ઠ ૫૩ પં. ૬; પૃષ્ઠ ૬૪. પં. ૨૬; ઉપર મૌલિક ભાષા ટિપ્પણી. આ તો માત્ર નમુના જ આપ્યા છે. બાકી તો આખો ગ્રંથ મૌલિક ભાષા ટિપ્પણીઓથી ભરપૂર છે). આ સંપાદન પોતાના જ હંગુનું, નિરાળું, અને ઘણું જ પાંડિત્યપૂર્ણ છે. અને તેથી વિદ્વદ્વર્ગમાં યથેષ્ટ આદરને પાત્ર થશે, એવી આશા રાખવી એ વધારે પડતું નથી. તદુપરાંત, પંડિતજીએ આ ગ્રંથના સંપાદનમાં, પ્રમાણભૂત અને અંતિમવચન ગણાતા શેર બેટસ્ક્રી જેવા વિદ્વાનોના “બુક્કિસ્ટ લૉલક” જેવા ગહન ગ્રંથોના પણ આધારો ટાંક્યા છે. (જુઓ પૃષ્ઠ ૨. પંક્તિ ૨૦ ઉપરનું ભાષાટિપ્પણ). ઉત્તરાવસ્થામાં પ્રવેશી ચુકેલા પંડિતજી પોતાના અગાધ જ્ઞાન અને અણુમોલ અનુભવના, પં. મહેન્દ્રકુમાર શાસ્ત્રી અને પંડિત દલસુખભાઈ માલવણિયા જેવા જિજ્ઞાસુ યુવાનોને વારસદાર બનાવવા જે સમયોચિત દીર્ઘદૃષ્ટિ બતાવી છે, તે પણ આવકારદાયક છે.

સુંદર છપાઈ અને સારા ગેટ-અપ માટે સંચાલક મહોદયને જેટલાં અભિનંદન આપીએ તેટલાં થોડાં છે. અને એમ છતાં પાંચ રૂપીયા જેટલી સ્વદેય કિંમત રાખી છે તે અન્ય ગ્રંથમાળાઓ માટે ખાસ ઉદાહરણ લેવા લાયક છે.

અં ૨૦ ગોપાણિ, એમ. એ.

भारतीय विद्या भवन

*

योजना, स्थापना अने कार्यप्रवृत्ति

*

[प्रथम वार्षिक वृत्तान्त]

ભારતીય વિદ્યા મવન

*

વર્તમાન કાર્યવાહક સમિતિ

[નવેમ્બર ૧૯૩૮ થી ઓક્ટોબર ૧૯૪૦]

સ્થાપક-પ્રમુખ

શ્રી કં ૦ માં ૦ મુનશી બી.એ.એલ.એલ. બી.; એમ.એલ.એ.
ભૂતપૂર્વ ગૃહસચિવ-મુંબઈ; સીનિયર-મુંબઈ યુનિવર્સિટી; પ્રમુખ-ગુજરાતી
સાહિત્ય પરિષદ, મુંબઈ

ઉપપ્રમુખ

નામદાર, ન્યાયમૂર્તિ શ્રી હ ૦ વ ૦ દિવેદીયા, એમ.એ.એલ.એલ.બી.
જજ, હાઈકોર્ટ, (મુંબઈ); ફેલો, મુંબઈ યુનિવર્સિટી.

મંત્રીઓ

શ્રી ત્રિકમદાસ દ્વારકાદાસ, સીનીયીટર, મુંબઈ
શ્રી ડૉ: મણિલાલ પટેલ પીએચ.ડી. (માર્ગુર્ગ) ભૂતપૂર્વ અધ્યાપક-વિશ્વભારતી
શાંતિનિકેતન; ટ્રિસ્ટર અને સંસ્કૃત તથા તુલનાત્મક ભાષાશાસ્ત્રના અધ્યાપક-
મુંબાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.

કોષાધ્યક્ષો

શ્રી પ્રાણુલાલ દેવકરજી નાનજી, મુંબઈ
શ્રી વસંતરામ જમીઅતરામ, બી.એ.એલ.એલ.બી., મુંબઈ.

સભ્યો

દિ ૦ બા ૦ કૃષ્ણલાલ મોહનલાલ ત્રંબગી, એમ.એમ.; એલ.એલ.બી.
ભૂતપૂર્વ જજ-હાઈકોર્ટ, મુંબઈ; સીનિયર-મુંબઈ યુનિવર્સિટી.
ડૉ ૦ આનંદશંકર આપુભાઈ ધ્રુવ, એમ.એ.; એલ.એલ.બી.; ડી. લીટ.
ભૂતપૂર્વ પ્રો વાઈસ ચેન્સેલર કાળી હિન્દુ વિશ્વવિદ્યાલય. (અમદાવાદ)
રાવ બહાદુર ચુનીલાલ હરિલાલ સેતલવડ સી આઈઈ; બાર-એટ-લો;
ભૂતપૂર્વ ચીફ પ્રેસીડેન્સી મેજસ્ટ્રેટ, મુંબઈ

શ્રી મુંબાલાલ ગોએન્કા, મુંબઈ.

શ્રી ઉમાદત્ત નેમાણી, મુંબઈ.

શ્રી મથુરાદાસ વિસનજી, મુંબઈ

શ્રી ચુનીલાલ ભાઈચંદ મહેતા, ભૂતપૂર્વ શેરીફ, મુંબઈ.

શ્રી લક્ષ્મીદાસ ગોવર્ધનદાસ, ગોકુળદાસ તેજપાળ, મુંબઈ.

શ્રી સંગજી સુંદરજી, મુંબઈ.

શ્રી ચત્રભૂજ ગોરધનદાસ, જ.પી., મુંબઈ.

શ્રી મુનિ જિન વિજયજી—ભૂતપૂર્વ આચાર્ય-પુરાતત્ત્વમંદિર, ગુજરાત વિદ્યાપીઠ;
સિધી જૈન જ્ઞાતપીઠ, વિશ્વભારતી, શાંતિનિકેતન; પ્રાકૃત તથા હિન્દી ભાષાના
અધ્યાપક-શ્રી મુંબાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.

શ્રી ડૉ ૦ ઈ. જ. તારાપોરવાલા, બી.એ.; પીએચ.ડી.; બાર-એટ-લો;

આચાર્ય-ધી એમ એફ કામા એથોનેન ઇન્સ્ટીટ્યૂટ, અંબેરી.

શ્રી ઠાકોરદાસ નાનાભાઈ મચેન્દ્ર એમ.એ.; એલ.એલ.બી. સોલીસીટર, મુંબઈ.

શ્રી કાશ્મીરા સિંઘ એમ.એ.; આચાર્ય-ખાલસા કોલેજ, મુંબઈ.

શ્રી હરગોવિંદદાસ જીવજીદાસ, જ. પી., મુંબઈ

ભારતીય વિદ્યા ભવન

*

યોજના, સ્થાપના અને કાર્યપ્રવૃત્તિ

—88—

[ભવનના ડિરેક્ટર તરફથી, ભવને કરેલી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓની દ્વંદ્વી વાર્ષિક નોંધ]

*

પ્રથમ સત્ર (નવેમ્બર ૧૯૩૮-માર્ચ ૧૯૩૯)

ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપના મુંબઈમાં વિ. સં. ૧૯૯૫, કાર્તિક સુદિ પૂર્ણિમાને રોજ (નવેમ્બર ૭, ૧૯૩૮) થઈ હતી. ભવનના હેતુઓનું સવિસ્તર વર્ણન, એના કાર્યાલય તરફથી, યોજના અને સ્થાપનાના પ્રકાશન પામેલા “મેમોરેન્ડમ”માં કરવામાં આવ્યું છે.

ટૂંકમાં, એના ઉદ્દેશો આ પ્રમાણે જણાવી શકાય.

(૧) ભારતીય ભાષાઓ અને સંસ્કૃતિના દરેક અંગ-પ્રત્યંગને લગતી પદ્ધતિસર શોધ ઓળ કરવી અને કરાવવી.

(૨) ભારતવર્ષની પ્રાચીન અને અર્વાચીન ભાષાઓ-દા.ત. સંસ્કૃત, પાલી, અર્ધમાગધી, પ્રાકૃત-મહારાષ્ટ્રી, અપભ્રંશ, રાજસ્થાની, જૂની અને નવી ગુજરાતી, હિન્દી અને અન્ય સંબંધ ભાષાઓ-નાં અધ્યયન, અધ્યાપન અને અન્વેષણ માટે સમુચિત પ્રબંધ કરવો.

(૩) ભારતવર્ષની ઉપર્યુક્ત ભાષાઓનું જે જે સંસ્થાઓ તથા પાઠશાળાઓ, પ્રાચીન પરંપરાથી ચાલતી આવેલી શાસ્ત્રીય પદ્ધતિ અનુસાર અધ્યયન, અધ્યાપન કરાવતી હોય તેમની, યોગ્ય શર્તો સાથે સંચાલના અને વ્યવસ્થા કરવાનું સ્વીકારવું.

(૪) ભારતવર્ષના સાહિત્ય, ઇતિહાસ તથા સંસ્કૃતિનો સંશોધનાત્મક અભ્યાસ કરાવવો તેમ જ તદ્વિષયક પ્રકાશનો બહાર પાડવાં.

(૫) ઉક્ત પ્રકાશનો તેમ જ તદ્વિષયક સ્વતંત્ર મૌલિક ગ્રંથોદ્ધાર ગુજરાતી, હિન્દી અને એવી એવી અન્ય ભાષાઓ સમૃદ્ધ બનાવવી.

(૬) ભારતીય સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિને લગતાં પુસ્તકોનો સંગ્રહ કરી સંશોધનમાં કામ આવે એવું એક પુસ્તકાલય સંગઠિત કરવું.

(૭) અંગ્રેજી, ગુજરાતી, હિન્દી વગેરે ભાષાઓમાં પુસ્તકો, જર્નલો, અને સામયિકો બહાર પાડવા.

*

ભવનની સ્થાપનાવિધિ શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય સ્મારક ઉત્સવ પ્રસંગે કરવામાં આવી હતી. એ ઉત્સવના અધ્યક્ષસ્થાને ભવનના સંસ્થાપક-પ્રમુખ માન્યવર શ્રી મુનશીજી જ હતા. એમણે પોતાના એ પ્રસંગના વ્યાખ્યાનમાં, નીચે આપેલા ઉદ્ગારોમાં, ભવનના ઉદ્ભવના અને ભાવિ વિકાસના મનોરથો પ્રકટ કર્યા હતા.

*

“જ્યારે કલિકાલસર્વજ્ઞની જન્મતિથિ આપણે ઉજવીએ છીએ ત્યારે શ્રી મુંગલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠનું ઉદ્ઘાટન કરીએ છીએ અને ‘ભારતીય વિદ્યા ભવન’ની સ્થાપના પણ કરીએ છીએ. જ્યાં પ્રાચીન ભારતીય વિદ્યા અને આપણાં અર્વાચીન આદર્શનો સમન્વય થાય અને નવું સાહિત્ય, નવો ઇતિહાસ, અને નવા સંસ્કાર પ્રગટાવવાના પ્રયત્ન થાય એવું એક કેન્દ્ર સ્થાપવાનાં સ્વપ્નો ધણા વર્ષ થયાં સંસદ સેવી રહી હતી. આ સ્વપ્નની સિદ્ધિને માર્ગે જે આજે આપણે પગ દઈ રહ્યા છીએ તેનું કારણ શેઠ મુંગલાલ ગોએન્કાનું ઔદાર્ય ને કેટલાક દુરદોષના દુસ્તીઓનો સહકાર છે. શ્રી મુંગલાલ ગોએન્કા સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠમાં આજે પ્રાકૃત માટે મુનિ શ્રી જિનવિજયજી, સંસ્કૃત અને ભાષાશાસ્ત્ર માટે શાંતિનિકેતનના ભૂતપૂર્વ અધ્યાપક ડૉ. મણિલાલ પટેલ, ગુજરાતી માટે પ્રો. ભાનુશંકર વ્યાસ અને અંબાલાલ જાની જેવાનો સહકાર મળવવા આપણે ભાગ્યશાળી થયા છીએ. હિંદીને માટે પણ વ્યવસ્થા થઈ રહી છે

પણ શેઠ મુંગલાલની સખાવત નસીબની ચારી જેવી ફલદાયી થઈ પડી છે. એની સાથે ખીન્નું ધણું આવ્યું છે કેટલાક દુસ્ત અને દુસ્તીઓ અને સર જહાનાથ સરકાર જેવા ભારતીય ઇતિહાસ પરિપક્વ સંચાલકો પણ આપણી સાથે આ ભવનની સ્થાપના કરવામાં ભાગ મળ્યા છે.

આ ભવનનો ઉદ્દેશ પ્રાચીન આર્ય સંસ્કૃતિના અભ્યાસ કરે અને અર્વાચીન હિંદી સંસ્કૃતિને ઐતિહાસિક સાતત્યનું ભાન કરાવે એવું એક કેન્દ્ર સ્થાપવાનો છે. પણ એ ઉદ્દેશને અનુરૂપ સાધનો નથી. મુંગલાલ ગોએન્કા શિક્ષાપીઠ, એક પાઠશાળા, અને ‘ભારતીય વિદ્યા’ નામક ત્રૈમાસિક એ ત્રણ પ્રવૃત્તિની શરૂઆત તો તરતમાં જ થશે પ્રકાશન પ્રવૃત્તિ પણ હાથમાં લેવાશે. આ શહેરમાં કાર્ય કરતી બીજી પાઠશાળાઓનાં પણ સહકાર મળશે પણ ભવનને ભવન-મકાન તો જોઈશે જ, પુસ્તકાલય ને વિદ્યાર્થી-ગૃહ પણ જોઈશે. ભાગવત ધર્મ (વૈષ્ણવ ધર્મ) ની એક પીઠ; જુના ગુજરાતીની એક પીઠ; અને હિંદી ઇતિહાસની પીઠ સ્થાપવાની પણ અગત્ય છે. અત્યારે ભારતનો રાષ્ટ્રીય ઇતિહાસ લખાવાની જરૂર છે. અને ભારતીય ઇતિહાસ પરિપક્વ સાથે આપે તો આ નેમ પણ સધાય

પણ આજે તો આ બધી આશાઓ છે. સાધન વિના ફલિત નહીં થાય ૧૯૨૨ માં સાહિત્ય સંસદ, ગુજરાતી સાહિત્ય ને સંસ્કારનો વિકાસ ને વિસ્તાર સાધવાના હેતુથી જન્મી. ૧૯૨૫ માં તેણે પોતાનું વ્યક્તિત્વ છોડ્યા વિના, સાહિત્ય પરિપક્વની-સમસ્ત ગુજરાતની-પ્રવૃત્તિઓ સાથે તાદાત્મ્ય સાધ્યું. અને આજે અખિલ ભારતીય પ્રવૃત્તિ તરફ પગકું માટે છે. આર્યાવર્તની મહત્તર એકનાસાથે તાદાત્મ્ય સાધવામાં જ ગુજરાતને આત્મસિદ્ધિ પ્રાપ્ત થશે; તે વિના એને આશા નથી ને આત્મસાક્ષ્ય નથી તમારી રજતથી અત્યારે હું મુંગલાલ ગોએન્કા શિક્ષાપીઠનું ઉદ્ઘાટન અને ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપનાની સફલતા ઇચ્છું, અને આ ભવન સ્થાપા તમે જે પ્રયાણ આરંભ્યું છે તેને કમ્પ મુનિના શબ્દોમાં આશીર્વાદ આપું કે. “શિવાસ્તે પન્થાનઃ સન્તુ”

*

હૈમજયન્તી ઉજવવાની યોજના કરાંચીમાં ભરાયેલા ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષત સંમેલને એક ખાસ ઠરાવદ્વારા કરી હતી. તદનુસાર, મુખ્યમાં પણ એ ધુરંધર વિદ્વાનિધિ ગૂર્જરપુત્ર કલિકાલસર્વજ્ઞ હૈમચન્દ્રસૂરિની જન્મતિથી ઉજવવા વિં સં. ૧૯૯૫ના કાર્તિક સુદ પૂર્ણિમાને રોજ એક વિરાટ અને વિશિષ્ટ સભા ભરવામાં આવી હતી. એ જ શુભપ્રસંગે, ઊપર સૂચવ્યા મુજબ માનનીય શ્રી મુનશીજીએ ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપના, અને તેના જ એક પ્રધાન અંગરૂપ શ્રી મુંગલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠની ઉદ્ઘાટના પણ કરી હતી.

ભવનના સંસ્થાપક સભ્યોની નામાવલી, પરિશિષ્ટ નં. ૧ માં આપી છે. સંસ્થાપક સભ્યોની પ્રથમ સભા ૧૯૩૮ ના નવેમ્બરની સાતમી તારીખે મળી હતી અને પહેલી કાર્યવાહક સમિતિની, એ વર્ષ માટે (નવેમ્બર ૧૯૩૮થી ઓક્ટોબર ૧૯૩૯), નીમણુંક કરવામાં આવી હતી.

*

ભવનમાં વિવિધ પ્રકારના શિક્ષાપીઠો અને વિભાગો ખોલવામાં તેમ જ પ્રકાશનાદિ પ્રવૃત્તિઓ ચલાવવામાં આર્થિક સાહાય્યની સ્વાભાવિક જરૂર રહેજ. તે માટે ભવનના સ્થાપક-પ્રમુખ નામદાર શ્રી ક૦ મા૦ મુનશીજીએ અપીલ કરી હતી, જેનો સુંદર જવાબ મુંબઈનાં કેટલાંક ટ્રસ્ટો, -જેવાં કે મુંબાદેવી ટેમ્પલ ટ્રસ્ટ, શેઠ ગોરધનદાસ સુંદરદાસ ચૈરીટીજ, શેઠ નારણદાસ આસનમલ અને જેઠાનંદ આસનમલ ટ્રસ્ટ, રૂઢનાથદાસ ગોપાળદાસ ટ્રસ્ટ, પારખીયા પ્રધાન ટ્રસ્ટ, અને ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ-ધ્યાત્રિએ વાળ્યો હતો. તે ઉપરાંત શ્રી રામેશ્વરપ્રસાદ બિરલા, સંસ્થાન વડતાળના ભગવાન આચાર્ય શ્રી શ્રીઆનંદપ્રસાદજી શ્રી શ્રીપત્રપ્રસાદજી મહારાજ, સર ડીકાભાઈ પ્રેમચંદ, શ્રી પ્રાણલાલ દેવકરજી નાનજી, હિંજ હાઇનેસ ધી મહારાજ ઓફ પોરબંદર, હિંજ હાઇનેસ ધી ઠાકોરસાહેબ ઓફ લીંબડી, શ્રી માધવલાલ મકનજી ભટ્ટ, શેઠ મોતીલાલ માણેકચંદ વલ્લ પ્રતાપશેઠ, શ્રી પ્રભાશંકર રામચંદ્ર ભટ્ટ, શ્રી ચુનીલાલ ભાઈચંદ મહેતા, શેઠ હરગોવિંદદાસ જીવનદાસ; અને અન્ય સંભાવિત ગૃહસ્થોએ ઉદાર આર્થિક સાહાય્ય આપી છે, જેની સાલાર નોંધ લઈએ છીએ.

*

નિમ્નલિખિત વિભાગો સ્થાપી ભવને પોતાના કામનો શુભારંભ કર્યો હતો:- (૧) સંસ્કૃત અને તુલનાત્મક ભાષાશાસ્ત્ર:-અધ્યાપક ડૉ: મણિલાલ પટેલ. પી. એચ. ડી. (૨) પ્રાકૃત ભાષાઓ:-અધ્યાપક મુનિ શ્રી જિનવિજયજી, (૩) ગુજરાતી-અધ્યાપક શ્રી ભાનુશંકર વ્યાસ એમ. એ. અને શ્રી અંબાલાલ બી. જી. એ. હિન્દી વિભાગ પણ તરત જ ખોલવામાં આવ્યો હતો અને તેને માટે શ્રી રામાશ્રય રાંચ એમ. એ. એલ.એલ. બી.ની ઓનરરી લેકચરર તરીકે નીમણુંક કરવામાં આવી હતી. શેઠ શ્રી રામેશ્વરદાસજી બિરલાનો આ સ્થળે અમે અત્યંત આભાર માનીએ છીએ કે જેમની સ્તુત્ય આર્થિક મદદથી ૧૯૩૮ના ડિસેમ્બરની પહેલી તારીખે અમે “ભારતીય ઇતિહાસ”નો વિભાગ પણ ખોલવા શક્તિશાલી થયા અને તે વિભાગ માટે પંડિત જયચંદ્ર વિદ્યાલંકારની પ્રોફેસર તરીકે નીમણુંક કરવામાં આવી. ભાગવત ધર્મનો એક નવો વિભાગ ૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની પહેલી તારીખે ઉઘાડવામાં આવ્યો અને તે શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી (ઓનરરી પ્રોફેસર)ને સોંપવામાં આવ્યો. આ જ વિભાગમાં કુમારી સુશીલા મહેતા એમ. એ. એલ.એલ. બી.ને રીસર્ચ ફેલોશીપ આપીને ફેલો નીમવામાં આવેલ છે. આ વિભાગ માટે શેઠ શ્રી ગોરધનદાસ સુંદરદાસ ચૈરીટીજના ટ્રસ્ટીઓએ સારી એવી વાર્ષિક સાહાય્ય મંજૂર કરી છે.

*

ભવનના આ બધા વિભાગો અને ઓફીસ શરૂઆતમાં ખાલસા કોલેજ (માડુંગા)ના ભવ્ય મકાનમાં રાખવામાં આવ્યાં હતાં.

૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની સાતમી તારીખથી લાંબા વિભવને, ભારતીય સંસ્કૃતિ ઉપર જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાન માળા આપવી શરૂ કરી. મુંબઈ યુનિવર્સિટીના મકાનમાં દરેક શનિવારે બપોર પછી વ્યાખ્યાનો અપાતાં અને તેમાં સૌ કોઈને આવવા આમંત્રણ હતું. “ભારતીય સંસ્કૃતિના મૂળભૂત તત્ત્વો” ઉપર સુંદર વિદ્વત્તાપૂર્ણ વ્યાખ્યાન, અંગ્રેજીમાં આપી લાંબા વિભવનના સંસ્થાપક-પ્રમુખ નામદાર કાં માં મુનશીજીએ આ વ્યાખ્યાન માળાની શુભ શરૂઆત કરી હતી. તત્કાલીન વડા પ્રધાન, નામદાર બી. જી. ખેર પ્રમુખસ્થાને હતા. જનતાએ સારા પ્રમાણમાં હાજરી આપી હતી. આમ વર્ગમાં અને વિદ્યાર્થીઓમાં આ વ્યાખ્યાન ખૂબ સત્કાર પામ્યું હતું. ૧૯૩૯ના માર્ચની અઠારમી તારીખસુધી આ પ્રમાણે દરેક શનિવારે બપોર પછી વ્યાખ્યાનો (બધાં મળી અગિયાર) અપાયાં હતાં. તેમાંનાં કેટલાંક ભવનના અંગ્રેજી જર્નલમાં છપાયાં છે.

*

૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની નવમીથી માર્ચની પંદરમી સુધી, “શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ” તરફથી સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, ગુજરાતી, એન્શ્યન્ટ ઇન્ડિયન કલ્ચર વગેરે વિષયોમાં મુંબઈ યુનિવર્સિટીની એમ. એ.ની ડીગ્રી માટે તૈયારી કરતા વિદ્યાર્થીઓને મદદ કરવા માટે વર્ગો ખોલવામાં આવ્યા હતા, જેનો લાભ ઘણા વિદ્યાર્થીઓએ ઉઠાવ્યો હતો.

*

સંસ્કૃતનો અભ્યાસ વિશેષ આવકારપાત્ર અને વ્યાપક અને એ હેતુથી તેમ જ આર્યસંસ્કૃતિનો જનતાને સુપરિચય થાય તે માટે લાંબા વિભવને ગોવાલીઆ ટંક રોડ ઉપર આવેલ “કેલોશીપ સ્કુલ”ના મકાનમાં સંસ્કૃત શિક્ષણમંદિરની શરૂઆત કરી હતી. તેમાં ગુજરાતી તથા હિન્દીમાં આર્યસંસ્કૃતિના રૂપ-રૂપાંતરો ઉપર લોકપ્રિય વ્યાખ્યાનો આપવાની વ્યવસ્થા કરવામાં આવી હતી. લાંબા વિભવનના પ્રમુખ સાહેબનું પ્રારંભિક વ્યાખ્યાન ૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની ૧૧મી તારીખે થયું હતું. ત્યારબાદ તેમણે જ દરેક રવિવારે એકેક એમ ચાર વ્યાખ્યાનો શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા ઉપર આપ્યાં હતાં. પંડિત શ્રી મોતીરામ શાસ્ત્રી મંદિરમાં સવારમાં સંસ્કૃતના વર્ગો લેતા હતા.

*

કરાંચી ખાતે ભરાયેલા છેલ્લા ગુજરાતી સાહિત્ય સંમેલનમાં, ઉપર જોયું તેમ, પાટણ મુકામે હૈમસારસ્વત સત્ર ઉજવવાનો એક ઠરાવ પસાર કરવામાં આવ્યો હતો. તે અનુસારે, ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદની મધ્યસ્થ સલાએ, ગયા ઇસ્ટરના તહેવારો—એટલે કે તા. ૭-૮ એપ્રિલ ૧૯૩૯—સંવત્ ૧૯૮૫ ના ચૈત્ર વદ ૩ અને ૪ ના દિવસોમાં એ સત્રોત્સવ ઉજવવાનો નિર્ધાર કરી ગુજરાતી સાહિત્ય સંમેલનની એક ખાસ બેઠક પાટણ ખાતે યોજાવી હતી. પ્રમુખસ્થાને માનનીય શ્રી કાં માં મુનશીજી વિરાજ્યા હતા. પરિષદના મંત્રીઓના નિમંત્રણને માન આપી, ભવને પોતાના પ્રતિનિધિઓ ઉક્ત સંમેલનમાં ભાગ લેવા મોકલ્યા હતા. એમણે સંમેલનની ચર્ચાઓ તથા નિબંધાદિ-વાંચનમાં, અને તે દિવસોમાં પાટણમાં યોજાયેલા અન્ય સમારંભોમાં પોતાનો યોગ્ય ફાળો આપ્યો હતો.

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યનું એક સ્મારક પાટણમાં કાયમનું રહે એ હેતુથી સહગત મોહનલાલ ઝવેરીના સુપુત્રોએ શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય જૈન જ્ઞાનમંદિર ત્યાં બંધાવ્યું છે. એ સુંદર અને આલિશાન મકાનની ઉદ્ઘાટન-ક્રિયા પણ શ્રી મુનશીજીના શુભ હસ્તે એ જ અવસરે કરવામાં આવી હતી. એ સમારંભમાં ભાગ લેવા ગુજરાત ભરમાંથી સાક્ષરો અને સાહિત્યરસિકો સારી સંખ્યામાં પાટણમાં એકત્ર થયા હતા અને એ સૌનું સુંદર આતિથ્ય કરવામાં શ્રી હેમચંદ્ર મોહનલાલ ઝવેરી અને એમના ભાઈઓએ ખૂબ જ ઉત્સાહ અને ઔદાર્ય દાખવ્યાં હતાં જેની અમારે આભારપૂર્વક નોંધ લેવી જોઈએ.

*

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યનું એક કાયમનું સ્મારક મુંબઈમાં પણ થવું જોઈએ એવી અપીલ ભવનના પ્રમુખ શ્રીમાન્ મુનશીજીએ કરી છે. એટલે કેટલાક આગેવાન ને ઉદાર જૈન શહેરીઓ એક સાફ સરખું ફંડ એકઠું કરવાનો પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે. આ પ્રયત્નનું શુભ પરિણામ સત્વર આવશે એવી આશા ભવન રાખે છે.

*

બીજું સત્ર (૧૯૩૬ જૂનથી-ઓક્ટોબર)

પ્રતિદિન વધતી જતી પ્રગતિને લીધે ભવનના વિભાગોને વિશાળ મકાનમાં ખસેડવાની જરૂર હતી. તેથી ૧૯૩૬ના જૂનની પહેલી તારીખે અંધેરીમાં આવેલ “વસંતવિલા” નામના આલિશાન બંગલામાં ભવનનું સ્થળાંતર કરવામાં આવ્યું.

*

સર કીકાલઈ પ્રેમચંદની સખાવતનો, આ સ્થળે સાભાર ઉલ્લેખ કરતાં અમને હર્ષ થાય છે. તેમની ઔદાર્યપૂર્ણ આર્થિક સહાયતાને લીધે, ભવનમાં ૧૯૩૬ના જૂનની પહેલી તારીખથી “જૈનશાસ્ત્ર” વિભાગ ખોલવામાં આવ્યો અને પ્રોફેસર અમૃતલાલ સં ગોપાણિ, એમ. એ.ને આ વિભાગના અધ્યાપક તરીકે નીમ્યા. ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદના બહુમૂલ્ય સહકારને લીધે, ગુજરાતી વિભાગનું પુનર્નિર્માણ કરવામાં આવ્યું અને તેનું નામ “શ્રીનર્મદ ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષત શિક્ષાપીઠ” રાખવામાં આવ્યું. આ વિભાગ માટે શ્રી વિશ્વનાથ મં ભટ્ટ બી. એ. ની “રીડર” તરીકે નિયુક્તિ કરવામાં આવી. ૧૯૩૬ના જૂનની પાંચમીએ શ્રી અચ્યુત દં પુસાલકર એમ. એ., એલ્.એલ. બી., ની લેક્ચરર તરીકે નીમણુંક કરી “ભાગવત ધર્મ” વિભાગને વિસ્તૃત કરવામાં આવ્યો. શ્રી રામાશ્રય રોયે મુંબઈ છોડ્યું હોવાથી હિન્દી વિભાગ ૧૯૩૬ના જૂનની પહેલી તારીખથી મુનિ શ્રી જિનવિજયજીની દેખરેખ નીચે મુકવામાં આવ્યો.

*

આ સત્રમાં પણ “ભારતીય સંસ્કૃતિ” ઉપરની જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાનમાળા ચાલુ રાખવામાં આવી હતી. કુલ ૧૧ વ્યાખ્યાનો તેમાં અપાયાં હતાં.

*

મુંબઈ યુનિવર્સિટીના પોસ્ટ ગ્રેજ્યુએટ અધ્યાપકોના સહકારી તરીકે ભા. વિ. ભવનના અધ્યાપકો તરફથી સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, ગુજરાતી અને એન્શન્ટ

ઈન્ડિયન કલચર વગેરેમાં એમ. એ. ની પરીક્ષા માટે તૈયારી કરતા વિદ્યાર્થીઓના આ સત્રમાં પણ યુનિવર્સિટીના મકાનમાં વર્ગો લેવામાં આવ્યા હતા.

*

આ વખતે વિશિષ્ટતા એ હતી કે કેટલાક વિદ્યાર્થીઓએ ભવનમાં આવીને અધ્યાપકો પાસેથી પોતપોતાના વિષયોમાં માર્ગદર્શન અને મદદ મેળવી હતી જે વિના સંકોચે આપવામાં આવી હતી.

*

સંસ્કૃત, ઈંગ્લિશ હિસ્ટરી, અને ગુજરાતીનાં “ પોસ્ટ-ગ્રેજ્યુએટ અધ્યાપક ” તરીકે ક્રમશઃ ડૉ. મણિલાલ પટેલ, પંડિત જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર, અને વિ. મં. ભટ્ટને ૧૯૩૬ના જૂનની પહેલી તારીખથી, બે વર્ષ માટે, મુખ્ય યુનિવર્સિટીએ સ્વીકૃતિ આપી છે.

*

શ્રી મુંબાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળા ૧૯૩૬ના સપ્ટેમ્બરની પહેલી તારીખથી જા. વિ. ભવનની સીધી દેખરેખ નીચે મુકવામાં આવી. પાઠશાળામાં હાલ બાર વિદ્યાર્થીઓ છે. પંડિત મોતીરામ શાસ્ત્રી મુખ્યાધ્યાપક તરીકે અને પંડિત બી. એલ. શાનભોગ સુપરીન્ટેન્ડેન્ટ તરીકે કામ કરે છે. વિદ્યાર્થીઓને નિઃશુલ્ક રાખવામાં આવે છે અને પૂનાના મીમાંસા વિદ્યાલયની તથા બનારસમાં આવેલ ગવર્નમેન્ટ સંસ્કૃત કોલેજની તીર્થ પરીક્ષાઓ માટે તૈયારી કરાવવા ઉપરાંત અંગ્રેજ તથા હિન્દીનું પણ શિક્ષણ આપવામાં આવે છે. પાઠશાળાના પુનર્વિધાન અને વિકાસની યોજના વિચારાઈ રહી છે.

*

પુસ્તકાલય માટે ભારતીય વિદ્યાને લગતાં પુસ્તકોનો સારો એવો સંગ્રહ ભવન કરવા માંડ્યો છે. સુવિખ્યાત ગ્રન્થમાલાઓનાં પ્રકાશનો ઉપરાંત દેશ પરદેશથી હજારો રૂપિયાના પુસ્તકો મંગાવવામાં આવ્યાં છે. પ્રમુખ સાહેબે ભવનને એક હજાર જેટલાં પુસ્તકો તથા સાત સુંદર કબાટો, હાલ તુરત માટે, ઉપયોગ કરવા આપ્યાં છે. સામયિકો, સમાચાર પત્રો અને સાપ્તાહિકો પણ મંગાવવામાં આવે છે. ભવનના અધ્યાપકગણ તરફથી વિવિધ ગ્રન્થોનું સંપાદન અને સંશોધન કાર્ય પણ હાથ ધરવામાં આવ્યું છે જે યથાવસરે ભવન તરફથી પ્રકાશિત કરવામાં આવશે. તેની નામાવલિ આ ત્રૈમાસિકના પૃષ્ઠ ઉપર આપવામાં આવી છે. “ભારતીય વિદ્યા” નામનું છમાસિક અંગ્રેજીમાં અને બીજું ત્રૈમાસિક હિન્દી-ગુજરાતીમાં, એમ બે મુખપત્રો (જર્નલો)ની શરૂઆત પણ આલુ સત્રમાં કરવામાં આવી છે.

*

થોડા સમયમાં જ્યોતિષ શિક્ષાપીઠ ખોલવાનો વિચાર પણ ચાલે છે અને તેનું નામ શેઠ નાગરદાસ રૂઘનાથદાસ જ્યોતિષ શિક્ષાપીઠ રાખવામાં આવનાર છે.

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ અને સાહિત્ય સંસદ નામની બન્ને સંસ્થાઓ સાથે ભવન સંનિયુક્ત સલાસદ (એસોશિયેટેડ મેમ્બર) તરીકે સંબંધ થયેલ છે. અને એથી ભવનતરફથી, ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદના પ્રતિનિધિ તરીકે, છ સભ્યોની વરણી કરવામાં આવી છે. સાહિત્ય સંસદ તરફથી યોજાયેલી અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓમાં ભવને ચાલુ સાલમાં રસપૂર્વક ભાગ લીધો હતો. ગત ઇસ્ટરના તહેવારોમાં પાટણમાં ભરવામાં આવેલ ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષત્ સમ્મેલનની ખાસ બેઠકમાં ભવન તરફથી પ્રતિનિધિઓ મોકલવામાં આવ્યા હતા. હૈદરાબાદ (દક્ષિણ) ખાતે મળનાર અખિલ ભારતવર્ષીય ઓરીએન્ટલ કોન્ફરન્સના આવતા અધિવેશનમાં પ્રતિનિધિઓ મોકલવાનો ભવન ઇરાદો રાખે છે.

*

ભા૦ વિ૦ ભવને મુંબઈ સરકાર પાસેથી અંધેરીમાં લગભગ અગિયાર એકર જેટલી જમીન ખરીદી છે અને યોગ્ય આર્થિક અનુકૂળતા પ્રાપ્ત થતાં જ ભવનનાં મકાનો ણંધવાનું કાર્ય શરૂ કરવામાં આવશે.

પરિશિષ્ટ નં ૧

*

ભારતીય વિદ્યા લવનના સંસ્થાપક સભ્યોની સંપૂર્ણ નામાવલી

*

૧. શ્રીમાન કનૈયાલાલ માં સુનશી, બી. એ., એલએલ. બી., એમ. એલ. એ., નિવૃત્ત ગૃહસચિવ, મુંબઈ; સિન્ડીક મુંબઈ યુનિવર્સિટી; પ્રમુખ ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ, મુંબઈ.
૨. ન્યાયમૂર્તિ શ્રી હરસિદ્ધલાઈ વઠ દિવેટીયા, એમ. એ., એલએલ. બી., જજ હાઈકોર્ટ, મુંબઈ; સિન્ડીક, મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.
૩. નામદાર શ્રી મંગળદાસ એમ. પકવાસા, બી. એ. એલએલ. બી.; પ્રેસિડેન્ટ લેજિસ્લેટીવ કૌન્સિલ, મુંબઈ.
૪. ડૉ. રાજેન્દ્રપ્રસાદ, એમ. એ.; એલએલ. બી.; ડી. લિટ., પટણા.
૫. સર ચીમનલાલ હાં સેતલવાડ, કે. સી. આઈ. ઈ.; એલએલ. ડી.; ભૂતપૂર્વ વાઈસ-ચેન્સેલર, મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.
૬. સર જહુનાથ સરકાર, એમ. એ.; ડી. લિટ.; સી. આઈ. ઈ.; ભૂતપૂર્વ વાઈસ-ચેન્સેલર કલકત્તા યુનિવર્સિટી, કલકત્તા.
૭. ડૉ. આનંદશંકર બાં ધ્રુવ, ડી. લિ. ટ. ભૂતપૂર્વ પ્રોવાઈસ-ચેન્સેલર બનારસ હિન્દુ યુનિવર્સિટી, અમદાબાદ.
૮. ધર્મધુરંધર આચાર્ય મહારાજ શ્રી આનંદપ્રસાદજી શ્રીપતિપ્રસાદજી મહારાજ, સરથાન વડતાલ
૯. હિટ હાઈનેસ શ્રી સર નટવરસિંહજી બહાદુર, કે. સી. એસ. આઈ; મહારાજ સાહેબ ઓફ ગોરખંદર.
૧૦. લેફ્ટે. હિટ હાઈનેસ મહારાજા શ્રી વીરભદ્રસિંહજી, રાજાજી સાહેબ ઓફ હુણાવાડા.
૧૧. મહારાજા શ્રી સર દોલતસિંહજી, કે. સી. એસ. આઈ., કે. સી. આઈ. ઈ., ઠાકોર સાહેબ ઓફ લોંબરી.
૧૨. મહારાજ કુમાર શ્રી ડૉ. રધુવીર સિંહજી, એમ. એ.; એલએલ. બી.; ડી. લિ. ટ. સીતામઢ.
૧૩. દિ. બ. કૃષ્ણલાલ મો. જવેરી, એમ. એ.; એલએલ. બી.; ભૂતપૂર્વ જજ હાઈકોર્ટ, મુંબઈ. સિન્ડીક મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.
- ૧૪ શ્રી જિનવિજયજી સુનિ, ભૂતપૂર્વ આચાર્ય, પુરાતત્ત્વ મંદિર, ગુજરાત વિદ્યાપીઠ; સિંધી જૈન જ્ઞાનપીઠ, વિશ્વભારતી, શાંતિનિકેતન; પ્રોફેસર ઓફ પ્રાકૃતિક લેંગ્વેજ-શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.
૧૫. સર સુનીલાલ બી. મહેતા, નાઈટ, કે. સી. એસ. આઈ., એમ. એ., એલએલ. બી., મુંબઈ.
૧૬. શ્રીમતી લીલાવતી કે. સુનશી, એમ. એલ. એ., ફેલો મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.
૧૭. સર કીકાલાઈ પ્રેમચંદ રાયચંદ નાઈટ, મુંબઈ.
૧૮. રાવ બહાદુર સુનીલાલ હા. સેતલવાડ, સી. આઈ. ઈ. બાર-એટ-લો; ભૂતપૂર્વ ચીફ પ્રેસિડેન્ટી મેજિસ્ટ્રેટ, મુંબઈ.

૧૯. શ્રી મથુરાદાસ વિસનજી, મુંબઈ.
૨૦. શ્રી રામેશ્વરદાસ ખિરલા, મુંબઈ.
૨૧. શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા, મુંબઈ.
૨૨. શ્રી ચમલુજી ગોરધનદાસ મુંદરદાસ, મુંબઈ.
૨૩. શ્રી ઉમાદત્ત નેમાણી, મુંબઈ.
૨૪. શ્રી યુનીલાલ ભાં મેહતા, ભૂતપૂર્વ શેરીફ, મુંબઈ.
૨૫. શ્રી ત્રાણુલાલ દેવકરજી નાનજી, મુંબઈ.
૨૬. શ્રી માણેકલાલ પ્રેમચંદ રાયચંદ, મુંબઈ.
૨૭. શ્રી મટુભાઈ કસનભાઈ, બી. એ., એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૨૮. શ્રી ત્રિકમદાસ દ્વારકાદાસ, સોલીસીટર, મુંબઈ.
૨૯. શ્રી મણિલાલ કે. નાણાવટી, બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૦. શ્રી મંગળદાસ બી. મેહતા, બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૧. શ્રી ઠાકોરદાસ નાનાભાઈ મચ્છંડ, બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૨. શ્રી એ. બી. વૈદ્ય, બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૩. શ્રી વસંતરામ જમીયતરામ, બી. એ. એલએલ. બી., મુંબઈ.
૩૪. શ્રી મહામહોપાધ્યાય રાય બહાદુર ડૉ. જૈરીશંકર હીંચ ઓઝા, ડી. લિટ્. અજમેર.
૩૫. પ્રીન્સીપાલ કાશ્મીરા સિંઘ, એમ. એ. ખાલસા કોલેજ, મુંબઈ.
૩૬. પ્રીન્સીપાલ ડૉ. ઈરાચજે. એસ. તારાપોરવાલા બી. એ. પીએચ. ડી. બાર-એટ-લૉ
પ્રીન્સીપાલ, ધી એમ. એફ. એથોરનન ઈન્સ્ટીટ્યુટ. અધેરી.
૩૭. પ્રો. બી. જી. રાવ, બાર-એટ-લૉ, મુંબઈ.
૩૮. ડૉ. વી. એસ. સુકથનકર. પી. એચ. ડી. ભાંડારકર આરિએન્ટલ ઇન્સ્ટીટ્યુટ, પુના.
૩૯. પ્રો. ડૉ. મણિલાલ પટેલ. પી. એચ. ડી. (મારજુર્ગ) પ્રોફેસર ઓફ સંસ્કૃત એન્ડ
કમ્પેરેટીવ ફાઇલોસોફી, શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.
૪૦. રાવબહાદુર જી. એસ. સરદેસાઈ. કામરોટ.
૪૧. પંડિત જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર, કાશી વિદ્યાપીઠ, બનારસ.
૪૨. શ્રી લક્ષ્મીદાસ ગો. ગોકુલદાસ તેજપાળ, મુંબઈ.
૪૩. શ્રી નાનાલાલ સી. મહેતા, બી. એ. (કેન્ટબ), આઈ. સી. એસ. નૈનીતાલ.
૪૪. શ્રી સંગજી મુંદરજી, મુંબઈ.
૪૫. શ્રી મનહરરામ હ. મહેતા, બી. એ. રીટાયર્ડ ચીફ ટ્રાન્સલેટર, હાઈકોર્ટ, મુંબઈ.
૪૬. શ્રી તારાચંદ નવલચંદ જવેરી, મુંબઈ.
૪૭. શ્રી હેમચંદ મોહનલાલ જવેરી, મુંબઈ.
૪૮. શ્રી ભોગીલાલ લહેરચંદ જવેરી, મુંબઈ.
૪૯. શ્રી મથુરાદાસ ત્રિકમજી, મુંબઈ.
૫૦. શ્રી દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી, મુંબઈ.
૫૧. શ્રી મોતીલાલ માણેકચંદ ઉર્ફે અતાપશેઠ, અમલનેર.
૫૨. શ્રી બહાદુરસિંહજી સિંઘી. એફ. આર. એસ. એ. (લંડન), એફ. એ. જી. એસ.
(ન્યુયૉર્ક), કલકત્તા.
૫૩. શ્રી માધવલાલ મકનજી ભટ્ટ, મુંબઈ.
૫૪. શ્રી પ્રભાશંકર રામચંદ્ર ભટ્ટ, મુંબઈ.



भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल. पीएच्. बी. नियामक; तथा श्रीमुंगलाल गोपनका अध्यापक-संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र
२. पं० मोतीराम शास्त्री-मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला
३. पण्डित बी. एल्. शाम्भोग

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

गुजराती वाङ्मय

श्री विश्वनाथ भट्ट बी. ए.

अध्यापक-श्रीनर्मद गुजराती साहित्य परिषद् शिक्षापीठ

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीदुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य
- २ श्री ए० डी० पुसालकर, एम्. ए., एलएल्. बी.
श्रीस्वामीनारायण व्याख्याता, भागवत धर्म
- ३ श्रीमती कुमारी सुशीला महेता एम्. ए., एलएल्. बी.
श्रीगोवर्धनदास सुन्दरदास भागवतधर्म रीसर्च फेलो

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणी एम्. ए.

सर् कीकाभाई प्रेमचंद अध्यापक-जैनशास्त्र

भारतीय इतिहास

पण्डित श्री जयचंद्रजी विद्यालंकार

श्रीरामेश्वरदास बिडला अध्यापक-भारतीय इतिहास

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या - ग्रन्थावली

*

उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत. सं० श्री जिन विजयजी मुनि
प्राचीन गुजराती गद्यनिर्दर्शन :- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत

सं० श्री जिन विजयजी मुनि

ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल; सं० डॉ० मणिलाल पटेल

विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी
नाणपंचमीकहा - [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय]

सं० श्री अ० स० गोपाणी

साहित्यपरिषद् निबन्धमाला [गुजराती] सं० श्री विश्वनाथ भट्ट

*

भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

—800—

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA

by Dr. Manilal Patel

STUDIES IN ANCIENT INDIAN GEOGRAPHY

by Pandit Jayachandra Vidyalkar

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT

by Shri Durgashanker K. Shastri

assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

BIOGRAPHY IN GUJARATI LITERATURE

by Shri Vishvanath M. Bhatt

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS

by Shri A. D. Pusalkar

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26-28, Kolbhat Street, Bombay.

Published by DR. MANILAL PATEL, Director, Bharatiya Vidya Bhavan,
Andheri, Bombay.

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] मार्च, ई० स० १९४० * माघ, संवत् १९९६ [अंक २



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति भंक मूल्य १-८-०

*

वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक]

ॐ

[इंग्रेजी षाण्मासिक

संपादक मण्डल

श्रीमान् क० मा० मुंशी बी. ए. एल्लएल. बी.; एम्. एल्ल. ए.

[निवृत्त गृहमंत्री तथा न्यायसचिव, बंबई गवर्न्मेन्ट]

दीवान-बहादुर श्री क० मो० झवेरी एम्. ए. एल्लएल. बी.

[निवृत्त न्यायमूर्ति, हाईकोर्ट, बंबई]

डॉ० आइ. जे. एस्. तारापोरवाला बी. ए. पीएच्. डी. बार-एट्-बॅ

प्रो० ब० प्रा० भट्ट एम्. ए. (बंबई); बी. ए. (कॅण्टब)

श्री जिन विजयजी मुनि (प्रधान संपादक, हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक)

डॉ० मणिलाल पटेल पीएच्. डी. (प्रधान संपादक, इंग्रेजी षाण्मासिक)

*

गत अंकमें हिन्दी भाषाके लेख अधिक दिये
जानेके कारण, प्रस्तुत अंकमें गुजराती
भाषाके लेख अधिक दिये गये हैं ।



भारतीय विद्या

वर्ष १]

माघ, सं० १९९६

[अंक २

गुजराती लेख -

(१) ग्रीकसंघर्ष पहेलांनुं आर्य ज्योतिष

ले० श्रीयुत अ० स० गोपाणि, एम्. ए. १०९

(२) गुजराती नाटकोमां संस्कृत रूपकादीनां तत्त्वो

ले० श्रीयुत प्रो० भानुशंकर व्यास, एम्. ए. ११९

(३) च्यवनाग्यायिका -- ले० श्रीयुत प्रो० गौरीप्रसाद चु० झाला १२६

(४) सं० १४८२ मां लखाएली पद्यानुकारी गुजराती गद्यमय जैन

गुर्वावली - ले० श्रीयुत मोहनलाल द० देसाई, बी. ए. एल्. एल्. बी. १३३

(५) वल्लभाचार्य अने तेमनो संप्रदाय

ले० श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्. ए. एल्. एल्. बी. १४७

(६) रांदल शब्द विषे विचार - ले० श्रीयुत पं० बेचरदासजी दोसी १५६

(७) अपभ्रंश कविओ-चतुर्मुख स्वयंभू अने त्रिशुवन स्वयंभू

ले० श्रीयुत प्रो० मधुसूदन चि० मोदी, एम्. ए. एल्. एल्. बी. १५७

(८) गुजरातनी प्राचीनतम जिनमूर्तिओ

ले० श्रीयुत साराभाई म० नवाब, एम्. आर्. ए. एस्. १७९

हिन्दी लेख -

(९) कवि समयसुन्दर उपाध्यायकृत सत्यासीया दुष्काल वर्णन

छत्तीसी - ले० श्रीयुत अगर चंदजी नाहटा १९५

ग्रन्थावलोकन

राजपूतानेका इतिहास (संपादकीय)

२१२

बौद्ध पूर्वकालीन भारत

”

२१६

चित्रावली -

प्राचीन जिन मूर्तिओ विषेनां केटलाक चित्रो

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नियमावली

- (अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः कार्तिक, माघ, वैशाख और श्रावण मासके अन्तमें होता है।
- (आ) 'भारतीय विद्या'में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषामें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।
- (इ) 'भारतीय विद्या'में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्व-ज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।
- (ई) 'भारतीय विद्या'की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश्य भाषामें ग्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।
- (उ) 'भारतीय विद्या'में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठसे छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेंट दी जायगी।
- (ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकको करना होगा।
- (ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि—'भारतीय विद्या'में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जायें वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों।
- (ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।
- (ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार—'संपादक-भारतीय विद्या' इस नामसे करना चाहिए और ग्राहक वगैरह होनेके विषयका पत्र-व्यवहार—'मंत्री, भारतीय विद्या भवन' इस नामसे करना चाहिए।

*

- (औ) 'भारतीय विद्या'—**BHARATIYA VIDYA**—इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो षाण्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४-०-० है।

ભારતીય વિદ્યા ભવન

કાર્યપ્રવૃત્તિ

[ભવનના ડિરેક્ટર તરફથી, ભવને કરેલી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓની ટૂંકી સત્રવાર નોંધ]

તૃતીય સત્ર (નવેમ્બર ૧૯૩૯-માર્ચ ૧૯૪૦)

તૃતીય સત્રનો પ્રારંભ નવેમ્બર ૧૬, ૧૯૩૯ થી કરવામાં આવ્યો હતો. નવેમ્બર તા. ૧૬ થી એ ભવનના સંસ્થાપક-પ્રમુખ શ્રી કં. માં. મુનશી તથા શ્રીમતી લીલાવતી મુનશીએ ભવનના સંસ્થાપક-સભ્યો અને અન્ય મુરબીઓ તથા મિત્રોને એક “એટ હોમ” પાર્ટી ભવનના કાર્યાલયમાં આપી હતી. ભવનના મંત્રીઓએ આ પ્રસંગે ભવનની પ્રવૃત્તિઓનો હેવાલ રજુ કર્યો હતો ને પ્રમુખ મહાશયે ભવિષ્યના કાર્યક્રમની રૂપરેખા દોરી હતી.

*

“ગૂજરાત સંશોધન મંડળ”ના ઉપક્રમથી ડૉ. ભગવાનલાલ ઇંદ્રજી શતાબ્દિની ઉજવણી નવેમ્બર તા. ૧૮ મીને રોજ થઈ હતી. આ સમારંભમાં ભવને પૂરતો સહકાર આપ્યો હતો અને ગૂજરાતના એ સમર્થ પુરાતત્ત્વવિદને પોતાની શ્રદ્ધાંજલિ અર્પી હતી.

*

વિ. સં. ૧૯૯૬ કાર્તિકી પૂર્ણિમા (તા. ૨૬-૧૧-૧૯૩૯)ને રોજ ભવનની સંસ્થાપનાને એક વર્ષ પૂરું થયું હોવાથી ભવનનો વાર્ષિક મહોત્સવ તથા સાહિત્ય સંસદનો શરદુત્સવ સુંદરરીતે ઉજવાયો હતો. ભવનનાં અગ્રેજી તથા હિન્દી ગૂજરાતી જર્નલોના પ્રથમ અંકો તે પ્રસંગે પ્રસિદ્ધ થયેલાં જાહેર કરવામાં આવ્યા હતા. બંને જર્નલોને સુપ્રતિષ્ઠિત વિદ્વાનો અને સામયિકો તરફથી પ્રેરક આવકાર મળ્યો છે.

*

આ સત્ર દરમિયાન પણ ભવનના અધ્યાપકોએ મુંબઈ યુનીવર્સિટીની એમ. એ. ની પરીક્ષા માટે તૈયારી કરતા વિદ્યાર્થીઓના વર્ગો ચાલુ રાખ્યા હતા.

*

ભારતીય વિદ્યાનો ઉચ્ચતર અભ્યાસ કરતા આશાસ્પદ વિદ્યાર્થીઓને ઉત્તેજન આપવાના હેતુથી ભવને “રીસર્ચ સ્ટુડન્ટશીપ્સ”ની યોજના કરી છે. તદ્દનુસાર ચાલુ સત્રથી શ્રી મુકુન્દરાય આ. ત્રિવેદી, બી. એ. તથા શ્રી હરિવલ્લભ ચુ. ભાયાણી, બી. એ. ને શિષ્યવૃત્તિ આપી એમની પાસે ભવનના અધ્યાપકોની દેખરેખ હેઠળ અભ્યાસ કરાવવામાં આવે છે.

*

આ સત્રમાં પણ “ભારતીય સંસ્કૃતિ” ઉપરની ભવને શરૂ કરેલી જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાનમાળા ચાલુ રાખવામાં આવી હતી. સત્ર દરમિયાન કુલ ૧૦ વ્યાખ્યાનો તેમાં અપાયાં હતાં.

*

મુંબઈ યુનીવર્સિટીએ ભવનના ડિરેક્ટર ડૉ. મણિલાલ પટેલને “પીએચ. ડી (સંસ્કૃત) ડીગ્રી માટેના યુનિવર્સિટી અધ્યાપક” તરીકે સ્વીકાર્યા છે. એમની દોરવાણી પ્રમાણે શ્રી. અચ્યુત દં. પુસાલકર એમ. એ., એલ્.એલ. બી. “વાયુપુરાણ” ઉપર

અને શ્રી૦ અમૃતલાલ સ૦ ગોપાણિ, એમ. એ. “જ્ઞાનપંચમીકથા” ઉપર થીસીસ (મહાનિબંધ) તૈયાર કરી રહ્યા છે, જેને તેઓ પીએચ. ડી. ની ડીગ્રી માટે યુનિવર્સિટી સમક્ષ રજુ કરશે.

*

ભવનના સભ્યોની વાર્ષિક સભા તા. ૧૧-૨-૧૯૪૦ને રોજ મળી હતી. સભા સમક્ષ વાર્ષિક હેવાલ તથા રજીસ્ટર્ડ એકાઉન્ટન્ટ્સ-ઓડિટર્સ મેસર્સ જયન્તીલાલ ઠક્કર એન્ડ કું. દ્વારા તપાસાવેલ સરવૈયું તથા આવક-ખર્ચનો હિસાબ રજુ કરવામાં આવ્યાં હતાં, જે સભાએ મંજૂર કર્યાં હતાં. ઈ. સ. ૧૯૪૦ માટેની કાર્યવાહક સમિતિની નીમણૂક પણ સભાએ કરી હતી.

*

ભવન માટે શ્રી ધર્માનંદ કોસંખીએ સંપાદિત કરેલ વિસુદ્ધિમગ્ગ (બુદ્ધવોષ કૃત) પાલીલાષાયંથ છપાઈ ગયો છે. એકાદ માસમાં તે ભારતીય વિદ્યા-પ્રસ્થાવલિના પ્રથમ પુસ્તક તરીકે બહાર પડશે. સુપ્રસિદ્ધ જર્મન વિદ્વાન ડૉ. હરમાન ચાકોબીના અપભ્રંશ ભાષા ઉપરના નિબંધોનું અંગ્રેજી ભાષાંતર ડૉ. મણિલાલ પટેલે તૈયાર કર્યું છે તે પણ થોડા જ સમયમાં છપાવા જશે. ભવનના અધ્યાપકો અન્ય કેટલાક સંશોધનશ્રમો પણ તૈયાર કરી રહ્યા છે.

*

તિરુપત્તિ ખાતે ઇસ્ટરમાં મળેલી દશમી અખિલ-ભારતવર્ષીય ઓરિયેન્ટલ કોન્ફરન્સમાં ભવનના પ્રતિનિધિ તરીકે ડૉ. મણિલાલ પટેલે ભાગ લીધો હતો. એમણે ઉક્ત કોન્ફરન્સના વેદ-વિભાગ સમક્ષ એક અને ભાષાશાસ્ત્ર-વિભાગ સમક્ષ એક એમ બે નિબંધો વાંચ્યા હતા. કોન્ફરન્સની કાઉન્સિલે એક ખાસ ઠરાવદ્વારા ભવનની પ્રવૃત્તિઓની સંતોષપૂર્વક નોંધ લીધી હતી.

*

હૈદરાબાદ (દક્ષિણ) ખાતે ભરાનાર આવતી અગિયારમી અખિલભારતવર્ષીય ઓરિયેન્ટલ કોન્ફરન્સના વેદ-વિભાગના પ્રમુખ તરીકે ભવનના ડિરેક્ટર ડૉ. મણિલાલ પટેલની વરણી થઈ છે.

*

તા. ૩૧-૩-૧૯૪૦ ને રોજ શ્રી ફૉર્બસ ગુજરાતી સભાનો ૭૫મો વાર્ષિક ઉત્સવ ઉજવવામાં આવ્યો હતો. આ શુભપ્રસંગે શ્રી ફૉર્બસ ગુજરાતી સભાને ભવન હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને સભા દ્વારા ગુજરાતી સાહિત્યની થતી સતત સુંદર સેવાની નોંધ લે છે.

*

શ્રી મુળાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળાનું કાર્ય સારી રીતે ચાલી રહ્યું છે. બનારસની ગવર્નમેંટ સંસ્કૃત કોલેજ તરફથી લેવાતી સાહિત્ય-શાસ્ત્રી પરીક્ષાના તૃતીય ખંડની પરીક્ષા બે વિદ્યાર્થીઓએ, વ્યાકરણ મધ્યમા (દ્વિતીય ખંડની) પરીક્ષા એક વિદ્યાર્થીએ, સર્વશાસ્ત્ર સાધારણ પ્રથમાની પરીક્ષા બે વિદ્યાર્થીઓએ, અને બેંગાલ ગવર્નમેંટ સંસ્કૃત એસોસિયેશન (કલકત્તા) તરફથી લેવાતી કાવ્ય પ્રથમા પરીક્ષા બે વિદ્યાર્થીઓએ આ સત્રમાં આપી છે.



भारतीय विद्या

प्रथम वर्ष, द्वितीय अंक]

❁

[माघ, वि० सं० १९२६

ग्रीक संसर्ग पहेलानुं आर्यज्योतिष

*

लेखक - अ० स० गोपाणि एम्. ए. मर् कीकाभाई प्रेमचंद्र प्रोफेसर ऑफ
जैन स्टडीज: भारतीय विद्याभवन

संस्कृतिना नवदंत प्रतीक सभा वेदो, तत्त्वज्ञानमां सांख्य-वैशेषिक-न्याय-
औद्ध अने जैन दर्शनो, सभाजशास्त्रना नियमो माटे महर्षि मनु निर्मित मनुस्मृति,
राजनीति माटे कौटिलीय अर्थशास्त्र, रतिशास्त्रमां मेरी स्टोपस् अने डेवदो क ओलीस
ने पणु कयांय टपी नय ओतुं वात्स्यायनमुनि प्राणीत कामशास्त्र, मेकडूगणना मानस-
शास्त्रना सिद्धांतो करतांय सयोठ आलेपन करतुं लगवान पतण्डलिनुं योगशास्त्र,
श्रवविद्याने लगतो जैनोनो पण्डवनिकायनो सिद्धांत, साहित्यमां शेकसपीअरने
ब्रुवाणी हे तेवा महाकवि बासनां अने कविकुणगुरु कविदासनां अप्रतिम नाटको,
चिकित्साना अमोघ सूत्रां प्रतिपादन करती यरकसंहिता, आर्यद्रष्टी शारीर आप्तो
रणु करती वेधक अने तलरुपर्शी शुश्रुत संहिता--धृत्यादि धृत्यादि द्वारा आर्य संस्कृ-
तिनी अपूर्वता अने सर्वोच्चता सिद्ध थर्ध यूझी छे तेम न्योतिषमां पणु गहन
ज्ञाननी साक्षी आपता ब्राह्मणग्रन्थ न्योतिष वेदांग अने जैनग्रन्थ सूर्यप्रज्ञप्ति द्वारा
आर्यसंस्कृतिनी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध थर्ध शके तेम छे.

न्योतिष वेदांग आर्योनो प्राचीनतम न्योतिष विषयक ग्रन्थ छे. तेमां आवता
विषुववृत्तविषयक श्लोकना¹ आधारे के ० वा० दीक्षिते 'भारतीय न्योतिःशास्त्राये

1 न्योतिष वेदांग श्लोक, ७. यजुःपाठ.

ધતિહાસ'માં તેનો રચનાસમય ઈ. સ. ૫૦ ૧૪૦૦નો મુકર્રર કર્યો છે.^૨ આ સ્થળે એટલું જણાવવું જોઈએ કે પોતાની “હિન્દુ એસ્ટ્રોનોમી”માં, ઈ. સ. ૫૦ ૪૦૦થી ઈ. સ. ૪૦૦ સુધીનો જે સમય ઉપર્યુક્ત પુસ્તકના સંબંધમાં કાયેએ નિર્ણય કર્યો છે તે હવે ખોટું ઠર્યું છે. કારણ કે, એક તો એમાં ગ્રીક પ્રભાવ દ્રષ્ટિગોચર થતો નથી અને બીજું વેદકાળના પ્રાન્ત ભાગમાં જ્યોતિષ વેદાંગને રચાયેલ માનીએ તો પણ, એને ઈ. સ. ૫૦ છઠી શતાબ્દમાં મૂકવો જોઈએ. એમાં આવતા “રાશિ” શબ્દ ઉપરથી ભ્રમણમાં પડી, પ્રો. વેબરનું જે અનુમાન^૩ કે એના ઉપર ગ્રીક પ્રભાવ પડેલ છે તે પારસ્પરિક અન્વય તપાસતાં મિથ્યા ઠરે છે. કારણ કે “રાશિ” શબ્દ ત્યાં ત્રિરાશિ-પંચરાશિ એવા ગાણિતિક પ્રયોગ^૪ માટે વપરાયેલ છે. આ જ્યોતિષ વેદાંગના ત્રણ સંસ્કરણો છે-ઋક્, યજુસ અને અથર્વ. યજુકાલનો નિર્ણય કરવા માટે તેને રચવામાં આવ્યું હતું.^૫ ઈ. સ. ૫૦ ત્રીજી શતાબ્દથી ગ્રીક જ્યોતિષનો પ્રભાવ ગમે તેટલો સુરેખરીતે પડ્યો હોય તો પણ^૬ જ્યોતિષના મૂળાધિકાર પરત્વે-ખગોળના લગભગ અતીન્દ્રિય જેવા ગણાતા વિષય સંબંધે આ ગ્રન્થમાં આર્યઋષિ-મુનિઓનાં જે અદ્ભૂત જ્ઞાનની પ્રતીતિ આપણને થાય છે તે જોતાં એમ સાદજ્ઞ માનવા મન લલચાઈ જાય છે કે આર્યસંસ્કૃતિનો ઇતિહાસ જેટલો પ્રાચીન આપણને જણાયો છે તેનાથી તે ઘણો ઘણો પ્રાચીન હોવો જોઈએ. પંચિકા ઉપર જે દ્રોઈ પ્રથમ વિસ્તીર્ણુ ગ્રન્થ હોય તો તે જ્યોતિષ વેદાંગ છે.^૭ તેમાં એક વર્ષના ૩૬૬ દિવસ ગણ્યા છે. પાંચ વર્ષનો એક યુગ, જેમાં ૧૮૩૦ દિવસ આવે. ચંદ્ર પોતાનું પરિભ્રમણ નક્ષત્ર ચક્ર આસપાસ ૬૭ વખત કરી રહે એટલા વખતમાં તે ચક્ર આસપાસ સૂર્ય પાંચ વખત પરિભ્રમણ કરે. અને એ વખત દરમિયાન સૂર્ય અને ચંદ્ર બન્નેનો સંયોગ દર વખત થાય છે. આ ગણતરી પ્રમાણે ત્રીશ સાવન દિનોવાળા ૬૧ સાવન માસ થાય છે. એક વર્ષમાં ૧૨૪ પર્વ આવે જેમાંથી દર પૂર્ણિમા અને દર અમાસ આવે. પાંચવર્ષી એક યુગમાં દર ચાંદ્રમાસ આવે. પાંચ સૌર વર્ષનો એક યુગ બનાવવા માટે પાંચ ચાંદ્ર વર્ષમાં બે અધિક માસ ઉમેરવા પડતા. સૂર્ય, ચંદ્ર, અને ધનિષ્ઠા-નક્ષત્રના સંયોગ વખતે માઘ શુકલ પ્રતિપદાને દિવસ ઉત્તરાયણ હોય તે વખતે આ યુગનો આઘ દિવસ ગણવો અર્થાત્ તે દિવસથી યુગારંભ થયો એમ ગણવું.^૮ સાદ ચાંદ્ર માસના પાંચવર્ષી એક યુગમાં, બે અધિક માસો દર અઢી વર્ષને અતે, એટલે કે એક માસ પ્રથમ યુગના ત્રીજા વર્ષના શ્રાવણ પહેલાં અને બીજા માસ બીજા યુગના આઘ માસ માઘ પહેલાં, એમ બે માસ ઉમેરવામાં આવતા હતા. જ્યોતિષ વેદાંગમાં આખી ગણનાનો મૂળભૂત પાયો નક્ષત્ર છે. એક નક્ષત્રના એક સો અને ચોવીશ અંશ કરવામાં આવે છે. દિવસ રાત્રિના ત્રીશ ભાગ કરવામાં આવે છે, જે

૨ દક્ષિતને આધારે ઈ. સ. ૫. ૧૪૦૦, કોલબ્રૂકના મતે ઈ. સ. ૫. ૧૨૦૦ અને આર્યભટ્ટના પ્રેટના અભિપ્રાય મુજબ ઈ. સ. ૫. ૧૧૬૨. ૩ સી. ૧૦ વી. ૧૦ વેબર: હિસ્ટરી ઓફ સંસ્કૃત લિટરેચર વો. ૧, વિભાગ ૩, પૃ. ૬૩. ૪ પૂર્વોક્ત પુસ્તક વો. ૧, વિ. ૩, પૃ. ૬૩. ૫ જ્યો. ૧૦ વે. ૨. ૬ યજુ. પાઠ. ૭ કીય: હિસ્ટરી ઓફ સંસ્કૃત લિટરેચર. પૃ. ૫૩૦. ૮ કીય પૂર્વોક્ત ગ્રન્થ, પૃ. ૫૧૬. ૯ સાવનમાસ એટલે ત્રીશ દિવસના માસ. ચાંદ્રમાસ એટલે અમાસથી અમાસ સુધીનો સમય. નક્ષત્રમાસ ચંદ્રને સપ્તાવીશ નક્ષત્ર કરી વળતાં લાગતો સમય. ૧૦ જ્યો. ૧૦ વે. ૬ યજુ: પાઠ.

દરેકને મુદ્દર્ત કહેવામાં આવે છે. અને આ દરેક મુદ્દર્તને બે ભાગમાં વિભક્ત કરવામાં આવેલ છે જેને નાડી સંજ્ઞા આપેલ છે. એક નાડીની ૧૦૩ કળા હોય છે. ગ્રીકપ્રભાવાન્વિત સિદ્ધાન્તગ્રંથોમાં દિવસની સાઠ ઘડી અને એક ઘડીની સાઠપળ એ પ્રમાણે કાળ વિભાગ કરવામાં આવ્યો છે. ઇ. સ. ૫૦ પ્રથમ શતાબ્દથી પ્રચલિત થયેલ સિદ્ધાન્તગ્રંથોની આ પદ્ધતિને લીધે સંભવિત છે કે જ્યોતિષ વેદાંગની ઉપર્યુક્ત શૈલી છોડી દેવામાં આવી હોય અને એથી જ એમાં આવતો અમુક ભાગ હવે સમજી શકાતો ન હોય અને આખરી નિર્ણય ઉપર આવવામાં મુશ્કેલી પડતી હોય.¹⁰ જ્યોતિષ વેદાંગમાં એક વર્ષના બાર સૌરમાસ, ઉત્તરાયણ અને દક્ષિણાયન એમ બે અયન, અને શિશિરાદિ છ ઋતુઓ ગણવામાં આવી છે. ચંદ્ર અને સૂર્ય સિવાય કોઇપણ ગ્રહોનો નામોલ્લેખ નથી. નક્ષત્રની સંખ્યા સત્તાવીશ છે.¹¹ માસ અમાંત ગણ્યા છે.

હવે જૈનોનો સૂર્યપ્રસન્નિ ગ્રંથ લઈએ. આ ગ્રંથ જૈનોના પાંચમા ઉપાંગ તરીકે પ્રખ્યાત છે. જંબુદ્વીપપ્રસન્નિ અને ચંદ્રપ્રસન્નિ અનુક્રમે છઠ્ઠા અને સાતમા ઉપાંગ છે. આ પ્રસન્નિ-ત્રયીમાં ખગોળ, ભૂગોળ અને જ્યોતિષ વિષયક ઘણી ઘણી બાબતો આવે છે અને તે બાબતો એક બીજાના મંતવ્યને પોષક તથા પૂરક હોય છે. તેમાંય સૂર્યપ્રસન્નિમાં તો એવી બાબતો બહુ જ આવે છે કે જે બરાબરરીતે પ્રકાશિત થાય તો તેનાથી અનેક ઐતિહાસિક બાબતો ઉપર પ્રકાશ પડે તેમ છે.¹² ઇ. સ. ૧૮૮૦ ના જર્નલ ઓફ એસિઆટીક સોસાયટી ઓફ બંગાલના પૃ. ૧૦૭થી ૧૨૭; ૧૮૧થી ૨૦૬ માં પહેલી જ વાર ડૉ. થીઓએ એના ઉપર કલમ ચલાવેલી. બે કે એની પહેલાં લગભગ અડધી સદી પૂર્વે ટ્રેચ વિદ્વાન એડવર્ડ બાયટે ઇ. સ. ૧૮૪૧માં Journal Asiaticમાં (પૃષ્ઠ ૫૬૨-૬૩૯) એક લેખમાળા પ્રકટ કરેલી અને તેમાં તે વિદ્વાને એવું સિદ્ધ કરવા યેષ્ટા કરેલી કે સૂર્યપ્રસન્નિગત વાતોનું ચીનદેશીય જ્યોતિષિક ગ્રંથ ચ્યુ. પી. (Theou-pey) સાથે ઘણું જ સામ્ય છે; પરંતુ એ ઉપક્રમમાં કશું જ વળૂદ નથી.¹³ ઇ. સ. ૧૮૨૫-૨૭ના જર્નલ ઓફ મીથીક સોસાયટીમાં આર. શામશસ્ત્રીએ સૂર્યપ્રસન્નિનો અંગ્રેજી અનુવાદ પ્રસિદ્ધ કરેલો છે. પ્રસંગવશ જણાયું કે તે ઉપરાંત, જૈનોના દસ પયન્ના પૈકીના ગણિવિદ્યા નામના આઠમા પયન્ના (પ્રકીર્ણક)માં પણ જ્યોતિષિક વિગતો આવે છે: જેવી કે:-બલાબલવિધિ, નવબલ, તિથિ, નક્ષત્ર, કરણ, ચંદ્ર-દિવસ-લગ્ન વગેરે વગેરે. આમાં ૮૨ ગાથા છે. આ પ્રકીર્ણકો પદ્યબદ્ધ છે અને રચના પદ્ધતિમાં વેદના પરિશિષ્ટાને મળતાં આવે છે. આ ગણિવિદ્યા નામના આઠમા પયન્નાના સાઠમા શ્લોકમાં પહેલવહેલો હોરાશબ્દ નજરે પડે છે. આ પયન્નાનો આધાર સૂર્યપ્રસન્નિ હોય તો પણ આ શબ્દનો ઉપયોગ ગણિ-વિદ્યાને ગ્રીક પ્રભાવાન્વિત ઠરાવે છે અને તેથી સૂર્યપ્રસન્નિ પછી જ રચાયેલું સિદ્ધ

10 બી. ૭૦ ટિપ્પણ વેદિક કાનાલાલ એન્ડ વેદાગજ્યોતિષ, પૃ. ૧૦૪. 11 જૂઆ. જ્યો. ૧૦ શ્લોક, ૧૮ ચંદ્ર. પાઠ. 12 ડૉ. એચ. ૦. બેલ્યુ. સમીક્ષ સાહેબનું, પ્રો. વેખરના સેક્રેટ લીટરેચર ઓફ ધી જૈનાઝનુ અંગ્રેજી ભાષાંતર, પૃ. ૭૮. 13 દેખો:-ઈડિયન હિસ્ટોરીકલ કવોર્ટર્લિ, માર્ચ-ડિસેમ્બર ૧૯૩૨માં સુકુમાર રજન દાસનો “પ્રી જૈન રકુલ ઓફ એરદ્રોનોમી” શીર્ષક લેખ; તથા ડા. રમીશનું પૂર્વોક્ત ભાષાંતર, પૃ. ૭૮.

કરે છે. આ દસ પ્રકીર્ણક ઉપરાંત બીજાં વીસ પ્રકીર્ણકો માનવામાં આવે છે જેમાંનું જ્યોતિષકરંડક નામનું આઠમું પ્રકીર્ણક સૂર્યપ્રજ્ઞાસિમાંથી જ ઉદ્ભૂત કરવામાં આવ્યું છે. તેમાં જંબૂદ્વીપમાં ચંદ્ર-સૂર્યનો મંડળવિભાગ, તાપક્ષેત્ર દ્વિત્રિતિ એકવીશ અધિકાર ચર્યવામાં આવ્યા છે. તેના ઉપર મલયગિરિની ટીકા છે. આ બધા સાહિત્યને સળંગ વાંચી જવાથી જ ખબર પડે કે સૂર્યપ્રજ્ઞાસિમાં શા શા વિષયો આવે છે; શું ક્ષેપક છે; શ્રીક પ્રભાવ કયા અન્થમાં અને ક્યારે દેખાયો? આદ્યજ્યોત્ષોની અસર કેટલા પ્રમાણમાં પડી છે? જૈન જ્યોતિષના નવા મતવ્યો શાં શાં છે? વગેરે વગેરે. અત્યારે તો આપણે, શ્રીક પ્રભાવથી તદ્દન મુક્ત અને ઉપાંગ સૂત્ર હોઈને પણ ભગવાન મહાવીરે અર્થરૂપે કહેલ અને ગણધરાદિકોએ સૂત્રરૂપે સૂત્રિત કરેલ¹⁴ અંગ્રંથો જેટલું જ માહાત્મ્ય ધરાવતી સૂર્યપ્રજ્ઞાસિને જ સમજવા પ્રયત્ન કરશું. ઉપાંગ છે તેથી તેનું મહત્ત્વ અંગો કરતાં ઓછું છે એમ સમજવાનું જરાય કારણ નથી—અને તેનો હેતુ એ છે કે ભગવાન મહાવીરે પરંપરા દ્વારા મેળવેલ જ્ઞાન પોતાના ગણધરોને આપ્યું જેમણે અંગ-ઉપાંગની રચના કરી. અર્થાત્ ગણધરો કે સ્થવિરોએ પુસ્તકરૂપે રચના કરી છે તેથી તેની અગત્ય જરાય ઘટતી નથી.¹⁵

સૂર્યપ્રજ્ઞાસિમાં આવતા વીશ પાહોડોનું સંક્ષિપ્ત વર્ગીકરણ નીચે પ્રમાણે કરી શકાય:—

(૧) મંડલગતિસંખ્યા, (૨) સૂર્યનો તિર્યક્ પરિભ્રમ, (૩) પ્રાકાશ્ય ક્ષેત્ર પરિમાણ, (૪) પ્રકાશસંસ્થાન, (૫) લેશ્યાપ્રતિધાત, (૬) ઓજઃસંસ્થિતિ, (૭) સૂર્યાવારક, (૮) ઉદયસંસ્થિતિ, (૯) પૌરુષીછાયાપ્રમાણ, (૧૦) યોગસ્વરૂપ, (૧૧) સંવત્સરોની આદિ તથા અંત, (૧૨) સંવત્સરોના ભેદ, (૧૩) ચંદ્રની વૃદ્ધિ તથા અપવૃદ્ધિ, (૧૪) જ્યોત્સ્ના પ્રમાણ, (૧૫) શીઘ્રગતિ નિર્ણય, (૧૬) જ્યોત્સ્ના લક્ષણ, (૧૭) ચ્યવન અને ઉપપાત, (૧૮) ચંદ્ર-સૂર્ય આદિની ઊંચાઈ, (૧૯) ચંદ્ર-સૂર્યનું પરિમાણ અને (૨૦) ચંદ્ર-સૂર્યનો અનુભાવ.

એક સંવત્સરના ૩૬૬ દિવસ ગણ્યા છે. તેમાં આર સૌર માસ—એ અયન—છ ઋતુઓ આવે છે. પાંચ વર્ષના એક યુગવાલી ગણતરીનો પણ આમાં આશરો લીધેલો છે. નક્ષત્રોની સંખ્યા અભિજિત્ સહિત અઠ્ઠાવીશની ગણાવી છે.¹⁶ નક્ષત્ર ચક્ર આસપાસ ચંદ્ર પોતાનું પરિભ્રમણ ૬૭ વખત કરી રહે એટલા વખતમાં સૂર્ય પાંચ વખત પરિભ્રમણ કરી રહે. અને આ સમય દરમિયાન ચંદ્ર-સૂર્યનો સંયોગ આસઠ વખત થાય. આ ઉપરાંત, તીથિ—નક્ષત્રોનો ભોગાનયન કાળ પણ જ્યોતિષવેદાંગ સાથે તદ્દન મળતો આવે છે. વર્ષનો આરંભ શ્રાવણથી થતો તથા માસ પૂર્ણિમાંત હતા.¹⁷ ચંદ્ર-સૂર્ય ઉપરાંત શનિ તથા બૃહસ્પતિના નામોનો ઉલ્લેખ પણ તેમાં છે.¹⁸ મેષ—

14 આવશ્યક નિર્બુદ્ધિ, ગાથા ૯૨. 15 વિન્ટરનિતઝ. હિસ્ટરી ઓફ ઇન્ડિયન હિસ્ટરીયર: વોલ ૨, પૃ. ૪૩૨-૪૩૩. 16 સરખાવો: જંબૂદ્વીપ દીવે અભિદ્રવજ્ઞેહિ નક્ષત્રેહિ સંવત્સરે વદ્દર્શ. સમવાયાંગ સૂત્ર, ૨૭ મો સમવાય. 17 સરખાવો: જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞાસિમાં પ્રથમ ગણધર ગૌતમ અપરનામા ઇન્દ્રભૂતિ શ્રમણ ભગવાન મહાવીરને પ્રશ્ન કરે છે “માસા ગં મંતે ! કિમાશ્યા ? પક્ષા ગં મંતે ! કિમાશ્યા ?” તેના જવાબમાં ભગવાન કહે છે ગોઅમા ! સાવળાશ્યા માસા; વહુલાશ્યા પક્ષા. 18 ડૉ: સ્મીથનું વેપરના “સેક્રેટ હીસ્ટરીયર ઓફ ધી જૈનાઝ”નું અંગ્રેજી ભાષાંતર, પૃ. ૭૮.

વૃષભાદિ અર્થમાં રાશિ શબ્દનો પ્રયોગ દ્રષ્ટિગોચર થતો નથી અર્થાત્ ગ્રીક પ્રભાવ પહેલાંનો આ ગ્રંથ છે.¹⁹

સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં પ્રરૂપેણ એ સૂર્ય અને એ ચંદ્રવાળી આખત²⁰નો આધાર સમસ્ત ભૂમંડળને ચાર ખંડમાં વિભક્ત કરવામાં આવ્યું છે એ સૈદ્ધાન્તિક વિગત ઉપર જ છે. દરેક સૂર્યની વારી એક એક દિવસને આંતરે આવે છે અર્થાત્ આજે જે સૂર્ય આ ખંડને અજવાળી રહ્યો છે તે સૂર્ય આવતી કાલે આ ખંડમાં નહિ આવતાં પરમ દિવસે આવશે એટલે કે એને એક ચક્ર પરિભ્રમણ કરતાં એ દિવસ લાગવાના. તે ઉપરાંત, આ બન્ને સૂર્યો એક બીજાથી વિરુદ્ધ દિશામાં રહેવાના. ટુંકમાં, જ્યોતિષિક પરિભાષામાં કહીએ તો બન્ને સૂર્યો પડલાંતર રહેવાના. આવી વિચિત્ર કલ્પના કરવામાં આવી છે છતાં સૂર્યની ઉદયાસ્તરૂપી દૈનિકી ગતિ, નક્ષત્રભ્રમણરૂપી વાર્ષિકી ગતિ, અને અયનરૂપી ગતિ સમજાવવામાં એના પ્રરૂપનારને જરાપણ મુશ્કેલી નડતી નથી.

રાહુદ્વારા સૂર્ય-ચંદ્રનો ગ્રાસ થઈ સૂર્યગ્રહણ કે ચંદ્રગ્રહણ ઉત્પન્ન થાય છે એ આખત સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ સ્વીકારતી નથી. સૂર્ય-ચંદ્રની નીચેથી જતાં આવતાં રાહુ જ્યારે એઓની લેશ્યાને (તેજને) આચ્છાદિત કરે છે ત્યારે લોકો કહે છે કે તેઓને રાહુએ પકડી રાખ્યા છે; વળી જ્યારે તેજને આવરતો આવરતો તેઓની પડખેથી રાહુ ચાલ્યો જાય છે ત્યારે લોકો કહે છે કે સૂર્ય કે ચંદ્રમાંએ રાહુની કુક્ષિને ભેટી નાખી છે. વળી જ્યારે રાહુ એવી જ રીતે તેઓની લેશ્યાને આવરીને ખસી જાય છે ત્યારે લોકો કહે છે કે રાહુએ સૂર્ય-ચંદ્રને વમી કાઢ્યા છે. વળી રાહુ જ્યારે જ્યારે એ એના મધ્યમાંથી પસાર થાય છે ત્યારે લોકો કહે છે કે રાહુએ તેમને ભેદ્યા છે. વળી જ્યારે રાહુ સૂર્યને કે ચંદ્રને સર્વથા આવરી રહે છે ત્યારે પણ સત્ય સ્વરૂપથી અજ્ઞાન એવા લોકો કહે છે કે ભણે ક્ષુધાતુર હોય ની એવા રાહુએ સૂર્ય-ચંદ્રને ગ્રસ્થા છે. રાહુના પણ પર્વરાહુ અને નિત્યરાહુ એમ બે પ્રકાર છે. નિત્યરાહુનું વિમાન એકદમ શ્યામ છે અને તે વિમાન ચંદ્રના વિમાનની નીચે ચંદ્રથી ચાર આંગળ દૂર રહીને ચાલે છે. તેને આવરીને ધીમે ધીમે ચાલ્યા કરે છે તેથી જ ચંદ્રમાં વૃદ્ધિ-હાનિનો ભારા થાય છે.²¹ ઉત્તમ વસ્ત્રાભૂષણ અને પુષ્પમાળાથી સૌન્દર્યવાન અને મહાન્ સમૃદ્ધિથી યુક્ત એવા આ રાહુને સર્વ અવયવો સંપૂર્ણપણે છે. પણ લોકોને વિષે એ જેમ માત્ર મસ્તક રૂપે જ પ્રસિદ્ધ છે તેવું નથી. વળી આ રાહુનાં ત્રય નામ છે: તે નીચે પ્રમાણે છે:—શૃંગાટક, જટિલ, ક્ષત્રક, ખરક, દુર્ધર, સગર, મત્રય, કૃત્યુસૃપ અને કચ્છપ; તે ઉપરાંત એના શ્યામ, નીલ, રક્ત, પીત અને શ્વેત એમ પાંચ રંગના મનોહર વિમાન છે.²² જ્યારે પર્વરાહુ સૂર્ય કે ચંદ્રની લેશ્યાને—તેજને આવરતો છતો યથોક્ત

19 ઇડિયન એન્ડીકવેરા, વોલ ૨૧, પૃ ૧૪-૧૫. આ જ પાત્રનું અન્યથા પ્રાંત હર્મન યાદોળી કરે છે—દેખો સેકેડ બુક્સ ઓફ ધી ઇસ્ટ, વોલ ૨૨. 20 સરખાવા અંબુવીપ્રજ્ઞપ્તિવાળા પાઠ—તયા જ રૂઢ ગયસ્સ મણુસસ્મ મીઆલીમાંહ જોઅણમહસ્સેદિં દોહિયનેવટ્ટેદિં જોઅણસણંત ઇગવીમાણ મકિ-માદિં જોઅણસ્સ ચંદે ચક્ષુફાસં હવ્વમાગચ્છદ્દ ॥ 21 સરખાવા:—ચંદસ્મ નેવ હાળી નવિ યુદ્ધી વા અવહિઓ ચંદો ! સુવિકલમાશ્વસ્સ પુણો દીસદ્ વુદ્ધી ય હાળી ય ॥ કિણ્દં રાહુવિમાણ નિમ્મં ચંદેણ હોદ્ અવિરહિયં । ચરંરંગુલમપ્પત્તં હિટ્ઠા ચંદસ્સ તં ચરદ્ ॥ તેણ વટ્ઠદ્ ચંદો પરિહાળી વા નિ હોદ ચંદસ્સ ॥ 22 જુઓ ભગવતી સૂત્ર, શતક ૧૨, ઉદ્દેશ ૬.

કાળે સૂર્ય કે ચંદ્રની નીચે જાય છે ત્યારે સૂર્ય-ચંદ્રનો યથાયોગ્ય ઉપરાગ થાય છે તે લોકોમાં ગ્રહણના નામથી ઓળખાય છે. આવી અને બીજી ઘણી સૂક્ષ્મ બાબતોની ચર્ચા સૂર્યપ્રજ્ઞસિમાં આવે છે જેને સવિસ્તર ચર્ચવાનો અવકાશ આ લેખમાં નથી.

જ્યોતિષ વેદાંગ અને સૂર્યપ્રજ્ઞસિમાં આવતી બાબતોમાં કેટલું સામ્ય છે અને કેટલું વૈષમ્ય છે તેની હુંકામાં નોંધ લઈ લઈએ. પાંચવર્ષી એક યુગ, બાર સૌર માસનું એક વર્ષ, બે અયન, છ ઋતુઓ, તિથિ-નક્ષત્રનો લોગાનયનઃ આટલી બાબતોમાં જ્યોતિષ વેદાંગ અને સૂર્યપ્રજ્ઞસિ વચ્ચે અદ્ભૂત સામ્ય છે. એ સિવાય, સૂર્ય-ચંદ્રના નક્ષત્ર-ચક્ર-પરિભ્રમણના સંબંધમાં પણ ધ્યાન ખેંચે તેવું સામ્ય છે. મુહુર્ત-નાડી-અંશ-કળા વગેરે કાળગણનામાં પણ બન્ને વચ્ચે ઘણી જ સંગતિ છે. હવે બન્ને વચ્ચે રહેલા વૈષમ્ય તરફ દૃષ્ટિ કરીએ. સૂર્યપ્રજ્ઞસિના સમયનિર્ણયમાં આ વૈષમ્ય ખરેખર માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જ્યોતિષ વેદાંગમાં યુગારંભ માઘશુકલ પ્રતિપદાને દિવસે, ઉત્તરાયણ વખતે, જ્યારે સૂર્ય-ચંદ્ર અને ધનિષ્ઠાનક્ષત્રનો સંયોગ હોય ત્યારે થાય છે. સૂર્યપ્રજ્ઞસિ પ્રમાણે, આ જ લેખમાં આગળ કહેવાયું છે તેમ, યુગનો આરંભ શ્રાવણ માસથી થાય છે. જ્યોં વેં પ્રમાણે માસ અમાંત હતા, જ્યારે સૂં પ્રં અનુસાર પૂર્ણિમાંત હતા. જ્યોં વેં માં નક્ષત્ર સંખ્યા સત્તાવીશની છે; અલિજીતનો નામનિર્દેશ તેમાં નથી, જ્યારે સૂં પ્રંમાં અલિજીતને સામેલ કરી અઢાવીશ નક્ષત્રો ગણાવામાં આવેલા છે. જ્યોં વેંમાં સૂર્ય અને ચંદ્ર સિવાય કોઈ ગ્રહનો નામોલ્લેખ સુદ્ધાં પણ નથી, જ્યારે સૂં પ્રં માં શનિ તથા ગુરુનો ઉલ્લેખ આવે છે. બે સૂર્ય અને બે ચંદ્રની કલ્પના તથા પર્વરાહુ અને નિત્યરાહુનો સિદ્ધાંત આ બે બાબતો પણ સૂર્ય-પ્રજ્ઞસિની સુવાંગ હોય તેમ જણાય છે. શ્રાવણ માસથી થતો યુગારંભ, માસ પૂર્ણિમાંત હતો તે બાબત, અઢાવીશ નક્ષત્રો, તેમ જ શનિ તથા ગુરુનો ઉલ્લેખઃ આ ચાર બાબતો આર્યોના જ્યોતિષિક જ્ઞાનમાં પ્રગતિ સૂચવે છે, અને તેથી સૂં પ્રં, જ્યોં વેં પછી રચાઈ હોય એવું અનુમાન કરવા તરફ આપણને લઈ જાય છે, જે આ જ લેખમાં આપણે આગળ જોશું.

પહેલાં રાહુનો જૈન સિદ્ધાંત તથા બે સૂર્ય અને બે ચંદ્રવાળી બાબત આપણે તપાસી લઈએ. ચંદ્ર-સૂર્યનો ગ્રાસ રાહુદ્વારા થાય છે અને તેથી ચંદ્રગ્રહણ તથા સૂર્યગ્રહણ થાય છે એ સિદ્ધાંતને જેવીરીતે પૌરાણિક ગણવામાં આવ્યો છે અને તેથી માત્ર શ્રદ્ધાથી જ ગળે ઉતરી શકે તેમ છે તેવીરીતે પર્વરાહુ અને નિત્યરાહુ વાળો જૈન સિદ્ધાંત માત્ર શ્રદ્ધાથી જ માની શકાય તેવો છે અને તેથી વિજ્ઞાનની દ્રષ્ટિએ એ ગ્રાહ્ય નથી એટલું જ કહેવું બસ થશે. બે ચંદ્ર અને બે સૂર્યવાળી બાબત પણ કાંઈક અંશે ઉપર્યુક્ત સિદ્ધાંત જેવી જ છે; છતાં જીવવિદ્યા-વિશ્વરચનાવિદ્યા-માનસશાસ્ત્ર જેવા જટિલ વિષયોમાં પણ મૌલિક અને સચોટ આર્ષ જ્ઞાન ધરાવનાર જૈન દ્રષ્ટાઓ આવી ઉપહસનીય બાબતનો અભ્યુપગમ આટલા બધા જોર શોરથી ન કરે એ પણ એટલું જ સત્યાંકિત છે. એટલે આ સિદ્ધાંતને આપણે જરા સૂક્ષ્મતાથી તપાસીએ.

માઈ આ સ્પષ્ટ અને અસંદિગ્ધ મંતવ્ય છે કે વૈદિક કાળની ગ્રાહ્ય સંસ્કૃતિ સાથે સાથે જ જૈનોની શ્રમણ સંસ્કૃતિનો પ્રવાહ-આછો, ઘેરો-વઘાં કરતો હતો. અમુક

સંસ્કૃતિ પ્રાચીન અને અમુક અર્વાચીન એવું અનુમાન કરવું તે વધારે પડતું છે. કોઈકાળે પણ સમસ્ત જનતા એક જ સંસ્કૃતિની છત્રછાયા કે અસર નીચે હતી એવું કહેવું તે ઉતાવળું ગણાવું જોઈએ. મનુષ્ય માનસમાં જ કોઈ એવા પ્રકાસની વિવિધતા છે કે તે કદિ એકધારે વલણ અપભાર કરી શકે જ નહિ. તદુપરાંત, ઇતિહાસજ્ઞોને પણ અવાર નવાર પોતાના મંતવ્યો બદલવા પડ્યાના દાખલાઓ વિપુળ છે. કઈ સંસ્કૃતિએ કઈ સંસ્કૃતિમાંથી કયાં તત્ત્વોને કેવીરીતે કયા સમયે અપનાવ્યા તેનો, ઉપલબ્ધ ઐતિહાસિક સામગ્રીદ્વારા સચોટ રદીયો આપવો, આપણે જેટલો માનીએ છીએ તેટલો સરળ નથી. એટલે એમ જ કહેવું ઉપસ્થિત થાય છે કે જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિના સંતો વૈદિક કાળની ગ્રાહ્ય સંસ્કૃતિ સાથે સાથે વશાં જ ક્યું છે. વળી જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ મૂળથી જ પોતાના તમામ સૂત્રોને અને સિદ્ધાંતોને મોઢે જ રાખતી આવેલી. કારણ કે આટલું તો નિર્વિવાદ પણે કહી શકાય તેમ છે કે જૈનોના તમામ સૂત્રો જે તે વખતે મળ્યાં તે દેવદર્શિગણે ક્ષમાશ્રમણના વખતમાં વિ. સં. ૫૧૦માં પુસ્તકારૂઢ થયાં એટલે બીજી સંસ્કૃતિઓમાં પણ સંઘર્ષ કાળમાં શું શું નષ્ટ થયું તે કહેવું લગભગ અશક્ય જેવું છે. તે ઉપરાંત વીરાત્ બીજી સદિમાં નંદરાજના વખતમાં બારવર્ષી મહાબીષણ દુષ્કાળ પડ્યો, વીરાત્ છઠ્ઠા સૈકામાં બીજે બારવર્ષી દુષ્કાળ અને વીરાત્ દસમા સૈકામાં ત્રીજે દુષ્કાળ આવ્યા ત્રણ દુષ્કાળોના આક્રમણથી જૈન શ્રમણોનું જ્ઞાન પુસ્તકારૂઢ ન્હોતું તેથી ઘણું જ નષ્ટ થઈ ગયું.²³ જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર ભગવાન્ પાર્શ્વનાથ કે જેમને પહેલાં કાલ્પનિક વ્યક્તિ માનવામાં આવતા હતા તે એક ઐતિહાસિક પુરુષ હતા એમ હવે પાશ્ચાત્ય પંડિતોએ પણ સ્વીકાર્યું છે.²⁴ જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિના આદ્યદ્રષ્ટા તરીકે ભગવાન્ મહાવીરને ગણવા અને ત્યાંથી જ જૈન સંસ્કૃતિનો આરંભ ગણવો એ પણ એટલું જ ભૂલ ભરેલું છે.²⁵ બહુમાં બહુ તો તેમને આપણે જૈનમતના એક સુધારક કહી શકીએ - એટલે કે પ્રાચીન જૈન પરંપરાને તેમણે યુગને અનુકૂળ એવા વાતાવરણમાં મૂકી. જૈન સંસ્કૃતિનું વાહ્યમય પણ એટલું જ વિશાળ - વ્યાપક અને સર્વતોમુખી હતું.²⁶ જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિનું સહ્યામિત્વ આ પ્રમાણે સ્વીકાર્યા પછી આપણે એ પણ બાણી લેવું ઘટે કે કોઈપણ સંસ્કૃતિના વિધાન કે સિદ્ધાંતોને વિજ્ઞાનસાર ઘટાવી શકવા આપણે અસમર્થ નીવડીએ ત્યારે તે સિદ્ધાંતોને તત્કાલીન વાતાવરણના પ્રકાશમાં આપણે જોવા જોઈએ અને તો જ તેનું ખરૂં મૂલ્યાંકન આપણે કરી શકીએ. એમ પણ ન હોઈ શકે કે જે સિદ્ધાંતની યથાર્થતા વિજ્ઞાનની દ્રષ્ટિએ હોય નહિ તે સિદ્ધાંત જ ખોટો. ઘણી વખત એમ બને છે કે એની યથાર્થતા વિજ્ઞાનને મોડી સમજાય. દાખલા તરીકે વનસ્પતિમાં જીવ છે એવા જૈન વિધાન તરફ વર્તમાન વિજ્ઞાન સૂચની દ્રષ્ટિએ જોતું. પરંતુ સર્વજગદીશ ચંદ્ર બોઝે અનેક વિશિષ્ટ પ્રયોગો પછી દુનિયાને બતાવ્યું ત્યારે વિજ્ઞાનને ન છૂટકે એ સ્વીકારવું પડ્યું. આટલી પ્રાસ્તાવિક ભૂમિકા પછી હવે આપણને એ સમજાવું કઠિન નહિ

23 જુઓ આચાર્ય હેમચંદ્રકૃત પરિશિષ્ટ પર્વ, સર્ગ ૯, શ્લોક ૫૫ થી ૫૮; તથા જૈન સાહિત્ય સંશોધક મંડ ૨, અંક ૪, પૃ ૬. 24 ગેરીનો: બીબ્લીઓગ્રાફી જૈન. 25 બેલ્વલકર: બ્રહ્મસૂત્રાઞ્ઞ ઓફ આદરાયણ, નોટ્સ પૃષ્ઠ ૧૦૭. 26 બાર્થ: ધી રીલીજિયન્સ ઓફ ઇન્ડિયા, પૃષ્ઠ ૧૪૪.

લાગે કે એ ચંદ્ર અને એ સૂર્યવાળી માન્યતા પ્રાચીન સમયમાં જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિનું એક જ્યોતિષિક અંગ હતું અને જેનું જ્ઞાન સંપ્રદાય અને પરંપરાનુસાર બીજી જાતના જ્ઞાન પ્રવાહ સાથે સાથે ભગવાન મહાવીરે મેળવ્યું જે તેમણે ગણધરોને અર્થરૂપે કહ્યું અને ગણધરોએ એ જ્ઞાનને સૂત્રિત કર્યું કે જે સૂત્રિત જ્ઞાનને દેવર્દ્ધિ ગણિએ પુસ્તકારૂઢ કર્યું. પ્રાચીન ઇતિહાસ અને ઉપલબ્ધ સાધનને તપાસતાં સહેજે માલુમ પડે છે કે ખ્રિસ્ત ઇ.પૂ. ૫૬૫ થી ૫૨૭ વચ્ચે પશુ અનેક ઉદ્ધામ કલ્પનાઓ કરવામાં આવેલી છે તો એ ચંદ્ર અને એ સૂર્યવાળી બાબતનું તો પૂછવું જ શું? જૈનોની આ માન્યતા ઉપરથી આપણને એટલું તો જાણવાનું મળે છે જ કે સમસ્ત ભૂમંડળ ઉપર એક સાથે જ સૂર્યોદય અને એક સાથે જ સૂર્યાસ્ત થાય છે એમ તે વખતે પણ જૈનો જોતા માનતા. પૃથ્વીના અમુક પ્રદેશમાં સૂર્યોદય થાય છે જ્યારે બીજા પ્રદેશમાં બરાબર તે જ વખતે સૂર્યાસ્ત હોય છે અને તે ઉપરથી જ તેઓ એકાધિક સૂર્ય-ચંદ્રની કલ્પના કરવા લલચાયા હોય. અર્થાત્ તત્કાલીન યુગના પ્રકાશમાં જ આ સિદ્ધાંતને આપણે જોવો રહ્યા. આવી અસંબદ્ધ કલ્પનાઓ રૂઝવેદ સુદ્ધાંમાં પણ મળી આવે છે. બીજી સંસ્કૃતિઓના ઇતિહાસમાં પણ આવી અનેકાનેક અસંબદ્ધ કલ્પનાઓ મળી આવે છે. એ ચંદ્ર અને એ સૂર્યવાળી જૈન કલ્પનાને બરાબર મળતી આવે એવી માન્યતા ગ્રીકોના પ્રાચીન ઇતિહાસમાં પણ મળી આવે છે.^{૨૭} એટલે અસદ્વિધાપણે માફ માનવું એમ છે કે એ ચંદ્ર - એ સૂર્યવાળી બાબત અને પર્વરાહ તથા નિલ્યરાહની કલ્પના પ્રાચીન જૈન શ્રમણસંસ્કૃતિના જ્યોતિષ વિષયક અંગ તરીકેની હોઈ તે પરંપરાનુસાર મહાવીર પ્રભુને સોંપાળી. અર્થાત્ સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિમાં આવતા આ વિધાનને આપણે પ્રાચીન અંશ માનવો જોઈએ. નક્ષત્રસંખ્યાદિવાળી ચાર બાબતો કે જેનો ઉલ્લેખ આ જ લેખમાં આગળ કરેલો છે તે જ્યોતિષિક જ્ઞાનની પ્રગતિ બતાવનારી હોઈ જ્યોતિષ વેદાંગના રચનાકાળ પછીની હોવી જોઈએ. પરંતુ તે ચાર બાબતોમાં ગ્રીકપ્રભાવ જરાપણ નથી એટલે ગ્રીકોના સંસર્ગ પહેલાંની માનવામાં આપણને જરાપણ આપત્તિ નથી. આ બાબતની સવિસ્તર ચર્ચા નીચેની ક્રંડિકામાં છે.

સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિ જૈનોનું પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર છે. અર્થરૂપે અરિહંતો તે કહેતા આવેલા અને ભગવાન મહાવીરે પણ તેને પોતાના ગણધરોને અર્થ રૂપે કહ્યું. ગણધરોએ સૂત્રરૂપે અર્થને સૂત્રિત કરી આપ્યો જે છેવટે દેવર્દ્ધિગણિએ પુસ્તકારૂઢ કર્યો. આ મુખ્ય વાત આપણી નજર આગળથી ખસવી ન જોઈએ. આ સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિ ઉપર આચાર્ય ભદ્રબાહુની નિર્ધુક્તિ છે, જે ઉપલબ્ધ નથી. ભદ્રબાહુ એક જ નથી થયા એટલે નિર્ધુક્તિકાર ભદ્રબાહુ ક્યા અને ક્યારે થયા તે તપાસીએ. પરંપરા પ્રમાણે ભદ્રબાહુ ચંદ્રગુપ્ત-મૌર્યના સમયમાં થયેલા મનાય છે. મહાવીર નિર્વાણપછી (વિ.સં. ૫૦૦-૪૭૦) વીશવર્ધે સુધર્મા, ચૌસઠવર્ષે જંબૂ, પચોતેર વર્ષે પ્રભાવ, અઠ્ઠાણું વર્ષે શયંભાવ, એકસો અડતાલીશવર્ષે યશોભદ્ર, એકસો છપ્પનવર્ષે સંભૂતિવિજય અને એકસો સીતેર વર્ષે

૨૭ એ' ડીઅસ (Aetius) લખે છે.-“ઝેનોફોન (Xenophanes) પૃથ્વીના વિભાગ અને ઉપવિભાગો માટે અનેક સૂર્ય-ચંદ્રની કલ્પના કરે છે.” હીથનું ગ્રીક મેથેમેટીક્સ, પૃષ્ઠ ૫૪.

ભદ્રબાહુ (સંભૂતિવિજયના લઘુ ગુરુભ્રાતા) કાળધર્મ પામ્યા.²⁸ આ ભદ્રબાહુએ ખીજી પણ નિર્યુક્તિઓ રચી હતી.²⁹ કલ્પસૂત્ર પણ તેમણે જ રચ્યું હતું³⁰ અને કલ્પ-સૂત્રકાર ભદ્રબાહુ એ જ નિર્યુક્તિકાર ભદ્રબાહુ.³¹ ભદ્રબાહુ સંહિતાના રચનાર ભદ્રબાહુ કે જેમને પરંપરા વરાહમિહિરના લાઘ તરીકે ઓળખાવે છે તે ભદ્રબાહુએ કલ્પસૂત્રની રચના કરી ન હતી એમ ડૉં હર્મન યાકોબીએ સિદ્ધ કર્યું છે.³²

અમુક નિન્હવ અમુક વખતે થયો એવા તાત્પર્યવાળું વાક્ય, ભૂતકાળમાં થઈ જનાર માણસ, ભાવિ ઘટના વિષે કેમ લખી શકે ? એવી શંકા મુનિ ચતુરવિજયજી ઉઠાવે છે અને એમ સિદ્ધ કરવા માગે છે કે બધા નિન્હવો ઉત્પન્ન થઈ ગયા પછી જ આવશ્યક નિર્યુક્તિમાં ભદ્રબાહુ સ્વામીએ એમ લખ્યું હશે. છેલ્લો નિન્હવ રથવીરપુર નગરમાં વીરાત્ છસો અને નવ વર્ષે ઉત્પન્ન થયો. અર્થાત્ ભદ્રબાહુ સ્વામી એ સમય પછી જ થયા હોવા જોઈએ; કારણ કે આવી નોંધ અન્યથા પોતે કેવીરીતે કરી શકે ?³³ ઉપલક્ષ્ય દૃષ્ટિએ આ દલીલ સખળ જેવી લાગે છે પરંતુ દેવદર્શિગણિએ વલ્લભી વાચના પ્રસંગે આવા કેટલાક પાકો પોતે ઉમેરેલા છે અને એના ખીજા દાખલાઓ³⁴ પણ મળી આવે છે - એ આખતનો વિચાર કરીએ છીએ ત્યારે દલીલ ટકી શકતી નથી. સારાંશ એ કે ભદ્રબાહુ સ્વામીએ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ નામના પાંચમા ઉપાંગસૂત્ર ઉપર નિર્યુક્તિ રચી હતી અને ભદ્રબાહુ સ્વામી વીરાત્ ૧૭૦ વર્ષે થયા હોઈ, ઈ સં ૦ પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દિમાં ચંદ્રગુપ્ત મૌર્યના સમયે જ તેઓ થયા હતા એમ નિષ્પન્ન થાય છે. એટલે એ તો સ્પષ્ટ જ થયું કે આ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિની સૂત્રરૂપે રચના વીર નિર્વાણ (વિં સં ૦ પૂં ૪૭૦) પછી અને ભદ્ર-બાહુ સ્વામી કે જેઓ વિં સં ૦ પૂં ૦ ત્રીજા સૈકામાં કાળધર્મ પામ્યા તેમના પહેલાં થઈ હોવી જોઈએ. આ મંતવ્યને પુષ્ટિ આપનારાં ખીજાં પ્રમાણો એ છે કે સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં કોઈપણ ગ્રીકપ્રભાવ પ્રદર્શક રાશ્યાદિ જ્યોતિષિક પારિભાષિક શબ્દો નજરે ચડતા નથી. આ રીતેપણ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ નામના જૈન જ્યોતિષ ગ્રંથને આપણે વિં સં ૦ પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દિ પહેલાં મૂકી શકીએ. અભિજિતની નક્ષત્રોમાં ગણના, શનિ-ગુરુનો નામ નિર્દેશ, પૂર્ણિમાંત માસ, અને શ્રાવણ વદ એકમથી થતો યુગારંભ: આ ચાર આખતો જ્યોતિષ વેદાંગથી જૂદી પડતી હોઈ તેમ જ જ્યોતિષિક જ્ઞાનની પ્રગતિ બતાવતી હોઈ જૈનોના સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ગ્રંથને જ્યોતિષ વેદાંગ પછી મૂકવો જોઈએ. આ કથનને અનુકૂળ એવી માહિતી આપણને કૌટિલ્યના અર્થશાસ્ત્રમાંથી પણ મળે છે.

28 જુઓ, મુનિ જિનવિજયજી સંપાદિત ખરતર ગચ્છપદ્માવલિ સંગ્રહ, પૃષ્ઠ ૧૫-૧૬-૧૭. વિન્ટરનિત્રઃ હિસ્ટરી ઓફ સંસ્કૃત લીટરેચર, વોં ૨, પૃં ૪૬૨. 29 આવશ્યક નિર્યુક્તિ, ગાથા ૮૨. 30 શાંપેન્ડ્રી-યર: ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર, પૃષ્ઠ ૧૩-૧૪. 31 જુઓ વિન્ટરનિત્રઃ હિસ્ટરી ઓફ સંસ્કૃત લિટરેચર, વોં ૨, પૃષ્ઠ ૪૬૨. 32 જુઓ, યાકોબી સંપાદિત કલ્પસૂત્રની પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૪. 33 જુઓ, આત્માનંદ જન્મશતાબ્દિ સ્મારક ગ્રંથ. મુનિ ચતુરવિજયજીવાળાં ભદ્રબાહુ સ્વામી શીર્ષક લેખ, પૃષ્ઠ ૨૨-૨૩. 34 ઠાણગસૂત્ર-સાતમું સ્થાન. અર્થરૂપે તો અંગસૂત્રની રચના લગવાન મહાવીરે જ કરી તેવી સાત નિન્હવો કે જેને થવામાં તેમના નિર્વાણ પછી લગભગ સાત શતાબ્દિ લાગી તેનો ઉલ્લેખ લગવાન મહાવીર કેમ આપી શકે ? તેથી આપણે એમ જ માનવું જોઈએ કે દેવદર્શિગણિએ એ પાછળથી ઉમેરેલું છે.

કૌટિલ્યના અર્થશાસ્ત્રના મતે વર્ષનો આરંભ, જ્યોતિષ વેદાંગ પ્રમાણે માઘશુકલ અતિપદાથી ન માનતાં સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિમાં છે તેમ, શ્રાવણથી માન્યો છે.^{૩૬} કૌટિલ્યનું અર્થ-શાસ્ત્ર ઈ. સં. પૂ. ૩૦૦ ડરર લગભગ રચાયેલું પુરવાર થયું છે. આ રીતે પણ સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિ ઈ. સં. પૂ. ૩૦૦ ત્રીજા સૈકા પહેલાં રચાયા વિષે આગળ કરેલ વિધાનને બળ મળે છે. આ તમામ હકીકત ઉપરથી હવે એ નિઃસંશય કહી શકાય કે સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિ નામનું જૈનોનું પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર લગવાનું મહાવીરના નિર્વાણકાળ (વિ. સં. પૂ. ૪૭૦) પછી અને નિર્યુક્તિકાર આચાર્ય ભદ્રબાહુ (વિ. સં. પૂ. ૩૦૦ ત્રીજી શતાબ્દિ) પહેલાં ગમે ત્યારે કોઈ ગણધરે કે સ્થવિરે સૂત્રિત કર્યું. જ્યોતિષ વેદાંગ અને જૈનાના સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિ એ બન્નેના સમય વચ્ચે ગાર્ગીસંહિતા કે વૃદ્ધગર્ગની રચેલી સંહિતા નામનો જ્યોતિષ ગ્રન્થ રચાયેલું અનુમાન થાય છે.

અંતમાં, પ્રાચીન જ્યોતિષરૂપી સાંકળના છૂટા પડેલા મણકા, નીચે પ્રમાણે સાંધી શકીએ. સૌથી પ્રાચીન ઉપલબ્ધ જ્યોતિષ ગ્રન્થ તે જ્યોતિષવેદાંગ ઈ. સં. પૂ. ૧૪૦૦; ગાર્ગીસંહિતા (ગર્ગનો ઉલ્લેખ પાણિનિએ કર્યો છે) ઈ. સં. પૂ. ૬૦૦ સૈકા પહેલાં; ત્યાર બાદ નક્ષત્રકલ્પ અને તેના પછી અથર્વ વેદના પરિશિષ્ટો, વગેરે; અને તે પછી ઈ. સં. પૂ. ૩૦૦ થોડી શતાબ્દિ પહેલાંનો જૈનોનો સૂર્યપ્રજ્ઞાપ્તિ નામનો ગ્રંથ. દલિલમ.

૩૬ આર. શામશાસ્ત્રી સંપાદિત, કૌટિલ્ય અર્થશાસ્ત્ર, પૃષ્ઠ ૭૦ અધિ. ૨, અ. ૭, પૃ. ૨૫-૩૬, “પાણિનિએ ઉલ્લેખ કર્યો છે તેથી તેમના પૂરોગામી ગર્ગ અને પરાશર કરતાં જ્યોતિષ વેદાંગ પ્રાચીન છે.”
 કુટે: વીસીસીટીયુ.કે.એ. આર્ચન સોપાલીએશન.

ગુજરાતી નાટકોમાં સંસ્કૃત રૂપકાદિનાં તત્ત્વો

*

લેખક—શ્રીયુત પ્રો. માનુશંકર બા. વ્યાસ, એમ. એ.

[નોંધ—ગુજરાતી નાટકોની વિચારણા કરતાં પ્રેમાનન્દને નામે પ્રગટ થયેલાં ત્રણ નાટકોના કર્તૃત્વનો પ્રશ્ન સ્વાભાવિક રીતે જ ઉપસ્થિત થાય છે. એ નાટકો પ્રાચીન જણાય તે માટે સર્વતઃ સંસ્કૃત રૂપકોની શૈલીનો સ્વીકાર કરવાનો પ્રયત્ન એ બધામાં છે. એ નાટકોના ગ્રન્થવિવેચનમાં અને ટીકામાં પણ મૂળ કૃતિમાં સંસ્કૃત તત્ત્વો કેટલા પ્રમાણમાં અને કેવી રીતે યોજવામાં આવ્યા છે તે દર્શાવવાનો પ્રયાસ છે. છતાં એ નાટકોના કર્તૃત્વ સંબંધે સ્વ. નરસિંહરાવે જે શંકાઓ ઉપસ્થિત કરી છે તેનું નિરાકરણ હજી નથી થઈ શક્યું. એટલે ગુજરાતી નાટક સાહિત્ય વિશે વિચારણા કરતાં એ નાટકોને બાજુએ રાખી પ્રવૃત્તિ કરવી એ ઇષ્ટ લાગે છે. છતાં આયોજનમાં સંસ્કૃત શૈલીનું અનુસરણ એ નાટકોમાં છે એટલું કહેવું ઉચિત છે.—લેખક]

ગુજરાતી નાટકો વિશે વિચાર કરતાં પ્રથમ તો ‘નાટક’ એ ગુજરાતી ભાષામાં રૂઢ બનેલો શબ્દ લક્ષ્ય ખેંચે છે. સંસ્કૃતમાં દૃશ્ય સાહિત્ય માટે વપરાતો રૂપક^૧ શબ્દ એ અર્થમાં ગુજરાતીમાં પ્રવેશ પામ્યો નથી, પણ તેનું સ્થાન નાટક શબ્દે લીધું છે. વસ્તુતઃ નાટક^૨ તો સંસ્કૃતમાં રૂપકોના જે પ્રકારો ગણાવ્યા છે તેમાંનો એક છે અને તેની મર્યાદા પાંચથી દશ અંકની મુકવામાં આવી છે. પરંતુ ગુજરાતીમાં તો આજે એક અંકની કૃતિ હોય તેને પણ નાટક કહેવામાં આવે છે. આ પ્રમાણે નાટક શબ્દના અર્થદર્શનમાં જે પરિવર્તન ગુજરાતીમાં આવતાં થયું છે તે લક્ષ્યમાં રાખવાની જરૂર છે.

આગળ વિચારણા કરતાં, સંસ્કૃત નાટકની જે રીતે શરૂઆત કરવામાં આવે છે તે રીતનું અસ્તિત્વ ગુજરાતીમાં નથી. પણ તે બાબતમાં વિશેષ વિચારણા કરતા પહેલાં ગુજરાતનું નાટકસાહિત્ય અંગ્રેજ અને અંગ્રેજ દ્વારા ધતિર પાશ્ચાત્ય સાહિત્યના સંપર્કથી શરૂ થયું એ હકીકત લક્ષ્યમાં લેવાની જરૂર છે. અને એ સંપર્કના ફળ રૂપે ગુજરાતને કવિ દલપતરામ તરફથી પહેલું ‘લક્ષ્મી નાટક’ મળ્યું. તે પછી તો સંસ્કૃત સાહિત્યનો અભ્યાસ પણ વૃદ્ધિ પામ્યો અને ઘણાં સંસ્કૃત નાટકોનાં ભાષાન્તરો પણ ગુજરાતીમાં થયાં. છતાં વસ્તુના આયોજનમાં કાંઈક સંસ્કૃત અને કાંઈક પાશ્ચાત્ય એમ બંને શૈલીનું અનુસરણ દૃષ્ટિએ પડે છે. પણ રૂપક અને ઉપરૂપકના ભેદ—પ્રભેદ ગુજરાતીએ જતા કરી નાટકનું સામાન્ય દૃશ્ય સ્વરૂપ સ્વીકાર્યું.

ગુજરાતી રંગભૂમિ ઉપર જે નાટકો બજવાયાં અને બજવાય છે તેમાં સંસ્કૃત તત્ત્વોના અવશેષ તરીકે નાન્દી પછી સૂત્રધારનો પ્રવેશ આજે પણ અસ્તિત્વ ધરાવે છે અને સંસ્કૃત શૈલી અનુસાર જેને પ્રસ્તાવના કહી શકાય તેવી શરૂઆત એ નાટકોમાં આજે પણ દેખાય છે. બેશક એ પ્રસ્તાવનામાં કથોદ્ઘાત, પ્રવૃત્તક, પ્રયોગાતિશય કે

૧ તત્ત્વે નાટ્યં દૃશ્યમાનતયા રૂપમિત્યુચ્યતે । નટે રામાયણારોપેણ કર્તમાન્ત્વાદ્વપકમ્ । - દશરૂપકે । ૨ પદ્માક્રમેતદવરં દશાકું નાટકમ્ પરમ્ । - દશરૂપકે

વીથી એ સંસ્કૃત લેહો પ્રમાણે વિભાગ કરવા જઇએ તો આપણને નિરાશ થવું પડે. અહિં તો પ્રસ્તાવના^૩ દ્વારા જે પ્રબન્ધ લજવી બતાવવાનો હોય તેનો કંઈક પરિચય પ્રેક્ષકવર્ગને આપવો એ જ આશય રહ્યો છે; એટલે રંગભૂમિની બહારનાં નાટકોમાં તો પ્રસ્તાવના અને તેની સાથે સૂત્રધારનો પણ લોપ થયેલો છે. વળી જે સૂત્રધાર ગુજરાતી રંગભૂમિ પર દેખાય છે તે પણ સૂત્રધાર શબ્દનો જ અવશેષ છે. કારણ કે ‘નાના-માષણતત્ત્વજ્ઞઃ, પૌરેષણવિચક્ષણઃ, છન્દોવિધાનતત્ત્વજ્ઞઃ, તત્ત્વદ્વીતાનુગલ્યકલાતાલાવધારણઃ વગેરે જે લક્ષણો સૂત્રધારનાં ગણાવવામાં આવ્યાં છે તે તો આ સૂત્રધારમાં રહ્યાં નથી. કારણ કે સૂત્રધારનું ખરૂં કામ તો અત્યારે નાટકનો જે દિગ્દર્શક કે રજુ કરવા માટે તૈયાર કરનાર હોય છે તે જ કરે છે અને તેનામાં સંસ્કૃત સૂત્રધાર જેટલી કુશળતા આવશ્યક છે એ ચોક્કસ.

પણ સંસ્કૃતમાં આકીર્તનમસ્કિયાવસ્તુનિર્દેશ રૂપ નાન્દી થયા પછી સૂત્રધારનો પ્રવેશ થતો તેને બદલે સૂત્રધાર પોતે જ એકલો અથવા નટી અને બીજા બાળકો આશીર્વાદ કે નમસ્કારરૂપ પ્રાર્થના નાટકના આરંભમાં જ કરે છે. તે પછી સૂત્રધાર પ્રેક્ષકવર્ગને નાટકના વસ્તુનો પરિચય કરાવે છે. પણ તેમાં નાટકકારના પરિચયનો ભાગ આવતો નથી. સંસ્કૃત પ્રસ્તાવનાનો^૪ આ અંશ ગુજરાતી નાટકોએ તજી દીધો છે. નહિતર સંસ્કૃત નિયમ પ્રમાણે તો સ્વગતં તુ સ્વગોત્રાદિસ્વીયકીર્તિપ્રકાશનમ્ એ રીતે પોતાનાં ગોત્ર અને કીર્તિના પ્રકાશનનો સ્પષ્ટ આદેશ છે. પરંતુ કવિ પોતાના વિશે વધારે લખવા પ્રવૃત્ત ન થાય એવો વિનય સ્વાભાવિક રીતે અનેક સ્થળે મળી આવે છે.

પ્રસ્તાવના પૂરી થતાં નાટકનું વસ્તુ પ્રેક્ષકો સમક્ષ રજુ થાય છે. પણ તે રજુઆત કેવી રીતે કરવી તે બાબતના બે માર્ગ શાસ્ત્ર સૂચવે છે. બે વસ્તુ શરૂઆતથી જ સરસ હોય તો તરત અંક શરૂ કરવો. પરંતુ વસ્તુની સીધી રજુઆત તરત ન કરવી હોય તો એક યુક્તિ નાટકકારને માટે રાખવામાં આવી છે અને તે યુક્તિ એટલે વિષ્કમ્બક. ગુજરાતી રંગભૂમિ પર લજવાતાં નાટકોમાં તો વિષ્કમ્બક જેવું કશું જ નથી. પણ પ્રસિદ્ધ થયેલાં બીજાં નાટકોમાં વિષ્કમ્બકનો આશ્રય ઘણી વાર લેવામાં આવ્યો છે એટલે સંસ્કૃત નાટ્યકલાના અવશેષ તરીકે તેનું અનુકરણ કરવાની જરૂર છે.

વિષ્કમ્બકના લક્ષણ પ્રમાણે એ વૃત્ત-બની ગયેલા અને વર્તિબ્યમાણ-બનવાના કથાંશોનો નિર્દેશક છે. એની યોજના એક અથવા બે મધ્યમ પાત્રોથી અથવા મધ્યમ અને અધમ પાત્રોના સંમિશ્રણથી થઈ શકે છે. પણ વિષ્કમ્બકમાં પ્રધાન પાત્રોમાંથી-ઉત્તમ પાત્રોમાંથી તો એક પણ ન આવે એનો સ્પષ્ટ આદેશ છે. હવે થોડાંક ગુજરાતી નાટકો તરફ દૃષ્ટિ કરીએ. કાવ દલપતરામના ‘મિથ્યાભિમાન નાટક’માં નાન્દી, સૂત્રધારની પ્રસ્તાવના અને વિષ્કમ્બક: -ત્રણેનો પહેલા અંકના પૂર્વભાગ તરીકે સમાવેશ કરી તે પછી પ્રવેશની શરૂઆત કરવામાં આવી છે. એ વિષ્કમ્બકના વિભાગમાં મધ્યમ કે અધમ કોઈ પણ પાત્ર જ નથી અને સૂત્રધારે જાતે જ એ વસ્તુ સલા સમક્ષ રજુ

૩ વિશેષ્યૈવ સર્વળો મુખતાં પ્રતિપદ્યતે । પ્રધાનસ્ય પ્રબન્ધસ્ય તદા પ્રસ્તાવના મતા ॥ -લક્ષણમુધાકરે
૪ માતૃગુપ્તાચાર્ય. ૫ પ્રેમાનન્દને નામે છપાયેલાં નાટકોમાં, નર્મદના ફેટલાંક નાટકોમાં અને અત્યારે પણ સંપૂર્ણતઃ સંસ્કૃત શૈલીને અનુસરતાં નાટકોમાં કર્તા વિશે નિર્દેશ હોય છે.

કરવી એવું સૂચન છે. તદુપરાંત નાટકનું સમય વસ્તુ બહુ જ સંક્ષિપ્ત સ્વરૂપમાં એ વિષ્કમ્ભક દ્વારા રજુ કરવામાં આવ્યું છે. આ પ્રમાણે કવિ દલપતરામે માત્ર વિષ્કમ્ભક શબ્દ જાળવીને પોતાને અનુકૂળ અને ઉચિત લાગ્યું તે જ આયોજન કર્યું છે. કવિ નાનાલાલના 'વિશ્વગીતા' માં પણ વિષ્કમ્ભક છે. પણ એ વિષ્કમ્ભક વસ્તુતઃ પ્રસ્તાવનાનું કાર્ય કરવા યોગ્યવામાં આવ્યો છે અને તેમાં આવતા ગન્ધર્વરાજ અને અપ્સરા-સંઘનાં પાત્રોને મધ્યમ ગણીએ તો શુદ્ધ વિષ્કમ્ભક ગણાય એવો લાગે છે. શ્રીયુત કનૈયાલાલ મુન્શીના એક 'પૌરાણિક નાટક 'અવિભક્ત આત્મામાં' પણ વિષ્કમ્ભક છે. પરંતુ એમાં એ નાટકના નાયક વશિષ્ઠને જ રજુ કરવામાં આવ્યો છે. આ પ્રમાણે વિષ્કમ્ભકનો સ્વીકાર કર્યા છતાં તેનાં લક્ષણો જાળવવાનો પ્રયત્ન ગુજરાતીમાં થયો નથી.^{5A}

આટલું કર્યા પછી નાટકના અંકની શરૂઆત થાય છે. અંક દ્વારા સીધી જ વસ્તુની શરૂઆત થાય છે. નાટક માટે શાસ્ત્રમાં પાંચથી દશ અંકની મર્યાદા સૂચવવામાં આવી છે. અંક દ્વારા નાટકના પ્રધાન રસના આલેખરણની અને પોષણની શરૂઆત થાય છે. ગુજરાતીમાં શરૂઆતમાં લખાયેલાં નાટકોમાં પાંચથી દશ અંકની આ મર્યાદા જાળવવામાં આવી છે. કવિ દલપતરામકૃત 'મિથ્યાભિમાન'માં આઠ, નર્મદકૃત 'કૃષ્ણા કુમારી'માં નવ, રણછોડભાઈકૃત 'જયકુમારીવિજય'માં આઠ, દોલતરામકૃત 'અમરસત્ર'માં સાતઃ આ પ્રમાણે અંકોની સંખ્યા મળી આવે છે. પરંતુ એ અંકોમાં ઘણે સ્થળે પ્રવેશોના વિભાગો યોગ્યવામાં આવ્યા છે એટલે અંકોની સુબદ્ધતા સંસ્કૃત નાટકોના અંકો જેવી રહી નથી. વળી રંગભૂમિ ઉપર ભજવાતાં નાટકોમાં તો અનુકૂળતા ખાતર ત્રણ અંકોનો સ્વીકાર શરૂઆતથી જ કરવામાં આવ્યો છે અને આજ સુધી ગુજરાતી રંગભૂમિ ઉપર ત્રિઅંકી નાટકો જ ભજવાય છે.⁷ પછી તો ગુજરાતીમાં એકાંકી નાટકો પણ લખાયાં છે. પણ આ બધાંની સ્વરૂપઘટના મુખ્યતઃ અંત્રીય નાટકોપર અવલંબે છે—એટલે નાટ્યશાસ્ત્ર અનુસાર જે એકાંકી નાટકોની રચનાનો નિર્દેશ છે તેમની સાથે આ નાટકોનો સંબંધ યોગ્યવો અશક્ય છે. છતાં સંસ્કૃતમાં એકાંકી નાટકોની રચનાનો જે નિર્દેશ છે તેનું દર્શન કરવું ઇષ્ટ છે. રૂપકોમાં ભાણુ, પ્રહસન, વ્યાયોગ, વીથી અને અંક (ઉત્પટ્ટિકાઢ્ક) એ પાંચ⁸ એકાંકી છે. નાટ્યશાસ્ત્રમાં સ્વીકારેલા પાંચ⁹ સંધિ મુખ, પ્રતિમુખ, ગર્ભ, અવમર્શ અને નિર્વહણમાંથી એ કે ત્રણ સંધિ ઓછા કરીને નાટકનું સ્વરૂપ ટુંકું કરવાનો પ્રયત્ન આ એકાંકી નાટકોમાં દેખાય છે. પરંતુ વસ્તુના વિસ્તારને

5 A શ્રીયુત બટુભાઈ ઉમરવાડિયાકૃત મત્સ્યગન્ધા અને ગાગેયમા વિષ્કમ્ભક જેવું ટુંકું લખાણ જે જે પ્રસ્તાવના પણ કહી શકાય તેવું છે. કર્તાએ તેનું નામ પ્રાસ્તાવિક રાખ્યું છે.

6 પ્રત્યક્ષનેતૃચરિતા વિન્દુવ્યાપ્તિપ્રસ્કૃતઃ । બદ્ધો નાનાપ્રવાગર્ભર્ષિવિધાનરન્નાશ્રયઃ ॥ - રંગરૂપક.

7 કવિ નાનાલાલના જ્ઞાનજ્યન્ત, ઇન્દુકુમાર વગેરેમાં અને શ્રીયુત મુન્શીના સ્નેહસંભ્રમ, કાકાની શશી વગેરેમાં પણ ત્રણ અંકોની જ યોજના છે.

8 ભાણમા પંડિત કે વિટના પ્રધાન પાત્ર દ્વારા ધર્મચરિત્રનું આલેખન; મુખ્ય રસા વીર તથા શૃંગાર. પ્રહસનમાં વિપ્રાદિ પાત્ર દ્વારા હાસ્યરસનું આલેખન. વ્યાયોગમાં સ્ત્રી જેમાં નિમિત્ત ન હોય એવા યુદ્ધના પ્રસંગનું મુખ્ય આલેખન. વીથીમાં એકથી બે પાત્રો દ્વારા મુખ્યતઃ શૃંગાર રસનું આલેખન. અંકમાં પ્રાકૃત નટને નાયક તરીકે લઈ મુખ્યતઃ કરુણ રસનું આલેખન.

9 પદ્મેન પ્રયોજનેનાન્વિતાના કથાંશાનામવાન્તરૈકપયોજનસંબન્ધઃ સન્ધિઃ ।

જતો કરી સમગ્રતા અને સુખદ્વતા સાધવાનો આશય આ એક અંકની યોજનામાં છે એ ચોક્કસ. દૃષ્ટાન્ત તરીકે વ્યાયોગમાં માત્ર એક દિવસના ચરિત્રની યોજના કરવાનો નિયમ સૂચવવામાં આવ્યો છે. એટલે ગુજરાતી ભાષામાં લખાયેલાં એકાંકી નાટકો સર્વથા આ લક્ષ્યોના ચોક્કસમાં ન બેસે છતાં એમાંનાં કેટલાંક તત્વો રસનિષ્પત્તિ સંબંધનાં આ યોજનાને અનુસરતાં મળી આવે. નાયક-નાયિકાના પ્રકાર અને પાત્રોની સંખ્યા પરત્વેની મર્યાદા આજે યંત્રવત્ જણાય એ સ્વાભાવિક છે એટલે એ નિયમોને વશ વર્તાતાં નાટકો આજે નહિ મળે.

આ ઉપરાંત ઉપરૂપકોના જે અઢાર પ્રકારો નાટ્યશાસ્ત્ર સ્વીકારે છે તેમાં પણ ગોષ્ઠી, રાસક, નાટ્યરાસક, કાવ્ય, પ્રેમણુ, શ્રીગદિત, વિલાસિકા કે લાસિકા, હૃદયીશ અને ભાગિકા એટલા પ્રકારો એકાંકી છે. આ બધામાં પણ પાત્રોની સંખ્યાની મર્યાદા સ્વીકારવી અને વસ્તુના વિસ્તારનો ત્યાગ કરી સુખદ્વતા આણવી એ જ આશય છે. આ પ્રકારોમાંથી એક નાટ્યરાસકનો પ્રયોગ ગુજરાતીમાં થયો છે. ગુજરાતના પ્રસિદ્ધ ભક્તકવિ નરસિંહ મહેતાને નાયક તરીકે લઈને શ્રીયુત કનૈયાલાલ મુન્શીએ 'નરસૈયો ભક્ત હરિનો' એ નામે એક પ્રયોગ રચ્યો છે અને રંગભૂમિ પર પણ રજુ કરેલો. એ કૃતિને કર્તાએ નાટ્યરાસક નામ આપ્યું છે. ગુજરાતના નાટકસાહિત્યને ઉપકારક થાય એવી મુખ્ય પ્રવૃત્તિ જેમણે પોતાના જીવનમાં કરી તે સ્વત્ રણછોડભાઈ ઉદયરામે સંસ્કૃત ગ્રન્થો ઉપરથી તારવાળી કરીને રચેલા નેમના ગ્રન્થ નાટ્યપ્રકાશમાં નાટ્યરાસકનું લક્ષણ આ પ્રમાણે આપ્યું છે: "નમાં નમ્ જ અંક યોજવા. તાલ લયની રચના વહુ આળવી. ધીરોદાત્ત નાયક આળવો. યુગારમહિત દામ્યરમ મુગ્યત્વે આળવો. નાયિકા વામક-સજ્જા આળવી. મુગ્ધ અને નિર્વેદન મોંઘ યોજવા." આ લક્ષણ પ્રમાણે ઉપર નિર્દેશ કરેલા 'નરસૈયો ભક્ત હરિનો'નું દર્શન કરતાં એ પ્રયોગને નાટ્યરાસક કહેવાય કે નહિ એ પ્રશ્ન વિચારવા જેવો છે. પ્રથમ તો એમાં ચાર અંકની યોજના કરવામાં આવી છે એ જ એને નાટ્યરાસકના પ્રકારમાં ગણવામાં બાધાદૃષ્ટ અને છે. એ ચાર અંકોને બદલે ચાર પ્રવેશોની યોજના કરવામાં આવી હોત તો પણ વસ્તુની યોજનામાં એક અંક જેવી સુખદ્વતા દેખાત નહિ. રસની બાબતમાં શૃંગારસહિત હાસ્ય રસને બદલે વ્યાપક શાન્ત રસની યોજના છે. છતાં વસ્તુમાં શિવ-ભીલડીના પ્રસંગ દ્વારા અને શ્રીકૃષ્ણની રાસક્રીડા દ્વારા શૃંગાર રસનો સમાવેશ છે ખરો. પણ કર્તાના મનમાં તો તાલલયની રચનાની વિશેષતા અને નાયકનું ધીરોદાત્તત્વ એ બે પ્રધાન હોવાથી નાટ્યરાસકનું નામ એ કૃતિને અપાયું છે.

સ્વગત, જનાન્તિક, અપવારિત, આકાશભાષિત વગેરે યુક્તિઓનો ઉપયોગ પણ ગુજરાતી પ્રસિદ્ધ નાટકોમાં અને રંગભૂમિ ઉપર ભજવતાં નાટકોમાં પણ કરવામાં આવે છે. કારણ કે આ બધી યુક્તિઓ તો નાટકકારના આયોજનમાં સામાન્ય જરૂરિયાતો જેવી છે. ત્રિપતાકાકરેણ અને પગત્રય દ્વારા જનાન્તિક અને અપવારિતનો જે ભેદ દર્શાવવામાં આવ્યો છે તે ભેદ નિષ્પ્રયોજન લાગતો હોય તેમ તજ દેવાયો છે.

10 આજે આપણે સમસ્ત હિન્દ માટે સામાન્ય લિપિ યોજવા પ્રવૃત્તિ કરીએ છીએ તે વખતે સ્વ. રણછોડભાઈ જેવા કેટલાક વિદ્વાનો પોતાના ગ્રન્થો નાગરી લિપિમાં છપાવતા એ સ્મરણ અસ્થાને નહિ ગણાય.

ખીજ એક યુક્તિ, જેનો સંસ્કૃત નાટકકારો કુશળતાથી પ્રયોગ કરે છે તે પતાકા-સ્થાનક¹¹ છે. આ યુક્તિમાં રચનાની સ્વાભાવિકતા કરતાં રચનાની કુશળતા વધારે પ્રમાણમાં જણાય છે એટલે વર્તમાન નાટકોમાં એનું અસ્તિત્વ જણાતું નથી. સર રમણભાઈના 'રાધનો પર્વત' નાટકમાં એનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. ચાલુ સંવાદમાં કે વાતમાં કુશળતાથી સંવાદ કરનાર પાત્રોને જરા પણ સમજ ન પડે છતાં પ્રેક્ષકવર્ગ સમજી જાય તે રીતે ભાવિનું સૂચન આ યુક્તિ દ્વારા થઈ જાય છે.

પાત્રોની ભાષા પરત્વે પણ સંસ્કૃતમાં સ્પષ્ટ નિર્દેશ છે. ઉત્તમ અને પુણ્યવાન પાત્રોની ભાષા સંસ્કૃત બોધએ, છતાં તેવાં જ સ્ત્રીપાત્રો હોય તો તેમની ભાષા શૌરસેની રાખવી એમ સાહિત્યદર્પણકાર કહે છે. તે પછી અન્ય પાત્રો માટે પણ ભાષા વૈવિધ્યની યોજના છે. અને સંસ્કૃત નાટકોનાં અનુવાદો ગુજરાતીમાં કરતી વેળા સ્વં કૃષ્ણલાલ ધ્રુવે અધમ અથવા મધ્યમ પાત્રા માટે આવો ભાષાભેદ જાળવવા પ્રયત્ન કર્યો છે. પરંતુ વસ્તુતઃ ભાષાભેદ માટે આપણે ત્યાં અવકાશ ન હોવાથી પ્રાન્તના સંસ્કારવાળી કે જાતિના સંસ્કારવાળી બોલીઓનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. પણ એક પ્રાન્તની કે જાતિની બોલી બધાને સમજવી સુગમ ન પડે તે ખાતર આવી બોલીઓના પ્રયોગમાં પણ મર્યાદા છે. પરંતુ વર્તમાન સમયમાં સમાજમાં નીચે રહી ગયેલા થરમાંથી પાત્રોનો પ્રવેશ નાટકસાહિત્યમાં થતો જાય છે તેમ તેમ આવા બોલીના પ્રયોગો વિશેષ નજરે પડે છે. એટલે ભાષા એ પાત્રની સંસ્કારિતાનું પ્રતિબિંબ છે એ સત્ય જેમ સંસ્કૃતમાં દર્શાવેલા ભાષાભેદના મુળમાં છે તેમ અત્યારના નાટકકારોની ચોજનામાં પણ ઘણું સ્થળે એ સત્યને અનુસરવાનો પ્રયત્ન થાય છે. છતાં સંસ્કૃત અને પ્રાકૃતોના જેવો અને જેટલો ભેદ દર્શાવવો એ ગુજરાતી માટે શક્ય નથી.

હવે ગુજરાતી નાટકોમાં જે સંગીતનું તત્ત્વ પ્રવેશ પામ્યું તેને માટે નાટ્યશાસ્ત્રમાં અવકાશ છે કે નહિ તે પ્રશ્ન વિચારવા જેવો છે. રંગભૂમિ પર રજુ થતાં નાટકોમાં તો સંગીત આવવું જ જોઈએ એ નિયમ થઈ ગયો છે. ખીલ્લું પ્રસિદ્ધ થયેલાં નાટકોમાંથી શરૂઆતનાં નાટકોમાં ગીતોની યોજના છે, કોઈ કોઈ નાટકમાં સંસ્કૃત નાટકો જેવા શ્લોકોની યોજના છે અને કેટલાકમાં જરા પણ સંગીત નથી. તેમ જ એકાંકી નાટકમાં તો ભાગ્યે જ સંગીત આવે છે. કેટલાંક સંસ્કૃત નાટકોની પ્રસ્તાવનામાં નટીના સંગીતની યોજના કરવામાં આવેલી દેખાય છે. તે પછી નાટકના વસ્તુમાં સંગીત ક્વચિત્ દૃષ્ટિએ પડે છે. આ વિચારણામાં નાટ્યશાસ્ત્રમાં જે ચાર વૃત્તિઓ સ્વીકારવામાં આવી છે તેના તરફ દૃષ્ટિપાત કરવો ઉચિત છે. વૃત્તિ એટલે નાયક આદિની પ્રવૃત્તિનો સ્વાભાવિક આપાર. રસોત્પાદન એ નાટકનું લક્ષ્ય હોવાથી તેને ઉપકરક થઈ પડે તેવી રીતે આ વૃત્તિઓની યોજના કરવામાં આવી છે. તેમાં કૈશિકી, જે મુખ્યતઃ શૃંગાર રસમાં અને સામાન્યતઃ હાસ્ય અને કરુણમાં પણ યોજવામાં આવે છે, તેમાં ગીત, નૃત્ય, વિલાસ વગેરેનો સમાવેશ છે. એટલે જ્યાં કૈશિકી વૃત્તિને અવકાશ હોય ત્યાં સંગીતનો પ્રવેશ

11 યત્રાર્થે ચિન્તિતેડન્યસિન્ તદિદ્દૌડન્યઃ પ્રયુજ્યતે ।

આગંતુકેન માત્રેન પતાકાસ્થાનકં તુ તત્ ॥-સાહિત્યદર્પણ

શક્ય અને છે. પણ સંગીત જે આનન્દ આપે છે તે નાટકના વસ્તુથી ભિન્ન અને વિશિષ્ટ હોવાથી નાટકના વસ્તુની મુખ્યતામાં એ વિક્ષેપકર અને એ આશયથી સારા એકાંકી નાટકોમાં તો સંગીત નથી જ મૂકવામાં આવતું.¹²

સંસ્કૃત નાટકોને અન્તે આવતું ભરતવાક્ય¹³ શરૂઆતના નાટકકારોએ ગુજરાતીમાં જાળવ્યું છે. નાટકને અન્તે આશીર્વાદરૂપે કે પ્રાર્થનારૂપે આ વાક્ય યોજવામાં આવે છે. વર્તમાન નાટકોમાં આ અશ પણ અદૃશ્ય થયો છે. શરૂઆતમાં રચાયેલાં નાટકો—આલકૃષ્ણવિજય નાટક, જયકુમારીવિજય નાટક, અમરસત્ર, પ્રતાપનાટક, રાધનો પર્વત વગેરેમાં ભરતવાક્ય છે. રંગભૂમિ પર ભજવાતાં નાટકોમાં પણ શરૂઆતમાં નાટકને અન્તે સર્વે પાત્રો મળીને આશીર્વાદાત્મક કે પ્રાર્થનાત્મક ગીત ગાતાં. પણ આ વ્યવહાર અત્યારે તો અદૃશ્ય થયો છે.

રંગભૂમિ ઉપર કઈ બાબતો પ્રત્યક્ષ ન દેખાડવી તેને માટે પણ શાસ્ત્રનો આદેશ છે. દૂરનો પંથ, વધ, યુદ્ધ, રાજ્યદેશાદિવિપ્લવ, ભોજન, સ્નાન, વસ્ત્રપરિધાન વગેરે રંગભૂમિ પર પ્રત્યક્ષ રજુ ન કરવાં જોઈએ. પણ આ બાબતમાં તો દેશકાળ અનુસાર ફેરફાર થાય એ સ્વાભાવિક છે. એટલે સામાન્ય નીતિની દૃષ્ટિએ જે વસ્તુ રંગભૂમિ ઉપર ન દર્શાવવી જોઈએ એમ કર્તાને લાગે તે વસ્તુ એ સૂચન દ્વારા દર્શાવી દે છે. પણ ગુજરાતી નાટકકાર આ બાબતમાં સંસ્કૃત નિયમોને વશ થઈને વર્તતો નથી.

નાટ્યશાસ્ત્રે જેને નાયકના શૃંગારસહાયોમાંનો એક ગણ્યો છે એવો વિદૂષક ગુજરાતી નાટકોમાં—ખાસ કરીને શરૂઆતના ગુજરાતી નાટકોમાં અવતાર પામ્યો છે. મુખ્યતઃ વિદૂષક હાસ્યકૃત છે. અને એની પ્રવૃત્તિ આવી હોવાથી એના આકાર ને વેશ વિકૃત હોય છે, ભોજનની વાતોમાં એ કુશળ હોય છે અને તેને કર્મવપુ એટલે જેવું કર્મ તેવું શરીર ધારણ કરનાર પણ કહેવામાં આવે છે. કવિ દલપતરામના ‘મિથ્યા-ભિમાન’માં એ રંગભૂમિ બનીને આવે છે અને તે પછી તો ‘જયકુમારીવિજય નાટક,’ ‘પ્રતાપનાટક,’ ‘રાધનો પર્વત’ વગેરેમાં પણ એનું દર્શન થાય છે. રંગભૂમિ પર અત્યારે ભજવાતાં નાટકોમાં તો હાસ્યરસના વસ્તુની ખાસ યોજના મુખ્ય વસ્તુ સાથે સંગત રાખીને અથવા અસંગત રાખીને કરવામાં આવે છે એટલે એકને બદલે અનેક વિદૂષકોની જરૂર પડે છે. અને નાટક જોનાર વર્ગને રુચે છે ત્યાં સુધી અનેક તૈયાર કરવામાં ભજવનાર વર્ગને મુશ્કેલી પડતી નથી. આકી બીજા નાટકકારોને તો જ્યાં સુધી જીવનના પ્રસંગોનું દર્શન કરાવતાં પાત્રોમાંથી જ હાસ્ય રસનું તત્ત્વ મળી રહે ત્યાં સુધી શા માટે એકાદ ખાસ પાત્રનો આશ્રય લે ?

આ પ્રમાણે ગુજરાતી નાટક સાહિત્ય ઉપર દૃષ્ટિપાત કરતાં સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રના જે મુખ્ય અવશેષો આપણી નજરે પડે છે તેમાંના ઘણાખરાનો ઉલ્લેખ છે. અંગ્રેજી ભાષાના અને તે દ્વારા બીજી યુરોપની ભાષાના નાટકસાહિત્યના પરિચયથી ગુજરાતનું

12 આ બાબતમાં ભરત કહે છે કે—મધ્યમ અને ઉત્તમ પાત્રોએ કરવાનું જે નાટ્યગાન હું વર્ણવું છું તે નાટકની સિદ્ધિ આપનારું છે. આમ કહીને નાટ્યગાનના ભંગ, ઉપભંગ અને લયના ભેદ વર્ણવે છે.

13 સંસ્કૃત નાટકોનો અન્ત કરણ ન જ હોય એટલે ભરતવાક્ય ત્યાં સ્થાને હતું. ગુજરાતીમાં કરણાન્ત નાટકો શરૂ થયાં તેથી પણ આ અંશ હ્રાપ્ત થયો હોય એ સ્વાભાવિક છે.

નાટકસાહિત્ય ઉદ્ભવ પામ્યું. પણ ગુજરાતમાં અવસ્થિત શિક્ષણની સ્થાપના થઈ તેથી સંસ્કૃત સાહિત્યના અભ્યાસને પણ ઘણું ઉત્તેજન મળ્યું એટલે જોમ ગુજરાતના બીજા સાહિત્યમાં સંસ્કૃત સાહિત્યનું સિચન દૃષ્ટિએ પડે છે તેમ નાટકમાં પણ બન્યું છે. છતાં એ અસર કેટલે અંશે આજ અને કેટલે અંશે આંતરિક છે તે અંશતઃ દર્શાવવાનો પ્રયત્ન અહિં છે. આજે તો ગુજરાતનું નાટક સાહિત્ય બહુધા પરદેશી પ્રતીકોને જ અનુસરે છે. ઇંગ્લેંડના અને યુરોપના અન્ય દેશોના પ્રતિષ્ઠિત નાટકકારોનાં નાટકોનો અભ્યાસ નવા નાટકકારોને ઉત્તેજક અને પ્રોત્સાહક બને છે. છતાં ગુજરાતને આ ક્ષેત્રમાં હજી ઘણી પ્રગતિ કરવાની છે. સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રનાં મૂલ્યગત તત્ત્વોને પ્રવર્તમાન રચનાનિયમો બેડે કેટલો સંબંધ છે એ પ્રશ્ન જ નીરાળો છે. વર્તમાન સ્થિતિ શી છે અને સંસ્કૃત રૂપકાદિનાં કેટલાં તત્ત્વો ગુજરાતી નાટકોમાં અવશિષ્ટ છે એને અનુલક્ષીને જ અત્રે તો વિચારણા કરી છે.

ચ્યવનાખ્યાયિકા

*

લેખક - શ્રીયુત પ્રો. ગૌરીપ્રસાદ ત્રુ. જ્ઞાલા.

ઋગ્વેદનાં સૂક્તોમાં સોમ-સવન, સોમપાન માટે દેવોને આહ્વાન, દેવોની પ્રાર્થના, ગુણગાન અને અનુગ્રહ માટે વિનંતિ-ઇત્યાદિ વસ્તુઓ પ્રધાનપણે વિષયભૂત છે. તે ઉપરાન્ત જુદા જુદા પ્રસંગોના ઉલ્લેખો કે આખ્યાયિકાઓ પણ છે. આવી આખ્યાયિકાઓ ન્હાની સંખ્યામાં નથી; તેમ એ બધી સર્વાંગ-સમ્પૂર્ણ વર્ણન પણ પામી નથી. કેટલીકનું સાંગોપાંગ વર્ણન મળે છે, જ્યારે મોટી સંખ્યા તો ઓછેવત્તે અંશે સ્થૂળ નિર્દેશ જ પામી છે. આ આખ્યાયિકાઓને ઋષિઓ, દેવોને આહ્વાન આપતી વેળા તેઓનાં પરાક્રમોનો કે સહાય આખ્યાના પ્રસંગોનો ઉલ્લેખ કરી રીઝવવાના આશયથી, સ્પર્શતા હોય એમ જણાય છે. સૌથી વધારે આખ્યાયિકાઓ ઇન્દ્ર અને અશ્વિની-કુમારો સંબંધે મળે છે. ઇન્દ્ર વીર્ય-પ્રધાન હોવાથી તેની આખ્યાયિકાઓમાં શત્રુઓનો નાશ પ્રધાન સૂર બને છે; અશ્વિનીકુમારોની આખ્યાયિકાઓમાં એ દેવ-યુગ્મે કયા કયા પુરુષને કેવી રીતે સહાય આપીને ઉગારી લીધા એ વિષય હોય છે. ચ્યવન અશ્વિનીકુમારોની સહાય પામેલા પુરુષોમાંના એક છે.

અને ચ્યવનની આખ્યાયિકાથી કોણ અભાગ્યું હશે ? જ્યારે જગતની અન્ય સંસ્કૃતિઓ કાળને વશ થઈ સ્મૃતિશેષ થઈ ગઈ છે ત્યારે ભારતીય સંસ્કૃતિ, જે તત્ત્વોને લીધે કાળને આજસુધી હંફાવી રહી છે, એ તત્ત્વોને બળવી રહેલી નળ-દમયન્તી કે દુષ્યન્ત-શકુન્તલાની આખ્યાયિકાઓની પેઠે ચ્યવન-સુકન્યાની આખ્યાયિકા પણ નિત્ય-નવીન રહી છે. છેક ઋગ્વેદ-કાળથી માંડી બ્રાહ્મણ-કાળમાં અને તે પછી મહાભારત-કાળમાં આ આખ્યાયિકા ઉતરી આવી છે; અને અર્વાચીન સમયમાં પણ એનું આકર્ષણ ઓછું થયું જણાતું નથી. શ્રી મુનશીએ ‘પુરંદર પરાજય’ નાટક આ આખ્યાયિકા ઉપર જ રચ્યું છે.

આમ આ આખ્યાયિકા આપણા સાહિત્યમાં સર્જન-જૂની છે. તેનો ઇતિહાસ તપાસવો, તેમાં ઉત્તરોત્તર શા શા ફેરફાર થયા, કઈ દિશામાં થયા, શા ઉદ્દેશથી થયા ઇત્યાદિનું અન્વેષણ કરવું એ અતિરસિક તેમ જ બોધદાયક પ્રવૃત્તિ છે.

ત્યારે, ઉપર કહ્યું તે પ્રમાણે ચ્યવનાખ્યાયિકાનો ઉલ્લેખ છેક ઋગ્વેદમાં મળે છે. પણ એનું જે સ્વરૂપ ઋગ્વેદમાં દેખાય છે તે તો કેવળ બીજ-રૂપ છે. ઋગ્વેદમાં ફૂલે છે સ્થાનોમાં આ આખ્યાયિકાનો ઉલ્લેખ થયો હોવા છતાં એક પણ સ્થાને એનું ચતુરસ્ર વીગતવાળું નિરૂપણ થયું નથી. યુવં ચ્યવાનં જરસોઽમુક્તમ્ । (ઋ. ૭. ૭૧. ૫)માં અશ્વિનીકુમારોએ ચ્યવનને બુઢાપામાંથી મુક્ત કર્યા એટલું કહ્યું છે. આથી આગળ વધીને, પુનઃચ્યવાનં ચક્રયુર્યુવાનમ્ । (ઋ. ૧. ૧૧૮. ૬)માં ચ્યવનને અશ્વિનીકુમારોએ ફરીથી યુવાન બનાવ્યા એમ સ્પષ્ટ કહ્યું છે. યુવં ચ્યવાનમશ્વિના જરન્તં પુનર્યુવાનં ચક્રયુઃ શર્ચીભિઃ । (ઋ. ૧. ૧૧૭. ૧૩)માં અશ્વિનીકુમારોએ જીર્ણ થયેલા ચ્યવાનને પોતાની શક્તિથી પુનઃ યૌવન આપ્યું, અને ઋ. ૧૦. ૩૬. ૪ માં ચ્યવાનને યુવાન

ખનાવી હરતા ફરતા કર્યા, એ ઉલ્લેખો છે. ઋક ૭. ૬૮. ૬ માં અશ્વિનીકુમારોએ ઘરડા થએલા ચ્યવનાને પોતાની સહાયથી સુંદર રૂપવાળા ખનાવ્યા એમ કહ્યું છે. દેખીતી રીતે જ, આ બધા તૂટક તૂટક ઉલ્લેખો છે. કંઈક અંશે વધારે વિસ્તારવાળા ઉલ્લેખો એ સ્થળે મળે છે:

પ્ર ચ્યવાનાજુજુરુષો વવિમત્કં ન મુંજયઃ ।

યુવા વર્દો કૃષ્ઃ પુનરા કાર્મસૃષ્ટવે વૃષ્ઃ ॥ ઋક ૫. ૭૪. ૫.

જીર્ણ થઈ ગયેલા ચ્યવનાના ઘડપણને અશ્વિનીકુમારોએ કવચની પેઠે દૂર કર્યું અને તેને યુવાન બનાવ્યો ત્યારે ફરીથી તેણે સ્ત્રીના કામને ઉદ્દીપ્ત કર્યો. ચ્યવનાના પ્રસંગમાં સ્ત્રીનો ઉલ્લેખ અહિં મળે છે—ઉપર અવતારેલી ઋચાઓમાં એ વિષે કંઈ નિર્દેશ નથી. આના કરતાં પણ વધારે વીગતવાળો ઉલ્લેખ નીચેની ઋચામાં મળે છે:

જુજુરુષો નાસત્યોત વૃષિં પ્રામુંજતં દ્વાપિમિવ ચ્યવાનાત્ ।

પ્રાર્તિરતં જહિતત્યાયુર્દસ્ટાદિત્પર્તિમક્રુણતં કુનીનામ્ ॥ ૧. ૧૧૬. ૧૦.

ઘરડા થયેલા ચ્યવનાની જરારને અશ્વિનીકુમારોએ કવચની પેઠે ખેંચી કાઢી; ત્યજી દેવાયેલા એ ચ્યવનાના આયુષ્યને વધાર્યું અને તેને કન્યાઓનો પતિ બનાવ્યો—આ ઋચામાં ચ્યવનાની આખ્યાયિકાનો સાર આવી રહ્યો છે.

આ ઉલ્લેખો ઉપરથી એટલું તારવી શકાય કે ચ્યવનાને અશ્વિનીકુમારોએ પુનઃ યૌવન આપ્યું હતું; ચ્યવનાને ત્યજી દેવામાં આવ્યા હતા એમ એક ઋચા કહે છે. ચ્યવના યૌવન પામીને કન્યાઓના (બહુવચન) પતિ પણ થયા હતા. અને છેવટે, બધે સ્થળે ચ્યવના જ—ચ્યવન નહિ—કહેવાયા છે. પાછળના સમયમાં આ વાર્તાનું જે સ્વરૂપ મળે છે તેના બીજા શિવાય અહિં કંઈ વધારે નથી એ સ્પષ્ટ છે.

એ બીજામાંથી સમય જતાં કેવડું વિશાળ અને અંગોપાંગથી સમૃદ્ધ વૃક્ષ ઊગી નીકળ્યું! આદ્યજુકાળમાં જ—જૈમિનીય અને શતપથમાં—આ આખ્યાયિકા બહુ વીગતોથી ભરપૂર, લંબાણવાળી મળી આવે છે. એના વિકાસનું યથાસ્થિત દર્શન કરવા માટે પહેલાં જૈમિનીય આદ્યજુમાં જે રીતે એ વર્ણવાઈ છે તે બેઠએ:

‘ચ્યવન વાસ્તુપાર્થ્ય આદ્યજુ બણુતા હતા. તેમણે પોતાના પુત્રોને કહ્યું, “હું વાસ્તુ-પાર્થ્ય આદ્યજુ બણું છું. ત્હમે મ્હને વાસ્તુમાં છોડીને ચાલ્યા જાઓ.” પુત્રો બોલ્યા, “એમ ન થાય. એમ કરીએ તો પિતાને મૂઝીને અમે નાશી ગયા એમ સૌ કહેશે.” ચ્યવને કહ્યું “હું કહું છું તેમ કરો; તેમાં ત્હમને લાભ છે, અને મ્હને પણ લાભ થશે—હું ફરીથી યૌવન મેળવીશ. માટે મ્હને છોડીને ચાલ્યા જાઓ.” પછી ચ્યવનને સરસ્વતીને કાંઠે મૂઝીને તેઓ જતા રહ્યા. વાસ્તુમાં બેઠાં બેઠાં ચ્યવને સાક્ષિભાષ વિચાર કર્યો; મ્હને ફરીથી યૌવન મળે, યુવતી પત્ની મળે અને હું સહસ્રન્દક્ષિણ માગ કરવા સમર્થ થાઉં.’

એ અરસામાં શર્યાત માનવ પોતાના સંઘ સાથે ત્યાં આવી ચઢ્યો. ન્હાના ગોવાળી-આઓએ એ જીર્ણ થઈ ગયેલા ચ્યવનને જોયા અને તેને કાદવ અને રાખવાળું છાણ

1 આ મૂળનું શબ્દશઃ ભાષાન્તર નથી. ઇંગ્લિશમાં Whitney એ ભાષાન્તર કર્યું છે: તે માટે જુઓ. K. S. Macdonald ‘The Brāhmanas of the Vedas’ માંનું અવતરણ.

ચોપડી દૂષિત કર્યાં. આથી ક્રોધ પામીને ચ્યવને શર્યાતના સંઘમાં કંકાસ ઉત્પન્ન કર્યો—મા દીકરાને ન બાણે, દીકરો માને ન બાણે. શર્યાત મુંઝાયો અને સૌને પૂછવા લાગ્યો. ગોવાળોએ કહ્યું, “અહિં એક જીર્ણ થઈ ગયેલો પુરુષ છે, તેને અમે કાદવ અને છાંણ ચોપડ્યાં છે.” શર્યાત બોલી ઉઠ્યો કે એ તો વાસ્તુપાર્થ્ય બ્રાહ્મણને બાણનારા ચ્યવન છે—તેને ત્યાં રાખીને તેના પુત્રો આલ્યા ગયા છે.”

પછી શર્યાત ચ્યવન પાસે ગયો અને સૌ ઉપર દયા કરવા વિનંતિ કરી. શર્યાતની અતિમુન્દર પુત્રી સુકન્યાને બેઠને ચ્યવને કહ્યું, “આ સુકન્યા મ્હને આપી દે.” શર્યાતે બીજી કંઈ માગણી કરવા કહ્યું ત્યારે ચ્યવન બોલી ઉઠ્યા: “નહિ; હું વાસ્તુપાર્થ્ય બ્રાહ્મણ બાણું છું. ત્હારી પુત્રીને અહિં મ્હારી પાસે છોડીને તું આજ સાંજે જ તારા સંઘ સાથે અહિંથી આલ્યો બા.” શર્યાતે થોડી મુદત માગી; સૌએ એકઠા મળી મન્ત્રણા કરી કે સુકન્યાને આપી દીધા વિના છુટકો નથી. તેઓએ સુકન્યાને સમજાવી કે ચ્યવન તો જીર્ણ થઈ ગયેલ છે તેથી દોડી શકે તેમ નથી; માટે અમે વાહનો બેડીએ કે તરત તું પાછળ નાશી આવજો. સુકન્યા ચ્યવન પાસે ગઈ અને નાશી જવાને તૈયાર થઈ કે તરત ચ્યવને ઉદ્ગાર કાઢ્યા, “હે સર્પ, હું જીવું છું છતાં મ્હને છોડી જતી આ સ્ત્રીને રોકજો.”—અને એક કાળો સર્પ માર્ગ રોકીને ઉભો: સુકન્યા એસી રહી.

થોડા સમયમાં, રોગોના ઉપચાર કરતા કરતા અશ્વિનીકુમારો—જેને સોમ-યાગમાં અધિકાર નથી—ત્યાં આવી ચઢ્યા. સુકન્યાને બેઠું મુગ્ધ થઈ તે બોલ્યા, “આ ચ્યવન તો ઘસાઈ ગયેલો, વૃદ્ધ, અશક્ત માણસ છે; અમારી સાથે ચાલ—અમને પતિ તરીકે સ્વીકાર.” સુકન્યાએ ઉત્તર આપ્યો, “જે પુરુષ સાથે મ્હારા પિતાએ મ્હને પરણાવી છે તેની જ હું પત્ની રહીશ.” ચ્યવને આ વાત બાણી અને સુકન્યાને કહ્યું, “જો એ અશ્વિનીકુમારો હતા. એ પાછા કાલે આવશે અને તને વીનવશે. તું તેને કહેજો કે ત્હમને સોમપાનનો અધિકાર નથી તેથી ત્હમે અપૂર્ણ છો—મ્હારો પતિ સંપૂર્ણ છે. એ પૂછે તો કહેજો કે મ્હારો પતિ ત્હમને સોમપાનના અધિકારી બનાવી શકે. આમ કરવાથી હું મ્હારું ચૌવન પાછું મેળવી શકીશ.”

વળતે દિવસે અશ્વિનીકુમારો આવ્યા અને “અમને સોમપાનના અધિકારી બનાવો” એમ ચ્યવનને વિનંતિ કરી. ચ્યવને કહ્યું, “મ્હને ફરીથી યુવાન બનાવો તો એ અધિકાર અપાવું.” એથી અશ્વિનીકુમારો ચ્યવનને સરસ્વતીને કાંઠે લઈ આલ્યા. ચ્યવને સુકન્યાને કહ્યું, “આ પાણીમાંથી અમે ત્રણ એક સરખા રૂપવાળા બહાર નીકળ્યું: માટે આ એકાણુ રાખીને મ્હને પારખી લેજો.” પછી એ ત્રણે નદીમાં પડ્યા અને એકસરખા રૂપવાળા થઈ બહાર આવ્યા. સુકન્યાએ ચ્યવનને ઓળખી કાઢ્યા.

ત્યારે અશ્વિનીકુમારોએ ચ્યવનને કહ્યું, “અમે ત્હમને ચૌવન આપ્યું, હવે અમને સોમપાનનો અધિકાર અપાવો.” ચ્યવન બોલ્યા: “દેવો કુરુક્ષેત્રમાં યજ્ઞ કરે છે, પણ યજ્ઞનું માથું કપાઈ ગયેલું હોવાથી તેઓને ધાર્યું ફળ મળતું નથી. ત્હમે દધ્યઞ્ય જે વિદ્યા બાણે છે તે તેની પાસેથી શીખીને તેનો ઉપયોગ કરો.”

અશ્વિનીકુમારો દધ્યઞ્ય પાસે ગયા અને “યજ્ઞનું શીર્ષ શું છે તે શીખવ” એમ કહ્યું. દધ્યઞ્ય બોલ્યા, “ઇન્દ્ર પણ આ રહસ્ય બાણે છે. તેણે મ્હને ધમકી આપી છે કે

એ કોઈ ખીજને આ રહસ્ય તું કહીશ તો ત્હારું માથું કાપી નાખીશ.” અશ્વિનીકુમારોએ કહ્યું, “અમે ત્હારું માથું ઉતારી લઇને, અશ્વનું માથું ચોટાડી દેશું. એ મ્હાંથી તું અમને એ વિદ્યા કહેજે. ઇન્દ્ર આવીને ત્હારું—એ ઘોડાનું—માથું કાપી નાખશે એટલે અમે ત્હારું પોતાનું જ માથું પાછું સાંધી દઇશું !” દધ્યગ્યે હા પાડી—અને અશ્વિની-કુમારોને એ રહસ્ય કહ્યું.^૨ ઇન્દ્ર ક્રોધમાં દોડતો આવ્યો અને દધ્યગ્યનું ઘોડાનું માથું કાપી નાંખ્યું. એટલે અશ્વિનીકુમારોએ દધ્યગ્યનું પોતાનું માથું ચોટાડી દીધું.

પછી અશ્વિનીકુમારો દેવોના યજ્ઞમાં આવ્યા અને જોડ્યા, “ત્હમે માથાં વિનાનો યજ્ઞ કરો છો. અમે એ વિદ્યા જાણીએ છીએ. અમને જો યજ્ઞમાં ભાગ આપો તો યજ્ઞનું માથું સાંધી દઇએ” દેવોએ એ કબૂલ કર્યું અને કહ્યું, “ત્હમે એ વિદ્યા જાણો છો તેથી અધ્વર્યુ થવા લાયક છો.” અશ્વિનીકુમારોએ યજ્ઞનું માથું સાંધી દીધું અને તેઓને આશ્વિન-ગ્રહ મળ્યો.

ચ્યવન શર્યાત પાસે ગયા અને સહસ્ર-દક્ષિણ યાગ કરાવ્યો. આમ આ સામ જાણુવાથી ચ્યવન યુવાન થયા, યુવતી પત્ની મળી અને યાગ પણ કર્યો.

ક્યાં ઋગ્વેદમાંની આ કથાની ખીજરૂપ દશા અને ક્યાં આ કૂલ્યાકૂલ્યા વિશાળ-કાય વૃક્ષની દશા ! ઋગ્વેદમાં એક જ સ્થળે (૧.૧૧૬.૧૦) એક જ શબ્દદ્વારા (જહિત) ચ્યવનને ત્યજ દેવામાં આવ્યા હતા એમ ઉલ્લેખ છે. તેનો કેટલો પરિણકાર અહિં થયો છે ! ઋગ્વેદમાં શર્યાત માનવનો આ પ્રસંગને અનુલક્ષીને કંઈ ઉલ્લેખ નથી. સુકન્યા ચ્યવનને મળી એ મુખ્ય વસ્તુનો પણ ઋગ્વેદમાં ઉલ્લેખ નથી; કેવળ, એક સ્થાને ‘કન્યાઓનો (!) પતિ બનાવ્યો’ એમ નિર્દેશ મળે છે, અને ખીજે સ્થળે ‘વધૂ’ના કામને ચ્યવને ઉદ્દીપ્ત કર્યો એમ કહેવાયું છે. આ શિવાય ખીજ બધી વીગતો સ્વતન્ત્રપણે જ આ આખ્યાયિકામાં ગૂંથી લેવાઈ હોય એમ લાગે છે. ચ્યવન અને સુકન્યાનાં પાત્રોની થોડી પણ સ્પષ્ટ રૂપરેખા, સુકન્યાની પતિ-ભક્તિ, અશ્વિનોની ત્રિકૃતિસા-શક્તિ વગેરે વગેરે આ કથાને આકર્ષક બનાવતાં અંગો છે. પણ સૌથી મહત્ત્વની ધ્યાન રાખવા લાયક બાબત એ છે કે આ આખ્યાયિકામાં ‘વાસ્તુપાર્થ્ય બ્રાહ્મણુ’-વિદ્યાનું અને સાથે સાથે પ્રવર્ગ્ય-વિદ્યાનું માહાત્મ્ય દર્શાવાયું છે.—ખરીરીતે, આ ઉદ્દેશથી જ આ આખ્યાયિકા વર્ણવાઈ છે. આમાં આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. કારણ કે બ્રાહ્મણુ-ગ્રંથોમાં કર્મકાંડને અનુલક્ષીને અર્થવાદ રૂપે જ આવી આખ્યાયિકાઓ સામાન્યરીતે આપવામાં આવે છે.

હવે આની સાથે શતપથ બ્રાહ્મણુ (૪.૧.૫)માં આ આખ્યાયિકાની જે વીગતો છે તે સરખાવી જોઈએ. શતપથમાં જૈમિનીયની પેઠે ચ્યવનના ત્યાગનું સવિસ્તર વર્ણન નથી. શતપથમાં તો એટલું જ છે કે “જ્યારે ભૃગુઓ અને અંગિરાઓ સ્વર્ગમાં ગયા ત્યારે ચ્યવન (ભાર્ગવ કે આંગિરસ) વૃદ્ધાવસ્થામાં આવેલા પાછળ રહી ગયા.”

૨ આયર્વણ દધ્યગ્યની પ્રવર્ગ્યવિદ્યા કે મધુવિદ્યાનો પ્રસંગ અહિં આમ સવિસ્તર સાંકળી લેવામાં આવ્યો છે. આ પ્રસંગના ઋગ્વેદમાં ઉલ્લેખ માટે જુઓ, ઋ. ૧.૧૧૬.૧૨.; ૧.૧૧૭.૨૨; ૧.૧૧૬.૬; ખરહવેતા ૩,૧૮-૨૪માં આ જ પ્રસંગ વર્ણવાયો છે.

આમ મૂળ ઋગ્વેદના ઉલ્લેખને અહિં પણ સાચવી રાખવામાં આવ્યો છે. શર્યાતન કુમારોએ જીર્ણ થયેલા ચ્યવનને ‘નકામાં’ (અનર્થ્યમ્) માનીને પથરાઓ ફેંકીને માર્યા-પરિણામે શર્યાત રથ બેડીને પોતાની પુત્રી સુકન્યાને લઇને ચ્યવન પાસે ગયો અને બોલ્યો ‘હ્યં તે સુકન્યા । તયા તે અપહ્નવે । સં જાનીતાં મે ગ્રામઃ ।’ અહિં શર્યાત પોતે જ સુકન્યાને ચ્યવનને આપે છે, જ્યારે જૈમિનીયમાં ચ્યવન સુકન્યાની માગણી કરે છે. ચ્યવન સુકન્યાનો સ્વીકાર કરે છે. જૈમિનીયમાં શાર્યાતો જે છલનું આચરણ કરે છે તેનો અહિં સર્વથા અભાવ છે; કારણ પણ સ્પષ્ટ છે: ત્યાં પોતાની મરજી વિરુદ્ધ સુકન્યાને આપી દેવાની હતી, અહિં શર્યાત પોતે જ ચ્યવનને સુકન્યા અર્પી દે છે. આ મુદ્દા ઉપરથી શતપથ કરતાં જૈમિનીયની આખ્યાયિકા વધારે પ્રાચીન હોવાનું અનુમાન કરી શકાય. અશ્વિનીકુમારોપાસે સુકન્યા ચ્યવનના યૌવન માટે માગણી કરે છે, ત્યારે એ દેવો ચ્યવનને પાસેના એક ધરામાં (હવ) લઈ જવાનું તેને કહે છે, અને તેમાં ન્હાવાથી તેની ઇચ્છાપ્રમાણે વય પામશે એમ બતાવે છે. આ મુદ્દા પરત્વે પણ ધ્યાનમાં રાખવા લાયક બાબત એ છે કે અહિં હવનો ઉલ્લેખ ‘Deus ex machina’ જેવો જણાય છે, જ્યારે જૈમિનીયમાં ચ્યવનને સરસ્વતીને કાંઠે તેના પુત્રો છોડી ગયા હતા અને અશ્વિનીકુમારોએ સરસ્વતીમાં જ તેને સ્નાન કરાવ્યું એમ નિર્દેશ છે. વળી, ક્યાં શતપથની સાદી સીધી ચિકિત્સા અને ક્યાં જૈમિનીયમાં અશ્વિનીકુમારોની લાલસાથી ત્રણેયનાં એક સરખાં રૂપોને લીધે થતી વિમાસણ, અને તેને ખેંચી વળવા માટે ચ્યવનની ‘યુક્તિ’ અને દીર્ઘદૃષ્ટિનો ઉલ્લેખ ! અન્તે, ચ્યવનની સૂચનાથી અશ્વિનીકુમારો દેવોના યજ્ઞમાં જાય છે અને યજ્ઞનું માથું સાંધીને યજ્ઞ-ભાગ મેળવે છે.^૪ અહિં દધ્યગ્ન્ય આથર્વણની કથાનો ઉલ્લેખ નથી કરાયો. અહિં પણ આ આખ્યાયિકા અર્થવાદરૂપે સ્થાન પામી છે.

હવે, મહાભારતમાં આ આખ્યાયિકાનું સ્વરૂપ જોઈએ. મહાભારતનો કાળ એટલે કોઈ પણ બાબતને મહત્ અને ભારવત બનાવી દેવાની પ્રવૃત્તિનો કાળ.^૫ જ્યાં અવકાશ હોય ત્યાં લહીઆ કે કથાકાર પંડિતો મૂળ વસ્તુને બહલાવે, નવું ઉમેરે, પુનરુક્તિઓ કરે, અને પોતાની કલ્પનાશક્તિની મર્યાદામાં રહીને વસ્તુનું પુનઃસંસ્કરણ કરે—આ તો મહાભારતનો દરેક વિવેચનશીલ અભ્યાસી જાણે છે. ખીજું, બ્રાહ્મણ-કાળ અને મહાભારતકાળ—એ વચ્ચેના મોટા ગાળામાં ધાર્મિક, સામાજિક, નૈતિક ઇત્યાદિ બધી દૃષ્ટિએ સ્થિતિ-પરિવર્તન થયું હશે તે પણ આ પુનઃસંસ્કરણમાં પ્રતિબિમ્બિત થાય એ દેખીતું છે. તપની મહત્તા, દેવો અને ઋષિઓ પ્રત્યે ગૌરવભરી માનની લાગણી, ઋષિઓની તપને લીધે દેવોને પણ તાબે કરી શકવાની શક્તિ, સ્ત્રીની પતિ-ભક્તિની દૃઢતા, વગેરે માન્યતાઓ આ ગાળામાં કૃતમૂલ થઈ હતી: આ સંસ્કાર પામેલા કાળમાં જે સંસ્કરણ થાય તેમાં આ સંસ્કારોની છાપ પડે એ સ્વાભાવિક છે.

૪ આ જ મુદ્દાના ઉલ્લેખ માટે જુઓ તેત્તિરીય સંહિતા, ૬.૪.૯. અને એતરેય બ્રાહ્મણ, ૧.૧૮.

૫ જુઓ આદિપર્વમાં ‘મહાભારત’ શબ્દનું આપેલું નિર્વચન: મહત્વાદ્ ભારવત્વાચ્ચ મહાભારતમુચ્યતે ।

મહાભારતમાં ‘ચ્યવન’ નામ કેમ પડ્યું એ પણ સમજાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે.^૬ શતપથમાં ચ્યવનનો લાર્ગવ તરીકે જે ઉલ્લેખ છે તેનો મહાભારતમાં વિસ્તારથી ઉલ્લેખ કરાયો છે.^૭ ચ્યવન-સુકન્યાની આખ્યાયિકા વનપર્વમાં મળે છે; તે જોઈએ:

મહર્ષિ ભૃગુને ચ્યવનનામે પુત્ર હતો. તેણે તપ કર્યું; એક સ્થાને સ્થિર રહેવાથી તેની આસપાસ રાફડાઓ બાજી ગયા અને છીડીઓ ફરવા લાગી. એ સમયે શર્યાતિ પોતાના સૈન્યસાથે ત્યાં આવી ચઢ્યો. તેની રૂપવતી પુત્રી સુકન્યાને શણગારેલી અને એક જ વસ્ત્ર પહેરીને આમ તેમ ફરતી ચ્યવને જોઈ. સુકન્યા ચ્યવન પાસે આવી અને તેની ચમકતી આંખો જોઈને ‘આ શું છે?’ એમ કુતૂહળથી કાંટા ભોંકીને એ આંખો ફોડી નાખી. ચ્યવન ક્રોધે ભરાયા, અને શર્યાતિના પરિવારના શારીરિક વેગોનું રોધન કર્યું (શર્યાતિસૈન્યસ્ય શત્રુન્મૂત્રે સમાવ્રણોત્ ।) શર્યાતિએ આનું કારણ સૌને પૂછ્યું પણ કંઈ નિરાકરણ મળ્યું નહિ. છેવટે, સુકન્યાએ ચ્યવનની વાત કહી. એટલે શર્યાતિ ચ્યવન પાસે ગયો અને ક્ષમા માગી. ચ્યવન બોલ્યા: “આ સુકન્યાએ મહારી આંખો ફોડી નાખી છે માટે એ સુકન્યા મહને સોંપી દે તો હું માફ કરીશ.” સુકન્યા ચ્યવન પાસે રહી.

પછી અશ્વિનીકુમારોએ એક વેળા જ્ઞાન કરીને ઉઘાડે શરીરે ઉભેલી સુકન્યાને જોઈ. તેઓએ સુકન્યાને પરણવાનો આગ્રહ કર્યો—સુકન્યાએ ના પાડી; ત્યારે તે ફરીથી બોલ્યા, “અમે દેવના વૈદ્ય છીએ, તહારા પતિને યુવાન અને સૌંદર્યવાળો બનાવી દઈએ તો પછી અમે ત્રણમાંથી ગમે તે એકને પતિ તરીકે તું સ્વીકારે.” પછી અશ્વિની-કુમારો ચ્યવનને એક સરોવરમાં લઈ ગયા, તેમાંથી ત્રણે યૌવનશાળી, દિવ્યરૂપવાળા અને એક સરખા વેષવાળા થઈને બહાર આવ્યા. સુકન્યાએ પોતાના હૃદયને અનુસરીને ચ્યવનને જ બોળખી કાઢી સ્વીકાર્યા.

પછી ચ્યવને અશ્વિનીકુમારોને સોમ-પાનનો અધિકાર અપાવવાનું માથે લીધું. અશ્વિનીકુમારો તો સ્વર્ગમાં ચાલ્યા ગયા.

એ પછી ચ્યવન શર્યાતિ પાસે ગયા અને તેની પાસે યજ્ઞ કરાવ્યો. યજ્ઞમાં ચ્યવને અશ્વિનીકુમારોનો સોમ-લાગ કાઢ્યો કે તરત ઇન્દ્ર વચમાં પડ્યા અને કહેવા લાગ્યા કે, “અશ્વિનીકુમારો ભિષકકર્મ કરે છે માટે સોમને લાયક નથી, વળી મનુષ્યોનો સંસર્ગ પણ બહુ જ રાખે છે તેથી પણ સોમને લાયક નથી.” ચ્યવને ઇન્દ્રને ગણકાર્યા વિના જ અશ્વિનીકુમારોનો લાગ ઉપાડ્યો. ઇન્દ્રે વજ્ર ઉગામ્યું, પણ ચ્યવને ઇન્દ્રના બાહુને સ્તબ્ધ કરી દીધો. પછી ચ્યવને અગ્નિમાં મન્ત્રોની આહુતિ આપી અને મદ નામના મહેટા અસુરને ઉત્પન્ન કર્યો. ઇન્દ્ર આ મહાસુરથી લય પામીને બોલ્યા, “હે ચ્યવન, આજથી અશ્વિનીકુમારો સોમ-પાનના અધિકારી થશે. બ્રાહ્મણનું વચન સત્ય થશે.

^૬ તત: સ ગર્ભો નિવસન્ કુક્ષૌ મૃગુકુલોદ્રહ । રોપાન્માતુશ્ચુત: કુક્ષેચ્યવનસ્તન સોઽમવત ॥

આદિપર્વ, ૬.૨૬

^૭ જુઓ આદિપર્વ, ૫-૭.

અને મ્હેં કેવળ ત્હાઈ સામર્થ્ય સૌ કોઈ જાણતા થાય અને સુકન્યાના પિતાની કીર્તિ પ્રસારે એ ઉદ્દેશથી જ આ વિદ્યા નાખ્યું હતું.” પછી એ મદને સુરાપાનમાં, ઝીઓમાં, પાસાઓમાં, અને મૃગયામાં વહેંચી દીધો.

આ રૂપાન્તરમાં કેટલા રંગો પૂરાયા છે ! વ્યવનને છોડી દીધા હોય કે અવસ્થાએ જીર્ણ થઈ ગયા હોય એ મહાભારતકાળનાં માનસને હીનતાસૂચક જ લાગે—તેથી વ્યવને મ્હોટાં તપ આદર્યો, અને કાળે કરીને રાફડાઓ બાંધી ગયા અને દૂંઠા જેવા થઈ ગયા એમ રૂપાન્તર થયું. ઋષિનું ગૌરવ ખરેખર આ ફેરફારથી સત્યવાયું છે. શર્યાતિની રાણીઓની સંખ્યાનો ઉલ્લેખ અને સુકન્યા એકની એક પુત્રી—એ પણ વાર્તાની જમાવટ કરવામાં સહાયબૂત થતી વીગતો છે. બ્રાહ્મણોમાં ગોવાળોએ કે કુમારોએ કાદવ છાંયો કે પથરા માર્યાનું કહેવાયું છે. મહાભારત કાળમાં—કદાચ poetic justice કરવાની ઇચ્છાથી—સુકન્યાએ જ કુતૂહલથી કાંટા ભાંડ્યા—અને એ જીર્ણ ઋષિને જ પતિ તરીકે સ્વીકારવા પડ્યા ! અને સુકન્યાનું વર્ણન પણ કેવું વીગતવાળું અપાયું છે ? બ્રાહ્મણોમાં વ્યવને શાર્યાતોમાં વિરોધ કે ‘અસંજ્ઞા’ ઉત્પન્ન કરી એમ કહ્યું છે, અહિં તો શકુન્મૂત્રે સમાવૃણોત્ એવી, કથા લખનારને વધારે આકરી જણાતી, શિક્ષાનો ઉલ્લેખ છે. બ્રાહ્મણોમાં અશ્વિનીકુમારોએ સુકન્યાને બોઈ અને મુગ્ધ થયા એટલું કહેવાયું છે તેનો પરિષ્કાર અહિં ‘અશ્વિનો કૃતાભિષેકાં વિવૃતાં તામપશ્યતામ્.’ એમ થયો છે. સુકન્યાની પતિ-લક્ષિતને પણ પૂરતો ન્યાય મળ્યો છે. જૈમિનીયની પેઠે અહિં પણ ત્રણેયનાં એકસરખાં રૂપ થાય છે: શતપથથી અહિં આ કથા જૂદી પડી છે. પણ જૈમિનીયની પેઠે અહિં વ્યવનની અગમચેતી ને યુક્તિનો ઉલ્લેખ નથી. અહિં તો સુકન્યા પોતાના સામર્થ્યથી જ વ્યવનને ઓળખી કાઢે છે, અને તેથી ઋષિના ગૌરવમાં ક્ષતિ કરે એવો કંઈ ઉલ્લેખ કરવો પડતો નથી.

અહિંનો આખ્યાયિકાનો અન્તનો ભાગ ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. યજ્ઞમાં અશ્વિનોને સોમ-પાનનો અધિકાર મળશે પણ તે યજ્ઞના શીર્ષના સંધાનથી નહિ: વ્યવન ભત્રે જ શર્યાતિપાસે યજ્ઞ કરાવી અશ્વિનોનો ભાગ કાઢે છે—અને ઇન્દ્ર સાથે ઝગડો થાય છે. અહિં યજ્ઞશીર્ષ વિશેની કર્મકાંડની જટિલ આખતને છોડીને મહાભારતના પંડિતે ઋષિઓનાં દેવો ઉપરનાં સામર્થ્યને દર્શાવતી કથા સાંકળી લીધી છે. અલખત વ્યવન અને ઇન્દ્ર વચ્ચે થયેલા આ કલહનો પ્રસંગ કેવળ કપોલકલ્પિત નથી. ઋગ્ ૧૦.૬૧.૧-૩માં ઇન્દ્ર અને વ્યવન વચ્ચે કંઈ કલહ થયાનો ઉલ્લેખ જણાય છે તેનો જ અહિં આ નવો અવતાર છે. ઇન્દ્રની અશ્વિનો વિરુદ્ધ જે દલીલો છે તે પણ મૂળ શ્રુતિના આધારને અનુસરતી જ છે.^૮ અને ઋષિનું પણ ઇન્દ્ર જેવા દેવરાજ ઉપર શું સામર્થ્ય દર્શાવાયું છે ! છેવટે, ઇન્દ્ર નમે છે—અને તેમાં પણ પૌરાણિક તમાચો મારીને ગાલ લાલ રાખવાની^૯ યુક્તિનો ઉપયોગ કર્યો છે !

આમ કાળના સંબેગો અનુસાર રૂપરૂપાન્તર પામતી આ આખ્યાયિકા આજે પણ પોતાની આકર્ષકતા સાચવી રહી છે.

સંવત્ ૧૪૮૨ માં લખાણી પદ્યાનુકારી ગુજરાતી ગદ્યમય જૈન ગુર્વાવલી

*
સંપાદક — શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈ, બી. એ. એલ્. બી.

૧. વિક્રમના પંદરમા સૈકાના ઉત્તરાર્ધમાં—સંવત ૧૪૭૮માં—જૈન શ્વેતાંબર સંપ્રદાયના અંચલગચ્છાનુયાયી આચાર્ય માણિક્યસુંદર સૂરિએ પૃથ્વીચંદ્રચરિત્ર નામની ગુજરાતી ભાષામાં ગદ્યરૂપે એક રચના કરી છે જેનું બીજું નામ કર્તાએ વાગ્વિલાસ એવું પણ આપ્યું છે. એ રચના ગુજરાતી ભાષાના ગદ્યના એક ઉત્તમ નમૂનારૂપે હોઈ બાકી સુંદર અને મનોરંજક છે.

૨. સ્વં સાક્ષરજ શ્રી કેશવલાલ હર્ષદરાય ધ્રુવે સ્વસંપાદિત ‘પ્રાચીન ગૂર્જર કાવ્ય’-ની પ્રસ્તાવનામાં લખ્યું છે કે:—“માણિક્યસુંદર સૂરિએ જૂની ગૂર્જરાતીમાં ગદ્યાત્મક પૃથ્વીચંદ્રચરિત્ર (સુદિત—સ્વં ચિમનલાલ દલાલ સંપાદિત ‘પ્રાચીન ગૂર્જરકાવ્ય સંગ્રહ’, અને શ્રી જિનવિજયજી સંપાદિત ‘પ્રાચીન ગુજરાતી ગદ્યસંદર્ભ’માં) સં. ૧૪૭૮માં રચ્યું છે; તે બોલીમાં છે. અક્ષરના, રૂપના, માત્રાના અને લયના બંધનથી મુક્ત છતાં લેવાતી છૂટ ભોગવતું પ્રાસયુક્ત ગદ્ય, તે બોલી. માણિક્યસુંદર બોલી-વાળા પ્રબંધને વાગ્વિલાસ એટલે બોલીનો વિલાસ એવું નામ આપે છે.”

૩. એવા વાગ્વિલાસના વર્ગમાં, ઉક્ત ગ્રંથના રચના સંવત્થી ચાર વર્ષ પછી—એટલે સં. ૧૪૮૨માં અક્ષય તૃતીયા દિને, જૈન શ્વેતાંબર તપાગચ્છનાયતિ જિનવર્દ્ધન ગણિએ રચેલી, પોતાના ગચ્છની ગુર્વાવલી, તે જ વર્ષમાં સુંદર હસ્તાક્ષરે લખાયેલી ત્રણ પત્રની હસ્તપ્રત, સદ્ભાગ્યે બીકાનેરના સાહિત્યરસિક બંધુ શ્રી અમરચંદ નાહટા પાસેથી વિગત અકટોબર માસમાં જેમને સાંપડેલી, તેની અક્ષરશઃ નકલ, કાળજી પૂર્વક પદન્યાસ કરીને અત્ર આપવામાં આવે છે. તેની છોટો નકલ પણ વડોદરાના ઓરિએન્ટલ ઇન્સ્ટિટ્યૂટમાંથી મેં કરાવી રાખી છે.

૪. આ કૃતિપરથી વિક્રમ પંદરમી શતાબ્દીના ઉત્તરાર્ધમાં—ઇસવી ૧૫મા શતકના પ્રારંભમાં, ગુજરાતી ભાષામાં વિદ્વાનોનો કેવો વાગ્વિલાસ હતો, તેમાં બેડણી કેમ લખાતી, વિભક્તિનાં પ્રત્યયો, ક્રિયાપદનાં રૂપો વગેરે કયા સ્વરૂપમાં લેખબદ્ધ થતાં એનો સારો ખ્યાલ આવશે—અને એ પરથી, જૂની ગુજરાતીમાંથી વર્તમાન ગુજરાતી ઉકાન્ત થઈ તે દરમ્યાન, જે જે પરિવર્તન થયાં ને ઉત્તરોત્તર ક્રમબદ્ધ પરિણતિને ભાષા પામતી ગઈ—તેના થોડા શૃંખલાબદ્ધ અંકોડા ભાષાશાસ્ત્રીને મળી રહેશે.

૫. વિષય ઐતિહાસિક છે. શ્વં જૈનધર્મમાં થએલા અનેક ‘ગચ્છો’ (સમૂહો)-માંના હાલ વિદ્યમાન મુખ્ય ત્રણ નામે:—ખરતર, તપા, અને અંચલ—ગચ્છો પૈકી તપાગચ્છમાં જૈનોના છેલ્લા—૨૪મા તીર્થંકર શ્રી મહાવીર સ્વામીથી માંડી તેમની પદ્મપરંપરા રૂપે જે આચાર્યો, અનુક્રમે કર્તાના સમયમાં સં. ૧૪૮૨માં વિદ્યમાન ૫૦મા

પટ્ટધર આચાર્ય સોમસુંદરસૂરિ સુધીના થયા, તેમની દૂંધી નોંધ છે. આ પટ્ટપરંપરા શ્વેં જૈન ધર્માનુયાયિઓમાં સુપ્રસિદ્ધ છે એટલે તેમને મન આમાંથી ખાસ મહત્ત્વનું બહુ ઓછું મળશે. અત્ર આ કૃતિ પ્રકાશિત કરવામાં, મારે મન, ઐતિહાસિક કરતાં બાધાવિષયક દૃષ્ટિ પ્રાધાન્ય ધરાવે છે.

॥ ૧૦ ॥ શ્રી વર્દ્ધમાનસ્વામિને નમઃ ॥

વિતરતુ મંગલમાલાઃ સમસ્તસંઘસ્ય વર્દ્ધમાનજિનઃ ।

યત્પદસેવા સંપ્રતિ કલ્પલતામીષ્ટફલદાતા ॥ ૧ ॥

મિમલકેવલજ્ઞાનદિવાકર, સકલત્રૈલોક્યલોકશિવશંકર;
પાદપીઠલુઠંત ચતુસદિ આલંકર, મોહાંધકારસંહારમાર્તંડમંડલ;
દેવાધિદેવ, ત્રિભુવનકૃતસેવ; મનોવાંછિતદાયક, ત્રૈલોક્યનાયક;
પ્રતિબોધિત અનેક ભવ્ય જીવસમાજ, અપશ્ચિમ તીર્થાધિરાજ;
શ્રીવર્દ્ધમાનસ્વામિ શ્રીસંઘરહૃ મંગલીક માલા કરડ ।

જસનામમંતસમરણિ મહા પાવંતિ સયલસિદ્ધીભો ।

બહુવિહલદ્વિસમિદ્ધો સો ગોયમગ્ગણહરો જયડ ॥ ૨ ॥

અનેક ગુણતણડ આગર, સકલ લલિતતણડ સાગર;
રૂપસૌભાગ્યતણી યાણિ, અમૃતસમાન વાણિ;
લાંછિતફલદાયક, મુક્તિવધૂનાયક;
સકલ જીવલોક પાપતાપનિર્વાપણ જલહર, શ્રીવીર પદમ ગણહર;
શ્રીગૌતમસ્વામિ શ્રીસંઘપ્રતિદ્વિઙ્ઞદ્વિ વૃદ્ધિ કલ્યાણ નિપજાવડ ।

જિણસાસણસોહકરો વરદંસનનાણચરણગુણકલિભો ।

સુવિહિયગચ્છસિરોમણિસિરિતવગચ્છો ચિરં જયડ ॥ ૩ ॥

જિમ દેવમાહિ ઈંદ્ર, જિમ જ્યોતિશ્ચક્રમાહિ ચંદ્ર;
જિમ વૃક્ષમાહિ કલ્પદ્રુમ, જિમ રક્ત વસ્તુમાહિ વિદ્રુમ;
જિમ નરેંદ્રમાહિ રામ, જિમ રૂપવંતમાહિ કામ;
જિમ સ્ત્રીમાહિ રંભા, જિમ વાદિત્રમાહિ મંભા;
જિમ સતીમાહિ સીતા, જિમ સ્મૃતિમાહિ ગીતા;
જિમ સાહસીકમાહિ વિક્રમાદિત્ય, જિમ પ્રહગ્ગણમાહિ આદિત્ય;
જિમ રત્નમાહિ ચિંતામણિ, જિમ આભરણમાહિ ચૂડામણિ;
જિમ પર્વતમાહિ મેરુ ભૂધર, જિમ ગર્જેન્દ્રમાહિ દેરાવળ સિંહુર;

जिम रसमाहि घृत, जिम मधुर वस्तुमाहि अमृत;
तिम सांप्रति कालि, सकल गच्छ अंतरालि;
ज्ञानि विज्ञानि तपि जपि शमि दमि संयमि करी अतुच्छ, ए श्री तपोगच्छ,
आचंद्रार्क जयधंतउ वर्त्तई ।

जे श्री तपोगच्छ, मानस सरोवरतणी परि स्वच्छ;
आगम-लक्षण-तर्क-साहित्य-छंद-अलंकार-प्रमुखसकल विद्यातणउ निधानु,
श्री संयम साधन सावधानु, दुष्कर क्रिया कलाप प्रधानु;
मुगस्तिमार्गसाधक, सर्व दोषबाधक; गुणनउ भंडार, चारित्रलक्ष्मीशृंगार;
महिमहिमा विशाल, भवताप तापित भव्य जीव विश्राम रसाल;
सकल कुमत खंडन, श्री जिनशासनमंडन प्रवर्त्तई छइ ।

अनइ मुखि तउ जीभ एक, तेहना किम बोलउं गुण अनेक;
जिम संपजइ नवनवी संपत्ति, दूरि पलाइ सकल विपत्ति, मनि उपजइ
मनोहर भक्ति; तेह कारण तउ हिव सांभलउ, श्री तपोगच्छ तणी उत्पत्ति ।
श्री वर्द्धमानस्वामि तणउ पांचमउ गणधर, चउद पूर्वधर;
श्री सुधर्मस्वामि, पाप नासइ जेहनइ नामि;
तेह तणइ संतानि, कोटिक इसिइ नामिइ गणि;
श्री वयरस्वामि तणी शाखां अतुलि, विपुलि श्री चंद्रकुलि;
ए श्री वडगच्छ उपनउ, किम, सांभलउ, सावधान थई करी ।
ईणअं श्री वर्द्धमानस्वामि तणइ पाटि पहिलउ,
अनेक गुणमणिभूधर, श्री सुधर्मस्वामि गणधर, जाणिवउ;
तेह तणइ पाटि २ श्री जंबूस्वामि हीआमाहि आणिवउ ।
जीणइं श्रीजंबूस्वामिइं अतिविनीत, नवपरिणीत; आठ नारी, ९९ कोडि
सुवर्णि करी सारी; लीलामात्रि परिहरी, अनइ श्री संयम लक्ष्मी वरी । एहं बिहुं
आचार्य प्रतिइं उपनउं विमल केवलज्ञानु, जगमाहि प्रतपिआ जिम भानु ।

तेह तणइ पाटि ३ श्री प्रभवस्वामि गणधर; जीणइं पांचसइं चोर तणउ
परिवार छांडी, अनइ संवेग लगइ चारित्र कन्या मांडी ।
तेह तणइ पाटि ४ श्री सय्यंभवसूरि, जेह प्रतिइं अज्ञान नाठउं दूरि;
जीणं करावतां यज्ञ, मुनि वचन सांभलउं धन्यु;
खड्डु काढी पूछिउ तत्त्व विचारु, तउ देख्खइ यानी जिनप्रतिमा सारु;

મનિ ડપનડ સંવેગ અપાર, તડ લીધડ સંયમ મારુ;
 જેઠે કીધડ સિદ્ધાંત સારુ, ગ્રંથ દશવૈકાલિક ચારુ;
 સાધિડં મળગા ચેલનડં કાજુ, જે અજી વર્તઈ છઈ લગઈ આજુ ।
 તેહ તળઈ પાટિ ૫ શ્રી યશોમદ્ર, જેહતડ પામીઈં મદ્ર ।
 તેહ તળઈ પાટિ ૬ બિ શિષ્ય; કૃત મોહમલ્લવિજય, શ્રી સંભૂતિવિજય;
 અનઈ શ્રી મદ્રબાહુસ્વામિ ।
 જે શ્રી મદ્રબાહુ ગુરુ, બુદ્ધિઈં કરી જાણે છઈ દેવનડ ગુરુ;
 જીણમં અનેક નવી નિર્ઘુક્તિ કીધી, તડ પછઈ સુખિઈં સિદ્ધાંત મળી
 અર્થસંગતિ સીધી ।
 અનઈ સંભૂતિવિજય તળઈ પાટિ ૭ શ્રી સ્થૂલમદ્ર, જેહનઈં નામિઈં નીપજઈ
 સર્વતોમદ્ર ।
 જીણં ફેડિડ મયળ મહવાડ, તડ ડપનડ જગિ જસુવાડ;
 જેહ તળડં બોલાસિઈ ચરિત્ર, ચડરાસી ચડવીસી લગઈ પવિત્ર ।
 પછઈ ગળધર નીપના ૧૪ પૂર્વધર, તેહ તળઈ પાટિ ૮, શિષ્ય ૨ હૂઆ;
 પહિલડ શ્રી જિનકલ્પ તુલના કરણહાર, શ્રીમહાગિરિ ગળહાર;
 જેહના સંતાન વિભૂષણ, અનેક આચાર્ય નીપના અદૂષણ ।
 અનઈ બીજડ શિષ્ય, શ્રી સુહસ્તિસૂરિ દક્ષ ।
 તેહ તળઈ પાટિ ૯ શ્રી સુસ્થિત-સુપ્રતિબદ્ધ, જગમાહિ નીપના પ્રસિદ્ધ;
 જીઈં થિકડ કૌટિક ગળ પ્રવાર્તિડ । કૌટિક કિસિડં કહીઈ, સાંમલડ—
 જેતલડં વસ્તુ સર્વજ્ઞ દેખઈ, તેહનડ કોડિમડ મારગ સૂરિમંત્રનડ ધ્યા-
 નહાર પેખઈ; તેહ કારણ કોઢ્યંશ મંત્ર બોલાઈ, તેહ મંત્રનઈં સંબંધિઈં
 કૌટિક ગળ બોલાઈ ।
 તેહ તળઈ પાટિ ૧૧ શ્રી દિનસૂરિ ।
 તેહ તળઈ પાટિ ૧૨ ગુણમણિ રોહણગિરિ, સૂરિ શ્રી સિંહગિરિ ।
 તેહ તળઈ પાટિ ૧૩ દશ પૂર્વધર, શ્રી વયરસ્વામિ ગળધર ।
 જીણં બાલિ કાલિ રોદનનઈં બલિઈં માતા મનાવી, શ્રીગુરુ સમીપિ આવી;
 પાલનઈ સૂતઈં, ધર્મનઈ ધુરિ જૂતઈં; ૧૧ આંગ સીખી, ત્રિનિ વરસ પડખી;
 કીધડ રાજસમાં ચમત્કાર, પછઈ હઝ દીક્ષા અંગીકાર;
 જેહની ઘણીવાર દેવે પરીક્ષા કીધી, તડ આકાશગામિની શક્તિ દીધી;

क्रमइ पछइ गणधर पदवी सीधी ।

अनइ जीणइं महाविकरालि, दुर्भिक्षनइ कालि;

पटविद्यां संघ उद्धरी, जिनशासनि प्रभावना करी;

जेह लगइ च्यारि ज्ञान अनइ कोट्यंश मंत्र आविउ, कालविशेषिइं

आघउ न चालिउ ।

तेह तणइ पाटि १४ श्री वयरसेन, तीणं भागी मोहनी सेन;

जीणं न्याय-नीति तणइ आगरि, सोपारइ नगरि;

नागेंद्र चंद्र निवृत्ति विद्याधर, गुणमणि तणा सागर;

ईश्वरी श्राविकाना ४ पुत्र, दीक्षा देईनइ कीधा पवित्र;

तेहं थिकउ ४ शाखा प्रवर्त्ती । आधी निवृत्ति शाखा न प्रवर्त्ती ।

अनइ श्री चंद्र आचार्य थिकउ ए चंद्रकुल, प्रवर्त्तिउं श्रीचंद्रनी परि निर्मल ।

तेह तणइ पाटि १६ देव देवीने देवकुलि कसणहार, भीम उपसर्गनउ सहणार;

पूर्वगत श्रुत धारक, अरण्यवास कारक;

सूरि श्री सामंतभद्र, जिनशासनि हऊउ उनिद्र ।

तेह तणइ पाटि १७ वडउ श्री देवसूरि ।

तेह तणइ पाटि १८ श्री प्रद्योतनसूरि ।

तेह तणइ पाटि १९ श्री मानदेवसूरि, पुण्यलक्ष्मीतणइ मूलि, जेहे रहे हुंते नइलि,

नगरि संयंभरि मोकलिउ शांतिस्तव, तीणइं विलय गियां संघमाहि अशव ।

तेह तणइ पाटि २० महिमाउत्तंग, सूरि श्रीमानतुंग;

जेहे सुप्रभावे ४४ महाकाव्य भक्तामरस्तव जोडी;

धाणीनी परि ऋडत्रडाट करती ४४ महाअठील फोडी ।

तेह तणइ पाटि २१ अतिआर्य, श्री वीराचार्य ।

तेह तणइ पाटि २२ भव्य जीवकृत सेव, सूरि श्री जयदेव ।

तेह तणइ पाटि २३ सदा परमानंद, सूरि श्री देवानंद ।

तेह तणइ पाटि २४ जित मोहपराक्रम, सूरि श्री विक्रम ।

तेह तणइ पाटि २५ बोधित हिंसक यक्षः, श्री नरासिंहसूरि दक्षः ।

तेह तणइ पाटि २६ गुणसमुद्र, सूरि श्री गुणसमुद्र;

जेहे जीपी दिगंबर, नागद्वह तीर्थ कीधउं श्वेतांबर ।

तेह तणइ पाटि २७ श्रीमानदेवसूरि, अंबिकादत्तसूरिमंत्रकरी गियां कश्यप दूरि ।
 जेहसिउं १४४४ प्रकरणनउ करणहार, बौधदर्शन निर्घाटनहार;
 याकिनी सून, महिमा अनून; हरिभद्र सूरि, मैत्री नीपजावइ भूरि ।
 तेह तणइ पाटि २८ श्री विबुधप्रभसूरि ।
 तेह तणइ पाटि २९ श्री जयानंदसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ३० श्री रिब(रवि)प्रभसूरि गरिष्ठ, जेहे नडूलपुरि
 श्री नेमि कीध प्रतिष्ठ ।
 तेह तणइ पाटि ३१ श्रीयशोदेवसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ३२ श्री प्रद्युम्नसूरि । जेहरइं तपोनियमोपधान तणी
 घणी सिद्धि, तउ उपधानि आइसी हुई प्रसिद्धि ।
 तेह तणइ पाटि ३३ श्री मानदेवसूरि;
 तेह तणइ पाटि ३४ भव्य कैरवचंद्र, सूरि श्री विमलचंद्र ।
 तेह तणइ पाटि ३५ जिनशासन-उद्योतन, सूरि श्री प्रद्योतन ।
 जे ९९४ विक्रम संवत्सरि, पड्डता श्री अर्बुद परिसरि ।
 अर्बुदनी पाजनइ ठामि, प्रसिद्ध टेलीग्रामि ।
 वटवृक्ष हेठि, मुहूर्त्तरहिं दीधी ट्रेठि ।
 ८ सूरिपद स्थापना कीधी, तिवार पूठिइं वडगच्छ प्रसिद्धि सीधी ।
 तेह तणइ पाटि ३६ श्री सर्वदेवसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ३७ श्री देवसूरि । जेहरइं श्री अर्बुदाचलनइ भूपालि,
 रूपश्री इसिउं नाम दीधउं ईणं कलिकालि ।
 तेह तणइ पाटि ३८ श्री सर्वदेवसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ३९ श्री यशोदेवसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ४० श्री मुनिचंद्रसूरि, अनइ श्री मानदेवसूरि ।
 जे श्री मुनिचंद्रसूरिरहिं 'आछणीआ' इसिउं नाम, छ विगइपरिहारपरिणाम;
 तेह बिहुं तणइ पाटि ४१ श्री अजितदेवसूरि ।
 श्री वादीश्रीदेवसूरि प्रमुख नही केहनइ घाटि ।
 अनइ श्री अजितदेवसूरितणइ पाटि ४२ श्री विजयसिंहसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ४३ श्री मणिरत्नसूरि ।
 तेह तणइ पाटि ४४ श्री जगच्चंद्रसूरि, जेहरइं प्रमाद नाछउ दूरि ।

“निय गुरु पयतलि बाल जिम भणतां आइम अंग ।

ततखणि जस मणि उल्लसित बहुल संयम रंग ॥ १ ॥

कलिमल कदमि अइकलितं जिणि उद्धरितं चरित्तु ।

तिणि कारणि जिणि वीर जिण सासण कीउं पवित्तु ॥ २ ॥

जिणि कीधउं आबिल तणउं जावजीव पचखाण ।

तिणि गुणि महीयलि ऊपनउं गच्छह तवामिहाण ॥ ३ ॥

जिणसासण वर कुमुअवण बोहण पूनिमचंद ।

जां रवि चंदा तां जयउ सो जगचंद मुणिंद ॥ ४ ॥”

जेहे श्री गुरे वाचतां श्री आचारांग, अध्ययन शस्त्रपरिज्ञा चंग;

जाणित छ जीव तणउ विचार, मनि ऊपनउ संवेग अपार;

पांचइ इंद्रिय संकलइ, तउ गुरु मोकलावी नीकलइ;

चित्रावाल गच्छ, श्री देवभद्र गणि स्वच्छ;

तिहां चारित्र उपसंपद प्रामी, तउ पच्छइ हजउ सुविहित स्वामी;

जेहरइ मोक्षमार्गि अतुल शंबल, जावजीव पचक्खाण आबिल;

एह वडगच्छरहइ तेह कारण, तपगच्छ हुउं नाम पापवारण ।

“जो चंदमंडल कंति निम्मल सूरि गुणमणि सायरो,

तब नियम संयम खंति मइव चरण करण गुणायरो ।

छज्जीवरक्खण अइ विचक्खण लोयबोहण सायरो,

जगचंद गणहर वाणि जलहर जयउ जाम दिवायरो ॥ १ ॥”

तेह तणइ पाटि ४५ श्री देवेन्द्रसूरि, जेहरइ अज्ञान गिउं दूरि ।

जेहे गुरे श्री दिनकृत्यसूत्र-वृत्ति, पांच कर्मग्रंथ-सूत्र-वृत्ति, सिद्धपंचासिकासूत्र

वृत्ति, श्री धर्मरत्नवृत्ति, सुदर्शनाचरित्र, त्रिनि भाष्य प्रमुख अनेक ग्रंथ कीधा ।

जे श्री गुरु खंभाइति नगरि कुमारविहार प्रासादि, मेघ जिम गंभीर नादि;

धर्म देशनां ४ वेद वखाणता, ब्राह्मणादिक अनेक सभ्य आवता;

तिहां १८ शत मुहपती तणउ व्यापार, जेहे कीजइ षडविध आवश्यक विचार ।

तेह तणा शिष्य ४६ श्री विद्यामंदसूरि—श्री धर्मवोषसूरि, हूया नि बांधव

अतिशय तणइ पूरि । जे श्री विद्यानंद सूरिरहइ संवत् १३०२

वरी कन्या तणउ परिहार, चारित्र कन्या तणउ अंगीकार ।

सुख संपदा तणइ सागरि, पाल्हणपुरि नगरि;
 पाल्हणविहार प्रासादि, अनेक तूर्य निनादि;
 १३२३ आचार्यपद, संघनइं मनि आणंद संपद;
 प्रासाद मंडपि कुंकुमवृष्टि, लोके ते बात दीठी निज दृष्टि;
 मनमाहि विस्मय अपार, तउ पात्रि अंबिका अवतार;
 लोक हहुऊ सावधान, तीणं इसिउं वचन बोलिउं प्रधान;
 ए उत्तम पुरुष पदठवणि, देवे उच्छव किउ इणि भवणि;
 ए वड महिमा देषि, तउ संघ नाचइ हर्षविशेषि;
 अनेकि सीकिरिधर व्यवहारीया तणउ संयोग,
 तिणि प्रासादि ५०० वीसलपुरीय भोग ।

तथा — श्री धर्मघोषसूरि सुविचार, जेरहि[ह]उं १३२७ पदठवण आचार;
 जेहे गुरे अतिशय लगइ योग्य अवधारिउ, सा० पेयड परिग्रह परिमाण
 संक्षेपतउ निवारिउ; जेणइं पेयडसाहि ८४ उत्तुंग तोरण प्रासाद कराव्या,
 ७ ज्ञानभंडार भराव्या; अनइ २१ धडी सुवर्ण, श्री शत्रुंजय मूलप्रासाद
 कीधउ बर्णि सुवर्णि ।

जेह तणउ पुत्र, सा० ज्ञाज्ञणदे पवित्र;
 जीणइं बिहु तीर्थि एकूज ध्वज, देईअनइ आत्मा कीधउ अरज;
 अनइ जे गुरुरहइ देवकइं पाटणि, सुमुद्रिइं दिखाडिउं चिंतामणि;
 अनइ तिहां गोमुख यक्ष, का[उ]सग प्रभावि हऊउ प्रत्यक्ष;
 उपदेश देई बूझविउ, मिथ्यात्व करतउ ते पाप सूझविउ;

तथा — विद्यापुरि ग्रामि,

जाणी वडां मूकावियां जूआं, ते संध्यानइ समइ पाषाण हूआं ।
 तथा — एकदा प्रभाति देतां उपदेश, कुणइं एकि गलइ विकुर्विया केश ।
 श्राविका जाणी दुष्ट, तउ आसणि विलाइउ पट्ट;
 जाती देखी लोके हसी, पाछी आवीनइ खूणइ खुसी;
 गुरु कन्हइ ए स्वरूप पूछी, तउ श्रावके ते अतिवणउं दोछी;
 पछइ ऊठी पाये पडइ, तउ पाटलउ जूउ अडवडइ ।

तथा — उज्जयिनी नगरि,

एक वसइ योगी पणि प्रस्यनीक, ते साहात्मानइं दिखाडइ बीक;

तेह कारण माहतमा तिहां न जाई, तिम तिम योगी हियामाहि न माई;
 एकदा गुरु तिहां आव्या, तउ योगीइं बोलाव्या;
 रहियो घीर थाई इण गामि, गुरि भणिउं रहिया छउं इण ठामि;
 पटि आछादी कुंभ, गुरि कीधउं ध्यान अदंभ;
 योगी गाढ आरड करंत, तउ नमिउ गुरु पय अणुसरंत ।
 एकदा रात्रि मझारि, आवी शाकिणी च्यारि;
 गुरुनी पाटि उपाडी ते नीकली, गुरे जाणी मंत्र शक्तिइं संकली;
 तउ गाढी टलवली, वचनि दीधइ कीधी मोकली ।
 एकदा सर्पनइ डंसि विकरालि,
 प्रभातनइ कालि, काष्टवाहक भारा अंतरालि,
 लिवारी विषापहारिणी वेलि, तिणि लांखिउं विष सघलउं ठेलि ।
 स्थानकि स्थानकि
 जेह गुरुतणा अनेक प्रभाव, ते सवे किम हूं बोलउं मूर्खस्वभाव ।
 एकदा एकइं महुंतइं, अति विचक्षण हूतइं;
 आठ यमकनउं काव्य भणी, इसिउं बोलिउं गुरु भणी;
 हवडां ए[ह]वहुं काव्य, कुणहइं किमहइं न हुई श्राव्य;
 गुरे कहिउं नाथि, महानुभाग अ णाथि;
 पछइ एक रात्रि मज्झारि, आठ आठ यमक विचारि;
 स्तवी देव चउवीस, स्तुति कीधी अष्टावीस;
 अमृत पाहइं अति मीठी, प्रभाति ते थुइ महुंतइं दीठी;
 ऊपनउ चमत्कार गाढउ, हियइ महुंतउ हऊउ टाढउ ।

अनइ जेहे श्री गुरे श्री संवाचारभाष्यवृत्ति, श्री शत्रुंजयकल्प, कायस्थिति-
 भवस्थिति स्तवन, अति यमक श्लेषमय अनेक स्तुति स्तोत्र कीधां, ते अद्यापि
 वर्तइं छइं प्रसीधां ।

तेह तणइ पाटि ४७ श्री सोमप्रभसूरि, जेहनइं ११ आग[म]नां सूत्रार्थ
 आवतां जिम गंगानइ पूरि । जेहनां कीधां सविस्तर जीतकल्प, यमकमय अनेक
 स्तुति वर्तइं छइं ।

तेह तणइ पाटि ४८ तेह तणा ४ शिष्य श्री विमलप्रभसूरि [१], श्री परमानंद सूरि २, महाजयणापर श्री पद्मतिलकसूरि ३, महाभाग्यसौभाग्य प्रतापिई करी भूरि, श्री सोमतिलकसूरि ४। जे श्री गुरु —

“भवियण मण मिच्छत जण उम्मूलण गयराय ।

पंडिय जण मण रंजणउ सोमतिलय गुरु राय ॥ १ ॥

सयलि महीतलि झगमगइ अज्जवि जसु जसवाउ ।

जेहे भगउ अतुल बल मोहराय भडवाउ ॥ २ ॥

जेहे खेतसमास मुख कीधा ग्रंथ बहूत ।

गच्छि गच्छंतरि वापरइं ते अज्जवि सम्भूत ॥ ३ ॥

रयणायरि रयणहं तणउ नो लब्भइ जिम पार ।

जस्सहरुज्जल णेग गुण न गणाइं तिम सार ॥ ४ ॥

देस वदेसिइं जाणीइं जसु गुरु तणउं भिहाण ।

सोमतिलय गुरु सो जयउ सुविहिय सूरिपहाण ॥ ५ ॥

जेह गुरुना अनेक चमत्कार, किम, सांभलउ —

मालव मंडल मझारि, संध्यां शकुन विचारि;

नवस्थानकि कीधउं संस्तारकसंग, पूर्विलइ स्थानकि शिलापाति हुउउ मात्रक भंग;

तथा — सविहुं देसि पहाणि; देशि गूर्जरात्रभिहाणि;

कुणइ एकं संनिवेशि, उपाश्रय तणइ प्रवेशि;

पाषाण ऊपरि मूकिउ पाउ, तत्काल जाणिउ अपाय;

शिला ऊपाडी दीधी द्रेठि, दुष्ट क्षुद्र नीकलीउं तउ हेठि;

तथा — कुणहं एकं व्यंतरि अवतारि, इसिउं बोलिउं वचन सुविचारि;

तुम्हारउं गुरुअं तेज अम्हे सही न सकउं ए वात सही ।

तथा — रात्रिइं पडिकमणानइ कालि, जेह तणा ओघा विचालि;

दीसतउ तेजनउ विकाश, जीणंइं थातउ काई एक प्रकाश;

जेहना इस्या अनेक प्रभाव, ते सबे किम बोलइ अजाण स्वभाव ।

जे श्री गुरुरहइं १३५५ जन्म, १३६९ दीक्षा, १३७३ श्री सूरिपद,

१४२४ स्वर्गसंपद । यथा —

‘जो छंद लक्खण तक्क आगम पमुह ग्रंथ सुजाणओ,

जो भब माणस कमल काणण बोहणे नव भाणुओ ।

सो संघलोयण अमियअंजण सरिस मूरति नंदओ,
सिरि सोमतिलओ सूरिनिलओ जाम तिहुयणि चंदओ ॥ १ ॥

श्री सोमतिलकसूरिना ३ शिष्य, अतिहिं दक्ष ।

अनेक स्तुति स्तोत्र सूत्रण सूत्रधार, निरंतर विद्याना सूत्रगार;
प्रतिबोधित अनेक अनार्य, श्री चंद्रशेखर आचार्य ।
भनइ सकलविद्या कंठ कंदलहार, स्थूलभद्रचरित्र प्ररूपणहार;
नंदपट्टि वर नगरि, अनेक देशांतरागत अनेक विद्वांस सभा अभ्यंतरि;
वचनकला निर्मित स[क]ल सभा आणंद, सूरि श्री जयाणंद ।
जेहरइं साजण भाई दीक्षा अंतराय कर[त]उ, देवतां चपेटां आहणी
कीधउ मानतउ ।

अनइ त्रीजा शिष्य

श्री महावीरयिकउ ४९ पाट धुरंधर, श्रीमत् श्री देवसुंदरसूरि गुरुपुरंदर ।
जे श्री देवसुंदरसूरि गुरु महाभाग्यवंत, गुहिर गंभीर, निर्जितकंदर्पवीर;
अनेक गुणमणितणी खाणि, अमृत समान वाणि;
श्रीसंघलोकमानसहंस, सुविहितसूरिमस्तकअवतंस;
निस्संगचूडामणि, सकलजाण शरोमणि;
सर्वविद्या तणउ आगार, नवकल्पविहार, बहतालीसदोषवर्जित आहार;
श्री जिनशासनशृंगार, युगप्रधानावतार;
“सायर जिम गंभीर गुरु तपतेजिहिं नवभाणु ।
गंगाजल जिम निम्मलउ गुरुअडि मेरु समाण ॥ १ ॥
अपमत्तउ भारंड जिम गुत्तिदिय जिम कुम्म ।
पंकय जिम निछेव बहु लक्खण वंजण रम्म ॥ २ ॥
सिरिजिणसासणनहयलदिणयरसरिसं थुणेमि मुणिरायं ।
सिरिदेवसुंदरगुरुं भारहखित्ते जुगपहाणं ॥ ३ ॥

जिणि लीलमत्तिहं मयण जीतउ सयल तिहुअण सल्लउ,
जो सयल सुविहिय सूरिमस्तक रयणसेहर तुल्लउ ।

सोभागसुंदर गुरु पुरंदर वयणि जणमण मोहए,
सिरि देवसुंदरसूरि गणधर वीरसासणि सोहए ॥ ४ ॥

कसमीर मरहठ चीण कुंकुण अंग वंग तिलंगए,
 सोरठ सवालष देश गूर्जर गौड चौड कलिंगए ।
 कोरंट कोसल देश कोशिक मूलथाण कनूजए,
 जसु कीर्ति झलकति सूरि नंदउ देवसुंदर सो जए ॥ ५ ॥

हंमीर हर्मुज सिंधु जलपय ओडियाण खुरसाणए,
 पंचाल जंगल भेदपाट करहाट लाट कर्णाटए ।
 नेपाल मंडल मगध मालव पमुह देस विदेसए,
 जसु कीर्ति झलकति सूरि नंदउ देवसुंदर सो जए ॥ ६ ॥

जोगी उदायी पाइ पाटणि गूंगडीय सरोवरे,
 बहु लोय पेखति जस्स पणमिय पाय पउम मणोहरो ।
 तउ लोअ पूच्छति जोगि जंपति एस पुरिस जुगुत्तमो,
 गिरिनारि कणयरीसिद्धि कहिउ तेण कारणि हुं नमो ॥ ७ ॥

नहयलिहिं दिणयर जाम जाम रोहणि चिंतामणि,
 सुरपति मस्तकि जाम तेजि दीपइ चूडामणि;
 सुरतरु सोहइ जाम मेरु नंदण वणकाणणि,
 जिणवर भासिय धम्म जाम निवसइ सज्जन मणि;

तामेव गुणवन वर पाटधरण वीरसासणि गणहर भयउ ।
 सिरि संघ गच्छ परिवार सहित देवसुंदर मुणिवर जयउ ॥ ८ ॥

अनइ श्री गिरिनार पर्वति श्री कुलमंडनसूरि प्रतिहं हुई अंबिका आदेश सिद्धि,
 जे श्री देवसुंदरसरिनइ कही चउथइ भवांतरि सिद्धि;

ये श्री गुरु प्रतिहं १३९७ वर्षे जन्म, १४०४ दीक्षा, संवत् १४०२०
 (१४२०) वर्षे दीउं आचार्यपद, संवत् १४०६८ (१४६८) वर्षे स्वर्गसंपद ।
 जिम जंबूद्वीपमाहि पांच मेरु सुणीइं, तिम तेहगुरुनइ पांचआचार्यशिष्य भणीइं ।

कुण कुण, सांभलउ —

निर्मल वैराग्य तणउ आगर, सकल सिद्धांतनउ सागर, सूरि श्री ज्ञानसागर १.
 तथा — सर्वमतवितंडाखंडन, श्री जिनशासनमंडन, सूरि श्री कुलमंडन २.

बुद्धिइं सुरु (सुरगुरु) समान, क्रियारत्नसमुच्चय ग्रंथकारक, सकल प्रमाद
 निवारक, चतुर्दश विद्याकृत निरंतर यत्न, सूरि श्री गुणरत्न ३.

अमीयसमान देशना, बूझवइ लोक अनेक देशना; उपशम रससागर, गुणमणि
आगर, भाग्यसौभाग्य सुंदर, सज्जनजन पुरंदर, सूरि श्री सोमसुंदर ४.

सर्वगच्छ कार्यधुरीण, सकलविद्या पारीण; विमलकलाकलाप विशाल,
जिनशासन मानस मराल; श्रीसंयममार्ग बहुयतन, सूरि श्री साधुरत्न ५.

तेह माहि काल तणइ अनुभावि

प्रथम ३ आचार्य अनइ श्री साधुरत्नसूरिगुरु, अनुभवइं देवभवनि सुख पूर ।

अनइ श्री महावीर थिकउ ५० पाट धुरंधर, सकलसूरिपुरंदर श्रीश्रीश्री
सोमसुंदरसूरि गुरुपुरंदर हवडां जे निज प्रतापिइं जयवंता वर्तइं ।

जे श्री सोमसुंदरसूरि गुरु उत्तम भाग्यनिधान, सकल युगप्रधान;

चारित्रलक्ष्मी कंठ कंदलहार, निरुपम ज्ञानभंडार;

सकलसूरि शिरोमणि, श्री तपोगच्छनभोमणि;

कुवादिमतंगजसीह, निर्मल क्रियावंतमाहि लीह;

चउद विद्या आगर, गंभीरिम तर्जित सागर;

अज्ञानतिमिर निराकरणसूर, कपायदावानल वारिपूर;

निजदेशनाविबोधितानेकदेशजन, निजगुणलक्ष्मीप्रीणितसज्जन;

नवकल्पविहार, बइतालीस दोषवर्जित आहार;

श्रीजिनशासन शृंगार, युगप्रधानावतार;

जेहे गुरे संस्थाप्या ४ आचार्य, चारित्र भार धरण धुर्य;

कुण कुण सांभलउ — भविक जन पुरंदर, सूरि श्री मुनिसुंदर;

जेहे चीट्टडउं करी अठोत्तर सउ हाथप्रमाण, परवादी तणउं ऊतारिउं माण ।

भविककुमुदविकाशन वितंद्रचंद्र, सूरि श्री जयचंद्र ।

जेहे बृहस्पति जीतउ गुणविवेकि, समस्या स्तव, कलापकसूत्रनिबद्धश्री-
शत्रुंजयस्तोत्रवृत्ति प्रमुख कीधां शास्त्र अनेकि ।

बुद्धिं जितदेवगुरु, श्री भुवनसुंदर सूरि गुरु ।

निजधैर्यनिर्जितमंदर, सूरि श्री जिनसुंदर ।

जे करइं करावइं स्वाध्याय, इस्या वर्तइं श्री जिनकीर्ति गणि उपाध्याय

प्रमुख ४ अनेक गुणमणिमंडित, वर्तइं छइं पंडित;

मुनि महासती न लाभइ पार, जेह गुरुनउ एवडउ परिवार ।

“भवियणकुमुयविबोहणससिकरसारिच्छतिहुयणाणंदो ।

सिरिसोमसुंदरगुरु चिरकालं जयउ जुगपवरो ॥ १ ॥

आसोअ पुन्निम विमल मंडल चंद कंतिहिं सोहणा,

जसु कित्तिकामिणि भमइ अहनिशि तिजयजणमणतोहणा ।

सिरि सोमसुंदर गुरुपुरंदर जणियजणमणतोसओ,

सो जयउ सुहुगुरु तिजयलोयह सयलनासियसंसओ ॥ २ ॥

तवगच्छ निम्मल विपुल नहयल भासणेह नभोमणी,

जो सयलसुबिहिअसूरिचूलामण्डणिक्कसिरोमणी ।

सिरि सोमसुंदर०, सो जयउ सुहुगुरु० ॥ ३ ॥

सिरिवीरसासणपवरजलनिहिवुड्ढि चंदसमाणओ,

दहचतुरविज्जावहूय वयणोदारकुण्डलसंनिहो ।

सिरि सोमसुंदर०, सो जयउ सुहुगुरु० ॥ ४ ॥

जो सयलभवियणपवरसिवपुरनयणविपुलसुसंदणो,

संवेगचंगो विगयसंगो मयणमाणविहण्डणो ।

सिरि सोमसुंदर०, सो जयउ सुहुगुरु० ॥ ५ ॥

गुजर मालव मेदपाट मरहट्ट कलिंगिहिं,

सिंधु जलपथि कन्यकुब्जि कर्णाटि सुभोटिहिं;

हरमुज कोसल पमुह देसि जसु कित्तिअ गज्जइ,

जां दिणयर वर चंद मेरु पुहवी तलि छज्जइ;

तां वीरनाह जिणवर थिकउ पंचासम वर पाठधर ।

सिरिगच्छसंघ परिवारिसहित सोमसुंदर गुरु जयउ चिरु ॥ ६ ॥

इति श्री श्री श्री तपोगच्छ गुर्वावली समाप्ता ।

विबुधवर पं० जिनवर्द्धनगणिभिः विरचिता ।

॥ सं० १४०८२ (१४८२) वर्षे वैशाख शुदि ३ दिनेऽलेखि ॥

વહ્નિમાચાર્ય અને તેમનો સંપ્રદાય

*

લે૦ — શ્રીમતી કુમારી સુશીલા મહેતા. એમ. એ. એલ્. એલ. બી.

[ભાગવતધર્મ રિસર્ચ ટ્રેલો — ભારતીય વિદ્યા ભવન]

ભક્તિમાર્ગના અનેક સંપ્રદાયોમાં, ગુજરાતમાં સૌથી વધુ પ્રચાર પામેલો સંપ્રદાય આચાર્યશ્રી વહ્નિમાચાર્યનો છે. ભક્તિવૃત્તિનાં મૂળ તો છેક વેદિક ઋચાઓમાં પણ શોધી શકાય; વેદમંત્રોના દેવતાઓમાં વિષ્ણુને પણ આદરણીય સ્થાન હતું. એ દેવની મહત્તા ધીરેધીરે, કાલક્રમે વધતી ચાલી. ઇ૦ સ૦ દશમા શતકમાં તો વિષ્ણુભક્તિ — તે દેવનાં જીવાંજીવાં નામરૂપોમાં — સારી રીતે પ્રચલિત હતી. અને તે પછી પંદરમાં શતક સુધીમાં તો તેનાં પૂર ઉભરાઈ ઉભરાઈ તે અનેક પ્રવાહોમાં વહેતાં થઈ ગયા હતાં. ભાગવત જેવાં પુરાણોમાં, ગીતગોવિન્દ જેવાં શૃંગારિક તેમ જ નરસિંહમહેતા જેવા ભક્તકવિઓનાં કાવ્યોમાં ભક્તિરસની છોળો ઉછળતી દેખાય છે. એ ભક્તિરસનાં ન્હાનાં ન્હાનાં, જીવાંજીવાં વહેણો એકત્રિત થઈ. એક ને અખંડિત એવા મહાન પ્રવાહમાં વહેવા લાગ્યાં હોય તો તે શ્રીવહ્નિમાચાર્યના પ્રતાપે. એમનો આ પ્રયાસ અ-પૂર્વ હતો એમ તો ન કહેવાય. એમની પહેલાં અનેક આચાર્યો — જેવા કે રામાનુજ (૧૦૧૬-૧૧૩૭), મધ્વ (૧૧૮૭-૧૨૭૬) અને નિમ્બાર્ક (૧૧૬૨) વિગેરેએ, ભક્તિમાર્ગને પોતપોતાના સંપ્રદાયમાં મૂર્ત સ્વરૂપ આપવા પ્રયત્ન કર્યો હતો; પણ શ્રીવહ્નિમાચાર્યનો સંપ્રદાય જેટલો લોકપ્રિય થઈ પડ્યો તેટલી લોકપ્રિયતા બીજા સંપ્રદાયોએ ન મેળવી. તેનું મુખ્ય કારણ છે વહ્નિમાચાર્યની સામાન્ય લોકોનાં હૃદયને વશ કરવાની વિશિષ્ટ સમર્થતા. “સંસારમાં સરસો રહે પણ મન મારી પાસ” એ મંત્રને એમણે પોતાના સિદ્ધાન્તના મધ્યબિન્દુ તરીકે સ્વીકાર્યો. એમને ત્યાં ત્યાગની આવશ્યકતા નહોતી. એમના સિદ્ધાંત પ્રમાણે દરેકદરેક મનુષ્ય ઈશ્વરને પ્રાપ્ત કરી શકે, જીતી શકે, વશ કરી શકે; પણ તે માત્ર એક જ આયુધ વડે અને તે આયુધ તે ભક્તિ. વહ્નિમાચાર્યની ભક્તિ એટલે પ્રભુની સેવા. ઈશ્વરપ્રાપ્તિનો આવો સહેલો, સરળ માર્ગ દાખવનારના જીવનચરિત્રમાં અહીં જરાવાર ઓકિયું કરીએ તો તે અસ્થાને નહીં ગણાય.

આન્ધ્ર દેશમાં વ્યોમસ્તંભ પર્વતની પાસે કૃષ્ણા નદીની દક્ષિણે કાકરવાડ^૧ નામે એક મોટું નગર હતું. ત્યાં શુદ્ર વેલનાટ કે વેળનાડુ નામે બાણીતું એક બ્રાહ્મણ કુટુંબ રહેતું. એ કુટુંબનું ગોત્ર યજુર્વેદી તંત્રિરીયશાખી ભારદ્વાજ હતું. અને તે ગોપાલ-કૃષ્ણની ભક્તિ કરતું. વહ્નિમાચાર્યના પિતા લક્ષ્મણભટ્ટ વિષ્ણુસ્વામી મતને અનુસરતા. કાકરવાડનો નાશ થવાથી તેઓ અગ્રહારમાં રહેવા ગયા. અને વિદ્યાનગર (વિજય-નગરના) ના રાજાના પુરોહિત સુશર્માની કન્યા યલ્લમાગાડને પરણ્યા. લક્ષ્મણભટ્ટને યલ્લમાગાડથી બે પુત્ર અને બે પુત્રીઓ થઈ. તેમાંનાં એક અને સૌથી નાના પુત્ર વહ્નિમાચાર્ય. લક્ષ્મણભટ્ટ એકવાર સહુકુટુંબ — સપરિવાર કાશીની યાત્રાએ ગયા.

૧ આ સ્થાન હાલમાં ઓળખાવી શકાયું નથી.

મુસલમાની હુમલાના ભયે ત્યાંથી નહાસતાં રસ્તામાં ચોડાનગર પાસે ચંપારણ્યમાં શિવા (હરડેના) વૃક્ષ નીચે સંવત ૧૫૨૯ (ઇ. સ. ૧૪૭૩)ના વૈશાખ (ગુજરાતી ચૈત્ર) વદ અગીઆરસને શનિવારે યજ્ઞમાગાદને પુત્રપ્રસવ થયો. બાળકને મરેહું માની માબાપે તેને એક કપડાના કટકામાં વીંટી, શમીવૃક્ષની ખજોલમાં મૂકી દીધું; ને તેઓ આગળ ચાલ્યાં. બીજે દિવસે પાછાં વળતાં તેઓએ બાળકની આસપાસ અગ્નિ જોયો ને બાળક જીવતું દેખાણું. પછી તેને સાથે લઈ આગળ ચાલ્યાં. જન્મતાં વેત જ એમનું અગ્નિએ રક્ષણ કર્યું હતું તેથી વલ્લભાચાર્યને એમના અનુયાયીઓ અગ્નિનો અવતાર—વૈશ્વનારાચાર્ય—માને છે.

વલ્લભે કાશીમાં જ પોતાનું શૈશવ ગાળ્યું. અને વેદો, વ્યાકરણ તથા ન્યાયાદિ દર્શનોનો અભ્યાસ ત્યાં જ પૂરો કર્યો. ત્યારપછી વૈષ્ણવ તેમ જ શૈવતંત્રો અને રામાનુજ વિગેરે વૈષ્ણવોના સિદ્ધાન્તોનો પરિચય મેળવવા બાર વર્ષની ઉંમરે તેમણે કાશી છોડ્યું. વિજયનગરમાં ચારેક વર્ષના રહેવાસ દરમિયાન વૈષ્ણવ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરી વલ્લભાચાર્ય સંવત ૧૫૪૫માં^૧ ગોકુળ—મથુરા ગયા. ત્યાં તેઓએ ગિરિરાજમાં દેવદમન કે શ્રીનાથજીના પ્રાકટ્યની વાત સાંભળી, તેથી તે તરફ ગયા અને શ્રીનાથજીનાં દર્શન કર્યાં. મથુરાથી ઉજ્જયિની થઈ સં. ૧૫૪૬ની આસપાસ તેઓ કાશી ગયા.

આ પછી લગભગ દશેક વર્ષ તેમણે કાશીમાં ગાળ્યા હોય એમ માનવામાં આવે છે. અને એ અરસામાં જ તેમણે તત્ત્વાર્થદીપનિબન્ધ, સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી અને પત્રાવલંબન વિગેરે ગ્રંથો લખ્યા એમ કહેવાય છે. કાશીમાં તેમણે તત્ત્વસ્થ દેવનલટની કન્યા મહાલક્ષ્મી સાથે ત્રીશ વર્ષની ઉંમરે લગ્ન કર્યું. તેઓ લગ્ન પહેલાં કાશી ગયા હોય એમ સામ્પ્રદાયિક માન્યતા છે; કારણ કે સં. ૧૫૫૬ની ચૈત્ર સુદ બીજે તેઓએ ગોવર્ધનપર્વત ઉપર શ્રીનાથજીનું મંદિર બંધાવ્યું.

લગ્ન પછી આચાર્યશ્રીએ દેશનાં અનેક તીર્થોમાં પર્યટન કર્યું. અને પોતાના વિચારોનો ઉપદેશ કર્યો. આવું પર્યટન—જેને “ધાર્મિક દિગ્વિજય” કહેવામાં આવે છે—દરેક સામ્પ્રદાયના આચાર્યોએ કર્યું છે. વલ્લભાચાર્યે દક્ષિણમાં રામેશ્વર સુધીનાં તીર્થોની, મહારાષ્ટ્ર તેમ જ મારવાડનાં તીર્થસ્થાનોની, ગુજરાતનાં મોટાં શહેરોની તથા કાઠિયાવાડનાં સ્થળોની, તેમજ ઉત્તરનાં ને પૂર્વ સુધીનાં અનેક તીર્થોની યાત્રા કરી હતી. આ સ્થળોનાં વિશ્રામસ્થાનોમાં તેઓ શ્રી ભાગવતનું પારાયણ કરતા અને શ્રીકૃષ્ણભક્તિનો ઉપદેશ આપતા. આવા દરેક સ્થળે શ્રીમહાપ્રભુજીની બેઠકો થઈ છે. હાલ આવી ૮૪ બેઠકો મનાય છે; પરંતુ બધીય તે વખતની જ છે એવું ચોક્કસ માનવાને પુરાવો નથી.

તેમની આ પરિક્રમા દરમિયાન, એક વખતે, વિદ્યાનગરના રાજા કૃષ્ણરાયની સલામાં તેમણે ધાર્મિક વાદવિવાદમાં માયાવાદી પંડિતોને હરાવી પોતાનો સિદ્ધાન્ત સિદ્ધ કર્યાનું કહેવાય છે. આ પ્રસંગ સં. ૧૫૬૫-૬૬માં બન્યો હોવાનો સંભવ છે. આને

૧ તેમના ચરિત્રલેખકોએ આપેલી સાલ અને પ્રસંગો બંધબેસતા નથી આવતા. સંસ્કૃત સાહિત્યના ધણાખરા દરેક લેખક કવિ કે આચાર્યના જીવનપ્રસંગો આપણને અનુમાનથી જ સિદ્ધ કરવાનો પ્રયાસ કરવો પડે છે. વલ્લભાચાર્યના વિષયમાં આટલી માહિતી મળી શકે છે, તે પણ આપણું સદ્ભાગ્ય જ છે.

પરિણામે વલ્લભના ચરિત્રલેખકોમાંના એક-ગદાધરદાસ-ના કહેવા મુજબ, “વ્યાસ-તીર્થે-જે સભાપતિ હતા-શ્રીવલ્લભાચાર્યને, જે તે મધ્વમત સ્વીકારે તો આચાર્યપદ આપવાની ઇચ્છા દર્શાવી. પણ વિષ્ણુસ્વામીમતના છેલ્લા આચાર્ય બિલ્વમંગળે સ્વપ્નમાં દર્શન આપી વ્યાસતીર્થના શિષ્ય થવાની ના પાડી અને વિષ્ણુસ્વામીનો સર્વમત કહી એ લુપ્ત થઈ ગયેલા મતને પુનઃ પ્રકાશિત કરવાની સૂચના કરી.” આ દંતકથામાંથી માત્ર એટલું જ ઐતિહાસિક સત્ય તારવવા યોગ્ય છે કે શ્રીવલ્લભાચાર્યને વિષ્ણુસ્વામી-મતના સિદ્ધાન્તોનો તેમ જ ભક્તિગ્રંથોનો અને પોતાના મોસાળપક્ષના મધ્વમતનો પરિચય હોવો જોઈએ. આ “શાસ્ત્રાર્થવિગ્રય” પછી તેઓ ઋજુમાં જઈ કાશી ગયા હોય એમ માનવામાં આવે છે. છેલ્લાં ૧૯-૨૦ વર્ષ તેઓએ એટલમાં જ ગાળ્યા, છતાં તેઓ વારંવાર ઋજુમાં જતા. આમાંના એકાદ પ્રસંગે, શ્રાવણ સુદ એકાદશીની મધ્ય-રાત્રીએ, શ્રીકૃષ્ણે તેમને સ્વપ્નમાં દર્શન દીધાં, અને બ્રહ્મસંબંધથી મનુષ્યોને સેવા-માર્ગમાં પ્રવેશ કરાવવાની આજ્ઞા કરી. આ રીતે દામોદરદાસ, કૃષ્ણદાસ, મેઘન અને કેશવ કાઙ્ગરીએ આત્મસમર્પણ કરી ‘સેવા’નો હક્ક પ્રાપ્ત કર્યો.

વલ્લભાચાર્યે તેમની છેલ્લી અવસ્થામાં પોતાનાં અધૂરાં પુસ્તકો પુરાં કર્યાં. પોતાના પ્રથમ પુત્ર ગોપીનાથજીને ગાદીએ બેસાડી, તેઓએ માધવેન્દ્રયતિ પાસે સન્યાસ લીધો. ત્યારપછી થોડા જ સમયમાં, સં. ૧૫૮૭ની આઘાઠ સુદ ત્રીજને દિવસે, તેમણે શ્રીકૃષ્ણની નિત્યલીલામાં પ્રવેશ કર્યો.

તેમના ગ્રંથોમાંના મુખ્ય મુખ્યમાં અણમાપ્ય નામે પ્રસિદ્ધ વ્રહ્મસૂત્રમાખ્ય, પૂર્વમીમાંસા-કારિકા, પૂર્વમીમાંમામાખ્ય, બ્રહ્મસૂત્રપર બૃહદ્માખ્ય ક્ષણશ્રય, સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી, સિદ્ધા-ન્તરહસ્ય, અન્તઃકરણપ્રબોધ, તત્ત્વાર્થદીપ, પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદા, પત્રાવલમ્બન, સુવોધિની અને તત્ત્વાર્થપ્રકાશ ગણી શકાય. આ સિવાય પણ તેમણે બીજાં નાનાંનાનાં અઢારેક પુસ્તકો રચ્યાં છે. વલ્લભાચાર્યના રચેલાં આ બધાં પુસ્તકોમાંથી અત્યારે તો આપણને થોડાંક જ ઉપલબ્ધ થાય છે. કારણ કે એમના વારસદાર ગોપીનાથજીના અકાળ મૃત્યુથી તેમની પત્નીના હાથમાં એ પુસ્તકો આવ્યાં, જે તેણે તેના દીયર વિદ્યલનાથજીને સોંપવા ના પાડી અને કોઈ અકસ્માતથી તે નાશ પામ્યાં. આચાર્યના મરણને અંગે અધૂરા રહેલા અણુભાષ્યની પૂર્તિ પણ શ્રીવિદ્યનાથજીએ જ કરી છે.

તેમનાં જીવનચરિત્રનું આટલું અવલોકન કર્યા પછી હવે આપણે તેમણે ઉપદેશોલા સિદ્ધાન્તોનો સંક્ષિપ્ત પરિચય કરીએ.

ભક્તિ-વલ્લભાચાર્યે ભક્તિની વ્યાખ્યા ભાગવતમાંથી જ ઉતારી છે. તેમના મતે ભક્તિનું સ્થાન કર્મ અને જ્ઞાન કરતાંય ઉચ્ચતર છે.

મહુણશ્રુતિમાત્રેણ મયિ સર્વગુહાશયે ।

મનોગતિરવિચ્છિન્ના યથા ગદ્ગામ્મસોઽમ્બુધૌ ॥

ભાગવત, ૩. ૨૯. ૧૧.

પ્રભુના ભજનમાં તક્લીનતા અને પ્રભુમાં જ મનની ગતિ તે ભક્તિ. અથવા “માહા-ત્મ્યના જ્ઞાનપૂર્વક સદૃઢ અને સૌથી વધારે પ્રભુમાં સ્નેહ તે ભક્તિ; આનાથી જ મુક્તિ ૧.૨.૬.

મળે બીજી નહીં.” પણ આવી ભક્તિ અને આવું માહાત્મ્યજ્ઞાન પ્રભુના અનુગ્રહ સિવાય અશક્ય જ છે; અને ભક્તને તો પ્રભુના અનુગ્રહ વિના બીજા શેની અગત્ય હોય? એટલે “ધર્મશ્રવણો અનુગ્રહ” સાધનરૂપે યા ફલરૂપે આ માર્ગમાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્થાન પામે છે, અને તેથી આ સમ્પ્રદાયને “પુષ્ટિમાર્ગ” એવું નામ આપે છે. “પુષ્ટિ” એટલે ખાઈ પી, મોજમલહ માણી પુષ્ટ થવું—એવો અર્થ રહે કરતા! પણ પુષ્ટિ એટલે પોષણ અને તે જ “(પ્રભુનો) અનુગ્રહ”

પોષણં તદનુગ્રહઃ । ભાગવત, ૨. ૧૦. ૪.

ધર્મશ્રવણો અનુગ્રહથી જ સંસારમાંથી મુક્તિ, ભગવદ્ભક્તિ, કે ભગવત્ પ્રાપ્તિ સંભવે અને તેથી જ આ માર્ગીય ભક્તો પુષ્ટિભક્તો કહેવાય છે. તેઓના ચાર પેટાભેદો છે.

(૧) **મર્યાદાપુષ્ટિભક્તો**—એટલે કે ભગવાનના ગુણો જાણીને ભક્તિ કરનારા. તેઓને મન સંસારનું સુખ તુચ્છ છે. માત્ર ભગવાનનું ભજન, કીર્તન વિગેરે જ તેમને આનંદ આપી શકે છે.

(૨) **પ્રવાહપુષ્ટિભક્તો**—પુષ્ટિમાર્ગના ભક્તોનો બીજો પ્રકાર તે પ્રવાહપુષ્ટિભક્તો. તેઓ કર્મ કરવામાં જીવનનું સાર્થક્ય માને છે. નિશ્ચિત શાસ્ત્રવિહિત કર્મો કર્યે જાય છે; છતાં “આ હું કરું છું,” “આ માફ છે” એ મમત્વનો નાશ થયો હોતો નથી.

(૩) **પુષ્ટિપુષ્ટિભક્તો**—તેઓ ભગવદ્ અનુગ્રહથી પાવન થયા છતાં શ્રીહરિની પૂજા માટે બીજા સાધનોનો, જ્ઞાનના ઉદય માટે, ઉપયોગ કરે છે. તેઓને ભગવાનના સ્વરૂપનું યથાર્થજ્ઞાન તથા પ્રભુપ્રત્યે સુદૃઢ અને સર્વાધિક સ્નેહ હોય છે. પણ તે જ્ઞાન માટે તેઓને પ્રયત્ન કરવો પડે છે.

(૪) **શુદ્ધપુષ્ટિભક્તો**—પ્રેમથી હરિની પરિચર્યા તથા તેના ગુણોનું શ્રવણ-કીર્તન કરનારા. ભક્તિ એ તેમને વ્યસન છે. આ ભક્તિનો ઉદ્દેશ તેમનાં હૃદયમાં માત્ર ધર્મશ્રદ્ધાપાથી જ થાય છે. ત્યાં બીજાં બાહ્ય સાધનો કે સ્વેચ્છાને અવકાશ નથી.

આ ચાર પ્રકારોમાં છેલ્લો સર્વોત્તમ છે. આ જાતની ભક્તિ ગોપીઓની—શ્રીકૃષ્ણના વિરહદુઃખથી ટળવળતી અને તેના સંયોગમાં રાત્રી ગોપીઓની હોય છે. આ શુદ્ધ-પુષ્ટિભક્તિને ફળરૂપભક્તિ અથવા માનસી સેવાને નામે પણ ઓળખવામાં આવે છે.

ભગવત્સેવા—પુષ્ટિમાર્ગની ભક્તિનું મુખ્ય અંગ તે ભગવત્સેવા. સેવાના ત્રણ પ્રકાર છે—તનુજ સેવા, વિત્તજ સેવા, અને માનસી સેવા.

શ્રવણ, કીર્તન અને પોતાના શરીરથી ભગવાનની યથાશક્તિ સેવા તે તનુજ.

પ્રભુને વસ્ત્રાલંકાર ધરાવવા, ઉત્સવો વિગેરે ઉજવવા, મંદિરો બંધાવવા—આ સઘળી વિત્તજ સેવા. અલબત્ત ધનાઢ્યોને જ આ સેવા સુલભ ને શક્ય બને, છતાં સૌ પોતાની શક્ત્યનુસાર ફાળો આપી શકે.

આ બે પ્રકારની સેવા તો સાધનરૂપ છે. આવી રોજની પ્રવૃત્તિથી મનની એકાગ્રતા સાધી શકાય, અર્થાત્ તેનો અભ્યાસ પડે, અને તેનું જે ફળ તે માનસી સેવા. ઉપરના બે પ્રકારની સેવાથી સેવાભાવનાં બીજા મનમાં રોપાય છે, જે ભાવ અભ્યાસથી પ્રેમમાં

પરિણમે છે. એ પ્રેમરાશિ વધતાં તે આસક્તિનું, મોહનું—લૌકિક, ક્ષુદ્ર નહીં, પણ દિવ્ય મોહનું—સ્વરૂપ ધારણ કરે છે. અને પરિણામે તેનું વ્યસન થઈ જાય છે. ત્યાર-પછી, પ્રભુની કૃપાથી—અનુગ્રહ વડે—સર્વાત્મભાવ પ્રાપ્ત થાય છે.

આત્મનિવેદન—ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સાધનરૂપ સેવા એ શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિનું સાધન ખરૂં, પણ આપોઆપ ભગવત્સેવાનો અધિકાર પ્રાપ્ત થતો નથી. “ગુરૂ બિન કોન ખતાવે વાટ.” આપણે તો પામર અજ્ઞાન મનુષ્યો ! ગુરૂ વિના શ્રીહરિનું ઓળખાણ કોણ કરાવે ? આપણે મનુષ્યો પણ એક ણીજ સાથેનો સમાગમ સાધવા માટે પરસ્પર ઓળખાણની અપેક્ષા રાખીએ છીએ તો પછી ઈશ્વર જેવા અગમ્યને શરણે જતાં પહેલાં કોઈ દિશા સુઝાડનાર, માર્ગદર્શક ભોમિયાની જરૂર પડે એમાં આશ્ચર્ય જેવું શું ? એટલે આ માર્ગમાં પ્રવેશ કરવા ઇચ્છનારે આચાર્યના કોઈ પણ વંશજને ગુરૂ તરીકે માન્ય રાખી, તેને શરણે જઈ, તેની પાસેથી ‘શ્રીકૃષ્ણઃ શરણં મમ’ નો મંત્ર કાનમાં સાંભળીને તેને હાથે તુલસીમાલા ધારણ કરવી. આમ કરવાથી આત્મનિવેદન વિધિ સંપૂર્ણ કર્યો ગણાય છે. આ શરણુમંત્રોપદેશ પછી, બ્રહ્મસંબંધ કે આત્મનિવેદન, જેનો મુખ્ય હેતુ આચાર્યદ્વારા પ્રભુને સર્વસ્વ સમર્પણ કરવાનો છે, તે લેવામાં આવે છે. તે સમયે ગુરૂ નીચેનો ગદ્યમંત્ર કાનમાં બોલે છે:—

‘સહસ્રપરિવત્સરમિતકાલજાતકૃષ્ણવિયોગજનિતતાપક્લેશાનન્દતિરોભાવોઽહં ભગવત્તે કૃષ્ણાય દેહેન્દ્રિયપ્રાણાન્તઃકરણાનિ તદ્દર્માશ્ચ દારાગારપુત્રવિત્તહાપરાણિ આત્મના સહ સમર્પયામિ, દાસોઽહં કૃષ્ણ ત્વમસિ ।’

બ્રહ્મસંબંધ એટલે જીવ અને ભગવાનના અંશાંશીભાવની પુનઃસ્મૃતિ. આ સંસ્કાર પછી જ પુષ્ટિમાર્ગમાં સેવાનો અધિકાર પ્રાપ્ત થાય છે.

જીવ—તે ભગવાનનો અંશ છે, ને અણુરૂપ છે. તેમાં બ્રહ્મના ત્રણ ધર્મો—સત્, ચિત્ ને આનંદ—માંથી આનંદનો તિરોભાવ છે. તે જ્ઞાતા છે, ને જ્ઞાન તેનો ધર્મ છે; તે પ્રકાશક છે ને ચૈતન્ય તેનો ધર્મ છે. ચૈતન્ય વડે જ તે અણુ હોવા છતાં સમગ્ર દેહને વ્યાપી રહેલ છે. તે કર્તા તેમ જ ભોક્તા છે. જેમ અગ્નિમાંથી તણુખા નીકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી અસંખ્ય જીવો ઉત્પન્ન થાય છે—“વ્યુચ્ચરિત” થાય છે. આ અંશાંશી-ભાવ એટલે જ જીવ અને બ્રહ્મનો અભેદ. માત્ર આનંદાંશના તિરોભાવને લીધે, ભગવાનના છ ગુણો—ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય—જીવમાં જેવામાં આવતા નથી. તે કારણે જ તેની પરાધીનતા, દુઃખ, દેહાદિમાં અહંબુદ્ધિ ને વિષયાસક્તિ દેખા દે છે. જ્યારે ઈશ્વરાનુગ્રહે આનંદાંશ પ્રકટે છે ત્યારે જીવ અણુ મટી વિભુ બને છે, અને ભગવાનના તિરોભૂત ધર્મો જીવમાં પુનઃ પ્રકટ થાય છે.

જગત અને સંસાર—જગતની ઉત્પત્તિ પણ બ્રહ્મની ઇચ્છાશક્તિમાંથી જ થાય છે; તેથી તે પણ પ્રભુથી ભિન્ન નથી. શંકરાચાર્યની જેમ શ્રીવલ્લભાચાર્ય માયાવાદ ઉપદેશતા નથી. શંકર, જગત અને જીવ—બન્નેને માયાના પરિણામ—એટલે કે મિથ્યા ગણે છે. વલ્લભમતે બન્ને સત્ય છે. છતાંય કાર્યજગતની ઉત્પત્તિથી કારણબ્રહ્મમાં કાંઈપણ ફેરફાર થતો નથી. આ “અવિકૃતપરિણામવાદ” ને નામે ઓળખાય છે. માટીનાં અનેક આકારનાં વાસણો બનાવ્યાં છતાંય માટી માટી જ રહે છે. તેમ બ્રહ્મ, અનેક જીવની ઉત્પત્તિ

છતાં, બ્રહ્મ જ રહે છે. બ્રહ્મ, આમ ઉપાદાન કારણ ઉપરાંત નિમિત્ત પણ છે, કારણ કે તેમાંથી અને તેની ઇચ્છાથી જ જગત્ ઉત્પન્ન થયું છે.

વળી, શંકરાચાર્યની જેમ વલ્લભાચાર્યે જગતોત્પત્તિ માટે, બ્રહ્મની અપરા પ્રકૃતિ કદપી નથી. બ્રહ્મની આવિર્ભાવ-તિરોભાવાત્મક શક્તિ તે જ માયા અને તેમાંથી જ જીવ અને જગત્ની ઉત્પત્તિ છે અને તેમાં જ તે લય પામે છે. આમ જ બ્રહ્મની ‘અદ્વૈતતા’ સિદ્ધ થાય છે. શંકરના કેવલાદ્વૈત અને રામાનુજના વિશિષ્ટાદ્વૈતથી જુદો પાડવા વલ્લભાચાર્ય પોતાના મતને “શુદ્ધાદ્વૈત” નામ આપે છે. માયાસંબંધરહિતં શુદ્ધમિત્યુચ્યતે ભુવૈઃ । (શુદ્ધાદ્વૈતમાર્તણ્ડ - ૨૮) બ્રહ્મને માયા સ્પર્શી શકતી નથી માટે તે શુદ્ધ.

આ પ્રમાણે જગત્ તો શુદ્ધ જ છે; મિથ્યા છે સંસાર, જેનું નિમિત્ત પાંચપર્વા અવિદ્યા છે. તેનું ઉપાદાન કારણ નથી; કેમકે તેનું અસ્તિત્વ, અવિદ્યાને અંગે, જીવથી કલ્પિત છે. જ્ઞાનના ઉદયથી કૈતજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને જીવને સર્વ ઠેકાણે અદ્વૈત દર્શન લાગે છે. જીવનું સંસારિત્વ, દેહ, ઇન્દ્રિય, અંતઃકરણ, પ્રાણ અને સ્વરૂપ-વિસ્મૃતિ—એ અધ્યાસો વડે જ સંભવે છે. આ પાંચપર્વા અવિદ્યાનો નાશ પાંચપર્વા વિદ્યાથી શક્ય છે. વિદ્યાના પાંચ પર્વો એટલે વૈરાગ્ય, સાંખ્ય, યોગ, તપ અને પ્રેમ. આ અહતા—મમતાત્મક સંસારમાંથી જીવની મુક્તિ એ જ મોક્ષ. સંસાર નાશવંત છે, જગત્ નહીં. સંસાર કલ્પિત છે; જગત્ બ્રહ્મકાર્ય છે માટે શુદ્ધ છે, સત્ય છે. આવો જગત્—સંસારનો ભેદ શ્રીવલ્લભાચાર્યે પ્રથમ જ સમજાવ્યો છે.

દર્શિ—આ માર્ગમાં ઇષ્ટદેવતાના સ્થાને શ્રીકૃષ્ણ વિરાજે છે. અવિકૃત સચ્ચિદાનંદ, રસરૂપ, પૂર્ણપુરૂષોત્તમ, જગતની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ ને લયના કારણરૂપ છે. ક્ષર તેમ જ અક્ષરથી પર, અનન્ત નામ તેમ જ શક્તિ ધરાવે છે. સર્વશક્તિમાન, વ્યાપક તે પ્રભુ આકારવાન છે. એ વિરૂદ્ધધર્મા પણ છે, જેમકે આણું છતાં વિભુ, નિરાકાર છતાં સાકાર, અને અવિભક્ત છતાં વિભક્ત છે. પરબ્રહ્મ એવા શ્રીકૃષ્ણના ત્રણ રૂપો છે—આધિદૈવિક, આધિભૌતિક ને આધ્યાત્મિક. અક્ષરબ્રહ્મ એ એનું આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ, જગત્ તેમ જ લક્ષ્મીપતિ નારાયણ એ આધિભૌતિક અને સચ્ચિદાનંદ બ્રહ્મ એ આધિદૈવિક. આમાંથી પહેલું જ્ઞાનીને પ્રાપ્ય છે, છેલ્લું ભક્તને. સાધારણ મનુષ્યો, એ આનંદરૂપ દેવને, માયાના આવરણને અંગે ભેદ શકતા નથી. ભક્તિવડે એ પડળ દૂર થતાં તેનાં દર્શન સુલભ બને છે. એના અનેક અંશાવતારો થયા છે, પણ રાસલીલાના અધિષ્ઠાતા એ પૂર્ણપુરૂષોત્તમ જ છે.

પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણ તરીકે તો,

વેદાઃ શ્રીકૃષ્ણવાક્યાનિ વ્યાસસૂત્રાણિ ચૈવ હિ ।

સમાધિભાષા વ્યાસસ્ય પ્રમાણં તચ્ચતુષ્ટયમ્ ।

ઉત્તરં પૂર્વસન્દેહવારકં પરિકીર્તિતમ્ ॥

(તત્ત્વવીપનિબન્ધ, શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ, ૭-૮)

એટલે વેદમાં સંદેહ પડે તો ગીતાવડે—જે શ્રીકૃષ્ણની વાણી છે—તેનું નિવારણ, ગીતાની શંકા બ્રહ્મસૂત્ર દૂર કરે, અને તેમાંય શંકા થાય તો છેવટનું પ્રમાણ શ્રીમદ્ ભાગવત—જે ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં “વ્યાસની સમાધિભાષા” તરીકે ગણાયું છે.

મોક્ષ—શ્રીકૃષ્ણની પ્રાપ્તિ—જે “અનુગ્રહ” વિના અશક્ય છે—અને તેની નિત્ય લીલામાં પ્રવેશ; આ જ પુષ્ટિભક્તોનો મોક્ષ. તે અનુગ્રહ—ભક્તિવડે જ મેળવાય. બ્રહ્માનંદ કરતાં ભજનાનંદ આ માર્ગમાં ઉચ્ચતર ગણાય છે, પણ એ અલૌકિક આનંદના અનુભવ માટે દિવ્ય દેહની જરૂર રહે છે. આનું નામ પુષ્ટિમાર્ગીય સધોમુક્તિ. આ સ્થિતિમાં ઐશ્વર્યાદિ ગુણો તિરોહિત જ હોય છે, અને દુઃખનો નાશ પણ થતો નથી. પણ એ દુઃખ તો શ્રીકૃષ્ણના વિરહનું હોવાથી ભક્ત તેને હસતે મુખડે વધાવી લે છે.

ભક્તિમાર્ગમાં સ્ત્રીને ને શૂદ્રને પણ શરૂઆતથી જ અધિકારી ગણવામાં આવ્યાં છે, એટલે પુષ્ટિમાર્ગ તેમને અધિકારી ગણે એ સ્વાભાવિકજ છે. એનાં ઉદાહરણ તરીકે વિકલનાથજીનાં શિષ્યો—પઠાણકવિ રસખાન તેમ જ ચાંદખીખી છે.

શ્રીવલ્લભાચાર્યના સિદ્ધાન્તોનું આપણે ટુંકું વિવેચન કર્યું. ઈશ્વરના અનુગ્રહને સ્વમાર્ગનું મુખ્ય લક્ષણ ગણી તે ઉપરથી તેમણે પોતાના માર્ગને “પુષ્ટિમાર્ગ” એવું નામ આપ્યું. આ અનુગ્રહનું તત્ત્વ તો છેક ઉપનિષદના મંત્રોમાં પણ શોધી શકાય. “યમેવૈષ્ણુતે તેન લભ્યઃ તસ્યૈષ આત્મા વિઝ્ઞાને તનું સ્વામ ॥” (કઠ ૧.૨.૨૩, મુષ્ક ૩. ૨. ૩) શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદમાં શરણ—પ્રપત્તિ—નો પણ ઉલ્લેખ છે. તમહં દેવમાત્મબુદ્ધિપ્રકાશં મુમુક્ષુર્વૈ શરણં પ્રપ્યે ॥’ (શ્વે ૬, ૧૮.) મતલબ કે ઉપનિષદ, ગીતા, મહાભારતમાં મળી આવતાં ભક્તિનાં પ્રાચીન તત્ત્વો જેમ રામાનુજદિ બીજા સમ્પ્રદાયોમાં ઉતરી આવ્યાં છે, તેમ જ આમાં પણ ઉતરી આવ્યાં છે; એટલું જ નહીં પણ પૂર્વ સમ્પ્રદાયોમાં થયેલો કેટલોક વિકાસ પણ આ સામ્પ્રદાયમાં સ્વાભાવિક રીતે અવતરે છે. દાખલા તરીકે, રામાનુજ મતના ઈશ્વરસ્વરૂપનું વર્ણન વલ્લભમતના વર્ણન સાથે સ્પષ્ટ સામ્ય દર્શાવે છે. મધ્વમત પણ ઈશ્વરના શરીરને આનંદમય માને છે; અને ભક્તિના મુખ્ય લક્ષણ તરીકે પ્રેમને અગ્રસ્થાન શ્રી નિમ્બાર્કે પણ આપ્યું છે. આમ પ્રાચીન સાહિત્ય તેમ જ સમ્પ્રદાયોની દેખીતી અસર છતાં, પુષ્ટિમાર્ગનો મુખ્ય આધાર, શ્રીવલ્લભ જેને સંદેહનિવારક ગ્રંથોમાં ગણાવે છે, તે શ્રીમદ્ભાગવત પર જ છે. (વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ—દુ. કે. શાસ્ત્રી, પૃ. ૨૬૬)

જે કે વલ્લભે ભક્તિનાં સિદ્ધાન્તો ભાગવતમાંથી તારવ્યાં છે, છતાં પણ ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે. ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી. તેમાં તો ગોપીઓના વર્તન માટે બચાવનો પ્રયાસ જોવામાં આવે છે. ત્યારે પુષ્ટિમાર્ગમાં તો ગોપીઓની ભક્તિ જ આદર્શ ગણાય છે. ભાગવત પછી શ્રીધર-સ્વામી, ઓપદેવ વિગેરેને પણ ગોપીભક્તિ પ્રશંસાપાત્ર તો નથી જ લાગતી. છતાં બિલ્વમંગલ અને જયદેવ જેવા સંતભક્તોની અસરે એ આદર્શને ધીમેધીમે પોષ્યો-વિકસાવ્યો. વળી ચૈતન્ય—વલ્લભના સમકાલીન—ની (શક સં. ૧૪૦૭-૧૪૫૫) પણ અસર આ માર્ગ પર થાય એમાં આશ્ચર્ય નહીં. વિ. સં. ૧૬૦૦ થી—૧૬૫૦ વચ્ચે આ બેય સંપ્રદાયના ગુંસાધઓ ધ્રુવમાં રહેતા. તેમને “પરસ્પરસમાગમ અને વિચારવિનિમયનો પુરતો અવકાશ હતો.” ઉલટું, ચૈતન્યનો સખીભાવ, પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિની કલ્પનાથી વિરોધી ન હોવાને લીધે, તેના આછેરા પડવા આ માર્ગમાં પડે, ઝીલાય, એ સ્વાભાવિક હતું. વલ્લભે સ્પષ્ટરીતે સખીભાવને નથી ઉલ્લેખ્યો છતાં તેમના

પુત્ર વિઠ્ઠલનાથજી ગોપીલાવને ઉલ્લેખે છે. મારણે વરણે વાપિ દાસીનાં નામપ્રમુર્ગતિઃ ।
(વિજ્ઞપ્તિ ૨, વેણુનાદ ૧. ૪. ૧૪)

જો કે ચૈતન્યની જેમ વલ્લભાચાર્યે ‘ભરલાવ’ કે ‘સખીલાવ’નો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ નથી કર્યો, છતાં એ ‘શૃંગારલાવ’ તો ઉપદેશે છે એમાં ખીલકુલ શંકા નથી. તેની સાખીતી તરીકે કૃષ્ણગોપીલીલાનાં શ્રીવલ્લભાચાર્ય તેમ જ અન્ય ગુંસાધઓનાં કાવ્યો ગણાવી શકાય.

હાલના આચાર્યો અને વર્તમાન સ્થિતિ—શ્રીવલ્લભાચાર્યના વંશજ વિઠ્ઠલનાથજીને સાત પુત્રો હતા. તે બધાના સર્વે વંશજો પુષ્ટિમાર્ગના હાલના આચાર્યો ગણાય છે. તેઓ જીવેજીવે સ્થળે રહી, ભગવત્સેવા કરે છે. ભક્તોને દીક્ષા દેવાનો અધિકાર તેમનો છે. આ માર્ગના પેટાભેદો ગુજરાત-કાઠિયાવાડમાં મળે છે—જેવા કે, ભરૂચી, પાવડીઆ અને નીમડીઆ વૈષ્ણવો; અને કાઠિયાવાડમાં જયગોપાલીઆ વૈષ્ણવો.

ગુરુભક્તિ—દરેક ધર્મમાર્ગમાં ગુરુનું સ્થાન મહત્ત્વનું જોવામાં આવે છે. જ્ઞાનમાર્ગ, ભક્તિમાર્ગ કે યોગમાર્ગ—બધાયમાં ગુરુની આવશ્યકતા સ્વીકારવામાં આવી છે. કારણ મનુષ્યને માર્ગદર્શકની જરૂર અવશ્ય રહે જ છે. આ સ્વાભાવિક વસ્તુએ ગુરુભક્તિને એટલી ઉચ્ચ કક્ષાએ પહોંચાડી કે ગુરુ અને દેવનો ભેદ લુપ્ત થવા લાગ્યો; શિષ્યને શરૂઆતથી જ શીખવાયું. “આચાર્ય દેવો મવ” ; ચેતાશ્વતર ઉપનિષદમાં પણ “યસ્ય દેવે પરામક્તિઃ યથા દેવે તથા ગુરૌ” નો મંત્ર ઉપદેશાયો. ગુરુભક્તિનાં મૂળ આ પ્રમાણે ઉપનિષદ કાળથી જ જણાઈ આવે છે. ખીજા સમ્પ્રદાયોમાં પણ તેની અગત્યતા સ્વીકારવામાં આવી છે જ; પણ વલ્લભસંપ્રદાયે એના આદર્શને સૌથી વધુ પોષ્યો. જો કે વલ્લભાચાર્યે પોતે ગુરુની આવશ્યકતા પર એટલો બધો ભાર દીધો નથી. એ તો કહે છે:—“જિજ્ઞાસુએ શ્રીકૃષ્ણની સેવામાં પરાયણ, દમ્ભાદિથી રહિત, અને શ્રીભાગવતતત્ત્વને જાણનાર મનુષ્યને જોઈ તેને ગુરુ તરીકે આદરથી ભજવો. એવો માણસ ન મળે તો કવચિત્ જાતે શ્રીહરિની મૂર્તિ કરીને પણ તેની સેવા કરવી.” પણ પોતે જ માર્ગના આદ્યસ્થાપક હોઈ ગુરુપદ ધારણ કર્યું. વલ્લભ પછી તેના વંશજોને જ ગાદી મળે એવી રૂઠિ એ માર્ગમાં પ્રચલિત છે; કારણ વલ્લભે તેમના અનુયાયીઓ પર સંન્યાસ લેવાનો પ્રતિબંધ મૂક્યો હતો—એટલે વલ્લભાચાર્ય પછી તેના અનુગામી આચાર્યોને ગુરુપદ ધારણ કરવાનો અને પોતાના ભક્તોને દીક્ષા આપવાનો અધિકાર મળ્યો. જો કે સામ્પ્રદાયિક માન્યતા પ્રમાણે આચાર્ય તો વલ્લભાચાર્ય જ છે, અને એમના વંશજો તો માત્ર ‘ગુરુદ્વાર’ રૂપ છે, પણ અજ્ઞાન અને ગુરુભક્તિનાં વેગમાં આનો વિપરીતાર્થ થયો છે.

શ્રી વલ્લભાચાર્ય પોતાને “કૃષ્ણના દાસ” કૃષ્ણદાસસ્ય વલ્લભસ્ય કહે છે, પણ એમના પુત્ર શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી “વલ્લભાચાર્ય એ જ કૃષ્ણ” “વસ્તુતઃ કૃષ્ણ એવ સઃ” એમ કહે છે. આ રીતે તેમણે ગુરુની, દેવની જેમ ભક્તિ કરવી તેના બદલે, ગુરુને જ દેવ તરીકે ઉપદેશ્યા. વિઠ્ઠલનાથજીના શિષ્ય ગોપળદાસે તેથીય એક પગલું આગળ જઈ પોતાના ગુરુને પુરૂષોત્તમનો જ અવતાર ગણ્યા. વળી વલ્લભાચાર્યે પોતાનું “અશેષ માહાત્મ્ય” પોતાના દરેક વંશમાં સ્થાપ્યું છે, એવું પણ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીએ લખ્યું.

આને લીધે દરેક આચાર્ય, વિદ્વાન્ હોય યા ન હોય, ચારિત્ર્યવાન્ હોય યા નહીં, પણ ભક્તોને મન તો તે પુરુષોત્તમ જ છે. એટલે જ્યાં ધણદેવતા રાસવિહારી શ્રીકૃષ્ણ-દેવ હોય, જ્યાં ભક્તિનો આદર્શ ગોપીભક્તિ હોય અને જેમાં આચાર્ય જ દેવરૂપ મનાતા હોય ત્યાં સ્વચ્છંદનો પ્રવેશ સુલભ અને તો એમાં આશ્ચર્ય જેવું નથી; અને એના પરિણામે જ એ માર્ગમાં પેસી ગયેલા કેટલાક દુરાચાર, વિલાસ ને વ્યભિચારનો સ્વીકાર તો તન્માર્ગીય વિદ્વાનોને પણ કર્યા વિના છૂટકો નથી. અને એ રીતે શ્રીવલ્લભાચાર્યે જે ભવિષ્યવાણી કહી છે તે અત્યારે સત્ય થતી જોઈ શકાય છે. એમણે ભાખ્યું હતું કે:—

યદા બહિર્મુક્તા યૂયં ભવિષ્યથ કથञ્ચન ।

તદા કાલપ્રવાહસ્થા વેહચિત્તાદયોઽપ્યુત ।

સર્વથા ભક્ષયિષ્યન્તિ યુષ્માનિતિ મત્તિર્મમ ॥

આ ઉપરથી શ્રીવલ્લભાચાર્યે કે તેમના પુત્ર વિઠ્ઠલનાથજીએ અસદાચારનો ઉપદેશ કર્યો હતો એવો અસત્ય આક્ષેપ ન કરી શકાય. શ્રી મુન્શી કહે છે તેમ “માણસના શૃંગારી સ્વભાવને આ પંથમાં ઝોક મળવાથી તે લોકપ્રિય થયો” તે ખરૂં પણ “આઘ-શિષ્યો નૈતિક બળવાળા હતા. તેના અનુયાયીઓમાં સ્વચ્છંદ કે દૂષણો નહીં પેઢા. પણ મનુષ્યસ્વભાવ નિર્બલ છે; અને અમર્યાદિત વાસનાથી સરલ થઈ પડેલું અધઃપતન ભાગ્યે જ તે લાંબા વખત સુધી રોકી શકે છે.”

તેથી આ મનુષ્યસહજ નિર્બલતાનો દોષ આપણે એ મહાન્ આચાર્યને શિરે ઢોળી ન શકીએ.

રાંદલ શબ્દ વિષે વિચાર

*

[લે૦ — શ્રીયુત પં૦ વેચરદાસ જી૦ દોસી; ન્યાય-વ્યાકરણતીર્થ]

મુંબઈની કાર્પસ સભાદ્વારા ચાલતી બુદ્ધિવર્ધક વ્યાખ્યાનમાળામાં, એક વ્યાખ્યાતા શ્રીમાન ભગવાનલાલ લ૦ માંકડ એમ. એ. બી. ટી. એમણે ‘ગુજરાતમાં સૂર્યપૂજા અને રાંદલપૂજા’ એ વિશે એક રસપ્રદ વ્યાખ્યાન તા. ૨૫-૬-૩૮ ને રોજ આપેલું હતું. તે આખું કાર્પસ ગુજરાતી સભાના મુખ પત્ર ‘ત્રૈમાસિક’ માં છપાયું છે. તેમાં તે વિદ્વાન વ્યાખ્યાતાએ ‘રાંદલ’ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ બતાવતાં નીચે પ્રમાણેનું લખાણ કરેલું છે:

‘રાંદલ’^૧ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ કરતાં આપણને આ દુઃખમાત્ર દૂર કરી મુખ આપે છે તે રાંદલ એમ સમજાય છે. રાંદે યાતિ ભાતિ ઇતિ રાંદલઃ અમારાં કહેલાં આનંદ મુખને દેવાવાળી રાંદલ.”

આ વ્યુત્પત્તિ મારી સમજમાં નથી આવતી. ‘રાંદે’ એટલે શું? તેની સાથે વળી ‘યાતિ’ પદનો શો સંબંધ? સંસ્કૃતસાહિત્યમાં આનંદ અને મુખ માટે ‘રાંદે’ શબ્દનો ઉપયોગ મેં જાણ્યો નથી. વ્યુત્પત્તિ બતાવનાર લાઘવે ‘રાંદે’ નો જે અર્થ બતાવ્યો છે તે માટે એકાદ કોશનું કે એવું બીજું કોઈ સંવાદી વચ્ચન ટાંકી બતાવ્યું હોત તો વિશેષ ઉચિત થાત. અસ્તુ.

મારી સમજ પ્રમાણે ‘રક્ષાદે’ કે ‘રણાદે’ એ શબ્દ પ્રાચીન છે એવું ઇતિહાસવિદ્ શ્રી દુર્ગાશંકરભાઈનું કથન બરાબર છે. સં૦ રક્ષાદેવી — પ્રાં૦ રણાદેવી. ‘રણાદેવી’ પદ સાથે ‘રક્ષાદે’ વા ‘રણાદે’ શબ્દનું વિશેષ સામ્ય છે. અક્ષરવિન્યાસ અને તેનું પરિવર્તન, તથા અર્થદૃષ્ટિએ બોતાં એ સામ્ય બરાબર સંગત ભાસે છે.

આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના યોગશાસ્ત્રમાં ‘સૂર્યપત્ની’ માટે ‘રક્ષાદેવી’ શબ્દનો ઉપયોગ કરેલો છે એ બોતાં ઉક્ત કલ્પનાને સબળ ટેકો મળે છે. રક્ષાદેવી — રણાદેવી — રણાદે — રણાદે વા રક્ષાદે — રણાદે વા રાનાદે એ પ્રકારે શબ્દપરિવર્તનનો ક્રમ હોવો બોધ્યો. રણાદેઈ વગેરે પદોમાં ‘રક્ષાદેઈ’ એ રીતે ‘ન’ પણ કલ્પી શકાય છે.

પ્રાં૦ પીઝલ^૨ (પીઝું) પ્રાં૦ અંધલ (આંધળું) પ્રાં૦ વિજ્ઞુલ (વીજળી) પ્રાં૦ પત્તલ (પાતળું) વગેરે પદોમાં અંતિમ ‘લ’ સ્વાર્થિક પ્રત્યય છે તેમ ‘રણાદે’ શબ્દને સ્વાર્થિક ‘લ’ પ્રત્યય લાગવાથી ‘રણાદેલ’ એવું પદ નીપજે છે અને એ ‘રણાદેલ’ શબ્દનું ત્વરિત ઉચ્ચારણ કરતાં વર્તમાનમાં બોલાતો ‘રાંદલ’ વા ‘રાંદેલ’ શબ્દ આપોઆપ નીપજે એમ છે.

કેટલાંક બંગાળી નામોમાં અંતે ‘અડક’ સૂચક ‘દે’ આવે છે: (નંદલાલ દે, વિશ્વનાથ દે) એ ‘દે’ મૂળ ‘દેવ’ શબ્દનું સંક્ષિપ્ત રૂપ છે. દેવ — દેવ — દે. એનું અંગ્રેજીએ કરેલું ‘હે’ ઉચ્ચારણ પણ પ્રસિદ્ધ છે: (નંદલાલ હે) જેમ ‘દેવ’ શબ્દ ‘દે’ રૂપે પરિણમેલો છે તેમ ‘દેવી’ શબ્દ પણ ‘દે’ રૂપે નીપજેલો છે: જેમ ગોરાંદે. એ જ રીતે પ્રસ્તુત ‘રણાદે’ વા ‘રક્ષાદે’ શબ્દનો અંતિમ ‘દે’ ‘દેવી’ શબ્દનું સંક્ષિપ્તરૂપ છે. દેવી — દેઈ — દે. આ રીતે ઉક્ત પ્રકારે ‘રાંદલ’ વા ‘રાંદેલ’ પદનું નિર્વચન કરવું ઠીક લાગે છે. વળી કોઈ વ્યુત્પત્તિવિદ્ મહાશય આ વિશે વિશેષ જણાવશે તો જરૂર નવું જાણવાનું મળશે.

૧ કાર્પસ ગુજરાતી સભા દ્વારા પ્રકાશિત થતા ‘ત્રૈમાસિક’ના ચોથા પુસ્તકના ત્રીજા અંક (ઓક્ટોબર-ડિસેમ્બર-૧૯૩૬)માં આવેલા વધારામાંથી આ લખાણ અક્ષરશઃ ઉતારેલું છે.

૨ ગૌરી રુદ્રસ્ય, સાવિત્રી બ્રહ્મણઃ, શ્રીમુરદ્વિષ: ।

રાજી-ચન્દ્રસ્ય, રવે રક્ષાદેવી, દક્ષાત્મજા વિધોઃ ॥ — યોગશાસ્ત્ર દ્વિતીય પ્રકાશ.

૩ “વિષુત્-પત્ર-પીત-અન્ધાત્ લઃ” — ૮૧૨૧૭૩૧ હેમપ્રાકૃતવ્યાકરણ.

અપભ્રંશ કવિઓ:

ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂ

*

લેખક — શ્રીયુત પ્રો. મધુસૂદન ચિમનલાલ મોદી, એમ. એ., એલ.એલ. બી.

[અપભ્રંશના યુનિવર્સિટી પોષ્ટ ગ્રેજ્યુએટ અધ્યાપક, ગુ. વ. સો. રિસર્ચ ઈન્સ્ટિટ્યૂટ, અમદાવાદ]

— ૦૦૦૦ —

§૧. અપભ્રંશપાઠાવલીનું સંકલન કરતીવેળા આ એ અપભ્રંશકવિઓની સંયુક્ત કૃતિઓનો, હાથપ્રતો મારફતે, પરિચય સાધવાનું લાગ્ય મને પ્રાપ્ત થયું હતું. વિશાળ પુરાણોને અપભ્રંશમાં ઉતારનાર આ કવિયુગલ આઠમાથી દશમા વિક્રમશતકમાં થઈ ગયું. આજુબાજુની અધૂરી કાદંબરી તેના પુત્રે પૂર્ણ કરી પિતાનું તર્પણ કર્યું, તે રીતે જ ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની વિશાળ અધૂરી કૃતિઓને તેના પુત્ર ત્રિભુવને પૂરી કરી પિતૃઋણ અદા કર્યું. હાથપ્રતો મારફતે જ જાણીતા, આ એ કવિઓનું અપભ્રંશ સાહિત્યમાં સમયની દૃષ્ટિએ પણ પ્રાચીન સ્થાન છે. આ કવિની એક પણ કૃતિ પ્રસિદ્ધ થઈ નથી. અપભ્રંશપાઠાવલીમાં મેં ભાંડારકર ઓરીએન્ટલ રીસર્ચ ઇન્સ્ટિટ્યૂટની હાથપ્રતોનો આશ્રય લઈ અવતરણો લીધાં હતાં. આ કવિઓની કૃતિઓ તે ‘પડમચરિય’ અને ‘હરિવંશપુરાણ’. પડમચરિય ભાંડારકર ઓરિએન્ટલ ઇન્સ્ટિટ્યૂટ નં. ૧૧૨૦, સને ૧૮૯૪-૯૭ છે. હરિવંશપુરાણ તે જ સંસ્થાની હાથપ્રત નં. ૧૧૧૭ સને ૧૮૯૧-૯૫ છે. પડમચરિય ને તે સંસ્થાની યાદીની નોંધમાં સ્વયંભૂદેવ રચિત રામાયણ-પુરાણ એ નામથી દાખલ કરવામાં આવ્યું છે. નીચે વિસ્તારેલું તે કાવ્યોનું વૃત્તાન્ત, ઉપરની પ્રતોની મારી નોંધોને અનુસરી આપવામાં આવેલું છે.

1. આ કવિઓ ઉપર નીચેજુજાનાં લખાણો થયેલા છે. (૧) નાનુરામ પ્રેમીની નોંધ ઉપરથી મોહન-લાલ દલીચંદ દેશાઈ કૃત ‘જૈન ગુર્જર કવિઓ’ ભાગ; ૧, પાન ૩૪-૩૭. ઇ. સ. ૧૯૨૬; (૨) અપભ્રંશ-પાઠાવલી, સં. મધુસૂદન ચિ. મોદી. પ્રકાશક: ગુજરાત વર્તમાનપત્ર સંસ્થા, અમદાવાદ. ઇ. સ. ૧૯૩૫. (૩) Nagpur University Journal No I, December 1935, ‘Svayambhū and his two poems in Apabhramśa’ by Prof. H. L. Jain pp. 76-84. (૪) ‘સ્વયંભૂદેવ’ માટે Journal of the University of Bombay Vol. V, Part. III November 1936. ‘Svayambhūchandas’ Chap. IV-VIII pp 69-93. given as an Appendix to the Art. ‘Apabhramśa Metres’ by Prof. H. D. Velankar (૫) ‘સ્વયંભૂદેવ’ માટે: Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society 1935. pp. 18-58, ‘Svayambhūchandas: Chap. I-III.

આ નોંધ તૈયાર કરવામાં ઉપરનાં લખાણોમાંથી નં. ૩, નં. ૫ મારી સમક્ષ હતાં નહિ.

2. અપભ્રંશપાઠાવલી: ઉદ્ધરણ: ૧-૪: ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂતા કાવ્યમાંથી નમૂના આપે છે. તે ઉપરાંત તે જ ગ્રંથમાં દિપ્પણી, પા. ૩-૫; ૨૩-૨૫. કવિના જીવન અને કવન ઉપર વિવેચન આપે છે.

૧.૨.૭.

§૨. પડમચરિયની હાથપ્રતમાં ૨૨૬ પત્ર છે. પાન ૧૯,૨૪,૩૪,૧૬૪-૧૭૨ (એટલે ૯ પાન), ૧૮૯-૧૯૧ (એટલે ૩ પાન) - આમ બધાં થઇને ૧૫ પત્ર ખૂટે છે. આ હાથપ્રતમાં મૂળગ્રંથકારની પ્રશસ્તિ તેમ જ લલિયાની પ્રશસ્તિ પણ છે. લલિયાની પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે :

સંવત્ ૧૫૨૧ વર્ષે જ્યેષ્ઠમાસે સુદિ ૧૦ બુધવારે । શ્રીગોપાચલદુર્ગે
શ્રીમૂલસંઘે ચલાત્કારગણે શ(=સ) રશ્વ(=સ્વ) તીગચ્છે । શ્રીનંદિસંઘે ।
મદ્દારકશ્રીકુંદકુંદાચાર્યાન્વયે મદ્દારકશ્રીપ્રભાચન્દ્રદેવા । તત્પટ્ટે શ્રીશુભ-
ચન્દ્રદેવા । તત્પટ્ટે શ્રીજિનચન્દ્રદેવા । તત્ત્ર શ્રીપદ્માનંદિશિષ્યશ્રીમદનકીર્તિ-
દેવા । તત્તિસ(=શિ)ષ્ય શ્રીનેત્રાનંદિદેવા । તન્નિમિત્તે પંડેલચાલત્થ લુહા-
જ્યાગોત્રે સં૦ ગહી ધામા તદ્ધાર્યા ધનશ્રી તયોઃ પુત્રૌ સં૦ ર્હ્વા વીજ્ઞા તત્ર
સં૦ ર્હ્વા માર્યા સાધ્વી સવીરી તયોઃ પુત્રાઃ સં૦ વોહિથ મરહા । સં૦ ર્હ્વ
(=શ્વ)રપુત્રી સૂવા ॥ ઇતૈર્નિજ ન્યાન્યા (=જ્ઞાના) વરણીયકર્મશ્રયાર્થે દ્વં
પુસ્તકં લિખાપિતં જ્ઞાનવાન્ જ્ઞાનદાનેન નિર્ભયોઽભયદાનતઃ । અન્ન ... ॥
॥ છ ॥ છ ॥ છ ॥ શ્રી ॥

આ લલિયાની નોંધ ઉપરથી પ્રતીત થાય છે કે હાથપ્રત સં૦ ૧૫૨૧માં લખાએલી છે; અને દ્વિગંબર પરંપરામાં આ પુરાણનો ઉદ્ભવ થયો છે. હાથપ્રત કાગળની છે. લાખાના પરિશીલનમાં એટલી વાત ધ્યાન રાખવી ઘટે કે મૂળ કવિના લખાણ પછી આ હાથપ્રત સાત આઠ સૈકાં પછી લખાએલી છે. તે દૃષ્ટિએ લખાણની જોડણી, ક્ષેપક ઉમેરાઓ અને ઉદ્ધાર કરવાને નામે કેટલાક સુધારા-વધારા થયા હોય એ સંભવિત છે. અને તેના પૂરાવાઓ પ્રસ્તુત પુરાણ ગ્રંથોમાં પણ છે. પરંતુ આગળ સિદ્ધ કરવામાં આવશે તે પ્રમાણે અપભ્રંશ સાહિત્યિક લાખા થઈ ત્યારે જ આ પુરાણ ગ્રંથોની રચના કરવામાં આવી છે; એટલે પછીના સુધારા-વધારાઓથી લાખાવિપર્યાસ ખાસ થયો હોય એવો સંભવ નથી.

§૩. એ જ રીતે પડમચરિય ના આરંભ ભાગમાં તથા કાવ્યના અંતભાગે કવિએ નોંધેલો પરિચય ચતુર્ભુજ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન ઉપર ઘોતક થઈ પડશે. પડમચરિય ની બે સંધિ પરિશિષ્ટમાં આપી છે; એટલે પ્રસ્તુત અવતરણો જ અહીં આપીશું. આરંભમાં સંધિ ૧, કડવક ૨ નો છેલ્લો ભાગ કવિનો કાંઈક પરિચય આપે છે :

પુણુ પવર્હિં સંસારારાપં કિત્તિહરેણ અણુત્તરવાપં ।
પુણુ રવિસેનાયરિયપસાપં બુદ્ધિય અવગાહિય કહરારં ।
પડમિણિજણિગબ્ધસંભૂયં મારુપપવરુવઅણુરાપં ।
અહતણુપણ પર્હિહરગર્ષે છિધ્વરણાસે પવિરલદર્ષે ।
ગિમ્મલપુણ્ણપવિત્તકહકિસણુ આદપ્પહ ।
જણહ સમાણિજ્ઞંતપણ થિર કિત્તિ વિદપ્પહ ॥

ઉપરની પંક્તિઓનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે :

“વળી આ પ્રમાણે સંસાર ઉપર રાગ વિનાના, કીર્તિને પામેલા અને જેની વાણીથી કોઈખીજની વાણી ચઢતી નથી તેવા કવિરાજ [સ્વયંભૂએ] આચાર્ય રવિ-ષેણની કૃપાથી પોતાની બુદ્ધિએ કરીને [રામની કથારૂપ નદીમાં] અવગાહન કર્યું. ‘મારુએએવ’ (=માઉર દેવ) ના રૂપ તરફના પ્રેમને લીધે પદ્મિની નામે માતાના ગર્ભમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા, અત્યંત પાતળા, લાંબાં અંગવાળા, ચીખા નાકવાળા, આછા છૂટા દાંતવાળા [કવિરાજ સ્વયંભૂથી] નિર્મલ, પુણ્યદાયક અને પવિત્ર રામની કથાનું કીર્તન આરંભાય છે. લોકો પાસેથી સન્માન પામેલા [મનુષ્યથી] સ્થિર કીર્તિનું અર્જન કરાય છે.”

ઉપરના અવતરણમાંથી કેટલીક બાબતો સ્પષ્ટ તરી આવે છે :

(૧) ‘આચાર્ય રવિષેણની કૃપાથી’^૪ – એટલે શું ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ રવિષેણનો સીધો શિષ્ય હશે; કે પછી જેમ સિદ્ધર્ષિ પોતાને હરિભદ્રના શિષ્ય તરીકે ઉલ્લેખે છે તેમ હશે ?^૫ રવિષેણે ‘પદ્મપુરાણ’ની રચના કરી છે; એટલે સ્વયંભૂ ફક્ત તેના પુસ્તકનો ભક્ત હોઈ, ‘આચાર્ય રવિષેણની કૃપાથી’ પઉમચરિયની પોતે રચના કરી, એમ વર્ણવતો હોય તો તે કલ્પના અશક્ય તો નથી જ.

(૨) તેની માતાનું નામ પદ્મિની હતું; તેના પિતાનું નામ ‘મારુએવ’=છંદોદૃષ્ટિએ ‘મારુએવ’ હોય એમ સંભવે છે. સ્વયંભૂહ્રદમાં ‘મારુદેવ’ નામે એક અપભ્રંશ કવિનો ઉલ્લેખ છે; તે અને સ્વયંભૂનો પિતા એક હશે ? હાથપ્રતની અવ્યવસ્થા સ્થિતિને લીધે નામની ભ્રષ્ટતા સંભવિત છે.

(૩) પોતાની જાતનું જીગૃહ્સાપૂર્વક વર્ણન કર્યું છે તે તો કેવલ પોતાની શરીર-સૌન્દર્ય પ્રત્યેની અનાસક્તિ બતાવવા માટે કર્યું હોય એમ દેખાઈ આવે છે. ખીજે અપભ્રંશકવિ પુષ્પદંત પણ પોતાની જાતને આ પ્રમાણે વર્ણવે છે.^૬

(૪) પોતાને સ્વયંભૂ ‘કવિરાજ’ તરીકે ઓળખાવે છે અને વારંવાર ‘કવિરાજ’ નામથી જ તેનો ઉલ્લેખ કાવ્યમાં પણ આવે છે.

§૪. આ ઉપરાંત સંધિ ૧, કડવક ૩,માં કેટલીક હકીકત તેના જીવન ઉપર પ્રકાશ પાડે તેવી આપે છે.

૩. જુઓ પ્રસ્તુત લેખ § ૧૪.

૪. ‘હરિભદ્રસૂરિના સમય’ ઉપરનો યુનિશ્રી જિનવિજયજીનો નિબંધ. First Oriental Conference, November 1919. Poona; અને ‘હરિમદ્ભૂત્તિકા સમયનિર્ણય’ જૈનસાહિત્યસંશોધક. ભા. ૧, અંક ૧, પા. ૫૮ થી ૬૩. સિદ્ધર્ષિના ગ્રંથ ઉપમિતિલવપ્રપંચાકથાનો પ્રશસ્તિ શ્લોક: આચાર્ય-હરિમદ્ભો મે ધર્મબોધકતો ગુરુ: । પ્રસ્તાવે માવતો હન્ત સ ઇવાજ નિવેદિત: ॥ આ શ્લોક ઉપરથી હરિભદ્રસૂરિને સિદ્ધર્ષિના પ્રત્યક્ષ ગુરુ માનવા તે અચ્ચાર્ય છે.

૫. જુઓ પ્રસ્તુત લેખ § ૧૩.

૬. સરખાવો પુષ્પદંત: ‘મહાપુરાણ’: સં. પ્રો. પી. એલ. વેદ; ૧, ૬; પં. ૧૨-૧૬:

હરં વપ્પ નિરક્કર કુક્કિલમુક્કુળરવેસેં હિંડમિ ચમ્મરુક્કુ ।

અહરુગમુ હોહ મહાપુરાણુ કુહરણ મવહ કો જલણિહાણુ ॥ ધત્થાહિ

બુદ્ધયણ સયંમુ પદં વિણ્ણવદ્ મદ્ સરિસડ અણ્ણુ ગાહિં કુકદ્ ।
 વાયરણુ કયાદ્ ન જાણિઅડ ગડ વિત્તિ સુત્તુ વક્કાણિયડં ॥
 ગડ પચ્ચાહારદો તત્તિ કિય ગડ સંઘિપ્પ ઉપરિ બુદ્ધિ દ્વિય ।
 ગડ ણિસુઅડ સત્તવિહત્તિયાડ છવ્વિહડ સમાસપડત્તિયાડ ॥
 છક્કારય દસલયાર ગ સુય વીસોવસગ્ગ પચ્ચય વહુય ।
 ગવ્વ ભાવ લદ્ધડ ણિવાયગણુ ગડ લિંગુ ડનાદ્ વક્કુ વયણુ ॥
 ગડ ણિસુણિડ પંચ મહાયકલ્લુ ગડ મરદ્ધુ ગ લક્કણુ છંદુ સલ્લુ ।
 ગડ બુદ્ધિઅડ પિંગલપથારુ ગડ ભમ્મહ-દંદિય લંકારુ ॥
 વવસાડ તોવિ ગડ પરિહરમિ વરિ રયડાવુત્તુ કલ્લુ કરમિ ।
 સામાણભાસ છુદ્ધુ મ વિહડડ છુદ્ધુ આગમજુત્તિ કિંપિ ઘડડ ॥
 છુદ્ધુ હોંતિ સુહાસુહવયણાં ગામેલ્લભાસપરિહરણાં ।
 રુદ્ધુ સજ્જણ-લોયદ્ધુ કિડ વિણડ જં અબુદ્ધુ પદરિસિડ અપ્પગડ ॥
 જં એવ વિરુસદ્ધ કો વિ જલુ તદ્ધો હત્થુત્થલ્લિડ લેડ છલુ ।

॥ ઘટ્તા ॥ પિસુણેં કિં અબ્ભત્થિયણ જસુ કોવિ ગ રુચ્છદ્ ॥

કિં ચ્છણદ્ધં ચંદુ મહગ્ગદ્ધેણ કંપંતુ વિમુચ્છદ્ ॥

“હે યુધજ્ઞન, સ્વયંભૂ તને વીનવે છે: ‘મારા જેવો અન્ય કોઈ કુકવિ નથી. વ્યાકરણ કદાપિ જાણ્યું નથી; વૃત્તિ કે સૂત્રનો અભ્યાસ કર્યો નથી. પ્રત્યાહારનું ચિંતન કર્યું નથી; સંધિના ઉપર બુદ્ધિ મૂકી નથી. સાત વિભક્તિઓ અને છપ્રકારની સમાસની પ્રવૃત્તિઓ સાંભળી નથી. છ કારક અને દશ લકાર તથા વીસ ઉપસર્ગ અને બહુ પ્રત્યયો સાંભળ્યા નથી. નિપાતગણ, લિંગ, ઉણાદિ અને વક્રવચન ઓરોઝરીતે પ્રાપ્ત કર્યા નથી. પાંચ મહાકાવ્ય, ભરત, લક્ષણ, સર્વ છંદ સાંભળ્યા નથી. પિંગલનો પ્રસ્તાર કે ભામહ અને દંડીના અલંકારો જાણ્યા નથી; તો પણ હું [કાવ્ય રચવાના] વ્યવસાયને ત્યજ દેતો નથી; અને રાજશ્રેષ્ઠીથી^૭ કહેવાયેલો હું કાવ્ય રચું છું. સામાન્ય-ભાષાને છૂટી કરી બેતા નહિ; શાસ્ત્રની યુક્તિ પ્રમાણે કાંઈક બેઠીને સમજાવે. ગામઠી ભાષાનાં વસ્ત્રો, શુભ અને અશુભ વચન પણ છે: જે મેં પોતાને અબુધ દર્શાવ્યો છે તે સજ્જન લોકોને વિનય કર્યો છે; કોઈક ખલ જે (=એ વિનય) તરફ જ ગુસ્સે થાય, તેને માટે (તે ખલના) હાથમાંથી સરી પડેલા છલને હું સ્વીકારી લઉં છું.—જેને કોઈ ગમતો નથી એ દુષ્ટ માણસને પ્રાર્થના કર્યાનો શો ઉપયોગ? શું રાહુ પૂર્ણિમા છે તેથી કંપતા ચંદ્રને મૂકી દે છે?”

ઉપરના ભાગ ઉપરથી કેટલાંક તેના જીવનનાં અંગો આપણને જાણવાનાં મળે છે:

(૧) વ્યાકરણ, છંદ:શાસ્ત્ર, નાટ્યશાસ્ત્ર વગેરેનો તેનો અભ્યાસ સારો હોવો જોઈએ. ખાસ કરીને વ્યાકરણના જુદા જુદા વિભાગોનું પણ તેણે ઉપરના ઉતારામાં દિગ્દર્શન કરાવ્યું છે. તે બતાવે છે કે વ્યાકરણનો તેનો પરિચય ઘણો સારો હોવો જોઈએ. પિંગલનો પણ તે ઉલ્લેખ કરે છે.

૭. રચદા=રાજશ્રેષ્ઠી કોઈ અજ્ઞાત દિગ્દર્શકારે હાથપ્રતના હાંસિયામાં લખ્યું છે; તે અર્થ સ્વીકારીને ‘રાજશ્રેષ્ઠી’ એ અર્થ આપ્યો છે.

(૨) ભામહ અને દંડીનો તેણે ઉલ્લેખ કર્યો છે. આ ઉલ્લેખ તેનો સમય નક્કી કરવામાં આપણને થણો ઉપયોગી થઈ પડે.

(૩) ‘રયઙ્કા’=રાજશેઠના કહેવાથી તેણે આ કાવ્ય લખ્યું છે. આ બાબત ઉપર પાછળના કેટલાક ઉલ્લેખોથી પ્રકાશ પડી શકે એમ છે.

(૪) અપભ્રંશની સામાન્ય-ભાષા-સામાન્યજનોની ભાષા-તરીકે નોંધ લેવામાં આવી છે. અને તેના ઉપર ‘ગામઠી-ભાષા’ની પણ અસર થયેલી છે.

§૫. ચતુર્મુખના જીવન અને કવનની અન્ય માહિતી પદ્મચરિયની અંત-પ્રશસ્તિ ઉપરથી મળતી પડે છે. તેમાં ચતુર્મુખના પુત્ર ત્રિભુવનની પણ માહિતી આપણને પ્રાપ્ત થાય છે. આખીય ચતુર્મુખના પુત્ર ત્રિભુવનની લખેલી પ્રશસ્તિ નીચે મુજબ છે :

इय पौमचरियसेसे सयंभुएवस्स कहवि उच्चरिप

तिहुअणसयंभुरइए राहवनिष्ठाणपद्ममिणं ॥ छ ॥

वंदइ-आसिय तिहुयणमयंभु परिविरइयम्मि महाकवे ।

पौमचरियस्स सेसे संपुण्णो णवइमो सग्गो ॥ संधि ॥ ૧૦ ॥

પોમચરિયં સમ્મસં ।

“આ પ્રમાણે સ્વયંભૂદેવથી કોઈરીતે બાકી રહી ગયેલા અને ત્રિભુવનસ્વયંભૂથી રચાયેલા પદ્મચરિતના બાકીના ભાગમાં આ રાઘવનિર્વાણ નામે પર્વ છે.

વંદકના આશ્રિત ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ રચેલા પદ્મચરિતના બાકીના મહાકાવ્યમાં નેવુમો સર્ગ પૂરો થયો ॥ સંધિ ૮૦ ॥ પદ્મચરિત સમાપ્ત ॥

આ પ્રમાણે પદ્મચરિત ચતુર્મુખ સ્વયંભૂએ અધુરું મૂકેલું તે તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ પૂરું કર્યું. મહાકાવ્ય ૮૦ સર્ગમાં પૂરું થયું. ત્રિભુવન સ્વયંભૂ ‘વંદઇ’ કે ‘વંદય’ (=વંદક) નામે રાજશ્રેષ્ઠીનો આશ્રિત હતો.

આ પ્રશસ્તિના વધારાની ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે :

सिरिविज्जाहरकंडे संधीउ ह्योन्ति वीसपरिमाणा ।

उज्झाकंडम्मि तद्वा बावीस मुणेह गणणाए ॥

चउइह सुंदरकंडे एक्कहियवीस मुज्झकंडे य ।

उत्तरकंडे तेरह संधीउ णवइ सच्चाउ ॥

“શ્રી વિદ્યાધરકાંડમાં વીસસંખ્યામાં સંધિઓ છે; તેજ પ્રમાણે અયોધ્યાકાંડમાં ગણતરીએ બાવીસ, સુંદરકાંડમાં ચૌદ, યુદ્ધકાંડમાં એકવીસ, અને ઉત્તરકાંડમાં તેર સંધિઓ છે : કુલ નેવુ સંધિઓ છે.”

આ ગાથાઓ પછીની ગાથાઓ ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવનના જીવનની માહિતી આપે છે :

तिहुअणसयंभु णवरं एक्को कइरायच्चकिणुप्पन्नो ।

पउमचरियस्स चूलामणि व सेसे कयं जेण ॥

कइरायस्स विजयसेसियस्स वित्थारिउ जसो भुवणे ।

तिहुअणसयंभुणा पउमचरियसेसेण णिस्सेसो ॥ छ ॥

તિહુઅણસઅંબુધવલસ્સ કો ગુણો ઘનિંઝં જપ તરહ ।
 બાલેળ વા જેણ સયંબુકલ્લભારો સમુષ્ઠો ॥
 વાયરણદહુકલ્લંધો આગમઅંગો પમાણવિયડપઓ ।
 તિહુવણસયંબુધવલો જિણતિત્થ વહુઝ કલ્લભરં ॥ છ ॥
 ચઝમુહસયંબુપવાણ વાણિયત્થં અચ્ચલ્લમાણેણ ।
 તિહુઅણસયંબુરહ્યં પંચમિચરિયં મહચ્છરિયં ॥
 સઘે વિ સુઆ પંજરસુઅ ઘ પઢિઅક્કલરાઈં સિવ્વલંતિ ।
 કહરાયસ્સ સુઝ સુય ઘ સુદ્ધગમ્મસંભૂઓ ॥
 તિહુઅણસયંબુ જહ્ણ ન હુંતુ ણંદણો સિરિસયંબુદેવસ્સ ।
 કલ્લં કુલં કવિત્તં તો પચ્છા કો સમુદ્ધરહ ॥
 જહ્ણ ન હુઝ ચ્છંદચ્છુડામણિસ્મ તિહુઅણસઅંબુ લહુતણઝ ।
 તો પદ્ધડિયાકલ્લં સિરિપંચમિ કો સમારેઝ ॥
 સઘો વિ જણો ગેણહઈં ણિયતાયથિદ્ધત્તદ્ધસંતાણં ।
 તિહુઅણસયંબુણા પુણ ગહિયં ણં સુકહિત્તસંતાણં ॥
 તિહુઅણસયંબુમેક્કં મોત્તૂણ સયંબુકલ્લમયરહરો ।
 કો તરહ ગંતુમત્તં મજ્ઞે ણિસ્સેસસીસાણં ॥
 રહ્ય ચારુ પોમચરિયં સયંબુપ્પેણ રહ્યં સમત્તં ।
 તિહુઅણ સયંબુણા તં સમાણિયં પરિસમત્તમિણં ॥
 ચેષ્ટિતમયણં ચરિત્તં કરણં ચારિત્તમિત્યાત્મીયચ્છન્દઃ ।
 પર્યાયા રામાયણમિત્યુક્કં(કત્તં)તેન ચેષ્ટિતં રામસ્ય ॥
 વાચયતિ શ્રુણોતિ જનસ્સત્થાયુર્વૃદ્ધિમીયતે પુણ્યં ચ ।
 ચલ્લહસ્તો રિપુરપિ ણ કરોતિ વૈરમુપસમેતિ ॥
 માઝરસુય-સિરિકહરાયતણયકયપોમચરિયઅવસેસં ।
 સંપુણ્ણં સંપુણ્ણં વંદઓ લહહ સંપુણ્ણં ॥
 ગોદંદમયણસુઅણંત વિરહ્યં વંદહ-પદ્મતણયસ્સ ।
 વચ્છલદાપ તિહુઅણસયંબુણા રહ્યં મહાકલ્લં ॥
 વંદહ-નાગ-સિરિપાલપહુદ્ધમચ્ચયણગણસમૂહસ્સ ।
 આરોગત્તસમિદ્ધી સંધિ સુહં દોઝ સઘસ્સ ॥
 સત્તમહાસગ્ગં ગીતિરયણમૂસાસુ રામકહ્વકણ્ણા ।
 તિહુઅણસયંબુજણિયા પરિણઝ વંદહ્યમણતણઝં ॥

॥ ઇતિ રામાયણપુરાણસમાપ્તં ॥

ઉપરની ગાથાઓનો નીચે પ્રમાણે અર્થ છે :

“કવિરાજચક્રવર્તીથી ઉત્પન્ન થએલો ત્રિભુવન સ્વયંભૂ જ એકલો પુત્ર છે - જેણે પદ્મચરિત્રનો શેષવિભાગ મસ્તક ઉપરના મુકુટમણિ જેવો રચ્યો છે.

જેમનો વિજય જ શેષ રહ્યો છે તેવા કવિરાજનો ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ પદ્મચરિત્રના શેષભાગથી સંપૂર્ણ ચશ ભુવનમાં વિસ્તાર્યો છે.

ધવલની ઉપમાને યોગ્ય ત્રિભુવન સ્વયંભૂના ગુણને કોણ જગતમાં વર્ણવવા શક્તિ-
વાન છે ?—આલક હોવા છતાં પણ જેણે સ્વયંભૂના કાવ્યભારનું વહન કર્યું છે.

વ્યાકરણના જેવી દૃઢ અને ઉત્તુંગ જેની કાંધ છે, વ્યાકરણ જેનાં અંગ છે, પ્રમાણ-
શાસ્ત્રીપી વિકટ જેના પગ છે તેવો ત્રિભુવન સ્વયંભૂરૂપી ધવલ કાવ્યરૂપી ભારને
જિનના તીથે લઈ જાવ.

ચતુર્મુખ સ્વયંભૂદેવની વાણીના અર્થને ન ચાખનાર ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ મહા-
આશ્ચર્યકારક પંચમીચરિત રચ્યું છે.

પાંજરાના શુકની માફક અધા પુત્રો પટેલા અક્ષરોને જ લાણે છે; કવિરાજનો પુત્ર
શ્રુત^૧ (= શાસ્ત્ર)ની માફક શુદ્ધગલમાંથી ઉત્પન્ન થયો છે.

શ્રીસ્વયંભૂદેવનો પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂ ન હોત તો કાવ્યનો, હુલનો અને કવિત્વનો
પછી કોણ ઉદ્ધાર કરત ?

જે છંદચૂકામણિ (ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ) નો નાનો પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂ ન હોત
તો પદ્મડિયા છંદમાં તૈયાર કરેલા શ્રીપંચમીકાવ્યની કોણ સંપૂર્ણ રચના કરત ?

અધાય મનુષ્યો પોતાના પિતાએ કમાયેલા દ્રવ્યના વારસાને ગ્રહણ કરે છે; પણ
ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ તો તેના સુકવિત્વના વારસાને લીધો છે.

અધાય શિષ્યોમાં, એક ત્રિભુવન સ્વયંભૂ સિવાય સ્વયંભૂના કાવ્ય સમુદ્રમાં જવા
જેટલો પણ કોણ શક્તિમાન છે ?

સ્વયંભૂદેવે રચેલું આ સુંદર પદ્યચરિત સમાપ્ત થયું છે; ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ આ
કાવ્યને સંપૂર્ણ બનાવી દીધું.

અચળ-ના પર્યાયો : ચેષ્ઠિત, ચરિત્ત, કરણ, ચારિત્ર, આત્મીયછંદ :,
છે; આથી રામનું ચેષ્ઠિત તે રામાયણ કહેવાયું.

જે મનુષ્ય આ ગ્રંથને સાંભળે છે અને વાંચે છે તેનાં આયુષ્ય અને પુણ્ય વૃદ્ધિ પામે
છે; ખડ્ગ હાથમાં લઈને આવેલો શત્રુ પણ તેના ઉપર [આક્રમણ ?] કરતો નથી;
અને તેનું વેર શાન્ત થઈ જાય છે.

વંદકના પ્રથમ પુત્ર ગોવિંદના મનન અને શ્રવણને અર્થે આ રચ્યું છે; વત્સલતાને
લીધે ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ મહાકાવ્ય રચ્યું છે.

વંદક, નાગ, શ્રીપાલ વગેરે ભવ્યજનોના સમૂહને આરોગ્ય અને સમૃદ્ધિ થાવ:
અધ્યાંયને સર્વપ્રકારે સુખ થાવ.

સાત મોટા સર્ગના ગાનરૂપી ભૂષણવાળી તે રામકથારૂપી કન્યા—જેણે ત્રિભુવન
સ્વયંભૂએ જન્મ આપ્યો છે તે—વંદકના મનરૂપી તનય સાથે લગ્ન કરો.”

ઉપરની ગાથાઓમાંથી નીચેની વાતો તરી આવે છે:

ચતુર્મુખ સ્વયંભૂને અનેક પુત્રો હતા; અને અનેક શિષ્યો પણ હતા. ત્રિભુવન તેનો
નાનો પુત્ર હતો. અને તેના પિતાનો શિષ્ય પણ હતો. અનેક શિષ્યોમાં તેણે એકલાએ

જ અતુર્મુખના સમુદ્ર સરખા પદ્મપુરાણમાં અવગાહન કર્યું હતું. તે કટાક્ષ કરતાં કહે છે કે અન્ય પુત્રો તો પોતાના પિતાની સમૃદ્ધિનો વારસો લે છે જ્યારે ત્રિભુવને તો પોતાના પિતાની કાવ્યશક્તિનો વારસો લીધો છે. ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ પદ્મપુરાણના છેલ્લા સાત સર્ગો લખ્યા—એટલે કે, છેલ્લા સાત સંધિઓની રચના કરી. આપણે જોઈ ગયા તે પ્રમાણે પદ્મપુરાણમાં ૯૦ સંધિઓ છે; એટલે સંધિ ૮૩ થી આરંભી પદ્મપુરાણમાં ત્રિભુવનની રચના છે; જો કે સંધિ ૮૩ ની પુષ્પિકામાં ૮૩ મો સંધિ ત્રિભુવને રચ્યાનો ઉલ્લેખ છે. ત્રિભુવન વંદક નામે કોઈ નગરશેઠનો આશ્રિત હતો. વંદકના પુત્રનું નામ ગોવિંદ હતું. વંદકના પ્રથમ પુત્ર ગોવિંદ તરફના પ્રેમને લીધે ત્રિભુવને આ ચૂડામણિ સમો પદ્મપુરાણનો બાકીનો ભાગ પૂરો કર્યો. વંદક, નાગ, શ્રીપાલ વગેરે શ્રાવકોનો ખાસ ટેકો ત્રિભુવનને હશે. વંદકને તો પોતાના આશ્રય-દાતા તરીકે અનેક સ્થળે ત્રિભુવન નોંધે છે; જ્યારે નાગ અને શ્રીપાલ તેના બીજા નાના આશ્રયદાતા હશે. ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ આ શેષભાગ પૂરો કરવા ઉપરાંત પદ્મડિયા છંદમાં ‘શ્રીપંચમીચરિત’ નામે અપભ્રંશ કાવ્યની રચના કરી હતી. ઉપર ટાંકેલી છેવટની પુષ્પિકાને છેડે પંચમીચરિતનો બે વાર ઉલ્લેખ કર્યો છે. તે કાવ્યની રચના તેણે સ્વયંભૂદેવની વાણીનો અર્થ આખ્યા વિના કરી છે એમ તે જણાવે છે. વ્યાકરણ, આગમ એટલે શાસ્ત્રો અને પ્રમાણશાસ્ત્રનો ત્રિભુવન સારો જ્ઞાતા હતો.

આ પુષ્પિકામાં ઉપર પ્રમાણે ત્રિભુવને પોતાના પિતા અતુર્મુખના જીવનની માહિતી પણ આપી છે. અતુર્મુખના પિતાનું નામ ‘માઝર’ હતું. આ ઉલ્લેખ આદિના ઉલ્લેખ ‘મારુણવ’ની ઠુંચી પૂરી પાડે છે. મારુણવ એ પાઠ ‘માઝરદેવ’ હોય એ જ યોગ્ય છે. અને આ માઝરદેવ તે સ્વયંભૂછંદઃ માં નોંધેલ માઝરદેવ હોવો જોઈએ. તે ઉપરાંત અતુર્મુખ ‘છંદચૂડામણિ’ને નામે પણ પ્રખ્યાત હતો. તેનું અન્ય ઉપનામ ‘કવિરાજ’ પણ હતું. અતુર્મુખના વિદેહ થયા પછી તેણે આ પદ્યચરિત કાવ્યને પૂર્ણ કર્યું.

§ ૬. ઉપરના પૂરાવાઓ ઉપરાંત પણ કેટલેક સ્થળે અતુર્મુખના જીવન અને કવન સંબંધી પૂરાવાઓ કાવ્યની વચમાં પણ કેટલેક સ્થળે દૃષ્ટિગોચર થાય છે. મારી નોંધો તો કેવળ ઉડતી નોંધો છે; પરંતુ જો કાવ્યનું ચિત્તવટલયું સંપાદન થાય તો તે પૂરાવાઓ વધારે પ્રમાણમાં પણ મળે એ અસંભવિત નથી. મારી પાસે જે પૂરાવાઓ છે તે નીચે પ્રમાણે છે. પદ્યચરિતની પ્રત્યેક સંધિની પુષ્પિકામાં નીચે પ્રમાણે કથન છે: દા. ત. પહેલા સંધિને અંતે:

इय एत्थ पउमच्चरिए धणंजयासियसयंभुएवकए ।

जिणजम्मुप्पत्ति इयं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥

“આ પ્રમાણે ધર્મજયના આશ્રિત સ્વયંભૂદેવે કરેલા પદ્યચરિતમાં જિનજન્મોત્પત્તિ નામે પહેલું પર્વ કહેવાયું.” આ ઉપરથી માલમ પડે છે કે ‘રયઢા’=‘રાજશ્રેષ્ઠી’ તે આ ધર્મજય હોય એ સંભવિત છે.

વિદ્યાધરકાંડ—એટલે સંધિ ૨૦ મીને છેડે નીચે પ્રમાણે વધારાની ગાથાઓ માલમ પડે છે:

દ્વય વિજ્ઞાહરકંડં વીસર્હિં આસાસર્પર્હિં મે સિદ્ધં ।
 યન્નિમ ઉજ્જ્ઞાકંડં સાહિજ્ઞં તં નિસામેહ ॥
 ધ્રુવરાય વ તદ્વય મુઅપ્પણસિણ્ણીસુયાણુપાઢેણ ।
 નામેણ સામિઅઘ્ઘા સયંમુઘરિણી મહાસત્તા ॥
 તીય લિહાવિયમિણં વીસર્હિં આસાસર્પર્હિં પઢિબ્બં ।
 સિરિવિજ્ઞાહરકંડં પિ વ કામદેવસ્સ ।

“આ પ્રમાણે વિદ્યાધરકાંડ મેં વીસ આશ્વાસકમાં કહ્યો છે; હવે અયોધ્યાકાંડને હું કહું છું; તેને સાંભળો.”

બીજી ગાથાની પ્રથમ પંક્તિ સમજી શકાતી નથી. બીજી પંક્તિ: ‘નામે સ્વામીની માફક સ્વયંભૂની પત્ની મહાસત્તવાળી છે’

‘તેણે વીસ આશ્વાસકમાં બંધાયેલો શ્રીવિદ્યાધરકાંડ કામદેવને જોય (રતિ લખાવે તેમ મને) લખાવ્યો.”

તેની પત્ની સંબંધી ઉલ્લેખ સ્વયંભૂ ૪૨ માં સંધિના અંતમાં પણ કરે છે:

આદિશ્ચુરવિ પઢિમોવમાય આદિશ્ચંચિમાય ।

વિઅમઉજ્જ્ઞાકંડં સયંમુઘરિણીય લેહાવિયં ॥

“દેહની ઉપમાએ કરીને આદિત્ય સમાન આદિત્યદેવી એ-સ્વયંભૂની ગૃહિણીએ આ બીજે અયોધ્યાકાંડ લખાવ્યો.”

ઉપરનાં અવતરણો ઉપરથી નીચેની બાબતો સિદ્ધ થાય છે. ૧) સ્વયંભૂએ પદ્મ-ચરિત ધનંજય નામે રાજશ્રેષ્ઠીના આશ્રયે રચ્યું; ૨) સ્વયંભૂની પત્નીનું નામ આદિત્ય-દેવી હોય તે સંભવિત છે. ૩) તેણે વિદ્યાધરકાંડ અને અયોધ્યાકાંડ એ બે લખાવ્યા હતા અને એ રીતે પતિના ધર્મ અને વાહ્મયના કાર્યમાં તેણે સક્રિય મદદ કરી હતી. તે પણ આ લખાવાને બાણુતી હોવી જોઈએ. ત્રિભુવન સ્વયંભૂ એક સ્થળે ‘કુલકવિત્વ’ કહે છે તે યથાર્થ જ છે; કારણ કે આ બધા પુરાવા ઉપરથી ચતુર્મુખનું આખું ચ કુટુંબ વિદ્વાન હશે એમ દેખાઈ આવે છે.

§૭. આ ઉપરાંત સંધિ ૨૩ ના આરંભમાં સ્વયંભૂ નીચે પ્રમાણે અભ્યર્થના કરે છે. બે કે તેના જીવન ઉપર એનાથી એટલો બધો પ્રકાશ પડતો નથી પણ તેની નોંધ લેવી અહિં આવશ્યક છે:

તહિ સુણિ સુવ્વયતિત્થ વુહયણ કણ્ણરસાયણુ,

રાવણ-રામહુ જુજ્ઞુ જં તં નિસુણહુ રામાયણુ ।

ળમિઝ્ઞ મહારુડ રિસહજિણુ, પુણુ કવ્વહો ઉપ્પરે કરેવિ મણુ ।

જપ્પ લોયહુ સુયણહુ પંઢિયાહુ, સદ્દત્થસત્થપરિવહિયાહુ ।

કિં ચિત્તદ્દ મેળ્લહવિ સક્કિયાદ્દં, વાસેણ વિ જાદ્દં ન રંજિયાદ્દં ।

તો કવણુ ગહણુ અમ્મારિસેર્હિં, વાયરણવિહ્વણર્હિં આરિસેર્હિં ।

કદ્દ અત્થિ અણેયમેયમરિય, જે સુયણસહાસર્હિં આયરિય ।

ચક્રલપ્તિ કુંલપ્તિ સંધપ્તિ, પવણદુઃખ રાસાલુપ્તિ ।
 મંજરિયવિલાસિણિકકુડેતિ, સુહૃદ્દેહિ સદેહિ સ્વદેહિ ।
 હૃદં કિંપિ ન જાણમિ મુક્તુ મણે, ણિયબુદ્ધિ પયાસિય તો વિ જણે ।
 જં સયલે વિ તિહુવણે વિત્થરિડ, આરંભિડ પુણુ રાહવચરિડ ॥

ઉપરના અવતરણનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે:

“હે બુધ્ધનો, તો સારી રીતે વ્રત પાળનારના તીર્થરૂપ, કાનના રસનું સ્થાન તેને સાંભળો—રામ અને રાવણનું જે યુદ્ધ છે—તે રામાયણ સાંભળો. ભટ્ટારક એવા ઋષભ-જનને નમસ્કાર કરીને હું કાવ્યના ઉપર ચિત્ત કરું છું. જગતમાં [સામાન્ય] લોકોનાં, સજ્જનોનાં, અને શબ્દ અને અર્થનાં શાસ્ત્રોથી પરિવર્ધિત અનેલા પંડિતોનાં શું ચિત્તો—જે વ્યાસથી પણ બુધ કરી શકાયું ન હતાં—ગ્રહણ કરવાં શું શક્ય છે? તો પછી વ્યાકરણ વિનાના એવા અમારા જેવાથી તો ક્યાંથી શક્ય હોય? ચક્રક, કુલક, સંધક, અને ઉદ્ધત પવન જેવો રાસક, મંજરિકા, વિલાસિની, નર્ફટક એવા સુંદર છંદો અને ગુણગુણતા શબ્દોથી લોભાયેલા હજારો સજ્જનોથી આદર પામેલા અનેક ભેદોને જાણનારો (શબ્દશઃ ભરેલો) કવિ હોય છે; હું તો કાંઈ જાણતો નથી; અને મૂર્ખ છું;—છતાંય મેં મારી બુદ્ધિને મનુષ્યોમાં પ્રકાશિત કરી, જે આખા ય ત્રિભુવનમાં વિસ્તરેલું છે તે રાઘવનું ચરિત આરંભ્યું છે.”

ઉપરના ફકરામાં કવિ ફરીથી પોતાનું છંદોવિધાનનું જ્ઞાન બતાવે છે અને સજ્જનો પ્રત્યે પોતાની નમ્રતા બતાવે છે.

§૮. આ ઉપરાંત ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન અને કલ્પના અનેક પૂરાવાઓ મળી શકે. અર્વાચીન પ્રાંતીય ભાષાઓના શબ્દો અને વ્યાકરણનાં રૂપો ઉપર પણ તેની ભાષામાંથી પ્રકાશ મળી શકે. આ બધું આખું ય કાવ્ય પ્રસિદ્ધ થાય ત્યારે સંભવિત અને. ‘પદમચરિય’ની વસ્તુ કાંઈ નવીન નથી. આ દિગંબર પરંપરાનું કાવ્ય છે. સંધિ ૧—૮૩. ચતુર્મુખ સ્વયંભૂએ રચેલા છે; બાકીના સાત સંધિ ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ રચેલા છે. સંધિ ૫૯ માં વિવિધ પ્રકારના છંદોનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. સંધિ. ૪૯ માના આરંભમાં શબ્દચિત્રની યોજના કરવામાં આવી છે. દરેક સંધિને છેડે આપેલા શ્લોકમાં સંધિ, વિષય અને કવિના નામની પ્રશસ્તિ ગાથા છે. સંધિના અંત્ય કડવાની છેલ્લી ઘટ્ટામાં ‘સ્વયંભૂ’ નામનો ઉલ્લેખ મળે છે.

§૯. ‘પદમચરિય’ ઉપરાંત ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ ‘હરિવંશપુરાણ’ની રચના કરી છે. ગ્રંથનું નામ પ્રત્યેક સંધિને અંતે જણાવ્યા પ્રમાણે ‘અરિદુલેભિચરિય’=‘અરિદ્ધનેભિચરિત’ છે. આ ગ્રંથનો પરિચય પૂર્વનિર્દિષ્ટ ભાંડારકર ઓરિએન્ટલ રિસર્ચ ઇન્સ્ટીટ્યુટની હાથપ્રત ઉપરથી આપવામાં આવ્યો છે. આ ગ્રંથનો આરંભ.

॥ ૐ નમઃ ॥ ૐ નમો વીતરાગાય । અથ સ્વયંભૂમુનિકૃત હરિવંશપુરાણ લિખ્યતે । અને પછીથી કાવ્યનો આરંભ થાય છે:—

સિરિપરમાગમણાલુ સયલકલાકોમલદલુ,
 કરહુ વિહસણુ કળે જાયલકુરુલકુરુપ્પલુ ॥ છ ॥

પળમામિ ખેમિતિત્થંકરહો હરિબલકુલનહયલસસહરહો ।
 તહલોકલચ્છિલચ્છિયરહો પરિપાલિયઅજરામરપુરહો ।
 કલ્લાણનામગુણરોહણહો પંચિદિયગ્ગામનિરોહણહો ।
 મામંડલમંદિયઅવયવહો પરિપક્કમોક્ષલપાયવહો ।
 તહલોકસિહરસિંહાસણહો નિરુ નિરુવમચામરવાસણહો ।
 જસુ તણં તિત્થે ઉપ્પજ્ઞહં જિહ છણુ ચંદુગ્ગહે વિમલપહ ।

×

×

×

॥ ઘત્તા ॥ સાસયસુક્કલિહાણુ અમરભાવઉપ્પાયણુ ।

કણ્ણંજલિહિ પિપ્પહુ જિણવરવયણરસાયણુ ॥ ૧ ॥

ઉપરના કડવકમાં સ્તુતિ અને આરંભ છે. ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ખાસ ઉપયોગી ન હોવાથી તેનું ભાષાંતર આપવું આવશ્યક નથી. બીજું કડવક નીચે પ્રમાણે છે:

ચિંતવહ સ્વયંભૂ “કાઈં કરમ્મિ હરિવંસમહણ્ણુ કે તરમ્મિ ।
 ગુરુવયણતરંડુ લલ્લુ નવિ જમ્મહો વિ ણ જોહુ કો વિ કવિ ।
 ણુ ણાહુ વાહત્તરિકલુ એકુ વિ ણ પરિમોક્કલુ” ।
 તહિં અવસરિ સરસહ ધીરવહ “કરિ કલ્લુ દિણ્ણ મહ વિમલમહ” ।
 હંદેણ સમપ્પિય વાયરણુ રસુ ભરહેં વાસેં વિત્થરણુ ।
 પિંગલેણ છંદપયપત્થારુ ભમ્મહં દંડણિહિં અલંકારુ ।
 વાણેણં સમપ્પિયં ઘણઘણં તં અક્કલરંડંબરુ ઘણઘણં ।
 સિરિહરિસેણિં પનિયુ ણિત્તણુ અવરેહિં મિ કહિં કહિત્તણુ ।
 છંદણિયદુવહધુવણિં જહિય ચડમુહિણ સમપ્પિય પદ્ધહિય ।
 જણણયણાણંદજ્ઞેરિયણ આસીસણ સઘહુ કેરિયણ ।
 પારંભિય પુણુ હરિવંસકહા સસમયપરસમયવિચારસહા ।
 ॥ ઘત્તા ॥ પૂછહ માગહણાહુ “ભવજરણમરણવિચારા ।
 થિયુ જિણસાસણિ કેમ કહિ હરિવંસુ ભડારા ॥”

ઉપરના કડવકનું ભાષાંતર નીચે પ્રમાણે છે:

“સ્વયંભૂ ચિંતન કરવા લાગ્યો — ‘હું શું કરું ? હરિવંશરૂપી મોટો સમુદ્ર હું કેવી રીતે તરું ? ગુરુના વચનરૂપી હોડકું કે લક્ષ્ય — એવું કાંઈ મારી પાસે છે નહિ; અને જન્મથી માંડીને કોઈ પણ કવિને જોયો નથી; બહોતેર કળાઓને જાણી નથી; એકને પણ સંપૂર્ણ કરી નથી !’ તે અવસરે સરસ્વતીએ ધીરજ આપી, — ‘તું કાવ્ય કર; મંત્રને નિર્મલ શુદ્ધિ આપી છે.’ ઇંદ્રે વ્યાકરણ, ભરતે રસ (= રસશાસ્ત્ર) અને વ્યાસે વિસ્તાર-વાણું (મહાભારત) પૂર્ણ કર્યું. બાણકવિએ વાદળ જેવું વિપુલ એવું ઘણું પૂરું કર્યું છે. શ્રીહરિષેણે અને અન્ય કવિઓએ પણ નિત્ય નૂતન કવિતાને રચી છે. છંદ-નિકા, દ્વિપદી અને દ્રુવકોથી જડેલા પદ્ધતિયા છંદ ચતુર્મુખે પૂરા કર્યા. મનુષ્યોનાં નયનોને આનંદ આપનારી, બધાંયની આશીષથી સ્વસિદ્ધાન્ત અને પરસિદ્ધાન્તના વિચારને અનુકૂળ થાય એવી હરિવંશકથા તેણે આરંભી છે. માગધનાથે (શ્રેણિકે)

કહ્યું—“જન્મ, જરા અને મરણનો જેણે વિચાર કર્યો છે એવા હે લક્ષારક, જિન-શાસનમાં હરિવંશ કેવો છે—તે કહો.”

ઉપરના અવતરણથી ચતુર્મુખના જીવન ઉપર કેટલોક પ્રકાશ પડે છે:

(૧) વ્યાકરણના કર્તા ઇંદ્ર, રસશાસ્ત્રના કર્તા ભરત, મહાભારત અને પુરાણકાર વ્યાસ, છંદ:શાસ્ત્રના કર્તા પિંગલ, કવિ હરિષેણ અને કાદંબરીકાર બાણભટ્ટનો પણ ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે. બાણભટ્ટનો ઉલ્લેખ ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ઉપયોગી છે. બાણભટ્ટ હર્ષવર્ધનના સમયમાં થઈ ગયો એ ઇતિહાસસિદ્ધ વાત છે. ચતુર્મુખ સાતમા સૈકા પછી થઈ ગયો એ વાત બાણના ઉલ્લેખથી નિશ્ચિત થાય છે.

(૨) ‘છર્દનિકા, દ્વિપદી અને ધ્રુવકોથી જડેલા પદ્મડિયા છંદ ચતુર્મુખે પૂરા કર્યા’—આ ઉલ્લેખ બતાવે છે કે ‘પદ્મચરિય’નો મોટો ભાગ પૂરો કર્યો હતો. ‘પદ્મચરિય’ ‘પદ્મજડિયારામાયણ’ તરીકે જાણીતું હતું. ઉપર નોંધેલી બાબતો સ્વતંત્ર રીતે પણ, સિદ્ધ કરવા માટે પ્રમાણ છે. એટલે ઉપરનો ઉલ્લેખ પોષક પ્રમાણ તરીકે મદદગાર થાય છે.

(૩) આમાં પણ ભામહ અને દંડીનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે.

§૧૦. પ્રત્યેક સંધિને અંતે ‘સ્વયંભૂ’ના નામની પ્રશસ્તિ આપવામાં આવી છે. દા. ત. સંધિ ૧ ની પ્રશસ્તિ:

इय अरिट्टुणेमिचरिण धवलइयासियसयंभुदेवकण ।

पढमो समुहविजयाहिसेयणामो इमो सग्नो ॥

અથવા તો સંધિ ૧૩ ની અંત્ય પ્રશસ્તિ:

इय रिट्टुणेमिचरिण धवलइयासियसयंभुपवकण ।

.....जायवकांडं समाप्तं ॥ संधि १३ ॥

ઉપરની પ્રશસ્તિ ઉપરથી કાવ્યનું નામ ‘અરિટ્ટુનેમિચરિત=અરિટ્ટુણેમિચરિય’ હતું એ પ્રતીત થાય છે. ‘ધવલધ્રુવ’ નામના આશ્રયદાતાના આશ્રય હેઠળ આ કાવ્ય લખાયું હતું એ પણ સમભય છે.

આ હકીકત ઉપરાંત સંધિ ૯૨ ને અંતે આપેલી ગાથાઓ આ કાવ્યની રચના ઉપર ઘણો પ્રકાશ નાખે છે.

तेरह जाइवकंडे कुरुकंडेकूणवीससंधीओ ।

तह सट्टि जुज्झयकंडे एवं बाणउदिसंधीओ ॥ १ ॥

सोमसुयस्स य वारे तइयादियहम्मि फग्गुणे रिक्खे ।

सिउ णामेण य जोए समाणियं जुज्झकंडं व ॥ २ ॥

छव्वरिसाईं ति मासा एयारस वासरा सयंभुस्स ।

बाणवइसंधिकरणे बोलिणो इत्तिओ कालो ॥ ३ ॥

૭. પુખ્ત: મહાપુરાણ: ૧, પંક્તિ ૫. ઉપર કોઈક પ્રાચીન ટિપ્પણ: ચતુરમુદ્ધ કશ્ચિત્ કવિ:; સયંભુ પદ્મજીવદ્ધ રામાયણકર્તા આપલીસંધીય: । ડૉ. પી. એલ. વૈદ્યની આવૃત્તિ. પાન ૯.

દિયદ્વાહિવસ્સ વારે દસમીદિયદ્વામિ મૂળણકલ્પે ।

પયારસમ્મિ ચંદે ઉત્તરકાંડ સમાદત્તં ॥ ૪ ॥

વરં તેજસ્વિનો મૃત્યુર્ન માનપરિસ્થાનં ।

મૃત્યુસ્તત્ક્ષણકં દુઃખં માનભંગો દિને દિને ॥ ૫ ॥

ઉપરની ગાથાઓનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે :

“યાદવકાંડમાં ૧૩ સંધિઓ, કુરુકાંડમાં ૧૯ સંધિઓ, અને યુદ્ધકાંડમાં ૬૦ સંધિઓ છે; - આ પ્રકારે ૯૨ સંધિઓ છે. (૨)

ચંદ્રના પુત્ર (= બુધ)નો વાર, તૃતીયાતિથિ, ક્ષાદગુન નક્ષત્ર, શિવ નામનો યોગ - આ સમયે યુદ્ધકાંડ પૂરો થયો. (૨)

છ વર્ષ, ત્રણમાસ અને અગીઆર દિવસ સ્વયંભૂને ૯૨ સંધિઓ પૂરા કરતાં થયાં. (૩)

દિવસના અધિપતિ (=સૂર્ય)ના વાર (-રવિવાર), દશમી, મૂળનક્ષત્ર, અને અગીઆરમો ચાંદ્રમાસ એટલે બાદપદ માસમાં ઉત્તરકાંડ શરૂ કર્યો. (૪)

તેજસ્વી માણસને માનભંગ કરતાં મૃત્યુ વહાલું લાગે છે; મૃત્યુ તો તત્ક્ષણ દુઃખ આપે છે જ્યારે માનભંગ હંમેશાં દુઃખ આપે છે. (૫)”

ઉપરની ગાથાઓ ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ રચી હોય એમ લાગે છે; અને ૯૨ સંધિઓ રચ્યા પછી ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનો કાળ થયો હોવો બેધએ; અને પોતાના પિતાની કીર્તિ અધુરી ન રહે એટલા માટે થોડા સમય પછી ત્રિભુવને ઉત્તરકાંડનો આરંભ કર્યો હોવો બેધએ.

સંધી ૯૯ને અંતે પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે :

इय रिदुनेमिचरिण धवलइयासियसयंभुकण ।

कविराद्यलनिर्मिते (?) श्रीसमवसरणकथनं निव्याणवौ ॥

[સંધિ: ॥ ૯૯ ॥

ઉપરની પ્રશસ્તિમાં સંદિગ્ધ સ્થળનો અર્થ ‘કવિરાજનો પુત્ર’ એવો કાંઈક થતો હોવો બેધએ. સંધિ ૧૦૦ને અંતે પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે :

इयरिदुणेमिचरिण धवलइयासिय सयंभु[ए]वकण ।

उधरिण तिहुयणसयंभुमहाकइ समाणिय समवसरणं णाम सउम सग्गो १००

આ પ્રમાણે ત્રિભુવન સ્વયંભૂના નામનો ઉલ્લેખ ૧૦૮ સંધિઓ સુધી આવે છે. સંધિ ૧૦૯ ના અંતે નીચેની પ્રશસ્તિ આપવામાં આવેલી છે :

इह जसकित्तिकणं पञ्चसमुद्धरणरायपक्रमणं ।

कइरायस्सुधरियं पयडत्थं अक्खियज्झइणा ॥ ૧ ॥

ते जीवन्ति य भुवणे सज्जनगुणगणह रायभावत्था ।

परकवकुलं वित्तं विहडियं पि जे समुद्धरहिं ॥ ૨ ॥

ઉપરની ગાથાઓ ઉપરથી એટલું તો પ્રતીત થાય છે કે સંધિ ૧૦૨ યશઃકીર્તિએ રચ્યો. તેના કારણમાં એ જણાવવામાં આવે છે કે કવિરાજ સ્વયંભૂએ પ્રસ્તુત ગ્રંથ અધુરો મૂક્યો હતો. આ ઉપરથી આપણે કહી શકીએ કે સંધિ ૧-૯૨ ની રચના ચતુર્થ સ્વયંભૂની; સંધિ ૯૯-૧૦૮ ની રચના તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂની; સંધિ ૧૦૯-૧૧૨નો ઉદ્ધાર યશઃકીર્તિ ભટ્ટારકે કર્યો. યશઃકીર્તિ ભટ્ટારકનો સમય સોળમો સંકો છે.

§૧૧. હરિવંશપુરાણનું છેલ્લું કડવું નીચે પ્રમાણે છે :

इह भारहपुराण सुपसिद्ध नेमिचरिय हरिवंसाइद्ध ।
 वीरजिणसें भवियहो अविद्ध पच्छइं गोयमसामिण रक्खिउ ।
 सोहम्मं पुणु जंबुसामे विण्हकुमारें दिग्गयगामिं ।
 णंदिमिच्च अवरज्जियणाहें गोवद्धणेणुसुभइहबाहें ।
 एम परंपराइ अणुलग्गउ आयरियहं मुहाउ आवग्गउं ।
 सुणि संखेवु सुत्तु अवहारिउ विउसें सयंमं महि वित्थारिउं ।
 पद्धडियाछंदें सुमणोहरु भवियणजणमणसवणसुहंकरु ।
 जस-परसेसि कविहिं जं सुण्णउं जं उव्वरिउ किंपि सुणियाणहो ।
 तं जसकित्ति मुणिहिं उद्धरियउ णिएवि सुत्तु हरिवंसच्छरियउ ।
 णियगुरु सिरिगुणकित्तिपसाणं किउ परिपुण्णु मणहो अणुराणं ।
 मरहसे वेदंसेठि (?) आपसें कुमरणयरि आविउ सविरोसें ।
 गोवगिरिहे सामीवे विसालए पणियारहे जिणवरचेयालए ।
 सावयजणहो पुरउ वक्खाणिउ दिदु मिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ ।
 जं अमुणंते इह मइं साहिउ तं सुयएवि खमउं अवराहउ ।
 णंदउ सासणु सम्मइणाहहो णंदउ भवियण कयउच्छाहहो ।
 णंदउ णरवइ पय पालंतहो णंदउ दयधम्मु वि अरहंतहो ।
 कालं विय णिच्च परिसक्किउ कास वि धणु कणु दिति ण थक्कउ ।
 भइवमासि विणासियभवकलि हुउ परिपुण्णु चउद्दिसि णिम्मलि ।
 ॥ घत्ता ॥ इय चउविहसंघहं विहुणियविग्घहं णिण्णासियभवज्जरमरणु ।
 जसकित्तिपयासणु अखलियसासणु पयडउ संति सयंभु जिणु॥૧૭॥

ઉપરના કડવક ઉપરથી એટલું દેખાઈ આવે છે કે પદ્ધતિયા છંદમાં વિદ્વાન સ્વયં-ભૂએ હરિવંશપુરાણ રચ્યું. તે શ્રોતાઓને માટે અધુરું હતું. ગોપાચલગચ્છના શ્રીગુણ-કીર્તિના શિષ્ય યશઃકીર્તિએ તે પુરું કર્યું. યશઃકીર્તિ ભટ્ટારક ‘રધ’ને નામે પ્રખ્યાત છે. તે સોળમા સંક્રામાં પ્રવર્તમાન થયો.

છેવટની પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે :

इय रिट्टणेमिचरिए धवलइयासियसयंभुवि उव्वरिए ।
 तिहुवणसयंभुरइणं समाणियं कन्हकित्तिहरिवंसं ॥
 गुरुपध्दनासभयं सुयणाणाणुक्रमं जहा जाय ।
 सयमिकदुइह अहियं संघीत्थ परिसमत्ताउ ॥ संधि ११२ ॥

ઉપરની પ્રશસ્તિની બીજી ગાથા ઉપરથી દેખાઈ આવે છે કે “શ્રુતજ્ઞાનને અનુસરીને મોટા પર્વનો નાશનો ભય ઉત્પન્ન થયો—તેથી અહિં પૂરેપૂરા ૧૧૨ સંધિઓ પૂરા કર્યા.” આ ગાથા ઉદ્ધારક યશઃકીર્તિની લખેલી હોવા સંભવ છે. યશઃકીર્તિ વચ્ચે ખોવાઈ ગયેલા તૂટક ભાગોનો ઉદ્ધાર કર્યો હશે અને ક્ષેપક ભાગ પણ ઉમેર્યો હોય તો તે અસંભવિત નથી.

§૧૨. હરિવંશપુરાણની ઉપરના વિવેચન પ્રમાણે ૧૧૨ સંધિ છે. (૧) યાદવકાંડ—સંધિ ૧૩; (૨) કુરુકાંડ—સંધિ ૧૯; (૩) યુદ્ધકાંડ—સંધિ ૬૦; (૪) ઉત્તરકાંડ—સંધિ ૨૦. હરિવંશની રચનામાં ત્રણ હાથ છે: ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ, ત્રિભુવન સ્વયંભૂ અને યશઃકીર્તિ ભટ્ટારક. હરિવંશપુરાણમાંથી છદોદૈવિધ્ય અને કાવ્યરચનાના વૈવિધ્યના અનેક પુરાવાઓ મળી શકે છે. આખું ય કાવ્ય પ્રસિદ્ધ થાય તો આ બાબત ઉપર ઘણો પ્રકાશ પડી શકે. અહીં ફક્ત ઉડતી બાબતોની જ નોંધ બસ થશે. દાખલા તરીકે સંધિ ૭ માં, જુદા જુદા છંદોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. ખાસ ઉપયોગી બાબતોમાં એક બાબત અહીં નોંધવી આવશ્યક છે. દા. ત. હાથપ્રત પાન ૪૯૮ (અ) માગધિકા-કાયા ભાષાયાં પદાકુલછંદઃ; હા. પ્ર. પા. ૪૯૮ (બ) માગધિકા નામ છંદઃ; પા. ૪૯૭ (અ) હ્યમણિવ માગધિકામાસાઃ; પા. ૫૦૦ (અ) ઢક્કામાસાકવલ્લયઃ અને પા. ૪૯૫¹⁰ સિંધવી માસા. ‘સિંધવી માસા’ સિવાયનો બીજો બધો ભાગ, સંધિ ૧૦૩ માં છે, તે આખોય સંધિ એક પ્રકારના વૈચિત્ર્યવાળો હોવાથી અપભ્રંશપાઠાવલીમાં ઉદ્ધરણ તરીકે મેં લીધો છે. આ ઉપરથી ‘અપભ્રંશ—એક કે અનેક’ એ પ્રશ્ન ઉપર કાંઈક પ્રકાશ પડી શકે છે. આ સંબંધી ચર્ચા—એ તો બહુ વિસ્તૃત વિષય છે; અને આપણા વિષયને માટે પ્રસ્તુત નથી. એક બાબત અત્રે કહેવી આવશ્યક છે અને તે એ કે આ બધી ભાષાઓ એક પ્રકારના ભાષાવૈચિત્ર્ય ખાતર બનાવટી કરીને મૂકવામાં આવી હોય એમ લાગે છે સિંધવી માસા માં પણ ખાસ વૈચિત્ર્ય છે જ નહિ અને તે પણ સામાન્ય અપભ્રંશમાં સહેજ ફેરફાર કરીને એક કડવકમાં આપવામાં આવી છે. કવિએ પોતાનું ભાષાવૈદગ્ધ્ય બતાવવા ખાતર દરેક ભાષા માટે એક કડવક ઉમેર્યું છે. આ કરામત ત્રિભુવનની હશે કે પછી યશઃકીર્તિની હશે તે કહેવું અત્યારે તો મુશ્કેલ છે. યશઃકીર્તિનો ઉમેરો હોય તો તે અસંભવિત તો નથી જ.

§૧૩. સ્વયંભૂછંદઃ નામે છંદોરચનાનો ગ્રંથ પ્રો. વેલણકરે JBBR AS 1935 pp. 18-58 માં એ ગ્રંથનાં પહેલાં ત્રણ પ્રકરણ સંપાદિત કર્યા હતાં. આ ભાગ મારા જોવામાં આવ્યો નથી; તેમ જ તે સ્થાને આપેલું સ્વયંભૂ સંબંધી સંપાદકીય વક્તવ્ય પણ મારા વાંચવામાં આવ્યું નથી. અપભ્રંશ છંદોની ચર્ચા કરતાં, સ્વયંભૂછંદઃ નાં પ્રકરણ ૪-૮, તે જ વિદ્વાન પ્રો. વેલણકરે Journal of the University of Bombay Vol. V, part III, November 1936, P. 69-93 માં સ્વયંભૂ સંબંધી પોતાના વક્તવ્ય સહિત સંપાદિત કર્યા છે. એ સંપાદકીય વક્તવ્યમાં તેમણે પ્રો. હીરાલાલ જૈને Nagpur University Journal No. 1. December 1935 P. 70-84 ના ‘Svayambhū and his two poems in Apa-

10. આ ભાષાવિદોવાળી સંધિમાટે: અપભ્રંશપાઠાવલી. ઉદ્ધરણ. ૪. પા. ૫૩-૮૦.

bhramśa' ના લેખનો સવિસ્તર ઉલ્લેખ કર્યો છે. મારી પાસેના પૂરાવાઓના આધારે કેટલોક વિશેષ પ્રકાશ પ્રોં વેલણુકરે ઊભા કરેલા મુદ્દાઓ ઉપર નાખી શકાય એમ છે. પ્રોં જૈને જે કાંઈ લખ્યું છે તે મારા વાંચવામાં આવ્યું નથી. પ્રોં વેલણુકરે પ્રોં જૈનના કેટલાક અભિપ્રાયો સવિસ્તર નોંધ્યા છે; અને તે અભિપ્રાયોનો નિરાસ અને પોતાના અભિપ્રાયનું સમર્થન કર્યું છે. આમ માફ વક્તવ્ય પ્રોં જૈનના અભિપ્રાયો અને પ્રોં વેલણુકરના અભિપ્રાયો, પ્રોં વેલણુકરના Bombay University Journal ના લેખને અનુસરી નોંધ્યા છે.

પ્રોં વેલણુકર જણાવે છે:

(૧) 'It is impossible to imagine that Tribhuvana Svayambhū, had he known this work of his father, would not have mentioned it. In our work on the other hand, there is no trace of any of the poems either of the poet Svayambhū¹¹.....
સ્વયંમૂછંદઃ નો કર્તા ત્રિભુવન સ્વયંભૂ છે કે કેમ તે સંબંધે મારે કાંઈ કહેવાનું નથી; પરંતુ પ્રોં વેલણુકર જણાવે છે કે સ્વયંમૂછંદઃ માં સ્વયંભૂની બે કવિતાઓનો ખીલકુલ ઉલ્લેખ નથી. આ વિધાન પરત્વે મારો વિરોધ છે. ચતુર્મુખસ્વયંભૂના પદમયચરિયાના ૧૪ માં સંધિમાં આવેલી એક ઘટ્ટા સ્વયંમૂછંદઃ V, 9, માં નીચે પ્રમાણે ટાંકેલી છે:

¹²છટ્ટા અવજાઈ જહા-

કહવિ સરહિરં । દિટ્ટં જહવં । થણસિહરોપરિ સુપહુત્તાં ।

વેગ્ગે વલગ્ગહો । મઝણતુરંગહો । જં પયહ છુહ છુહ દુક્ખત્તાં ॥ ૯ ॥

અપભ્રંશપાઠાવલીમાં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂના પદમયચરિયામાંનો સંધિ ૧૪ આખોય પ્રથમ ઉદ્ધરણુ તરીકે લીધો છે. તેમાં પં. ૭૪-૭૫ નીચે પ્રમાણે છે:

¹³કહિવિ સરહિરં દટ્ટં જહરં થણસિહરોવરિ સુપહુત્તહ ।

વેગ્ગિ વલગ્ગહો મયણતુરંગહો જં પયહ છુહુ છુહુ સિત્તહ ॥

આ અવતરણુ કવિના નામ વગર જ ઉદાહરણુ તરીકે સ્વયંભૂછંદમાં નોંધવામાં આવ્યું છે; તે બતાવે છે કે 'પદમયચરિય'માંથી નામની નોંધ વિના પણ સ્વયંભૂછંદનો રચયિતા ટાંકી શકે છે. આ ઉપરાંત ચતુર્મુખના નામ સહિત અને નામ વિના ખીલ્લં અવતરણુ લેવાયાં હોય તો તે અસંભવિત નથી. કેટલાંય ઉદાહરણુ 'પદમયચરિય' અને 'હરિવંશ'માંથી લેવામાં આવ્યાં હોય એવાં જ જણાય છે. એ બન્ને ય કાવ્યો પ્રસિદ્ધ થશે તો આ છંદોરચનાના ગ્રંથ ઉપર ઘણો પ્રકાશ પડશે. પણ એટલું તો દેખાઈ જ આવે છે કે સ્વયંમૂછંદઃ ની રચનાને સ્વયંભૂ સાથે સંબંધ તો છે. ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનું છંદોરચનાનું તથા વ્યાકરણનું જ્ઞાન વિશાળ હતું એ તો તેના પ્રયોગો અને તેના પોતાના ઉલ્લેખો ઉપરથી જણાઈ આવે છે. આથી પ્રોં જૈનની કલ્પનામાં તથ્યનો અંશ નથી એમ તો નથી જ.

11. Journal of the University of Bombay, Vol. V, Part III, P. 69. (J. U. B.)

12. J. U. B. Vol. V, Part III, P. 77.

13. અપભ્રંશપાઠાવલી. પાન ૧૦, ઉદ્ધરણુ: ૧ : જલકીલાવળણુ.

(૨) પ્રોં વેલણ્કર વધારામાં લખે છે: 'There is no trace of any of the poems either of the poet Svayambhū himself or the Apabhramśa poet like Bhadra (author of the Matsyavedha), Chaturmukha (author of the Gograhapākathā) and an earlier Svayambhū (author of the Jalakrīdā), so respectfully mentioned both by the poet Svayambhū (Paumachariya, Sandhi 14, P. 81) and his son Tribhuvana (Paumachariya, Introduction, pp. 79, 74).'

પ્રોં વેલણ્કરનો અભિપ્રાય સુસંગત નથી. સંધિ ૧૪ ના અંતભાગની એ ગાથા મને તો પ્રશસ્તિગાથા લાગે છે. જો પ્રોં વેલણ્કરે, પ્રોં જૈનના અભિપ્રાયનું ટાંચણ વ્યવસ્થિત આપ્યું હોય તો તે ગાથા સંબંધે પ્રોં જૈનનો પણ પ્રભાવ થયો લાગે છે. મારી નોંધ પ્રમાણે પ્રસ્તુત ગાથા¹⁴ નીચે પ્રમાણે છે:

જલકીલાપ સયંભૂ ચડમુહ પવંગ¹⁵ ગોગાહકહાપ ।

મહં ચ મચ્છવેહં અજ્ઞ વિ કણ્ણો ન પાવંતિ ॥

‘જલકીલાવર્ણન’ એ સંધિ ૧૪ નો વિષય છે. અને ચડમુહ સયંભૂની તે વર્ણનમાં કવિત્વની પરાકાષ્ઠા છે. તે જ રીતે ‘પવંગ’ની કવિતા ‘ગોગ્રહકથા’માં અનુપમ છે. બદ નામે કવિનું કાવ્યગૌરવ ‘મત્સ્યવેધ’માં અભિવ્યક્ત થાય છે. આજ સુધી કોઈ કવિએ આ કવિતાની સરખામણીમાં ઊતરે તેવી કવિતાની રચના કરી નથી એમ એ ગાથાકારનું કહેવું છે. ‘ગોગ્રહકથા’ એ વિરાટપર્વનો વિષય છે અને એ રીતે હરિવંશપુરાણનો ભાગ હશે. ‘મત્સ્યવેધ’ પણ મહાભારતનો ભાગ હોઈ હરિવંશપુરાણનો ભાગ હશે. ઉપરની ગાથામાં નોંધેલાં લખાણો મોટાં કાવ્યોના સંધિઓ કે વિભાગો હશે. આ ગાથા ચતુર્મુખ સયંભૂની નથી પણ એ ‘જલકીલાવર્ણન’ને લગતા સંધિની પ્રશંસા ખાતર પાછળથી રચાએલી ગાથા છે. પ્રોં જૈને—પ્રોં વેલણ્કરના ટાંચણ અનુસાર—પણ આ ગાથા પૂર્ણ સ્વરૂપમાં નોંધી નથી. ‘પવંગ’ નામે કવિનો નામોલ્લેખ તેમાં દેખા દેતો નથી. પ્રોં વેલણ્કર ચતુર્મુખને ‘ગોગ્રહકથા’ના કર્તા તરીકે જણાવે છે તે અચાર્ય છે.

(૩) ‘હરિવંશપુરાણ’ના સંધિ ૯૯ ને અંતે એક પ્રશસ્તિગાથા આવે છે:

કાઝણ પોમચરિયં સુદ્ધયચરિયં ચ ગુણગણપ્પવિયં ।

હરિવંસમોહહરણે સરસ્સ[ઈ] સુદિયદેહ વ્વ ॥

ઉપર પ્રમાણે મૂળ હાથપ્રતમાં ગાથા છે. તેમાં કેટલાક લક્ષ્યાના પ્રમાદ છે: ૧. પ્રથમ પંક્તિમાં શુદ્ધ૩૫ કાઝણ, કાઝણ ને સ્થાને; ૨. ચ ને ઠેકાણે વ=સં. જ્વ; બીજી પંક્તિમાં સરસ્સસુદિયદેહવ્વ¹⁶ ને સ્થાને સરસ્સ[ઈ]સુદિયદેહ વ્વ । પ્રોં વેલણ્કર ટીકા કરે છે

14. અપભ્રંશપાઠાવલી, પાન ૧૬ ની નોંધમાં આપેલી પ્રશસ્તિગાથા.

15. અપ, પવંગ=સં. પ્લવંગ, પતંગ. અપભ્રંશપાઠાવલીમાં સંં છાયા પતંગ આપી છે—તે સંદિગ્ધ તો છે જ.

16. સરસ્વતીના પ્રભાવથી તેણે હરિવંશપુરાણનો આરંભ કર્યો હતો તે માટે જુઓ આ જ લેખમાં સયંભૂના પોતાના શબ્દો ૬૬.

તહિં અવસરિ સરસહ વીરવહ “કરિ કવ્વુ દિણ્ણ મહ વિમલમહ.”

એટલે સરસ્સ ની સરસ્સહ કલ્પના કરી છે. સુદિય=શ્રાન્ત સરખાવો. દે. ના. મા. ૮. ૩૬.

'A long letter between 'Sarass' and 'Sudhiyadeha vva' is missing.' મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે તે દીર્ઘ 'ફ' છે.

એ ગાથાના અર્થમાં એક રીતે ઉપમા સમાયેલી છે. હું એ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે કંઈ છું: “ગુણોથી પવિત્ર શુદ્ધ ચારિત્રના જેવા ‘પદ્મચરિત’ને સિદ્ધ કરીને, સરસ્વતીએ [૧. મનુષ્યના ચારિત્ર પક્ષે: જ્ઞાન; અને કાવ્યપક્ષે: સરસ્વતી] જેનો દેહ શ્રાન્ત કર્યો છે [એટલે કે, જ્ઞાને કરીને જેની દેહ ઉપરની આસક્તિ ઓછી કરી છે] તેણે ‘હરિવંશ’રૂપી મોહને દૂર કરવા માટે [મતિ કરી]” ‘હરિવંશપુરાણ’ના આરંભના કડવકર્મા ‘સરસ્વતી’ની અનુજ્ઞાથી તેણે આ પુરાણકાવ્યનો આરંભ કર્યો એમ જણાવ્યું છે. આ પ્રશસ્તિગાથાથી ‘પદ્મચરિત’ લખ્યા પછી ‘હરિવંશપુરાણ’નો આરંભ ચતુર્થુએ કર્યો એ સિદ્ધ થાય છે. આ રીતે ગાથાનો અર્થ સુસ્પષ્ટ થાય છે. ‘હરિવંશપુરાણ’ની રચના ‘પદ્મચરિત’ પછીથી થઈ તે ‘હરિવંશપુરાણ’ના આદિભાગથી સૂચિત થાય છે અને આ ગાથાથી તે સ્પષ્ટ થાય છે.

(૪) પ્રોં વેલણુકરે ઊભો કરેલો ચોથો મુદ્દો ‘પંચમિચરિય’ને લગતો છે. તેને લગતી ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે.

જહમુહસયંમુપવાળ વાણિયત્થં અચક્ષમાણેણ ।

તિહુઅણસયંમુરહયં પંચમિચરિયં મહચ્છરિયં ॥

જહ ન હુહ ચ્છંદચ્છામણિસ્સ તિહુઅણસઅંમુલહુતણહ ।

તો પચ્છદિયાકલ્લં સિરિપંચમિ કો સમારેહ ।

આ ગાથાઓનો અર્થ મારી દૃષ્ટિએ મેં પૂર્વે આપ્યો છે. ‘પંચમિચરિય’ એટલે જ્ઞાનપંચમીની ઊજવણી ખાતર રચેલી કથા. દાખલા તરીકે, ધણવાલની ‘ભવિસ-યત્તકહા’ પણ ‘પંચમિકહા’ ને નામે ઓળખાય છે. ‘ચતુર્થુજ સ્વયંભૂની વાણીના અર્થને ન ચાખતા એવા ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ મહા-આશ્ચર્યકારક ‘પંચમિચરિય’ રચ્યું.’ આનો અર્થ એમ પણ હોય કે ‘સંપૂર્ણ રીતે નહિ ચાખતા’ એવા ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ એ કાવ્ય અધુરું હતું તે પૂરું કર્યું. બીજી ગાથામાં પણ જાણે ચતુર્થુએ કોઈ કાવ્ય અધુરું રાખ્યું હોય અને ત્રિભુવને, લઘુ તનય હોવા છતાં પણ, પિતૃઋણ અદા કર્યું એ જાતનો આશય નીકળે છે. ‘પંચમિચરિય’ તે ‘પદ્મચરિય’, ‘હરિવંશપુરાણ’ કે બીજું જ કાવ્ય - એ નિશ્ચિત કરવું મુશ્કેલ જાણત છે.

(૫) સ્વયંમૂહદઃ માંથી એક જાણત દૃષ્ટિગોચર થાય છે. ‘પદ્મચરિય’ની અંત્ય-પ્રશસ્તિ ગાથાઓમાં નીચેની ગાથા છે:

માહરસુયસિરિકહરાયતણયકયપોમચરિયઅવસેસં ।

સંપુણ્ણં સંપુણ્ણં વંદઓ લહહ સંપુણ્ણં ॥

ઉપરની ગાથામાં કવિરાજ ચતુર્થુએ ‘માહિરસુય’ તરીકે જણાવવામાં આવ્યો છે. ‘પદ્મચરિય’ ના આરંભભાગમાં નીચેની પંક્તિ આવે છે:

પદ્મિણિજ્ઞણિગમ્મસંભૂયં મારુપ્પવરુવઅનુરાપં ।

એ પંક્તિમાં ‘મારુણવ’=છંદોદ્દૃષ્ટિએ ‘મારુણવ’ હોવું બોધાયે. અને ઉપર ટાંકેલી ગાથા ઉપરથી તે કલ્પનાને સમર્થન મળે છે. સયંમૂછંદઃ માં મારુણવના નામનો એક દોષ મળે છે :

ચોદ્દહપદમતદ્અ[ચ]રણે બારહવીઅચતથે ।

દુવહ[અ]લક્ષણ પત્તલહ હોઈ અવહંસસતથે ॥

દુવહહ જહા—

અમ્મિઅ કરહ દુસીલઅહ ણીરિહ કિંપિ ણ સ્વાહ ।

કાવિ મરુત્યલલેલિલિઅ તેહો કારણે વિદાહ ॥

તહા અ મારુણવસ્સ—

લહ્હહ મિત્ત મળ(મ)ન્તેણ રઅણાઅ[ર] ચન્દેણ ।

જો સિજ્જન્તે સિજ્જહ વિ તહ મરહ મરન્તેણ ॥

ઉપર ટાંકેલો દુષ્ટો ચતુર્મુખના પિતા ‘મારુણવ’નો હોય તો તે અસંભવિત નથી.

§૧૪. ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવનનો સમય નક્કી કરવા માટે આપણે પૂર્વમર્યાદા નક્કી કરવા માટે તેણે જ આપેલાં સાધનો છે. તેણે (૧) દંડી અને ભામહ; (૨) આણ; (૩) રવિષેણ અને (૪) હરિષેણ—એ લેખકોના નામનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. દંડી અને ભામહ છઠ્ઠા સૈકામાં પ્રવર્તમાન થયા.¹⁷ આણનો સમય સાતમા સૈકામાં નિશ્ચિત છે.¹⁸ હરિષેણનો સમય પણ લગભગ આ જ અરસામાં છે. રવિષેણનો ઉલ્લેખ ખાસ મદદ રૂપ છે. રવિષેણે પદ્મપુરાણ લગવાન મહાવીરના નિર્વાણ પછી ૧૨૦૩ વર્ષે—એટલે કે વિ. સં. ૭૩૩માં લખ્યું.¹⁹ આ ચતુર્મુખના સમયનિર્ણય માટેની પૂર્વમર્યાદા છે.

છેવટની મર્યાદા અપદ્મશકવિ ધવલ અને પુષ્પદંતના ઉલ્લેખ ઉપરથી સિદ્ધ કરી શકાય છે. ‘તિસદ્ધિમહાપુરિસગુણાલંકાર’ના પ્રારંભિક કડવકમાં કેટલાક લેખકો અને કવિઓનાં નામોનો તે ઉલ્લેખ કરે છે. તેમાં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂના નામનો પણ ઉલ્લેખ છે :

ભાવાહિહ મારહવાસિ વાસુ કોહલુ કોમલગિરુ કાલિદાસુ ।

ચહમુહુ સયંમૂ સિરિહરિસુ દોણુ ણાલોહહ કહ ર્સાણુ બાણુ ॥

૩૦ પી. એલ. વૈદ્યની ગણતરી અનુસાર મહાકવિ પુષ્પદંતે પોતાનું મહાપુરાણ વિ. સં. ૧૦૨૨માં પૂરું કર્યું.²⁰

આ ઉપરાંત અપદ્મશ મહાકવિ ધવલે²¹ પણ ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

17. સરખાવો દશકુમારચરિત (Ed. M. R. Kale) Introduction, P. XLVIII. §૬.

18. કાદમ્બરી (Ed. P. V. Kane) Introduction, P. VII. §૬.

19. જિનસેન ગ્રંથિરિવંશપુરાણ. (પૂર્વાર્ધ) (માણિક્યચંદ્ર દિગંબર ગ્રન્થમાલા. ૩૨) પ્રસ્તાવના. પા. ૧. ફુટનોટ.

20. પુષ્પદંત વિરચિત ‘જસહરચરિત’ Ed. by Dr. P. L. Vaidya. (Karanja Jain Series, Vol. I) Introduction, P. 24.

21. Catalogue of Sanskrit, Prakrit Mss. Berar and C. P. Edited by Rai Bahadur Hiralal B. A. Appendix. P. 720.

ધવલનો સમય વિં સં ૧૦મા સૈકામાં મૂકી શકાય. પુષ્પદંત ધવલનો ઉલ્લેખ કરતો નથી; અને ધવલ પુષ્પદંતનો ઉલ્લેખ કરતો નથી. એટલે આ બંને ય કવિઓ વચ્ચે બહુ થોડા સમયનું અંતર હોવું બોધાયે. કરકંડુચરિતનો કર્તા કનકામર સ્વયંભૂ અને પુષ્પદંતનો સાથે ઉલ્લેખ કરે છે.

તો સિદ્ધસેણ સુ સમંતમદ્ અકલંકદેવ સુઅજલસમુદ્ધ ।

જયપવ સયંભુ વિસાલચિત્તુ વાણસરિઘરુ સિરિપુષ્પકયંતુ ॥

કનકામરે ઈં સં ૧૦૬૫=વિં સં ૧૧૨૧ના અરસામાં આ કાવ્ય લખ્યું.²²

ઉપરના પુરાવાને અનુલક્ષી ચતુર્થુષ્પ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂનો સમય, વિં સં ૭૩૩ પછીથી અને વિં સં ૧૦૨૨-ધવલનો ઉલ્લેખ ધ્યાનમાં લેતાં-પૂર્વે, એકાદ સૈકા પહેલાં સ્વયંભૂ પિતા પુત્રની કાવ્યપ્રવૃત્તિ હશે. આ બધા પુરાવાઓ સાથે સ્વયંભૂએ રવિષેણના સંબંધમાં જે બોલ ઉચ્ચાર્યા છે તે નોંધમાં લેવા જેવા છે :

પુણુ રવિસેણાયરિયપસાણં બુદ્ધિય અવગાહિય કહિરાણં²³ ।

‘પદ્મચરિતની કથામાં કવિરાજ પોતાની બુદ્ધિથી અને વળી રવિષેણાચાર્યની કૃપાથી અવગાહન કર્યું.’ રવિષેણે આપણે ઉપર બોલ્યું તે પ્રમાણે વિં સં આઠમા સૈકાના મધ્યભાગમાં પદ્મપુરાણની રચના કરી. એટલે ઉપરનો ઉલ્લેખ, ચતુર્થુષ્પનો રવિષેણાચાર્ય સાથે શિષ્ય અને આચાર્યનો સંબંધ હોય એમ બતાવી આપે છે. પોતાનાં માતા પિતાના નામની સાથે જ ચતુર્થુષ્પે રવિષેણનો ઉલ્લેખ આચાર્ય તરીકે કર્યો છે. એટલે જ શિષ્ય અને આચાર્યનો સંબંધ તે બંને વચ્ચે વધારે સંભવિત લાગે છે. બે એક પ્રસિદ્ધ લેખક તરીકે તેનો ઉલ્લેખ કરવો હોત તો તે અન્ય લેખકોના ઉલ્લેખ સાથે જ તેમનો ઉલ્લેખ કરત. સ્વતંત્ર રીતે પણ ઉપરના પુરાવાઓને આશ્રયે લગભગ વિં સં ૧૦ નવમા સૈકાના મધ્યભાગમાં આ કવિયુગલને મૂકી શકાય; અને બે એ શક્ય છે તો ચતુર્થુષ્પનો રવિષેણ સાથેનો અંગત પરિચય અશક્ય નથી. બે અન્ય સ્વતંત્ર સમયનિર્ધારક પુરાવા ન હોત તો હરિભદ્ર અને સિદ્ધર્ષિની માફક રવિષેણ અને સ્વયંભૂના સંબંધના સંભવનો સ્વીકાર કર્યા વિના ચાલત નહિ.

૬૧૫. ઉપરની કંડિકાઓમાં મારી પાસે પડેલા પુરાવાઓમાંથી ફક્ત થતા મુદ્દાઓને આધારે મેં ચતુર્થુષ્પ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન અને કવનનું બ્યાન આપવા પ્રયત્ન કર્યો છે. આ બંને કવિઓની કવિતા અપભ્રંશ સાહિત્યની ભાષા બની ત્યાર પછીની છે. અપભ્રંશ સાહિત્ય-ભાષા થયાનો ઉલ્લેખ ધરસેન બીજાએ (ઈ. સ. ૫૫૨-૫૬૨) પોતાના પિતા ગુહસેન સંબંધી લેખમાં કર્યો છે. તેમાં ગુહસેનને ‘સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, અપભ્રંશ એ ત્રણેય ભાષાના પ્રબંધોની રચનાથી જેનું અંતઃકરણ વધારે નિપુણ થયું છે” એમ વર્ણવ્યો છે.²⁴ તે ઉપરાંત કુવલયમાલા (વિં સં ૮૩૫)

22. કનકામર-વિરચિત-‘કરકંડુચરિત’ સંધિ ૧, કંઠવક, ૨, પં. ૮-૯ (Ed. Prof. Hiralal Jain : અમ્બાદાસ ચવરે દિગમ્બર જૈનગ્રંથમાલા-૪.) Introduction, P. 34 §§.

23. પ્રસ્તુત લેખ § ૩.

24. Indian Antiquary, Vol. 10, P. 284 : સંસ્કૃતપ્રાકૃતપદ્યશાસ્ત્રપ્રતિબદ્ધપ્રબન્ધરચનાનિપુણતરણ-કરણ : આ પ્રમાણે વલ્લભીરાજ ગુહસેનનું વિરોધણ આપવામાં આવ્યું છે.

માં અપભ્રંશ કથા લખાયાનો ઉલ્લેખ છે;^{૨૬} અને તે ઉપરાંત અપભ્રંશભાષા સાહિત્ય-ભાષા તરીકે ઉત્કૃષ્ટ સ્થાન ધરાવતી હતી તેનો પણ ઉલ્લેખ તેમાં છે.^{૨૭} દેશ્યભાષાઓ અપભ્રંશથી નિરાળું સ્થાન ધરાવતી હતી તેનો ઉલ્લેખ પણ તે ગ્રંથમાં કરવામાં આવ્યો છે.^{૨૮} આ રીતે આઠમા-નવમા સૈકામાં રચાયેલ ચતુર્મુલ્ય સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂની કૃતિઓ અપભ્રંશનો સાહિત્ય ભાષા તરીકે ખૂબ જ વિકાસ થયા પછી રચાયેલી છે. વળી સ્વયંભૂનાં કાવ્યોમાં છંદોરચનાનો વિકાસ અત્યંત થયેલો છે તે આપણે જોઈ ગયા છીએ.

અપભ્રંશ કાવ્યપ્રસ્તાર કડવક અને સંધિથી બદ્ધ છે. સામાન્ય રીતે એક કાવ્ય અનેક સંધિઓમાં વિભક્ત થયેલું હોય છે. દરેક કડવક મૂળગત નિયમ પ્રમાણે ૧૦ પંક્તિનું હોવું જોઈએ.^{૨૯} દરેક કડવકનું ધ્રુવપદ-દ્વિપદી હોય, કે હેલા હોય-

25. કુવલયમાલાકથા : જેસલમેર લંડાર તાડપત્ર : પત્ર ૩.

પાયયમાસારશ્યા મરહદ્યદેસિવળ્લયગિબદ્ધા ।

સુદ્ધા સયલ કહ ચિય તાક્સજિણસત્થવાહિદ્ધા ॥

કોઝહલેળ કત્થા પરવયળવસેળ સવ્વકયગિબદ્ધા ।

કિન્નિ અવઠ્ઠંસકયા ટાવિય પેસાયમાસિહા ॥

26. કુવલયમાલા : તાડપત્રપ્રતી : પત્રનો ૫૭-૫૮ માં અપભ્રંશ સંસ્કૃત, પ્રાકૃત અને પૈશાચીની જોડની સાહિત્યભાષા તરીકે ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે. અપભ્રંશની પ્રશંસા નીચે પ્રમાણે છે.

ઇયં પુણ્ણ સુદ્ધુ । તા કિ અવઠ્ઠંસં હોહિહ । હૂં । તં પિ ણો જેણ સક્કયપાયયડમ્મયસુદ્ધાસુદ્ધપય-મમતરંગરંગતર્વાગિરં ણવપાડમ્મજલયપવાહપૂરપવ્વાલિયગિરિણશ્સરિસં મમવિસમં પળયકુવિયપિયપળ-શ્ણિસમુદ્ધાવસરિસં મનોહરં ॥

27. આ વિષયની વિસ્તૃત ચર્ચા માટે જુઓ : અપભ્રંશપાઠાવલી : ટિપ્પણી : પાન ૮૬-૮૮.

28. J.B.U. Vol. V, Part III, p. 91. સ્વયંભૂ : Chap. IV-VIII

પદ્ધિઆ પુણ્ણ જેહ કરેન્તિ । તે મોઢહ મત્તડ પડ ધરેન્તિ ।

વિહિં પઞ્ણિ જમડ તે ણિમ્મઅન્નિ । કઢવઅ અઢ્ઢિ જમઞ્ણિં રઞ્ણન્તિ ॥

“જે કવિ પદ્ધિઆ છંદમાં કાવ્યરચના કરે છે, તેઓ એક પદમાં સોળ આવાઓ મૂકે છે. બે પદનું એક ચમક અને છે. એક કડવક આઠ ચમકનું અને છે.” આપણા હિસાબે આઠ પંક્તિના કડવકેહ આ રીતે છંદશાસ્ત્રીઓએ માન્ય કરેલાં છે.

આ ઉપરાંત નીચેની કડીઓ અપભ્રંશ કાવ્યવિધાનની દૃષ્ટિએ ઉપયોગી હોઈ, તે જ ગ્રંથ ‘સ્વયંભૂછંદઃ’ માંથી નોંધી છે:-

આહિં પુણ્ણ ઘત્ત સમામળન્તિ । જમઆવસાળ છઢ્ઢુણિ ભળન્તિ ।

સંઘાણિબદ્ધકઢવેહિ સંધિ । રહ વિવિહપારાહિ તુડુ વિર્નિય ॥ ૨૧ ॥

સંધિમેઆહં તે રહઅ દઅ । છઢ્ઢુણિઆ વિ ઘત્તા ભળ સુમેષ ॥

અળ્ણાડ વિવિહપારિઆડ । ઘત્તાડ છઢ્ઢુણિ વિઆગિઆડ ॥ ૨૨ ॥

ત્યારપછીની ૩૫ સુધીની ગાથાઓ અપભ્રંશ કાવ્યવિધાન માટે ઉપયોગી છે.

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યે છન્દોનુશામન, અધ્યાય, ૬ : ના આરંભમાં આ જ અભિપ્રાય દર્શાવ્યા છે : સન્ધ્યાદૌ કઢવકાન્તે ચ ધ્રુવં સ્યાદિતિ ધ્રુવા ધ્રુવકં ઘત્તા વા । કઢવકમમૂહાત્પકઃ સન્ધિ-સત્સ્યાદૌ ચતુર્મિઃ પદ્ધિકાચૈવછન્દોમિઃ કઢવકમ્ । હેમચંદ્રાચાર્યે ત્યાર પદ્ધિકા જેવા છંદોથી કડવક અને છે, એક છંદ ત્યાર ત્યારણનો એટલે બે પંક્તિનો. ત્યાર પદ્ધિકા છંદો-એટલે આડ પંક્તિઓ. આ પ્રમાણે હેમચંદ્રાચાર્યને પણ કડવક-હેહમાં આડ પંક્તિઓ શાસ્ત્રીય દૃષ્ટિએ સંમત છે. ત્યારપછીનું છન્દોનુ-શાસનનું અવતરણ અહીં ઉપયુક્ત હોઈ નોંધ્યું છે. ત્યાંનાં ધ્રુવં નિશ્ચિત સ્યાદિતિ ધ્રુવા, ધ્રુવકં, ઘત્તા વેતિ સંજ્ઞાન્તરમ્ । સા ત્રેધા ષટ્પદી ચતુષ્પદી દ્વિપદી ચ ॥ સેતિ ધ્રુવા ॥ કઢવકાન્તે પ્રારબ્ધસ્યાર્થો-પસંહારે આયો છઢ્ઢુણિકા ચ ॥ પ્રારબ્ધસ્ય પ્રકરણાત્તસ્યાર્થસ્ય કઢવકાન્તે મજ્જન્તરેણમિધાને ષટ્પદી-ચતુષ્પદાવેવ છઢ્ઢુણિકાસંજ્ઞે ન કેવલ ધ્રુવાદિસંજ્ઞે છઢ્ઢુણિકાસંજ્ઞે ચેતિ ચાર્થઃ ।

કડવકે કડવકે વિભિન્ન હોય અથવા તો આખી સંધિનું એક જ આરંભમાં ધ્રુવપદ હોય. કડવકને અંતે 'ઘટ્તા' હોય છે. ઘટ્તામાં ગત કડવકનો ઉપસંહાર હોય છે અને આગામી કડવક તરફ ગતિ હોય છે. આ રીતે ધ્રુવપદની ૨ પંક્તિ + કડવકના દેહની ૮ પંક્તિ + ઘટ્તાની ૨ પંક્તિ = ૧૨ પંક્તિઓ હોય છે. જો ધ્રુવપદની ૨ પંક્તિ ન હોય તો કડવકનો આદર્શ ૧૦ પંક્તિઓનો હોય છે. આ નિયમનું પાલન ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની કૃતિઓમાં વિશેષપણે જોવામાં આવે છે.^{૨૭} તેમાં વિશેષે કરીને કડવકના દેહની ૮ પંક્તિઓ હોય છે. આ કડવકના દેહની પંક્તિઓનો નિયમ ઝાઝો પળાયો નથી. કેટલાક કવિઓનાં લખાણોમાં તે નિયમની દરકાર કરવામાં આવી નથી. દાખલા તરીકે ચતુર્મુખના પુત્ર ત્રિભુવનની રચનામાં કે પુષ્પદંતની રચનામાં કોઈવાર ૧૦થી ૪૦ સુધીની પંક્તિઓ કડવકના દેહમાં માલમ પડે છે. કડવકના દેહની પંક્તિની સંખ્યાનું સામાન્યતઃ પાલન, ચતુર્મુખની અન્યકવિઓ કરતાં પ્રાચીનતા સિદ્ધ કરી આપે છે.

અપભ્રંશ છંદોરચના અને કાવ્યદેહનિર્માણની અસર પ્રાચીન ગૂજરાતીના કાવ્યઘડતર ઉપર બેટલી છે, તેટલી જ અપભ્રંશ વ્યાકરણ અને શબ્દલંડોળની ગૂજરાતી ભાષા ઉપર છે તેથી જ અપભ્રંશ છંદોરચના અને કાવ્યદેહનિર્માણનો આ દૃષ્ટિબિંદુથી અભ્યાસ થવો આવશ્યક છે. અપભ્રંશ કવિઓની કૃતિઓનું પ્રકાશન અને છંદો-દૃષ્ટિએ તેઓનો અભ્યાસ જોઈએ તેટલા પ્રમાણમાં થયાં નથી.

§૧૬. ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના કાવ્યોનું પ્રકાશન અઘાવધિ થયું નથી. પૂર્વે કલા પ્રમાણે તે બન્ને કાવ્યોમાંથી ચાર સંધિઓને પસંદ કરી અપભ્રંશપાઠાવલીમાં પ્રથમ ચાર ઉદ્ધરણ તરીકે મેં મૂક્યા છે. આ નિર્બંધના અનુવંગી લેખ તરીકે ચતુર્મુખ સ્વયંભૂના 'પઉમચરિઉ'માંથી પ્રથમના બે સંધિઓ આ ત્રૈમાસિકના આગામી અંકમાં આવશે. જેથી આ કવિઓની કાવ્યસામગ્રીનો કાંઈક નમુનો વાચક પ્રાપ્ત કરી શકે. આ દિગંબર કવિનું કાવ્ય છે અને ગૂજરાતમાં લખાયું નથી. ગૂજરાતમાં શ્વેતાંબર કવિઓનાં અનેક અપ્રસિદ્ધ કાવ્યો લંડારોના અંધકારમાં પડ્યાં છે. ગૂજરાતમાં સંશોધનનો ઉત્સાહ ઉત્તેજિત થયો છે; ગૂજરાતમાં સંશોધન માટે સંસ્થાઓ પણ સ્થાપિત થઈ છે; તો અપભ્રંશ સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવાનું કાર્ય હાથમાં લેવાશે તો જરૂર ગૂજરાતીનાં ભાષાવિધાન, કાવ્યદેહ, છંદોરચના અને સંસ્કૃતિગૌરવ ઉપર અપૂર્વ પ્રકાશ પડશે.

29. જુઓ અપભ્રંશ પાઠાવલી : ઉદ્ધરણ : ૧ : નો કડવકઅંધ અને સંધિઅંધ. આના અનુગામી લેખમાં આપેલી સંમિતો કડવકઅંધ જુઓ.

ગુજરાતની પ્રાચીનતમ જિનમૂર્તિઓ

*

લેખક — શ્રીયુત સારાભાઈ મણિલાલ નવાલ, એમ્. આર્. એ. એસ્.

આબૂ ઉપરના દિવ્ય દેવપ્રાસાદોમાં, ગિરનાર પરનાં ભવ્ય દેખાવનાં દેવાલયોમાં કે શત્રુંજયપરનાં રમણીય ઘાટનાં જિનમંદિરોમાં, મધ્યકાલીન (અગીયારમા સૈકાથી પંદરમા સૈકા સુધીની) અસંખ્ય જિનમૂર્તિઓ વિદ્યમાન છે, પરંતુ દશમા સૈકા પહેલાંની શિલાલેખવાળી કોઈ પણ મૂર્તિ હોય એવું જાણવામાં આવ્યું નથી.

ગુજરાતની જિનમૂર્તિઓમાં, સૌથી પ્રાચીન કહી શકાય એવી ચાર મૂર્તિઓ હમણાં થોડા જ સમય ઉપર જાણમાં આવી છે, જે વડોદરા રાજ્યના વિજાપુર ગામની પાસે આવેલા મહુડી ગામના કોલ્ચર્કજીના મંદિરનું ખોદકામ કરતાં દોઢેક વર્ષપર ત્યાંના મહંતને બીજા સ્થાપત્યકામો સાથે મળી આવી છે. આ ચારે મૂર્તિઓ ધાતુની છે. એમાંની સૌથી મોટી વજનદાર જિનમૂર્તિ કોલ્ચર્કજીના મંદિરની બાજુમાં, ત્યાંના મહંતની માલીકીની એક ઓરડીમાં સ્થાપિત કરવામાં આવી છે અને તે સીમેન્ટથી બાંધેલ સાથે સજ્જત રીતે બેસાડી દેવામાં આવેલી છે. બાકીની ત્રણ નાની મૂર્તિઓ વડોદરા રાજ્યના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતાની ઓફીસમાં હવે જવામાં આવેલી છે.

આ ચારે મૂર્તિઓનાં ફોટો-ચિત્રો, ઇ. સં ૧૯૩૭-૧૯૩૮ ના વડોદરા રાજ્યના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતાના અહેવાલમાં, ચિત્રપ્લેટ નંબર ૪અ, ૫અ, ૫બ અને ૬અ માં છપાવવામાં આવેલાં છે; પણ વડોદરા રાજ્યના પુરાતત્ત્વ ખાતાના વડા નિયામક માન્યવર ડૉ. હીરાનંદ શાસ્ત્રીજીએ આ મૂર્તિઓને જોઈ નહિં પણ ઔદ્ધમૂર્તિઓ તરીકે ઓળખતાં એ અહેવાલમાં ઓળખાવેલી છે, અને તેના અંગે જ કેટલીક ચર્ચા પ્રસ્તુત લેખમાં કરવા ધારી છે.

આ ચાર મૂર્તિઓ પૈકીની સૌથી મોટી મૂર્તિ કે જે હાલમાં કોલ્ચર્કજીના મહંતના કબજામાં છે, અને જેની પાછળ ગ્રાહી લિપિમાં એક લેખ પણ કોતરેલો છે, તે મૂર્તિનો પરિચય આપતાં, માન્યવર શાસ્ત્રીજી ઉક્ત અહેવાલના પાના ૬, પૃષ્ઠાક ૧૩ માં જણાવે છે કે:-

“The principal image, (Pl. IV a) which is the largest of the four, represents, in all probability, the Buddha, seated cross-legged in meditation with hands placed above the heels and the palms turned upwards.”

અર્થાત્-ચિત્ર પ્લેટ નંબર ૪અ વાળી મુખ્ય મૂર્તિ જે ચારે મૂર્તિઓમાં સૌથી મોટી છે તે, બધી સંભવિત રીતે જોતાં, પલાંડી વાળેલા બોળામાં એક બીજી ઉપર મુકેલી બંને હાથની ચત્તી હથેલીઓ સાથે, બેઠેલા ધ્યાનસ્થ શુદ્ધની લાગે છે.

એ મૂર્તિનું ચિત્ર, આ લેખ સાથે, ચિત્ર નંબર ૧ તરીકે રજુ કરેલું છે, જેને જોઈને કોઈપણ અભ્યાસી કહી શકશે કે માન્યવર શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ એ બૌદ્ધ મૂર્તિ નથી પણ સ્પષ્ટ રીતે જૈન મૂર્તિ છે. કારણ કે એ મૂર્તિની છાતીપરની બંને ડીંટડીઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે. બૌદ્ધ મૂર્તિઓમાં, છાતીનો ભાગ વસ્ત્રથી આચ્છાદિત થયેલો હોય છે અને તેથી તેમાં એ ડીંટડીઓ સ્પષ્ટ રીતે બતાવવામાં આવતી નથી. તેમ જ ગમે તેટલી બારીકાઈથી જોવા છતાં પણ આ મૂર્તિમાં અંગ ઉપર વસ્ત્રનું અથવા ઉપવિત (જનોઈ)નું નિશાન જરાય દેખાતું નથી.

માન્યવર શાસ્ત્રીજી, મૂર્તિની ધ્યાનસ્થ બેઠક અને ખોળામાં એક બીજા ઉપર રાખેલા હાથો પરથી આ મૂર્તિને બૌદ્ધ મૂર્તિ હોવાની સંભાવનાઓ રજુ કરે છે. પરંતુ સ્વર્ગસ્થ વિન્સેન્ટ સ્મિથ દ્વારા સંપાદિત *The Jain Stupa and other antiquities of Mathura* નામનું પુસ્તક કે જે ઈ. સ. ૧૯૦૧ માં, ભારત સરકારના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતાના વીશમા ગ્રન્થાંક તરીકે પ્રસિદ્ધ થયું છે, તેમાં કંકાલી ડીલામાંથી મળી આવેલી આવી ધ્યાનસ્થ બેઠકવાળી હુશાન સમયની જે જિનમૂર્તિઓ (ચિત્ર પ્લેટ નંબર ૮૫, ૯૧, ૯૨, ૯૩, ૯૪ અને ૯૮) પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવી છે તે જો ખ્યાલમાં રાખી હોત, તો માન્યવર શાસ્ત્રીજી, આ મૂર્તિને બૌદ્ધ મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવવાનો પ્રયત્ન ન જ કરત. વાચકોની ભણુ ખાતર ઉક્ત પુસ્તકમાંથી એવી બે જિનમૂર્તિઓનાં ચિત્ર, આ લેખ સાથે ચિત્ર નં. ૨ અને ૩ તરીકે રજુ કર્યાં છે. જેની સાથે સરખામણી કરવાથી ખ્યાલ આવશે કે ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિ બૌદ્ધ મૂર્તિ સાબીત થતી નથી, પરંતુ દરેક પુરાવાઓથી તે જિનમૂર્તિ હોવાની સાબિતી આપે છે.

વળી, માન્યવર શાસ્ત્રીજી, પોતાના એ અહેવાલના પાન ૭ ઉપર, ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિની પ્રભાવલીના પાછળના ભાગનું વર્ણન આપતાં જણાવે છે કે -

“The Prabhāvalī (pl. IV b) shows an old inscription incised on the back in minute late Brāhmī letters. The style of the image, however, is late and seems to belong to about the 7th century of the Christian era. The conventional and ornamental nature of the aura is an indication of late age.”

અર્થાત્-પ્રભાવલી (પ્લેટ ૪ બ)ની પાછળના ભાગમાં છેલ્લા સમયની બ્રાહ્મી-લિપિનો બારીક કોતરેલો એક લેખ છે. તેમ છતાં મૂર્તિની ઢબ મોડા સમયની અને લગભગ ઇસવી સનના સાતમા સૈકાની લાગે છે. એની પાછળ આવેલું ૩૬ સ્વરૂપનું શોભનાત્મક આભામંડલ તે મોડા સમયની હોવાનું દર્શાવે છે.

પ્લેટ નંબર ૪ બ નો લેખ ચિત્રમાં સ્પષ્ટ નહીં અહોવાથી અત્રે રજુ કર્યો નથી, પરંતુ તેની લિપિ જોતાં તો એ મૂર્તિ ઇસવી સનના પહેલાથી ત્રીજા સૈકા સુધીની હોવાની સાબિતી આપે છે, પણ શાસ્ત્રીજી કહે છે તે પ્રમાણે સાતમા સૈકાની નહિ જ.

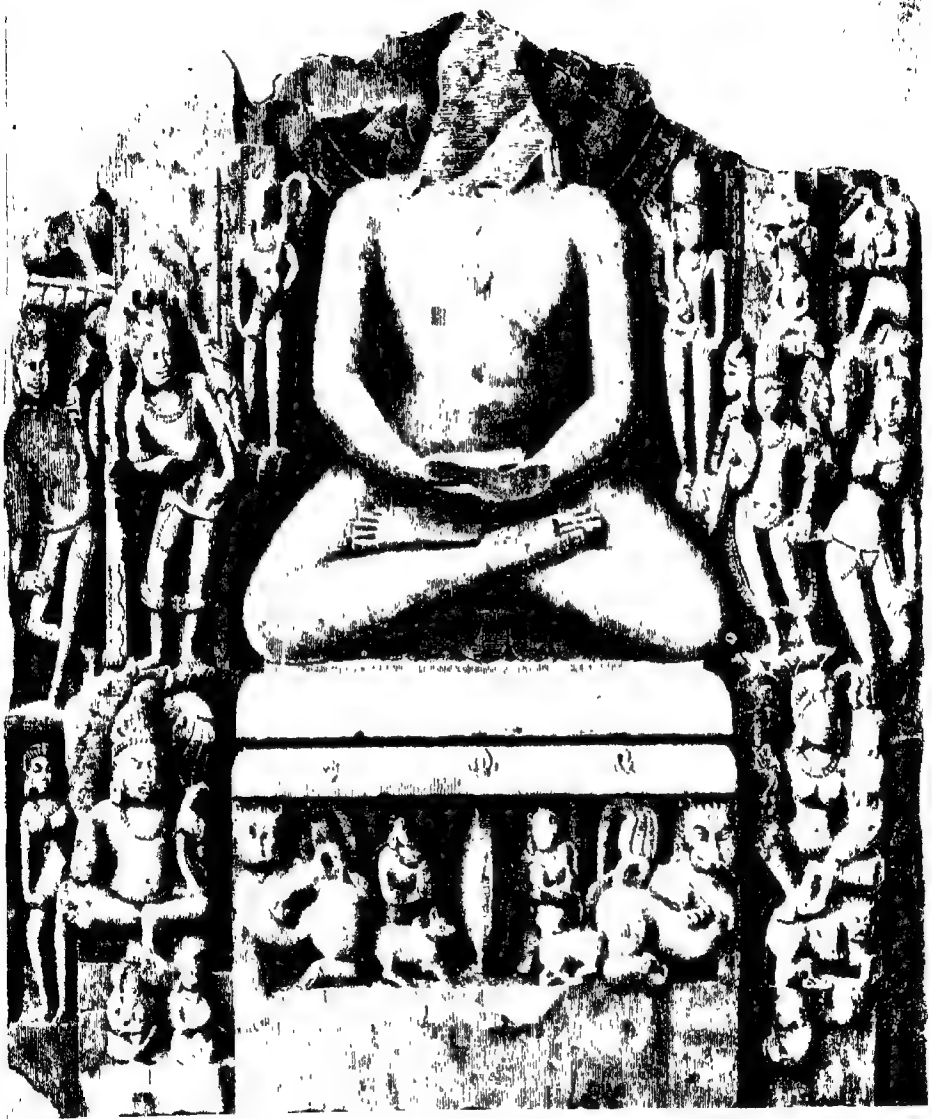
મારા કથનના પ્રમાણમાં, એ અહેવાલના પાન ૨૮મા ઉપર, પરિશિષ્ટ ‘ડી’ માં, શાસ્ત્રીજીના મદદનીશ અને એક વખતના મારા સહાધ્યાયી મિ. એ. એસ. ગદ્રેએ જે આ લેખનું વાંચન કરીને, તેનો સમય, ઇસવી સનના ત્રીજા સૈકાની આસપાસનો માનેલો



चित्र २. श्रीआदिनाथ - मथुरा



चित्र ५ एक जिनमूर्ति - महुडी



चित्र ३ श्रीपार्श्वनाथ - मथुरानो कंकालीटीलो
(ब्लोक मागभाई नवाबना सौजन्यशी)

છે, તે તરફ તેઓશ્રીનું ધ્યાન ખેંચું છું. વળી એ જ પરિશિષ્ટના remarks વાળા ખાનામાં મિ. ગદ્રેએ એ લેખની પહેલી લીટીનું જે વાંચન રજુ કરેલું છે, તે પણ એ મૂર્તિ જૈન હોવાની સાબિતી આપે છે અને તે અત્રે ઉતારવું આવશ્યક લાગે છે:

“Nama[h] Siddha[nam] Vairiganasa.....upa[ri]-kā-
āryasaṅgha-srāvaka-”

નમ[:] સિદ્ધ[નમ્] વૈરિગણસ.....ઉપ[રિ]-કા-આર્ય-સંઘ-ધ્રાવક-”

મિ. ગદ્રેના વાંચનનો જે પ્રથમ શબ્દ ‘નમ’[:] શબ્દ છે તેનો અર્થ ‘નમસ્કાર થાઓ’ અને બીજા શબ્દ ‘સિદ્ધ’ ની સાથે તેઓ જે [નમ્] શબ્દ હોવાની કલ્પના કરે છે, તેને બદલે [નમ્] હોવાની કલ્પના મને વધારે વાસ્તવિક લાગે છે. કારણ કે આ બે શબ્દો મળીને જૈનોને માન્ય પરમેષ્ઠિમંત્રનું બીજું પદ ‘નમો સિદ્ધાં’ થાય છે જેનો અર્થ ‘સિદ્ધોને નમસ્કાર થાઓ’ એ પ્રમાણેનો છે. આ બે શબ્દો જ આ મૂર્તિના જૈનત્વની સાબિતી માટે પૂરતા છે. કારણ કે આ પદથી એકેએક જૈન પરિચિત છે.

લેખનો ત્રીજો શબ્દ ‘વૈરિગણસ’ છે, આમાં જે ‘વૈરિગણ’ શબ્દ છે તે પણ આ મૂર્તિ જૈન હોવાનું સ્પષ્ટ પ્રમાણ આપે છે. ‘વૈરિગણ’ એટલે આર્ય વજ્રસ્વામીનો શિષ્ય સમુદાય.

‘કલ્પસૂત્ર’ નામના સુપ્રસિદ્ધ અને પ્રાચીન જૈન સૂત્ર ગ્રંથના પાછળના ‘સ્થવિરાવલી’ પ્રકરણમાં આર્ય વજ્રસ્વામીથી ‘વૈરિ’ શાખા નીકળ્યાનો ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે મળી આવે છે.

“થેરેહિંતો ણં અજ્ઞવહરેહિંતો ગોયમસગુસેહિંતો ર્થથ ણં અજ્ઞવહરી સાહા નિગ્ગયા ।”

અર્થાત્—ગૌતમ ગોત્રવાળા સ્થવિર આર્ય વજ્રથી આર્ય વજ્રી નામની શાખા નીકળી.”

મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થયેલી કુશાન સમયની પ્રાચીન જિનમૂર્તિઓ તથા જૈનસ્થાપત્યો ઉપર પણ ‘વૈરિશાસ્ત્ર’નો ઉલ્લેખ કરનારા કેટલાક લેખો મળી આવ્યા છે.

વળી, આ લેખમાં જે ‘વૈરિગણ’ શબ્દ વપરાયેલો છે, તે આ મૂર્તિનો સમય નક્કી કરવામાં પણ વધુ મદદગાર થઈ પડે તેમ છે. કારણ કે ‘ગણ’ શબ્દનો અર્થ એક જ વાચના લેનાર શિષ્યસમુદાય એવો પણ થાય છે. અને તેથી, આ લેખમાં, જે મથુરાના કંકાલી ટીલાના સ્થાપત્યોમાં મળી આવે છે તેવો ‘વૈરિશાસ્ત્ર’ શબ્દ મળી આવ્યો હોત, તો આ મૂર્તિ આર્ય વજ્રસ્વામીની શિષ્ય પરંપરામાંના કોઈ સમુદાયના સમયમાં બનાવવામાં આવી હશે એવું માનવાને કારણ રહેત, પરંતુ મારી માન્યતા પ્રમાણે આ મૂર્તિ આર્ય વજ્રસ્વામીની વિદ્યમાનતામાં અથવા તો તેમની પાસે પ્રત્યક્ષ વાચના લેનાર સાધુ સમુદાયની હયાતીમાં જ પ્રતિષ્ઠિત થઈ હોવી જોઈએ અને તે જ કારણને લઈને આ લેખમાં ‘વૈરિગણ’ એ શબ્દનો ખાસ પ્રયોગ થયેલો હોવો જોઈએ.

મારી આ દલીલો જો બરાબર હોય (અને બરાબર નહીં હોવાનું કાંઈ કારણ મળતું નથી) તો આ મૂર્તિ ઇસવી સનના પહેલા સૈકાની હોવી જોઈએ. કારણ કે આર્ય વજ્રસ્વામીનો સમય ઇસવી સનનો પહેલો સૈકો. છે (તેમનો જન્મ, વીર નિર્વાણ સંવત્ ૪૬૬ માં, અને દીક્ષા વીર નિર્વાણ સંવત્ ૫૦૪ માં થયાં હતાં. વીર નિર્વાણ સંવત્

૫૪૮ મુઘી સામાન્ય સાધુપદ અને વીર નિર્વાણ સંવત્ ૫૮૪ વર્ષ મુઘી યુગપ્રધાન પદવી ભોગવી, વીર નિર્વાણ સંવત્ ૫૮૪ માં તેઓ સ્વર્ગવાસ પામ્યા.)

શ્વેતાંબર સંપ્રદાયના તપગચ્છ આદિ ગચ્છોમાં આજે પણ સાધુઓને દીક્ષા વિગેરેની ક્રિયાઓ કરાવતી વખતે ‘કોટિકગણુ, ચંદ્રકુલ, વૈરિશાખા’ વિગેરે શબ્દોનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે.

લેખનો પાંચમો શબ્દ ‘આર્ય-સંઘ’ અર્થાત્-સાધુઓનો સમુદાય. આ શબ્દ પણ મારી ઉપરની દલીલોને ટેકો આપે છે, અને આ મૂર્તિની સ્થાપના, સાધુઓના સમુદાયની હાજરીમાં થયાનો સ્પષ્ટ પુરાવો આપે છે.

છઠ્ઠો શબ્દ જે ‘શ્રાવક’ છે તે તો આજે પણ પ્રચલિત છે જ. જૈનધર્માનુયાયી ગૃહસ્થોને જ ‘શ્રાવક’ તરીકે સર્વત્ર ઓળખવામાં આવે છે, એ સુવિદિત છે.

લેખના ત્રીજા અને પાંચમા શબ્દની વચ્ચેના ‘સ.....ર્ણિકા’ એવા અક્ષરોનો ઘણો પ્રયત્ન કરવા છતાં પણ મેળ મળતો નહીં હોવાથી, તે ખૂટતા અક્ષરો કોઈ વિદ્વાન પૂરા ખંધમેસ્તા કરી આપશે એમ માનીને એમને એમ રહેવા દેવાનું યોગ્ય માન્યું છે.

આ પ્રમાણે એ લેખની પહેલી લીટીની વાચનાનો એકેએક શબ્દ જૈન પરિભાષાનો છે, તે ઉપરથી પણ આ મૂર્તિ, માન્યવર શાસ્ત્રીજી માને છે તેમ બૌદ્ધ મૂર્તિ નથી, પરંતુ જૈન મૂર્તિ જ હોવાનું સ્પષ્ટ સાબિત થાય છે.

શાસ્ત્રીજી, વળી આગળ ઉપર ‘ધર્મચક્ર’નું ચિહ્ન તે મૂળ બૌદ્ધ પરંપરાનું ચિહ્ન છે એમ જણાવીને, ભગવાન યુદ્ધની વાણારસી પાસેની પહેલી દેશનાની નોંધ લે છે. પરંતુ વીર નિર્વાણ સંવત્ ૧૭૦ માં-એટલે ૬૦ સં ૫૦૦ પૂર્વે ૩૫૭ મા વર્ષમાં નિર્વાણ પામેલા આર્ય ભદ્રબાહુસ્વામી વિરચિત ‘આવશ્યક નિર્યુક્તિ’ નામના પ્રાચીન જૈન સૂત્ર-ગ્રંથમાં, ‘ધર્મચક્ર’ તીર્થની સ્થાપના જૈનોના પ્રથમ તીર્થંકર (શ્રીકૃષ્ણભદ્રેવ)ના પુત્ર બાહુબલિના સમયમાં થઈ હતી, એવો ઉલ્લેખ મળી આવે છે. એ ઉલ્લેખ તરફ માન્યવર શાસ્ત્રીજીનું લક્ષ્ય ખેંચાયું હોય તેમ લાગતું નથી. એ ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે છે:-

“તત્તો મગવં વિરહમાણો બહુલીવિસયં ગતો, તત્થ બાહુબલીસ્સ રાય-હાણી તક્કસિલા ણામં, તં મગવં વેતાલે ય પત્તો, બાહુબલીસ્સ વિયાલે ણિવેદિતં જહા સામી આગતો । કલં સચ્ચિદ્ધિય વંદિસ્સામિ સ્તિ ણ ણિગ્ગતો, પમાતે સામી વિહરંતો ગતો । બાહુબલીવિ સચ્ચિદ્ધિય ણિગ્ગતો, જહા દસન્ન-વિમાસા, જાવ સામીં ણ પેચ્છતિ, પચ્છા અધિતિ કાઝણ જત્થ મગવં હુત્થો તત્થ ધમ્મચક્કં ચિન્ધકારેતિ । તં સચ્ચરયણમયં જોયણપરિમંડલં, જોયણં ચ ઝસિતો દંડો, યવં કેઈ ઇચ્છંતિ । અન્ને મળંતિ-કેવલનાણે ઉપ્પન્ને તર્હિં ગતો, તાહે સલોગેણં ધમ્મચક્કવિમૂતી અક્કાતા, તેણ કતંતિ ।”

- અવશ્યક સૂત્ર નિર્યુક્તિ, પૃષ્ઠ ૧૮૦-૧૮૧

વળી, આગળ ઉપર, એ મૂર્તિની ચક્રચક્રિત આંખોની બાબતનો ઉલ્લેખ કરતાં તેઓ જણાવે છે કે:-

“The glazed eyes, on the contrary, seem to be an adaptation by Buddhists from the Jains, for they are not common

in Buddhist sculpture or paintings, though they are occasionally met with there also. In sculpture I may mention the Buddhist figure on the Tarangā hill (plate VII).”

અર્થાત્—એથી ઉલટું, ચક્રચકિત ચક્ષુઓ, બૌદ્ધોએ જૈનો પાસેથી અપનાવેલી હોય એમ લાગે છે, કારણ કે બૌદ્ધમૂર્તિઓ કે ચિત્રોમાં તે પ્રચલિત નથી, જો કે તેમાં પણ કવચિત મળી આવે છે ખરી, આવી મૂર્તિના ઉદાહરણ માટે (ચિત્ર પ્લેટ ૭ વાળી) તારંગાની ટેકરી ઉપરની બૌદ્ધમૂર્તિ (તારાદેવી)નો હું ઉલ્લેખ કરું.”

તારંગાની ટેકરી ઉપરની (તારાદેવીની) બૌદ્ધ મૂર્તિને ચક્રચકિત ચક્ષુઓ હોવાનો માન્યવર શાસ્ત્રીજી ઉલ્લેખ કરે છે, તે ખરાબર છે; પરંતુ શાસ્ત્રીજીએ બાણવું બેઠાએ કે ઇ. સ. ૦ ની પાંચમી સદીમાં ગુર્જરેશ્વર હુમારપાલે જ્યારથી તારંગાની ટેકરી ઉપર જૈનોના બીજા તીર્થંકર શ્રી અજિતનાથ ભગવાનનું મંદિર બંધાવ્યું ત્યારથી તે આજ-સુધી તારંગાનો ડુંગર અને તેના ઉપરનાં દેવસ્થાનો જૈનોના કબજામાં છે અને તેથી જ પોતાની ચાલુ પ્રથા પ્રમાણે જૈનોએ આ મૂર્તિને પણ ચક્રચકિત ચક્ષુઓ લગાડી દીધેલાં છે. એટલે કે શાસ્ત્રીજી માને છે તેમ બૌદ્ધોએ જ એ મૂર્તિને, જૈનોના અનુકરણરૂપે આ ચક્રચકિત ચક્ષુઓ ચોંટાં છે એવું નથી. એટલે તે કારણને લીધે, આ ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિ બૌદ્ધ મૂર્તિ હોવાનું જો શાસ્ત્રીજી માને છે તે ચર્ચાસ્પદ નથી; પણ ખરી રીતે તો આ મૂર્તિનાં ચક્રચકિત ચક્ષુઓ પણ આ મૂર્તિ જૈનની જ—અને તે પણ શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની (ચક્ષુઓ હોવાને લીધે)જ—હોવાની એક મજબુત સાબિતી આપે છે.

ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિના આસનની નીચે, મધ્યભાગમાં, જેવી રીતે ‘ધર્મચક્ર’નું ચિહ્ન કોતરેલું દેખાય છે, તેવી જ રીતે મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થયેલી કુશાન સમયની જિનમૂર્તિઓના આસનની નીચેના મધ્યભાગમાં પણ દેખાય છે. વાચકોની બાજુ ખાતર કુશાન સમયની એવી બે જિનમૂર્તિઓ, ચિત્ર નંબર ૨ અને ૩ તરીકે, આ સાથે રજુ કરું છું.

ઉક્ત શાસ્ત્રીય ઉલ્લેખ તથા આ સ્થાપત્યના પુરાવાઓથી સાબિત થાય છે કે ‘ધર્મચક્ર’ની માન્યતા શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ બૌદ્ધ ધર્મના અનુકરણ રૂપે જૈનોએ અપનાવેલી નથી, પરંતુ એક સ્વતંત્ર માન્યતા રૂપે, ઘણા જ પ્રાચીન સમયથી જૈનોમાં પણ એ ચાલી આવે છે અને આજે પણ પ્રચલિત છે. આપણે કોઈપણ પળાસનવાળી, પરિકર સહિતની જૈન મૂર્તિ જોશું તો તેમાં—પછી તે કુશાનકાલીન હો કે મધ્યકાલીન, મધ્યકાલીન હો કે અર્વાચીન, દરેકે દરેક જિનમૂર્તિના પળાસનની નીચેના—મધ્યભાગમાં ધર્મચક્રનું ચિહ્ન સ્પષ્ટ દેખાશે.

આ સાથે રજુ કરેલી ચિત્ર નંબર ૨ વાળી ઋષભદેવની મૂર્તિ, મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી ખોદકામ કરતાં ઇ. સ. ૧૮૮૬-૯૦ માં મળી આવી હતી. સ્વર્ગસ્થ વિન્સેન્ટ સ્મિથે પોતાના The Jain stupa and other antiquities of Mathura નામના પુસ્તકમાં ચિત્ર પ્લેટ ૯૫ તરીકે આ મૂર્તિ રજુ કરી છે, અને તેના જ ઉપરથી મેં પણ આ ચિત્ર અત્રે રજુ કરેલું છે. મિ. સ્મિથે એ પુસ્તકના પાના પર ઉપર આ મૂર્તિની ઓળખાણ નીચેના શબ્દોમાં આપેલી છે:—

“Vardhamāna, surrounded by the previous 23 Tirthankaras.

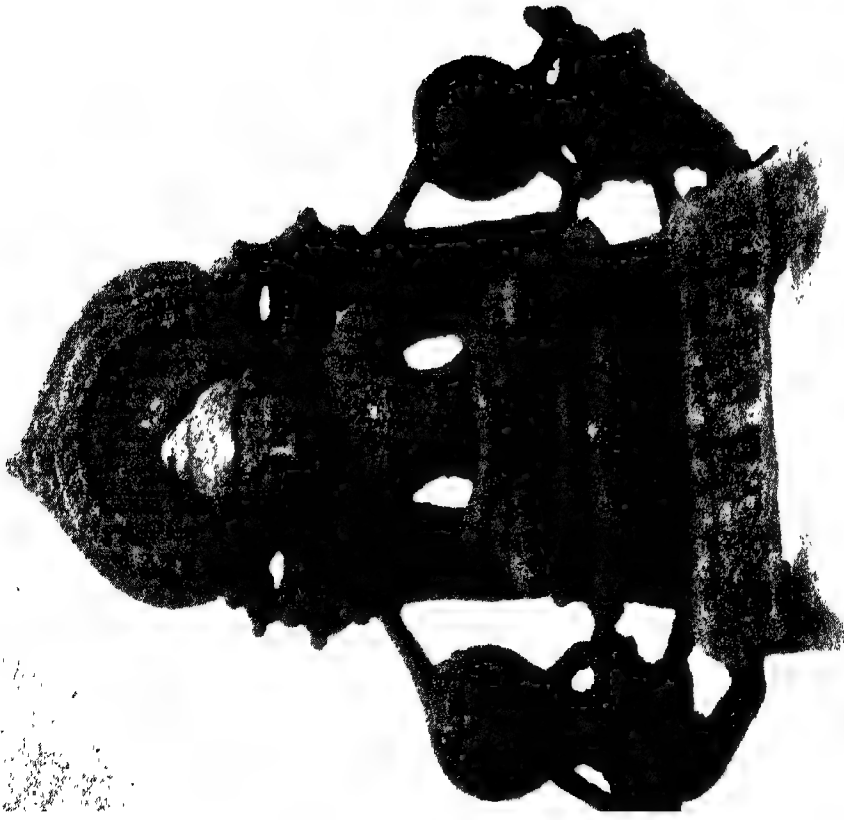
The saint is represented seated in the usual attitude of meditation (Dhyānamudrā), on a cushion. The lions in the pedestal show that Vardhamāna or Mahāvira is the person represented. His 23 predecessors in miniature are arranged as a border, seven at the top and eight at each side.”

અર્થાત્—પૂર્વના ત્રેવીશ તીર્થંકરોથી વીંટાએલા શ્રીવર્ધ્ધમાન એ સંત પુરુષને ગાદી ઉપર હમેશની ધ્યાનમુદ્રાની બેઠકે બેઠેલા દર્શાવ્યા છે. પળાસનમાંના સિંહો આ વર્ધ્ધમાન ઉર્ફે મહાવીર છે એમ બતાવે છે. તેમની પહેલાંના ત્રેવીશ તીર્થંકરોની નાની નાની મૂર્તિઓ, જેમાંની સાત ઉપર અને આઠ આઠ બંને બાજુએ એમ કીનારની માફક ગોઠવેલી છે.

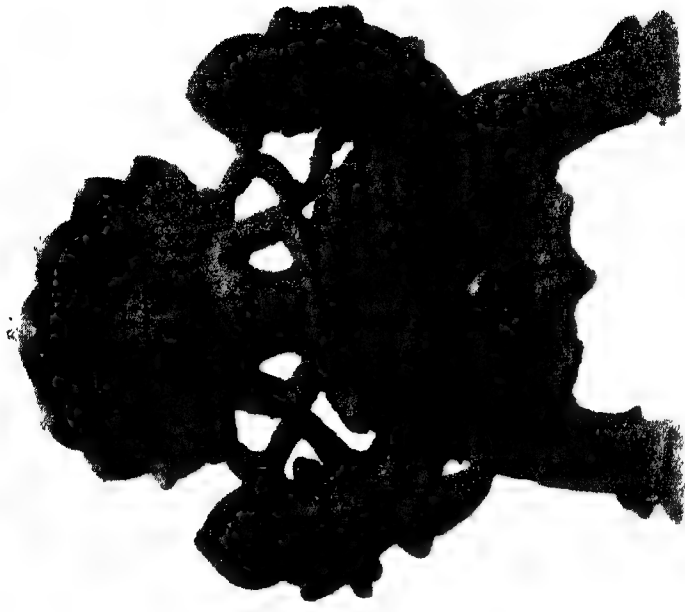
મિં સ્મિથે પળાસનમાંના સિંહોની આકૃતિને, એ મૂર્તિના મુખ્ય લાંછન તરીકે માની લઇને એ મૂર્તિની મુખ્ય આકૃતિને મહાવીરની મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવવામાં બૂલ કરેલી છે. કારણ કે શિલ્પીએ સિંહનો ઉપયોગ બે લાંછન તરીકે કરવાનો ધરાહો રાખ્યો હોત તો તેણે તે મૂર્તિના પળાસનની નીચેના મધ્યભાગમાં અથવા તો ધર્મચક્રની ઉપરના મધ્યભાગમાં, એક જ સિંહની આકૃતિ કોતરીને રજુ કરી હોત.

પરંતુ મેં એક બીજા લેખમાં (જૈન સત્યપ્રકાશ માસિકના ચોથા વર્ષના અંક ૧-૨ માં) જણાવ્યું છે તેમ, ઇસવી સનના દશમા સૈકા પહેલાંની જૈન મૂર્તિઓમાં લાંછનો કોતરેલાં મળી આવતાં નથી, તેમ જ દશમા સૈકા પહેલાંના કોઈપણ જૈન ગ્રંથમાં પણ ચોવીશ તીર્થંકરોનાં એ જુદાં જુદાં લાંછનોનું વર્ણન કરેલું હોવાનું મારી જણ્યું નથી. તેથી માફ માનવું તો એમ છે કે દશમા સૈકા પછીના કોઈપણ જૈન મહાપુરુષે, દરેક તીર્થંકરોને જુદાં જુદાં સ્વરૂપે ઓળખવા માટે, જુદાં જુદાં લાંછનોની કલ્પના કરી હોવી જોઈએ.

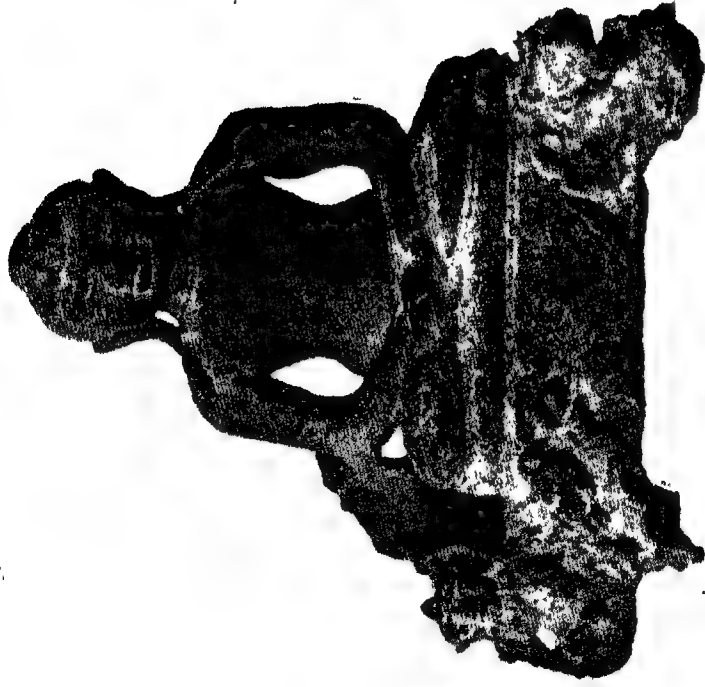
વાસ્તવિક રીતે એ મૂર્તિ વર્ધ્ધમાનદેવની નહિ, પરંતુ પ્રથમ તીર્થંકર શ્રીઋષભદેવની છે અને તેને ફરતી બાકીની ત્રેવીશ તીર્થંકરોની મૂર્તિઓ કોતરીને શિલ્પીએ પ્રાચીન ચોવીશવટાનું સુંદર સર્જન કર્યું છે. એ મૂર્તિને હું ઋષભદેવની મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવું છું, તેનું કારણ મૂર્તિના બંને ખભા ઉપર, શિલ્પીએ રજુ કરેલી લટકતી વાળની લટો છે, જે એ મૂર્તિના ચિત્રમાં, તથા આ લેખ સાથે રજુ કરેલી, ચિત્ર નંબર ૬ વાળી મહુડીની મૂર્તિમાં, નંબર ૭ વાળી મથુરાની મૂર્તિમાં, તથા નંબર ૮ વાળી પિંડવાડા (મારવાડ)ની જિનમૂર્તિમાં સ્પષ્ટ દેખાય છે. જૈનોના ચોવીશ તીર્થંકરો પૈકી પ્રથમ તીર્થંકર શ્રીઋષભદેવ સિવાય બાકીના ત્રેવીશ તીર્થંકરોએ પંચમુષ્ટિ લોચ કરેલો છે, જ્યારે શ્રીઋષભદેવે ચારમુષ્ટિ લોચ કરી રહ્યાં પછી પાંચમી મુષ્ટિથી લોચ કરતી વખતે સૌધર્મેન્દ્રની વિનંતીથી, વાળની એ લટો લોચ કર્યા વગરની જ રહેવા દીધી હતી, જે સંબંધી સ્પષ્ટ વર્ણન, આવશ્યકનિર્ણય જેવા પ્રાચીન સૂત્રગ્રંથમાં તથા કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચંદ્રસૂરિએ રચેલા ‘ત્રિપણિશલાકા પુરુષચરિત્ર’ જેવા ચરિત્રગ્રંથોમાં કરેલું મળી આવે છે. જેમકે—



चित्र ४ श्रीपार्श्वनाथ - महडडी



चित्र ५ श्रीपार्श्वनाथ - महडडी



चित्र ६ श्रीआदिनाथ • महुडी



चित्र ७ श्रीआदिनाथ • मथुरा
(दलोक माराभाई नवाबना सौजन्यधी)

“તેસિં પંચમુદ્ધિઓ લોઓ સયમેવ । મગવઓ પુણ સક્કવયणेण कणगा-
वदाए सरीरे जडाओ अंजणरेहाओ इव रेहंतीओ उवलमइऊण ठिआओ
सेण चउमुदुद्धिओ लोओ ।” - આં નિં ૫૬૧

— તેમનો (તીર્થંકરોનો) સ્વયમેવ પાંચ મુદ્ધિનો લોચ હતો. પણ ભગવાન ઋષભ-
દેવનો ઇન્દ્રના વચનથી, તેમના કનક જેવા ઉજ્જવળ શરીર ઉપર, અંજનની રેખા
જેવી જટાઓ શોભતી ઉખાડ્યા વગરની રહી. તેથી તેમનો ચાર મુદ્ધિનો લોચ છે.”

“प्रतीच्छति स्म सौधर्माधिपतिः कुन्तलान् प्रभोः ।

वस्त्राञ्चले वर्णान्तरतन्तुमण्डनकारिणः ॥ ૬૮ ॥

मुष्टिना पञ्चमेनाऽथ शेषान् केशान् जगत्पतिः ।

समुच्चिखनिषमेवं ययाचे नमुचिद्विषा ॥ ૬૯ ॥

नाथ ! त्वदंसयोः स्वर्णरुचोर्मरकतोपमा ।

वातानीता विभात्येषा तदास्तां केशवल्लरी ॥ ૭૦ ॥

तथैव धारयामास तामीशः केशवल्लरीम् ।

याज्ञમેकान्तभक्तानां स्वामिनः खण्डयन्ति न ॥ ૭૧ ॥

- ત્રિષ્ટિશલકાપુરુષચરિત્ર, સર્ગ ૩, પૃષ્ઠ ૭૦.

અર્થાત્- પ્રભુના કેશોને સૌધર્માધિપતિએ પોતાના વસ્ત્રના છેડામાં ચઢણુ કર્યા, તેથી
જાણે એ વસ્ત્રને જુદા વર્ણના તંતુ વડે મંડિત કરતા હોય એમ જણાવું હતું. પ્રભુએ
પાંચમી મુદ્ધિથી બાકીના કેશનો લોચ કરવા ઇચ્છા કરી ત્યારે ઇન્દ્રે કહ્યું કે-
‘હે સ્વામિન ! હવે તેટલી કેશવલી રહેવા દો; કેમકે જ્યારે પવનથી ઊડીને તે તમારી
સુવર્ણ જેવી કાંતિવાળા ખજાના ભાગ ઉપર આવે છે ત્યારે મરકતમણિના જેવી શોભે
છે.’ પ્રભુએ યાચના સ્વીકારીને તેટલી કેશવલીને તેવી રીતે જ રહેવા દીધી. કેમકે
સ્વામીઓ પોતાના એકાંત ભક્તોની યાચનાનું ખંડન કરતા નથી.”

પ્રસ્તુત ઉલ્લેખો સિવાય ‘કલ્પસૂત્ર’ મૂળ, ‘ધનપાલ પંચાશિકા’ વગેરે બીજા પણ જૈન
ગ્રંથોમાં જ્યાં જ્યાં ઋષભદેવની દીક્ષાના પ્રસંગનું વર્ણન આવે છે, ત્યાં ત્યાં બધે તેમણે
ચારમુદ્ધિ લોચ કર્યા હોવાનો જ ઉલ્લેખ મળી આવે છે.

ચિત્ર નંબર ૩ વાળી શ્રી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ, મથુરાના કંકાલી દીલામાંથી ઇ. સ. ૧૮૯૦ ના ફેબ્રુઆરી માસમાં ખોદકામ કરતાં મળી આવી હતી. સ્વર્ગસ્થ મિં સિમથે
આ મૂર્તિને ઉક્ત પુસ્તકમાં ચિત્ર પ્લેટ નંબર ૯૮ તરીકે રજુ કરી છે, અને તેના જ
ઉપરથી પ્લૉક કરાવીને મેં આ ચિત્ર અત્રે રજુ કર્યું છે. આ ચિત્રની ઓળખાણ એ
પુસ્તકના પાન ૫૫ ઉપર નીચેના શબ્દોમાં આપી છે:-

Image of Rishabhanāth or Adināth, the first Tirthankara.

“The elaborate sculpture, found in the Kankālī mound in February 1890, is unfortunately much mutilated. The head of the principal figure has been lost, and of the inscription on the pedestal nothing remains but faint traces. The chara-

acters seem to be of early form. The attendant figures, male and female, are unusually numerous, and seem to include deities of the Hindu pantheon. The supporters of the pedestal (simhāsan) are lions, as in plates XCI and XCIII. But in the sculptures figured in those plates the lions are alone, and thus indicate that the Jina represented is Vardhamāna. In this case the presence of two diminutive bulls between the lions indicates that the personage honoured is Rishabhanāth, "the Bull-lord."

ભાવાર્થ:—પ્રથમ તીર્થંકર, શ્રી ઋષભદેવ ઉર્ફે આદિનાથની મૂર્તિ.

ઇ. સ. ૧૮૯૦ ના ફેબ્રુઆરી મહિનામાં કંકાલી ટીલામાંથી મળી આવેલું આ શ્રમ-સાધિત શિલ્પ કમનશીબે ઘણું ખંડિત છે. મુખ્ય આકૃતિના મસ્તકનો ભાગ ખોવાઈ ગયો છે, અને પગાસન પરના લેખમાંથી પણ માત્ર ઝાંખી નિશાનીઓ શિવાય કંઈ બાકી રહ્યું નથી. અક્ષરો પુરાતનકાલના હોય એમ લાગે છે. પરિચારક સ્ત્રી અને પુરુષની આકૃતિઓ અસાધારણ સંખ્યાવાળી છે, જેમાં હિંદુધર્મની પણ સમસ્ત દેવ કોટિનો સમાવેશ થાય છે. ચિત્ર નંબર ૯૧ અને ૯૩ની માફક પગાસન (સિંહાસન)ને ધરી રહેલી આકૃતિઓ સિંહોની છે. પણ ઉપરનાં નંબરવાળાં શિલ્પોમાં સિંહો એકલા જ છે અને તે જિન વર્ણમાન (મહાવીર) હોવાની સાબિતી આપે છે; જ્યારે આ શિલ્પમાંના સિંહોની વચ્ચે રણુ થએલા નાના આકારના બળદો, આ મુખ્ય મૂર્તિ ઋષભનાથ એટલે કે વૃષભદેવની હોય એમ દર્શાવે છે."

વાસ્તવિક રીતે આ મૂર્તિ ઋષભદેવની નથી, પરંતુ પાર્શ્વનાથની હોય એમ લાગે છે. હું ઉપર ચિત્ર નંબર ૨ ના વર્ણનમાં જણાવી ગયો છું તેમ મિ. સ્મિથે અહીં પણ આ મૂર્તિને ઓળખવા માટે જે લાંછનનું કારણ દર્શાવ્યું છે તે બરાબર નથી; કારણ કે શિલ્પીની ઇચ્છા, મિ. સ્મિથ જેને બળદ તરીકે ઓળખાવે છે તે આકૃતિને, લાંછન તરીકે રણુઆત કરવાની હોત તો તેવી એક જ આકૃતિની રણુઆત તેણે કરી હોત. પરંતુ વાસ્તવિક રીતે શિલ્પીએ જે બે આકૃતિઓની રણુઆત કરી છે, તે પૈકી ધર્મચક્રની જમણી તરફની (ચક્ષ બાણુની) આકૃતિ, બૂલથી શિલ્પીએ હરણુના બદલે બળદની રણુ કરી છે અને ડાબી તરફની (ચક્ષીની બાણુની) આકૃતિ હરણુની રણુ કરી છે; કારણ કે પ્રાચીન કે અર્વાચીન દરેક જૈન શિલ્પમાં ધર્મચક્રની બંને બાણુએ એકેક હરણુની આકૃતિ કોતરેલી હોય છે.

આ શ્રમસાધિત શિલ્પની વાસ્તવિક ઓળખાણ આ પ્રમાણે છે: મધ્યમાં પગાસનની બેઠકે ધ્યાનમુદ્રાએ બેઠેલી મૂર્તિ પાર્શ્વનાથ (જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર)ની છે. તેનો મસ્તકનો ભાગ ખોવાઈ ગયેલો છે, એટલે નાગની ફણા વગેરેનું ચિહ્ન દેખાતું નથી; પરંતુ તેની જમણી બાણુએ ઊભેલી પુરુષાકૃતિના મસ્તક ઉપરની નાગફણાઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે બતાવી આપે છે કે, તે પુરુષાકૃતિ પાર્શ્વનાથના પરમ ઉપાસક નાગરાજ (ધરણેન્દ્ર)ની છે. ધરણેન્દ્રની બાણુમાં, જમણે હાથ પોતાના જમણા પગ ઉપર ટેક-

વીને તથા ડાબો હાથ—જેમાં મૃણાલદંડ પકડી રાખવામાં આવ્યો છે તે—ઉંચો રાખીને ઊભી રહેલી એક સ્ત્રીની આકૃતિ છે. એની છાતીનો ભાગ ખંડિત થઈ ગયેલો હોવાથી સ્તનની આકૃતિ સ્પષ્ટ દેખાતી નથી. આ સ્ત્રી તે નાગરાજ (ધરણેન્દ્ર)ની પત્ની હોવી જોઈએ. ડાબી બાજુએ ઊભેલી પુરુષાકૃતિના જમણા હાથમાં વીણા તથા ડાબા હાથમાં શંખની આકૃતિ સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે સૂચિત કરે છે કે આ આકૃતિ પાર્શ્વનાથની પાસે ભક્તિથી નૃત્ય કરતા કોઈ કિન્નરદેવની છે. કિન્નરદેવની બાજુમાં, પોતાનો ડાબો હાથ ડાબા પગ ઉપર ટેકવીને અને ઉંચા રાખેલા જમણા હાથમાં ફૂલ પકડીને ઊભી રહેલી એક સ્ત્રી છે. આ આકૃતિ અખંડિત હોવાથી તેની સ્તનની આકૃતિઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે. આ સ્ત્રી તે કિન્નરદેવની સ્ત્રી હોવી જોઈએ. કિન્નરદેવના મસ્તકના ઉપરના ભાગમાં પદ્માસનની બેઠકે ધ્યાનમુદ્રામાં બેઠેલી પાર્શ્વનાથની નાની મૂર્તિ સ્પષ્ટ દેખાય છે. આ નાની મૂર્તિના મસ્તક ઉપરની ફણા સ્પષ્ટ દેખાય છે. તે પણ એ શિલ્પમાંની મુખ્ય મૂર્તિ પાર્શ્વનાથની જ હોવાની એક વધુ સાબિતી આપે છે. વળી પાર્શ્વનાથની નાની મૂર્તિની બાજુમાં, બે હાથની અંજલિ જોડીને સ્તુતિ કરતી એક ભક્ત સ્ત્રી બેઠેલી છે, પણ કમનશીએ આ સ્ત્રીના મસ્તકનો ભાગ પણ ખંડિત થયેલો છે. નાગરાજની બરાબર નીચે અને પદ્માસનની જમણી બાજુના ભાગમાં, ડાબા હાથમાં પોથીનું પાનું પકડીને બેઠેલી પાર્શ્વયક્ષની આકૃતિ છે. યક્ષનો જમણો હાથ નાશ પામેલો હોવાથી કાંઈ આયુધ વગેરે દેખાતું નથી. યક્ષના મસ્તકના ઉપરના તથા ખંને બાજુના ભાગમાં ઝાડની આકૃતિ દેખાય છે, જે સાબિત કરે છે કે આ યક્ષ તે ન્યગ્રોધમૂલવાસી પાર્શ્વયક્ષ છે.* યક્ષની ડાબી બાજુએ એક સ્ત્રી ઊભેલી છે અને યક્ષની નીચે પણ એક પુરુષ અને એક સ્ત્રી બેઠેલાં છે. તે પૈકી સ્ત્રીના મુખનો ભાગ ખંડિત થયેલો છે. કિન્નરદેવની બરાબર નીચે અને પદ્માસનની ડાબી બાજુના ભાગમાં પોતાના જમણા હાથમાં આમ્ર-લુંબી (પક્ષવ) અને ડાબા હાથમાં બાળક રાખીને બેઠેલી દેવી અંબિકા છે. અંબિકાની બરાબર નીચેના ભાગમાં તેનું વાહન સિંહ સ્પષ્ટ દેખાય છે. યક્ષની મૂર્તિની માફક અંબિકા યક્ષીની નીચેના ભાગમાં બે આકૃતિઓ સ્તુતિ કરતી કોતરેલી છે, જે પૈકી એક આકૃતિનું એકલું મસ્તક અને બીજી આકૃતિનું અડધું શરીર માત્ર દેખાય છે. મુખ્ય તીર્થંકરની નીચેના પદ્માસનના ખંને છેડે એકેક સિંહની આકૃતિ છે, અને બરાબર મધ્યમાં ચિત્ર નંબર ૧ અને ૨ ની માફક ધર્મચક્ર કાઢેલું છે, જેની ખંને બાજુએ અંદર પડતા એકેક ભક્તપુરુષ અંજલિ જોડીને ધર્મચક્રની સ્તુતિ કરતા દેખાય છે. મુખ્ય તીર્થંકરની ખંને બાજુએ, એકેક ચામર ધરનાર વ્યક્તિ ઊભેલી છે.

આ સાથે રજુ કરેલી ચિત્ર નંબર ૪ વાળી જિનમૂર્તિને માન્યવર શાસ્ત્રીજીએ પ્રસ્તુત અહેવાલમાં ચિત્ર પ્લેટ ૫ અ તરીકે રજુ કરેલી છે, અને તેની ઓળખાણ અહેવાલના પાના ૭ ના પેરેગ્રાફ ૬૪માં આપતાં જણાવ્યું છે કે—

* દશલક્ષજાપ્યદ્યોમાત્ પ્રત્યક્ષો ભવતિ પાર્શ્વયક્ષોડ્યૌ ।

ન્યગ્રોધમૂલવાસી દયામાજ્ઞજિનયનો નૂતનમ્ ॥ ૩૮ ॥

—શ્રીચૈરવપદ્માવતીકલ્પ, ૩ અધિકાર.

વડના ઝાડના મૂળમાં રહેનાર, સ્થામવર્ણ અને ત્રણ નેત્રવાળો એવો પાર્શ્વનાથનો યક્ષ ૬૨ લાખ લાખ અને (એક લાખ) હોમ કરવાથી નિઃશયે કરીને પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ થાય છે.

“One of the smaller images (plate Va) has on the right a Yaksha who is certainly Jambhala or Kubera, and on the left, his consort the Yakshī Hārītī bearing a child on her left arm.The symbols of the Yaksha, namely, Jambhala, are not distinct but should be the જંમીર and the pearl-emitting mongoose which characterises him. Hārītī's child is too clear to be doubted.”

“(ચિત્ર પ્લેટ ૫ અ વાળી) નાની મૂર્તિઓમાંની એક મૂર્તિની જમણી બાજુ યક્ષ છે, જે ચોક્કસ જંબલ અથવા કુબેર છે, અને ડાબી બાજુએ પોતાના ડાબા હાથ ઉપર બાળક તેડી ઊભેલી તેની પત્ની હારિતી યક્ષિણી છે.....જંબલ નામના યક્ષનાં ચિહ્નો સ્પષ્ટ નથી, પણ તે જંબીર (એક ભાતનું ફલ) અને નોળીઓ હોવાં બેઠાં, કે જે તેનાં લક્ષણો છે. હારિતીનું બાળક તો લેશ માત્ર શંકા ન આવે એવું સ્પષ્ટ છે.”

માન્યવર શાસ્ત્રીજીએ, પોતે બાંધી લીધેલા પૂર્વગ્રહાનુસાર, એ મૂર્તિને બૌદ્ધમૂર્તિ તરીકે ઓળખાવી છે અને તેથી જ તેની જમણી બાજુની યક્ષની આકૃતિને જંબલ ઉદ્દે કુબેર તરીકે, અને ડાબી બાજુની યક્ષિણીની આકૃતિને હારિતીની આકૃતિ તરીકે ઓળખાવી છે.

આ મૂર્તિની વાસ્તવિક ઓળખાણ આ પ્રમાણે છે: મધ્યમાં પદ્માસનની બેઠકે ધ્યાનાવસ્થામાં બેઠેલી મુખ્ય મૂર્તિ બુદ્ધ ભગવાનની નથી, પરંતુ જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર પાર્શ્વનાથની છે અને તેની જમણી બાજુની યક્ષની આકૃતિ તે તેમના યક્ષ પાર્શ્વયક્ષની છે, અને ડાબી બાજુની યક્ષિણીની આકૃતિ છે તે અંબિકાદેવીની છે, જેના ડાબા હાથમાં બાળક પકડેલું સ્પષ્ટ દેખાય છે. (સરખાવો ચિત્ર નંબર ૩ ની યક્ષ તથા યક્ષિણીની આકૃતિઓ.)

ચિત્ર નંબર ૧ ની માફક આ મૂર્તિના પણ શરીરના કોઈપણ ભાગ ઉપર, ઉપવીત (જનોઈ)નું અથવા વસ્ત્રનું જરાએ પણ નિશાન દેખાતું નથી; અને આ મૂર્તિની ધાતુ હલકી હોવાને લીધે અથવા તો ગમે તે કારણને લીધે, ઘણો ખરો ભાગ ખવાઈ ગયેલો હોય એમ લાગે છે, છતાં પણ છાતી (સ્તન)ની ડીંટડીઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે સાબિતી આપે છે કે આ મૂર્તિ પણ જૈન તીર્થંકરની છે.

ચિત્ર નંબર ૫ વાળી મૂર્તિને પણ બૌદ્ધ મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવતાં માન્યવર શાસ્ત્રીજી રિપોર્ટના પાના ૮ ઉપરના પેરા નંબર ૧૫ માં જણાવે છે કે—

“The third image (pl. V b) shows a Nāga and a Nāgi under the Yaksha and the Yakshī figures respectively. The Yaksha is squatting above the Nāga, and the Yakshī is squatting on the Nāgi. The बीजपूरक in the right hand of the image is clear enough in this case and supports the proposed identification of the subject with Jambhala or Kubera, the Buddhist deity of wealth.

ચિત્ર પ્લેટ (૫ બ વાળી) ત્રીજી મૂર્તિમાં યક્ષની નીચે નાગ અને યક્ષીની નીચે નાગિણી, અનુક્રમે બતાવવામાં આવ્યાં છે. યક્ષ નાગના ઉપલા ભાગમાં બેઠેલો છે, અને યક્ષી નાગિણીના ઉપલા ભાગમાં બેઠેલી છે. યક્ષના જમણા હાથમાંનું બીજેડું આ ઉદા-હરણમાં તો સ્પષ્ટ છે અને તે બૌદ્ધ ધર્મના ધનના દેવતા જંભલ ઉર્ફે કુબેર હોવાની મારી સંભાવનાની સચ્ચાઈની સાબિતી આપે છે.”

આ પ્રમાણે, આ મૂર્તિની ઓળખાણ આપીને માન્યવર શાસ્ત્રીજી, ભાવદેવસૂરિ વિરચિત શ્રી પાર્શ્વનાથ ચરિત્રમાંથી, સૂત્રધાર મંડનના દેવતામૂર્તિ પ્રકરણમાંથી, તથા ઠંકર કેડ વિરચિત વાસ્તુસાર પ્રકરણ નામના વિક્રમની તેરમી તથા ચઉદમી સદીના ગ્રંથોમાંથી, પાર્શ્વનાથના યક્ષ અને યક્ષીનાં સ્વરૂપોનાં વર્ણન આપીને આ મૂર્તિ જૈન નહિ હોવાનું પ્રતિપાદન કરે છે.

પ્રસ્તુત ઉલ્લેખોમાં તેમણે જે ઉલ્લેખો રજુ કર્યાં છે, તે બધા ઉલ્લેખો પદ્માવતીદેવીને પાર્શ્વનાથની યક્ષી તરફે માનીને કર્યાં છે, અને તે બધા ઉલ્લેખો અગિયારમી સદી પછીના ગ્રંથોના છે; પરંતુ અગિયારમી સદી પહેલાંની અને કેટલાક દાખલાઓમાં તો આરમી અને તેરમી સદીની પણ પાપાણુની અને ધાતુની એવી જૈન મૂર્તિઓ મળી આવે છે - જેમાં જમણી બાજુએ બે હાથવાળા યક્ષની અને ડાબી બાજુએ બે હાથ-વાળા અંબિકા યક્ષીની મૂર્તિ આપેલી હોય છે.

માન્યવર શાસ્ત્રીજી આ મૂર્તિને બૌદ્ધ મૂર્તિ સાબિત કરવા માટે સાધનમાલામાંથી (જંભલ-સાધનનો) ઉલ્લેખ કરે છે: - **સુવર્ણવર્ણ લઘ્વોદરં...વામદક્ષિણહસ્તાભ્યાં નકુલીવીજપૂરકધરં.....** [કુબેર] સુવર્ણવર્ણ, લાંબુ પેટ...તથા ડાબા હાથમાં નોળીએ અને જમણા હાથમાં બીજેરાવાળો [હોય] છે.”

તેઓશ્રીએ જે સ્વરૂપ પોતાના મતના સમર્થનમાં દર્શાવ્યું છે, તેની સાથે આ યક્ષની મૂર્તિ મળતી આવતી નથી. કારણ કે ચિત્ર નંબર ૫ વાળી જમણી બાજુની યક્ષની મૂર્તિના ડાબા હાથની આકૃતિ એટલી બધી સ્પષ્ટ છે કે જોતાંની સાથે જ જાણાઈ આવે છે કે તેના હાથમાં પોથીનું પાનું છે અને નોળીઆનું તો નિશાન સુદ્ધાં પણ નથી. આને જ મળતી યક્ષની આકૃતિનું વર્ણન જે ઉપર ચિત્ર નંબર ૩ ના વર્ણનમાં આપવામાં આવ્યું છે તે ખ્યાલમાં લેવાથી સાબિત થશે કે આ મૂર્તિ શાસ્ત્રીજીની સંભાવનાને સમર્થિત કરતી નથી, પરંતુ આ મૂર્તિ જૈન હોવાની વધુ સાબિતી આપે છે.

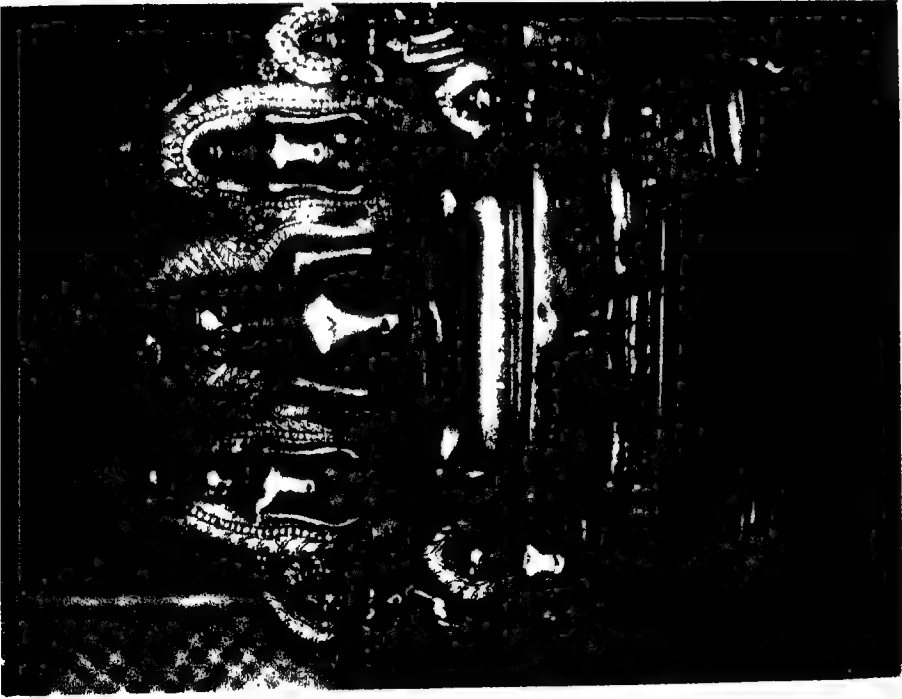
પાર્શ્વનાથની ડાબી બાજુ અંબિકાદેવીની મૂર્તિ તથા જમણી બાજુ બે હાથવાળા યક્ષની મૂર્તિ સાથેની પાપાણુની મૂર્તિઓ પૈકી, સૌથી પ્રાચીન મૂર્તિ કાઠિયાવાડમાં આવેલા ઢાંક પર્વતપરની ગુફાઓના ખડકની ભીંતમાં કોતરેલી છે, જે મં આ લેખ સાથે ચિત્ર નંબર ૧૧ તરીકે રજુ કરી છે. એ મૂર્તિ ત્રીજા સૈકાની છે. મથુરાના કંડાલી દીલામાંથી પ્રાપ્ત થએલી કુશાન સમયની મૂર્તિ મં ચિત્ર નંબર ૩ તરીકે ઉપર રજુ કરેલી જ છે અને લગભગ આરમી સદીની સફેદ આરસની બે મૂર્તિઓ તલાબ(કાઠિયાવાડ)ના સુમતિનાથ પ્રભુના જૈન મંદિરના ગભારામાં બંને બાજુએ બેસેલી છે. જે પૈકી એક મૂર્તિ મારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થનાર “ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પ સ્થાપત્ય” નામના પુસ્તકમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવનાર છે.

આવી ભતની બીજી ધાતુની મૂર્તિઓ પૈકીની, લગભગ આઠમા સૈકા જેટલી જૂની એક મૂર્તિ, શિરોહી રાજ્યના તાબાના પિંડવાડા નામના ગામના મહાવીરસ્વામીના મંદિરમાં આવેલી છે. એ મૂર્તિનો એક જલ્લોક પ્રિન્ટ, મેં આ ત્રૈમાસિકના વિદ્વાન સંપાદક મહાશય પાસે જોયો હતો. તેઓશ્રી પાસે હાલમાં આ જલ્લોકનો પત્તો નહીં લાગવાથી અત્રે હું રજુ કરી શક્યો નથી, પરંતુ માન્યવર રવિશંકર રાવળ પાસેથી તેના ફોટોગ્રાફની એક નકલ મને જલ્લોક કરાવી લેવા માટે મળી છે, જે મારા તરફથી તાજેતરમાં પ્રસિદ્ધ થનાર ગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ થશે. બીજી મૂર્તિનો એક ફોટોગ્રાફ મારા મિત્ર તરફથી મને મળ્યો હતો અને તેમના કહેવા પ્રમાણે તે મૂર્તિ કાઠિયાવાડના વાંકાનેર શહેરમાંના કોઈ જૈનમંદિરમાં છે. આ સાથે મેં તે મૂર્તિ ચિત્ર નંબર ૬ તરીકે રજુ કરેલી છે. મૂર્તિનું શિલ્પ જોતાં તે આઠમા અથવા નવમા સૈકાની હોય તેમ લાગે છે. ત્રીજી મૂર્તિ લગભગ દશમા સૈકાની મારા પોતાના સંગ્રહમાં છે, જે મને વડોદરાના એક મુસલમાન વ્યાપારી પાસેથી મળી હતી. આ મૂર્તિની પાછળ એક નાનો લેખ છે, જેનું વર્ણન ચિત્ર નંબર ૧૦ ના વર્ણન તરીકે આ મૂર્તિના ચિત્ર સાથે, આ લેખમાં મેં રજુ કર્યું છે. ચોથી મૂર્તિ મુખાધમાં પાયધુનીપર આવેલા ગોડીજના દેરાસરમાં છે, જે વિક્રમ સંવત ૧૦૬૩ ની છે. આ મૂર્તિનો ફોટોગ્રાફ મોડો મળવાથી આ લેખ સાથે રજુ કરી શકાયો નથી, પરંતુ મારા છપાતા ગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવશે. પાંચમી મૂર્તિ વિં. સં. ૧૦૭૭ ની સ્વર્ગસ્થ જૈન વિદ્વાન પૂર્ણચંદ્ર નાહરના સંગ્રહમાં છે, જેનું ચિત્ર “જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ” એ નામના પુસ્તકના પહેલા જ પૃષ્ઠની સામે ચિત્ર નંબર ૩ તરીકે છપાયું છે. પણ ત્યાં (ચિત્ર નંબર ૩ વાળી મૂર્તિની માફક) એ પુસ્તકના વિદ્વાન સંપાદક શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈએ, એ મૂર્તિ પાર્શ્વનાથની હોવા છતાં એને આદિનાથની મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવી છે. આ મૂર્તિનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ પણ મારા ગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવનાર છે. આ સિવાય બીજી પણ આવા જ પ્રકારની ધાતુની જિનમૂર્તિઓ તપાસ કરતાં મળી આવવાનો સંભવ છે.

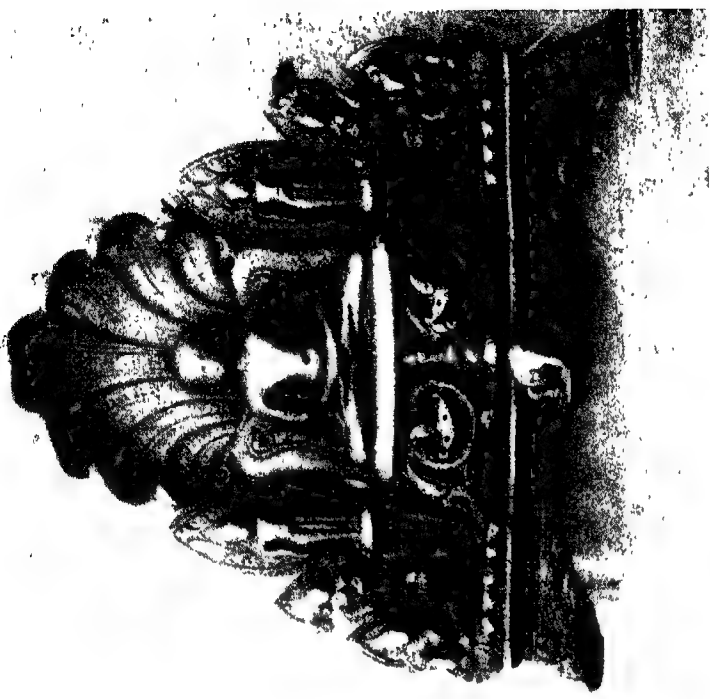
ચિત્ર નંબર ૬ વાળી શ્રી ઋષભદેવ (પ્રથમ તીર્થંકર)ની મૂર્તિને, માન્યવર શાસ્ત્રી-જીએ પોતાના અહેવાલમાં ચિત્ર પ્લેટ ૬અ તરીકે છપાવેલી છે, અને તેના ઉપરથી જ જલ્લોક કરાવીને મેં આ સાથે રજુ કરેલી છે. આ મૂર્તિની ઓળખાણ આપતાં અહેવાલના પાના ૧૦, પેરેગ્રાફ ૧૭ માં શાસ્ત્રીજી જણાવે છે કે -

“There is yet another image (pl. VI a) in the lot which, though broken, yet certainly represents the Buddha. Kubera or Jambhala is quite clear here, so is the Ushpisha mark, long-lobed ears, such as are seen in Buddha figured are quite distinct. The Buddha had these Lakhsana of a Mahā-purusha.

- એક બીજી પણ મૂર્તિ (સંગ્રહમાંની પ્લેટ ૬અ વાળી) છે, જે લાંગેલી છે, છતાં ચોક્કસપણે યુદ્ધની જ લાગે છે. કુબેર ઊર્ફે જંભલ તથા ઉષ્ણીષ (શિખા)નું ચિન્હ અહીંયાં એકદમ સ્પષ્ટ છે. યુદ્ધમૂર્તિઓમાં દેખાતા લાંબી બૂટવાળા કાન એકદમ સ્પષ્ટ છે. યુદ્ધને આ પ્રકારનાં મહાપુરુષનાં લક્ષણો હતાં.”



चित्र ५. श्रीपार्श्वनाथ - वांकांनेर



चित्र ५०. श्रीपार्श्वनाथ. माराभाई नवाबनो संग्रह
(हलोक माराभाई नवाबना सौजन्यशी)



चित्र ८ श्रीआदिनाथ - पिंडवाडा (मारवाड)
(द्वलोक साराभाई नवाबना सौजन्यशी)

માન્યવર શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ, આ મૂર્તિને લાંબી બૂટવાળા કાન છે અને બારીકીથી બોતાં તે સાથે બંને બાજુના ખભા ઉપર વાળની બંને લટો પણ લટકતી સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે સાબિત કરે છે કે આ મૂર્તિ ઋષભદેવ (જૈનોના પ્રથમ તીર્થંકર)ની છે. કારણ કે પાષાણની અને ધાતુની અગિયારમી સદી પહેલાંની જૈનમૂર્તિઓમાંની કેટલીક મૂર્તિઓમાં વાળની લટો સ્પષ્ટ દેખાડવામાં આવેલી હોય છે.

વાળની લટોવાળી, કુશાન સમયની-લગભગ ઇસવી સનના પાંચમા સૈકાની-મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થયેલી એક મૂર્તિ, ચિત્ર નંબર ૨ તરીકે હું રજુ કરી ગયો છું. બીજી ચિત્ર નંબર ૭ તરીકે રજુ કરી છે. આચાર્ય શ્રી વિજયનીતિસૂરિના જણાવવા પ્રમાણે ત્રીજી મૂર્તિ મેવાડ પ્રાંતના શાહપુરા રાજ્યના પારોલી ગામના જૈન-મંદિરમાં છે. ચોથી મૂર્તિ પાટણમાં આવેલા પંચાસરા પાર્શ્વનાથના જૈન મંદિરમાં છે.

આવી જ જાતની ધાતુની મૂર્તિઓ ઊભી અને બેઠેલી બંને પ્રકારની મળી આવે છે. ઊભી મૂર્તિઓ પૈકીની ઇસવી સનના સાતમા સૈકાની લેખવાળી એક મૂર્તિ પિંડવાડાના મહાવીરસ્વામીના મંદિરમાં છે, જે ચિત્ર નંબર આઠ તરીકે આ સાથે રજુ કરી છે; અને લગભગ આઠમા જ સૈકાની બીજી બે ઊભી મૂર્તિઓ અમદાવાદની દોસીવાડાની યોળમાં આવેલા શ્રી સીમંધરસ્વામીના દેરાસરમાં છે, જે હવે પછી મારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થનાર ચંથમાં પ્રકટ કરવામાં આવશે. બેઠેલી મૂર્તિઓ પૈકીની એક મૂર્તિ, બીકાનેર (રાજપુતાના)ના શ્રીચિંતામણિ પાર્શ્વનાથના મંદિરમાં છે, જેનો ફોટોગ્રાફ, મેં ખરતરગચ્છાચાર્ય શ્રીજિનહરિસાગરસૂરિજી પાસે છ મહિના પહેલાં લોહાવટ (મારવાડ)માં બેઠો હતો. બીજી એક મૂર્તિ સાદડી (મારવાડ)ના જૈન દેરાસરની ફરતી લમતીમાં છે, જે મેં દોઢ વર્ષ ઉપર બેઠી હતી; અને ત્રીજી મૂર્તિ મુંબઈના ગોડીજીના દેરાસરમાં છે, જેના ઉપર વિક્રમ સંવત ૧૦૬૦ની સાલનો લેખ પણ છે. (આ મૂર્તિનું ચિત્રપણુ પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવનાર છે.) આ સિવાય બીજી પણ આવી ધાતુની મૂર્તિઓ તપાસ કરતાં મળી આવવા સંભવ છે. આ બધાં પ્રમાણો સાબિતી આપે છે કે ચિત્ર નંબર ૬ વાળી મૂર્તિ પણ જૈન મૂર્તિ જ છે. લાંબી બૂટવાળા કાન અને ઉબળીય તો બૌદ્ધ મૂર્તિઓની માફક પ્રાચીન જૈનમૂર્તિમાં પણ ઘણા ભાગે સમાન હોય છે.

ચિત્ર નંબર ૭: મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થયેલી કુશાન સમયની ઋષભદેવની આ મૂર્તિના મસ્તકનો ભાગ ખંડિત થયેલો છે, પરંતુ બંને ખભા પરની વાળની લટો ચિત્રમાં સ્પષ્ટ દેખાતી હોવાથી આ આકૃતિ શ્રી ઋષભદેવની જ છે એ વાતની સાબિતી આપે છે. આ મૂર્તિ હાલ લખનૌ મ્યુઝીઅમમાં છે.

ચિત્ર નંબર ૮: પિંડવાડા (મારવાડ)ના શ્રીમહાવીરસ્વામીના દેરાસરમાં આવેલી ઋષભદેવની આ મૂર્તિનું વિસ્તૃત વર્ણન ઇતિહાસપ્રેમી શ્રીકલ્યાણવિજયજીએ ‘નાગરી-પ્રચારિણી પત્રિકા’ના અંકમાં આપેલું છે, જેની એક નકલ તેમણે મને મોકલાવી આપી હતી. તે ઉપરથી તેનું ટુંક વર્ણન આ પ્રમાણે છે:—આ મૂર્તિની ઉંચાઈ ચાર ફૂટથી કાંઈક વધારે છે, અને આવી જ એક બીજી મૂર્તિ પણ એ મંદિરમાં છે.* એમાંની

એક મૂર્તિના પાદપીઠ ઉપર પાંચ લીટીનો સંસ્કૃત લાખામાં એક લેખ છે. લેખની ચોથી લીટીમાં સંવત્ ૭૪૪ નો સ્પષ્ટ નિર્દેશ છે અને પાંચમી લીટીમાં મૂર્તિનો ઘાટ ઘડનાર શિલ્પીનું નામ આપેલું છે.

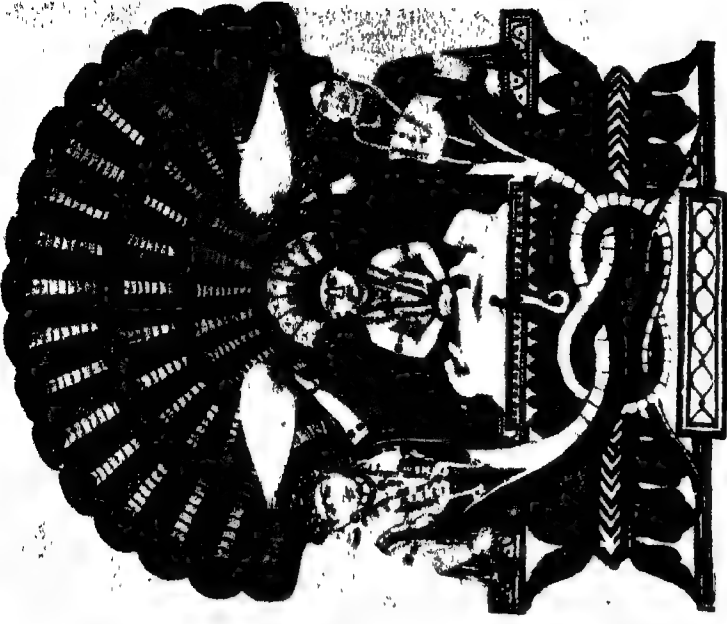
ચિત્ર નંબર ૯ : કાઠિયાવાડમાં આવેલા વાંકાનેર શહેરના એક જૈન દેરાસરમાં આ મૂર્તિ બિરાજમાન છે. મૂર્તિ પદ્માસનની બેઠકે ધ્યાનમુદ્રામાં સ્થિત છે. ધર્મે બાજુ બે કાયોત્સર્ગસ્થિત જિનમૂર્તિઓ ઊભેલી છે. જેના કટીભાગથી છેક નીચે સુધી વસ્ત્રની સ્પષ્ટ આકૃતિ શિલ્પીએ રણુ કરેલી છે; જે પૂરવાર કરે છે કે એ મૂર્તિ શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની છે. મુખ્ય મૂર્તિના મસ્તકના ઉપરની સાત ફણાઓ જાહેર કરે છે કે એ મૂર્તિ ત્રેવીશમા તીર્થંકર શ્રીપાર્શ્વનાથની છે. તેની નીચેની જમણી બાજુએ બે હાથવાળો યક્ષ છે, જેના આયુધો સ્પષ્ટ દેખાતાં નથી; પરંતુ ડાબી બાજુની યક્ષીની આકૃતિના ડાબા હાથનું બાળક ચિત્રમાં સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે જાહેર કરે છે કે એ મૂર્તિ યક્ષી અંબિકાની છે. આ મૂર્તિનું શિલ્પ બેતાં તે આઠમા અથવા નવમા સૈકાની હોય એમ લાગે છે. કાઉસગીયાની બાજુમાં ધર્મે બાજુ ચામરધારિણી સ્ત્રીઓની એકેક આકૃતિ છે.

ચિત્ર ૧૦ : આ મૂર્તિ મારા પોતાના સંગ્રહમાંની છે. મૂર્તિના મસ્તક ઉપરની ફણાઓ બહુ જ સુંદર રીતે રણુ કરવામાં આવી છે. મુખ્ય મૂર્તિની ધર્મે બાજુની કાયોત્સર્ગ-સ્થિત એકેક મૂર્તિ દ્વારા શિલ્પીએ પ્રાચીન ત્રિતીર્થાનો નમૂનો પૂરો પાડ્યો છે. ચિત્ર નંબર ૯ ની માફક, ધર્મે કાઉસગીયાનું કટિવસ્ત્ર પણ સ્પષ્ટ દેખાય છે પરંતુ નંબર ૯ ના કાઉસગીયાનું કટિવસ્ત્ર ચિત્ર નંબર ૭ ની મૂર્તિને વધારે મલતું છે; જ્યારે આ કટિ-વસ્ત્રની પાટલી છુટી રાખવામાં આવી છે, જે સૂચવે છે કે આ શિલ્પ, ચિત્ર નંબર ૭ તથા ૯ ના શિલ્પના સમય પછીના સમયનું છે. આ ત્રિતીર્થાના પાછળના ભાગમાં એક ટુંકો લેખ છે, જેની લિપી દશમા સૈકાની છે અને તેથી જ આ શિલ્પને હું દશમા સૈકાના શિલ્પ તરીકે ઓળખાવું છું. મુખ્ય મૂર્તિના પદાસનની અંદર કમળની સુંદર આકૃતિઓ છે અને બાજુમાં ઊભેલી કાઉસગીયાની ધર્મે મૂર્તિઓ પણ કમળના ઉપર જ ઊભેલી છે. ધર્મે કાઉસગીયાની બાજુમાં કમળ ઉપર જ ઉભી રહેલી એકેક ચામર-ધારિણી સ્ત્રી છે. જમણી બાજુની ચામરધારિણી સ્ત્રીની બરાબર નજીકમાં, બે હાથ-વાળા યક્ષની આકૃતિ છે, અને ડાબી બાજુની ચામરધારિણી સ્ત્રીની બરાબર નજીકમાં બે હાથવાળી યક્ષીની આકૃતિ છે જેના ડાબા હાથનું બાળક પણ (જે કે અસ્પષ્ટ) દેખાય છે. કમળની બે આ શિલ્પમાંની દરેક આકૃતિના મુખનો આકાર એટલો બધો ઘસારાગયો છે કે, તેથી જો તેના મસ્તક ઉપર ફણાઓની આકૃતિ ન હોત અને પ્રભા-વલીના પાછળના ભાગ ઉપર લેખ ન હોત તો આ મૂર્તિ કયા તીર્થંકરની છે, તે શોધી કાઢવું બહુ જ મુશ્કેલ પડત. આવી સુંદર રીતે ગોઠવેલી ફણાઓવાળી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિઓ કવચિત જ મળી આવશે.

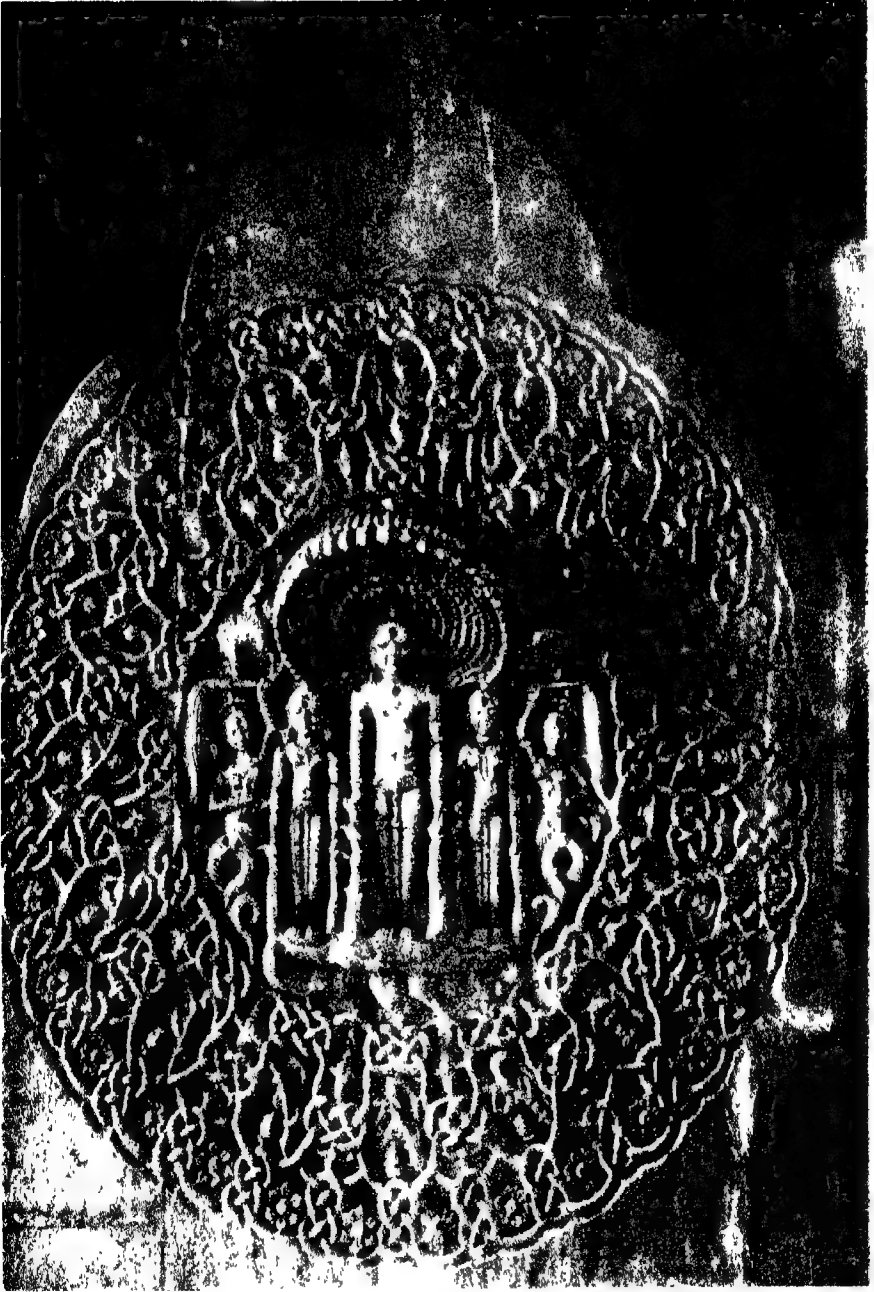
ચિત્ર ૧૧ : કાઠિયાવાડમાં આવેલા વળા ગામની (પ્રાચીન વલ્લીપુરની) નજીકમાં ઢાંકનો પર્વત આવેલો છે. તેની ગુફાઓના ખડક ઉપર આ ઊભી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ



चित्र ११ श्रीपार्श्वनाथ - डांक



चित्र १२ महस्वफणा पार्श्वनाथ - जोधपुर (मारवाड)
(दलोक, मागभाई नवाबना मी जन्मथी)



चित्र १३ श्रीमहस्त्रफणा पार्श्वनाथ • राणकपुर (मारवाड)

(ब्लॉक मागभाई नवाचना मौजन्यर्था)

કોરેલી છે. આ મૂર્તિને સૌથી પ્રથમ, જૈન શિલ્પ તરીકે ઓળખાવનાર શ્રીયુત ડૉ૦ હસમુખલાલ સાંકળીઆ છે. “જૈન સત્યપ્રકાશ” ના ચોથા વર્ષના અંક ૧-૨ માં આ મૂર્તિનું વિસ્તૃત વર્ણન આપતાં તેમણે એ મૂર્તિને ૬૦ સ૦ ના ત્રીજા સૈકાની જણાવી છે, અને તેમની તે માન્યતા મને પણ યથાર્થ લાગે છે. આવી જ જાતનું એક શિલ્પ, મેં મારા કાઠિયાવાડના પ્રવાસ દરમિયાન, જુનાગઢ સ્ટેટના અબરા ગામની સીમમાં બેયું હતું, જેનું ચિત્ર પણ મારા પ્રસિદ્ધ થનારા ગ્રંથમાં આપવામાં આવશે. આ મુખ્ય મૂર્તિની જમણી બાજુ જે યક્ષની મૂર્તિ છે તેનો આકાર એટલો બધો ઘસાઈ ગયેલો છે કે તેના કાનનું કુંડલ માત્ર કાંઈક સ્પષ્ટ દેખાય છે. યક્ષની બાજુમાં બે હાથમાં ફૂલની માળા લઇને ઊભેલી એક સ્ત્રી છે. પાર્શ્વનાથની (મુખ્ય મૂર્તિની) ડાબી બાજુએ, ડાબા ખોળામાં ડાબા હાથથી પકડી રાખેલા બાળકની આકૃતિવાળી યક્ષી અંબિકાની આકૃતિ છે. તેનો જમણો હાથ ઊંચો છે, પરંતુ કાંડા ઉપરના પંખનો ભાગ બીલકુલ નષ્ટ થઈ ગયેલો છે, અને તે સાથે પંખમાંની આંખાની લુંથ પણ નાશ પામેલી છે. યક્ષીની નીચે તેના વાહન સિંહના મુખની અસ્પષ્ટ આકૃતિ દેખાય છે. આ ત્રીજા સૈકાનું શિલ્પ આપણને ખાતરી આપે છે કે ચિત્ર નંબર ૪ અને ૫ વાળી યક્ષીની આકૃતિઓ, માન્ય-વર શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ, ઔદ્ધર્મની હારિતી દેવીની નથી, પરંતુ જૈનધર્મની અંબિકા દેવીની છે.

ચિત્ર ૧૨ : બેધપુર (મારવાડ)ના શ્રીપાર્શ્વનાથના જૈન દેરાસરમાં, મળ નાયકરૂપે આ સહસ્રકૃણ પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ ખિરાજમાન છે. ચિત્ર નંબર ૫ માંના અડધા નાગના શરીરવાળા નાગ અને નાગીની આકૃતિ સાથે સરખામણી કરવા માટે આ ચિત્ર મેં રજુ કર્યું છે. બંને શિલ્પમાં ફરક માત્ર એટલો જ છે કે ચિત્ર નંબર ૫ વાળી બંને આકૃતિઓ હાથ બેઠેલી છે, જ્યારે આ મૂર્તિઓમાં તે અંકેક હાથે ચામર વીંઝતી બતાવેલી છે. બંને શિલ્પીઓનો આશય નાગ અને નાગીનો શ્રી પાર્શ્વનાથ પ્રત્યે ભક્તિ-ભાવ દર્શાવવાનો છે.

ચિત્ર ૧૩ : રાણપુર (મારવાડ)ના ધરણવિહાર નામના વિશાળ જૈનમંદિરની ભમતીમાં આવેલું સહસ્રકૃણ પાર્શ્વનાથનું આ શિલ્પ બહુ જ સુંદર છે, અને તેના શિલ્પીની અબેડ શિલ્પકળાનો આ એક ઉત્તમ નમૂનો છે. ચિત્ર નંબર ૧૨ ની માફક આમાં પણ શિલ્પીએ નાગ અને નાગીના અંકેક હાથમાં ચામર આપીને દેવ પ્રત્યેનો ભક્તિભાવ પ્રદર્શિત કરવા પ્રયત્ન કરેલો છે. મુખ્ય આકૃતિઓની ફરતું, નાગિણીઓની આકૃતિવાળું શિલ્પકામ, ગુજરાતના શિલ્પીઓના અત્યુત્તમ ભુદ્ધિઐશવ્યનું એક જ્વલંત ઉદાહરણ જેવું છે. હું બાણું છું ત્યાં સુધી, ગુજરાતના શિલ્પીઓની અત્યુત્તમ કારીગરીના પ્રતીક સમાં આવાં કળાસર્જનો, ભારતના બીજા પ્રાંતોમાં કવચિત જ મળી આવશે.

આ લેખ સાથે રજુ કરેલા ચિત્ર નંબર ૧, ૪, ૫ અને ૮ ના ફોટોગ્રાફો વિદ્વદ્વર્થ મુનિરાજ શ્રીપુણ્યવિજયજી પાસેથી મને મળેલા છે; ચિત્ર નંબર ૨ અને ૩ ભારત સરકારના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતા તરફથી પ્રકટ થયેલ “Jain stupas of Mathura” નામના પુસ્તકમાંથી લીધેલા છે; ચિત્ર નંબર ૬ વડોદરા રાજ્યના પુરા-

તત્ત્વ સંશોધનખાતાના ઇ૦ સ૦ ૧૯૩૭-૩૮ ના અહેવાલ ઉપરથી લીધેલું છે; ચિત્ર નંબર ૭ નો બ્લૉક 'જૈન સત્યપ્રકાશક સમિતી'એ વાપરવા આપેલો છે; તેમ જ ચિત્ર નંબર ૧૧ નો ફોટોગ્રાફ પણ સમિતીએ જ આપેલો છે. ચિત્ર નંબર ૯, ૧૦ અને ૧૨ મારા પોતાના સંગ્રહમાંના છે; તથા ચિત્ર નંબર ૧૩ નો ફોટોગ્રાફ શેઠ આણંદજી કલ્યાણજીની પેઢીએ બ્લૉક બનાવવા માટે આપેલો છે. એ માટે હું અહિં તે તે સન્નન બક્ષિઓ તથા સંસ્થાઓનો આભાર માનું છું.

ચિત્ર નંબર ૧, ૪, ૫ અને ૬ વાળી મહુડીની આ જિનમૂર્તિઓનો ટુંક પરિચય સૌથી પ્રથમ મુનિ શ્રીહિમેન્દ્રસાગરજીએ ટુંકાણમાં “જૈનજ્યોતિ” સાપ્તાહિક દ્વારા આશરે દોઢેક વર્ષ ઉપર આપ્યો હતો. ત્યારપછી એક વર્ષ ઉપર, ચિત્ર નંબર ૪, ૫ અને ૬ વાળી જિનમૂર્તિઓ મેં માન્યવર શાસ્ત્રીજીની ઑફિસમાં, તેઓશ્રીના ટેબલ ઉપર બેઠાં હતાં, તે વખતે તેઓશ્રીએ એ વિષે મને પૂછતાં, મેં આ ત્રણે મૂર્તિઓ જૈન હોવાનું તેમની આગળ પ્રતિપાદન કર્યું હતું અને તેના ફોટોગ્રાફોની માગણી પણ કરી હતી. પરંતુ તે ફોટાઓ એમના અહેવાલમાં છપાયા પછી જ મને આપવાનું તેઓશ્રીએ કહ્યું હતું. તે પછી જ્યારે તે અહેવાલ તૈયાર થઈ પ્રકટ થઈ ગયો ત્યારપછી મેં રૂબરૂમાં (એની ફરી) માગણી કરી હતી, પણ તેનો સ્વીકાર નહીં થવાથી, પ્રસ્તુત ત્રણે ચિત્રો વિદ્વદ્વર્ય શ્રી પુણ્યવિજયજી મહારાજ પાસેથી મેળવીને અને એક ચિત્ર તેમના અહેવાલ ઉપરથી જ બ્લૉક કરાવીને અત્રે રજુ કર્યું છે.

આશા રાખું છું કે આ લેખની દલીલો વાંચીને માન્યવર શાસ્ત્રી મહાશય હવે પોતાનો એ બાંધી લીધેલો ભૂલ ભરેલો મત ફેરવવા ઉદાર થશે; અને જો મારી એમાં ભૂલ થતી હોય તો તે યુક્તિ અને પ્રમાણ પુરસ્સર બહેરમાં મુકી મારા માર્ગદર્શક થશે.

અંતમાં, આ લેખ લખવા માટે ખાસ પ્રેરણા આપનાર અને ગુજરાતની સંસ્કૃતિના ઇતિહાસમાં ઊંડો રસ લેનાર શ્રી મુનિ જિનવિજયજીનો હું હાર્દિક આભાર માની માફ આ લખાણ સમાપ્ત કરું છું.

कवि समयसुन्दर उपाध्यायकृत सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी

(सं० १६८७ के भीषण दुष्कालके वर्णनकी रोमाञ्चक कविता)

*

ले० — श्रीयुत अगर चंदजी नाहटा

[सह संपादक—'राजस्थानी' त्रैमासिक पत्रिका, कलकत्ता]

कविका परिचय

सतरहवीं शताब्दीके विद्वान् जैन यति — साधुओं एवं कवियोंमें महोपाध्याय समयसुन्दरजीका स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी रचनायें बहुत ही लोक-प्रिय और परिमाणमें प्रचुर हैं। जिस किसी भंडारमें देखें इनकी रचनायें अवश्य ही दृष्टिगोचर होंगी। संख्यामें वे इतनी प्रचुर हैं कि हम दस वर्षोंसे उनका अन्वेषण एवं संग्रह कर रहे हैं तो भी अभीतक नई नई रचनाओंका पता मिलता ही जा रहा है। कई वर्ष पूर्व हमने इनकी रचनाओंके सम्बन्धमें “कविवर समयसुंदरका साहित्य” शीर्षक दो लेख, ‘जैन’ पत्रके पु० ३३, अंक २३-२४ में प्रकाशित किये थे। उसके पश्चात् हमने अपने ‘युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि’ ग्रन्थके पृ० १६७ से १७१ में इनका अति संक्षिप्त परिचय एवं कृतियोंकी सूचि प्रकाशित की थी। उस सूचिके अतिरिक्त, १ कथाकोष (देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंडके पास इसकी प्रेस कापी है) और २ ज्योतिष विषयक ग्रन्थ (बीकानेरके खरतरगच्छीय आचार्य शाखाके भंडार में) का पता और चला है^१। उपाध्याय श्री सुखसागरजी के सुप्रयत्नमे इनकी रचित ‘कल्याणमंदिरवृत्ति’ पूर्व छप चुकी है; एवं १ कल्पलता, २ सामाचारी-शतक और ३ गाथासहस्री ये ३ ग्रंथ अभी हाल ही में प्रकाशित हुए हैं।

सं० १६८७ का दुष्कालका परिचय

भारतवर्षमें समय समय पर बहुत दुष्काल पड़ा करते हैं जिनमें कई कई तो बहुत ही घातक एवं बिकराल हुवा करते हैं। कविवरके समय सं० १६८७

1 लोक भाषामें रचित छुटकर रचनायें तो समय समय पर अनेक मिल ही रही हैं। बड़ी कृतियोंमें मोहनलालजी देशाईको स्थूलिभद्रासकी १९ पत्रोंकी प्रति महावीर विद्यालयसे मिली है। देशाईजीने उसका रचनाकाल सं० १६२२ लिखा है जिसमें हमें कुछ सन्देह है।

में गुजरातमें एक ऐसा ही बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ा था और उसके कष्ट-भोगी कविवर स्वयं भी हुए थे, इसलिये उन्होंने उसका रोमाञ्चकारी विशद-वर्णन “सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी” नामक कविता बना कर किया है। दुष्कालका ऐसा रोमहर्षण और विस्तृत वर्णन किसी दूसरे कविका किया हुआ अभी तक हमारे अवलोकनमें और कोई नहीं आया। हमारे भापासाहित्यमें, अपने ढंगका यह वर्णन एक ही और अनूठा है।

इस दुष्कालका अधूरा वर्णन कई वर्षपूर्व श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देशाई महाशयको मिला था और उसे उन्होंने “जैनयुग” के वर्ष ५, पृ० ६९ में प्रकाशित किया था। उसके पश्चात् हमने अपने संग्रहकी एक प्रति उनको भेजी थी, जिसमें जो नवीन छप्पय और मिले, उन्हें भी उसी वर्ष जैनयुगके पृ० ३५५ से ५७ तकमें उन्होंने प्रगट कर दिये थे। फिर भी वह वर्णन अधूरा ही था। हमारा अन्वेषण कार्य सतत चालू था; फलतः उसके कुछ समयके पश्चात्, हमें यह पूरा वर्णन उपलब्ध हो गया जो पठनीय होनेके साथ साथ ऐतिहासिक महत्त्व भी रखता है। अतः आज यहां पर यह पूर्ण-रूपमें प्रगट किया जा रहा है। आशा है साहित्य प्रेमियोंको यह प्रयत्न रुचिकर एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

इस दुष्कालको कविवरने स्वयं अपनी आंखों देखा था और उसके प्रभावका अनुभव भी किया था; अतएव उन्होंने सं० १६८७ में (जब यह दुष्काल पड़ा था, तब वे पाटण में थे) अपने रचित ‘विशेष शतक’ ग्रन्थके लेखक-प्रशस्तिरूप ६ संस्कृत श्लोकोंमें, तथा सं० १६९५ में रचित ‘चंपक चौपाई’में भी इसका प्रसंगवश मार्मिक उल्लेख किया है। अर्थात् प्रस्तुत दुष्काल वर्णन कवित्तोंकी रचनाके अतिरिक्त भी, इस रचनासे पूर्व एवं पीछे, उन्होंने इस दुष्कालका स्मरण किया है। वे उल्लेख भी इस लेखके साथ दे दिये जाते हैं।

२ जैन कवियोंके रचित छोटे २ कई दुष्कालवर्णन मिलते हैं जिनमेंसे कविवर धर्म-वर्धन रचित सं० १७५१ का वर्णन मेरे “राजस्थानी साहित्य और जैनकवि धर्मवर्धन” शीर्षक निबंध, राजस्थान वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित हो चुका है और सं० १८१२ आदिके कुछ और वर्णन हमारे संग्रहमें हैं।

३ सं० १६८७ में, यहां मुनि सहजबिमल एषं मेघविजयके लिये रचित ‘जयति-हुणगृप्ति’ उपलब्ध है।

दुष्काल वर्णन छत्तीसीकी प्राप्ति

१. देशाई महाशयको एक पत्रकी अधूरी प्रति मिली थी जिसमें १६ कवित्त थे । देशाईजीने इसी प्रतिके आधारसे सर्व प्रथम १६ कवित्त प्रगट किये थे । इस प्रतिके लेखकने ये कवित्त, जैसे उसे याद थे या सुने थे, वैसे ही लिख लिये प्रतीत होते हैं । क्यों कि ये १६ कवित्त क्रमबद्ध नहीं हैं—इनका क्रम अन्य प्रतियोंसे नहीं मिलता ।

२. हमारे संग्रहमें दो पत्रोंकी प्रति है, जिसमें क्रमबद्ध सं० १६८७ तक के वर्णनात्मक २४ कवित्त हैं । इसके पश्चात् 'अगमवाणी' नामक कविता लिखी हुई है जिससे प्रतीत होता है कि यह प्रति सं० १६८७ में लिखी हुई प्रतिकी प्रतिलिपि है और इसकी मूलभूत प्रतिके लेखन-समय तक कविवरने इस 'सत्यासीया' दुष्कालके वर्णनात्मक इतने ही कवित्त रचे थे । अवशेष 'अठ्यासीया'के वर्णनात्मक १२ कवित्त कविने सं० १६८८ में रच कर पूरी 'दुष्कालवर्णन छत्तीसी' बनाई ।

३. हमारे संग्रहमें सं० १८१६ की लिखी हुई पूरे ३६ कवित्तोंकी ५ पत्रों की प्रति है, पर इसमें कहीं कहीं पाठ अशुद्ध लिखा हुआ मिलता है ।

४. भुवनचंदजी यतिके संग्रहमें १ मध्य पत्र और वह भी कटा हुआ मिला, जिसमें कवित्त क्रमांक २४ के अंतिम चरणसे क्र० ३३ तकके पूरे एवं ३४ वें का त्रुटित अंश मिला ।

५. बीकानेरके बड़े ज्ञान-भंडारके अंतर्गत, महरचंदजीके भंडारमें, ३ पत्रोंकी एक अपूर्ण प्रति है, जो उन्नीसवीं शताब्दीकी लिखी हुई है ।

उपर्युक्त पांच प्रतियोंका मिलान कर इन कवित्तोंकी पाठशुद्धि की गई है । सामान्य पाठान्तर जो कि अशुद्ध एवं क्रियापरिवर्तनरूप मात्र प्रतीत हुए, उन्हें छोड़ कर महत्त्वके पाठान्तरोंको ही फुटनोटमें स्थान दिया गया है ।

एक दो प्रतियां अन्यत्र और भी देखनेमें आईं पर उनको प्राप्त न कर सकनेके कारण, उपयोग नहीं हो सका ।

इस दुष्कालसम्बंधी जो उल्लेख ग्रन्थान्तरोंमें हमारे अवलोकनमें आये वे भी इस लेखमें दे दिये जाते हैं ।

आभ्यन्तरिक अवलोकन—इन ३६ कवित्तोमेंसे नं० १७ तकमें दुष्कालके प्रभावसे जो परिस्थिति उपस्थित हुई थी उसका वर्णन है। ७ वें कवित्तमें उस समयके धान्यादिके भावोंका सूचन है, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे उपयोगी है। पद्य १८ में जिन जैनाचार्योंका, इस दुष्कालके समयमें, स्वर्गवास हुआ था उनका निर्देश है। पद्य १९-२० में आपबीती आत्मकथा कही है। नं० २१ में शांतिदास सेठ द्वारा सागरगच्छके पोषणका हाल, नं० २२ से २५ में दुष्कालपीडित जनताकी सहायता करनेवाले दानीयोंका उल्लेख, नं० २७ से अठ्ठासीयाका वर्णन कर, नं० ३२ से ३६ में फिर सुकाल-सुभिक्षके होनेका वर्णन करके कविने अपना यह दुष्काल वर्णन समाप्त किया है।

इस दुष्कालका प्रभाव सं० १६८८ के कार्तिकमास तक बना रहा, ऐसा कविवरकी रचित 'नवतत्त्ववृत्ति'से ज्ञात होता है। यथा—

“संवति वसु-गज-रस-शशिमिते च दुर्भिक्षकार्तिके मासे ।

अमदाबादे नगरे पटेलहाजाभिधप्रोल्याम् ॥

इस चालू = वर्तमान वर्ष भी गुजरात, काठियावाड़, सिन्ध, मारवाड़ आदिमें दुष्काल पड़ा है और कहीं कहीं तो स्थिति बहुत ही भयानक हो उठी है। मारवाड़ प्रान्तके कई ग्राम सुनसानसे हो गये हैं। गाय भेंस इत्यादि जानवर बहुत अधिक संख्यामें मर चुके हैं। मनुष्य अभी सहीसलामत हैं यही गनीमत है। यह रैल आदि साधनोंका ही सुफल है, जिससे अन्य प्रान्तोंमेंसे गेहूं, घास आदि दुःकाल पीडित प्रदेशोंमें सरलता और शीघ्रताके साथ पहुंचाये जाते हैं; अन्यथा उसी 'सत्यासीया' वाली परिस्थितिका अनुभव हमको भी आज करना पड़ता।

*

‘सत्यासीया दुष्काल’के ग्रन्थान्तरोंके उल्लेख

“ऐतिहासिक चित्र” नामक बंगला भाषाके पत्रके चतुर्थ वर्ष (१३१६ साल) की १२ वीं किरण (संख्या) में “सप्तदश शताब्दीर दुर्भिक्ष” शीर्षक एक लेख प्रगट हुआ है, जिसमें इस ‘सत्यासीया दुष्काल’का रोमांचकारी और तादृश वर्णन दिया गया है। पाठकोंके ज्ञानार्थ उसका आवश्यक सार यहां दिया जाता है—

ई० सन् १६२८ में सम्राट् शाहजहाँ सिंहासनारूढ़ हुये । उसके थोड़े ही अर्से बाद वि० सं० १६८७ में दक्षिणात्य प्रदेशोंमें एक भीषण दुष्काल पड़ा । संहारमूर्ति उस दुष्कालका विस्तार गुजरात तक व्याप्त हो गया था । इसके पहले वर्ष (सं० १६८६) में भी सामान्य ही वृष्टि होनेसे बालाघाट और दौलताबादकी ओर धान्यकी फसल अच्छी नहीं हुई थी और उसके लगते ही इस दूसरे वर्षमें दक्षिण एवं गुजरात व्यापी अनावृष्टिके कारण दक्षिण भारत दुर्भिक्षकी क्रूर छायासे आच्छन्न हो गया । एक टुकड़ा रोटीके लिये लोक जीवन विक्रय करनेको प्रस्तुत हो गये, फिर भी कोई उन्हें खरीदनेवाला नहीं मिलता था । सामान्य खाद्य पदार्थोंके लिये लोक अपने मान इज्जतको जला-झलि देने लगे, फिर भी अपनी ओर किसीका मनोयोग नहीं देख उनके दुःखका पारावार नहीं रहता था । जिन दानियोंका हाथ सदा दूसरोंको इच्छित प्रदान करनेमें ही व्यस्त रहता था, आज वे ही स्वयं उन हाथोंको दूसरोंके सामने प्रसारित करते हुए नजर आते थे । जो लोग कभी घरसे भी बाहर नहीं निकलते थे, वे आज गली गलीमें भटक रहे थे । अनेक दिनों तक कुत्तेका मांस, बकरीका मांस कहा जा कर, विक्रय हुआ; और हड्डियोंका चूर्ण गेहूँके चूर्णके साथ मिश्रित हो कर लोगोंकी उदरपूर्त्तिकी साधन बना । कमशः नौबत वहाँ तक आ पहुँची कि मनुष्य, मनुष्यका मांस खाने लगे । पुत्रका मांस उसके स्नेहकी अपेक्षा प्रिय प्रतीत होने लगा, रास्ते मृतदेहों (शवों)की परिपूर्णतासे श्मशानसे प्रतीत होने लगे । जो लोग किसी प्रकार अपनी जीवनरक्षा करनेमें समर्थ हुए वे देश-विदेशोंमें घूमने लगे । जो जमीन उर्बरा रूपसे प्रसिद्ध थी आज वही मरुभूमिसे भी अधिक भयानक दिखाई देने लगी । फलतः इस प्रकारके भीषण दुर्भिक्षसे दक्षिण और गुजरातमें भयावह दृश्य दिखाई देने लगे । अन्नकष्ट और जलकष्ट दोनों मिल कर दिनोंदिन प्राणियोंको मरणव्यथाकी यात्रा कराने लगे । उस समय कितने मनुष्य यमलोक पहुँचे इसकी संख्या बताना असंभव है । जो किसी प्रकारसे जीवित थे वे देश परित्याग कर उदरपूर्त्तिके लिये स्थानान्तरोंमें परिभ्रमण करनेको बाध्य हुए । इस प्रकार दक्षिण और गुजरातके अनेक स्थान मरुभूमि और श्मशान तुल्य हो उठे ।

सम्राट् शाहजहाँ इस समय दक्षिणमें उपस्थित थे । अपनी आंखोंके आगे लोगोंकी ऐसी महान दुर्दशा देख वे अत्यंत कातर हो गये । उदारहृदय और

न्यायपरायण सम्राट् अकबर जैसे प्रजावत्सलके सिंहासनको जो सुशोभित करते थे उनका प्रजाके दुःखोंसे चंचल हो उठना कोई विस्मयकी बात नहीं है । अपने नेत्रोंके समक्ष हजारों लोगोंको अनाहारवश प्राण विसर्जन करते देख उनसे रहा नहीं गया । उनका उदार हृदय अविलम्ब उन दुःखोंके प्रतीकारार्थ व्याकुल हो उठा और बरहानपुर, अहमदाबाद और सूरतके अधिकारियोंको दानशालायें (अन्नछत्र) खोलनेका आदेश प्रदान किया । उन सारे अन्नछत्रोंसे दरिद्र और निराहारियोंको खाद्य पदार्थ वितरण किये जाने लगे, इससे क्षुधार्त लोगोंकी उदरपूर्ति होने लगी । सम्राट्ने और भी शुभ आदेश किया कि जहाँतक वे बरहानपुरमें रहें वहाँतक दरिद्रोंको प्रति सोमवार ५ हजार मुद्रायें दान की जायँ । सोमवारको ही वे सिंहासनारूढ हुए थे अतः इस आदेशका आधार वही वार था । उनके इस आदेशसे २० सोमवारोंमें १ लक्ष मुद्रायें वितरित की गई ।

अहमदाबादके निवासी सबसे अधिक दुर्भिक्ष पीडित थे, अतः उनके लिये ५० हजार मुद्रायें व्यय की गई । साम्राज्यके अनेक स्थानोंमें दुर्भिक्ष और जलकष्ट व्याप्त होनेके कारण सम्राट्ने राज-स्व (टैक्स) विभागके अधिकारियोंको, टैक्स (कर) ग्रहणके लिये, लोगोंको पीडित करनेका निषेध कर दिया । उनके आदेशसे राज्यकर्मचारियोंने प्रायः ७० लाख रुपयोंको राज-स्वमें बाद दे दिया था । हिसाब करनेसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन राज-स्वका प्रायः इग्यारहवां भाग प्रजासे नहीं लिया गया था । सम्राट्के अनुकरणमें, संभ्रान्त जमींदार और मनसबदारोंने भी प्रजाके पाससे बहुतसे रुपयोंका कर वसूल नहीं किया । इस प्रकारकी सुव्यवस्थासे सम्राट् शाहजहाँने महान दुर्भिक्षके समय अपनी प्यारी प्रजाका उद्धार किया था ।'

गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'दुष्कालविषे निबंध'^१ नामक ग्रन्थके पृ० १५ में भी इस दुष्कालका कुछ हाल लिखा हुआ है । पाठकोंकी जानकारी के लिये हम उसका ज्यों-का-त्यों अवतरण नीचे देते हैं—

“अमदाबाद अंग्रेज सरकारना ताबामां आव्युं तेनी आगळ ते मुसलमान बाद-शाहनी सत्ता हेठळ हतुं. ए बादशाहोना वखतमां, ई. स. १६३१ (वि. १६८७)नुं

१ इस ग्रन्थमें, १ गुजरात, २ सिंध, ३ कच्छ, ४ दक्षिण (महाराष्ट्र देश,) ५ मद्रास, ६ निजाम राज्य व महिसूर, ७ बंगाल, और ८ काश्मीर प्रान्तोंमें समय समय पर पड़े हुए दुष्कालोंका ज्ञातव्य और पठनीय वृत्तान्त है । २०० पृष्ठोंका यह ग्रन्थ संग्रहणीय है ।

वर्ष जे 'सत्यासीओ दुष्काल' एवा नामथी ओळखाय छे ते वर्षमां लोकोने जबरं संकट पड्युं हतुं. ते एटले सुधी के माणस मरणसने खावा लाग्यां हतां. ते वखते बादशाहे अमदाबाद, सुरत अने बरानपुर मध्येना पोताना सुबाओने दिल्लीथी हुकम लख्या हता के सरकारी लंगरखाना उघाडी तेमांनुं अनाज लोकोने वहेंचवुं. ए उपरांत अमदाबादना लोकोने त्यांनी (अमदावादनी) सरकारी तिजोरीमांथी पचास हजार रुपियां वहेंचवानो हुकम आव्यो हतो. आ दुष्काळ वरसाद न आववाथी पड्यो हतो. बादशाहे दया करीने ए वर्षनुं जमीननुं महेसूल खेडुतो पासेथी लीधुं न होतुं, एटलुं ज नहीं, परन्तु बीजी पण सारी मदद करी हती." इत्यादि ।

श्रीयुत रत्नमणिराव भीमराव लिखित गुजरातनुं पाटनगर अमदाबादके पृ० ९४में इस सत्यासीया दुष्कालका वर्णन इस प्रकार मिलता है —

“आ पहेलां ई. स. १६३१-३२ एटले सं० १६८७ मां गुजरातमां मोटो दुष्काळ पड्यो ते सत्यासीया कालने नामे प्रसिद्ध छे. आ वखते बादशाहना हुकमथी अमदावादमां गरीबोने अन्न वहेंचवा माटे लंगरखाना उघाडवामां आव्या अने अमदावादमां अनाजनी ताण पडवाथी फरीथी हुकम आव्यो के शहेरमां दाणा लावनार बेपारीओने रुपिया पचास हजार खजानामांथी वहेंची आपवा (मीराते अहमदी, पृ० २११) गु० गेजेटीयरमां (पृ० २७७) पांच हजार रुपिया लख्या छे. मीराते अहमदीमां लखे छे के आ दुष्काळमां ढोर रक्षा नाहीं अने सीत्तर रुपीआनी कीमत भेंशो चांपानेरथी लाववी पडी ।”

[१] सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी

*

गरुई^१ श्रीगुजरातदेश, सगलां मांहे दाग्वी;
धरम करम परधान^२, लोक मुख मीठुं भाखी ।
सुखी रहइ सरीर, साग तो मखरा भावइ;
ऊंचा करइ आवास, लाख कोडि द्रव्य लगावइ ।
गेहणी देह गहणै भरइ, हुंसी^३ लोकतणो हीयउ;
'समयसुन्दर' कहइ, सत्यासीयउ इसड(ह)^४ पड्यउ अभागीयउ ॥१॥
जोयउ टीपणउ जाण, साठि संवच्छरि साथइ;
गुराचार शनिचार, हुंता ते लीधा हाथइ ।

कपूरचक्र पिण काढी, जाण ज्योतिषीए जोयउ;
 आराधक थया अंध, खिजमति फल सगलउ खोयउ ।
 निपट किणइ जाण्यउ नहीं, खरो शास्त्र खोटो कीयउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीयउ, पड्यो अजाण्यउ^१ पापीयउ ॥ २ ॥
 महियलि न हुवा मेह, हुवा तिहां थोडा हूआ;
 खड्या पड्या रह्या खेत्र, कलंबी जोतरिया कूआ ।
 कदाचि निपनो केथ, कोली ते लीधुं कापी;
 घटा करी घनघोर, पिण बूठो नहीं पापी ।
 खलक लोक सहु खलभल्या, जीवइं किम जलबाहिरा;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते कतूत सहू^२ ताहरा ॥ ३ ॥
 गइह गाइ नइ भेंइसि, ऊंट छाली नइ^३ एवड;
 अम्हनइ ए आधार, तियां धणीयां नै^४ त्रेवड ।
 चरिवा मूक्या च्यारि^५, निजीक निज नगरनी सीमइ;
 खड त्रणा पिण खाइ, कदाचि ते जीवइ कीमइ ।
 तेहवइ धाडि कोलीतणी, सगला लेइ^६ सामठा;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया; तुं तो पड्यउ जठा तठा ॥ ४ ॥
 लागी लुंटाळुं, भयै करि मारग भागा;
 लतो न मूकइ लंठ, नारी नरनिं^७ करइ नागा ।
 बइयर^८ झालै बंदि^९, मांटीनइ मुह कडा मारइ;
 बंदीखातइ बंधि ऊन्ही^{१०}, घिसी उपरि झारइ ।
 दोहिलउ दंड माथइ करी, भीख मंगावि भीलडा;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, थारो कालो मुंह पग नीलडा ॥ ५ ॥
 भला हुंता भूपाल, पिता जिम पृथ्वी पालइ;
 नगरलोक नर-नारि, नेहसुं नजरि निहालइ ।
 हाकिमनइ हुवो लोभ, धान ले पोतइ धारइ;
 महामुंहगा करि मोल, देखि बेचइ दरबारइ ।
 मसकीन लोक पामइ नहीं, लेतां धान^{११} लागइ धक्का;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तइं कुमति दीधी तिका ॥ ६ ॥

५ अचिलो. ६ सहि. ७ ना. ८ नीआत्रेवड. ९ चारि. १० लेगया. ११ नै.
 १२ बइरनि. १३ बंद. १४ उन्हां (उमी) थी (थइ). १५ घडना.

धान्यादिके भाव -

सूंठि रूपइयै सेर, मुंग अढी सेर माठा;
 साकर घी त्रिण सेर, मुंडौ गुलमाहि माठा ।
 चोखा गोहुं च्यार सेर, तूंअर तो न मिले तेही;
 बहुला बाजरि बाड^{१६}, अधिक ओछा हुवै एही ।
 शालि दालि घृत घोल, जे नर जीमता सामठउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तइं खवराव्यो बावटउ^{१७} ॥ ७ ॥

अध पा न लहै अन्न, भला नर थया भिखारी;
 मूकी दीधउ मान, पेट पिण भरइ न भारी ।
 पमाडीयाना^{१८} पांन, केइ बगरौ नइं कांटी;
 खावै खेजड छोड, शालितूस सबला बांटी ।
 अन्नकण^{१९} चुणइ के अइंठिमें, पीयइ अइंठि पुसली भरी;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, एह अवस्था तइं करी ॥ ८ ॥

मांटी मुंकी बइर^{२०}, मुक्या बइरै पणि मांटी;
 बेटे मुक्या बाप, चतुर देता जे चांटी ।
 भाइ मुंकी भइण, भइणि पिण मूक्या भाइ;
 अधिको व्हालो अन्न, गइ सहु कुटुंब सगाइ ।
 घरबार मुकी माणस घणा, परदेशइ गया पाधरा;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तेही^{२१} न राख्या आधरा ॥ ९ ॥

आपणा वाल्हा आंत्र^{२२}, पड्या जे आपणां पेटा;
 नाण्यो नेह लिगार, बापइ पिण बेच्या बेटा ।
 लाधउ जतीए लाग, मूंडिनइं मांहइ लीधा;
 हुंती जितरी^{२३} हुंस, तीए तितराहिज कीधा ।
 कूकीया^{२४} घणुं श्रावक किता, तदि दीक्षा लाभ देखाडीया;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तइं कुटुंब बिछोहा पाडीया ॥ १० ॥

१६ पाड. १७ बावटो. १८ पमाडिया. १९ कुण. २० बैरि (बयरी). २१ तइ इहां नव राषा आधरा. २२ अंत्र, अत्रे. २३ जितानी. २४ कूक्या.

खातां खूटा गरथ, पछइ घर बेच्या परगट;
 बलि प्रहणा दीया बेचि, किमही रहइ घरनी कुलवट ।
 पणि पसर्यो दुरभिक्ष, कहउ केहीपर कीजइ;
 आपइ न को उधारि, सत्त नही सगइ सुणीजइ^१ ।
 लाजते^२ मीख लीधी नहीं, मुंहडइ^३ पग सूजी मूआ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते हवाल^४ ताहरा हूआ ॥ ११ ॥
 तइं हींदू किया तुरक, विप्र तो मूल विटाल्या;
 बणिके गइ विगत्ति, रांक करि लंगरि राल्या ।
 दरसणी दुखिया कीध, जती जोगी सन्यासी;
 जटाधारि जलधारि, प्रगट जे पवन अभ्यासी ।
 अन्न मात्रइ ए 'अपामेत, भागां सुंस भूखालूए'^५;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते तुझ पाप त्रिकालूए ॥ १२ ॥
 दुखी थया दरसणी, भूख^६ आधी^७ न खमावइ;
 श्रावक न करी सार, खिण^८ धीरज किम^९ थायइ ।
 चेले कीधी चाल, पूज्य परिग्रह परहउ छांडउ;
 पुस्तक^{१०} पाना बेचि, जिम तिम अम्हनइ जीवाडउ ।
 बल^{११} पात्र बेची करी, केतौक तो काल काढीयउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तुनइ निपट^{१२} निरधाटीयउ ॥ १३ ॥
 घर तेडी घणीवार, भगवनना पात्रा भरता;
 भागा ते सहू भाव, निपट थया बहिरण निरता ।
 जिमता जडइ किमाड, कहै सवार छै केई;
 दइ फेरा दस पांच, जती निठ^{१४} जायइं लेई ।
 आपइ दुखइ अणछूटतां, ते दूषण सहु तुझ तणउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, विहरण नहीं विगुचणउ^{१५} ॥ १४ ॥
 पडिकमणउ पोसाल, करण को श्रावक नावइ;
 देहरा सगला दीठ, गीत गंधर्व न गावइ ।

१ सणेजइ, सणीजे. २ लाजैते. ३ मुंहड. ४ तेह चाल. ५ अणपामते. ६ भूखालूए.
 ७ छुधा. ८ आधी. ९ थिर. १० नही. ११ उद्यत करउ विहार, मांड काइ बीजी
 मांडो. १२ पुस्तक पाना. १३ तीए. १४ नेटि. १५ विगोचणउ.

शिष्य भणइ नहीं शास्त्र, मुख भूखइ मचकोडइ;
 गुरुबंदण गइ रीति, छती प्रीत माणस छोडइ ।
 बखाण^१ खाण माठा पड्या, गच्छ चौरासी एही गति;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, कांइ दीधी तइ ए कुमति ॥ १५ ॥
 पाटण अम्हदाबाद, खैरो सूरत खंभाइत;
 लाइक लखपति लोक, वणिक पिण हुंता विलाइत ।
 जगडू भीमो शाह, उठयो को नाम उगारइ;
 सबलउ सत्रूकार, मांडि महियलि साधारइ ।
 केतेक दिवस दीधउ कीए, पिण थिर थोभ न को थयउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तेनइं तूं व्यापी गयउ ॥ १६ ॥
 मूआ घणा मनुष्य, रांक गलीए रडवडिया;
 सोजो वल्यउ सरीर, पछइ पाज मांहे पडिया ।
 कालइ^२ कवण बलाइं, कुण उपाडइ किहां काठी;
 तांणी नारुया तेह, मांडि^३ थइ सगली माठी ।
 दुरगंधि दशोदिशि ऊछली, मडा पड्या दीसइ मूआ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, किण घरि न पड्या कुकुआ ॥ १७ ॥

जैनाचार्य जो स्वर्गवासी हुए—

श्रीललितप्रभु सूरि, पाटण पूनमिया सुगुरु^४;
 प्रभु लहुडीपोसाल, पूज्य वे पीपलिया-खरतर ।
 गुजराती गुरु बेउ, बडउ जसवंत नइ केसव;
 शालिवाडीयउ सूरि, कहूं कितो पूरो हिसव ।
 सिरदार घणेरा संहर्या, गीतारथ गिणती नहीं;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तुं हतियारउ सालो सही ॥ १८ ॥

कविकी आपबीति कथा—

पछि आन्यउ मो पासि, तु आवतउ मइं दीठउ;
 दुरबल कीधी देह, म करि कछउ भोजन मीठउ ।
 दूध दही घृतघोल, निपट जिमिवा न दीधा;
 शरीर गमाडि शक्ति, केई लंघण पनि कीधा ।

धर्मध्यान अधिका धर्या, गुरु दत्त गुणगुण पिय गुण्यउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तुं नै हाक मारिनइ मइ हण्यउ ॥१९॥
 पाटण थकी पांगुरी, इहां अहमदाबाद आयउ;
 देखी माहरी देह, माच्छ गलबंध^१ गमायउ ।
 गरढउ गीतारत्थ, गच्छ चउरासी चावउ;
 श्रावक न करी सार, पिय रहिस्यइ पछतावउ ।
 भावक दोष न को सही, मत जाणउ वांक माहरउ ।
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते दूषण^२ सहु ताहरउ ॥ २० ॥

सहायकर्त्ता—दानी श्रावक—

साबास शांतिदास, परघल अपणां गुरु पोष्या;
 पात्रा भरि भरपूर, साधनइ घणा संतोष्या ।
 उसा पाणि आंणि, वख पिय भला वहराव्या;
 सखर कीया लघु शिष्य, गच्छ पिय गरुयडि पाया ।
 सागर जिके साहमी हूया^३, सहु तेहनइ^४ संतोषिया ।
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तें सागरनै न संतापिया ॥ २१ ॥
 कुंवरजी करमसी रतन, वछराज ऊदो वछियाइत;
 जीवउ सुखीयो जाण, वलि वीरजी विल्याइव^५ ।
 मनजी केसव मेल, साह सूरजी सवायउ;
 पंचपरबी कीयउ पुन्न, मास च्यार पांच चलायउ ।
 जिनसागरां समवाय जस, हाथीशाह^६ उद्यम हूयउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तां सीम साहमी न को हूअउ ॥२२॥
 नागोरी नामजाद, शहलटूको सुणीयइ;
 वखउ ते अहमदाबाद, भलउ प्रतापसी भणीयइ ।
 बडउ पुत्र वर्द्धमान, भलउ तिलोकसी भाई;
 कीजइ पुन्य कृतूत, इण परि एह बडाई ।
 सांभले बात सत्यासीया, तुं म करे केहनइ आकुला;
 प्रतापसीसाहरी प्रौलमइं, दीजई रोटी बाकुला ॥ २३ ॥

१ बंध. २ कृतूत. ३ किया. ४ जिहनि. ५ विछियाइत. ६ सादुलटूककउ.

† सं० १६८६ में इनसे गच्छमेद हुआ । ‡ इनके आग्रहसे कविवरने १८ नात्रक सहाय रची है ।

पाटणमाहि प्रसिद्ध, मोटउ सांमलदास मारु;
जयतारणियउ जाण, वित्त तिण वावर्यो बारु ।
तपा जतीनइ तेडि, अन्न बे टंक वहिराळ्यउ;
सो-सबासो साधु सको, शाता सुख पायउ ।
दोहिला दुखीया दूबला, सत्रूकार दीयउ सदा;
‘समयसुंदर’ कहइ सत्यासीया, ताहरो बल न चाल्यउ तदा ॥ २४ ॥

श्रीमाली श्रावण, गच्छ कडूआमती गिर्यउ;
पूजा करइ प्रधान, बढावइ^१ चांपउ नै मर्यउ ।
दानबुद्धि दातार, पड्यउ ते दुरभिक्ष पेखी;
खोल्या धानभखार, अन्न चइ अवसर देखी ।
दरमणी सहूनइ अन्न चइ, थिरादरे थोभी लीया;
‘समयसुंदर’ कहइ सत्यासीया, तिहां तुंनइ धक्का दीया ॥ २५ ॥

सत्यासीयै संहार, कीयउ नरनारी केरउ;
आणदाण वरतावि, दुंड ढंढेरउ फेखउ ।
महावीरथी मांडी, पड्या त्रिण बेला पापी;
बारवरषी दुःकाल, लोक लीधा संतापी ।
पणि एकलइ एक तइं ते कीयउ, स्युं बार वरसी बापडा ।
‘समयसुंदर’ कहइ सत्यासीया, बारै^२ लोके न लह्या लाकडा ॥ २६ ॥

अठ्यासीया आगमन -

इसइ प्रस्तावइ इंद्र, सभा सुधर्मा बइठउ;
दीठउ अवधि दुःकाल, पाप भरतमइ पइठउ ।
गिरुइ श्रीगुजराति, निपट दुखी करि नांखी;
सीदाणा सहु^३ साध, सही हुं न सकुं सांखी ।
तुरत अठ्यासीयउ तेडिनइ, ए हुकम इंद्रइ कीयउ;
‘समयसुंदर’ कहइ अठ्यासीया, तुं मार काढि सत्यासीयउ ॥ २७ ॥

इंद्रतुं लेइ आदेश, आयउ अठ्यासीयउ इहां;
अमदाबादइ आवि, पूछइ कासिमपुरउ किहां ।

महि वरसाव्या मेह, धान धरती निपजाव्यउ;
 आंणी नदी अर्थाग, प्रजा लोक धीरज पायउ ।
 गुल खांड चावल गोहुं तणां, पोठे आंणि परगैट किया;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीयउ, तुं परहो जा हिब पापीया ॥ २८ ॥
 आव्यां पोठी ऊंट, धान भरि घूना गाडा;
 भरया खंभाइत भार, आंण्या इहां परठी भाडा ।
 सबल थयउ संग्राम, भिडतउ^१ रण माहे भागउ;
 सत्यासीयउ सत्त छोडि, लालच करि चरणे लागउ ।
 घी तेल मूंग थाइस घणा, घै मुझनै एतउ दूयउ;
 'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, कहइ पडि रहिस अधमूयउ ॥ २९ ॥
 अठ्यासीयइ इहां वेढि, सजी सत्यासीयइ सेती;
 सत्यासीया सुणि वात, कहिहिक जाइस केती ।
 इंद्रतणउ ए क्षेत्र, भरत दक्षिण ए भणीयइ;
 निरपराध नर नारि, हाहा पापी किम हणीयइ ।
 निंदा करइ गुरुनी निपट, दया दान मुकी दिया;
 पापीया पाप पच्या पछी, मइ ऋतूत माहरा किया ॥ ३० ॥
 सत्यासीयउ साहसी, ऊठि बलि सामउ^२ थावइ;
 पड्यउ न रहइ पापीयउ, धान मुहगउ करि धावइ ।
 अठ्यासीयउ अन्न^३ आंणि, करइ बलि सुंहगा कांई;
 लागी लत्थापत्थि, किंसुं थास्यइ हो सांइ ।
 अन्न^४ पुण्यतणउ संचउ अधिक, लोक जिके करस्यइ लही ।
 'समयसुंदर' साचउ कहइ, सुखी तिको थास्यइ सही ॥ ३१ ॥
 सगलइ हुबउ सुगाल, अन्न^५ चिहुं दिसिथी आयउ;
 आप आपणइ व्यापारी, सको अधिकारइ लायउ ।
 बाजरी चउला मउठ, के के धान सुंहगा कीधा;
 सुंहगा-सुंहगा सर्व, लोक ते आणी लीधा ।

१ अतार. २ पोड. ३ परघलि. ४ ति रिण माहेबलिभागउ. ५ इहां घडिवेढ; हिबवेढि.
 ६ उभउ. ७ इहां. ८ काइ लागी लछापछि स्युं. ९ पुत्र. १० धान.

नर-नारि नूर वाध्यउ नगरि, चहल-बलाई चहुटइ थई ।
 'समयसुंदर' कहइ अठ्यासीया, हिव चितनी चिंता गई ॥ ३२ ॥
 मरगी नइ मंदवाडि, गया गुजरातथी नीसरि;
 गयउ सोग संताप, घणो हरख हुयउ घरिघरि ।
 गोरी गावइ गीत, बली विबाह मंडाणा;
 लाइ खाजा लोक, खायइ थालीभर भांणा ।
 शालि दालि घृत घोलसुं, भला पेट काठा भर्या ।
 'समयसुंदर' कहइ अठ्यासीया, साध तउ अजे न सांभर्या ॥ ३३ ॥
 श्रावक कहइ सुगाल, सहु धान थया सुंहगा;
 दरसणी कहै दुकाल, अम्हे जाणां छां सुंहगा ।
 आदरसुं को अन्न, अजी आपै नही अम्हनै;
 श्रावक पिता समान, तिण कहीछइ तुम्हनै ।
 दया मया दिल धर्म धरी, श्रावक सार सहु करइ ।
 'समयसुंदर' कहै अठ्यासीया, धीरज तउ सहु को धरइ ॥ ३४ ॥
 अठ्यासी कहै एम, म करो तुम्ह चिंता मुनिवर;
 करौ क्रिया अनुष्ठान, तप जप संजम तत्पर ।
 बांचो सूत्र-सिद्धांत, भलउ धरम मारग भाखउ;
 महावीरनो वेश, रीति रूढीपरि राखउ ।
 बखाण खाण थास्यै वली, श्रावक सार सहु करै ।
 'समयसुंदर' कहै सत्यासीया, धीरज तउ सहु को धरै ॥ ३५ ॥
 दुरभिक्ष महादुकाल, वरस सत्यासीयउ बूरो;
 दीठा घणा दुकाल, पणि एहवउ को न हूवो ।
 सत्यासीया-सरूप, दीठउ मइ तेहवो दाख्यउ;
 गया मूआ गइंद, रखौ भगवंत तौ राख्यउ ।
 रागद्वेष नही को माहरइ, मइ ख्याल-विनोदइ ए कीयउ ।
 'समयसुंदर' कहइ सहु सुखी, कवि कल्लोल आणंद करउ ॥ ३६ ॥

[२] 'चंपकश्रेष्ठि चौपाइ' के दूसरे खंडकी छठी ढालमें
अकालका इस प्रकार वर्णन किया है

*

तिण देसइ हिव एकदा रे, पापी पड्यउ दुकाल ।
 बार बरस सीम बापढ़ारे, कीधो लोक कराल ॥ १ ॥
 वली मत पडिज्यो एहवो दुकाल,
 जिणै विछोह्या माबाप बाल, जिणै भागा सबल भूपाल ।
 खातां अन्न खूटी गया रे, कीजइ कवण प्रकार ।
 भूख सगी नहीं केहनी रे, पेट करइ पोकार ॥ २ ॥
 सगपण तउ गिणै को नहीं रे, मित्राई गई भूल ।
 को कदाचि मांगै कदी रे, तौ माथे पडइ तिसूल ॥ ३ ॥
 मांन मूकि वडे मांणसे रे, मांगवा मांडी मीख ।
 तउ पिण को आपइ नहीं रे, दुखीए लीधी दीख ॥ ४ ॥
 केई बईयर मूंकी गया रे, के मूंकी गया बाल ।
 के मा-बाप मूंकी गया रे, कुण पडइ जंजाल ॥ ५ ॥
 परदेसे गया पाधरा रे, सांभल्यउ जेथ सुकाल ।
 मांणस संबल विण मूआ रे, मारग मांहि विचाल ॥ ६ ॥
 बापे बेटा वेचीया रे, माटी वेची बयर ।
 बयरे मांटी मूंकीया रे, अन्न न दइ ए बयर ॥ ७ ॥
 गुखे बैठी गोरड़ी रे, वीजणे ढोलति वाय ।
 पेटनै काजै पदमणी रे, जाचै घर घर जाय ॥ ८ ॥
 जे पंचामृत जीमता रे, खाता द्राख अखोड ।
 कांटी खायै कोरड़ी रे, के खेजडना छोड ॥ ९ ॥
 जतीयांनै देई जीमता रे, ऊभा रहता आडि ।
 ते तउ भाव तिहां रह्या रे, जीमता जडै किमाडि ॥ १० ॥
 दांन न दै के दीपता रे, सहु बैठा सत छांडि ।
 मीख न दइ को भावसुं रे, दै तो दुख दिखाडि ॥ ११ ॥
 देव न पूजै देहरै रे, पडिकमइ नहीं पोसाल ।
 सिथल थया श्रावक सहू रे, जती पड्या जंजाल ॥ १२ ॥

रडबडता गलीए मूआ रे, मडां पड्या ठाम ठाम ।
 गलिमांहे थइ गंदगी रे, दौ कुण नांखण दांम ॥ १३ ॥
 संवत सोल सत्यासीयौ रे, ते दीठै ए दीठ ।
 हिव परमेसर एहनइ रे, अलगौ करे अदीठ ॥ १४ ॥
 हाहाकार सबल हूऔ रे, दीसै न को दातार ।
 तिण वेला उठ्यौ तिहां रे, करवा काल उद्धार ॥ १५ ॥
 अबसर देखी दीजियै रे, कीजै पर उपगार ।
 लखमीनौ लाहौ लीजियै रे, 'समयसुंदर' कहै सार ॥ १६ ॥



[३] विशेषशतक ग्रन्थलेखन प्रशस्तिमें इस दुष्कालका सरणोल्लेख

मुनिवसुषोडशवर्षे (१६८७) गूर्जरदेशे च महति दुःकाले ।
 मृतकैरस्थिग्रामे जाते श्रीपत्तने नगरे ॥ १ ॥
 भिक्षुभयात् कपाटे जटिते व्यवहारिभिर्भृशं बहुभिः ।
 पुरुषैर्मर्नि मुक्ते सीदति सति साधुवर्गेऽपि ॥ २ ॥
 जाते च पंचरजतैर्धान्यमणे सकलवस्तुनि महर्घ्ये ।
 परदेशगते लोके मुक्त्वा पितृमातृबन्धुजनान् ॥ ३ ॥
 हाहाकारे जाते मारिकृतानेकलोकसंहारे ।
 केनाप्यदृष्टपूर्वं निशि कोलिकलुंठिते नगरे ॥ ४ ॥
 तस्मिन् समयेऽस्माभिः केनापि च हेतुना च तिष्ठद्भिः ।
 श्रीसमयसुंदरोपाध्यायैर्लिखिता च प्रतिरेषा ॥ ५ ॥
 मुनिमेघविजयशिष्यो गुरुभक्तो नित्यपार्श्ववर्ती च ।
 तस्मै पाठनपूर्वं दत्ता प्रतिरेषा पठतु मुदा ॥ ६ ॥
 प्रस्तावोचितमेतत्तु श्लोकषट्कं मया कृतम् ।
 वाचनीयं विनोदेन गुणग्राहिविदांवरैः ॥ ७ ॥

ग्रन्थावलीकन

*

राजपूतानेका इतिहास

महामहोपाध्याय, रायबहादुर, साहित्यवाचस्पति डॉ० श्री गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा डी. लिट्. (अजमेर) ने, कृपा करके 'भारतीय विद्या भवन' तथा 'भारतीय विद्या' के संपादकको अपनी 'राजपूतानेका इतिहास' नामक सुप्रसिद्ध अद्वितीय ग्रन्थावलीकी हाल ही में प्रकाशित ३ जिल्दों, उपहार-स्वरूप — भेंट भेजी हैं जिनका सधन्यवाद सादर स्वीकार कर, महामहोपाध्याय-जीकी, इस महानुभावताके प्रति हम अपना हार्दिक विनम्र कृतज्ञभाव प्रकट करते हैं ।

पण्डितप्रवर श्री ओझाजीने अपनी अखंड और असाधारण वाङ्मयोपासना तथा उज्ज्वल एवं आदर्शभूत इतिहास-साधना द्वारा जो सुनिश्चल सेवा अपने पितृ-प्रदेशकी तथा जो भावपूर्ण भक्ति अपनी मातृ-भाषाकी की है, वह, भारतका भाग्योद्धार करनेकी इच्छा रखनेवाले हरएक सपूतके लिये एक अस्युत्तम बोधपाठ समान है ।

ओझाजीने, प्रायः ८० वर्षके निकट पहुंचने वाले अपने सुदीर्घ जीवनमें, भारतके प्राचीन इतिहासकी अस्त-व्यस्त और शीर्ण-विशीर्ण सामग्रीका जिस ऐकान्तिक निष्ठा और अखण्डित उत्सुकताके साथ, जो मौलिक समवलोकन, संशोधन, संचयन और संकलन आदि किया है वह हमारे जैसे अनेक अल्पज्ञ अभ्यासियोंके लिये बहुत कुछ मार्गदर्शक और प्रेरणा-प्रदायक हुआ है ।

ओझाजीने न तो वर्षों तक कॉलेजोंमें किताबें रट कर किसी विश्वविद्यालयकी कोई लंबी-चौड़ी डीग्री ही अपने गलेमें लटकाई थी और नाही किसी जर्मन-अमेरिकन युनिवर्सिटीके धुरन्धर प्रोफेसरोके पास बैठ कर कोई थिसीज लिख-लिखा कर डॉक्टरेटका डिप्लोमा ही अपनी पीठ पर चिपकाया था । तो

† (१) पहली जिल्दकी दूसरी आवृत्ति, जिसमें समुच्चय 'राजपूतानेका प्राचीन इतिहास' दिया गया है । इसकी पृष्ठ संख्या, ५२+२+१०+३६९+५५ है । मूल्य रु० ७-०-०

(२) चौथी जिल्दका पहला भाग — इसमें जोधपुर राज्यका इतिहास लिखा गया है — जो चालू है । इसकी पृष्ठ संख्या १०+२२+२+४७५+२ है । मूल्य रु० ८-०-०

(३) पांचवीं जिल्दका पहला भाग — इसमें बीकानेर राज्यका इतिहास प्रथित किया गया है — जो चालू है । इसकी पृष्ठ संख्या ८+१६+३६६+२ है । मूल्य रु० ६-०-०

भी ये आज महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति और ऑनररी डी. लिट्. के सर्वश्रेष्ठ पाण्डित्यप्रदर्शक पदोंसे विभूषित बने हैं। यह सन्मान इनको अपनी अखंड इतिहासोपासना ही से प्राप्त हुआ है। जिस सामान्य परिस्थितिमें रहकर, जिस निश्चल निमग्नता और निराकुलताके साथ, इन्होंने जो ऐसी अद्भुत ज्ञानसंपत्ति प्राप्त की और उसका जो श्रेष्ठतर उपयोग, जिस सात्विक श्रद्धाके साथ, मातृभाषाभाषी देशजनोंकी ज्ञानवृद्धिके लिये किया, वह सब सचमुच ही एक आदर्शभूत और असामान्य जीवनध्येयका निदर्शक है। अविरत परिश्रमसे प्राप्त ज्ञानशक्ति और साधन-सामग्रीका जैसा सदुपयोग महामहोपाध्याय ओझा-जीने किया वैसा क्वचित् ही किसी पण्डितने किया होगा।

हमारे देशमें बहुत ऐसे प्रखर पण्डित और दिग्गज विद्वान् विद्यमान हैं जो सरकारी कालेजोंमें या अन्य दफ्तरोंमें, बड़ी बड़ी तनख्वायें इसलिये पाते हैं कि वे अपने बड़े मोटे दिमागोंमें भरे हुए, और प्रतिवर्ष वेतनकी वृद्धिके साथ बढ़ते जाते हुए ज्ञानके गहरे भंडारका, देशकी उस अज्ञान जनताके उपकारार्थ कुछ विनियोग करे, जिसको मनुष्यत्वकी भी पूरी कल्पना नहीं है और अपने नाममें कौन कौन अक्षर प्रयुक्त होते हैं इसका भी जिसको ठीक ज्ञान नहीं है। लेकिन ये भारी तौलके दिमागवाले विद्वान् पुरुष, ज्यों ज्यों इनकी वेतनवृद्धि होती जाती है त्यों त्यों इनको अपने दिमागकी रक्षाकी चिन्ता बढ़ती जाती है और इसलिये, अपने दिमागको कमसे कम श्रम दिया जाय और उससे बहुत थोड़ा काम लिया जाय, उसकी सावचेती रखनेमें व्यस्त रहते हैं। नौकरीके नियमके कारन करना पड़े उससे अधिक कहीं घंटा-आधघंटा भी ये अपनी खुशीसे अधिक काम करनेकी कभी इच्छा नहीं रखते। अपने अथाग दिमागमें दबे हुए अमूल्य ज्ञाननिविर्मेसे, कुछ थोड़ीसी कौडियोंकी किमतका माल भी, ये प्रजाके कल्याणकी कामनासे वितरण करना नहीं चाहते। अगर कोई कोई विद्वान् अपनी विद्वत्ताकी कुछ अधिक किमत बढ़ानेकी चाहना करते हैं और साथ ही में कहींसे कुछ अधिक वेतन पानेकी भी लालसा रखते हैं, तो वे फिर अपने दिमागको जरा कुछ कसनेकी कोशीश करते हैं और जिन इंग्रेजी पुस्तकोंके पन्नोंको रट रट कर उन्होंने अपने मस्तिष्कको भरा है उन्हींमेंसे कुछ पंक्तियाँ, कुछ वाक्य, कुछ शब्द, कुछ भाव इधर-उधर कर इंग्रेजीमें कोई किताब लिख डालते हैं। पर, साथमें उनको यह इच्छा नहीं होती कि जिस तरह इंग्रेज लोक

दुनियाभरकी भाषाओंमें भरे हुए ज्ञानको, अपने देशबन्धवोंके ज्ञानार्थ और अपनी मातृभाषाके भंडारकी अभिवृद्ध्यर्थ, इंग्रेजी भाषामें अवतारित करते हैं वैसे ही हम भी, कुछ अपने देशजनोंके हितार्थ और अपनी मातृभाषाकी उत्थत्यर्थ अपने दिमागमें भरे हुए ज्ञानका, थोड़ा बहुत आलेखन, अपनी भाषामें भी करें।

महामहोपाध्याय ओझाजी, ऊपर जिस प्रकृतिके विद्वानोंका वर्णन किया है, उससे सर्वथा भिन्न प्रकृतिके हैं। इन्होंने अपनी सेवा द्रव्यार्जनके निमित्त नहीं किंतु ज्ञानार्जन और ज्ञानवितरणके लिये समर्पित की। यह सेवा करते हुए इन्होंने न घंटोंका हिसाब रखा न वर्षोंका—न वेतनका विचार रखा, न पद-वृद्धिका। सेवाको अपने जीवनकी ध्येय-सिद्धिका एक उत्तम सहायक कारण मान, इन्होंने उसका उत्कृष्ट उपयोग किया। राजपूतानेके इतिहासका सुसंकलित आलेखन करना इन्होंने अपना जीवन-संकल्प बनाया और उसको पूरा करनेके लिये अपने प्रत्येक दिन और प्रत्येक साधनका पूरा उपयोग किया। ओझाजीको इंग्रेजी भाषाका यथेष्ट ज्ञान है, और चाहते तो, और और विद्वानोंकी तरह ये भी अपनी किताबें इंग्रेजीमें लिख कर, इंग्रेज प्रभुओंकी बोलीमें अपनी पूर्ण भक्ति प्रकट कर सकते और शायद उससे कुछ अधिक लाभ भी उठा सकते। पर ये तो रहे पूरे मातृभाषा-भक्त। जीवन-व्यापक साधना द्वारा जो अमूल्य सम्पत्ति प्राप्त की गई उसे यदि किसी पुत्रने, सबसे प्रथम, अपनी माताके चरणोंमें भेंट नहीं की तो, वह उस माताका सत्पुत्र नहीं किंतु कुपुत्र है। जो विद्वान्, विना किसी अत्यंत विशिष्टहेतुके, अपनी मातृभाषामें ग्रंथरचना न कर, केवल इंग्रेजीके मिथ्या मोहमें मुग्ध हो कर, उसीमें कुछ लिखते रहते हैं और मातृभाषाकी उपेक्षा करते हैं, वे दुनियाके सामने अपनी माताकी नालायकीका निंदा प्रकाश करते हैं। दुर्भाग्यसे हमारे देशके बड़े बड़े नामी विद्वान् और देशनेता इस मातृद्रोहके पापसे कलंकित हैं। ओझाजी जैसे कोई विरल ही विद्वद्ब्रह्म पुरुष हैं जिन्होंने अपनी प्राप्त सब ज्ञान-सामग्री मातृभाषाके चरणोंमें समर्पित की। और ग्रंथोंकी बात तो ठीक है, लेकिन 'प्राचीन लिपीमाला' जैसी पुस्तकको भी—जो आन्तरराष्ट्रीय उपयोगकी दृष्टिसे भी बड़े महत्त्वकी कृति है और जिसका इंग्रेजीमें होना बहुत ही उपयुक्त था—इन्होंने हिन्दी ही में लिखा और वैसा करके अपनी भाषाका उत्कृष्ट गौरव बढ़ाया।

ओझाजी राजस्थानकी रत्नप्रसू भूमिके कर्तव्यनिष्ठ पुत्ररत्न हैं। अपनी मातृ-भूमिकी पुरातन गौरव-गाथा और कीर्ति-कथाके अवशेषोंको प्रकाशमें लानेका जैसा अविरत उद्योग इन्होंने किया है वैसा शायद ही अन्य किसी विद्वान्ने, अपनी जन्मभूमिके लिये किया हो। आज कोई ५०-६० जितने वर्ष बीत चुके, ओझाजी राजपूतानेके इतिहासका समुद्धार करनेके लिये एकनिष्ठ हो कर अपना सर्व सामर्थ्य खर्च कर रहे हैं। यौवनके प्रारंभ होनेके पूर्व ही से इन्होंने राजपूतानेके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें परिभ्रमण करना शुरू किया था और उसके इतिहासके उपादानोंका अवलोकन और अनुसन्धान करना आरंभ किया था। अपने सुदीर्घ जीवनमें इन्होंने राजपूतानेके एक-एक कौनेको कई कई बार देख डाला और उसके इतिहासकी कुछ बात बताने वाले एक-एक पत्थरको टटोल डाला।

किसी एक देश या जातिके पुरातन इतिहासके लेखकके लिये यह परम आवश्यक है कि वह अपने आलेख्य विषयकी समुच्चय प्राचीन संस्कृतिका केवल ज्ञाता ही न हो लेकिन पूर्ण मर्मज्ञ हो। उसको अपने उद्दिष्ट देशके जनसमूहकी समाजरचना, धर्मभावना, साहित्यसृष्टि, भाषाउक्ति, जीवनप्रक्रिया, प्रकृतिवैशिष्ट्य, भौगोलिक परिस्थिति आदि आदि अनेक विषयोंका आमूल-चूल ज्ञान होना चाहिए। श्रेष्ठ इतिहासकारको किसी भी जाति, धर्म, मत, पंथ या समूहके पक्ष-विपक्षसे निर्लेप होना चाहिए। उसमें भिन्न भिन्न प्रकारके उल्लेखोंमेंसे सत्यासत्यका पृथक्करण करनेकी और परस्पर विरुद्ध ऐसे अभिप्रायों पर निष्पक्ष निर्णय देनेकी यथेष्ट शक्ति होनी चाहिए। ओझाजीमें यह सब गुण यथायोग्य प्रमाणमें विद्यमान हैं और इसलिये अपने देशका ठीक प्रामाणिक इतिहास लिखनेके लिये ये पूर्ण अधिकार और सामर्थ्य रखते हैं।

जीवनभर जिस सामग्रीको ओझाजीने इस तरह संग्रहित और संकलित किया उसको ये अब 'राजपूतानेका इतिहास' नामक विशद ग्रंथावलिके रूपमें प्रथित कर प्रकाशित कर रहे हैं। संवत् १९८३ में इस ग्रंथावलिकी पहली जिल्द प्रकाशित हुई और अब तक कोई ७-८ जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं—जिनमें उदयपुर, डुंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि राज्योंके सांगोपांग इतिहास पूर्ण हो चुके हैं और जोधपुर बीकानेर राज्योंके इतिहास चालू है। प्रकाशित ग्रंथोंकी देश और विदेशके मर्मज्ञ इतिहासकोंने और पुरातत्त्वज्ञोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। भारतकी देशभाषाओंमें लिखे गये ऐतिहासिक ग्रंथोंमें इन ग्रंथोंका स्थान बहुत ऊंचा है और हिन्दी भाषाके तो ये सर्वश्रेष्ठ रत्न-ग्रंथ हैं इसमें कोई शंका नहीं।

પ્રી-બુદ્ધિષ્ઠ ઇન્ડિયા અર્થાત્ બૌદ્ધકાલીન ભારત

લેખક—શ્રીયુત રતિલાલ એન. મેહતા, એમ. એ.

[બૌદ્ધ જાતક કથાઓના વર્ણનોના મુખ્ય આધાર ઉપર આલેખાએલ પ્રાચીન ભારતની સાંજીય, આર્થિક, સામાજિક અને ભૌગોલિક પરિસ્થિતિ વિષેનો વિવેચનાત્મક ઇતિહાસ]

બૌદ્ધ ધર્મે સાથે સંબંધ ધરાવતા પાલી વાહ્યમયમાં જાતકકથા નામે એક ગ્રંથવિભાગ છે જે એકંદર બૌદ્ધ સાહિત્યમાં સૌથી વધારે લોકલોચ અને લોકપ્રિય સાહિત્ય-સર્જન છે. એ સાહિત્યમાં ધર્મ, નીતિ, સદાચાર અને મુવિચારને પોષે એવા સદુપદેશોનો એવી સરસ અને સરલ રીતે સદુપોધ આપવામાં આવ્યો છે કે જેથી સામાન્ય પ્રાકૃત-જન પણ એમાંથી હૃદયમાંથી ભાવો ગ્રહણ કરી શકે અને તે ભાવોને પોતાના આચરણમાં ઉતારી શકે.

ભારતવર્ષના શ્રાદ્ધણ, બૌદ્ધ અને જૈન એ ત્રણેય આર્ય ધર્મોના મૂળભૂત સદાચાર અને નીતિવિષયક સિદ્ધાંતો પ્રાયઃ સમાન છે. પુણ્ય-પાપની કલ્પનાઓ અને ભાવનાઓ એ ત્રણે ધર્મોમાં લગભગ એક જેવી જ છે. ત્રણે ધર્મો પૂર્વકૃત કર્મમાં માનનારા છે. દરેક જીવને પોતે કરેલા સારા-નરસા કર્મનું ફળ ભાવે જન્મમાં અવશ્ય ભોગવવું પડે છે એવી માન્યતા આ ત્રણે ધર્મોમાં લગભગ સરખી છે. એ માન્યતા અનુસાર સત્કર્મનું ફળ સુખદાયક અને દુષ્કર્મનું ફળ દુઃખદાયકરૂપે જીવને ઉપસ્થિત થાય છે, એવી સિદ્ધાન્ત પ્રસ્થાપિત કરવામાં આવ્યો છે. એ સિદ્ધાન્તનું સુબ્યવસ્થિત પ્રતિપાદન કરવાની દૃષ્ટિએ બૌદ્ધ અને જૈન શાસ્ત્રકારોએ, એક વિશાળ પ્રકારની સાહિત્ય-સૃષ્ટિ રચી છે જે કથા-સાહિત્ય તરીકે ઓળખાય છે. જૈનોનું કથા-સાહિત્ય પ્રમાણમાં સૌથી વધારે વિશાળ અને વિવિધતાવાળું છે પરંતુ તે કાલક્રમની દૃષ્ટિએ કાંઈક અર્વાચીન છે. બૌદ્ધ કથા-સાહિત્ય તેટલું વિસ્તૃત નથી પણ તે કાંઈક વધારે પ્રાચીન મનાય છે. એ બૌદ્ધ કથા-સાહિત્યમાં ચેર અને ચેરીગણા, ધમ્મપદઅટ્ઠકથા અને જાતકઅટ્ઠકથા મુખ્ય છે. ચેર અને ચેરીગણાની કથાઓમાં તેમ જ ધમ્મપદની કથાઓમાં બૌદ્ધ ધર્મના સુપ્રસિદ્ધ અરહતો, સ્થવિરો, શ્રમણો, ભિક્ષુ ભિક્ષુણીઓ અને ઉપાસક-ઉપાસિકાઓ આદિના જીવનની વર્ણન કરતી કથાઓ આપવામાં આવેલી છે ત્યારે જાતક કથાઓમાં ભગવાન યુદ્ધના અર્થાત્ બોધીસત્ત્વના જીવન સાથે સંબંધ ધરાવતી—ખાસ કરીને પૂર્વના અનેક જન્મોનાં જીવનને લગતી—કથાઓ આપેલી છે. એ કથાઓની સંખ્યા ઘણી મોટી—લગભગ પાંચસોથી સાડા પાંચસો જેટલી છે.

બીરી રીતે એ બધી જ કથાઓ યુદ્ધના પૂર્વ જન્મ કે જીવન સાથે સંબંધ ધરાવતી નથી; પણ પ્રાચીન કાળમાં લિખલિખ પ્રકારની જે લોક-કથાઓ લોકોમાં પ્રચલિત હતી તેમનો સંબંધ કોઈ-ન-કોઈ રીતે યુદ્ધના જીવન સાથે જોડી દઈ એ કથાઓના સંગ્રહકારે એ બધી કથાઓને જાતક કથાઓના નામે સંકલિત કરી છે. એ સંકલનાનું વર્તમાન રૂપ મોડામાં મોડું ઈસ્વી સનના પાંચમા સૈકામાં થયું હશે એવી વિદ્વાનોની માન્યતા છે. પણ એમાંની ઘણી ઘણી કથાઓ સૂતરરૂપે કે અર્થરૂપે બહુ પ્રાચીન છે. કેટલીક યુદ્ધના સમયની છે અને કોઈ કોઈ તેથી ય પણ પ્રાચીન સમજાય છે.

સીલોન અને બર્મા જેવા બૌદ્ધધર્મના પ્રચારવાળા દેશોમાં એ કથાઓનાં ખૂબ વ્યાખ્યાન, વાચન અને શ્રવણ આદિ થતાં કરે છે, તેમ જ એ દેશોની લિપિમાં એ

કથાઓના મૂળ પાલી સંગ્રહો તથા એ દેશની લોકભાષાઓમાં ભાષાંતરો વિગેરે પણ પ્રકટ થયા છે. વી. ફુસબોલ (V. Fousböll) નામના એક યુરોપીય વિદ્વાને એ સમગ્ર પાલી કથાસંગ્રહને રોમનાક્ષરોમાં, ૭ ભાગોમાં, ઘણા વર્ષો પૂર્વે લંડનથી પ્રસિદ્ધ કર્યો છે અને તેનું સંપૂર્ણ ઇંગ્રેજી ભાષાંતર, પ્રો. ઇ. બી. કેવેલના સંપાદકપણા નીચે ડેબ્રીજથી પ્રકટ થયું છે. મુંબઈ, કલકત્તા આદિ યુનિવર્સિટીઓના પાલીભાષાના અભ્યાસક્રમમાં, અવાર-નવાર એ કથાસંગ્રહમાંના કોઈ કોઈ ભાગો, નિયત કરવામાં આવે છે અને તેથી એ ભાગોના કેટલાક નાના નાના સંગ્રહો આપણા દેશમાં પણ દેવનાગરી અક્ષરોમાં છપાયા છે. ગુજરાત પુરાતત્ત્વ મંદિરની ગ્રંથાવલીમાં એવો એક સંગ્રહ - પાલી પાઠાવલીના નામથી - મેં પણ પ્રસિદ્ધ કર્યો હતો. બંગાલી, હિન્દી, મરાઠી અને ગુજરાતી ભાષામાં પણ એ ભતક કથાએમાંની કેટલીક કથાઓ અનુવાદરૂપે કે સારરૂપે જ્યાં ત્યાંથી પ્રકાશમાં આવેલી ઉપલબ્ધ થાય છે.

જો વિદ્યાર્થીઓ અને અભ્યાસીઓને આ ભતકકથાઓનો થોડો ઘણો પરિચય થયો હશે તેમને એની કાંઈક સામાન્ય કદપના આવી જ હશે, કે એ કથાઓમાં ધર્મ અને નીતિગર્ભિત ઉપદેશો સાથે ભારતવર્ષની તત્કાલીન વ્યાપક સંસ્કૃતિનું વૈવિધ્ય ભરેલું ગર્ભિત ચિત્ર પણ આલેખાએલું છે. એ ચિત્રના કેટલાક અંગોનું વ્યક્તીકરણ અને વિશદીકરણ કરવાની દૃષ્ટિએ રાઈસ ડેવીડ્સ, ફ્રિક, વિટરનિસ આદિ અનેક યુરોપીય વિદ્વાનોએ; તેમ જ બી. સી. સેન, એન. એસ્. સુબ્બારાવ, બી. સી. લૉ, જી. ડી. દે આદિ ભારતીય પંડિતોએ પણ નાના મોટા અનેક નિબંધો - પ્રબંધો લખ્યા છે જેમાં અનેક ઐતિહાસિક વિષયોની વધતા ઓછા પ્રમાણમાં વિવેચના અને વિચારણા કરવામાં આવી છે. પરંતુ એ વિશાળ કથાસંગ્રહમાં આલેખાએલા વ્યાપક સંસ્કૃતિના સંપૂર્ણ ચિત્રને સુવિસ્તૃત અને સુસ્પષ્ટ રીતે વિવેચિત કરવાનું કાર્ય અઘાપિ કોઈએ ન હોતું કર્યું; તે હવે ગુજરાતના એક વિદ્યારસિક વિનીત યુવક અને કિત્સાહી અભ્યાસી શ્રીયુત રતિલાલ એન. મહેતાએ કર્યું છે અને તે ઘણી જ ઉત્તમ રીતે કર્યું છે, તેથી આ સ્થળે અમે એમને અમારા સહર્ષ અભિનંદન આપીએ છીએ.

શ્રીયુત મહેતાને ગુજરાતના એક અભ્યાસી યુવક તરીકે સંબોધવાનો અમારો આશય સાહિત્રાય છે. મહારાષ્ટ્ર, મદરાસ, બંગાલ આદિ પ્રાંતોના યુવકોની માફક ગુજરાતના યુવકો પણ પ્રતિવર્ષ, મોટી સંખ્યામાં વિદ્યોત્તીર્ણ થઈ, યુનિવર્સિટીના પદવી-ધારક બને છે અને તેમાં કેટલાક તો વિશિષ્ટ પ્રતિભા અને તીક્ષ્ણ બુદ્ધિવાળા પણ હોય છે. પરંતુ, ગુજરાતના એ બુદ્ધિશાળી પદવીધરોમાં, પરીક્ષોત્તીર્ણ કાળ પછી ભાગ્યે જ વિદ્યાની આંતરિક ઉપાસના કે ગંભીર વિષયોના અધ્યયનની અભિરુચિનું આપણને ઉલ્લેખયોગ્ય નિદર્શન પ્રાપ્ત થાય છે. એ બુદ્ધિમાન યુવકોનો મોટો ભાગ તો લક્ષ્મીદેવીની આરાધનામાં જ તહીન થઈ જાય છે; અને જેમને પોતાના ઉપર લક્ષ્મીદેવીની મહેર નજર કોઈ પણ રીતે થતી ન દેખાતી હોય, તેવાઓ પછી ન છુટકે સરસ્વતી દેવીના કોઈ મંદિરમાં પ્રવિષ્ટ થઈ તેની ઉપાસનામાં જોડાય છે. સંપૂર્ણ ઉમંગ વિના સરસ્વતી-મંદિરમાં પ્રવિષ્ટ થએલા ઉપાસકો દ્વારા પ્રાંઠ અને પાંડિત્યપૂર્ણ કોટિના સાહિત્ય-સર્જનની ભાગ્યે જ આશા રાખી શકાય. આથી આજે આપણે અનુભવીએ છીએ કે મહારાષ્ટ્ર, મદરાસ અને બંગાલના વિદ્યા-સ્નાત પદવીધરો જે ભતની વિવિધ વાદ્મય સેવા કરી રહ્યા છે અને તે દ્વારા વિદ્યુતપરિપક્વોમાં જે ખ્યાતિ મેળવી રહ્યા છે તેની સરખામણીમાં આપણા ગુજરાતી ત્રેજુએટ-વર્ગની વાદ્મયસેવા કે સાહિત્ય-સૃષ્ટિ

સાવ નગણ્ય કોટિની ગણાય છે. બહુ બહુ તો આ મનાતા સરસ્વતી-ભક્તોમાંના કેટલાકને આપણે વાર્તા કે કવિતાના કર્તન-પિંજનની હળવી પરીક્ષામાં થોડા ઘણા સારા માર્ક મેળવવા પ્રયાસ કરતા જોઈ શકીએ. એથી વધારે આગળ વધીને, વિદ્યાના વિવિધ પ્રકારના વિશાલ અને ગહન વનોમાં વિચરી, તેમાંથી નાના પ્રકારના વિષયોના વિચાર પુષ્પોતું સંચયન કરી, પરિશ્રમ-પૂર્વક, તેમને જાતજાતના સમૃદ્ધ આકાર-પ્રકારના મૂલ્યવાન અને મનોવેધક ગ્રંથ-ગુચ્છોના રૂપમાં ગ્રંથિત કરી, અથવા કોઈક વિષયમાં કશુંક સારભૂત મૌલિક વસ્તુસંશોધન કે વિચારાવિષ્કરણ કરી ગુજરાતી વિદ્યતાની આંતરરાષ્ટ્રીય દૃષ્ટિએ પ્રતિષ્ઠા વધારવાની લાગ્યે જ કોઈની આકાંક્ષા કે પ્રવૃત્તિ દેખાય છે.*

આવી પરિસ્થિતિમાં, શ્રીયુત રતિલાલ મહેતાનો એ વ્યાસંગપૂર્ણ પ્રયાસ કે જે એમણે આ પ્રી-પ્રુદ્ધિષ્ઠ ઇન્ડિયા નામના વસ્તુપરિપૂર્ણ અને મૂલ્યવાન મૌલિક પુસ્તકના નિર્માણ માટે લીધો છે, તે અમને એક ગુજરાતી વિદ્વાન યુવકની ઉચ્ચતર વિદ્યાભિરુચિના સુંદર નિદર્શક કાર્ય તરીકે વધારે આનંદદાયક લાગ્યો છે. શ્રી મહેતાની આ કૃતિ આંતરરાષ્ટ્રીય વિદ્વાનોમાં સુંદર સત્કાર પામે તેવી છે અને એ વિષયના કોઈ પણ અભ્યાસી તેમ જ અધ્યાપકને એક ઉત્તમ માહિતીપૂર્ણ સ્થાયી આધારભૂત ગ્રંથની આવશ્યકતા પૂર્ણ કરે તેમ છે.

શ્રી મહેતાનું આ પુસ્તક કદમાં સારી પેઠે મોટું છે. ખીચોખીચ અને ઠોસ લખાણથી ભરેલા, રાંચલ સાદગંજના લગભગ ૫૦૦ પાના જેટલું એનું દળ છે. એમાંનું દરેક પ્રકરણ અને દરેક પૃષ્ઠ, પરિમિત અને પરિમાર્જિત શબ્દ રચનાવાળા વિધાયક વાક્યો અને પંડિતોને અભિમત એવા પ્રમાણભૂત અવતરણોથી અંકિત છે. લેખકે, આની ગ્રંથરૂપે સંકલના કરતાં પહેલાં, પ્રથમ પાંચસો કરતાં ય વધારે સંખ્યાવાળી એ વિચિત્ર જાતક કથાઓમાં વર્ણવવામાં આવેલ પ્રત્યેક વસ્તુ અને પ્રત્યેક વિધાનને, ખૂબ મનનપૂર્વક હૃદયંગમ કરી તેનો નિષ્કર્ષ તારવી કાઢ્યો; અને તે પછી રાજકીય, સામાજિક, આર્થિક આદિ ભિન્નભિન્ન વિષયોના અનેક ભેદોપભેદો સૂચવનારા નામનિર્દેશો નીચે, બહુ જ વ્યવસ્થિતરીતે, એ નિષ્કર્ષનું પદ્ધતિપુરસ્સર પૃથકકરણ કરી, શુદ્ધ નવનીત જેવું ચોક્કસ તારણ કાઢી, તદનુસાર ક્રમપૂર્વક આ પુસ્તકનું સુસંગઘ્ન આલેખન કર્યું છે.

આખું પુસ્તક મુખ્ય ૫ વિભાગોમાં વિભક્ત કરવામાં આવ્યું છે; અને તે દરેક વિભાગને તેના સમુચ્ચાયક અનેક ઉપવિભાગો, અને તે દરેક ઉપવિભાગને પણ તદનુષંગી અનેક અવાન્તર પ્રકરણોથી મંડિત કરવામાં આવ્યું છે. મુખ્ય વિભાગોનો નામ-નિર્દેશ આ પ્રમાણે છે.

(૧) રાજકીય ઇતિહાસની આછી રૂપરેખા, (૨) રાજતંત્રની વ્યવસ્થાપદ્ધતિ, (૩) આર્થિક અવસ્થા, (૪) સામાજિક પરિસ્થિતિ, (૫) ભૌગોલિક માહિતી.

* અદ્યત્ન, અમારૂં આ કથન વ્યાપક દૃષ્ટિએ છે. આના અપવાદરૂપે, કેટલીક એવી વિદ્વાન યુવક વ્યક્તિઓ પણ હવે ગૂર્જરમાતાના ખોળામાં ખેલતી દેખાય છે જેઓ ગુજરાતની જ્ઞાનગદિમાની પ્રતિષ્ઠા વધારવાનાં ઉત્કટ કોડ સેવી રહી છે. શ્રીયુત રતિલાલ છોં પરીખ, શ્રી ઉમાશંકર જેષી, શ્રી મધુસૂદન મોદી, લાઈ લોગીલાલ સાંડેસરા, શ્રી કેશવરામ શાસ્ત્રી, પંડિત શ્રી ખેચરદાસ ઢોસી, શ્રી શાંતિલાલ ઉપાધ્યાય, ડૉં ૬ સમુખ સાંકળીયા, ડૉં ૩ શ્રી મણીલાલ પટેલ, શ્રી સારાલાઈ નવાણ, શ્રી રત્નમણીરાવ ભેધ, શ્રી મંજુલાલ મજમુદાર-આદિ અનેક યુવક બિન્નો યથાસાધન સરસ્વતી દેવીની જંભાર ઉપાસનામાં તક્લીન થવા પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે. તેઓ લવિષ્યમાં, ગુજરાતની જ્ઞાનઢવિરતાને દૂર કરવાના પ્રારંભકોમાં એક પ્રશસ્ત્ર કથાન મેળબે એવી આશા રાખીએ.

પ્રથમ વિભાગમાં આ પ્રમાણે ઉપવિભાગો પાડવામાં આવ્યા છે:- પ્રાસ્તાવિક, (૧) પ્રાચીન કાળ, (૨) કુરુ-પાંચાલ રાજ્યો, (૩) વિદેહ અને બીજા નાના રાજ્યો, (૪) મહાજનપદોનો સમય.

બીજા વિભાગમાં આ પ્રમાણે ઉપવિભાગો કરવામાં આવેલા છે:- પ્રાસ્તાવિક, (૧) રાજકીય વાતાવરણ, (૨) કેન્દ્રસ્થ રાજતંત્ર, (૩) રાજકર વ્યવસ્થા પદ્ધતિ, (૪) ન્યાય વ્યવસ્થા પદ્ધતિ, (૫) સૈનિક તંત્રરચના.

ત્રીજા વિભાગના ઉપવિભાગો આ પ્રમાણે છે:- પ્રાસ્તાવિક, (૧) ઉત્પાદન, (૨) વિભાજન. (૩) પરિવર્તન, (૪) ઉપયોગ.

ચોથા વિભાગના ઉપવિભાગો આ મુજબ છે:- પ્રાસ્તાવિક, (૧) સામાજિક બંધારણ, (૨) કુટુંબ, (૩) મિત્ર અને સંબંધી, (૪) સ્ત્રીનું સ્થાન, (૫) શિક્ષણ, (૬) કળા અને વિજ્ઞાન, (૭) ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાન, (૮) રીતિ-રિવાજ.

પાંચમા વિભાગના આ પ્રમાણે ઉપવિભાગો છે:- પ્રાસ્તાવિક, (૧) સામાન્ય અવલોકન, (૨) ભારતવર્ષના વિભાગો, (૩) ભૌગોલિક નામાવલી, ઉપસંહાર.

આરીતે આ આખા ગ્રંથની સુવિશદ યોજના કરવામાં આવી છે; અને એમાં, પ્રાચીન ઇતિહાસના આલેખ્યની દૃષ્ટિએ જાતકોમાંથી મળી આવતી દરેકે દરેક સૂક્ષ્મ બાબતની નોંધ લેવામાં આવી છે. અમે જેમ ઉપર કહ્યું છે તેમ, જાતક કથાઓનો આટલી ઝીણવટથી આજ સુધી કોઇએ અભ્યાસ કર્યો ન હતો અને તે ઉપર આનો વિશદ અથ કોઇએ લખ્યો ન હતો. શ્રીયુત રતિલાલને આવી મૌલિક અને મૂલ્યવાન કૃતિના નિર્માણ માટે અમારા ફરી હાર્દિક અભિવાદન.

ગ્રંથના નામનિર્દેશવિષે લેખકને પોતાને જ પૂર્ણ સંતોષ નથી-એ એમની પ્રસ્તાવના ઉપરથી જોઇ શકાય છે. અમને પણ એ આપેલું નામ બરાબર વિષયસંગત હોય તેમ લાગતું નથી. અમને એમાં એ અસંગતિઓ દેખાય છે પ્રથમ તો એ કે ‘બુદ્ધિષ્ઠ ઇન્ડિયા’ એવા નામાભિધાનથી નિર્દિષ્ટ કરવા જેવી ભારતવર્ષના ‘ઇતિહાસમાં કોઈ વાસ્તવિક પરિસ્થિતિ અચર્ય નિર્માણ થઈ ન હતી. ભારતવર્ષની તત્કાલીન ધાર્મિક અને સામાજિક પરિસ્થિતિનું કાંઈક જ્ઞાત જ્ઞાન મેળવીને, યુરોપીય વિદ્વાનોએ ‘વેદિક ઇન્ડિયા’ ‘બુદ્ધિષ્ઠ ઇન્ડિયા’ આદિ ભ્રમાત્મક નામો, આપણા દેશના પ્રજાકીય ઇતિહાસને લાગુ કરી, આપણી જાતીય એકતાની ભાવનામાં મિથ્યા ભેદબુદ્ધિ ઉત્પન્ન કરવાનો જાણે અજાણે ભૂલભરેલો પ્રયત્ન કર્યો છે. જેમ અચારે કેટલાક રાજપ્રકરણી સ્વાર્થીજનો ‘મુસ્લીમ ઇન્ડિયા’ અને ‘હિંદુ ઇન્ડિયા’ ના પ્રજાવિઘાતક ખોટા ભેદો કલ્પિત કરી ભારતની રાષ્ટ્રીય એકતાનો લંગ કરવા મિથ્યા પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે. પણ વાસ્તવિક રીતે ભારતમાં ધર્મભેદના લીધે રાષ્ટ્રભેદ કરી શકાય એવી કશી જ વસ્તુસ્થિતિ છે નહિ. ભારતવર્ષની, જે એકતા હોય તો તે ધર્મ, ભાષા કે જાતિના લીધે નહિ પણ ભૌગોલિક પરિસ્થિતિને લીધે છે; અને જ્યાં સુધી ભારતવર્ષનો ઉત્તરભાગ હિમાલયના કોટથી અને પૂર્વ, પશ્ચિમ, દક્ષિણભાગ મહાસાગરની ખાઈથી રક્ષાએલો છે ત્યાં સુધી એની અખંડતાનો કોઈ નાશ કરી શકે તેમ નથી. ‘બુદ્ધિષ્ઠ ઇન્ડિયા’નો ખરો અર્થ શો છે અને શા માટે એ નામ ઉત્પન્ન કરવામાં આવ્યું છે અમને તો એ જ પૂરેપૂરું સમજાતું નથી. ભારતવર્ષના કોઈ પણ ભાગને બૌદ્ધ પ્રદેશ તરીકે, અથવા કોઈ પણ કાળને બૌદ્ધ કાળ તરીકે, ઓળખાવવો એ ઇતિહાસથી અસંબદ્ધ છે. ભારતના ઇતિહાસમાં એવો કોઈ કાળ નહિ આવ્યો કે જેમાં માત્ર બૌદ્ધ ધર્મ જ અખિલ-રાષ્ટ્રવ્યાપી ધર્મ બની ગયો હોય. બૌદ્ધધર્મનો મોટામાં મોટો ઉપાસક અને પ્રચારક

રાજા મૌર્ય સમ્રાટ અશોક થઈ ગયો-પણ તેના સમયમાં ય બૌદ્ધધર્મ અખિલરાષ્ટ્રવ્યાપી ધર્મ ન હતો જન્યો. એના સમયમાં પણ વૈદિક અને જૈન આદિ બૌદ્ધતર ધર્મો યથેષ્ટ શક્તિશાળી અને પોત-પોતાના અનુયાયી વર્ગમાં સુપ્રતિષ્ઠિત હતા. અદ્યત્ત રાજ્યાશ્રયના લીધે એ ધર્મના અનુયાયીઓની સંખ્યાવૃદ્ધિ કે બલવૃદ્ધિમાં કેટલોક ફેરફાર થાય એ સ્વાભાવિક જ છે. પણ તેથી કાંઈ એનો અખિલરાષ્ટ્રવ્યાપી નામનિર્દેશ ન કરી શકાય. અશોકના સમયમાં ય વૈદિકધર્માનુયાયી પ્રજાજનોની મોટી બહુમતી હતી. તેથી ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ ભારતમાં કોઈ પણ સમયને કે કોઈ પણ પ્રદેશને ‘યુદ્ધિષ્ઠ’ એ વિશેષણ આપવું બરાબર અન્વયર્થક નથી લાગતું. અદ્યત્ત યુદ્ધના સ્વક્રીય વ્યક્તિત્વની દૃષ્ટિએ આપણે એમના સમયને ‘યુદ્ધના સમય’ તરીકે ઓળખી શકીએ-જેમ મહાવીર કે અન્ય તેવા ઐતિહાસિક પુરુષોના સમયને તેમના નામ સાથે સંબોધી શકીએ તેમ. અસ્તુ, એ તો એક અમારી સામાન્ય વિચારણા છે. ‘યુદ્ધિષ્ઠ ઇન્ડિયા’ એ શબ્દ વિદ્વાનોમાં એટલો બધો રૂઢ અને પ્રચલિત થઈ ગયો છે કે એમાં ફેરફાર થવો સુલભ નથી અને તેથી શ્રી રતિલાલના પ્રસ્તુત ગ્રંથના એ વિશેષણમાં અમે કાંઈ ખાસ ભૂલ તરીકે એનું સૂચન કરતા નથી. અમને જે ખાસ કાંઈક કહેવા જેવું લાગે છે તે પ્રી-યુદ્ધિષ્ઠ નિર્દેશમાં છે. આ ભતક કથાઓમાં જે વર્ણનો આપેલાં છે તે બધાં જ યુદ્ધ પૂર્વકાલીન હશે એમ માનવાને કશું જ કારણ નથી. બદકે એ વર્ણનસૂચિત વસ્તુસ્થિતિ યુદ્ધ પૂર્વકાલમાં કેટલે અંશે વાસ્તવિક હશે અમને તો એની જ કાંઈક શંકા છે. એ વિધાન તો આપણે ત્યારે જ કરી શકીએ જ્યારે એ ભતક કથા-સંગ્રહની રચના નિ સંદેહરીતે યુદ્ધ પૂર્વકાળમાં થએલી માની શકીએ. બાકી ખરી રીતે તો એ કથાઓમાંના વર્ણનોની કાળમર્યાદા આપણે ફેક પ્રાચીનકાળથી લઈ એમનું અતિમરૂપ જ્યારે સ્થિર થયું હોય ત્યાં સુધીની ગણવી બેઠએ. એટલે જો એનું નામ, જેમ શ્રી રતિલાલ પોતે જ પોતાની પ્રસ્તાવનામાં સૂચવે છે તેમ *Intāḥ in the Jātaks* કે એના જેવું જ કોઈ વધારે અન્વયર્થક નામ મુકયું હોત તો કદાચ વધારે સંગત થાત. અસ્તુ.

અંતે અમે એક ખાસ સૂચના શ્રી મહેતાને કરવા ઇચ્છીએ છીએ, તે એ કે, જેવી રીતે અથક પરિશ્રમ લઈ એમણે એ અમૂલ્ય ગ્રંથ ઇંગ્રેજ ભાષામાં લખ્યો છે તેવી જ રીતે એની કોઈ પ્રતિમૂર્તિ બનાવી પોતાની માતૃભાષાના બોળામાં પણ એમણે ભેટ ધરવી બેઠએ. વધારે યોગ્ય તો એ ગણાય, કે આપણા પ્રતિભાશાળી વિદ્વાન લેખકોએ, પ્રથમ પોતાની આદર્શ કૃતિઓ માતૃભાષામાં જ નિર્માણ કરવી બેઠએ અને તે પછી તેની પ્રતિમૂર્તિઓ પરભાષામાં ઢાળવી બેઠએ. તો જ આપણે આપણી ભાષાના ભંડારને સમૃદ્ધ કરી શકીએ અને સ્વભાષાનું ગૌરવ વધારી શકીએ. ઇંગ્રેજ એ આપણી રાજભાષા છે, તેમ જ આંતરરાષ્ટ્રીય ભાષા તરીકે એણે મોટી પ્રતિષ્ઠા મેળવી છે, તેથી એમાં આપણે આપણી વિશિષ્ટ કૃતિઓનાં રૂપાન્તરો આલેખિત કરીએ તે ઉચિત છે. પણ, ભૂખે મરતી પોતાની સગી માને રોટલીનું સૂકું બટકું એ ન આપીએ, અને જે આપણને અસહ્ય ગુલામ તરીકે મનમાં ગણતી હોય અને આપણી છાયા પણ સ્પર્શવા ન ઇચ્છતી હોય તેની આગળ હાથ બેડી નૈવેદ્યના થાળ ધરવાની રજા માંગવા આજીજી કરીએ, તે જેટલું તિરસ્કરણીય અને લજ્જાજનક છે, તેટલું જ સ્વભાષાની ઉપેક્ષા કરી વિદેશી વિજેતાઓની ભાષાના ચરણે પોતાનું સર્વસ્વ મુકી તેનાથી ગર્વ ધારણ કરવું તિરસ્કરણીય અને લજ્જાજનક હોવું બેઠએ. ગુર્જરભૂમિ અને ગુર્જર-ભાષાની નવજ્યોતિને પ્રજ્વલિત કરવાની અસિદ્ધાવાધાના ગુર્જર મુવક વિદ્વાનો એ આજ્ઞા સફળ કરે.

-ચિન ચિન્ન

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच. डी. नियामक; तथा श्रीमुंगलाल गोएनका अध्यापक, संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र
२. पं० मोतीराम शास्त्री, मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला
३. पण्डित बी. एल. शाम्भोग

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जित विजयजी मुनि

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीदुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य
२. श्री २० डी० पुसालकर, एम. ए., एलएल. बी.
श्रीस्वामीनारायण व्याख्याता, भागवत धर्म
३. श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम. ए., एलएल. बी.
श्रीगोवर्धनदास सुन्दरदास भागवतधर्म रीसर्च फेलो

जैन वाङ्मय

- श्री अ० स० गोपाणी, एम. ए.
सर कीकाभाई प्रेमचंद अध्यापक - जैनशास्त्र

भारतीय इतिहास

- श्री शिवदत्त ज्ञानी, एम. ए.
श्रीरामेश्वरदास विटला अध्यापक, भारतीय इतिहास

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या - ग्रन्थावली

*

उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत - सं० श्री जिन विजयजी मुनि

प्राचीन गुजराती गद्यनिर्देशन :- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत ,,

ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल; सं० डॉ० मणिलाल पटेल

विमुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी

नाणपंचमीकहा - [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय] } सं० श्री
रिष्टसमुच्चय - [दुर्गदेवकृत ,, ,,] } अ० स० गोपाणी

भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

*

BHARATIYA VIDYA (JOURNAL OF THE B. V. B.)

Editor Dr. Manilal Patel Ph. D.

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA

by Dr. Manilal Patel

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT

by Shri Durgashanker K. Shastri

assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS

by Shri A. D. Pusalkar

—XX—

Printed by Ramchandra Yesu Shedde, at the Nirnaya Sagar Press,
26-28, Kolbhat Street, Bombay.

Published by DR. MANILAL PATEL, Director, Bharatiya Vidya Bhavan,
Audhori, Bombay.

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] ऑगस्ट, ई० स० १९४० * श्रावण, संवत् १९९७ [अंक ३



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-०

❁

वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक]



[इंग्रेजी पाष्मासिक

संपादक मण्डल

श्रीमान् क० मा० मुंशी बी. ए. एलएल. बी. एम्. एल. ए.

[निवृत्त गृहमंत्री तथा न्यायसचिव, बंबई गवर्नमेंट]

दीवान-बहादुर श्री कृ० मो० झवेरी एम्. ए. एलएल. बी.

[निवृत्त न्यायनृति, हाईकोर्ट, बंबई]

डॉ० आइ. जे. एस्. तारापोरवाला बी. ए. पीएच. डी. बार-एड्मन्ट्स

प्रो० व० प्रा० भट्ट एम्. ए. (बंबई); बी. ए. (केंष्टब)

श्री जिन विजयजी मुनि (प्रधान संपादक, हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक)

डॉ० मणिलाल पटेल पीएच. डी. (प्रधान संपादक, इंग्रेजी पाष्मासिक)

*

भारतीय विद्या

वर्ष १]

श्रावण, सं० १९९६

[अंक ३]

लेखानुक्रम

- (१) राजर्षि कुमारपाल (सम्पादकीय निबन्ध) २२१
- (२) श्रीमद् भागवत पुराण
ले० श्रीयुत दुर्गाशंकर के. शास्त्री. २४७
- (३) एक चर्चाविषयक मुलासो (संपादकीय नोंध) २५१
- (४) अपभ्रंश कविओ—चतुर्मुख स्वयंभू अने त्रिभुवन स्वयंभू
ले० प्रो० मधुसूदन मोदी, एम. ए. एलएल. बी. २५३
- (५) कवि शामळनी सर्वोत्तम कृति
ले० श्रीयुत प्रेमशंकर ह. भट्ट. एम. ए. २९५
- (६) मध्यकालीन गूजरातमां नाटक
ले० श्रीयुत भोगीलाल ज. मांडेसरा. ३०७
- (७) हिंदुनं इतिहास साहित्य—एक दृष्टि
ले० श्रीयुत कनैयालाल मा. मुनशी, बी. ए. एलएल. बी. ३१२
- (८) ग्रन्थावलोकन—अकलंक ग्रन्थ त्रयम्
श्रीयुत अमृतलाल म. गोपाणी, एम. ए. ३२०
- (९) पृथ्वीराजरासामां श्रष्ट पाठवाली एक प्राकृत गाथा
(--सम्पादकीय) ३२३

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नियमावली

- (अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः माघ, वैशाख, श्रावण और कार्तिक मासके अन्तमें होता है।
- (आ) 'भारतीय विद्या'में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।
- (इ) 'भारतीय विद्या'में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्व-ज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।
- (ई) 'भारतीय विद्या'की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश भाषाओंमें ग्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।
- (उ) 'भारतीय विद्या'में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठोंसे छोटा न हो तो) २० प्रतिया अविक छपवा कर उन्हें भेंट दी जायगी।
- (ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकों करना होगा।
- (ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि—'भारतीय विद्या'में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जाय वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिये। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखाने रहना चाहिये। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों।
- (ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यतायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।
- (ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार—'संपादक-भारतीय विद्या' इस नामसे करना चाहिये और ग्राहक वर्गमें होनेके विषयका पत्र-व्यवहार—'संस्त्री, भारतीय विद्या भवन' इस नामसे करना चाहिये।
- (औ) 'भारतीय विद्या'—**BHARATIYA VIDYA**—इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो पाष्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४-०-० है।



મારતીય વિદ્યા

પ્રથમ અપ. તૃતીય અંક]

[વૈશાખ, વિ.સં. ૧૯૧૦

રાજર્ષિ કુમારપાલ

[સંપાદકીય નિવંધ]

કુમારપાલરાજાનું જીવન ગુજરાતના ઇતિહાસમાં એક અનેક સ્થાન ભીંગે છે. કેવળ ગુજરાતના ઇતિહાસમાં જ નહિ આખા એ ભારતના ઇતિહાસમાં પણ તેનું વિશિષ્ટ સ્થાન જોઈ શકાય છે. તેનું જીવન એક સાધારણ રાજા જીવન જેવું સામાન્ય ન હતું. તેના માટે અનેક અસાધારણતાઓ હતી. તેનું જીવનની દિવ્ય-નાય એવી અર્ધી દશાઓ તેના જીવનસાથી સંકળાયેલી હતી. મુખ્ય અને દુઃખની અનેકવિધ અતુલ્યતાઓ તેના આત્માને સંસ્કાર થયેલી હતી. તેનું જીવન એક મહાકાવ્ય જેવું હતું જેમાં શૂરા, હાસ્ય, કરુણ, રોદ, વીર, ભયાનક ધીરસ, અદ્ભુત અને શાન્ત એમ ત્રણે રસોનો પરિપાક થયેલી હતો. માધુર્ય, યોગ્ય અને પ્રગાઠ એ ત્રણે ગુણો તેની જીવનકવિતામાં આંતર્યા થયા હતા. સુકુલજન્મ દૈવદ્રોષ દુરુચિયોગ, દેશનાય, સંકટસહન, સાહાય્ય-અસાહાય્ય, શુધા-તૃષા પીડન, બીજાયાયન, હર્ષ-શોકપ્રસંગ, અરણ્યાદિ પરિશ્રમાણુ, અવિતાપત્તિ, રાજ્યપ્રાપ્તિ, યુદ્ધપ્રવૃત્તિ, શત્રુસંહાર, વિજયયાત્રા, નીતિ પ્રવર્તન, ધર્મપાલન, અવ્યુદયારોહણ અને અનેક અનિચ્છિતભાવે મરણઃ કલ્યાણિ કલ્યાણિ એક મહાખ્યાયિકાના વિવિધ વર્ણન માટે આવશ્યક એવી સર્વ રસોત્પાદક સામગ્રી,

૧. ગતવર્ષ (૧૯૧૦) માં એક માસમાં ગાળા માર્ગે જીવવામાં આવેલા હૈમચાર્યના સંગ્રહ પ્રસંગ ઉપર લેવામાં આવેલા નિવંધ

તેની જીવનાજ્યાયિકામાં અંતર્ગ્રંથિત થઈ હતી. કાવ્યમીમાંસકોએ ઉત્તમકાવ્યની સૃષ્ટિ માટે કાવ્યશાસ્ત્રમાં જે એક ધીરોદાત્ત નાયકની રમ્ય વર્ણના કરેલી છે તેનો તે યથાર્થ આદર્શ હતો. મનુષ્યજીવનમાં અનુભવાતી અપકર્ષ અને ઉત્કર્ષની ભિન્ન ભિન્ન પરિસ્થિતિઓનું તેના એ એક જ જીવનમાં વિચિત્ર સમ્મેલન થયું હતું. તેના એવા એ અસાધારણ જીવનનો પૂર્ણ ઇતિહાસ આપણને ઉપલબ્ધ નથી. જે કાંઈ ઐતિહાસિક સામગ્રી ઉપલબ્ધ છે તે અપૂર્ણ, અસ્તવ્યસ્ત અને થોડીઘણી અતિશયોક્તિવાળી છે. છતાં એ સામગ્રીમાંથી, ગુજરાતના બીજા કોઈ પણ રાજા કરતાં વધારે વિસ્તૃત અને વધારે પ્રમાણભૂત ઇતિહાસ તેના જીવનમાટે ઉપલબ્ધ કરી શકાય છે. ગુજરાત બહારના પણ બીજા કોઈ તેવા પુરાતન ભારતીય રાજાનો તેટલો વિસ્તૃત જીવન-ઇતિહાસ ઉપલબ્ધ થવો શક્ય નથી. એ સામગ્રી ઉપરથી તેના કુલ, વંશ, જન્મ, બાલ્યાવસ્થા, યૌવનાવસ્થા, દેશાટન, સંકટસહન, રાજ્યપ્રાપ્તિ, રાજકારભાર, ધર્માચરણ વગેરે વગેરે અનેક બાબતોની યથાર્થ માહિતી આપણને મળે છે. તેના રાજ્યના પ્રધાન પુરુષો, નામાંકિત પ્રજાજનો, ધર્મગુરુઓ અને વિદ્વાનો આદિ બીજા અનેક વ્યક્તિઓનો પણ ઘણો ઘણો પરિચય એ સામગ્રીદ્વારા આપણે મેળવી શકીએ છીએ. તેણે કરેલા લોકોપયોગી અને ધર્મોપયોગી કાર્યોની દીક જેવી રૂપરેખા પણ આપણે એમાં જોઈ શકીએ છીએ. હું અહિંયા એ રૂપરેખાનું કેટલુંક વિશિષ્ટ દર્શન આપને આજે કરાવા માંગું છું.

ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ કુમારપાલના રાજજીવનનું જે રેખાચિત્ર હું અહિં આલેખવા ઇચ્છું છું તેની સામગ્રી પ્રમાણભૂત અને સર્વથા વિશ્વાસપાત્ર છે. એ સામગ્રી મુકી જનારા, પ્રાયઃ કુમારપાલના, વધતા યા ઓછા, પણ ખાસ પરિચયમાં આવેલા પુરુષો છે. એમાં જે મુખ્ય સૂત્રધાર છે તે તો ખુદ કુમારપાલના પરમ ગુરુ અને ગુજરાતના સમગ્ર વિદ્વાનોના મુકુટમણિ આચાર્ય હેમચંદ્ર છે. હેમચંદ્રાચાર્યના વ્યક્તિત્વ અને કૃતિત્વ વિષે, હવે ઘણું ઘણું કહેવામાં આવ્યું છે તેથી તેનું પુનરાવર્તન કે પિછપેણુ કરવાની આવશ્યકતા નથી. **સંસ્કૃતદ્વયાશ્રય** કાવ્યના છેલ્લા પાંચ સર્ગોમાં અને **પ્રાકૃતદ્વયાશ્રય**ના ૮ સર્ગોમાં એ આચાર્યે કુમારપાલનું કાવ્યમય જીવનચિત્રણ કર્યું છે. હેમચંદ્રનું એ ચિત્રણ કુમારપાલના રાજ્યાભિષેકથી જ શુરુ થાય છે એમાં ઐતિહાસિક ઘટનાઓનું સૂચન તો નહિ જેવું જ છે, પણ એના રાજજીવનનું રેખાંકણ કરવા માટેની સાધનસામગ્રી સારા પ્રમાણમાં સમાએલી છે. હેમાચાર્ય કેવળ કવિકલ્પનાનાં આકાશી ચિત્રો નથી આલેખતા. જે દ્વયાશ્રયપદ્ધતિનું એ કાવ્ય છે તેમાં એવાં કલ્પનાચિત્રો દોરવા માટેની મૂળ ભૂત એવી શબ્દ સામગ્રી જ નથી. એ કાવ્યમાં અર્થાનુસારી શબ્દરચના નથી પરંતુ શબ્દાનુસારી અર્થરચના છે. જે જાતના શબ્દપ્રયોગો વ્યાકરણના ક્રમમાં આલ્યા આવ્યા તે જાતના શબ્દોમાં બંધ એસે તેવો અર્થ તેમણે કુમારપાલના રાજજીવનના ઇતિહાસમાંથી પોતાના વર્ણન માટે તારવી લીધો અને તેને શ્લોકબદ્ધ કરી દીધો. એટલા જ અંશમાં એ કાવ્યનું ખાસ કવિત્વ છે. બાકી એનામાં કવિતાની સરસતાની દૃષ્ટિએ કહેવાય તેવી વિશિષ્ટ વિભૂતિ નથી. પણ આપણને તો આપણા પ્રસ્તુત વિષયની દૃષ્ટિએ એ કાવ્યવિભૂતિ કરતાં આ રુક્ષ શબ્દરચના જ વધારે ઉપયોગી છે.

હેમચંદ્રાચાર્યે કરેલું કુમારપાલ વિષેનું બીજું વર્ણન ત્રિષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર-માંના છેલા મહાવીરચરિત્રમાં છે. એ ચરિત્રની રચના હેમાચાર્યે કુમારપાલની પ્રાર્થનાથી જ કરી હતી અને તે તેમના જીવનની છેલ્લી કૃતિ છે.

કુમારપાલે જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરી, તેના આચરણરૂપે શું શું કર્યું તેનું બહુ જ ટુંકું પણ સારભૂત વર્ણન એ ગ્રંથમાં ગુંફિત કરવામાં આવ્યું છે.

હેમચંદ્રાચાર્ય પછીની બીજી કૃતિ તે મોહરાજપરાજય નામના નાટકરૂપે છે. એ નાટક, કુમારપાલના ઉત્તરાધિકારી અજયપાલ યા અજયદેવના જ એક રાજ્યાધિકારી મોઢવંશીય મત્રી યશ:પાલનું અનાવેલું છે. કુમારપાલના મૃત્યુપછી માત્ર એ ત્રણ વર્ષની અંદર જ એ નાટક રચવામાં આવ્યું, અને ગુજરાત અને મારવાડની સરહદ ઉપર આવેલા થારાપદ-હાલના થરાદ-નગરના કુમારવિહાર નામના જૈનમંદિરમાં મહાવીરસંઘથી યાત્રા-મહોત્સવના પ્રસંગે લખવામાં આવ્યું. કુમારપાલે જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરી, પોતાના રાજ્યમાંથી જીવહિસા, શિકાર, જુગાર અને મદ્યપાન આદિ જે દુર્વ્યસનોનો રાજસાપૂર્વક નિષેધ કરાવ્યો હતો તે વસ્તુને રૂપક આપી આ નાટકની રચના કરવામાં આવી છે. એ નાટકની સંકલના હૃદયંગમ અને કલ્પના મનોહર છે. એમાં સ્પષ્ટ એવો ઐતિહાસિક ઉલ્લેખ કર્યો નથી પણ ગર્ભિતરૂપે એવા ઉલ્લેખોમાટેનું કેટલુંય વિશિષ્ટ સૂચન છે જે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ઉપયોગી થઈ પડે તેમ છે, અને તે તદ્દન પ્રમાણભૂત ગણી શકાય છે.

ત્રીજી કૃતિ તે સોમપ્રભાચાર્યકૃત કુમારપાલ પ્રતિબોધ નામે છે. કુમાર-પાલના મૃત્ય પછી ૧૧ વર્ષ, પાટણમાં જ, કુમારપાલના રાજકવિ તરીકે ઓળખાતા મહાકવિ સિદ્ધપાલના ધર્મસ્થાનમાં એ ગ્રંથની રચના પૂરી થઈ હતી. ખુદ હેમચંદ્રાચાર્યના જ મહેન્દ્ર, વર્ધમાન અને ગુણચંદ્ર નામના એ ત્રણ પ્રસિદ્ધ શિષ્યોએ એ ગ્રંથને આઘત સાંભળ્યો હતો. આ ગ્રંથ છે તો બહુ મોટો-કોઈ ૧૨ હજાર જેટલા શ્લોકનો-પણ એમાં ઐતિહાસિક વિગત માંડ માંડ ૨૦૦-૨૫૦ શ્લોક જેટલી મળી આવે છે. એ ગ્રંથકારનો ઉદ્દેશ, કુમારપાલનો જીવનઈતિહાસ લખવાનો ન હતો, પણ જે જાતની ધર્મકથાઓના ળોધ દ્વારા હેમાચાર્યે કુમારપાલને જૈનધર્માભિમુખ અનાવ્યો હતો, તેને અનુલક્ષીને તે જાતની કથાઓનો એક સંગ્રહગ્રંથ અનાવવાનો તેનો પ્રયત્ન હતો અને એ વાતનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ ગ્રંથકાર, ગ્રંથની શુરુઆતમાં કરી પણ દે છે. તે કહે છે કે-“આ જમાનામાં હેમચંદ્રસૂરિ અને કુમારપાલ રાજા બંને અસંલવ-ચરિત્રવાળા પુરુષો થયા છે. એમણે જૈનધર્મની આવી મહાન પ્રભાવના કરીને કલિયુગમાં સત્યયુગનો અવતાર કર્યો છે. જો કે આ બંને પુરુષોનું જીવનચરિત્ર ઘણી ઘણી રીતે મનોહર છે પણ હું તો માત્ર અહિં જૈનધર્મના પ્રતિબોધના સંબંધે જ કાંઈક કહેવા ચાહું છું.” આ રીતે એ ગ્રંથનો ઉદ્દેશ જુદી જાતનો હોવાથી એમાં આપણે ઐતિહાસિક વિગતોની વિશેષ આશા ન રાખી શકીએ; છતાં પ્રસંગવશ એમાં પણ કેટલીક એવી મહત્વની વિગતો મળી આવે છે જે કુમારપાલનું રેખાચિત્ર દોરવામાં કેટલેક અંશે સહાયભૂત થઈ પડે છે.

આ ત્રણે સમકાલીન-અથવા છેવટે જેમણે કુમારપાલના રાજકારભારને નજરે તો ચોક્કસ જોયો હતો,-એવા પુરુષોનાં લખાણોનો જ મુખ્ય આધાર મેં આજના આ નિબંધમાં લીધો છે. અને કવચિત્ જ્યાં પાછળના લખાણોનો આધાર લેવામાં આવ્યો છે તે મળ હકીકતને સાધાર બતાવવા પુરતો જ છે.

કુમારપાલના ધાર્મિક જીવન વિષે આપણા દેશના લોકોમાં,- ઇતિહાસના અભ્યાસી ગણાતા વિદ્વાનોમાં ય-એક જાતની અજ્ઞાનતા કે ગેરસમજીતી રહેલી જોવાય છે. કુમારપાલે હેમચંદ્રાર્ચના ઉપદેશને અનુસરી જૈનધર્મનો સંપૂર્ણ સ્વીકાર કર્યો હતો અને પોતે પરમાર્હન બન્યો હતો એ સત્યવસ્તુ કેટલાક સંકીર્ણ માનસવાળા અર્જન વિદ્વાનોને રુચિકર લાગતી નથી અને તેથી તેઓ એ વસ્તુનો અસ્વીકાર કરવા-કરાવવા ભ્રમપૂર્ણ લેખો વગેરે લખતા જોવામાં આવે છે. પરંતુ કુમારપાલના જૈનત્વવિપેની વાત એટલી જ સાચી છે જેટલી તેના અસ્તિત્વ વિપેની હોઈ શકે છે. એ વિપેની માહિતી આપનારી સામગ્રી એટલી બધી સ્વયંપ્રતિષ્ઠિત છે કે જેની સાબીતી પુરવાર કરવા માટે બીજી કશી સાબીતીની જરૂર રહેતી નથી. યુરોપિઅન સ્કોલરોએ એ વાત ધ્યાનની ય સિદ્ધ કરી મુકી છે. પણ આપણા લોકોની ધાર્મિક સંકીર્ણતા ઘણી વખતે આપણને સત્યદર્શન થવા દેતી નથી અને તેથી આપણે અનેક રોગોના ભોગ થઈએ છીએ. કુમારપાલ જૈન હોય તો શું અને શૈવ હોય તો શું- મારા મને તેમાં કશું વિશેષત્વ નથી. મારા મને મહત્ત્વ છે તેના વ્યક્તિત્વનું. સિદ્ધરાજ જૈન બન્યો ન હતો પણ ચુસ્ત શૈવ જ રહ્યા હોતો તેથી સિદ્ધરાજનું મહત્ત્વ જો હું ન સમજી શકું તો મારામાં સારાસારની વિવેકબુદ્ધિનું દીવાળું જ નીકળેલું હું માનું. અમુક વ્યક્તિ અમુક ધર્માનુયાયી હતી એટલામાત્રથી જ તેના વ્યક્તિત્વને સમજવાની અને અપનાવવાની જો આપણે બેદર-કારી બતાવીએ તો તેથી આપણે આપણી જાતનું-રાષ્ટ્રીયતાનું જ અહિત કરીએ છીએ. શૈવ હો કે વૈષ્ણવ હો, બૌદ્ધ હો કે જૈન હો-ધર્મથી ગમે તે હો-જેણે જેણે આપણી પ્રજાની ઉત્થતિ અને સંસ્કૃતિમાં જે જે કાંઈ વિશિષ્ટ ફાળો આપ્યો છે તે બધા જ આપણા ઉત્કર્ષક અને સંસ્કારક પુરુષો હતા. એ પુરુષો આપણી પ્રજાની સંયુક્ત અચળ સંપત્તિ છે. એમના ગુણોનું જો યથાર્થ ગૌરવ આપણે ન કરીએ તો આપણે એક પ્રજાતંત્રીકે નાલાયક દરીએ. શૈવ, બૌદ્ધ, જૈન એ બધા મનો એક જ આર્યતત્ત્વજ્ઞાનરૂપ મહાવૃક્ષની જુદી જુદી દાર્શનિક શાખાઓ જેવા છે. વૃક્ષની વિભૂતિ એની શાખાઓને લઈને છે. જ્યાં સુધી વૃક્ષસજીવ છે ત્યાં સુધી તેમાં શાખા-પ્રશાખાઓ નીકળે જ જવાની. શાખા-પ્રશાખાઓ નીકળતી બંધ થઈ એટલે વૃક્ષના જીવનનો અંત આવ્યો. ધર્માનુયાયીઓ અને મુમુક્ષુઓ બધા પક્ષી જેવા છે. શાન્તિ અને વિશ્રાંતિની ખાતર એ બધા એવા મહાવૃક્ષનો આશ્રય લે છે. જેને જે શાખા ઠીક અને અનુકૂળ આવે તે પક્ષી તે શાખાનો આશ્રય લે છે અને આરામ મેળવે છે. જેમ કોઈ એક પક્ષીને અમુક શાખા અનુકૂળ ન આવે તો, તે, તે શાખાને છોડીને બીજી શાખાનો આશ્રય ખોળે છે, તેમ વિચારશીલ મનુષ્યને પણ જો કોઈ એક ધર્મવિચાર અનુકૂળ ન આવે તો તે ધર્માતર કરે છે અને પોતાની મનઃસમાધિ મેળવે છે. કુમારપાલે જે ધર્માન્તરનો સ્વીકાર કર્યો હતો તે આવી જ

મનઃસમાધિ મેળવવા માટે. સાત્ત્વિકભાવે કરેલો ધર્માતર એ દોષરૂપ નથી પણ ગુણરૂપ છે. એવા ધર્માતરથી નવીન બળ અને ઉત્સાહનો સંચાર થાય છે. પ્રજાની માનસિક અને નૈતિક ઉન્નતિ થાય છે. જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરીને કુમારપાલે પોતાની પ્રજાનું જે અનન્ય કલ્યાણ કર્યું તે, તે બીજી રીતે ન કરી શક્યો હોત. તેના ધર્માતરે પ્રજાનો પરસ્પરનો ધાર્મિક વિદ્રેષ ઓછો કર્યો અને સામાજિક ઉત્કર્ષ વધાર્યો. અને ખરીરીતે તો એ જમાનામાં, ધર્માતર વિષેની જે સંકીર્ણ વિચારશ્રાવણી આજે દેખાય છે તેવી હતી જ નહિ. સામાજિક દૃષ્ટિએ ધર્માતર કશું વિશેષત્વ નહોતું ધરાવતું. જૈન અને શૈવ બંને ધર્મો ગુજરાતના અનેક પ્રતિષ્ઠિત કુટુંબોમાં સરખીરીતે પળાતા હતા. કોઈ ઘરમાં પિતા શૈવ હતો તો પુત્ર જૈન હતો અને કોઈ ઘરમાં સાસુ જૈન હતી તો વહુ શૈવ હતી કોઈ ગૃહસ્થનું પિતૃકુળ જૈન હતું તો માતૃકુળ શૈવ હતું અને કોઈનું માતૃકુળ જૈન હતું તો પિતૃકુળ શૈવ હતું. એમ ગુજરાતનો આખો ય વૈશ્ય વર્ગ પરસ્પર બંને ધર્માનુયાયી હતો. તેથી આવું ધર્માતર ગુજરાતના સભ્ય સમાજમાં બહુ જ સામાન્ય હતું. રાજકારભારમાં પણ બંને ધર્માનુયાયીઓનો સરખો દરજ્જો અને સરખો ફાળો હતો. કોઈ વખતે જૈન મહામાત્યના હાથમાં રાજ્યનાં સર્વ સૂત્રા આવતાં તો કોઈ વખતે શૈવ મહામાત્યના હાથમાં. પણ એથી કોઈ પણ પ્રકારની રાજનીતિમાં ફેરફાર નહોતો થતો. શંવોની અને જૈનોની કોઈ જુદી જાતની સમાજરચના ન હતી. સામાજિક વિધિ-વિધાનો નિયમપ્રમાણે બધા શ્રદ્ધાળુ દ્વારા જ થતા. શૈવ કુટુંબોની કે જૈનકુટુંબોની કુલદેવતાઓ એક જ હતી અને તે કુલદેવતાઓનાં પૂજન-અર્ચન અને કુટુંબોવાળા કુળપરંપરાના નિયમપ્રમાણે નાથે સાથે અને એક જ રીતે કરતા. આમ બંને ધર્મોવચ્ચે સામાજિક દૃષ્ટિએ તો સર્વથા અભેદ જ હતો. માત્ર ધર્મભાવના અને ઉપાસ્યદેવની દૃષ્ટિએ પરસ્પર થોડોક ભેદ હતો. શંવો પોતાના ઇષ્ટદેવ શિવની ઉપાસના અને પૂજા-સેવા કરતા; જૈનો પોતાના ઇષ્ટદેવ જિનની પૂજા-અર્ચા કરતા. શિવપૂજકોના કેટલાક વર્ગમાં મદ્ય માંસનું સેવન ત્યાગ્ય નહોતું ગણાતું ત્યારે જૈનોમાં એ વસ્તુ સર્વથા ત્યાગ્ય મનાતી. કોઈ પણ શૈવ જો જૈન થાય તો તેનો મુખ્ય અર્થ જ એ મનાતો કે તેણે મદ્ય અને માંસનો સર્વથા ત્યાગ કર્યો. અને તેમ કરી તેણે જીવહિંસા ન કરવાનો મુખ્ય જન નિયમ લીધો. મુખ્ય રીતે ગુજરાતના શૈવ અને જૈન એ બંને પ્રજાધર્મ હતા. અલબત્ત, રાજધર્મ સામાન્યરીતે શૈવ જ ગણાતો. ગુજરાતના રાજાઓના ઉપાસ્યદેવ શિવ હતા. રાજપુરોહિત શિવધર્મી નાગર બ્રાહ્મણ હતા અને રાજગુરુ શિવોપાસક તાપસ હતા. પરંતુ અણહિલપુરના સંસ્થાપક વનરાજ આવગથી લઈ કર્ણવાઘેલા સુધીના ગુજરાતના હિંદુરાજત્વકાળમાં, જૈનધર્માનુયાયીઓનો સામાજિક દરજ્જો સૌથી ઉંચા પ્રકારનો હતો અને જૈનો પ્રજાવર્ગના પ્રતિષ્ઠિત અગ્રણી હતા તથા રાજકારભારમાં પણ તેમનો હિસ્સો સૌથી અધિક હતો. તેથી રાજાઓ શૈવ હોઈને પણ જૈનધર્મ તરફ પણ તોટલી જ આદરની દૃષ્ટિ રાખતા. જૈન વિદ્વાન આચાર્યો રાજાઓ પાસે સતત આવતા જતા અને રાજાઓ પણ તેમને પોતાના ગુરુઓના જેટલો જ આદર આપતા. કેટલીક વખતે તો રાજકુટુંબોમાંથી પણ કોઈ કોઈ વ્યક્તિ જૈનધર્મની સન્યસ્ત દીક્ષા ધારણ કરતી. અનેક રાજપુત્રો જૈન આચાર્યોપાસે વિદ્યાગ્રહણ

કરતા. એમ રાજાઓ જૈનો સાથે પ્રાયઃ સર્વ પ્રકારના નિકટ સંબંધમાં રહેતા હતા તેથી તેમના મનમાં ધર્મસંબંધી તેવો કશો વિશેષ ભેદભાવ નહોતો રહેતો. શૈવધર્મના આદર્શ પ્રતિનિધિસમો સિદ્ધરાજ પણ જૈન સંબંધીથી તેટલો જ સંકળાએલો હતો. સિદ્ધ-પુરમાં રુદ્રમહાલય સાથે તેણે રાયવિહાર નામનું આદિનાથનું જૈનમંદિર પણ ણંધાવ્યું હતું. ગિરનારપર્વત ઉપર નેમિનાથનું જે મુખ્ય જૈન મંદિર આજે વિદ્યમાન છે તે પણ સિદ્ધરાજની ઉદારતાનું કાર્ય છે. સોમનાથની યાત્રા સાથે ગિરનાર અને શત્રુંજયના જૈન તીર્થોની યાત્રા પણ સિદ્ધરાજે તેવા જ ભાવથી કરી હતી અને શત્રુંજય તીર્થના નિર્વાહમાંટે ૧૨ ગામોનું વર્ષાસન બાંધી આપવા તેણે પોતાના મહામાત્ય અશ્વાકને આજ્ઞા કરી હતી. આથી સમજી શકાય છે કે સિદ્ધરાજ કાંઈ જૈન ધર્મ સાથે ઓછી મમતા નહોતો ધરાવતો. તેનામાં અને કુમારપાલમાં જે તફાવત હતો તે એ કે સિદ્ધરાજ પોતાના મનમાં શૈવ ધર્મને મુખ્ય માનતો હતો અને જૈન ધર્મને ગાંજી માનતો હતો ત્યારે કુમારપાલ પોતાના પાછલા જીવનમાં જૈનધર્મને મુખ્ય માનતો થયો હતો. સિદ્ધરાજના ઈષ્ટદેવ આખરસુધી શિવ જ હતા ત્યારે કુમારપાલના ઈષ્ટદેવ અતિમ જીવનમાં જિન થયા હતા. તેણે દેવતરીકે જિનને અને ગુરુતરીકે આચાર્ય હેમચંદ્રને પોતાના કલ્યાણકારક આત્મપુરુષ માન્યા હતા, અને અહિસાત્રણોધક ધર્મને તેણે પોતાના મોક્ષદાયક ધર્મ તરીકે શ્રદ્ધાપૂર્વક સ્વીકાર્યો હતો; અને એ રીતે તે પોતે જૈન ધર્મનો એક આદર્શ પ્રતિનિધિ બન્યો હતો. આટલું પૂર્વભૂમિકા તરીકે કહી હવે હું કુમારપાલના રાજજીવનનું કેટલુંક રેખાચિત્ર આપની આગળ રજુ કરવા ઇચ્છું છું.

કુમારપાલનું રાજજીવન. ઘણીક રીતે, મૌર્યસમ્રાટ અશોકના રાજજીવન સાથે મળતું આવે છે. રાજગાદી ઉપર આવ્યા પછી જેમ અશોકને અનિચ્છાએ શત્રુ રાજાઓ સાથે લડવાની ફરજ પડી હતી તેમ કુમારપાલને પણ અનિચ્છાએ જ પ્રતિપક્ષી રાજાઓ સાથે લડવાની ફરજ પડી હતી. અશોકના રાજગાદી પર બેઠા પછી પણ ત્રણેક વર્ષ સુધી તેનું રાજ્ય થાળે નહોતું પડ્યું, તેમ કુમારપાલનું રાજ્ય પણ ત્રણેક વર્ષ સુધી થાળે નહોતું પડ્યું. અશોકને જેમ રાજસિંહાસન ઉપર આવ્યા પછી ૭-૮ વર્ષસુધી શત્રુઓને વિજિત કરવામાં વ્યથ રહેવું પડ્યું તેમ કુમાર-પાલને પણ એટલો સમય શત્રુઓ સાથે બાથ લીડવામાં લાગ્યા રહેવું પડ્યું હતું. આમ આઠ-દશ વર્ષસુધી વિચલો ચલાવી શત્રુઓને પરાજિત કર્યા પછી. જીવનના શેષ ભાગમાં, જેમ અશોકે પોતાની પ્રજાની નૈતિક અને સામાજિક ઉન્નતિ થાય તે માટે અનેક રાજસાઓ જાહેર કરી આખાથે રાજ્યમાં શાન્તિ અને આખાદી ફેલાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો હતો, તેમ કુમારપાલે પણ તેવો જ પ્રયત્ન આદર્યો હતો. અશોક જેમ પૂર્વાવ-સ્થામાં શૈવ હતો અને પછી બૌદ્ધ થયો તેમ કુમારપાલ પણ પ્રથમ શૈવ હતો અને પછી જૈન થયો. જેમ અશોકે બૌદ્ધ ધર્મનો સ્વીકાર કરી તે ધર્મના પ્રસાર અર્થે પોતાનું સર્વ સાત્ત્વિક સામર્થ્ય ખર્ચ કર્યું તેમ કુમારપાલે પણ જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરી તેના પ્રચાર અર્થે પોતાની સાત્ત્વિક શક્તિનો પૂરેપૂરો ઉપયોગ કર્યો. અશોકે જેમ બૌદ્ધધર્મપ્રતિપા-દિત શિક્ષાપદ આદિ ઉચ્ચ પ્રકારના ધાર્મિક નિયમોનો ભાવુક થઈ સ્વીકાર કર્યો અને તેમ કરી તે પરમ સુગતોપાસક બન્યો તેમ કુમારપાલે પણ જૈનધર્મમાં ઉપદેશેલા

ગૃહસ્થજીવનને આદર્શ બનાવવામાટે આવશ્યક એવા આજીવતાદિ નિયમોનો શ્રદ્ધાળુ થઈ સ્વીકાર કર્યો અને તેથી તે જૈનોમાં પરમાર્હત બન્યો. અશોકે જેમ પ્રભમાંથી દુર્વ્યસનો દૂર થાય તે માટે અનેક ધર્માજ્ઞાઓ જાહેર કરી તેવી જ રીતે કુમારપાલે પણ પોતાના રાજ્યમાંથી દુર્વ્યસનોના નિવારણ માટે અનેક રાજજ્ઞાઓ જાહેર કરી. અશોકે જેમ બૌદ્ધ ધર્મની પૂજા માટે અનેક સ્તૂપો ઉભા કરાવ્યા તેવી જ રીતે કુમારપાલે પણ જૈનધર્મની પૂજા ખાતર અનેક જૈન વિહારો બંધાવ્યા. અને એ બધા ઉપરાંત કુમારપાલે જે એક વિશિષ્ટ પ્રજાહિતકર આદેશ જાહેર કર્યો હતો—કે જે કદાચિત્ અશોકે પણ નહિ કર્યો હોય—તે એ કે પ્રાચીનકાળથી ચાલી આવેલી રાજનીતિ પ્રમાણે નાવારસ મરી જનાર પુરુષની સઘળી સંપત્તિ રાજ લઈ લેતો હતો અને તેના લીધે મરનારના સ્ત્રી—માતા આદિ કુટુંબીજનો અનાથદશાના ભોગ થઈ મૃત્યુ કરતાંયે વધારે કષ્ટકારક વિટંબનાઓના ભોગ થતા હતા, અને અનેક અનાથ અબળાઓ આક્રૂર રાજનીતિથી પીરિત થઈ જીવતી મુશ્કા સમાન થઈ જતી હતી. દાઝયા ઉપર ડામદેવા જેવી એ અતિ નિષ્ઠુર રાજનીતિનો કુમારપાલે પોતાના રાજ્યમાં સર્વથા પ્રતિષેધ કર્યો હતો.

કુમારપાલને આ નીતિની નિષ્ઠુરતાનો કેવી રીતે ભાસ થયો અને કયા કારણે એણે એ નીતિનો બહિષ્કાર કર્યો તેનું વર્ણન ડેમાચાર્ય દ્વયાશ્રયમાં આ પ્રમાણે કરે છે.

એક રાત્રે રાજ પોતાના મહેલમાં સૂતો હતો ત્યારે દરથી એક સ્ત્રીનું બહુ જ કરુણરૂદન તેના કાનને સંભળાયું. રાજ એ હકીકત જાણવામાટે, જાતે તપના ચોકી-દારનાં નીલવર્ણા વસ્ત્રા પહેરી મહેલમાંથી બહાર નીકળ્યો અને કોઈ ન જાણે તેવી રીતે ફરતો ફરતો જ્યાંથી એ અવાજ આવતો હતો ત્યાં ગયો. જુએ છે તો એક ઝાડનીચે એક સ્ત્રી પાસે ખાઈ મરી જવાની તૈયારી કરી રહી છે અને રડી રહી છે. રાજ ધીમેથી એની પાસે જઈ મીઠા અને આદર ભરેલા શબ્દોથી શી વાત છે તે પૂછવા લાગ્યો. વિશ્વાસપામીને સ્ત્રીએ કહ્યું કે ‘મારો પતિ યુવાવસ્થામાં પ્રદેશથી આ શહેરમાં વ્યાપાર કરવા અર્થે આવ્યો હતો અને મને પણ સાથે લાવ્યો હતો. આ સુરાજ્યવાળા શહેરમાં વ્યાપાર કરતાં કરતાં ઘણી મોટી મિલકત મારા પતિએ મેળવી. મને તેનાથી એક પુત્ર થયો. પાળી—પોષીને અમે એ પુત્રને મોટો કર્યો અને જાણાવી ગણાવીને હુંશીયાર કર્યો. યોગ્ય ઉમરે સારા ખાનદાન કુટુંબની કન્યાસાથે તેનું લગ્ન કરી દીધું. એ મારો પુત્ર વીસ વર્ષની ઉમરનો થયો ત્યારે તેના પિતા મરી ગયા. પિતાના શોકનો એવો સખત આઘાત લાગ્યો કે જેથી થોડા દિવસ પછી એ મારો પુત્ર પણ સ્વર્ગ ગયો અને તેથી હું અનાથ અને નિરાધાર થઈ પડી. રાજ્યના નિયમ પ્રમાણે હવે મારી બધી સંપત્તિ રાજ લઈ લેશે અને મારું જીવન ધૂળધાણી થઈ જશે; તેથી એ દશા નજરે જાવી પડે તેના પહેલાં જ મરી જવું એ વધારે સારું છે એમ વિચાર કરીને હું હવે મરવામાટે તૈયાર થઈ છું.’ રાજ તે સ્ત્રીનું આ બધું કથન સાંભળી મનમાં બહુ વ્યથ થયો અને તેને કેટલુંક આશ્વાસન આપીને જણાવ્યું કે—‘માતા! તું તારે ઘર જા અને આ રીતે આપઘાત કરીને મરીશ નહિ. રાજ તારું ધન નહિ લે એની હું તને ખાતરી આપું છું. તું તારા ધનથી યથેષ્ટ દાનપુણ્ય કર અને તારું કલ્યાણ કર.’ એમ કહી રાજ પોતાના મહેલમાં આવ્યો અને સવાર થતાં

જ પોતાના મંત્રીઓને બોલાવીને તેણે આજ્ઞા કરી કે મારા આખા રાજ્યમાં એવી આજ્ઞા જાહેર કરી દો કે - ‘પરાપૂર્વથી ચાલી આવતી રાજ્યની નીતિ પ્રમાણે, મરી ગએલા નાવારસ માણસની સંપત્તિનો જે અધિકાર રાજસત્તા લઈ લે છે તે નીતિ આજથી અંધ કરવામાં આવે છે અને આજ પછી કોઈ પણ એવા માણસની કશીય સંપત્તિને રાજના માણસો ન અડકે તેવી રાજસા જાહેર કરવામાં આવે છે.’ રાજની આજ્ઞા પ્રમાણે મંત્રીઓએ આખા રાજ્યમાં તેવું આજ્ઞાપત્ર જાહેર કર્યું અને એ રીતે લેવાતું મૃતકધન અંધ કર્યું. પ્રાંધકારોના જાણાવ્યા પ્રમાણે રાજ્યના ખજાનામાં આ જાતના ધનથી દરવર્ષે એક કોડ રૂપિયાની આવક થતી હતી પણ રાજએ તેનો જરાય લોભ ન કરતાં એ અધમતમ અને પ્રજાપીડક નીતિનો સદંતર પ્રતિબંધ કર્યો.

મંત્રી યશ:પાલે પોતાની નાટકકૃતિમાં આ બાબતને એશ્રીય વધારે હૃદયંગમરીતે વર્ણવી છે. હેમાચાર્યે માત્ર અમુક ઘટનાને લક્ષ્યમાં રાખી કાવ્યની પદ્ધતિ પ્રમાણે તે ઘટનાનું સૂચનમાત્ર કર્યું છે. યશ:પાલે તેમાં કેટલીક અંતિહાસિકતાને પણ અંતર્નિહિત કરી હોય તેમ લાગે છે. એ આખું નાટક એક રૂપકરૂપે છે તેથી વધારે વાસ્તવિકતાને તો એમાં અવકાશ ન હોય તે સ્વાભાવિક જ છે. યશ:પાલનું વર્ણન આ રીતે છે - એક દિવસે રાજ પોતાના સ્થાનમાં બેઠો છે તે વખતે એક મોટા મહાલયજેવા મકાનમાંથી સ્ત્રીઓના રુદનનો કણદોલકારક ધ્વનિ સાંભળે છે. થોડી વાર પછી નગરના ૪ મહાજનો આવીને રાજને વિનંતી કરે છે કે નગરનો એક ક્રોડાધીશ સેક, જેનું નામ કુબેર હતું, તે નિઃસંતાન દશામાં મરી ગયો છે તેથી તેની સંપત્તિનો કબ્જે મેળવવા માટે અધિકારી પુરુષોને મોકલવામાં આવે અને અમને તેના મૃત્યુને લગતી ઉત્તર-ક્રિયા કરવાની આજ્ઞા આપવામાં આવે. રાજ એ સેકના મૃત્યુના સમાચાર સાંભળી બહુ ઉદ્વિગ્ન થાય છે અને જીવનની અસ્થિરતાનો ગંભીર વિચાર કરવા લાગી જાય છે અને તેની સાથે જ મૃતજનના કુટુંબની કરુણદશાનું અને તેમાં વળી રાજનરક્ષી થતી આવી કૂરતાનું બીભ્સ ચિત્ર તેને દેખાય છે.

આશાવન્ધાદહહ સુચિન્નં સંચિન્નં ક્લેશલક્ષે:

કેયં નીતિર્નૃપતિહતકા યન્મૃતસ્વં હરન્તિ ।

ચન્દ્રાચારીજઘનવસનાક્ષેપપાપોત્કટાના-

માઃ કિં તેષાં હૃદિ યદિ કૃપા નાસ્તિ તત્કિં ત્રપાડપિ ॥

રાજ કાંઈક વિચાર કરીને કહે છે કે હું જાતે જ ત્યાં આવું છું. પછી રાજ પાલખીમાં બેસીને રાજમહાલય કરતાં પણ વધારે શોભિત એવા એ કુબેરના ભવન પાસે આવે છે. ભવન ઉપર ક્રોડાધીશપણાને સૂચવતી ફરફરાટ કરતી કેટલીક ધ્વજઓ ઉડી રહી છે. એક બાળુના મોટા દરવાજા આગળ ગામના સેકયે મહાજનો શોકવિહ્વલ ચહેરા-સાથે ઉભા રહેલા છે. મકાનની અંદરથી કરુણરુદનનો અવિરત ધ્વનિ કાન ઉપર અથડાયાં કરે છે. રાજ બહાર ઉભેલા મહાજનોને જોઈને આગેવાન સેકને પૂછે છે કે આ બધા લોકો બહાર કેમ ઉભા છે? સેક કહે છે કે રાજના હુકમની વાટ જુએ છે. રાજ પૂછે છે કે એમાં રાજની હુકમની શી જરૂર છે? તો સેક કહે કે - રાજ્યના નિયમ પ્રમાણે, જ્યારે રાજ્યાધિકારીઓ ઘરની બધી સંપત્તિનો પોતે કબ્જે લઈ લે ત્યાર પછી

જ એમનાથી ઘરમાં પેસી શકાય, અન્યથા એ દંડના પાત્ર થાય. રાજ પાલખીમાંથી ઉતરી કુબેરના ભવનમાં જાય છે. એક આગેવાન સેઠ તેને કુબેરની બધી ઋદ્ધિ - સમૃદ્ધિનો પરિચય કરાવે છે. રાજમહેલોમાં પણ નથી એવી વસ્તુઓ બેઈ રાજ આશ્ચર્યચકિત થાય છે. પછી રાજ કુબેરની માતા પાસે જઈને બેસે છે અને કઈ રીતે અને કયાં કુબેરનું મૃત્યુ થયું એ બધું પૂછે છે. કુબેરનો એક મિત્ર બધી હકીકત કહે છે - 'પરદેશ સાથેનો વેપાર ખેડવા માટે, કુબેર પાટણથી ભરત્ય ગયો હતો અને ત્યાંથી ૫૦૦-૫૦૦ માણસો જેની અદર હતા એવાં ૫૦૦ વહાણો માલ ભરી તે પરદેશ ગયો હતો. ત્યાં તેણે એ બધો માલ વેચ્યો અને ૪ કરોડ રૂપીઆનો નફો મેળવ્યો. ત્યાંથી પાછા સ્વદેશ આવતાં રસ્તામાં ભયંકર વાવાઝોડું નજી અને તેનાલીધે બધાં વાહણો ખરાબ થઈ નષ્ટ થયાં અને કેટલાંક આમ નેમ ભટકતાં ભરત્ય બંદરે પહોંચ્યાં. કુબેરનું શું થયું તે જણાયું નથી અને તેથી આજે આ પ્રસંગ ઉપસ્થિત થયો.' રાજ આ બધું સાંભળી, બહુ જ સહાનુભૂતિભરેલા સ્વરે કુબેરની માતાને આશ્વાસન આપે છે - માતા ! આમ અવિવેકીની જેમ શોકથી એટલા બધા કેમ વિફલ થાઓ છો.

આકીટાયાવદિન્દ્રં મરણમસુમતાં નિશ્ચિતં વાન્ધવાનાં

સમ્બન્ધઞ્ચૈકવૃક્ષોપિતવદ્વિહગવ્યૂહસાંગત્યતુલ્યઃ ।

પ્રત્યાવૃત્તિમૃતસ્યોપલતલનિહિતસુષ્પ્ત્વીજપ્રગોહ-

પ્રાયઃ પ્રાપ્યેત શોકાત્ તદયમકુશલૈઃ ક્લેશમાન્મા મુખૈવ ॥

માતા કહે છે કે - પુત્ર ! બહુ જાણું છું, પણ પુત્રના મરણના શોકદુઃખથી બધું ભૂલી ગઈ છું. રાજ કહે છે કે - માતા ! હું પણ તમારો પુત્ર જ છું, માટે આ શોક ફરવો ન જોઈ. એટલામાં રાજનોકરો કુબેરના ઘરનું બધું ધન ભેગું કરી રાજની આગળ હગલો કરી મુકે છે. રાજ તેનો નિષેધ કરી મહારાજાને કહે છે કે - હું આજથી મૃત-જનોના ધનને રાજભંડારમાં દાખલ કરવાનો નિષેધ કરું છું. એ કેટલી બધી અધમ-નીતિ છે કે જે જે નિઃપુત્ર માણસ મરી જાય તે તે માણસના ધનચક્રણની દ્રષ્ટિથી હતાશય એવા રાજાઓ તેના પુત્રત્વને પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છે છે ! રાજ ત્યાંથી નીકળી મહેલમાં આવે છે અને મંત્રીઓદ્વારા આખા નગરમાં ઉદ્દ્યોષણ કરાવે છે કે -

નિઃશૂકૈઃ શક્તિં ન યજ્ઞપતિમિસ્યકું ક્વચિત્ પ્રાક્તનૈઃ

પત્ન્યાઃક્ષાર ઇવ ક્ષતે પતિમૃતૌ યસ્યાપહારઃ કિલ ।

આપાથોધિ કુમારપાલનૃપતિર્દેવો રુદત્યા ધનં

વિભ્રાણઃ સદયં પ્રજાસુ હૃદયં મુચ્ચત્યયં તત્સ્વયમ્ ॥

કવિપ્રતિભાએ ચિતરેલા આ ચિત્રમાંનો નામનિર્દેશ ભલે કાલ્પનિક હશે પરંતુ એ આખું ચિત્ર કાલ્પનિક નથી. એમાં વર્ણવેલી ઘટના અનૈતિકાસિક નથી. એ ઘટનાને અનુરૂપ બનાવ તે વખતે અવશ્ય બનેલો. આ ચિત્ર કુમારપાલની મહાનુભાવતાને અતિ ઉત્તમરૂપે પ્રતિબિંબિત કરે છે.

આ રીતે મૃત-સ્વ-મોચનનું પ્રજાહિતકર કાર્ય કરીને કુમારપાલ સતયુગમાં ધર્મ ગએલા રઘુ, નયુષ, નાભાક અને ભરત આદિ પરમ ધાર્મિક રાજાઓ પણ જે કીર્તિ

નહોતા મેળવી શક્યા તેવી કીર્તિ મેળવવા ભાગ્યશાળી થયો. અને આથી જ આચાર્ય હેમચંદ્ર પરમ પ્રસન્ન થઈને તેની સ્તુતિ કરે છે કે -

ન યન્મુક્તં પૂર્વે રઘુ-નઘુષ-નાભાક-ભરત-

પ્રમૃત્યુર્વીનાથૈઃ કૃતયુગકૃતોત્પત્તિભિરપિ ।

વિમુશ્ચન્ સન્તોષાત્ તદપિ રુદતીવિત્તમધુના

કુમારક્ષમાપાલ ! ત્વમસિ મહતાં મસ્તકમણિઃ ॥

અપુત્રાણાં ધનં ગૃહ્ણન્ પુત્રો ભવતિ પાર્થિવઃ ।

ત્વં તુ સન્તોષતો મુશ્ચન્ સત્યં રાજપિતામહઃ ॥

*

ગુજરાતનો એ સૌથી વધારે આદર્શ રાજા હતો. એ જેવો વીર હતો તેવો જ સંયત હતો. જેવો નીતિનિયુક્ત હતો તેવો જ ધર્મપરાયણ હતો. જેવો દુર્ધર્મ હતો તેવો જ સામ્ય પણ હતો. એનામાં અનુભવજ્ઞાનની જેટલી વિશાલતા હતી તેટલી જ તાત્ત્વિકચુદ્ધિની પણ ગંભીરતા હતી. એ જેવો ત્યાગી હતો તેવો જ મિતવ્યથી પણ હતો. જેવો પરાક્રમી હતો તેવો જ ક્ષમવાન પણ હતો. ગુજરાતના સામ્રાજ્યના સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રભુતાવાળા રાજા એ જ: સિદ્ધરાજ અને કુમારપાલ. બંનેના પરાક્રમ અને કૌશલથી ગુજરાતનું ગૌરવ ચરમ શિખરે પહોંચ્યું. પ્રબંધકારો કહે છે કે સિદ્ધરાજમાં ૯૮ ગુણ હતા અને એ દોષ હતા, કુમારપાલમાં ૯૮ દોષ હતા અને એ ગુણ હતા. છતાં તેમાં કુમારપાલ શ્રેષ્ઠ હતો. સિદ્ધરાજે ગુજરાતના નાગરિકોના નિવાસ માટે મહાસ્થાનો વસાવ્યાં તો કુમારપાલે મહાસ્થાનોના સંરક્ષણ માટે દૃઢ પરકોટાઓ બંધાવ્યા. સિદ્ધરાજે ગુજરાતના પરાક્રમને ગજવનારી મહાયાત્રાઓ કરી તો કુમારપાલે એ યાત્રાઓને અમરતાના ઉલ્લેખોથી અંકિત કરવા માટે એની મહાપ્રશસ્તિઓ રચાવી. સિદ્ધરાજે ગુજરાતના ગૌરવધામ ગિરિવર ઉપર મહાતીર્થની સ્થાપના કરી તો કુમારપાલે ગુજરાતના આબાલવૃદ્ધોને એ પુણ્યતીર્થની દુર્લભ યાત્રા સદા સુલભ થાય તે અર્થે ગિરિવર પર ચઢવામાટે સુગમ પદ્માઓ કરાવી. આવી રીતે સિદ્ધરાજે જો ગુજરાતની અસ્મિતાના મહાલયો બંધાવ્યા તો કુમારપાલે તેમનાપર સુવર્ણકળશ અને ધ્વજદંડ ચઢાવી તેમને સુપ્રતિષ્ઠિત બનાવ્યા. ગુજરાતની ગરિમાનો કુમારપાળ ખરેખર ગુરુશિખર હતો. એના સમયમાં ગુજરાતીઓ વિદ્યામાં અને વિભુતામાં, શૌર્યમાં અને સામર્થ્યમાં, સમૃદ્ધિમાં અને સદાચારમાં, ધર્મમાં અને કર્મમાં ઉત્કર્ષના ઉચ્ચતમ શિખરે પહોંચ્યા હતા. એના રાજ્યમાં, પ્રકૃતિકાતર વૈશ્યો પણ મોટા સેનાપતિઓ થયા, દ્રવ્યલોહુષ વણિજનો પણ મહાકવિઓ થયા, અને ધર્માપરાયણ બ્રાહ્મણો તથા નિન્દાપરાયણ શ્રમણો પણ પરસ્પર મિત્રો થયા. વ્યસનાસક્ત ક્ષત્રિયો પણ સંયમી સાધકો થયા અને હીનાચારી શૂદ્રો પણ સારીપેઠે ધર્મશીલ થયા. રાજાએ વિશિષ્ટ ઉત્સાહપૂર્વક ધર્માતર સ્વીકાર્યા છતાં ધાર્મિકસહિષ્ણુતા જેટલી એના રાજ્યમાં જોવામાં આવતી હતી તેટલી બીજા કોઈનાયે રાજ્યમાં નહિ. ભારતના પુરાતન ઇતિહાસમાં કદાચિત્ એ એક જ પહેલો અને છેલ્લો દાખલો હશે કે જેમાં હેમચંદ્ર જેવો જૈનધર્મનો સૌથી મહાન આચાર્ય શિવમંદિરમાં જઈ, શ્રદ્ધાળુ શૈવની માફક—

યત્ર તત્ર સમયે યથા તથા
 યોઽસિ સોઽસિ મિથયા યયા તયા ।
 વીતદોષકલુષઃ સ ચેદ્ ભવાન્
 એક એવ ભગવન્નમોઽસ્તુ તે ॥

આવી અદ્ભુત કલ્પના અને અનુપમ રચના દ્વારા શિવની સ્તુતિ કરે છે; તથા ગંડ બૃહસ્પતિ જેવો મહાન્ શૈવ મહાધીશ જૈન આચાર્યના ચરણમાં વંદન કરી -

ચતુર્માસીમાસીત્તવ પદયુગં નાથ નિકષા
 કષાયપ્રધ્વંસાદ્ વિકૃતિપરિહારઘ્વતમિદમ્ ।
 હૃદાનીમુદ્ભિદ્યન્નિજચરણનિર્લોઠિતકલે-
 ર્જલક્રિદ્ધૈરન્નૈર્મુનિતિલક વૃત્તિર્ભવતુ મે ॥

આવી સ્તુતિદ્વારા, એક મુશિખ્યની જેમ અનુગ્રહની યાચના કરે છે.

ઘતિહાસના સંકટો પ્રબંધો તપાસતાં, તેમાં માત્ર આ એક જ એવો રાજા જડી આવે છે જે કુલપરંપરાગ્રાસ 'ઉમાપતિવરલગ્નધર્મપ્રતાપ' બિરુદમાં અભિમાન ધારણ કરતો છતો પણ સ્વરુચિસ્વીકૃત 'પરમાર્હત' બિરુદથી પોતાને કૃતકૃત્ય માને છે. જે ભાવ અને આદરથી એ સોમેશ્વરના પુણ્યધામનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવે છે, તે જ ભાવ અને આદરથી તેની જ પડોશમાં પાર્શ્વનાથનું જૈનચૈત્ય પણ એ પ્રતિષ્ઠિત કરાવે છે. ગુજરાતની ગર્વોન્નત રાજધાની અણહિલપુરમાં, કુમારપાલ શંભુનાથના નિવાસ માટે કુમારપાલેશ્વર અને પાર્શ્વનાથના નિવાસ માટે કુમારવિહાર એમ એ મંદિરો પાસે પાસે ગ્રંધાવે છે. ધાર્મિક સહિષ્ણુતાના આદર્શનું આના કરતાં વધારે આકર્ષક ઉદાહરણ બીજું મળવું મુશ્કેલ છે.

કુમારપાલ સ્વભાવથી જ ધાર્મિકવૃત્તિવાળો હતો, તેથી તેનામાં દયા, કરુણા, પરોપકાર, નીતિ, સદાચાર અને સંયમની વૃત્તિઓનો વિકાસ ઘણા ઉંચા પ્રકારનો થયો હતો. તેનામાં એ ગુણો કેટલેક અંશે તેના પૈત્રિક વારસા તરીકે ઉતરી આવેલા હોવા બેઠાં એ કારણ, તેના પ્રપિતાનો પિતા ક્ષેમરાજ, જે પરાક્રમી ભીમદેવનો જેઠા પુત્ર અને સિદ્ધરાજના પિતા ભોગી કર્ણનો મોટો ભાઈ થતો હતો, તેને જ્યારે ભીમદેવે પોતાની રાજ્યગાદી આપવા માંડી ત્યારે તેણે તેનો સ્વીકાર ન કરતાં પોતાના લઘુબંધુ કર્ણને તે ગાદી અપાવી અને પોતે મંડૂકેશ્વર તીર્થમાં જઈ શંકરની ઉપાસનામાં તપસ્વી તરીકેનું પુણ્યજીવન જીવવાનો મનોરથ સિદ્ધ કર્યો. તેનો પુત્ર દેવપ્રસાદ પણ રાજકાજની ખટપટોથી દૂર રહી પોતાના પિતાના જીવનનું અનુકરણ કરતો રહ્યો અને જ્યારે વિલાસી કર્ણનું જીવન અકાલે જ અવસાન પામ્યું ત્યારે તે એટલો બધો ઉદ્વિગ્ન થયો કે સજીવ દેહે ચિતાગ્નિમાં પ્રવેશ કરી જીવનમુક્ત થયો. કુમારપાલનો પિતા ત્રિજીવનપાલ પણ એક સદાચારી અને ધર્મપરાયણ ક્ષત્રિય હતો. સિદ્ધરાજનો તે અત્યંત આદરપાત્ર આસજન હતો. તેના નીતિપરાયણ જીવનનો પ્રભાવ, સિદ્ધરાજના સ્વચ્છંદ જીવન ઉપર અનેકરીતે અંકુશનું કામ કરતો. આ રીતે કુમારપાલને પોતાના પૂર્વજોના ઉત્તમ ગુણોનો અમૂલ્ય વારસો મળ્યો હતો અને

તેથી તે છેવટે હેમચંદ્ર જેવા મહાન સાધુપુરુષના સત્સંસર્ગથી, ગુજરાતના ઇતિહાસમાં ધર્માત્મા રાજર્ષિની લોકોત્તર પદ્વીના મહાન યશનો ઉપભોક્તા થયો. હેમચંદ્રસૂરિએ તેના એ યશને અમર કરવા માટે અભિધાનચિંતામણિ જેવા પ્રમાણુભૂત શબ્દ-કોશના મુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાં તેના માટે

કુમારપાલશ્ચૌલુક્યો રાજર્ષિઃ પરમાર્હતઃ ।

મૃતસ્વમોક્તા ધર્માત્મા મારિવ્યસનવારકઃ ॥

આવાં ઉપનામો ગ્રંથિત કરી સાર્વજનીન સંસ્કૃત વાઙ્મયમાં તેના નામને શાસ્વત સ્થાન આપ્યું છે.

એમાં શંકાને જરાયે સ્થાન નથી કે કુમારપાલ અંતિમજીવનમાં એક પરમ જૈન રાજા હતો. તેણે જૈનધર્મપ્રતિપાદિત ઉપાસક એટલે શૃદ્ધસ્થ - શ્રાવક ધર્મનું ઘણી ઉત્કટતા-પૂર્વક આચરણ કર્યું હતું. ઐતિહાસિક કાળમાં કુમારપાલ જેવો બીજો કોઈ પણ રાજા જૈનધર્મનો સુસ્ત અનુયાયી થયો હોય તેની મને શંકા છે. એમ તો જૈન સાહિત્યમાં ઘણા રાજાઓને જૈન થએલા ઉલ્લેખેલા છે. જેમકે, ઉજ્જયિનીનો વિક્રમાદિત્ય, પ્રતિષ્ઠાનપુરનો સાતવાહન, વલ્લભીનો શિલાદિત્ય, માન્યખેટનો અમોઘવર્ષ, ગોપગિરિનો આમરાજ ઇત્યાદિ. પણ એ બધા જો જૈનધર્મના અનુરાગી થયા હશે તો તેનો અર્થ એટલો જ છે કે તેમણે જૈનધર્મ અને તેના અનુયાયીઓ તરફ પોતાનો સવિશેષ અનુરાગ કે પક્ષપાત બતાવ્યો હશે. વખતે જૈન ગુરુઓને સૌથી વધારે આદર આપ્યો હશે અને તેમના ઉપદેશ પ્રમાણે કેટલાંક જૈનમંદિરો વગેરે બાંધી - બંધાવી આપ્યાં હશે. કેટલાકે તેથી આગળ જઈ વર્ષના અમુક દિવસો કે માસો સુધી જીવહિસાપ્રતિબંધક રાજાશાઓ બહાર કરી હશે અને સ્વયં પણ મઘ - માંસના સેવનની પ્રતિજ્ઞાઓ લીધી હશે. પણ કુમારપાલની જેમ શૃદ્ધસ્થધર્મના આદર્શને દર્શાવનારા પૂરા દ્વાદશવ્રતોનો સ્વીકાર તો કોઈએ નહિ કર્યો હોય.

તેણે સ્વીકારેલા એ દ્વાદશ જૈનવ્રતોનું સવિસ્તર વર્ણન જૈન ગ્રંથોમાં કેટલીક વિગતો સાથે આપવામાં આવેલું છે. વિગતોમાંની કેટલીક, અતિશયોક્તિ ભરેલી હોઈ શકે, પરંતુ મૂળ હકીકત મિથ્યા નથી એટલી વાત તો ચોક્કસરીતે કહી શકાય તેમ છે. અને જે વાત ખુદ હેમચંદ્ર પોતે જ જણાવે છે તેમાં તો મિથ્યાને અવકાશ જ શી રીતે હોય. મંત્રી યશપાલ અને સોમપ્રભાચાર્યની જે કૃતિઓનો પરિચય, કે ઉપર આપ્યો છે તેમાંનાં વર્ણનો પરથી જણાય છે કે કુમારપાલે વિક્રમસંવત ૧૨૧૬ માં હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે સકલ જન સમક્ષ જૈનધર્મની શૃદ્ધસ્થદીક્ષા સ્વીકારી હતી. એ દીક્ષા સ્વીકારતી વખતે એણે મુખ્યપણે આવી પ્રતિજ્ઞાઓ લીધી હતી: - રાજ્યરક્ષાનિમિત્ત કરવા પડતા યુદ્ધસિવાય યાવજીવન કોઈ પણ પશુ - પ્રાણીની હિંસા ન કરવી; મૃગયાદિનો શિકાર ન કરવો; મઘ અને માંસનું સેવન ન કરવું; પરિણીત પત્ની સિવાય અન્ય કોઈ સ્ત્રીસાથે કામાચાર ન સેવવો; દરરોજ જિનપ્રતિમાની પૂજાઅર્ચા કરવી અને હેમચંદ્રાચાર્યનું પાદવંદન કરવું; અષ્ટમી અને ચતુર્દશીના દિવસે સામાયિક અને પાંચધ આદિ વિશેષવ્રતનું પાલન કરવું; રાત્રિએ જોજન ન કરવું; ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ.

આવી જાતની પ્રતિજ્ઞાઓ જાતે લઈને પછી એણે પોતાના રાજ્યમાં, બીજા બીજા લોકો પણ પોતે સ્વીકારેલા ધર્મના કેટલાક મોટા નિયમોનું પાલન કરે તે માટે, તેવી કેટલીક રાજજ્ઞાઓ પણ બહાર પાડી. તેમાં સૌથી મુખ્ય આજ્ઞા હતી જીવહિંસા-પ્રતિબંધ વિષેની. આપણા દેશમાં ઘણા પ્રાચીન કાળથી બે કારણે જીવહિંસા થતી આવે છે: એક તો ધર્મના નિમિત્તે એટલે યજ્ઞયાજ્ઞાદિ ધાર્મિક કર્મકાંડ અને દેવી-દેવતાઓની બલીપૂજાનિમિત્તે; અને બીજી ખોરાક નિમિત્તે. કુમારપાલે એ બંને પ્રકારની જીવહિંસાનો નિષેધ કરવા માટે રાજજ્ઞા જાહેર કરી. હેમચંદ્રાચાર્યના દ્વયાશ્રયકાવ્યમાં આવેલા વર્ણન ઉપરથી જણાય છે કે માંસાહાર માટે થતી જીવહિંસાનો નિષેધ તો, કુમારપાલે, કદાચિત્ શ્રાવકધર્મના પ્રતો લીધા પહેલાં જ જાહેર કરી દીધો હતો. શાકંભરીના આહમાન રાજા અર્જુનરાજ અને માલવાના પરમાર રાજા બદ્ધાલદેવનો પરાજય કર્યા પછી એક દિવસે કુમારપાલે રસ્તામાં કોઈ દીન દરિદ્ર દેખાતા ગામડિયા માણસને બકરાં આદિ બેચાર પશુઓને કસાઈખાને તાણી જતો જોઈ, તેની સાથે તે વિષેની કેટલીક પૂછપાછ કરી; અને તે વસ્તુસ્થિતિની જાણ થતાં, એ પામર મનુષ્યની અને પશુઓની દશા જોઈ રાજાના મનમાં બોધિ-સત્ત્વની જેમ કરુણાભાવ ઉત્પન્ન થયો. તેના મનમાં વિચાર આવ્યો કે—દુષ્ટ-જાતિવાળા અને કૂતરા જેવા, ધર્મવિરુદ્ધ આ લોકો પોતાના નકારા પેટ માટે જે આવા પ્રાણીઓના જીવ લે છે, તેમાં ખરેખર શાસન કરનારનો જ દુર્વિવેક છે. કારણ કે જેવા રાજાના ગુણ તેવા જ લોકોના ગુણ થાય છે. મને ધિક્કાર છે કે હું માત્ર મારા શરીર માટે જ પ્રજાપાસેથી કર લઉં છું પણ પ્રજાના રક્ષણમાટે નહિ—ઇત્યાદિ વિચાર કરી તેણે પોતાના અધિકારીઓને આજ્ઞા કરી કે મારા રાજ્યમાં જે કોઈ પણ જીવહિંસા કરે તો તેને ચોર અને વ્યભિચારી કરતાં પણ વધારે સખ્ત શિક્ષા કરવી.

આપણી આર્ય પ્રજામાંના જે લોકો માંસાહારી હોય છે તેઓ પણ એકરીતે જીવહિંસાને ઘૃણારૂપદ તો માને છે જ. કારણ, દયામૂલ ધર્મની લાવના આપણી પ્રજામાં ઘણા સંક્રાન્તિથી રૂઠ થઈ ગયેલી છે. ‘અહિંસા પરમો ધર્મ’નો સિદ્ધાંત ભારતના બધાથે ધર્મોમાં વધતે ઓછે અંશે સ્વીકારવામાં આવ્યો છે. તેથી માંસાહારી મનુષ્યો, જીહ્વા-ઇન્દ્રિયની લોલુપતાને લઈને આવી રાજજ્ઞાને મનથી ભલે પ્રિય ન ગણે પણ જાહેરરીતે તેનો વિરોધ કરવા જેટલી નૈતિક બાબત તેમની તરફ ન હોવાથી તેઓ તે વિષે કશું ન બોલી શકે. પણ ધર્મના જહાને જીવહિંસા કરનારાઓની સ્થિતિ જુદી હોય છે. તેઓની હિંસાને ધર્મશાસ્ત્રોનું, સનાતન પરંપરાનું, આલુ આવતી રૂઢીનું અને જનતામાં વ્યાપેલી અન્ધશ્રદ્ધાનું યથેષ્ટ સમર્થન હોય છે; તેથી, તેઓ તરફથી, રાજાની આવી જાતની આજ્ઞાસામે થવાની હીલચાલ થાય એ સર્વથા અપેક્ષિત જ હોય. પરંતુ, ગુજરાતની કેટલીક સામાજિક વિશિષ્ટતાને લઈને તેમ જ તે કાળે જૈનોની સર્વોપરિતાને લઈને, એ વર્ગ તરફથી પણ એ આજ્ઞાના વિરોધનો કશો વિશેષ ઉપદ્રવ કુમારપાલને નહોતો નહિ. છતાં વિરોધનો સર્વથા અભાવ પણ નહોતો જ. કેટલાક પ્રબંધકરોના કથન ઉપરથી જણાય છે કે, પાટણની અધિષ્ઠાત્રી કંદેશ્વરી માતાના રાજપૂજારીઓએ,

છેવટે, નવરાત્રના દિવસોમાં તો નગરદેવીની પશુબલિદ્વારા પૂજા કરવી જ બેઠએ; નહિ તો દેવી ક્રોધિત થશે અને તેના ક્રોધના પ્રતાપે રાજ અને રાજ્ય ઉપર લયાનક આપત્તિ આવી પડશે, એવો ભય બતાવી, કુમારપાલને એકવાર પોતાની પ્રવૃત્તિમાં સંદેહશીલ બનાવી દીધો હતો. રાજાએ પોતાના મહામાલ્ય વાચ્છદની, જે કુલપરંપરા થી જૈન હતો, એ બાબતમાં સલાહ માંગી. મહામાલ્ય ગમે તેટલો શૂરવીર અને રાજનીતિનિપુણ હતો છતાં છેવટે હતો તે વણિક જ. રખેને એ માતા ખરેખરી ક્રોધાયમાન થાય અને રાજ તથા રાજ્ય ઉપર બે સાચે જ ક્રોધ આક્રમિત ઉતરી પડે તો પછી શું કરાય, અને તેમ થવાથી ધર્મ અને ક્રોમ બંનેની ભારે અપકીર્તિ થાય—આવી આવી કેટલીક કલ્પનાઓ કરી દાક્ષિણ્યતાથી અસ્પષ્ટ સ્વરે અને અવ્યક્ત ભાવે તેણે શબ્દો ઉચ્ચાર્યા કે દેવ! લીયતે એટલે કે પશુબલિ દેવાય! આવું હોય ત્યાં બીજું શું કરાય. પણ કુમારપાલ તો ક્ષત્રિય હતો. ‘પ્રાણ જાય પણ આન ન જાય’ એ સંસ્કારોનો પાર્થિવપિંડ હતો. જગત સમક્ષ લીધેલી પ્રતિજ્ઞા અને બહેર કરેલી આજ્ઞાનો ભંગ સાચો ક્ષત્રિય શી રીતે થવા દે. પ્રતિજ્ઞાપાલનના ગૌરવમશ્વિ આગળ, ક્ષત્રિયના મને, જીવિત અને સમ્પત્તિ તો તુચ્છ તૂણ જેવા હોય છે. મહામાલ્ય વાચ્છદનો અર્ધદગ્ધ ઉદ્દગાર સાંભળી કુમારપાલ હસી પડ્યો અને મર્મયુક્ત સ્વરે બોલ્યો કે ‘મંત્રિન વળિગતિ યદેવં વ્રૂષે—મહામાલ્ય! વાણિયો છે જેથી આવું બોલે છે. રાજ્ય શું ને જીવિત શું બધુંયે નષ્ટ થઈ જાય પણ લીધેલી પ્રતિજ્ઞા નષ્ટ ન થઈ શકે.

પણ રાજની આ મુંઝવણનો, હેમચંદ્રસૂરિએ પોતાની અદ્ભુત કુશલતા અને વ્યાવહારિકતાની બુદ્ધિદ્વારા સરસરીતે ઉકેલ કરી દીધો. તેમણે એક કાંકરે એ પક્ષીને ઘા કર્યા જેવી કળા વાપરી. પોતાની એ કળાનો મંત્ર તેમણે ધીમેથી રાજના કાનમાં કુંક્યો અને રાજાએ હર્ષગદ્ગદ થઈ હાસ્યરસ ઉપજાવે તેવો તેનો પ્રયોગ લજવી બતાવ્યો. બલિપૂજના અવસરે રાજ કેટલાક પશુઓને સાથે લઈ માતા કંટેશ્વરીના મંદિરમાં પહોંચ્યો અને પૂજારીઓને કહેવા લાગ્યો કે આ પશુઓ હું માતાને ચઢાવા માટે લાવ્યો છું. હું એમને, આમના આમ જીવતા જ માતાના હવાલે કરું છું. તેથી બે માતાને આમના માંસની જરૂર હશે તો તે પોતાની મેળે જ આમાંથી પોતાનું લક્ષ્ય મેળવી લેશે—તમારે કોઈએ એ લક્ષ્ય તૈયાર કરવાની મહેનત લેવી જરૂર નથી. આમ કહી રાજાએ માતાના મંદિરમાં પશુઓને પૂરી દીધા અને બહારથી તાળું મારી દીધું. બીજી સવારે રાજપરિવારસાથે રાજ ત્યાં આવ્યો, અને બહાર લોકોની મેદિની વચ્ચે માતાના મંદિરના દરવાજા ઉઘડાવી જેવા લાગ્યો તો જણાયું કે રાત્રે પુરેલા પશુઓ શાન્તિથી મંદિરના પ્રાંગણમાં પોતાનું ચર્વણ કરી રહ્યા છે. માતાએ એકેનું લક્ષણ ન કર્યું. રાજાએ સર્વની સમક્ષ, ઉત્સાહ સાથે ઉપદેશ આપ્યો કે—‘માતાને પશુઓના માંસની જરાયે જરૂર નથી. એને તેની ભૂખ નથી. બે એને ભૂખ હોત તો આ પશુઓને જરૂર પોતે ખાઈ ગઈ હોત. આથી સમભય છે કે માતાના નિમિત્તે આ પૂજારીઓને, આ પામર પશુઓના પિડની ભૂખ છે; પણ તે ભૂખ હવે મારા રાજ્યમાં લાગી શકાય તેમ નથી.’ આમ કહી રાજાએ દેવી—દેવતાઓના નિમિત્તે થતી જીવહિંસાનો પણ સમૂલ ઉચ્છેદ કર્યો.

કુમારપાલની આવી અહિંસાપ્રવર્તક સાધનાની સફળતા જોઈને, બ્રાહ્મણ પંડિત શ્રીધરે એક વિશેષ પ્રસંગે હેમાચાર્યની સ્તુતિ કરતાં ક્યું છે કે -

પૂર્વે વીરજિનેશ્વરે ભગવતિ પ્રસ્યાતિ ધર્મે સ્વયં
પ્રજ્ઞાવત્યભયેઽપિ મન્થિણિ ન યાં કર્તુ ક્ષમઃ શ્રેણિકઃ ।
અક્રેશેન કુમારપાલનૃપતિસ્તાં જીવરક્ષાં વ્યધાત્
યસ્યાસાઘ વચસ્સુધાં સ પરમઃ શ્રોહેમચ્ચન્દ્રો ગુરુઃ ॥

અર્થાત્ - જે વખતે સાક્ષાત્ ભગવાન્ મહાવીર તો જેને ધર્મબોધ કરનાર હતા અને અભયકુમાર જેવો જેનો પ્રજ્ઞાવાન્ પુત્ર સ્વયં મંત્રી હતો તે રાજા શ્રેણિક પણ જે જીવરક્ષા ન કરી શક્યો તે જીવરક્ષા, જેના વચનામૃતનું પાન કરી કુમારપાલ અનાયાસરીતે સાધી શક્યો, તે હેમચંદ્ર ખરેખર એક મહાન્ ગુરુ છે.

સ્વયં આચાર્ય હેમચંદ્ર પણ, ઉપર કહેલા મહાવીરચરિત્ર નામના પુરાણચંથમાં, મહાવીરના મુખેથી બાવી રાજા કુમારપાલવિષે લાવિધ્યકથનરૂપે વર્ણન કરતાં, લખે છે કે -

પાંડુપ્રભૃતિરપિ ત્યક્તા યા મૃગયા નહિ ।
સ સ્વયં ત્યક્ષ્યતિ જનઃ સર્વોઽપિ તદાજ્ઞયા ॥
હિંસાનિષેધકે તસ્મિન્ દૂરેઽસ્તુ મૃગયાદિકમ્ ।
અપિ મત્કુટયૂકાદિ નાન્ત્યજોઽપિ દ્વનિષ્યતિ ॥
તસ્મિન્નિષિદ્ધે પાપાર્દ્ધાવરણ્યે મૃગજાતયઃ ।
સદાઽપ્યવિઘ્નરોમન્થા ભાવિન્યો ગોષ્ઠધેનુવત્ ॥
જલચરસ્થલચરસ્થેચરાણાં સ દેહિનામ્ ।
રક્ષિસ્યતિ સદા મારિં શાસને પાકશાસનઃ ॥
યે ચાજન્માપિ માંસાદાસ્તે માંસસ્ય કથામપિ ।
દુઃસ્વપ્નમિવ તસ્યાજ્ઞાવશાન્નેષ્યન્તિ વિસ્મૃતિમ્ ॥

ભગવાન્ મહાવીર પોતાના શિષ્યોને કહે છે કે - લાવિકાળમાં જે કુમારપાલ રાજા થનાર છે તેની આજ્ઞાથી સર્વ મનુષ્યો મૃગયા એટલે શિકારનો ત્યાગ કરશે કે જે મૃગયાને પાંડુ જેવા ધર્મિષ્ઠરાજાઓ પણ છોડી - છોડાવી શક્યા ન હતા. હિંસાનો નિષેધ કરનાર એ રાજાના સમયમાં શિકારની વાત તો દૂર રહી માંકણ અને જૂ જેવા જીવોનેય અન્ત્યજો મુધાં પણ હણી શકશે નહિ. આ રીતે મૃગયાવિષે તેની નિષેધાજ્ઞા થવાથી મૃગ આદિ પશુજાતિઓ નિર્ભય થઈને, વાડામાં ગાયો ચરે તેવીરીતે સદા ચર્ચા કરશે. એ રીતે જલચર પ્રાણીઓ, પશુઓ અને પક્ષીઓ માટે સદા તે અમારિ પ્રવર્તાવશે અને તેની આવી આજ્ઞાથી, જેઓ આજન્મ માંસાહારીઓ હશે તેઓ પણ ખરાબસ્વપ્નની માફક, સદામાટે માંસની વિસ્મૃતિ કરશે.

કુમારપાલની આવી અમારિપ્રિય વૃત્તિને જોઈને તેના પડોશી અને ખંડિયા રાજાઓએ પણ અમારિપ્રવર્તનની ઉદ્દેશોષણ કરનારાં કેટલાક શાસનો જાહેર કર્યા હતાં જેનાં પ્રમાણસૂચક કેટલાક શિલાલેખો ઠેઠ મારવાડની પેલી સરહદ ઉપરથી મળી આવ્યા છે.

કુમારપાલની જ આવી અહિંસાપ્રવર્તક નીતિનું એ પરિણામ છે, કે, વર્તમાન સમયમાં, જગતમાં સૌથી વધારે અહિંસક પ્રજા ગુજરાતની પ્રજા છે અને સૌથી વધારે અહિંસાધર્મનું પાલન ગુજરાતમાં થાય છે. ગુજરાતમાં હિંસક યજ્ઞ-યાજ્ઞ પ્રાયઃ ત્યારથી જ બંધ થએલા છે અને દેવી-દેવતાઓની આગળ થતો પશુવધ પણ, બીજા દેશોની તુલનામાં ગુજરાતમાં, ઘણો ઓછો છે. ગુજરાતનો પ્રાયઃ સઘળોય શિષ્ટ અને ઉચ્ચ પ્રભવર્ગ સુસ્ત નિરામિષલોછ છે. ગુજરાતનો પ્રધાન ખેડુતસમૂહ પણ માંસત્યાગી છે. બલે અતિશયોક્તિ ગણાય અને તેનો ઉપહાસ પણ થાય છતાં મને કહેવાનું મન થાય છે કે - ગૂજરાતના એ જ પુણ્યમય વારસાના પ્રતાપે ગુજરાતે જગતના સૌથી શ્રેષ્ઠ અહિંસામૂર્તિ મહાત્માને જન્મ આપવાનું આજે અદ્વિતીય ગૌરવ પ્રાપ્ત કર્યું છે.

જીવહિંસા સાથે બીજી જે પાપકર પ્રવૃત્તિઓનો કુમારપાલે પોતાની પ્રજામાંથી નિષેધ કરાવ્યો તેમાં મુખ્ય હતી મદ્યપાનની પ્રવૃત્તિ. મદ્ય એ મનુષ્ય જાતિનો મોટો શત્રુ છે એ સૌ કોઈ જાણે છે. મદ્યની સાથે શિકાર, જીગાર, વ્યભિચાર અને તેવા બીજા અનેક અનાચારોનો ઘનિષ્ઠ સંબંધ છે. મદ્યના કારણે જગતમાં ઘણાં ઘણાં અનર્થો થયા છે અને થાય છે. પૌરાણિક કાળમાં જાદવોનો નાશ મદ્યપાનને લઈને થયો હતો એમ પુરાણો વર્ણવે છે. ઐતિહાસિક કાળમાં પણ મદ્યપાનને લીધે અનેક સમ્રાટો અને તેમનાં સામ્રાજ્યો નષ્ટ થયાંનાં ઉદાહરણો બેઠાંએ એટલાં મળી આવે છે. વર્તમાનમાં ક્ષત્રિયજાતિનું જે બચકર પતન થયું છે અને હજીએ વધારે થતું જાય છે, તેમાં મોટો ભાગ મદ્ય જ લજવી રહ્યું છે. આપણા ગરીબ અને મહેનતુ પ્રભવર્ગની જે આટલી બધી અવદશા થઈ રહેલી છે તેમાં પણ મદ્ય એક પ્રધાન કારણ છે એ આપણે સારી પેઠે જાણીએ છીએ. મદ્યની આવી માઠી અસરને લક્ષ્યમાં લઈને મધ્યકાળના કેટલાક મુસલમાન સમ્રાટોએ પણ તેના પાનનો જે તીવ્ર નિષેધ કર્યો હતો તે ઇતિહાસના અભ્યાસીઓને અપરિચિત નથી. અમેરિકા જેવા કેવળ ભૌતિકસંસ્કૃતિના ઉપાસક રાષ્ટ્રને પણ, આ વર્તમાન વીસમી શતાબ્દીસુધામાં, એ ઉન્માદક મદ્યપાનના નિષેધ માટે રાજસાનો કઠોર ઉપયોગ કરવો પડે છે.

પ્રબંધગત પ્રમાણેના વર્ણન ઉપરથી જણાય છે કે, કુમારપાલ જૈનધર્માનુયાયી થયો તે પહેલાં માંસાહાર તો તે કરતો હતો પરંતુ મદ્યપાન તરફ તેને ઠંઠથી તિરસ્કાર હતો. ઘણું કરીને એના કુલમાં જ એ વસ્તુ ત્યાજ્ય મનાતી હતી. હેમચંદ્રના યોગશાસ્ત્રમાં આવેલા એક ઉલ્લેખ ઉપરથી જણાય છે કે ચૌલુક્યોના કુલમાં મદ્યપાન નિન્દ્ર ગણાતું હતું, જેમ બ્રાહ્મણ જાતિમાં ગણાતું તેમ.

પરંતુ ચૌલુક્યોના પુરોગામી ચાવડાઓ સારી પેઠે મદ્યપી હતા. સ્વયં અણહિલપુરના સંસ્થાપક વનરાજને મદ્ય બહુ પ્રિય હતું, તથા એણે બાંધેલા અણહિલપુરના રાજમહેલોમાં, એની પાછળ પણ મદિરા દેવીનો ખૂબ સત્કાર થતો હતો અને તેના જ પરિણામે, જાદવોની માફક, એ ચાવડાવંશનો પણ આખરે ક્ષય થયો હતો, એમ મોહરાજપરાજય નાટકનો કર્તા મંત્રી યશપાલ ગર્ભિતરૂપે સૂચન કરે છે. અંતિમ ચાવડા રાજ સામંતસિંહનું રાજ્યસિંહાસન કેવીરીતે ચૌલુક્યવંશના પ્રતિષ્ઠાતા મૂળ-

રાજના હાથમાં આવ્યું, તેની જે હકીકત પ્રબંધચિંતામણિમાં આપવામાં આવી છે તે પરથી પણ આવડાઓના મઘપાનની હકીકત સ્પષ્ટપણે જણાઈ આવે છે.

મઘપાનના નિષેધની સાથે જુગાર ખેલવાની મનાઈ પણ કુમારપાલે તેટલી જ સખ્તાઈથી જાહેર કરી હતી. જુગારના લીધે પાંડવો જેવાઓને પણ કેવી કષ્ટાવસ્થા ભોગવવી પડી હતી તેમ જ નળ જેવા રાજા ઉપર પણ કેવી આપત્તિ આવી પડી હતી,—એ વગેરેની કથાઓ કુમારપાલે હૈમચંદ્રસૂરિપાસેથી ઘણી વાર સાંભળી હતી અને પોતાના આસપાસના લોકોમાં પણ એણે જુગારની ખૂબ જ બદી ફેલાયેલી જોઈ હતી તેથી તેણે એ જુગાર ખેલવાનો પણ પ્રતિબંધ જાહેર કર્યો હતો. યશ:પાલ મંત્રીના કથનથી જણાય છે કે તે વખતે લોકોમાં જુગારનું વ્યસન ઘણા મોટા પ્રમાણમાં ફેલાયેલું હતું. મોટા મોટા રાજપુરુષો એ વ્યસનમાં વ્યાસકત થયેલા હતા. એવા રાજપુરુષોમાંના કેટલાકનો તો સ્પષ્ટ નિર્દેશ પણ એ નાટકકારે કરેલો છે જે બહુ જ સૂચક છે. એ નિર્દેશ પ્રમાણે મેવાડનો રાજકુમાર, સોરઠના રાજાનો ભાઈ, ચંદ્રાવતીનો અધિપતિ, નાડોલના રાજાનો દૌહિત્ર, ગોધરાના રાજાનો ભત્રીજો, ધારાના રાજાનો ભાણેજ, શાકંભરીના રાજાનો મામો, કોંકણના રાજાનો વિમાતૃશ્રાતા, કચ્છના રાજાનો સાળો, મારવાડના રાજાની છોકરીનો છોકરો, અને ખુદ ચાલુક્ય નૃપતિ એટલે કુમારપાલદેવના કોઈ પિતૃવ્ય જેવી વ્યક્તિઓ હતી. એ ઉલ્લેખપરથી જણાય છે કે અણહિલપુરના સમ્રાટની સેવામાં રહેતા બધા ખંડિયા રાજાઓના જે રાજપ્રતિનિધિઓ હતા તેઓ આ વ્યસનમાં સારી પેઠે વ્યાસકત થયેલા હતા. નવરા બેઠેલા, એવા મોટા લોકોને, ખીનું કામ પણ શું હોઈ શકે. રોજ, નિયત કરેલા અમુક બેત્રણ કલાકો રાજના દરબારમાં તેઓ ઉપસ્થિત થાય અને પોતાની હાજરી પુરાવે, તે ઉપરાંત, શાંતિના સમયમાં, આવા રાજપ્રતિનિધિઓને કશું કામ હોતું નથી. તેથી તેમનો વખત હમેશાં આવા જ કોઈ વ્યસનમાં પસાર થતો હતો. આજે પણ આ વર્ગના માણસોમાં એવી જ સ્થિતિ જોઈ શકાય છે. આ જુગારને લઈને જુગારીઓમાં અનેક પ્રકારના ભયંકર કલહો ઉભા થતા, મારામારીઓ થતી અને તેવા ખીન નાના પ્રકારના અક્લીલ દેખાવો થતા. કુમારપાલને આ વસ્તુસ્થિતિનું ચોક્કસ જ્ઞાન થયું હતું અને તેથી એના આવા દુષ્પરિણામોથી પ્રભને બચાવવા માટે એના નિષેધનો તેણે રાજદેશ જાહેર કર્યો હતો.

આ રીતે જે રાજનીતિ કુમારપાલે પ્રવર્તાવી તેમાં એક વાત ખાસ દેખાતી નથી. તે વાત છે વેશ્યાવ્યસન વિષેની. કુમારપાલને તેની કલ્પના તો હોવી જ જોઈએ. મઘ અને ઘૂતની માફક એ વ્યસન પણ પ્રજાની દૃષ્ટિએ તેટલું જ અનિષ્ટકર છે અને ધર્મશાસ્ત્રોમાં પણ એની અનિષ્ટતા સારી પેઠે વર્ણવેલી છે. પણ કુમારપાલે ગમે તે કારણે હો, એ વ્યસનની ઉપેક્ષા કરી હતી. મોહરાજપરાજય નાટકમાં—એ વિષે પણ એક સૂચન કરેલું મળી આવી છે. ઉક્ત રીતે જ્યારે કુમારપાલે બધા દુર્વ્યસનોનો બહિષ્કાર કરાવ્યો ત્યારે વેશ્યાવ્યસનને પણ તેનો ભથ્થો લાગ્યો પરંતુ રાજાએ તેની ઉપેક્ષા કરતાં કહ્યું કે વેશ્યાવ્યસન તુ વરાકમુપેક્ષણીયમ્ । ન તેન કિચ્છિદ્ ગતેન સ્થિતેન વા—એટલે કે—આપડા વેશ્યાવ્યસનની તો ઉપેક્ષા કરવી જોઈએ. તેના રહેવાથી કે

જવાથી કશું થતું નથી. આ સૂચન ગુજરાતની તે વખતની વેશ્યાવિષેની સ્થિતિ ઉપર કાંઈક પ્રકાશ પાડે છે. વેશ્યાસંબંધ, તે વખતે સમાજમાં, ખીજા વ્યસનનોની જેમ બહુ નિન્દ્ય ગણાતો ન હતો. સમાજના શિષ્ટ કહેવાતા વર્ગસાથે વેશ્યાઓનો ઘણો સંબંધ રહેતો હતો. તેમ જ વેશ્યાઓની સ્થિતિ પણ આજના જેવી તદ્દન હલકી અને ફેવળ વ્યભિચાર પોષનારી ન હતી. વેશ્યાઓનું સ્થાન સમાજમાં એક પ્રકારે ઉચ્ચ પ્રતિનું ગણાતું. રાજદરબારમાં હમેશાં તેમની ઉપસ્થિતિ રહેતી. દેવમંદિરોમાં પણ નૃત્ય અને ગાનાદિ માટે તેમની હાજરી આવશ્યક ગણાતી. સાર્વજનિક કે ખાનગી ઉત્સવ-મહોત્સવોમાં તેઓ અગ્રભાગ ભજવતી. કળા અને કૃશળતાની તેઓ શિક્ષિકા ગણાતી. રાજપુત્રો વગેરે લક્ષ્મીદેવીના કૃપાપાત્રો તેમની પાસે કળાભ્યાસ પણ કરતા. અનેક રાજાઓ આવી કળાધામ વેશ્યાઓને પોતાની પ્રિયતમા બનાવતા. ખુદ કુમાર-પાલનું પિતૃકુલ પણ આવી જ એક વેશ્યાવર્ગમાં અવતરેલી કળાનિધિ રાજરાણીની સંતતિરૂપે હતું. તેના દરબારમાં પણ આ વેશ્યાવર્ગ સારા પ્રમાણમાં અને સારી સ્થિતિમાં વિદ્યમાન હતો. તેથી તેણે તેમની પ્રવૃત્તિવિષે કોઈ પણ પ્રકારનો વિધિ કે નિષેધ કરવાનો કશોય વિચાર નહિ કર્યો હોય.

આ પ્રમાણે કુમારપાલે જૈનધર્મમાં દીક્ષિત થઈ, તેના સિદ્ધાન્તો પ્રમાણે કેટલાક મોટા ધાર્મિક અને નૈતિક નિયમો બહાર કર્યા હતા અને એ નિયમોનું પાલન પ્રજા બરાબર કરે તે માટે તેણે પૂરેપૂરી સાવચેતી પણ રાખી હતી. હેમચંદ્રાચાર્ય કહે છે કે તેના અહિંસાના આદેશને અનુસરીને, અંત્યજો જેવા પણ જૂ માંકણ સુધાંની હત્યા નહોતા કરતા. એ કથનમાં ભલે કાંઈક અતિશયોક્તિ હશે પણ રાજા એ બાબતમાં પૂરેપૂરો સતર્ક હતો એમાં તો જરાયે શંકા નથી. પ્રબંધચિંતામણિ અને તેવા ખીજા પ્રબંધોમાં જે એક વૃકાવિહાર મંદિર બંધાવાનો ઇતિહાસ મળી આવે છે તેનાથી આ હકીકતને ચોક્કસ પુષ્ટિ મળે છે.

કુમારપાલે આ રીતે નૈતિક કાર્યો કરવા ઉપરાંત જૈનધર્મનો પ્રચાર અને પ્રભાવ વધારવા અર્થે તેણે ઠેકઠેકાણે સંકડો જૈન મંદિરો બાંધ્યાં—બંધાવ્યાં હતાં. શત્રુંજય અને ગિરનાર જેવા જૈનતીર્થોની, રાજસાહી ઠાઠ સાથે મોટાસંઘો કાઢી તેણે યાત્રા કરી હતી અને રાજધાનીમાં દરવર્ષે તે મોટા મોટા જૈન મહોત્સવો ઉજવતો હતો અને ખીજા શહેરોમાં પણ તેવા મહોત્સવો ઉજવવાની પ્રેરણા કરતો હતો.

તે રાજકાજ બહુ જ નિયમિત રીતે ભેતો. તેની દિનચર્યા બરાબર વ્યવસ્થિત હતી. વિલાસ કે વ્યસનને તેના જીવનમાં સ્થાન જ ન હતું. તે બહુ જ દયાળુ અને ન્યાયપરાયણ હતો. તે અંતરથી ખરેખરો મુમુક્ષુ હતો અને ઐહિક કામનાઓથી તેનું મન ઉપશાંત થયું હતું. રાજધર્મ છે એમ બાણીને તે રાજની સર્વ પ્રવૃત્તિ કાળજીપૂર્વક ભેતો પણ તેમાં તેની આસક્તિ ન હતી. તેની દિનચર્યાના સંબંધમાં હેમચંદ્રાચાર્યે, પ્રાકૃતદ્વયાશ્રય કાવ્યમાં અને સોમપ્રભાચાર્યે કુમારપાલ પ્રતિબોધ નામના ગ્રંથમાં જે સૂચવ્યું છે તે પરથી સમજાય છે કે—તે સવારના વખતમાં, સૂર્યોદય થયાં પહેલાં જ શય્યામાંથી ઉઠી જતો અને સૌથી પ્રથમ જૈનધર્મમાં મંગલભૂત ગણાતા અરિહંત, સિદ્ધ, આત્માર્થાદિ પાંચ નમસ્કારપદોનું સ્મરણ કરતો. ખમ્પી શરીરશુદ્ધિની ક્રિયાવગેરેથી

નિવૃત્ત થઈ, પોતાના રાજમહાલયમાં જે ગૃહચૈત્ય હતું તેમાં જઈ પુષ્પાદિ વગેરેથી જિનપ્રતિમાની પૂજા કરી સ્તવના સાથે પંચાંગ પ્રણિપાત કરતો. ત્યાંથી નીકળી, પછી તે તિલકાવસર નામના મંડપમાં જઈને સુકોમલ ગાદી ઉપર બેસતો. ત્યાં તેની સામે બીજા સામંત રાજાઓ આવીને બેસતા. પાસે આમર ધારણ કરનારી વારાંગનાઓ ઉભી રહેતી. પછી રાજપુરોહિત કે બીજા બ્રાહ્મણો આવીને રાજાને આશીર્વાદ આપતા અને તેના કપાળમાં ચંદનનો તિલક કરતા. તે પછી બ્રાહ્મણો તિથિવાચન કરતા, તે સાંભળતો. ત્યાર બાદ બ્રાહ્મણોને દાન આપી તેમને વિદાય કરતો અને પછી તરત જ અર્જુદારોની અલંગ્ઓ સાંભળતો. પછી ત્યાંથી ઉઠીને મહેલોની અંદર, જ્યાં માતા અને તેની બીજી માતાજેવી રાજવૃદ્ધા સ્ત્રીઓ રહેતી ત્યાં જઈ તેમને નમસ્કાર કરતો અને તેમના આશીર્વાદ મેળવતો. તે પછી કૃળ-કુલ આદિવડે રાજલક્ષ્મીની પૂજા કરાવતો અને બીજા પણ દેવી-દેવતાની જે પ્રતિમાઓ રાજમહેલમાં રહેલી હતી તેમની સ્તુતિ વગેરે કરાવતો. વૃદ્ધસ્ત્રીઓ વગેરેને સહાયતાર્થ ધન આપતો. ત્યાંથી પછી તે વ્યાયામશાળામાં જતો અને યથાયોગ્ય વ્યાયામ કરતો. તે પછી સ્નાન કરી, વસ્ત્ર વગેરે પહેરી, રાજમહેલના બહારના ભાગમાં આવતો. ત્યાં તે પહેલાંથી જ સવારી માટે તૈયાર કરી રાખેલા રાજગજ ઉપર આરૂઢ થઈ, સઘળા સામંત મંત્રી આદિના પરિવાર સાથે, પોતાના પિતાના પુણ્યનામથી અંકિત ત્રિભુવનપાલવિહાર નામનું જે મહાવિશાળ અને અતિભવ્ય જૈનમંદિર કોડો રૂપીઆ ખર્ચ કરી, તેણે અંધાબુધ્ધ હતું તેમાં દર્શન અને પૂજન કરવા અર્થે તે જતો. જે વખતે તે જિનમૂર્તિને અભિષેક કરાવતો તે વખતે રંગમંડપમાં વારાંગનાઓ ઘણા આડંબર સાથે નૃત્ય અને ગાન કરતી. જિનમંદિરમાં પૂજાવગેરેનો વિધિ સમાપ્ત કરી, તે પછી હેમચંદ્રાચાર્યપાસે જઈ, તેમના ચરણવંદન કરતો અને ચંદન, કપૂર અને સુવર્ણકમલોવડે તેમનાં ચરણોની પૂજા કરતો. તેમના મુખેથી યથાવસર ધર્મબોધ સાંભળી ત્યાંથી રાજમહેલ તરફ પાછો ફરતો. પાછા ફરતી વખતે તે હાથીપર ન ચઢતાં ઘોડા ઉપર સવાર થતો અને સ્વસ્થાને પહોંચતો. ત્યાં પછી ચાચકાદિ જનોને યથાયોગ્ય દાન વગેરે આપી ભોજન કરતો. તેનું ભોજન બહુ જ સાત્ત્વિક પ્રકારનું રહેતું. જૈનધર્મના બોધ પ્રમાણે, તે ઘણીવાર એકાશન વગેરે તપ કરતો અને લીલા શાક વગેરે સ્વાદવાળા પદાર્થોનો ત્યાગ કરતો. જમી રહ્યા પછી તે આરામગૃહમાં બેસતો અને ત્યાં યથાપ્રસંગ વિદ્વાનોની સાથે શાસ્ત્ર અને નત્વસંબંધી વિચાર કરતો.

ત્રીજો પહોર ઢળ્યા પછી તે રાજપાટિકાએ નીકળતો. રાજા પોતાના બધા રાજસાહી ઠાઠસાથે રાજમહેલમાંથી નીકળી, શહેરના રાજમાર્ગે થઈ, બહાર ઉદ્યાનમાં જઈ ઘડી-બે ઘડી જે ઉદ્યાનઠીડા કરે તેનું નામ રાજપાટિકા. ગુજરાતીભાષામાં એનું નામ છે રાયવાડી અને રાજપૂતાની ભાષામાં એનો ઉચ્ચાર છે રેવાડી. સંધ્યાસમય થતાં ત્યાંથી તે રાજમહેલ તરફ પાછો ફરતો, અને મહેલોમાં આવી, દેવની આરતી વગેરેનું સંધ્યાકર્મ કરતો. પછી, તે વખતે વારાંગનાઓ વગેરે જે નૃત્ય અને ગાન કરતી, તે એક પાટ પર બેસીને સાંભળતો. સ્તુતિપાઠકો અને ચારણો વગેરે તે વખતે ખૂબ તેની સ્તુતિઓ કરતા. ત્યાંથી પછી તે સર્વાવસર નામના મુખ્ય સભામંડપમાં આવીને

સિંહાસનાસીન થતો. સર્વ રાજવર્ગીય અને પ્રજાવર્ગીય સભાજનો ત્યાં ઉપસ્થિત થતા. રાજપુરોહિત આવીને રાજ અને રાજ્યના કલ્યાણાર્થે મંત્રપાઠ લાજતા. પછી આમર ધારણ કરનારી વારંજીઓ આસપાસ આમરાદિ રાજ-ઉપકરણો ધારણ કરીને ઉભી રહેતી. પછી મંગલવાર્ણિત્રો વાજતા. તે પછી બીજી બીજી તેવી સ્ત્રીઓ પોતપોતાનું કામ કરવા માટે હાજર થતી. પછી વારાંગનાઓ આવીને રાજનાં ઉવારણાં લેતી. બીજા સામંતો અને ખંડિયા રાજાઓ તે વખતે હાથબેડીને ઉભા રહેતા. રાજની સન્મુખ રાજ્યના બીજા મહાજનો જેવા કે સેઠિયાઓ, આપારીઓ, પ્રધાન આમજનો વગેરે આવીને બેસતા. પરરાજ્યોના જે દૂતો આવતા તે દૂર, બધાની પાછળ, બેસતા. વારવનિતાઓનો નીરાજનાવિધિ પૂરો થતો એટલે પછી તેઓ પણ એક બાજુ બેસી જતી; અને આખી સભા પછી એકાગ્ર થઈ રાજ્યકાર્યની પ્રવૃત્તિ બેતી. રાજ્યકાર્યમાં સૌથી પ્રથમ સાન્ધિવિચ્છેદિક-એટલે પરદેશ મંત્રી (ફોરિન મિનિસ્ટર)-પરરાજ્યોસાથેના સંબંધોની કાર્યવાહી રાજને નિવેદન કરતો. કયા રાજ સાથે શી સન્ધિ થઈ છે, કયા રાજએ શું ઇષ્ટ-અનિષ્ટ કર્યું છે, કોના ઉપર લશ્કર મોકલ્યું છે, કયા લશ્કરે શું કર્યું છે, કોણ શત્રુ-મિત્ર થાય છે-ઇત્યાદિ પરરાજ્યસાથે સંબંધ ધરાવતી સઘળી કાર્યવાહીઓ તે રાજને નિવેદન કરતો. રાજ તે સાંભળી તેના વિષે યથા-યોગ્ય વિચાર બહાર કરતો. તે પછી બીજા બધી રાજ્યકાર્યવાહી થતી, તે સાંભળી તેનો યથા-યોગ્ય નીકાળ કરતો અને આખરે સમય થતાં સભા બરખાસ્ત કરી, યથા-વસરે શયનાગારમાં જઈ શય્યાધીન થતો. જૈનધર્મના પ્રતોનો વિશિષ્ટ સ્વીકાર કર્યા પછી, ઘણા ભાગે તે અહ્મચર્ય વ્રત પાળતો હતો, અને પૂર્ણ પત્નીનિષ્ઠ હતો. એ આખતમાં એ પહેલેથી જ બહુ સદાચારી હતો અને તેને લઈને એના આશ્રિત સમસ્ત રાજવર્ગીય જનોમાં એનો મોટો પ્રભાવ હતો.

આ પ્રમાણે કુમારપાલની નિયત દિનચર્યા હતી. વિશેષ અવસરો ઉપર એ ચર્યામાં જે ફેરફાર થતો તે પ્રાસંગિક હતો. દાખલા તરીકે, પ્રજાજનોના આનંદ માટે અમુક અમુક વખતે રાજમહેલના કીડાંગણમાં હાથીઓની સાકમારી થતી, કે મધ્યોની કુસ્તી થતી કે તેવા બીજા બેલો વગેરે થતા, તો તે વખતે રાજ પણ, રાજધર્મને અનુસરી સપરિવાર ત્યાં જઈને બેસતો અને એ બેલો વગેરે બેતો અને નિત્યના કાર્યક્રમમાં ફેરફાર કરતો. રથયાત્રા વગેરેના જે ધાર્મિક ઉત્સવો થતા તો તેમાં પણ તે તેવી જ રીતે સામેલ થતો. કેટલાક પર્વ દિવસોના પ્રસંગોપર મંદિરમાં રાત્રે નાટ્યપ્રયોગો કે સંગીતોત્સવ થતા અને તેમાં પણ તે પોતાની હાજરી આપતો.

કુમારપાલના જીવનનું અવલોકન કરતાં જણાય છે કે તે તેના પૂર્વગામી સિદ્ધરાજ જેટલો પ્રતિભાશાલી અને વિદ્યારસિક નહિ હોય છતાં શુદ્ધિમાન તો હતો જ. તેને યુવાવસ્થામાં વિદ્યાપ્રાપ્તિનો પૂરતો અવસર પણ ક્યાં મળ્યો હતો? તેની જવાનીનો મુખ્ય હિસ્સો, સિદ્ધરાજથી પોતાનો જીવ બચાવવા માટે, લટકવામાં અને કષ્ટો વેઠવામાં જ વીલ્યો હતો. પચાસ વર્ષની ઉંમરે એનું ભાગ્યપરિવર્તન થયું અને એ ગુજરાતના વિશાલ સામ્રાજ્યનો ભાગ્યવિધાતા બન્યો. રાજ્ય મળ્યાં પછી પણ, એના ૫-૭ વર્ષ તો, વિપક્ષિઓને થાળે પાડવામાં ગયા એટલે વયના ૫૬-૫૭ વર્ષ પછી એનું સિંહાસન

સ્થિર થયું અને એના પ્રતાપનો સૂર્ય સહસ્રકિરણોથી તપવા લાગ્યો. એ ઉમરમાં વિદ્યાધ્યયનને કેટલો અવકાશ હોય. છતાં પ્રબંધકારો કહે છે તેમ, પ્રસંગ પડતાં એણે એટલી ઉમરે પણ સખ્ત મહેનત કરી સંસ્કૃત ભાષાનો સારો સરખો અભ્યાસ કરી લીધો હતો અને તે દ્વારા વિદ્વાનોની તત્ત્વચર્ચાનો એ યથેષ્ટ આકલન કરી શક્યો હતો. હેમચંદ્રાચાર્યે, એના માટે જ બનાવેલા યોગશાસ્ત્ર અને વીતરાગસ્તોત્રનો એ હમેશાં સ્વાધ્યાય કરતો હતો. યોગશાસ્ત્રના અંતે હેમાચાર્યે કરેલા ઉલ્લેખ પરથી જણાય છે કે એને યોગની ઉપાસની વધુ પ્રિય હતી અને તેથી એણે કેટલાંક યોગશાસ્ત્રો સારી પેઠે જોયાં હતાં. ત્રિપદિશલાકાપુરુષચરિત્ર નામનો, જૈન તીર્થંકરો ઈત્યાદિ મહાપુરુષોના ચરિત્ર-વર્ણનવિષેનો જે મોટો ગ્રંથ, હેમચંદ્રાચાર્યે બનાવ્યો તે ખાસ કુમારપાલની પ્રેરણાથી જ બનાવ્યો હતો એ ઉપર જણાવેલું છે. એથી જણાય છે કે તેને એવા ગ્રંથો વાંચવાનો શોખ હતો. કદાચિત્ જૂની વાતો જણવાની જિજ્ઞાસા એને વધારે હશે. રાજ્ય-પ્રાપ્તિ પહેલાં જ્યારે એ ભટકતો ભટકતો એક વાર ચિતોડના કિલ્લા ઉપર જઈ ચઢ્યો અને ત્યાં એને જે એક દિગંબર વિદ્વાન મળી આવ્યો, ત્યારે એણે તેને એ કિલ્લાની ઉત્પત્તિ વગેરે કેવી રીતે થઈ એ બધી હકીકત પૂછી હતી; તેમ જ રાજ્યપ્રાપ્તિ પછી જ્યારે એ મોટો સંઘ કાઢી ગિરિનારની યાત્રાએ ગયો અને જૂનાગઢમાં દશદશાર-મંડપ વગેરે પ્રાચીન સ્થળો જોયાં, ત્યારે તે વિષે પણ, આચાર્ય હેમચંદ્રને એણે જૂની હકીકત જણાવવા વિનંતિ કરી હતી.

કુમારપાલ ભાવુક વધારે હતો અને તેથી જ તે આવી જાતની ધાર્મિક વૃત્તિમાં દૃઢ શ્રદ્ધાશીલ થઈ શક્યો હતો. હેમચંદ્રાચાર્ય ઉપર તેની અનન્ય ભક્તિ હતી. કાંઈક તો, તે, પોતાની પ્રવાસી દશામાં હેમચંદ્રદ્વારા ખંભાતમાં જે ઉદયનમંત્રી પાસેથી મદત મેળવી શક્યો તેના આભારને લઈને; કાંઈક, હેમચંદ્રાચાર્યે પોતાના જ્યોતિષ-જ્ઞાન બળે એને ભવિષ્યમાં ચોક્કસ રાજ્યગાદી મળવાની ખાતરી આપીને એના જે નિરાશજીવનને આશાવાન બનાવ્યો હતો તેના સ્મરણને લઈને; અને કાંઈક, રાજ્ય-ગાદી મળ્યા પછી પણ આચાર્યે એને અમુક અમુક પ્રસંગોમાં, પોતાની વિદ્યા-શક્તિના બળે આશ્ચર્યચકિત કરી દીધો હતો તેના પ્રભાવને લઈને, એ હેમચંદ્રનો અનન્ય અનુરાગી થઈ ગયો હતો. અને પછીથી જેમ ધીમે ધીમે એ આચાર્યના વિશેષ પ્રસંગમાં આવતો ગયો અને તેમના ચારિત્ર, જ્ઞાન, તપ આદિના બળનો એને વિશિષ્ટ પરિચય થતો ગયો તેમ, એ તે આચાર્યનો શ્રદ્ધાળુ શિષ્ય થતો ગયો. જ્યારે એને ખાતરી થઈ કે એ આચાર્યનું જીવનધ્યેય કેવળ પરોપકારવૃત્તિ છે અને આટલા મોટા સમ્રાટ પાસેથી પણ બે સૂઝી રોટલીઓય મેળવવાની એમની અભિલાષા નથી, ત્યારે એણે પોતાનો સમ્પૂર્ણ આત્મા એ આચાર્યના ચરણમાં સમર્પણ કર્યો અને એ મહર્ષિનો આદેશ આદરી પોતે પણ રાજર્ષિ બન્યો.

કુમારપાલ મોટો પરાક્રમી પુરુષ હતો છતાં મિથ્યા મહત્વાકાંક્ષી ન હતો. એના સામ્રાજ્યનો વિસ્તાર સહેજે જ એટલે બધો થઈ ગયો હતો. સામ્રાજ્ય વિષેની એની નીતિ રક્ષણાત્મક હતી— આક્રમણાત્મક નહોતી. પરરાજ્યો પર ચઢાઈ કરવાની એને ફરજ પડી એટલે જ એણે ચઢાઈઓ કરી. એ મહત્વાકાંક્ષી ન હતો છતાં સ્વાભિમાની પૂરો હતો. એ પોતાનો તેજેવધ જરા પણ સહન કરે તેવો ન હતો

અને સાથે રાજનીતિનો પૂર્ણ અનુભવી હતો. જે મનુષ્યના વિશેષ પ્રયત્નથી એ રાજગાદી મેળવવા નસીબદાર થયો હતો અને જે પોતાનો એક સગો અનેવી પણ થતો હતો, તે કાન્હડદેવને પણ, જ્યારે એણે પોતાની પૂર્વાવસ્થાને ઉપલક્ષી ઉપહાસ કરતો જોયો ત્યારે તેના તત્કાલ ગાત્રલંઘ કરાવી તેને નિર્ણવ બનાવી દીધી. અને તેવી જ રીતે બીજા કંટકોનો પણ તત્કાળ જીવિતનાશ કરાવી નાંખ્યો. પૂર્વાવસ્થામાં એ લાલે રંકની માફક લટખો હોય, પણ હવે લાગ્યે એને રાજ બનાવ્યો છે અને એ લાગ્યદત્ત રાજ્યનું રક્ષણ પોતાની સમથેરના બળે કરવા પોતે સમર્થ છે, એ જાતનું દૃઢ સ્વાભિમાન એના પૌરુષમાં હિછળતું હતું અને તેથી એ અભિમાનનો પ્રભાવ બતાવવા માટે એણે પોતાના આસન્નનો નાશ કરવામાં પણ કશી વાર ન લગાડી. એથી ઉલટું, જે સાજણ હુંભારે એક વખતે કાંટાના ઢગલા તળે છુપાવી સિદ્ધરાજના સૈનિકોથી એના જીવિતનું રક્ષણ કર્યું, તેને, રાજ્ય મળતાંની સાથે જ પોતાની સેવામાં બોલાવી, તેણે કહેલા ઉપકારના બદલામાં સાતસો ગામના પટાવાળું ચિત્તોડનું વર્ષાસન એણે માંધી આપ્યું. એનું આવું વર્તન જોઈ અંદરના વિરોધીઓ થરથરી ગયા અને બધો વિરોધલાવ છોડી દઈ એના અનન્ય સેવાપરાયણ થયા. એવા વિરોધીઓમાંનો એક અમણી બાહડનામનો ખાનદાન રાજકુમાર, જે રાજ્યના લશ્કરમાં ઘણો માનીતો હતો અને જેને સિદ્ધરાજે પોતાના પુત્ર તરીકે પાળ્યો હતો, તે કુમારપાલનું સાંનિધ્ય છોડી શાકંભરીના ગર્વિષ્ટ ચાહમાન અણોરાજની સેવામાં જઈ રહ્યો અને તે રાજને કુમારપાલની વિરુદ્ધ ઉભો કરી, એના રાજ્યની જડ ઉખેડવા, તેણે ગુજરાતની સીમાસામે લડાઈના મોર્ચા મંડાવ્યા. કુમારપાલના લવિષ્યમાટે એ સમય અત્યંત કટોકટીનો હતો. એના સામંતોમાંના ઘણા ખરા, ઉપરથી પક્ષમાં પણ અંતરથી વિપક્ષમાં જણાતા હતા. બાહડ રાજકુમારની ચાલાકીથી માલવાનો સ્વામી બલાલદેવ પણ, બીજા બાબુથી ગુજરાત ઉપર આક્રમણ કરવા તૈયાર થયો હતો, અને તેમ કરી તેણે કુમારપાલની સ્થિતિ સૂડીવચ્ચે સુપારી જેવી કરી મુકી હતી. પરંતુ, કુમારપાલના લાગ્યબળે એના રાજકારણીઓ, જેમની નિયુક્તિ એણે જાતે જ કરી હતી તેઓ, વધારે સમર્થ અને વિશ્વાસુ નીવડ્યા. તેમની કૃશળતાથી ગુજરાતનો પ્રબળર્થ નવા રાજ તરફ પૂર્ણ સહાનુભૂતિવાળો બન્યો હતો અને સૈનિકવર્ગ પણ પરાક્રમી અને રણશૂર રાજની છત્રછાયાનીચે ઉન્નતિની આશાથી ઉત્સાહિત થયો હતો. કુમારપાલે પોતાના વિશ્વાસુ દંડનાયક કાકભટની સરદારી નીચે ચુંદા સૈનિકોની એક જળ્યશ ફોજ માલવાના બલાલ ઉપર મોકલી દીધી અને પોતે પોતાના બધા સામંતોને સાથે લઈ મારવાડના અણોરાજનો સામનો કરવા મયો. સામંતોમાંથી મુખ્ય જે ચંદ્રાવતીનો મહામંડળેશ્વર વિક્રમસિંહ હતો, તેણે વચ્ચે આશુની નીચે જ કુમારપાલનો જીવ લઈ લેવાની વિશ્વાસઘાત ભરેલી રમત રમી; પણ કુમારપાલ તે રમતને ઝટ ઓળખી મયો અને ત્યાં ન થોભતાં સીધો શત્રુના સૈન્ય ઉપર ચાલી ગયો. પરંતુ સમયગણમાં પણ તેણે પોતાના સામંતો અને સૈનિકોને શત્રુપક્ષે ભેદેલા જોયા. કુમારપાલ પોતાના લાગ્યના પાશા નાખવા માટે, સમયકૃશળતા વાપરી, એક જ ઝપાટે શત્રુના હાથી ઉપર ધસી ગયો અને પહેલા જ વારમાં તેને આહત કરી શરણાગત થવાની તેને ફરજ પાડી. બલાલ ઉપર ચઢી મયેલા સેનાપતિએ પણ

તેટલી જ ઝડપથી શત્રુનો શિરચ્છેદ કરી કુમારપાલની વિજયપતાકા ઉજ્જયિનીના રાજમહેલ ઉપર ઉડતી કરી.

ગુજરાતનાં તદ્દન પડોસી અને લાંબા સમયનાં પ્રતિસ્પર્ધી એવાં મારવાડ અને માલવાનાં અને મહારાજ્યોને, સિદ્ધરાજ જયસિંહે જ મૂર્જરપતાકાની છાયા નીચે વિશ્રાન્તિલેતાં કરી મુક્યાં હતાં; પરંતુ તેના મૃત્યુ પછી ગાદીએ આવેલા નવીન રાજા કુમારપાલના વાસ્તવિક સ્વરૂપથી અજાત રહેલાં એ રાજ્યોએ, ગુજરાતની પતાકાને ઉખાડી ફેંકી દેવાનો પ્રયત્ન કર્યો અને એ પ્રયત્નને કુમારપાલે પોતાના પરાક્રમથી આ રીતે નિષ્ફળ બનાવ્યો. પણ એનું લાગ્ય હજી વધારે સફળતા મેળવવા માટે સર્વએકું હતું. ગુજરાતની દક્ષિણસીમા ઉપર કોંકણનું રાજ્ય આવેલું હતું. તેનું પાટનગર, મુંબઈ પાસેનું ઠાણાપત્તન હોઈ ત્યાં શિલાહારવંશી રાજાઓ રાજ્ય કરતા હતા. એ કોંકણરાજ્યની પેલી બાજુની દક્ષિણસીમા ઉપર કર્ણાટકના કદંબવંશીઓનું રાજ્ય હતું જેની રાજધાની ગોપાકપટ્ટન એટલે હાલનું પોર્તુગીજ બંદર ગોવા હતી. સિદ્ધરાજની મતા મયણુદાદેવી એ રાજવંશની કન્યા હોવાથી કર્ણાટક અને ગુજરાતબન્ને ગાદ સગાઇનો સંબંધ હતો. એટલે એ સંબંધી રાજ્યો વચ્ચે આવેલું કોંકણનું રાજ્ય ગુજરાત સાથે આથ લીડી શકે તેમ ન હોવાથી સિદ્ધરાજના સમયમાં તો તે આ દેશ સાથે મૈત્રીલાવે વર્તતું હતું. સિદ્ધરાજના મૃત્યુ પછી જ્યારે કુમારપાલ ગાદીએ આવ્યો ત્યારે એ મૈત્રીસંબંધ વિચ્છિન્ન થયો હતો અને મારવાડના અને માલવાના રાજાઓને કુમારપાલ સામે માથું ઉઠકતા બેઠાં એ કોંકણના ગર્વિષ્ઠ મલ્લિકાર્જુન રાજાને પણ ગુજરાત ઉપર આક્રમણ કરવાનો મનોરથ થઈ આવ્યો. કુમારપાલે તેના એ મનોરથને નિષ્ફળ કરવા માટે મંત્રીરાજ ઉદયનના પુત્ર દંડનાયક આંબડલટને સેનાની બનાવી એક લશ્કર કોંકણ ઉપર રવાના કર્યું. મારવાડ અને માલવા વગેરેના પ્રદેશોની રક્ષામાં ગુજરાતનું ઘણું ખર્ચ સૈન્ય રોકાએલું હોવાથી આંબડ પાસે પુરતું સૈન્યબળ ન હતું અને તેથી પહેલી વારની ચઢાઈમાં ગુજરાતના સૈન્યને કેટલીક હાર ખમીને, પાછા ફરવાની ફરજ પડી. પણ પાછળથી જ્યારે મારવાડ વગેરે તરફથી મોટી સંખ્યામાં સૈન્ય આવી પહોંચ્યું ત્યારે ફરીવાર એ જ દંડનાયકના અધિકાર નીચે ગુજરાતની એક પ્રબળ સેના તે કોંકણચક્રવર્તીના દર્પને ચૂર્ણ કરવા માટે બમણા ઉત્સાહથી રવાના થઈ. રણબૂમિમાં બંને લશ્કરો વચ્ચે યુનખવાર લઢાઈ થઈ અને તેમાં છેવટે ગુજરાતીઓનો જય થવાથી વિજયદેવીએ સેનાનાયક આંબડના ગળામાં વરમાળા પહેરાવી. રાજપિતામહ બિરુદધારક મલ્લિકાર્જુનનું માન્યોજત મસ્તક, ગુજરાતના એક દયાધર્મી વણિકસુભટે, પોતાની તીક્ષ્ણ તરવારથી કમળપુષ્પની માફક, કાપી લીધું અને તેને સુવર્ણપત્રમાં વીંટાળી, શ્રીફળની માફક, પોતાના સ્વામીના ચરણમાં ભેટ કર્યું. કુમારપાલે તેના પરાક્રમના પ્રભાવને સત્કારવામાટે, એ નિહત-રાજાનું પ્રિય બિરુદ, આંબડલટને અર્પિત કરી તેને ‘રાજપિતામહ’ બનાવ્યો.

આ રીતે કોંકણના રાજાનો ઉચ્છેદ થવાથી કુમારપાલની રાજ્યસત્તા દક્ષિણ પ્રાંતમાં પણ ઘણા દૂરના પ્રદેશ સુધી લંબાઈ હતી; અને કદાચિત્, સહ્યાદ્રિના સુદૂર શિખર સુધી ગુજરાતનો તામ્રચૂડ વિજયધ્વજ ઉડતો થયો હતો. ગુજરાતના સામ્રાજ્યની

સીમા સૂચવનારી આટલી બધી વિશાળરેખા, ભારતવર્ષના માનચિત્રમાં, માત્ર કુમારપાલના પરાક્રમે જ અંકિત કરી હતી. એના સમકાલીન ભારતીય રાજાઓમાં કુમારપાલ સૌથી વધારે મોટા રાજ્યનો સ્વામી હતો. હેમચંદ્રાચાર્ય એના રાજ્યની ચતુસ્સીમાઓ આ પ્રમાણે વર્ણવે છે -

સ કૌબેરીમાતુરુષ્કમૈન્દ્રીમાત્રિદશાપગામ્ ।

યામ્યામાવિન્ધ્યમાવાર્ધિ પશ્ચિમાં સાધયિષ્યતિ ॥

અર્થાત્-કુમારપાલની રાજરા ઉત્તરમાં તુરુષ્કલોકોના પ્રાન્તસુધી, પૂર્વમાં ગંગા નદીના તીરસુધી, દક્ષિણમાં વિન્ધ્યાચલ સુધી અને પશ્ચિમમાં સમુદ્રસુધી વર્તતી હતી. પ્રાંધકારો જણાવે છે તે પ્રમાણે-હેમાચાલે બતાવેલી એ ચતુસ્સીમામાં કોંકણ, કર્ણાટક, લાટ, ગૂર્જર, સૌરાષ્ટ્ર, કચ્છ, સિન્ધુ, ઉચ્ચા, લંબેરી, મારવાડ, માલવા, મેવાડ, કીર, જંગલ, સપાદલક્ષ, દિલ્હી, જલંધર અને રાષ્ટ્ર એટલે મહારાષ્ટ્ર આટલા અઢાર દેશોનો સમાવેશ થતો હતો. હેમચંદ્રસૂરિ, એક બીજે ઠંકાણે, પણ કુમારપાલે આ બધા દેશોને પોતાના પરાક્રમથી જીત્યા હતા તેવું ગર્ભિત સૂચન કરે છે. જેમ કે -

જિણુશ્ચેદિદશાર્ણમાલવમહારાષ્ટ્રપરાન્તાન્ કુરુન્

સિન્ધૂનન્યતમાંશ્ચ દુર્ગવિષયાન્ દોર્વીર્યશક્ત્યા હરિઃ ।

ચૌલુક્યઃ પરમાર્હતઃ વિનયવાન્ શ્રીમૂલરાજાન્વયી - ઇત્યાદિ

કુમારપાલનો રાજ્યકારભાર ઘણીરીતે અદ્ભુત સફળતાવાળો નીવડ્યો હતો. એના લગભગ ૩૦ વર્ષ જેટલા લાંબા રાજ્યસમયમાં પ્રજાએ અદ્વિતીય શાન્તિ અને ઉન્નતિ પ્રાપ્ત કરી હતી. દેશમાં સમૃદ્ધિની રેલમછેલ થઈ હતી. કોઈપણ પ્રકારનો સ્વયંક-સંબંધી કે પરચક્રસંબંધી કશોય ઉપદ્રવ નહોતો થયો. લક્ષ્મીદેવીની માફક પ્રકૃતિદેવી પણ એના રાજ્ય ઉપર જાણે તુષ્ટમાન થઈ હતી અને તેથી એના સમયમાં દેશમાં એકે દુકાળ પણ નહોતો પડ્યો. એની આવી ભાગ્યસફળતા નજરે જોનાર આચાર્ય સોમપ્રભ, એ વાત ખાસ ભારપૂર્વક લખે છે.

સ્વચક્રં પરચક્રં વા નાનર્થં કુરુતે ક્વચિત્ ।

દુર્ભિક્ષસ્ય ન નામાપિ શ્રૂયતે વસુધાતલે ॥

આચાર્ય હેમચંદ્ર એના સર્વગુણોનો સમુચ્ચય બહુ જ પરિમિત અને સર્વથા યથાર્થ શબ્દોમાં, પોતાની છેલ્લી રચનામાં આ પ્રમાણે આપે છે -

કુમારપાલો મૂપાલઞ્ચૌલુક્યકુલચન્દ્રમાઃ ।

મવિષ્યતિ મહાબાહુઃ પ્રચ્છન્ડાલ્પ્પન્ડશાસનઃ ॥

સ મહાત્મા ધર્મદાનયુદ્ધવીરઃ પ્રજાં નિજામ્ ।

ક્રાદ્ધિં નેષ્યતિ પરમાં પિતૈવ પરિપાલયન્ ॥

ઋજુરપ્યતિચતુરઃ શાન્તોઽપ્યાશ્વાદિવસ્પતિઃ ।

ક્ષમાવાનપ્યધૃત્યશ્ચ સ ચિરં ક્ષમામવિષ્યતિ ॥

સ આત્મસદૃશં લોકં ધર્મનિષ્ઠં કરિષ્યતિ ।

વિદ્યાપૂર્ણમુપાધ્યાય દ્રવાન્તેવાસિનં દિતઃ ॥

શરણ્યઃ શરણેચ્છૂનાં પરનારીસહોદરઃ ।

પ્રાણેભ્યોઽપિ ઘનેભ્યોઽપિ સ ધર્મં બહુમંસ્યતે ॥

પરાક્રમેણ ધર્મેણ દાનેન દયયાક્ષયા ।

અન્યેશ્ચ પુરુષગુણેઃ સોઽદ્વિતીયો ભવિષ્યતિ ॥

હેમચંદ્રસૂરિ, અહિ ભવિષ્યપુરાણની વર્ણનપદ્ધતિ પ્રમાણે, મહાવીરના મુખેથી કુમારપાલનું આ પ્રકારે ભાવિ વર્ણન કરાવે છેઃ અર્થાત્—“યૌલુક્યવંશમાં યદ્રમા સમાન અને પ્રચંડરીતે પોતાનું અખંડ શાસન ચલાવનાર કુમારપાલ રાજા થશે. એ ધર્મવીર, દાનવીર અને યુદ્ધવીરના ગુણોથી મહાત્મા કહેવાશે અને પિતાની માફક પોતાની પ્રજાનું પાલન કરી તેને પરમસંપત્તિવાન બનાવશે. એ સ્વભાવે સરલ હોઈને પણ અતિચતુર થશે, શાંત હોઈને પણ પોતાની આજ્ઞાના પાલન માટે પ્રતાપવાન—સૂર્ય જેવો પ્રખર નેજવાન થશે, ક્ષમાવાન થઈને પણ ક્રોધથી એ ધૂબ્ય નહિ થશે અને એ રીતે ચિરકાલસુખી પૃથ્વીનું પાલન કરશે. પોતાની માફક તે બીજા લોકોને ધર્મનિષ્ઠ બનાવશે; જેમ ઉપાધ્યાય પોતાના શિષ્યને પૂર્ણવિદ્યાવાન બનાવે તેમ. શરણાર્થીઓને તે શરણભૂત થશે પરસ્ત્રીઓ માટે તે ભ્રાતા જેવો નિષ્કામ હશે અને પ્રાણથી અને ધનથીય ને ધર્મને વધારે પ્રિય ગણશે. એ રીતે, પરાક્રમથી, ધર્મથી, દાનથી, દયાથી આજ્ઞાથી, અને તેવા બીજા પુરુષ ગુણોવડે તે અદ્વિતીય થશે.”

હેમચંદ્રસૂરિએ આલેખેલા કુમારપાલના ગુણોના આ રેખાચિત્રમાં, વાસ્તવિકતાની દૃષ્ટિએ યત્નિકૃતિય પણ વ્યવ્ય નથી, એ વસ્તુ, કુમારપાલના જીવનવિષે જે કેટલીક મુખ્ય મુખ્ય વાતો મેં અહિ દુકમાં વર્ણવી છે તે પરથી નિસ્સંદેહ રીતે શિદ્ધ થાય છે. ગૂર્જરેશ્વરે ॥ રાજપુરોહિત નાગરશ્રેષ્ઠ મહાકવિ સોમેશ્વરે, કીર્તિ કૌમુદી નામના પોતાના કાવ્યમાં, કુમારપાલની કીર્તિ કથાનું વર્ણન કરતાં, હેમાચાર્યના ઉપર આપેલા પ-૬ લોકોનો ભાવનો તાદૃશ નીચોડ માત્ર એ જ લોકોમાં આખી દીધો છે અને તે નીચોડ હેમાચાર્યના ભાવ કરતાંયે વધારે સત્વશાલી છે. સોમેશ્વર કહે છે કે

પૃથ્વપ્રભૃતિભિઃ પૂર્વેર્ગચ્છદ્ભિઃ પાર્થિવૈર્દિવમ્ ।

સ્વકીયગુણરત્નાનાં યત્ર ન્યાસ ઇવાર્પિનઃ ॥

ન કેવલં મહીપાલાઃ સાયકૈઃ સમરાઙ્ગણે ।

ગુણેર્લોકપૃથૈર્યેન નિર્જિતાઃ પૂર્વજા અપિ ॥

અર્થાત્—“પુરાણકાળમાં પૃથ્વ આદિ જે મહાગુણવાન રાજાઓ થઈ ગયા છે તેમણે બાળે પોતાના ગુણરૂપી રત્નોની થાપણ, સ્વર્ગમાં જતી વખતે, આ કુમારપાલને સોંપી દીધી હોમ તેમ લાગે છે. [જે આમ ન હોય તો આ કલિકાલમાં જન્મેલા રાજામાં આવા સાત્ત્વિકગુણોનો સમુચ્ચય ક્યાંથી હોય. ?]

કુમારપાલે પોતાના બાળોવડે કેવલ રાજાઓને જ સમરાંગણમાં જીત્યા હતા એમ નથી પણ પોતાના લોકપ્રિય ગુણોવડે તેણે પોતાના પૂર્વજોને પણ જીતી લીધા હતા.” સોમેશ્વરનું આ કવન કુમારપાલની જીવનસિદ્ધિના ભાવને સંપૂર્ણરૂપે વ્યક્ત કરનારું સર્વોત્કૃષ્ટ રેખાચિત્ર છે. ગુજરાતની પુરાતન સંસ્કૃતિના સર્વસંગ્રહાલયમાં આ ચિત્ર કેન્દ્રસ્થાને મુશોભિત થાઓ.

સૂચનાત્મક - અનુપૂર્તિ

*

કુમારપાલના જીવનવિષેનું રેખાચિત્ર જેવું આ કેટલુંક શબ્દાલેખન ૫-૭ વર્ષ ઉપર મેં કરી રાખ્યું હતું, તેને, ગતવર્ષે, પાટણમુકામે ગુજરાતી સાહિત્ય સન્મેલનના ઉપ-ક્રમથી, એ સન્મેલનના વર્તમાન પ્રમુખ શ્રીમાન્ કનૈયાલાલ મા. મુનશીની એકમાત્ર પ્રશંસનીય પ્રેરણા અને એમના જ પ્રમુખત્વનીચે ઉજવવામાં આવેલ હૈમસારસ્વત સત્રને પ્રસંગે વાચન અર્થે પ્રસ્તુત કરવામાં આવ્યું હતું. કુમારપાલના ધાર્મિક જીવન વિષે ગુજરાતના જૈન-જૈનેતર વિદ્વાનોમાં કેટલીક પરસ્પર વિસંવાદી ચર્ચા થતી બેવામાં આવે છે. એ વિષયમાં, ઐતિહાસિક સાધનોના નિષ્કર્ષ ઉપરથી જે તથ્ય જણાય છે તેનું કેટલુંક સામાન્ય સૂચન તો મેં આ નિબંધમાં કરેલું જ છે; પણ એ કરતાં વધારે વિસ્તૃતરૂપે ઐતિહાસિક પુરાવાઓની સૂક્ષ્મ છાનખીન કરવાનો આ નિબંધમાં અવકાશ થે નથી અને પ્રયોજન થે નથી. સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલા માં અત્યારે કુમારપાલ ચરિત્ર સંગ્રહ નામનો એક પ્રબંધાત્મક સંગ્રહ છપાય છે જેમાં અપ્રકાશિત એવા કેટલાક પ્રાચીન પ્રબંધોનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. એ સંગ્રહની પ્રસ્તાવનામાં મેં એ વિષયની સવિસ્તર અને સપ્રમાણ ચર્ચા કરવાનું ધાર્યું છે. તેથી એ ચર્ચાનું વિશેષ હાર્દ સમજવા ને જાણવાની ઇચ્છા હોય તેમને, એ પ્રકટ થનાર સંગ્રહનું અવલોકન કરવાની બલામણુ છે.

જિનવિજય મુનિ

* *
*

શ્રીમદ્ ભાગવત પુરાણ

લે૦ શ્રીયુત દુર્ગાશંકર કેવલરામ શાસ્ત્રી

*

અઢાર પુરાણુ અને અઢાર કે તેથી વધારે ઉપપુરાણુના વિશાળ પૌરાણિક સાહિત્યમાં શ્રીમદ્ભાગવત શ્રેષ્ઠ છે. ભાગવત પ્રાચીનતમ પુરાણુ નથી, અલબત્ત મહાભારત અને બધાં પુરાણો વ્યાસજીએ રચેલાં છે એવું જેઓ ધાર્મિકશ્રદ્ધાથી માને છે તેઓને આ કથન નહિ રહે; પણ આ લેખ જ જેઓને ઐતિહાસિક વિચારણા માન્ય છે, તેઓને માટે છે. વાયુ, મત્સ્ય, ઋક્ષાંડ, ઋક્ષ, વિષ્ણુ અને કૂર્મ, એટલાં કે એથી એકાદ વધારે, પુરાણો રચાયા પછી ભાગવત રચાયું છે અને બીજાં પુરાણો ભાગવત પછી રચાયાં છે. પુરાણોને પરસ્પર સરખાવીને વાંચવાથી આ પૌર્વાપર્ય, ઐતિહાસિક દૃષ્ટિ જેનામાં હોય તેને સ્પષ્ટ દેખાય છે.

ઇતિહાસ-પુરાણોને ઉલ્લેખ વૈદિક સાહિત્યમાં મળે છે અને મૂળ પુરાણ મહાભારતની પ્રથમ રચના વખતે એટલે પ્રાચ્યવિદોના સામાન્ય મતે ઈ. સ. ચોથા શતકમાં રચાયું હોવાનો સંભવ છે. અલબત્ત એ પુરાણમાં જે વંશાદિ વસ્તુનો સંગ્રહ થયો હશે તે તો સૂતોએ શ્રુતપરમ્પરાથી જાળવી રાખેલ ઘણું પ્રાચીન વસ્તુ હોવાનો સંભવ છે અને એ કારણથી પુરાણોનું ઐતિહાસિક મૂલ્ય ઘણું છે. સુધારાની પહેલી ભરતીના વેગમાં, પુરાણો બ્રાહ્મણોએ પેટ ભરવા માટે રચેલાં છે એવી માન્યતા કેળવાયેલા વર્ગમાં ફેલાવાથી પુરાણોની ઘણી ઉપેક્ષા થઈ હતી. અલબત્ત વીલ્સન જેવા પાશ્ચાત્ય સંસ્કૃતજ્ઞોએ સો વર્ષ પહેલાંયે પુરાણોમાં શું છે એ જોવાનો પ્રયાસ કર્યો હતો. પણ પુરાણવિદ પાર્જિટરે પુરાણોનાં ભુગોલવર્ણન તથા વંશવર્ણનનો અભ્યાસ કરી એ સાહિત્યનું ઐતિહાસિક મૂલ્ય આંકી બતાવ્યું ત્યારથી પુરાણોની કિંમત વધી.

પણ ભાગવત પુરાણ બીજાં પુરાણોથી ઘણી રીતે જુદું પડે છે. એમાં ત્રણ ભિન્ન પ્રવાહો એકત્ર થયા છે અને એ કારણની ત્રિવિધ દૃષ્ટિથી ભાગવતનો અભ્યાસ થઈ શકે છે. સામાન્ય જનસમાજમાં ભાગવત ધાર્મિક દૃષ્ટિથી સંભળાય છે અથવા વંચાય છે, અને ધાર્મિક ગ્રંથ તરીકે એ ઘણો ઉચ્ચો ગ્રંથ છે. શ્રી વલ્લભસમ્પ્રદાય અને શ્રી ગૌરાંગસમ્પ્રદાયમાં ભાગવતનું વેદ અને ગીતા કરતાં પણ અધિક પ્રામાણ્ય મનાય છે. છેલ્લાં સાતસો વર્ષ દરમિયાન સંસ્કૃત સાહિત્ય ઉપર અને તે કરતાં પણ વધારે મજ, બંગાળી, મરાઠી, ગુજરાતી, તેલુગુ, કાનડી વગેરે દેશીભાષાના સાહિત્ય ઉપર ભાગવતે અસર કરી છે. ભાગવતમાંથી વસ્તુ લઈને અથવા અનુવાદરૂપે જુદી જુદી ભાષાઓમાં સંખ્યાબંધ રચનાઓ થઈ છે.

ભાગવતનો સમય-ભાગવત ઈ. સ. બારમા શતકમાં પ્રસિદ્ધ થયું છે, તે પહેલાં એની પ્રસિદ્ધિ હોવાના પુરાવા નથી. બારમા શતકના મધ્યવાચ્યે ભાગવતને પ્રમાણ-ગ્રંથ ગણીને એક ગ્રંથ “ભાગવતતાત્પર્યનિર્ણય” લખ્યો છે. એજ શતકના જયદેવ કવિએ ભાગવત પરથી “ગીતગોવિન્દ” નામનું સુંદર કાવ્ય લખ્યું છે. બારમા શતકમ

આટલી પ્રસિદ્ધિ પામવા માટે એ પુરાણ અસોએક વર્ષ પહેલાં રચાયું હોવું જોઈએ. અને દશમા શતકમાં ભાગવતનો એકાદ ઉલ્લેખ મળે છે એ ઉપરથી તે પહેલાં રચાયું હોવાનો સંભવ છે.

બીજી તરફથી, સાતમા-આઠમા શતકના કવિ માઘના શબ્દોને તથા આઠમા-નવમા શતકના ગૌડપાદ અને શંકરાચાર્યના વિચારોને તથા શબ્દોને ભાગવતમાં ઉતારેલા છે. એ પુરાવાને આધારે ઈ. સ. નવમા શતકમાં ભાગવત રચાયું છે એવો મારો મત મેં અન્યત્ર સપ્રમાણ દર્શાવ્યો છે.^૧

ભાગવતના ત્રણ પ્રવાહો—ભાગવતમાં ત્રિવિધ-પ્રવાહ એકત્રિત થયાનું જે ઉપર કહ્યું છે તે ત્રિવિધ પ્રવાહો (૧) પૌરાણિક પ્રવાહ, (૨) ભક્તિમાર્ગનો પ્રવાહ, અને (૩) શ્રીકૃષ્ણચરિત્રનો પ્રવાહ. આ ત્રણે પ્રવાહોનું મૂળ ભાગવત કરતાં ઘણા જૂના કાળમાં રહેલું છે.

(૧) પૌરાણિક પ્રવાહમાં ઈ. સ. પૂર્વે ચોથા-પાંચમા શતકમાં લખાયેલું મૂળ પુરાણ કે જેમાંથી ઈ. સ. પૂર્વે બીજા શતકમાં ઉતારો થયો છે તે ભવિષ્યપુરાણ અત્યારે મળતાં નથી. અને એ મૂળ પુરાણના “સર્ગથ પ્રતિસર્ગથ વંશો મન્વન્તર્ગણિ ચ । વંશાનુચરિતં ચૈવ પુરાણં પદ્મલક્ષણમ્ ॥” આ પુરાણલક્ષણમાં કહેલા પાંચે વિષયોનો પ્રાચીનતમ પાઠ અત્યારે તો માત્ર વાયુપુરાણમાં મળે છે. એ પુરાણનું કલિવંશવર્ણન ઈ. સ. ચોથા શતકના આરંભનું છે; પણ એનું બાકીનું વંશવર્ણન એથીયે અસો વર્ષ જૂનું હોવાનો સંભવ છે. જ્યારે કૌવલધ્યાયો ઈ. સ. ચોથા શતક પછી ઉમેરાયા છે ત્યારાં અને મત્સ્યનો વંશવર્ણનનો પાઠ વાયુપુરાણનો લગભગ સમકાલીન છે ત્યારે વિષ્ણુપુરાણનો તે પછીનો અને ભાગવતે તો વિષ્ણુપુરાણમાંથી ઉતારો કર્યો છે. પુરાણવિદ્ પાર્શ્વટરે “*Dynasties of the Kali Age*” માં વાયુ આદિ પુરાણોના કલિવંશવર્ણનના પાઠોની ઐતિહાસિક તુલના કરી છે. અને એ રીતે “સર્ગાદિ” બીજા પૌરાણિક વિષયો પણ વિદ્વાનોના અભ્યાસની રાહ જુએ છે. ભાગવતપુરાણ એ પૌરાણિક સાહિત્યના પ્રવાહમાં મધ્યમાં રહેલું છે.^૨

(૨) ભક્તિશાસ્ત્ર તરીકે ભાગવતપુરાણનું સ્થાન ઘણું ઉચ્ચ છે. ભક્તિનું મૂળ તો છેક વેદકાળમાં મળે છે.^૩ ભક્તિમાર્ગનો “અનુચલ” જેવો મૌલિક સિદ્ધાન્ત કદાચ અને મુરુગ ઉપનિષદમાં મળે છે. અને ભગવદ્ગીતા તો ભક્તિનું આદિ શાસ્ત્ર છે. ભગવદ્ગીતાથી ચાલેલો ભક્તિમાર્ગનો પ્રવાહ મહાભારતના નારાયણીયપર્વ જેવા ભાગો અને વિષ્ણુપુરાણમાં થઈને ભાગવતમાં ઉતર્યો છે, પણ ભાગવતની ભક્તિ અને ભગવદ્ગીતાની ભક્તિ એક નથી. દા. ત., ભક્તિ, જ્ઞાન, યોગ, અને કર્મ આદેના સમન્વય ઉપર તથા માનવચિત્તની ઉચ્ચકોટિની સામ્યાવસ્થા અથવા સ્થિતપ્રજ્ઞતા ઉપર ગીતામાં જે ભાર મૂક્યો છે તે ભાગવતમાં નથી. ભક્તિની ગાઢતા ઉપર ભગવદ્ગીતા કરતાં ભાગવતમાં

૧ “ભાગવતના સમય” નામનો પુરાતત્ત્વ પુ. પ, પૃ. ૧૧૧ માં મારો લેખ, તથા, “ભાગવતના સમયની ચર્ચા” પ્રસ્થાન, શ્રાવણ, ૧૯૬૬

૨ જુઓ, માફ “પુરાણવિવચન”, પૃ. ૯૭

૩ જુઓ, મારો “વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ”, આ, ૨, પૃ. ૩૩, પ્ર. ૧

વધારે ભાર છે, અને ભાગવતની અસરથી તે પછીના કાળમાં એ તત્ત્વ વધતું ગયું છે. ભાગવતમાં ભક્તિ સાથે જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પણ છે, જો કે ભક્તિ મુખ્ય અને જ્ઞાન-વૈરાગ્ય ગૌણ છે. જ્યારે પાછલા કાળમાં જ્ઞાન-વૈરાગ્યનો અંશ ઘણો ઓછો થઈ ભક્તિની ગાઢતા ઉપર અતિશય ભાર આપવામાં આવ્યો છે. ઐતિહાસિકદૃષ્ટિએ જોતાં પુષ્ટિમાર્ગની અને ચૈતન્યસંપ્રદાયની ભક્તિ ભાગવતની ભક્તિથી આ રીતે ભુટી પડે છે. એક રીતે ભક્તિવૃત્તિનો એમાં ઐતિહાસિક વિકાસ છે. પણ માનવચિત્તવૃત્તિઓના સમન્વયની દૃષ્ટિએ આ પાછળના સમ્પ્રદાયોની ભક્તિમાં અવનતિ થઈ છે. જેઓ ધાર્મિકદૃષ્ટિએ વિચાર કરે છે તેને માટે મારું આ વક્તવ્ય નથી.

ભક્તિના વિકાસમાં કાળક્રમે સ્તોત્રોંએ પ્રાપ્ત કરેલું સ્થાન ઐતિહાસિક વિચારકોનું ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. વિષ્ણુપુરાણ કરતાં પણ ભાગવતની સ્તુતિઓ વધારે ભાવપૂર્ણ અને ગાઢ ઉર્મિવાળી છે. ભક્તિના અંગ તરીકે પણ સ્તોત્રનો મહિમા કાળક્રમે વધતો ગયો છે, ને એ કારણથી ભાગવતમાં વારંવાર આવતી સ્તુતિઓ સ્વાભાવિક અને છે.

ભક્તિવૃત્તિને ડેળવવામાં અવતારકથાઓ અને ભક્તોના ચરિત્રો ઘણો અગત્યનો ભાગ ભજવી શકે છે એ તત્ત્વ તો ભાગવત પહેલાં જ ધ્યાનમાં આવેલું. વિષ્ણુપુરાણમાં અવતારકથાઓ છે તેમ જ પ્રદહાદ, ધ્રુવ જેવા ભક્તોનાં ચરિત્રો પણ છે. પણ ભાગવત આ બાબતમાં વિષ્ણુપુરાણ કરતાં ઘણું આગળ વધ્યું છે. વિષ્ણુના અવતારોનું બીજાં તો ભગવદ્ગીતામાં છે. ભગવાન કૃષ્ણ પોતાની “વિભૂતિ”ઓ ગણાવે છે અને “હું મને પોતાને વારંવાર સૃષ્ટું છું” એમ કહે છે, તેમાંથી અવતારવાદનો વિકાસ થયો છે, અને રામાનુજ સમ્પ્રદાયમાં અવતારોને “વિભવ” જ કહે છે. વિષ્ણુના અવતારોના નામો વિષ્ણુપુરાણ તેમ જ હરિવંશમાં મળે છે અને વરાહ, વામન જેવા અવતારોની કથાઓ હરિવંશમાં છે. જ્યારે ભાગવતમાં ઘણા અવતારોની સવિસ્તર કથાઓ છે. વળી એમાં અનેક ભક્તોનાં ચરિત્રો છે, જેમાં સુદામા જેવા કેટલાક ભક્તોની તો પહેલી જ વાર ઓળખાણ થાય છે. “અન્નમિલાખ્યાન” જેવામાં ‘નામ-મહિમા’ છેલ્લી કોટિએ પહોંચે છે. ભાગવત ભક્તિ, જ્ઞાન, વૈરાગ્યનો ગ્રન્થ છે એ ઉપર કહ્યું જ છે, અને કૃષ્ણચરિત્ર સિવાયના ભાગવતના ભાગોમાં યોગ અને વૈરાગ્યનો પુષ્કળ ઉપદેશ છે. ભાગવતના જ્ઞાનમાં અદ્વૈતવાદ છે ને એ અદ્વૈતવાદ ઉપનિષદો અને મહાભારતમાંથી ઉતરી આવ્યા છે, પણ ભાગવતનું અદ્વૈત એ શંકરાચાર્યનું ‘કેવલાદ્વૈત’ રામાનુજનું ‘વિશિષ્ટાદ્વૈત’ કે વલ્લભાચાર્યનું ‘શુદ્ધાદ્વૈત’ નથી. પણ ભાગવતનો અદ્વૈતવાદ સ્વતંત્ર છે. જો કે ભાગવતકારે આચાર્યો પેઠે પોતાનો વાદ સુસંકલિત રૂપે મૂક્યો નથી, પણ એનું કાંઈક સ્વરૂપ પકડી શકાય છે ખરું. તેનો પોતાનો વાદ સુસંકલિત ન હોવાથી જ કદાચ ભાગવતના સમયના વિચારમાં કહ્યું છે તેમ શંકરાચાર્યના વિચારો અને વચનોની અસર ભાગવતમાં જોઈ શકાય છે.

(૩) શ્રીકૃષ્ણચરિત્ર ભાગવતમાં બીજા કોઈ પણ પુરાણ કરતાં વધારે વિસ્તારથી અને એ જ જાણે મુખ્ય વિષય હોય એ રીતે કહેવામાં આવ્યું છે. ભાગવતનો ત્રીજો ભાગ શ્રીકૃષ્ણચરિત્રે રોક્યો છે. કૃષ્ણચરિત્રનો ઇતિહાસ જોઈએ તો મહાભારત તેનું મૂળ છે. વૈદિકસાહિત્યમાં કૃષ્ણનું નામ કવચિત્ મળે છે; પણ મથુરાના વૃષ્ણવંશના

વાસુદેવ કૃષ્ણના મહાભારત પહેલાં દર્શન નથી થતાં. મહાભારતમાં કૃષ્ણનું ઉત્તર-કાળનું જ ચરિત્ર મળે છે. ત્યારે હરિવંશમાં કૃષ્ણનું બાલચરિત્ર સવિસ્તર આપેલું છે. મહાભારતમાં પોતામાં પણ કૃષ્ણના સ્વરૂપનું કથન એકસરખું સર્વત્ર નથી. કેટલાક ભાગમાં કૃષ્ણને સામાન્ય ‘ક્ષત્રિયવીર’ જ કહેવામાં આવ્યા છે; ત્યારે બીજે ‘યોગેશ્વર’ અને ‘નારાયણનો અવતાર’ પણ કહ્યા છે. હરિવંશમાં કૃષ્ણને નારાયણનો અવતાર જ ગણ્યા છે. વિષ્ણુપુરાણનું કૃષ્ણચરિત્ર હરિવંશથી થોડું આગળ વધે છે. જ્યારે ભાગવતમાં કૃષ્ણચરિત્રમાં વધારેમાં વધારે વિકાસ જોવામાં આવે છે. ભાગવતમાં કૃષ્ણ ભગવાનના એક અવતાર નહીં પણ કૃષ્ણસ્તુ મગવાન્સ્વયમ્ એ રીતે કૃષ્ણ એ જ પરમાત્મા અને મત્સ્યાદિ અવતારો એ કૃષ્ણના અવતારો, એવી માન્યતા જોવામાં આવે છે અને પાછળથી ભાગવતાનુસારી વૃંદાવનોમાં એ જ માન્યતા રૂઢ થઈ છે.

કૃષ્ણના બાલચરિત્રમાં, હરિવંશમાં કે વિષ્ણુપુરાણમાં નથી એવું ઘણું ભાગવતે ઉમેર્યું છે. વસ્ત્રહરણલીલા, કૃષ્ણે માટી ખાઈ મોઢામાં જશોદાને વિશ્વ દેખાડ્યું, વિગેરે એના દાખલાઓ છે. મારા મતે ભાગવતના કર્તા દ્રાવિડ હતા અને દ્રવિડમાં સાતમાથી નવમા શતકમાં થયેલા આલવારો અને બીજાં ભક્તોમાં પ્રચલિત કથાઓનો તેણે લાભ લીધો છે. મારું વક્તવ્ય એ છે કે હરિવંશ, વિષ્ણુપુરાણ કે ભાગવતમાંથી શ્રીકૃષ્ણનું જે ચરિત્ર મળે છે તે એક સરખું નથી તેમ જ કૃષ્ણ ઐતિહાસિક પુરુષ હોય તોપણ તેનું યથાર્થ ચરિત્ર નથી, પણ કૃષ્ણભક્તિના વિકાસ સાથે વિકાસ પામેલું ઇષ્ટદેવતાનું વર્ણન છે. વળી ભગવદ્ગીતાના ઉપદેશક તરીકેનું વાસુદેવનું સ્વરૂપ પાછળ રહી ગયું છે; અને ગોકુળવૃન્દાવનમાં ગોપીઓ સાથે ક્રીડા કરનાર બાલકૃષ્ણનું સ્વરૂપ ભાગવતથી આગળ આવીને તે પછીના કાળમાં સર્વવ્યાપી થઈ ગયું છે. શ્રીકૃષ્ણ-ચરિત્રના ઐતિહાસિક વિકાસનો અભ્યાસ કરવા માટે આ કારણથી ભાગવત ઘણું અગત્યનું સાધન છે.

ઉપર ભાગવતના જે ત્રણ પ્રવાહોનું સૂચન કર્યું તે ત્રણમાંથી કોઈના અભ્યાસની ઇચ્છા જેને ન હોય, તેઓએ કેવળ કથાગ્રન્થ કે કાવ્ય તરીકે પણ ભાગવત વાંચવા યોગ્ય છે. લાંબાં સ્તોત્રાં અને જ્ઞાન-વૈરાગ્યની ચર્ચાઓ સાથે અનેક કથાઓ આકર્ષક રીતે કહેલી છે, ત્યારે રસપંચાધ્યાયી જેવા ભાગો ઉર્મિકાવ્યો જેવાં છે. ભાગવતકારે અનેક વૃત્તો વાપર્યાં છે અને અલંકારોનો પુષ્કળ ઉપયોગ કર્યો છે. સંસ્કૃતભાષાની દૃષ્ટિએ પણ ભાગવત અભ્યાસ કરવા યોગ્ય ગ્રન્થ છે. વિદ્યાવતાં માગવતે પરીક્ષા એ ઉક્તિ સંસ્કૃતજ્ઞોમાં પ્રસિદ્ધ છે. વૈદિકમંત્રોથી આરંભી સાતમા – આઠમા શતક પર્યન્તના સંસ્કૃત સાહિત્યનો ભાગવતકારને સારો પરિચય છે. મંત્રોના શબ્દો, ઉપનિષદોના કટકાઓ, મહાભારતના વચનો અને બીજાં સાહિત્યમાંથી કટકાઓનો ભાગવતકારે છૂટથી ઉપયોગ કર્યો છે. ટુંકામાં, ભાગવતના કર્તા એક મહાન વિદ્વાન, પરમ વિરક્ત અને ઉત્તમ જ્ઞાની કવિ હતા. ભાગવતમાં શુકદેવની જે પ્રશંસા કરી છે અને ‘ભાગવતોત્તમ’ કે ‘ઉત્તમભક્ત’ના જે લક્ષણો વર્ણવ્યાં છે તે બધાં ભાગવતના કર્તાને લાગુ થઈ શકે તેમ મને લાગે છે.

एक चर्चाविषयक खुलासो

*

भारतीय विद्या ना २०८ अंकમાં श्रीमती हुमारी सुशीला मહેતા એમ. એ. એલ્.એલ. બી. નો “વલ્લભાચાર્ય અને તેમનો સંપ્રદાય” એ શીર્ષક જે લેખ પ્રકટ થયો છે તેમાં પૃ. ૧૫૩ ઉપર લખાયેલા -

“ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે. ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી. તેમાં તો ગોપીઓના વર્તન માટે બચાવનો પ્રયાસ જોવામાં આવે છે, ત્યારે પુષ્ટિમાર્ગમાં તો ગોપીઓની ભક્તિ જ આદર્શ ગણાય છે.” એ કથન માટે; તેમ જ પૃ. ૧૫૫ ઉપર નોંધાયેલા “જ્યાં પ્રદેવતા રાસવિહારી શ્રીકૃષ્ણદેવ હોય, જ્યાં ભક્તિનો આદર્શ ગોપી ભક્તિ હોય અને જેમાં આચાર્ય જ દેવરૂપ મનાતા હોય ત્યાં સ્વછંદતાનો પ્રવેશ સુલભ અને તો તેમાં આશ્ચર્ય જેવું નથી”

આ વિચારો સામે “નવપ્રકાશ” નામના એક પુષ્ટિમાર્ગીય સાંપ્રદાયિક સાપ્તાહિક પત્રના તા. ૧૪, જુલાઈ, ૪૦ ના અંકમાં, શ્રીચંદરદાસ વીરભાનુ નામના સભ્યને એક ટુંકો લેખ પ્રકાશિત કરાવ્યો છે જેના તરફ અમારૂં લક્ષ્ય ખેંચવામાં આવ્યું છે.

‘ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી’ એ કથનને એ લેખક ભાઈ ‘હાસ્થાસ્પદ’ માને છે અને ભાગવતના અભ્યાસના અભાવે આ ભૂલ ભરેલું કથન કરવામાં આવ્યું છે એમ એ સભ્યન જણાવે છે. એ લેખને ‘ભારતીય વિદ્યા’માં પ્રકટ કરવા માટે અમને સૂચના કરવામાં આવી છે, પરંતુ એક તો એ લેખ અન્યત્ર પ્રકટ થઈ ચુકેલા હોવાથી, તેમ જ લેખકબંધુની કથનશૈલી જરા અશિષ્ટ અને અસંસ્કારી હોવાથી એવા લેખોને ભારતીય વિદ્યામાં ‘યથાવત્’ રીતે સ્થાન ન આપી શકાય.

‘ભારતીય વિદ્યા’ એ કોઈ પણ ધર્મ, મત, સંપ્રદાય કે સિદ્ધાન્તનું પ્રચારક કે પ્રસારક પત્ર નથી. એ તો માત્ર શુદ્ધ ઐતિહાસિક અન્વેષણ અને તાત્ત્વિક સંશોધનના પરિણામે જણાઈ આવતા દૃષ્ટિબિંદુઓ અને વિચાર - ગ્રંથોને સાત્ત્વિકભાવે સમજવા સમજવવા પ્રયત્ન કરનારૂં નિષ્પક્ષ વિવેચક પત્ર છે. એમાં પ્રકટ થતા લેખો અને તેમાં પ્રતિપાદિત કરવામાં આવતા વિચારો કોઈ પણ માન્યતા કે શ્રદ્ધાના ખંડન - મંડનરૂપે હોતા નથી તેમ જ કોઈ પણ પ્રકારના મતાચ્છેદ કે મતભેદને ઉત્તેજન આપનારા હોતા નથી. અભ્યાસી અને વિદ્વાન્ લેખકને પોતાના અભ્યાસ કે સ્વાધ્યાય દ્વારા તે તે વિષયમાં કાંઈ વિશિષ્ટ વસ્તુ સમજાઈ હોય અને કાંઈક નવું દૃષ્ટિબિંદુ કે નવો વિચાર-કોણુ દેખાયો હોય તો તેને પ્રકાશમાં મુકવા અને તે દ્વારા અન્યાન્ય વિચારકો અને વિદ્વાનોના વિચારો જાણવા - સમજવાના એકમાત્ર વિશુદ્ધ જ્ઞાનવર્ધક હેતુની દૃષ્ટિએ જ લખાયેલા લેખો આ પત્રમાં પ્રકટ કરવામાં આવે છે.

આવા તાત્ત્વિક અને સંશોધનાત્મક લેખોનાં પ્રતિપાદનોમાં અને વિવેચનોમાં મત-ભેદને પૂર્ણ અવકાશ હોય એ સ્વાભાવિક જ છે. એક વિદ્વાન્ અભ્યાસીને કોઈએક વિચાર કે સિદ્ધાંત જે રીતે સમજાયો હોય તેના કરતાં અન્ય અભ્યાસીને એ ભિન્નરીતે

સમજાય તો એમાં કાંઈ આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. અને એ પ્રકારના બિચલિચલ અભિપ્રાયોને જાણવા—સમજવા માટે જ તો, બહુ શ્રમ અને દ્રવ્યનો વ્યય કરી, આવાં પત્રોનું સંચાલન અને પ્રકાશન કરવામાં આવે છે. તેથી આમાં પ્રકટ થતા આવા મત-ભેદ પ્રદર્શક લેખો કે વિચારોના વિષયમાં કોઈ પણ સજ્જનને એમ ન ધારવું જોઈએ કે તે વિચારો ખાસ કોઈ પ્રકારની આક્ષેપક કે વિરોધક વૃત્તિની દૃષ્ટિએ પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. અલબત્ત એ સંભવિત છે કે અભ્યાસી કે લેખકને પોતાનો વિચાર—વિષય ઘરાબર ન સમજાયો હોય કે ભ્રમવશ ભૂલ ભરેલી રીતે સમજાયો હોય તો તેના પરિણામે તે પોતાના ભૂલ ભરેલા વિચારો પ્રકટ કરવા પ્રેરાય. પરંતુ એવા નિષ્પક્ષ અભ્યાસીને જ્યારે સમજાય કે તેના વિચારો ભૂલ ભરેલા છે તો તે તત્કાળ તેમાં સંશોધનકરવા કે પોતાની ભૂલ કબુલ કરવા પણ તૈયાર જ ઉત્સુક હોય છે.

‘ભારતીય વિદ્યા’ માં પ્રકટ થતા લેખો કે વિચારોના વિષયમાં જે કોઈ અભ્યાસી કે વિદ્વાનને આવા કોઈ ભૂલભરેલા કે ભ્રમજનક વિચારો જાણાતા હોય, તો તેના સંશોધન માટે તેમણે પોતાના વિચારો પ્રમાણપુરસ્સર અને શિષ્ટ શૈલીમાં લખી મોકલવાથી તેને અવશ્ય આદરયુક્ત સ્થાન આપવામાં આવશે જ. માત્ર શરત એટલી કે કથનની શૈલી માધ્યસ્થ ભરેલી અને પ્રતિપાદનની વસ્તુ શાસ્ત્રીય હોવી જોઈએ.

જિન વિજય મુનિ

(—સંપાદક)



અપભ્રંશ કવિઓ:

ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂ

[ઉત્તરભાગ—ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનું અપભ્રંશપુરાણકાવ્ય, પઝમચરિત્ર, સંધિ ૧-૨]

*

લેખક—શ્રીયુત પ્રો. મધુસૂદન ચિમનલાલ મોદી, એમ. એ., એલ.એલ. બી.

[અપભ્રંશના યુનિવર્સિટી પોસ્ટ ગ્રેજ્યુએટ અધ્યાપક, ગુ. વ. સો. રિસર્ચ ડિપાર્ટમેન્ટ, અમદાવાદ]

§ ૧. ‘ભારતીય વિદ્યા’ ના ગયા અંકમાં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન અને કવનની વિસ્તૃત ચર્ચા મેં કરી હતી. એ કવિની વાણીના આસ્વાદ માટે વાચક સમક્ષ કાંઈક આપવું બેઠાએ, તો જ એમના વિષે સર્વગ્રાહી ખ્યાલ આવી શકે. અત્યાર મુધી આ કવિઓનાં કાવ્ય પ્રસિદ્ધ થયાં નથી. અપભ્રંશપાઠાવલીનું સંકલન કરતી વખતે, હું તેનાં બધાં જ લખાણો હાથપ્રતમાં બેઠી ગયો હતો. પઝમચરિત્ર સંધિ. ૧૪, અને સંધિ ૮૩, ‘અપભ્રંશ પાઠાવલી’માં પાઠ તરીકે મેં મૂક્યા હતા. તે સમયે આખા ‘પઝમચરિત્ર’ની નકલ કરી લેવી એવો મારો વિચાર હતો. પરંતુ પહેલા એ સંધિ અને ત્રીજા અર્ધા સંધિની નકલ કરી એટલામાં તો કોઈ કારણસર એ હાથપ્રત મારે પાછી મોકલવી પડી. પ્રસ્તુત લેખમાં મારી એ નકલ ઉપરથી પ્રથમ એ સંધિઓનું મેં સંપાદન કર્યું છે. મને ખાતરી છે કે આ લેખ ચતુર્મુખની અપભ્રંશ વાણીનો આસ્વાદ લેવા મુશ્કેલી વાચકને સહાયભૂત થશે.

§ ૨. ચતુર્મુખની ‘પદ્ધતિઆ’ છંદમાં નિપુણતા પ્રસિદ્ધ છે. ‘પદ્ધતિઆ’ સોળ માત્રાનો છંદ છે. હેમચંદ્રાચાર્ય ‘પદ્ધતિઆ’ ની વ્યાખ્યા બહુ વ્યાપક આપે છે: વી: પદ્ધતિકા એટલે ચાર ચાર માત્રાનાં ચાર જૂથ;—એટલે એક ચરણમાં કુલ ૧૬ માત્રા હોવી બેઠાએ. હેમચંદ્ર લઘુ-ગુરુની કશીય નિયંત્રણા મૂકતા નથી. બન્ને સંધિના કડવક-દેહનો છંદ આ રીતે પદ્ધતિઆ જ છે. પ્રાકૃત પિંગલ પ્રમાણે ‘પાદાકુલક’=૧૬ માત્રાનો લઘુ-ગુરુના નિયમ વિનાનો છંદ છે; જ્યારે પ્રા. પિં. પ્રમાણે ‘પદ્ધતિઆ’ ના છેલ્લા ચાર જૂથ ઉપર નિયંત્રણ છે: છેલ્લું ચાર માત્રાનું જૂથ લગલ=૮-૮ એમ હોવું બેઠાએ: દા. ત. સંધિ. ૧. પં ૬૦-૬૧

अहि णंदणवणह मणोहराहं णज्जंति व चलपल्लवकराहं ।

अहिं काहिमवयणहं काहिमाहं णज्जंत ताहं णं कहमुहाहं ।

ઉપરના દાખલામાં છેલ્લું ચાર માત્રાનું જૂથ ‘લગલ’ છે; એટલે પ્રા. પિં. ની દૃષ્ટિએ શુદ્ધ ‘પદ્ધતિઆ’ ઉપર પ્રમાણે છે. પ્રા. પિં. બીજો ‘અડિલા’ નામે સોળ માત્રાનો છંદ નોંધે છે. પદ્ધતિઆ અને અડિલામાં ફેર એટલો જ કે અડિલાના ચરણને છેડે ચાર માત્રાનું જૂથ લગલ= ૮-૮ ના ક્રમમાં હોય છે: દા. ત. સંધિ. ૨. પં. ૫-૬

૧.૩.૫.

વેંતરભવળેહિં પડહસહાસહ દસદિસિં બહુ ણિગ્ગય ણિગ્ગોસહં ।

જોહસમવળંતરેહિં અહિટ્ઠિય મીસળસીહણિણાય સમુટ્ઠિય ।

‘અડિલા’ અને ‘પદ્ધડિઆ’ સિવાયનો નિયંત્રણ રહિત સોળ માત્રાનો છંદ તે ‘પાદાકુલક’ સમાન્ય વપરાશમાં અડિલા અને પદ્ધડિઆનું એટલું તો સંકુલ મિશ્રણ હોય છે કે હેમચંદ્રની ‘પદ્ધડિઆ’ ની વ્યાખ્યા વ્યાપક અને ધૃષ્ટ અને છે.^૧

ઘત્તાના છંદોમાં સંધિ ૧ માં ૧૧+૧૨=૨૩ માત્રાનો છંદ યોજવામાં આવ્યો છે. બીજા સંધિમાં ૧૧+૧૩ કે કોઇવાર ૧૧+૧૪=૨૫ માત્રાના છંદની યોજના કરવામાં આવી છે.

કેટલાંક કડવાંઓ આદ કરતાં, સામાન્ય રીતે બીજાં બધાં કડવાંનો દેહ ૮ પંક્તિઓનો અનેલો જણાય છે. ઘત્તાની બે પંક્તિઓ ઉમરેતાં આખું કડવું ૧૦ પંક્તિઓનું અને છે.

§ ૩. આ કાવ્યની ભાષા સાહિત્યિક અપભ્રંશ છે. સાહિત્યિક અપભ્રંશ ભાષા સામાન્ય રીતે એક જ પ્રકારની હતી. હેમચંદ્રના વ્યાકરણમાં મુખ્ય રીતે સાહિત્યિક અપભ્રંશની ચર્ચા કરવામાં આવેલી છે. એજ સાહિત્યિક અપભ્રંશમાં આ ‘પઉમચરિય’ લખવામાં આવેલું છે. પુષ્પદન્ત પણ એક સ્થળે સાહિત્યિક અપભ્રંશનો ઉલ્લેખ કરે છે:

અત્થે સદ્દેણ વિ સોહિલ્લુડ ગદ્દુ અગદ્દુ દુવિહુ કલ્લુલ્લુડ ।

સક્કડ પાયડ પુણુ અવહંસડ વિત્તડ ઉપ્પાહડ સુપસંસડ ।^૨

આમાં સંસ્કૃત, પ્રાકૃત [મહારાષ્ટ્રી] અને અપભ્રંશનો ઉલ્લેખ કવિ કરે છે. આ અપભ્રંશ તે એક જ સાહિત્યિક અપભ્રંશ છે; અને એ રીતે કુવલયમાલાના વિધાનને^૩ પુષ્ટિ મળે છે. કેટલીક બાબતો આ કાવ્યમાંથી ટાંકી શકાય. દા. ત.

(૧) ઢક્કરિવંતર્ણિ ૧. ૧૧૯. આ શબ્દને અપભ્રંશના ખાસ શબ્દ તરીકે હેમચંદ્રે નોંધ્યો છે. જુઓ સિ. હે. ૮. ૪. ૪૨૨ ઉદા. ૧૧. અદ્ધતસ્ય ઢક્કરિ: ।

(૨) એક્કસિ=એકશ: ૨. ૧૩૪. આ શબ્દને માટે સિ. હે. ૮. ૪. ૪૨૮. એકશસો હિ: । એ સૂત્રમાં ખાસ આદેશ કરવામાં આવ્યો છે.

(૩) બીજા કેટલાક શબ્દો જેવા કે રવળ્ણ (સંધિ ૨. પં. ૧૪), જિ વગેરે અપભ્રંશના હેમચંદ્રે નોંધેલા વિશિષ્ટ શબ્દો આ કાવ્યમાં દેખાદે છે. જુઓ સિ. હે. ૮. ૪. ૪૨૨. ઉદા. ૧૦ રમ્યસ્ય રવળ્ણ: । સિ. હે. ૮. ૪. ૪૨૦ જિ=એવ.

સામાન્યતઃ આ કાવ્યમાં વ્યાકરણનું સ્વરૂપ હેમચંદ્રના વ્યાકરણના સ્વરૂપથી ખાસ જુદું નથી.

અપભ્રંશ એ અર્વાચીન દેશ્ય ભાષાની પુરોગામિની ભાષાનું સ્વરૂપ રજુ કરે છે. પ્રાકૃતનું સ્વરૂપ અપભ્રંશમાં વધારે છૂટવાળું અને છે. સમાસ, લિંગ અને વિભક્તિઓની ચિન્વટ ઓછી થતી જાય છે. સુશ વાચક આ દૃષ્ટિથી કાવ્યને વાંચશે તો તે

૧. ચર્ચા માટે જુઓ હંદોજ્જુઞ્ઞાસન ૫૩. ૪૩ (અ) પંક્તિ ૯; તથા પ્રાકૃતપિંગલ (કલકત્તા આદિતિ) પાન ૨૧૭-૨૨૪. ૨. Dr. P. L. Vaidya પુષ્પદન્ત-મહાપુરાણ સંધિ ૫, કડવક ૧૮. પં. ૫-૬. ૩. ભારતીયવિદ્યા એક ૨, પા. ૧૭૭, પાઠનોંધ ૨૫-૨૬-૨૭.

ભાષાની શિથિલતા જરૂર જોઈ શકશે; અને તેને માલમ પડશે કે અર્વાચીન દેશ્ય ભાષાઓનાં મૂલ અપભ્રંશમાં છે. એક મુદ્દો અહીં ખાસ નોંધવા યોગ્ય છે. અર્વાચીન દેશ્યભાષાના અનુગો (Post-positions) અપભ્રંશમાં દેખાતા જાય છે: દા. ત.

૧. જૂં ગૂં લગી=થી, આરંભીને: અપભ્રંશમાં લગેવિ. જુઓ સંધિ ૧, પં. ૧૮૨:

તહો દિવસહો લગેવિ અદુ વરિસુ ગિન્વાળપવરિસિય રયળવરિસુ ।

૨. ગૂં લણી=તરફ: અપભ્રંશમાં મળેવિ: સંધિ ૨, પં. ૪૨:

તિહુઅળસામિ મળેવિ ગિયગિયવિળ્લાણુ પયાસિડ

૩. જૂની ગૂં મળી= ને લીધે; થી. અપભ્રંશ મળેવિ (સં. ૨, પં. ૧૭૧.)

અક્ષયદાણુ મળેવિ સેયંસહો અક્ષયતદ્ય જાડં કિડ દિવસહો ।

આ ઉપરાંત અન્ય ઘણી વિશિષ્ટતાઓ આ કાવ્યના અપભ્રંશમાં દેખા દે છે - જે અર્વાચીન દેશ્યભાષાઓના ઘડતર ઉપર સારો પ્રકાશ કેંટી શકે.^૪

§ ૪. આ બે સંધિઓનું વસ્તુ નીચે પ્રમાણે છે:

પ્રથમ સંધિમાં ૧૬ કડવાં છે. કુલ પંક્તિસંખ્યા ૧૯૦ છે. તેમાં પ્રારંભિક બે પ્રાકૃત ગાથા અને એક અંત્ય પ્રાકૃતગાથા - એમ કુલ છ પંક્તિઓ પ્રાકૃતમાં છે. પ્રથમ સંધિનો વિષય ઋષભદેવનો જન્મ છે. કડવકવાર પ્રથમ સંધિનો સાર નીચે પ્રમાણે છે:

(૧) ૨૪ તીર્થકરોની સ્તુતિ: (૨) રામાયણની કથાનું સરિતાના રૂપકથી વર્ણન; તેની રચનાની પરંપરા; કવિરાજ સ્વયંભૂ તેની રચના કરે છે. પોતાનાં માતા પિતા અને પોતાના પૂર્વાચાર્ય રવિષેણનો કવિ ઉલ્લેખ કરે છે. કવિ ગતત્મનિદા કરે છે. (૩) કવિ આકરણ, છંદ, કાવ્ય વગેરેનાં પોતાનું અજ્ઞાન બતાવી વિનય કરે છે. (૪) મગધદેશનું વર્ણન; (૫) રાજગૃહનું વર્ણન. (૬) શ્રેણિક રાજનું વર્ણન. (૭) મહાવીર સમવસરણમાં બેઠેલા છે; સમવસરણનું વર્ણન; શ્રેણિક રાજને તીર્થ-કરના આગમનની ખબર એક માણસ આપે છે. (૮) સમવસરણના બાર કોઠાઓમાં જુદા જુદા દેવ, માનવ અને તિર્યચનાં જૂથ બેઠાં છે. તેમની વચ્ચે આસન ઉપર મહાવીર બેઠા છે. (૯) શ્રેણિકરાજએ મહાવીરની કરેલી સ્તુતિ. (૧૦) શ્રેણિકરાજ મહાવીરને રામાયણની કથા પૂછે છે. જુદા જુદા સંપ્રદાયના કથાકારોએ રામની કથા જુદી જુદી રીતે કહી બ્રાન્તિઓ પેદા કરી છે. માટે યથાર્થ કથા કહેવા શ્રેણિક મહાવીરને વિશ્વમિ કરે છે. (૧૧) વિશ્વવર્ણન અને તેમાં જંબુદ્વીપનું સ્થાન. ચૌદ કુલકરોની ઉત્પત્તિ. (૧૨-૧૩) ચૌદ કુલકરોનાં નામ. છેલ્લા કુલકર નાભિરાજને મરુદેવી નામે રાણી હતી. મરુદેવીનું વર્ણન. (૧૪) કીર્તિ, બુદ્ધિ, શ્રી, હી, ધૃતિ, લક્ષ્મી વગેરે દેવીઓ ઇન્દ્રના આદેશથી ભૂમિ ઉપર આવી મરુદેવીની સેવિકાઓ બને છે. મરુદેવીને સ્વપ્ન આવે છે. (૧૫) સોળ સ્વપ્નનું વર્ણન. (૧૬) દેવોએ કરેલી રાત્રીની વૃષ્ટિ અને ઋષભદેવનો જન્મ.

૪. મળિવિ ના પ્રયોગ માટે જુઓ ધનપાળ મવિસયત્ત કહા ૧. ૮. ૭; ૫. ૩. ૧૦; ૭. ૪૦. ૬; ૧૬. ૬. ૬. ઇત્યાદિ.

સંધિ ૨ માં, ૧૭ કડવક છે; અને ૧૭૫ પંક્તિ છે. છેવટની બે પંક્તિઓ અન્ય આશ્વાની છે. વિષય ઋષભદેવનું નિષ્ક્રમણ છે. કડવકવાર દ્વિતીય સંધિને આર નીચે પ્રમાણે છે.

(૧) ઋષભદેવનો જન્મ થતાં ચાર પ્રકારના દેવો પોતાનાં વાઘો જગાડવા લાગ્યા. ઇન્દ્રનું આસન કંપ્યું. પોતાના ઔરાવત હાથી ઉપર બેસી ઇન્દ્ર સાકેતનગરી તરફ ચાલ્યો. (૨) સાકેતનગરીને કુબેરે સુશોભિત કરી. ઉપસ્વાપિની નિદ્રામાં મરુદેવીને નાખી, માયાવી બાળકને તેની પાસે મૂકી, ઇન્દ્રે ઋષભદેવને લીધા. (૩) અનેક નક્ષત્રો વગેરે ઓળંગી પાંડુશિલા ઉપરના સિંહાસન ઉપર ઋષભદેવને ઇન્દ્રે મૂક્યા. (૪) શંખ, વાદ્ય, નાદ્ય, ગીત, માલતીમાલા, ધન્ય વગેરે વડે ઋષભદેવનો બધા દેવોએ સત્કાર કર્યો. (૫) જુદા જુદા દેવોએ ઋષભદેવ ઉપર કળશોથી અભિષેક કર્યો. (૬) સહસ્રાક્ષ ઇન્દ્ર ઋષભદેવને અલંકાર પહેરાવી તેમની સ્તુતિ કરે છે. (૭) પોતાના ડાબા હાથના અંગુઠાથી ઋષભદેવનું મુખ ઉઘાડી તેમના મુખમાં અમૃતનો સંચાર કરે છે, અને પછીથી તેમને અયોધ્યા મૂકી આવે છે. સ્વપ્નામાં પ્રથમ વૃષભ જોયો હોવાને લીધે તેમનાં માતા તેમનું નામ ઋષભદેવ પાડે છે. (૮) ઋષભદેવ મોટા થાય છે. કલ્પવૃક્ષો ઉન્નિષ્પન્ન થવાને લીધે પ્રભને કાંઈપણ મળતું નથી તેથી ઋષભદેવ પાસે આવે છે. ઋષભદેવ તેમને કળાઓ શિખવે છે. (૯) ઋષભદેવને વૈરાગ્યનું કારણ ઉત્પન્ન કરના ઇન્દ્ર નીલજ્વળા નામે અપ્સરાને મોકલે છે; નીલજ્વળા ત્યાં જ નૃત્ય કરતાં મરણ પામે છે. (૧૦) ઋષભદેવને વૈરાગ્ય થઈ આવે છે. લોકાંતિક દેવો પણ ત્યાં આવી તે પ્રમાણે ઉપદેશ કરે છે. (૧૧) દેવો શિખિકામાં ઋષભદેવને લઈ જાય છે. સિદ્ધાર્થ ઉદ્યાનમાં થોડી વાર ઉભા રહી તે ભરતને રાજ્ય સોંપે છે. પ્રયાગમાં જઈ નિષ્ક્રમણ કરે છે. પંચમુષ્ટિ લોચ કરે છે; અને તે લોચના વાળ ઇન્દ્ર સુવર્ણવસ્ત્રમાં લઈ સમુદ્રમાં નાખી આવે છે. તેમની સાથે બીજા કેટલાક રાજાઓ પણ વૈરાગ્ય લે છે. (૧૨) જ્ઞાનના અભાવે વૈરાગ્ય લીધેલો હોવાથી રાજાઓથી દુઃખ સહન થતાં નથી અને તેથી વ્રતલંગ કરવાનું તેઓ આરંભે છે. (૧૩) તેમને તેમ ન કરવા આકાશવાણી થાય છે; પરંતુ આ દુઃખી બનેલાઓથી ખરી પ્રવ્રજ્યાનાં દુઃખ સહન થતાં નથી એટલે વિવિધ પ્રકારના સિદ્ધાન્તો તેઓ ઉપજાવી કાઢે છે. એટલામાં નમિ અને વિનમિ ત્યાં આવી પહોંચે છે. (૧૪) નમિ અને વિનમિ ઋષભદેવ પાસે રાજ્ય માગે છે. ઇન્દ્ર આવી તેમને, ‘તમારે શું જોઈએ?’ એમ પૂછે છે. (૧૫) ઇન્દ્ર વૈતાલ્યની ઉત્તરના પ્રદેશનું રાજ્ય અને દક્ષિણના પ્રદેશનું રાજ્ય નમિ અને વિનમિને આપે છે. પણ નમિ વિનમિ તે લેતા નથી. તેમને તો ઋષભદેવને હાથે રાજ્ય જોઈએ છે. ઇન્દ્ર ઋષભદેવનું રૂપ લઈ રાજ્ય આપે છે. (૧૬) ઋષભદેવ વિહાર કરે છે. શ્રેયાંસ તેમને હસ્તિનાપુરમાં મળે છે. શ્રેયાંસને જ્ઞાન થાય છે. (૧૭) ઇશુરસની અંબલિથી ત્યાં ઋષભદેવ પારણું કરે છે. દેવો રત્નનો વરસાદ વરસાવે છે. તે દિવસની યાદગીરીમાં તે દિવસનું નામ અક્ષમૃત્તીમા પડે છે. શ્રેયાંસને આનંદ થાય છે અને ઋષભદેવને નમસ્કાર કરે છે.

पदमो संधि

*

णमह णवकमलकोमलमणहरवरबहुलकंतिसोहिलं ।
उसहस्स पायकमलं ससुरासुरवंदियं सिरसा ॥
दीहरसमासनालं सहदलं अत्थकेसरगुणभियं ।
बुहमहुयरपीयरसं सयंभुकुण्णलं जयउ ॥

१

तिहुयणलग्गणखंभु गुरु परमेट्ठि नवेप्पिणु । ५
पुणु आरंभिय रामकहा आरिसु जोप्पिणु ॥
पणवेप्पिणु आइभडाराहो संसारसमुहुत्ताराहो ।
पणवेप्पिणु अजियजिणेसरहो दुज्जयकंदप्पदप्पहरहो ।
पणवेप्पिणु संभवसामियहो तइलोकसिहरपुरगामियहो ।
पणवेप्पिणु अहिणंदणजिणहो कम्मट्टुट्टरिउणिज्जणहो । १०
पणवेप्पिणु सुमइतित्थंकरहो वयपंचमहादुद्धरधरहो ।
पणवेप्पिणु पउमप्पहजिणहो सोसियभवलक्खदुक्खरिणहो ।
पणवेप्पिणु सुरवरसाराहो जिणवरुहो सुपासभडाराहो ।
पणवेप्पिणु चंदप्पहगुरुहो भवियायणसउणकप्पतरहो ।
पणवेप्पिणु पुप्फयंतमुणिहे सुरभवणुच्छलियदिव्वज्जुणिहे । १५
पणवेप्पिणु सीयलपुंगवहो कल्लणज्झाणणाणुग्गमहो ।
पणवेप्पिणु सेयंसाहिवहो अच्चंतमहंतपत्तसिवहो ।
पणवेप्पिणु वासुपुज्जमुणिहो विप्फुरियणाणचूडामणिहो ।
पणवेप्पिणु विमलमहागिरिहे संदरिसियपरमागमदिसिहे ।
पणवेप्पिणु मंगलगाराहो साणंतहो धम्मभडाराहो । २०
पणवेप्पिणु संतिकुंथअरहं तिण्णिमि तिहुअणपरमेसरहं ।
पणवेवि मल्लि[A 1]तित्थंकरहो तइलोकमहारिसिकुलहरहो ।
पणवेप्पिणु मुणिसुव्वयजिणहो देवासुरदिण्णपयाहिणहो ।
पणवेप्पिणु णमिणेमीसरहो पुणु पासवीरतित्थंकरहो ।
वत्ता ॥ इय चउवीस वि परमजिण पणवेप्पिणु भावें । २५
पुणु अप्पाणउं पायडमि रामायणकावें ॥ १ ॥

२

वद्धमाणमुहकुहरविणिग्गय रामकहाणइ यह कमागय ।
अक्खरवासजलोद्धमणोद्धर सुयलंकारछंदमच्छोहर ।
दीहसमासपवाहावंकिय सकय-पायय-पुलिणालंकिय ।
देसीभासाउभयतडुज्जल कविदुक्करघणसइसिलायल । ३०

अथवहलकलोलानिद्रिय आसासयसमतूहपरिद्रिय ।
 एह रामकहसरि सोहंती गणहरदेवहिं दिद्रु वहंती ।
 पच्छइ इंदभूअभायरिणं पुणु धम्मणे गुणालकरियं ।
 पुणु एवहिं संसाराराणं कित्तिहरेण अणुत्तरवाणं ।
 पुणु रविसेणायरियपसाणं बुद्धिए अवगाहिय कइराणं ।
 पउमिणिजणणिगम्भसंभूणं मारुएएवरूवअणुराणं ।
 अइतणुएण पईहरगत्तं छिन्नरणासें पविरलदत्तं ।

॥ घत्ता ॥ णिम्मलपुण्णपवित्तकहकित्तणु आढप्पइ ।

जणइ समाणिज्जंतएण थिर कित्ति विढप्पइ ॥ २ ॥

३

४० वुहयण सयंभु पइं विण्णवइ मइ सरिसउ अणु ण्णाहिं कुकइ ।
 वायरणु कयाइ न जाणिअउ णउ वित्ति सुत्तु वक्खणिअउ ।
 णउ पच्चाहारहो तत्ति किय णउ संधिए उपरि बुद्धि द्रिये ।
 णउ णिसुअउ सत्त विहत्तियाउ छव्विहउ समासपउत्तियाउ ।
 छकारय दस लयार ण सुय वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ।
 ४५ णव भाव लउउ णिवायगणु णउ लिगु उणाइ वक्कु वयणु ।
 णउ णिसुणिउ पंच महायकवु णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सवु ।
 णउ बुज्झिउ पिगलपत्थारु णउ भम्महदंडियलंकार ।
 ववसाउ तोवि णउ परिहरमि वरि रयडावुत्तु कवु करमि ।
 सामाणभास लुडु म विहडउ लुडु आगमजुत्ति किंपि घडउ ।
 ५० लुडु होंति सुहासुदवयणाइं गामेल्लभासपरिहरणाइं ।
 इहु सज्जणु लोयहु किउ विणउ जं अवुहु पदरिसिउ अण्णणउ ।
 जं एव वि रूसइ कोवि खलु तहो हत्थुत्थल्लिउ लेइ छलु ।

॥ घत्ता ॥ पिसुणें किं अब्भन्थिएण जसु कोवि ण रुच्चइ ।

किं च्छणइं चंदु महग्गहेण कंपंतु विमुच्चइ ॥ ३ ॥

४

५५ अवहत्थिवि खलयणु णिरवसेसु पहिलउ णिरु वण्णमि मगहदेसु ।
 जहि पक्ककलमि कमलिणिणिसण्णु अलहंत तरणि थेर व विसण्णु ।
 जहि सुयपंतिउ सुपरिट्ठिआउ णं वणसिरिमरगयकंठिआउ ।
 जहि उच्छवणइं पवणाहयाइं कंपंति व पीलणभयगयाइं ।
 जहि णंदणवणइं मणोहराइं णच्चंति व चलपल्लवकराइं ।
 ६० जहिं फाडिमवयणइं दाडिमाइं णज्जंत ताइं णं कइमुहाइं ।

२. मारुएएव ने ५६७ माउरएव ५६७ डोवो जेधये. ३. ण्णाहिं ने स्थाने णाहिं. ४. उपरि ने स्थाने उपपरि. ५. द्रिय ने स्थाने ठिय. ६. छणइं, च्छणइं ने स्थाने. ७. कंठियाउ, कंठियाउ ने स्थाने. ८. तिपयारवंतु पांथो.

जहि महुयरपंतिउ सुंदराउ केयइकेसररयधूसराउ ।
 जहिं दक्खामंडव परिचलंति पुणु पंथिअ रससलिलइं पियंति ।
 ॥ घत्ता ॥ तहिं पट्टणु णामें रायगिहु धणकणयसमिद्धु ।
 णं पुहइए णवजोषणए सिरि सेहरु आइइउ ॥ ४ ॥

५

चउगोउरु त्तिपयारवत्तु हसइ व मुत्ताहलधवलवंतु । ६५
 णच्चइ व मरुद्धुयधयकरग्गु धरइ व णिवडंतउ गयणमग्गु ।
 सुलग्गभिण्णु देउलसिहरु कणइ व पारावयसइगहिरु ।
 घुम्मइ व गएहिं मयभिंभलेहिं उडुइ व तुरंगेहिं चंचलेहिं ।
 ण्हाइ व ससिकंतजलायरेहिं पणवइ व सारमेहलहरेहिं ।
 पक्खलइ व णेउरणियलएहिं विप्फुरइ व कुंडलजुयलएहिं । ७०
 किलकिन्ना व सव्वजणोच्छवेण गज्जइ व मुरयमेरीरवेण ।
 गायइ व आलावणिमुच्छणेहिं पुरइ व धम्म धणकंचणेहिं ।
 ॥ घत्ता ॥ णिवडियपण्णेहिं पोंफलेहिं छुहचुण्णासंगें ।
 ज[A2]णचलणग्ग वि महिएण महि रंगिय रंगें ॥ ५ ॥

६

तहिं सेणिउ णामें णयणिवासु उवमिज्जइ णरवइ कवणु तासु । ७५
 किं तिणयणु णं णं विसमचक्खु किं ससहरु णं णं एककुपक्खु^{११} ।
 किं दिणयरु णं णं दहणसीलु किं हरि णं णं कममुयणलीलु ।
 किं कुंजरु णं णं णिच्चमत्तु किं गिरि णं णं ववसायचत्तु ।
 किं सायरु णं णं खारनीरु किं वम्महु णं णं हयसरीरु ।
 किं फणिवइ णं णं कूरभाउ किं मारुउ णं णं जलसहाउ । ८०
 किं महुमहु णं णं कुडिलसक्खु किं सुरवइ णं णं सहसअक्खु ।
 अणुहरइ पुणु वि जइ सो जे तासु वामद्धुअ दाहिणअद्धु जासु ।
 ॥ घत्ता ॥ ताव सुरासुरवाहणेहिं गयणंगणु छाइउ ।
 वीरजिणिंदहो समसरणु विउलइरि पराइउ ॥ ६ ॥

७

परमेसरु पच्छिम जिणवारिंदु चलणग्गें चालियमहिहरिंदु । ८५
 णाणुज्जलचउकल्लाणपिंदु चउकम्मडहणु कलिकालदंडु ।
 चउतीसातिसयविसुद्धगत्तु भुयणत्तयवल्लहु धवलछत्तु ।
 पण्णारहकमलायत्तपाउ अल्लफुल्लमंडवसहाउ ।
 चउसट्ठिचामरुद्धयमाण थिउ विउलुमहीहरे^{१२} वद्धमाण ।
 चउसुरणिकायसंथुवमाण समसरणु वि जसु जोयणपमाण । ९०

पायार तिणिण चउ गोउराइं बारह गण बारह मंदिराइं ।
 उब्भियचउमाणवधंम जाव तुरमाणिं केण वि णरेण ताव ।
 ॥ घत्ता ॥ चलण णवेप्पिणु विण्णविउ सेणिय महाराउ ।
 'जं वायहि जं संभरहि सो जगगुरु आउ' ॥ ७ ॥

८

९५ जिणवयणु कण्णप्पले करेवि सिंहासणसिहरहो उववरेवि ।
 गउ पयइ सत्त रोमंचियंगु पुणु महिअले नामियउत्तमंगु ।
 देवाविय लहु आणंदमेरि थरहरिय वसुंधरि जगजणेरि ।
 सकलत्तु सपुत्तु सर्पिडवासु सपरियणु ससाहणु सट्टहासु ।
 गउ बंदिणभत्तिण जिणवरासु आसण्णीइअमहीहरासु ।
 १०० समसरणु दिट्ठु हरिसियमणेण परिबेढिउ बारहविहगणेण ।
 पहिलए कोट्टे रिसिसंगु दिट्ठु बीयए कप्पंगणजण णिविट्ठु ।
 तइअइ अज्झिअगणु साणुराउ चउथइ जोइसवरअच्छराउ ।
 पंचमे वेंतरेंउ सुहासिणिउ छट्ठमि पुणु भवणणिवासिणीउ ।
 सत्तमि भावण गिब्बाण साव अट्ठमि वेंतर संसुद्धभाव ।
 १०५ नवमए जोइस नमिउत्तमंग दहमए कप्पामर पुलहअंग ।
 एयारहमए णरवर णिविट्ठु बारहमए तिरिय णमंत दिट्ठु ।
 ॥ घत्ता ॥ दिट्ठु भडारउ वीरजिणु किह आसणसंड्ठिउ ।
 तिहुअणमत्थए सुहणिलए णं मोक्खु परिट्ठिउ ॥ ८ ॥

९

सिरिसिहरि चडाविय करयलग्गु मगहाहिवु पुणु वंदणहि लग्गु ।
 ११० 'जय नाह सव्वदेवाहिदेव कियणागणरिंदसुरिंदसेव ।
 जय तिहुवणसामिय तिविहछत्त-अट्ठविहपरमगुणरिद्धिपत्त ।
 जय केवलनाणुभिण्णदेह वम्महणिम्महणपणट्टणेह ।
 जय जाइजरामरआरिच्छेय^३ बत्तीस सुरिंदकियाहिसेय ।
 जय परमपरंपर बीयरता('य) सुरमउड्ढिकोडिमणिचिट्ठपाय ।
 ११५ जय सव्वजीवकारुणभाव अक्खय अणंत णहयलसभाव' ।
 पणवेप्पिणु जिणु तगयमणेण पुणु पुच्छिउ गउतमसामि तेण ।
 ॥ घत्ता ॥ 'परमेस्वर परसासणेहि सुव्वइ विवरेरी ।
 कहि जिणसासणे केम ट्ठिआ' कह राहवकेरी ॥ ९ ॥

१०

जगलोयहिं डक्करिबंतपहि उप्पाइउ भंतिउ भंतिपहि ।
 १२० जय कुम्मे धरियउ धरणिबीडु तो कुम्म पडंतउ केम गीडु ।

जइ रामहो तिहुअणु उवरि माइ तो [A३] राम्वणु कहि तिय लेवि जाइ ।
 अण्णु वि खरुदुसण सेणिण देव पहु जुँज्जइ सुज्जइ भिञ्चु केम ।
 कह तियमइकारणे कविवरेण घाइज्जइ वालि सहोयरेण ।
 किह वाणर गिरिवर उव्वहंति बंधेवि मयरहरु समुत्तरंति ।
 किह रामणु दहमुहु वीसहत्थु अमराहिवभुवबंधणसमत्थु । १२५
 वरिसद्धु सुयइ किह कुंभयण्णु महिसाकोडिहि मि ण चरइ अण्णु ।
 ॥ घत्ता ॥ जं परिसेसिउ दहवयणु परणारीहि समणु ।
 सा मंदोवरि जणणिसम किह लेइ विहीसणु ॥ १० ॥

११

तं णिसुणिवि वुच्चइ गणहरेण 'सुणि सेणिय किं बहु वित्थरेण ।
 पहिलउ आयासु अणंत साउ णिरवेक्खु णिरंजणु पलयभाउ । १३०
 तइलोकु परिट्टिउ मज्झि तासु चउदह रज्जुय आयासु जासु ।
 तेत्थ वि अहरिमज्झाणुमाणु^{१५} थिउ तिरियलोय रज्जुयपमाणु ।
 तहि जंजूदीव महापहाणु वित्थरिण लक्खुजोयणपमाणु^{१६} ।
 चउखेत्तचउदहसरिणिवासु छविहकुलपव्वयतडपयासु ।
 तासु वि अब्भंतरे कणयसेलु णवणवइ उअरि सहसेक्कमूलु । १३५
 तहो दाहिणभापं भरहु थकु छखंडालंकिउ एकुचकु^{१७} ।
 ॥ घत्ता ॥ तहिं अवछप्पिणिकालें गयकप्पयरुछण्णा ।
 चउदहरयणविसेस जिम कुलयर उप्पण्णा ॥ ११ ॥

१२

पहिलउ पहु पडिसुइ सुयवंतउ बीयउ सम्मइ सम्मइवंतउ ।
 तइयउ खेमंकरु खेमंकरु चउथउ खेमंधरु रणि दुद्धरु । १४०
 पंचमु सीमंकरु दीहरकरु छट्टउ सीमंधरु धरणीधरु ।
 सत्तमु फारुचक्खु चक्खुभउ तासु काले उप्पजइ विंभउ ।
 सहसा चंददिवायरदंसणे सयलु वि जणु आसंकइ णियमणि ।
 'अहो परमेसर कुलयरसारा कोउहलु महु पउ भडारा' ।
 तं णिसुणेवि णराहिउ घोसइ- 'कम्मभूमि लइ एवहि होसइ । १४५
 पुव्वविदेहे तिलोआणंदें कहिउ आसि महुं परमजिणेदें ।
 ॥ घत्ता ॥ णवसंझारुणपल्लवहो तारायणपुप्फहो ।
 आयइ चंदसूरफलइ अवसप्पिणिरुक्खहो' ॥ १२ ॥

१३

पुणु जाउ जसुंभउ अतुलथाउं पुणु विमलवाहणु छलियणाउं ।
 पुणु साहिचंद चंदाहि जाउ मरुएउ पसेणे^{१८} णाहिराउ । १५०

१५. झुज्जइ पांथो. १६. झलरि १७. लक्खुजोयणपमाणु पांथउं नेधअ. १८. एकुचकु पांथउं नेधअ. १९. पसेणइ पांथो; पसेणे ने अहवे.

१५५ तहो जाहिहि पळिअमकुलयरासु मरुणवि सह व पुरंदरा^{२०} ।
 चंदहो रोहिणि व मणोहिराम कंदप्पहो रह व पसपणनाम ।
 सा गिरलंकार जि चारुगत्त आहरणरिद्धि पर भारमत्त ।
 तहे गियलायणु जि दिणु सोहु मलु केवलु पर कुंकुमरसोहु ।
 पासेव फुलिंगावलि जे चारु पर गरुड मोत्तियहार भार ।
 लोयण जि सदावे दलविसाल आडंबर पर कंदोदमाल ।
 ॥ घत्ता ॥ कमलासाई भमंतण अलिउलय मंदे ।
 मुहलीदुयडं कमजुयलु कि नेउरसहे ॥ १३ ॥

१४

१६० तो एत्थंतरि माणववेसें आइउ देविउ इंद्राएसि ।
 ससिवयणउ कंदोदुलच्छिउ किन्तिबुद्धिसिरिहिरिदिहिलच्छिउ ।
 सप्परिवारु दुकिउ तेत्तहि सा मरुणवि भडारी जेत्तहि ।
 कावि विणोउ किपि उप्पायइ पढइ पणसइ गायइ वायइ ।
 कावि देइ तंमोलु सहत्थें सप्पाहरणु कावि सह वत्थें ।
 पाडइ कावि चमरु कय विरवइ कावि समुज्जलु दप्पणु ढोवइ ।
 १६५ उक्खयसग्ग कावि पडिरक्खइ कावि किपि अक्खाणउ अक्खइ ।
 कावि जक्खकदमेण पसाहइ कावि सरीरु देविहे संवहइ ।
 ॥ घत्ता ॥ वरपलंकपसुत्तियइ सुविणावलि दिट्ठी ।
 तीस पक्ख पहुपंगणए वसुहार वरिट्ठी ॥ १४ ॥

१५

१७० दीसइ मयगलु मयगिलगंडु दीसइ वसहुक्खयकमलसु ।
 दीसइ गंचमुहुं पईहरच्छि दीसइ अवकमलाकडलच्छि ।
 दीसइ गंधकुडुं कुसुमदामु दीसइ छणइंदु मणोहिरामु ।
 दीसइ दिणयरु करणजलंतु दीसइ झसजुयलु परिभमंतु ।
 दीसइ जलमंगलकलसु [A4] वसु दीसइ कमलायरु कमलछत्तु ।
 दीसइ जलणिहि गज्जियजलोहु दीसइ सिंहासणु दिणसोहु ।
 १७५ दीसइ विमाणु घंटालिमुहलु दीसइ नागालउं सणु धवलु ।
 दीसइ मणिणियरु परिफुरंतु दीसइ धूमजउ धयधयंतु ।
 ॥ घत्ता ॥ इय सुविणावलि सुंदरिए मरुणवि दीसइ ।
 गंणियु जाहिणराहिअहो सुविहाणइ सीसइ ॥ १५ ॥

१६

१८० जेण वि बिहसेप्पिणु एव वुत्तु “तउ होसइ तिहुअणलिलउ पुत्तु ।
 जसु मेरु महागिरि न्हवणसीदु गहुमंडउ महिहरखंभगीदु^{२१} ।

२०. पुरंदराउ ने अहो पुरंदरासु पांथो. २१. मयगिलगंडु पांथो. २२. गंधकुडु पांथो.
 २३. परिफुरंतु पांथो. २४. गहुमंडउ महिहरखंभगीदु पांथो.

जसु मंगलकलसु महासमुद्ध मज्झणए काले बत्तीस इयं ।
 तहो दिवसहो लग्गेवि अहु वरिसु निग्घाण पधरिसिय रयणवरिसु ।
 लहु णाहिरिदहो तणय गोहु अवइण्णु भडारउ णाणदेहु ।
 बिउ गम्भम्मंतरे जिणधारिदु णवणलिणिपत्ति णं सलिलबिंदु ।
 वसुहार पधरिसिय पुणु वि ताम अण्णु वि अट्टारह पक्ख जाम । १८५
 जिणसूरु समुट्ठिउ तेयपिंदु बोहंतु भव्भयणकमलसंदु ।
 ॥ घत्ता ॥ मोहंघारविणासयरु केवलकिरणाथरु ।
 उइउ भडारउ रिसहजिणु णं सइं भुवणदिवाथरु ॥ १६ ॥
 इय पत्थ पउमचरिए धणंजयासियसयंभुएवकए ।
 जिणजम्मुप्पत्ति इयं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥ १८६

* बीओ संधि

१

जगगुरु पुण्णपविचु तइलोकहो मंगलगारउ ।
 सहसाणेवि सुरेहि मेरुहि अहिसिचु भडारउ ॥ छ ॥
 उप्पण्णए तिहुअणपरमेसरे अट्टोत्तरसहासलक्खणधरे ।
 भावणभवणेहिं संख पवज्जिय णं णवपावसेण वण गांजिय ।
 वेंतरभवणेहिं पडहसहासइ दसदिसि बह णिगाय णिघोसइ^{१५} । ५
 जोइसभवणंतरेहिं अहिट्टिय भीसणसीहणिणाय समुट्ठिय ।
 कप्पामरभवणहिं जयघंटउ सइ जि गरुअटंकार विसट्टउ ।
 आसणकंपु जाउ अमरिदहो जाणेवि जम्मुप्पत्ति जिणंदहो ।
 चडिउ तुरंतु सक्कु अइरावए कण्णचमरउट्ठावियउप्पए ।
 मेरुसिहरिसण्हिहकुंभत्थले^{१६} मयसिरि सोत्तसित्तगंडत्थले । १०
 ॥ घत्ता ॥ सुरवइ दससयनेत्तु रेहइ आरुढउ गयवरे ।
 बिहसिअकोमलकमलकमलायरु नाइ महीहरे ॥ १ ॥

२

अमरराउ संचल्लिउ जावेहि धणए किउ कंचणमउ तावेहि ।
 पट्टणु अउगोउरसंपुण्णउं सत्तहि पायारेहिं रवण्णउ ।
 दीहियमढविहारवेवउलहिं सरपोक्खरिणितलायहिं विउलहिं । १५
 कच्छारामसीमउज्जाणेहिं कंचणतोरणेहिं अपमाणेहिं ।
 लहु सकेयणयरि किय जक्खें परिअंजिअ तिवार सहसक्खें ।
 षीणपउहराए^{१७} ससिसोमए इंदमहाएबिए पउलोमए ।
 सव्वजणहो उवसोबणि वेप्पिणु अग्गाए मायावालु उवेप्पिणु ।
 णिउ तिहुअणपरमेसरु तेत्तहिं सपरिथाक पुरंदहो^{१८} जेत्तहे । २०

१५. दसदिसि वडु णिगाय णिघोसइ । १६. मेरुसिहरिसण्हिह पांथो. १७. षीणवओहराए पांथो. १८. पुरंदह पांथो.

॥ घत्ता ॥ झत्ति सुरेहिं विमुक्क चलणोवरि दिट्ठि विसाल ।

भत्तिए अंचणजोगु णावइ णीलुप्पलमाल ॥ २ ॥

३

वालकमलदलकोमलबाहउ अंके चडाविवि तिहुअणणाहउ ।

सुरवइणारुणबालदिवायरु संचालिउ नं मेरुमहीहर ।

२५

सत्तहि जोयणसयहि तहत्तिउ पुणु सणवइ तारायणपंतिउ ।

उप्परि दसजोयणहिं दिवायरु पुणु असीहिं लक्खिजइ ससहर ।

पुणु चउहमि नक्खत्तहं पत्तिउ बुहमंडलु वि चऊहुं तहंतिउ ।

असुरमत्ति तिहि तिहिं संवच्छरु तिहि अंगारउ तिहि जि सणिच्छरु ।

अट्ठणवइ सहास कम्मेप्पिणु अण्णु वि जोयणसउ लंघेप्पिणु ।

३०

पंडुसिलोवरि सुरवरसारउ लहु सिंहासणे ठविउ भडारउ ।

॥ घत्ता ॥ नावइ सिरेण लएवि मंदरु दरिसावइ लोयहो ।

एहउ तिहुअणणाहु किं होइ ण होइ व जोयहो ॥ ३ ॥

४

ण्हवणारंभमेरि अण्णालिय पडहामरकिंकरकर ताडिय ।

पूरिअ धवलसंख किउ कलयलु केहिमि घोसिउ चउविहु मंगलु ।

३५

केहिं मि आढत्तइ गेयाइं सरगय पयगय तालगयाइं ।

केहि मि वाय [A5] उ वज्ज मणोहरु वारह तालउ सोलहि अक्खरु ।

केहि मि उव्वेलिउ भरहुत्तउ णवरसअट्ठभावसंजुत्तउ ।

केहि मि उब्भियाइं धयविंधइं केहि मि गुरुथोत्तइं पारइइं ।

केहि मि लइयउ मालइमालउ परिमलवहलउ भसलवमालउ ।

४०

केहि मि वेणु केहि वरवीणउ केहि मि तिसरियाउ लयलीणउ ।

॥ घत्ता ॥ जं परिआणिउं जेहिं तत्तेहिं सव्वु विण्णासिउ ।

तिहुअणसामि भणेवि णियणियविण्णाणु पयासिउ ॥ ४ ॥

५

पहिलउ कलसु लइउ अमरिंदे वीअउ हुअवहेण आणंदे ।

तइअउ सहरसेण जमराणं चउत्थउ णयरियदेवे आणं ।

४५

पंचमु वरुणे समरसमत्थे छट्ठउ मारुएण सइं हत्थे ।

सत्तमउ कुबेरअहिहाणे अट्ठमु कलसु लयउ ईसाणे ।

णवमउ संभासिउं धरणिंदे दसमउं कलसु लइजइ चंदे ।

अण्ण कलस उच्चाइअ अण्णेहिं लक्खकोडिअक्खोहणिगण्णेहिं ।

सुरवर वेल्लि अल्लिण रएप्पिणु चत्तारि वि समुइ लंघेप्पिणु ।

५०

खीरमहण्णवे खीरु भरेप्पिणु अण्णहो अण्णु समण्णइ लेप्पिणु ।

॥ घत्ता ॥ ण्हाविउ एम सुरेहि बहुकलसेहिं जिणवर ।

णं णवपाउसकाले मेहेहिं अहिसितु महीहरु ॥ ५ ॥

६

मंगलकलसहिं सुरवरसारउ जयजयसदें ण्हविउ भडारउ ।
 तो इत्थंतरि हयपडिवक्खें गेण्हिवि वज्जसूइ सहसक्खें ।
 कण्णजुयलु जणणाहदो विज्जइ कुंडलजुयलु श्रुत्ति आइज्जइ । ५५
 सेहरु सीसे हारु वच्छत्थले करे कंकणु कडिसुत्तउ कडियले ।
 तिहुअणतिलअहो तिलउच्छवंतें मणि आसंकिउ दससयणेत्तें ।
 पुणु आढत्त जिणिंदहो वंदण-“जय तिहुअण गुरुणयणाणंदण ।
 जय देवाहिदेव परमप्पय जय तियसेंदविंदवंदियपय ।
 जय णहमणिकिरणोहपसारण तरुणतरणिकरणियरणिवारण । ६०
 जय णमिण्हिं णमिअ पणविज्जहिं अरुह वुत्तु पुणु कहो उवमिज्जहिं ।
 ॥ घत्ता ॥ जगगुरु पुणुपवित्तु तुहु अण्णहो मणोहरगारा ।
 भवे भवे अम्हहं देज्ज जिण गुणसंपत्ति भडारा” ॥ ६ ॥

७

णायणरामरणयणाणंदहो वंदणहत्ति करंतहो इंदहो ।
 रूवालोथणे रूवासत्तइं तित्ति ण जंति पुरंदरणेत्तइं । ६५
 जहि णिवाडियइं तहि जे पगुत्तइ दुब्बल ढोरि व पंके वखुत्तइं ।
 वामकरंगुट्टए णिहारेवि वालहो तेत्थु अमिउ संचारेवि ।
 पुणु पडिवागउ मयणवियारउं गंपि अउज्जहे थविउ भडारउ ।
 सूरि मेरु जेम पडिअंविउ पुणु दससयकर करेवि रणच्चिउ ।
 सालंकारु सडोरु सनेउरु सच्छरु सणपरिवारु अंतेउरु । ७०
 जणणिए जं जि दिट्ठु अहिसित्तउ रिसहु भणेवि पुणु रिसहु जि वुत्तउ ।
 ॥ घत्ता ॥ काले गलंतए णाह णियदेहरिद्धि परियट्ठइ ।
 विवरिजंतु कहिं वायरणु गंधु जिम वट्ठइ ॥ ७ ॥

८

अमरकुमारहिं सहु कीलंतहो पुव्वहु वीस लक्ख लंघंतहो ।
 एक्क दिवसि गय पय कुंवारें “देव देव मुय भुक्खामारें । ७५
 जाहं पसापं अम्हे धण्णा ते कप्पयरु सव्व उच्छण्णा ।
 एवहि को उवाउ जीवेवउं भोयणे खाणे पाणे परिहेयए” ।
 तं णिसुणेवि वयणु जगसारउ सयलकलउ दक्खवइ भडारउ ।
 अण्णहुं असिमसिकिसिवाणिज्जउ अण्णहुं विविहपयारउ विज्जउ ।
 कहिं दिणेहिं परिणाविउ देविउ णंदसुणंदाइउ सियसेविउ । ८०
 सउ पुत्तहुं उप्पण्णपहाणहं भरहबाहुबल्ले अणुहरमाणहं ।
 ॥ घत्ता ॥ पुव्वहं लक्ख तिसट्ठ गय रज्जु करंतहो जावेहिं ।
 चित्ता मणि उप्पण्ण सुरवइ महारायहो तावेहिं ॥ ८ ॥

२१. पडिवारिअमयणवियारउ वांथो.=पडिवारितमदनविकारः २२. सपरिवारअंतेउरु वांथो.
 २३. जीवेवए वांथो. २४. भरहबाहुबल वांथो.

९

- ८५ तिहुअणजणमणयण पियारउ भोगाससु णिणएवि^{३५} भडारउ ।
 मणे चिंताविउ दससयलीयणु-“करमि किंषि वहरायहो कारणु ।
 सेण करइ सुहि सत्तहियत्तणु जेण पवत्तइ तिथपवत्तणु ।
 जेण सीलु वउ णियमु ण णांसइ जेण अहिंसाधम्मसु पवांसइ” ।
 धम्म विअप्पवि छणचंदाणण पुण्णाउस कोक्खिणीलंजण^{३६} ।
 “तिहुअणगुरुहे जाहि उलग्गए णट्टारंभु पवरिसहि अग्गए” ।
 ९० तं आपसु लएवि गय तेत्तहे थिउ अत्थाणे भडार [A6] उ जेत्तहे ।
 पाउजिएहि पउंजिउ तक्खणे गेउ वज्जु जं वुत्तउ लक्खणे ।
 ॥ घेत्ता ॥ रंभी पइट्ठ तुरंति करदिट्ठिभावसरंजिय ।
 विम्मममांवविलास दरिसत्तिपं पाण विसज्जिय ॥ ९ ॥

१०

- ९५ जं णीलंजस पाणहिं मुक्की जाय जिणहो ता संक गुरुक्की ।
 “धिग धिगत्यु संसारु असारउ अण्हो अण्णु होइ कम्मरउ ।
 अण्हो अण्णु करइ मिच्चत्तणु तं जि होउ वहरायहो कारणु” ।
 लोयंतियहिं ताव पडिबोहिउ-“चारुदेव जं सई उम्मोहिउ ।
 उअहिउ णवणवकोडाकोडिउ णट्टउ धम्मसत्थु पडिवाडिउ ।
 णट्टइ दंसणणाणचरित्तइ दानज्झाणसंजमसंमत्तइ ।
 १०० पंच महव्वय पंचाणव्वय तिण्णि गुणव्वय चउ सिकखावय ।
 णियमसीलउववाससहासइ पइं होंतेण हवंतु असेसइ ।
 ॥ घेत्ता ॥ ताव विमाणारूढ चउदिसु चउदेवनिकाय ।
 पइं विणु सुण्णउं मोक्खु णं जिणहकारा आय” ॥ १० ॥

११

- १०५ सिविआजाणें सुरवरसारउ जयजयसदें चडिउ भडारउ ।
 देवैहिं खंभु देवि उच्चाइउ णिविसें तं सिद्धत्थु पराविउं ।
 तिहि उववणि थोवंतरि थापवि भरहहो रायलच्छि करे लाएवि ।
 ‘णमह परमसिद्धाण’ भणंतें किउ पयागे निकखवणु तुरंतें ।
 मुट्ठिउ पंच भरेप्पिणु लइयउ चामीयरपडलोयरि थवियउ ।
 मोहेवि जणमणयणाणंवें घिसउ खीरसमुदि सुरिदें ।
 ११० तेण समाणु सणेहिं लइआ रायहं चउसहास पव्वइआ ।
 परिमिउ ससि जिह गहसंघाएं अट्ठु वरिसु तिथेउं काउसाएं ।
 ॥ घत्ता ॥ पवणुदुयउ जडाउ रिसहहो रेहति विसालंउ ।
 सिहिदे चलंतहो णां धूमाउलंजालामालउ ॥ ११ ॥

३५. जिदवि चंथो. ३६. णिलंजस चंथो; के ३ कीट्टे ३५वें णिलंजण भाग मणे छे. ३७. दरिसत्तिप.
 ३८. पराहउ चंथो. ३९. भित्त.

१२

जिणु अविउलु अचलु वि सिवसत्थउ थिउ छम्मास वि ऊंथियहत्थउ
जे थिय तेण समउ पव्वइया ते इरुणतुच्चाए लइया । ११५
सीउण्हहिं तिसभुक्खहिं खामिय जिम्भयाणिहालसेहिं विमानिय ।
चालण कुंडुयणइ अलहंता अहिविच्छिय परिवेदिजंता ।
घोरवीरतचचरणे लम्मा णासेवि सलिलु पिपवयं लम्मा ।
केणवि महियलि घत्तउ अण्णउ हो हो केण दिट्ठु घरमण्णउ ।
पाण जंति जइ एण निउंए" तो किर तेण कांइ परलोयं । १२०
कोवि फलइं तोडेप्पिणु भक्खइ 'जाहुं' भणेवि कोइ कौणे रक्खइ ।
॥ घत्ता ॥ को विणिवारइ किंपि आमेल्लिवि चलणं जिणिंदहो ।
"कल्लए देसहु काइ पच्चुत्तरु भरहणरिंदहो" ॥ १३ ॥

१३

तहिं तेह य पडिवण्णए अवसरे दइवी वाणि समुट्ठिय अंबारे ।
"अहो अहो कवडकूड णिगंत्यहो कापुरिसहो अणायपरमत्थहो । १२५
एह महारिसिलिगग्गहणे जाइजरामरणत्तयडहणे ।
जलइ म डोहहो फलइं म तोडहो णंतो णीसंगत्तणु छंडहो" ।
तं णिसुणेवि तिसभुक्खादण्णेहिं उट्ठलित्ठ अण्णामउ अण्णेहिं ।
अण्णेहिं अण्ण समय उण्णइय तहिं अवसरे णमि विणमि पराइय ।
कच्छमहाकच्छाहिवणंदण वरकरवालहत्थनीसंदण । १३०
वेण्णवि बिहि चलणहिं णिवडिप्पिणु थिय पासेहिं जिणु जयं करेप्पिणु ।
॥ घत्ता ॥ चित्तिउ णमि-विणमीहि वुत्तउ किंपि न बोल्ह णाहु ।
"एउ न जाणहुं आसि किउं अग्गे किं को अचराहु ॥ १३ ॥

१४

जइ बि ण किंपि देहे सुरसारा तो वरि पक्कसि बोलि भडारा ।
अण्णहु देसु विहंजिवि दिण्णउ अग्गेहुं किं पहु णिदाक्खिण्णउ । १३५
अण्णहुं दिण्ण तुरंगम गयवर अग्गेहुं काइ कियउ परमेसर ।
अण्णहुं दिण्णउ उत्तिमवेसउ अग्गेहुं आलावेण वि संसउ" ।
एम जाम गरहंत जिणेदहो आसणु चलित्ताम धरणिंदहो ।
अवहि पउंजिवि सप्परिवारउ आउ खणद्धं जित्थु भडारउ ।
लक्खित्ठ बिहिमि मज्झे परमेसरु ससिसूरंतराले णं मंदरु । १४०
तुरिउ तिवारउ भामरि देप्पिणु जिणवरवंदणहत्ति करेप्पिणु ।
॥ घत्ता ॥ पुच्छउ धरणिधरेण बिण्णि बिउ णाविय [A7] मत्था ।
"थिय कज्जे कवणेण उक्खयकरवालबिहत्था" ॥ १४ ॥

१५

तं णिसुणेवि दिण्णु पच्चुत्तरु "पेसिवि वेवि आसि देसंतरु ।

- १४५ दूराट्ठाणुं जाव तं पावहुं जाव वलेवि पडीवा आवहुं ।
ताव पिहिमि नियपुत्तहं देण्णिणु अम्हहं थिउ अवहेरि करेण्णिणु” ।
तं णिसुणिवि विहसियमुहयंदे दिण्णउ विज्जउ बे धरणिदिं ।
गिरिवेयइहो होहु पहाणा उत्तरदाहिणसेट्ठिहिं^{४४} राणा” ।
तं णिसुणिवि णमिविणमिहिं बुच्चइ-“अण्णे दिण्णी मही वि न रुच्चइ ।
१५० जइ णिगंतु देइ सइ हत्थे तो अम्हि वि लेहुं परमत्थे” ।
तं णिसुणेवि वेवि अवलोयवि थिउ अग्ग सो मुणिवरु होएवि ।
॥ घत्ता ॥ हत्थुत्थल्लिउ तेण गय वेवि लण्णिणु विज्जउ ।
उत्तरसेट्ठिहि एक्कु थिउ दाहिणसेट्ठिहिं विज्जउ ॥ १५ ॥

१६

- तहि अवसरि उच्चाइयवाहो महि विहरंतहो तिहुअण्णाहो ।
१५५ बहुलायणवण्णसंपुण्णउ आणइ कोवि पसाहेवि कण्णउं ।
चेलिउ कोवि कोवि हय चंचल रयणइ कोवि कोवि वर मयगल ।
कोवि सुअण्णइ रुण्णयत्थाल्लइं कोवि धणइं धण्णइं असरालइं ।
कोवि अमुल्लाभरणइं ढोयइं ताइ भडारउ णउ अवलोयइं ।
सव्वइ धूलिसमइं मण्णंतउ पट्टणु हत्थिणयरु संपत्तउ ।
१६० जहिं सेअसें दंसणु पाविउ लुडु लुडु नियपरिवारहो साहिउ ।
“अज्ज पणट्ठु अणंगवियारउ मइ पाराविउ रिसहभडारउ” ।
॥ घत्ता ॥ निग्गउ ‘थाहु’ भणंतु सकलन्तु सपुत्तु सपरियणु ।
भणिउ ति भामरि दिंतु मंदिरहो जेम तारायणु ॥ १६ ॥

१७

- वंदिवि पइसारिअउ णिहेलणु किउ चलणारविंदपक्खालणु ।
१६५ अण्णवि गोमण्ण संमज्जणु दिण्ण जलेण धार पुणु चंदणु ।
पुण्णइ अक्खइयाउल दीवा धूववास जलवास पडीवा ।
करपक्खालणु देवि कुमारें ससहरसाण्णिहेणं भिगारें ।
अहिणवइक्खुरसहं भरिअंजलि ताव सुरेहिं मुक्कु कुसुमंजलि ।
साहुक्कारु देव दुंदुहिसरु गंधवाउ वसुवरिसु णिरंतरु ।
१७० कंचणरयणहिं कोडीउ वारह पडिय लक्ख वत्तीसट्टारह ।
अक्खयदाणु भणेवि सेयंसहो अक्खयतइय णाउं किउ दिवसहो ।
॥ घत्ता ॥ जिमिउ भडारउ रंजि^{४५} सेअसें अण्णउ भावेवि ।
वंदिउ रिसहु जिणेदु सिरे सइंभु भुयजुयलु चडावेवि ॥ १७ ॥
इय एत्थ पउमचरिए धणंजयासियसयंभुएवक्कए ।
१७५ जिणवरणिक्खमण इमं बीयं चिय साहियं पव्वं ॥छ॥ संधि ॥ २ ॥

४४. दूरट्ठाणु वांयो. ४५. °सेट्ठिहिं; ४६. अवलोएवि ४७. कण्णउ वांयो. ४८. °आलइं; ४९. °सण्णि-
हेण. ५०. रंजि पजी जे तण्ण अक्षरो ढी गथा होय ओम लाजेछे; आरणु दे छंदोक्षं गथा छे.

પડમચરિય-ટિ પ્પ ણી

*

હાથપ્રતનું પ્રથમ પાન એક બાણુ લખેલું છે; - એટલે કે પહેલું પૃષ્ઠ કોરું છે. કાવ્ય બીજા પૃષ્ઠ ઉપરથી શરૂ થાય છે. આરંભમાં “॥૬૦॥ ઐ નમો વીતરાગાય ॥” છે, હાંસિયામાં તથા ઉપર નીચેના કોરા ભાગમાં કોઈકે ટિપ્પણો લખ્યાં છે. એ ટિપ્પણો આ નીચે ફુદદી (*) સાથે નોંધ્યાં છે. આ હાથપ્રત કોઈએ સુધારી પૂણ છે; અને તે સુધારનાર જ કદાચ આ ટિપ્પણ લખનાર પૂણ હોય. દા. ત. હાથપ્રત, પત્ર ૧ (બ) ની પં. ૪ અને કાવ્યપંક્તિ ૭ માં ઉત્તારાહો ની ઉપર રા ઉમેરી ઉત્તારાહો કર્યું છે. હા. પ્ર. પત્ર ૧ (બ) ની પં. ૪ અને કાવ્યપંક્તિ ૧૪ માં ભવિય સુધારીને ભવિયા કર્યું છે.

[નીચે ટિપ્પણીમાં સંધિનો અને પંક્તિનો એમ સંખ્યાક્રમ આપ્યો છે.]

સંધિ ૧

૧. ૧-૨૪, ત્રોતીસ તીર્થકરોની સ્તુતિ છે. ધાવીય તીર્થકરોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે. સરસ્વાતો અભિધાનચિતામણિ ૧. ૨૫-૨૮.

પ્રતસ્યામવસર્પિણ્યાં ક્રણમોઽજિતશમ્ભવૌ ।
અભિનન્દનઃ સુમતિસ્તતઃ પ્રદ્યપ્રભાભિધઃ ॥
સુપાર્શ્વશ્ચન્દ્રપ્રભશ્ચ સુવિધિશ્ચાથ શીતલઃ ।
શ્રેયાંસો વાસુપૂજ્યશ્ચ વિમલોઽનન્તતીર્થકૃત્ ॥
ધર્મઃ શાન્તિઃ કુન્થુરો મલ્લિશ્ચ મુનિસુવ્રતઃ ।
નમિર્નૈમિઃ પાર્શ્વૌ વીરશ્ચતુર્વિંશતિરહતામ્ ॥

૧. ૧૦. કમટ્ટુ ઇ. મરસ્વાતો ઉમાસ્વાતિ-તત્ત્વાર્થસૂત્ર. અ. ૮, સૂત્ર ૫. આદ્યો જ્ઞાનદર્શનાવરણવેદનીયમોહનીયાયુષ્કનામગોત્રાન્તરાયાઃ । (૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય; (૩) વેદનીય; (૪) મોહનીય; (૫) આયુર્; (૬) નામ; (૭) ગોત્ર; (૮) અંતરાય.

૧. ૬. *આરિસુ=આર્યે ચ રામાયણં ।

૧. ૧૦. *નિજ્જણહો=જયનશીલસ્ય ।

૧. ૧૧. વયપંચમહાદુઃસરધરહો=દુર્ધરપશ્ચમહાવ્રતધરસ્ય; સમાયનાં પદોના ક્રમનું અનિયંત્રણ. પશ્ચમહાવ્રત, ઉમાસ્વાતિ-તત્ત્વાર્થ. ૦ અ. ૭. સૂ. ૧-૨. હિંસાનૃતસ્તે-યાત્રહ્યપરિગ્રહેભ્યો વિરતિર્વ્રતમ્ ॥ ૧ ॥ દેશસર્વતોઽણુમહતી ॥ ૨ ॥

૧. ૧૪ *સડણં=પક્ષિણાં; સડણ=શકુન ‘પંખી.’

૧. ૧૦. *દિસિહે=માર્ગસ્ય ।

૧. ૨૦ *સાણંતહો ધમ્મમહારાહો=સહ અનંતધર્મનાથમહારકસ્ય । ૧. ૫. ની ટિપ્પણીમાં તીર્થકરોની નોંધ જુઓ.

૧. ૨૧. *તિણિમિ, તીહિમ્મિ પાઠે ।

૧.૩.૭.

૧. ૨૫. *^૦કાર્વે=કાવ્યેન । પંક્તિનો અર્થ-‘હું મારી જાતને રામાયણ કાવ્ય વડે પ્રકટ કરું છું.’ કાવ્યેન-પ્રા^૦ કાર્વે-અપ^૦ કાર્વે.

૧. ૨૭. *^૦કુહર^૦=પર્વતાત્; સં^૦ કુહર=ગુફા; *^૦જહ=નદી.

૧. ૨૮. અક્ષરવાસ^૦=(અક્ષર) નિક્ષેપવ્યાસઃ; વ્યાસ=વિસ્તાર.

૧. ૨૯. *^૦પવાહ^૦=પ્રવાહ; *^૦પુલિણ^૦=તટ.

૧. ૩૧. *કલ્પોલાણિટ્ટિય=કલ્પોલ-આનિષ્ઠિત ‘મોજાંઓ જેમાં મૂકાયલાં છે.’ આસાસય=આશ્વાસક, સરસ્વાતો હેમચન્દ્ર-કાવ્યાનુશાસન, અ^૦ ૮. સૂત્ર ૨૦૧. ‘પદ્યં પ્રાયઃસંસ્કૃતપ્રાકૃતાપભ્રંશગ્રામ્યભાષાનિબદ્ધભિન્નાન્યવૃત્તસર્ગાશ્વાસ-સન્ધ્ય-વસ્કન્ધકબન્ધં સત્સન્ધિ શબ્દાર્થવૈચ્છિત્ર્યોપેતં મહાકાવ્યમ્.’ સામાન્ય રીતે સર્ગ સંસ્કૃત મહાકાવ્ય માટે, આશ્વાસ પ્રાકૃત મહાકાવ્ય માટે, સંધિ અપભ્રંશ મહાકાવ્ય માટે અને ગ્રામ્યભાષા માટે અવસ્કન્ધક, પરંતુ ‘પ્રાયઃ’ શબ્દનો પ્રયોગ બતાવે છે કે એક પ્રકારની કૃતિનું વિભાગનામ બીજી કૃતિમાં પણ વપરાય. *તૂહ=તીર્થ ‘જલાશય’.

૧. ૩૪. *સંસારારાણં ઇત્યાદિ=કવિરાજેન સ્વયંભૂદેવેન સંસારવિષયે અતીવમીરુણા । *અણુત્તરવાપં=અણુત્તરવાદિના મદ્દારકેણ । સંસારાપ=સંસાર+અરાગેણ ।

૧. ૩૫. *રવિસેનાયરિયપસાપં=રવિસેનાચાર્યપ્રસાદેન ।

૧. ૩૬. પડમિણિ=પદ્મિની અને માડરદેવ એ કવિનાં માતા અને પિતા છે.

૧. ૩૮. પુણ્ણ=ધર્માર્થકામમોક્ષપદાર્થઃ પૂર્ણા । પુણ્ણનો પુણ્ય અર્થ નથી યોજ્યો કારણ કે પવિત્ત=પવિત્ર શબ્દ તેની પછી જ આવે છે. આદપ્પહ=આરંભ્યતે ‘આરંભાય છે’.

૧. ૩૯. જણહ સમાણિજ્ઞંતણથિર કિત્તિવિટ્પહ=જનેન સમાપયમાનેન સ્થિરા કીર્તિઃ અર્જયતે-(પોતાના કાર્યને) પૂર્ણ કરતા એવા માણસથી સ્થિર કીર્તિ સંપાદન કરાય છે; અથવા તો જનેન (=જનૈઃ) સન્માન્યમાનેન સ્થિરા કીર્તિઃ અર્જયતે=માણસોથી સન્માન પામેલો સ્થિર કીર્તિને પ્રાપ્ત કરે છે.

૧. ૬૧. વિત્તિસુત્તુ=વ્યાકરણનાં સૂત્રો અને એ સૂત્રોને સમજાવતી શૃત્તિ. વક્ષા-ણિયડં=વિશેષેણ વ્યાખ્યાપિતમ્-વિશેષેણ પઠિતમ્ ।

૧. ૪૨. *પચ્ચાહારહો=પ્રત્યાહારસ્ય । આ સંજ્ઞાશબ્દ વ્યાકરણની પરિભાષાનો છે. પ્રત્યાહારને સમજાવતાં પાણિનિ ૧: ૧: ૭૧: આદિરન્ટ્યેન સહેતા । એના ઉપરની કાશિકા-આદિરન્ટ્યેનેત્સંશ્કેન સહ ગૃહ્યમાણસ્તન્મધ્યપતિતાનાં વર્ણનાં ગ્રાહકો ભવતિ સ્વસ્ય ચ રૂપસ્ય । અણ, અકૂ, અચ્, હલ્, સુપ, તિહ્ । અન્ટ્યેનેતિ કિમ્ । સુહિતિ તૃતીયૈકવચ્ચનેન ટા ઇત્યનેન પ્રહર્ણં મા ભૂત્ ॥’ દા^૦ ત^૦ પાણિનિ ૧. ૧. ૧. અહિડ્ણ એ સૂત્ર છે; જ્યારે પ્રથમ અ અને અન્ટ્ય ણ્ લઈ વ્યાકરણની પરિભાષામાં અણનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો હોય તો આ સૂત્રના બધાય વર્ણો તેનાથી સમજવા, આ પ્રકારની પારિભાષિક રીત પ્રત્યાહાર કહેવાય છે.

१. ४३. *छविहउ समासपउत्तियाउ = बहुव्रीहिकर्मधारयादयः षट्. छ प्रकारना समासो.

१. ४४. *लकारय=षट्कारक षष्ठीं विना । कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण. छट्ठी विभक्तिनो 'संबंध' नहि. *दसलयार = लकारिसंज्ञापरिभाषादिषु. काळनां नामोनी संज्ञाओ-लट्, लिङ्, लोट्, लङ्, लुङ्, लिट्, लुट्, लृट्, लृङ्, आशीर्लिङ् आ दश लकार. वीसोवसग्न=उपसर्ग. संस्कृतभाषामां वीस उपसर्गों छे-प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, अभि, निस्, दुस्, नि, आ, प्रति, परि, उत्, उप, अधि, वि, अति, सु, अपि.

१. ४५. भाव=धान्वर्थ; णिवायगणु-निपातोनो समूह. हि, खलु इ० लिङु=जाति. उणाइ=उणादिप्रत्ययो. वकु वयणु=वाक्य अने वचन-एक, द्वि अने बहुवचन.

१. ४६. लक्खणु=लक्षणम् व्याकरणशास्त्र.

१. ४७. *रगडा=राजश्रेष्ठिना ।

१. ४८. छुडु=यदि ना अर्थमां सि० हे० ८. ४. ४२२. उ० १५ पूर्व, यदेच्छुडुः । अही 'जो'नो अर्थ बेसी शकशेः पण 'भले' 'कदाच' वगेरे अर्थमां काव्योमां तेनो वपराश दृष्टिगोचर थाय छे.

१. ४९. आगमजुत्ति=आगमयुक्तिः शास्त्रनी युक्ति. घडउ=घटयत 'तमे घडो'.

१. ५०. गामेलभास=ग्रामिलभाषा; आ भाषामां काव्यो लखातां हतां. सरखावो काव्यानुशासन, ८. ६. उपरनी टीका-'अपभ्रंशभाषानिवत्सन्धिवन्धं अधिमस्थानि । ग्राम्यापभ्रंशभाषानिवद्धावस्कन्धकवन्धं भीमकाव्यादि।' परिहाणाइ=परिधरणानि धारण करवानी वस्तुओ-अलंकारो.

१. ५४. *महग्गहेण=राहुणा ।

१. ५५. *अवहत्थिवि=अवगण्य, दूरीकृत्य ।

१. ५६. अलहंत तरणि थेर व विसणु-कांडे पण मेळवी शके नहि एवो घरडो माणस विषादमां पड्यो होय तेम कमलना छोडोमां बेटेले सूर्य पाकी डंगरने न प्राप्त करतां विषादमां पड्यो छे.

१. ६०. *णज्जंत=ज्ञायंते; णज्जंति पाठ होवो जोइए. कइमुहाइ=कविमुखानि.

१. ६४. सिरि सेहरु आइद्धउ=शिगसि शेखरः आविद्धः-माथा उपर फूलनो मांड पहेंयो. सरखावो अमर, १६. १३६. आपीडः शेखरः । आविद्ध=परिहित.

१. ६५-७४. राजगृहनुं वर्णन एक नायक तरीके करवामां आव्युं छे.

१. ६९. सायरमेहलहरेहिं=सायरमेहलवरेहिं वांचवुं जोइए; सागरमेखला-वरैः 'सागररूपी सुंदर कंदोराओ वडे'.

आलावणिमुच्छणेहिं=आलापनीमूर्च्छनाभिः-वीणानी मूर्च्छनाओशी.

૧. ૭૩-૭૪. પહેલાં પાદંડાથી, પૂગફળથી (સોપારીથી), સુધાના ચૂર્ણ (=ચૂના) થી યુક્ત રંગથી અને મનુષ્યના પગના આગળ લાગેલા દર્હિથી પૃથ્વી રંગાઈ ગઈ.

૧. ૭૫-૭૬. વ્યતિરેકાલંકારથી શ્રેણિક રાજાના પ્રભાવનું વર્ણન કર્યું છે. ણં ણં નો પ્રયોગ અર્હિ નોંધ લેવા જેવો છે. ણં ઉપમાવાચક નિપાત તરીકે સિં ૦ હેં ૦ ૮. ૪. નોંધે છે.

૧. ૭૭. કિં હરિ ણં કમમુયણલીલુ=કિં હરિઃ ? નનુ (સઃ) ક્રમમોચન-લીલઃ 'કેમ હરિ (જેવો) છે ?' એ તો જેણે પગલું ભરવાની લીલા કરી છે તે છે. વિષ્ણુના વામનઅવતારનો ઉલ્લેખ છે.

૧. ૮૨. કિં મહુમહુ ણં ણં કુટિલસક્કુ=કિં મધુમથઃ ? નનુ કુટિલ-સક્કુઃ. મધુમથ=વિષ્ણુ; આમાં કૃષ્ણાવતારનો ઉલ્લેખ છે. કૌરવ પાંડવોના સંબંધમાં કૃષ્ણની કુટિલતાનો આમાં નિર્દેશ છે.

૧. ૮૩. 'અને વઢી જો કોઈની સાથે તે મઠતો આવે, તો જેનું જમણું પડણું હોય, તે તેનું ડાણું પડણું થાય'.

૧. ૮૭. ચઙકલ્લાણ-પ્રલેક તીર્થકરને પાંચ કલ્યાણક હોય છે: તેમાંનાં પ્રથમ ચારઃ ત્યવન, જન્મ, વીક્ષા અને કેવલજ્ઞાન; ચઙકમ્મ=ચાર પ્રકારનાં કર્મ.

૧. ૮૮. ચઙતીસાતિસય-૩૪ અતિશયોઃ વર્ણન માટે જુઓ-અભિધાનચિંનામણિ, ૧. ૫૭-૬૮. જિનસેન-હરિવંશપુરાણ, ૨. ૫૭. પ્રતિહાયૈર્યુતોઽષ્ટાભિશ્ચતુર્લિશન્મ-હાદ્ભુતૈઃ । તત્ર દેવૈર્વૃતો ભાસીત્ જિનશ્ચન્દ્ર ઇવ ગ્રહૈઃ ॥

૧. ૮૯-૯૦. પંદર કમલો જેના પગ આગળ હતાં અને અત્યંત સીનાં પુષ્પોના મંડપ સમાન જેનો સ્વભાવ હતો, ચોસઠ ચામરો જેના આગળ ઢલતી હતી એવા વર્ધમાન (મહાવીર) વિપુલ પર્વત ઉપર બેઠા.

૧. ૯૧. ચઙસુરણિકાયસંથુવ્વમાણુ-ચાર પ્રકારના દેવોના સમૂહોથી વચ્ચળાયેલો. ૧ ભવનવાસી, ૨ વ્યન્તર, ૩ જ્યોતિષ્ક, ૪ વૈમાનિક. આ ચાર દેવ નિકાય. જુઓ, તત્ત્વાર્થ ૦ અં ૪. સ્. ૧, ૧૧-૧૨-૧૩-૧૭.

૧. ૯૬. *ઉવચરેવિ=અવતીર્ણઃ ।

૧. ૧૦૦. જેની પાસે પર્વતો છે તે જિનવરને વંદવા માટે ભક્તિપૂર્વક ગયો.

૧. ૧૦૧-૧૦૮. ચારહવિહ ગણ-ચારપ્રકારના ગણોઃ સમવસરણમાં પોતપોતાના નિશ્ચિત કોઠામાં તેઓ બેઠા. ૧ ઋષિસંઘ, ૨ કલ્પવાસી દેવોની અંગના, ૩ આર્યિકાસમૂહ, ૪ જ્યોતિષી દેવોની અપ્સરાઓ, ૫ વ્યંતર દેવોની સ્ત્રીઓ, ૬ ભવનનિવાસી દેવીઓ, ૭ ભવનવાસી દેવો, ૮ વ્યંતર દેવો, ૯ જ્યોતિષી દેવો, ૧૦ કલ્પવાસી દેવો, ૧૧ મનુષ્ય, ૧૨ તિર્યંચો.

૧. ૭૭. *પિંડવાસુ=દાસીજનઃ; *સટ્ટહાસુ=સાનંદઃ ।

૧. ૧૦૫. *સાવ=સર્વાણિ ।

૧. ૧૧૨. અદ્ભુતવિહરપરમગુણરિદ્ધિપત્ત=અદ્ભુતવિધપરમગુણઋદ્ધિપ્રાપ્તઃ । આઠ પ્રકારની લલ્લિધઓ=પરમગુણ; જેને પ્રાપ્ત કરી છે તે. 'અણિમા, લધિમા, પ્રાપ્તિઃ પ્રાકાશ્યં મહિમા તથા । ર્દશિત્વં ચ વ્રશિત્વં ચ તથા કામાવસાયિતા ॥' અને આઠ પ્રકારની ઋદ્ધિઓ=પ્રાપ્તિહાર્ય; અશોક, સુરપુષ્પવૃષ્ટિ, દિવ્યધ્વનિ, ચામર, સિંહાસન, મામંડલ, ટુંદુભિ, અને ત્રિછત્ર.

૧. ૧૧૮. પરસાસણેહિ સુવ્વહ વિવેરી=પરશાસનેષુ શ્રૂયતે વિપરીતા ।

૧. ૧૨૦. *ઢક્કરિવંતેપહિ=હઠોક્તિયુક્તૈઃ; સરસાગે સિંહો હે ૮. ૪. ૪૨૨. ઉદા. ૧૧, અદ્ભુતસ્ય ઢક્કરિ; *મંતિઉ=ભ્રાન્તયઃ; *મંતિપહિ=સંશયયુક્તૈઃ ।

૧. ૧૨૧. *ગીદુ=ધૃતઃ, વ્યાસઃ ।

૧. ૧૨૨. *રામહો=રામાવતારવિષ્ણોઃ । ઉવરિ-(ઉદરે) પેટમાં.

૧. ૧૨૩. સે (સ)ણિણ દેવ=સંજ્ઞિદેવાઃ= વિદ્યાધરાઃ ।

૧. ૧૨૪. *તિયમહકારણે=સ્ત્રીનિમિત્તે; *કવિવરેણ=સુગ્રીવેણ [કપિવરેણ]; 'સહોયરેણ=સુગ્રીવેણ [સહોદરેણ].

૧. ૧૨૭. મહિસાકોઢિહિમિ ૬૦ કરોડ મેંસો વડે પળ તેનું ભોજન પુરું થતું નથી.

૧. ૧૨૮. *સમણુ=અરિભક્ષણશીલઃ [સમનાઃ મનવાલોઃ આસક્ત].

૧. ૧૩૧. *અણંતસાઉ=સર્વગતઃ; *ણિરવેક્ષુ=કર્તૃરહિતઃ; *પલયભાઉ=પરિણામી.

૧. ૧૩૨. *આયામુ=ઝર્ધ્વઃ । ગજુ ૧ ક્ષેત્રને માપવાનું માપ છે.

૧. ૧૩૩. જાલરિ=ઢાલકાના જેવું એક વાયઃ વચ્ચેથી તે વાય પાતલું હોય અને બે છેડાનો ત્રામડાથી જડેલો પરિઘ પહોલો હોય. ઢોલકની માફક તે વગાડવામાં આવે છે; જાલર.

૧. ૧૩૫. *ચઉ સ્થેત્ત=ભરતૈરાવતૌ વિદેહદ્વૌ એવં ચતુષ્કં ક્ષેત્રમ્ । તત્ત્વાર્થ. ૦

૧. ૧૦, માં માત ક્ષેત્ર ગણાવવામાં આવ્યાં છે- 'તત્ર ભરત-હૈમવત-હરિ-વિદેહ-રમ્યક-હૈરણ્યવત-પેરાવતવર્ષાઃ ક્ષેત્રણિ ।' જંબુદ્વીપની ૧૪ મુખ્ય નદીઓ અને છ પ્રકારના કુલપર્વત. તત્ત્વાર્થ. ૦ ૩. ૧૧. તદ્વિભાજિનઃ પૂર્વાપરાયતા હિમવન્મદ્યા-હિમવન્નિપધનીલરુક્મિશિખરિણો વર્ષધરપર્વતાઃ ।

૧. ૧૩૬. કણયસેલુ ઇત્યાદિ, મેરુપર્વત, જુઓ તત્ત્વાર્થ. ૦ ૩. ૧. માપ્ય-મેરુરપિ કાશ્ચનસ્થાલનાભિરિવ વૃત્તો યોજનસહસ્રમધોધરણીતલમવગાઢો નવનવ-ત્યુચ્છિત્તો દશાધો સહસ્રમુપરીતિ । *પંક્તિની ઉપર ૯૯૦૦૦ લઘુ છે. *સહસે-કમૂલુ આની ઉપર ૧૦૦૦ લઘુ છે અને સૂતુ સુધારી મૂલુ કર્યું છે.

૧. ૧૩૮. અવહરિપિણિકાલે. દશ કોઢાકોઢી સાગરોપમ પ્રમાણ કતરતો કાલ. તે સમયે હાનિ દર્શાવનાર છ આરા પરિમિત કાલ વિભાગ. અવસર્પિણી કાલ અવનતિનો; અને ઉત્સર્પિણી કાલ ઉન્નતિનો હોય છે. ગયકપ્પયરુહણ્ણા=ગજ, કલ્પતરુ યુક્ત ૧૪ વિશિષ્ટ રત્નો જેવા.

૧. ૧૪૦—૧૫૨: ચૌદ કુલકરોનાં નામ ગણાવ્યાં છે. પ્રતિશ્રુતિ, સન્મતિ, ક્ષેમં-
કર, ક્ષેમંધર, સીમંકર, સીમંધર, વિમલવાહન, ચક્ષુષ્માન્, યશસ્વી, અભિ-
ચન્દ્ર, ચન્દ્રાભ, મરુદેવ, પ્રસેનજિત્ અને નાભિ.

૧. ૧૮૩. ચક્ષુમુઝ=ચક્ષુષ્માન્. તેના વચ્ચેમાં ચંદ્ર અને સૂર્યના તેજનો ક્ષ્યાલ
પ્રજાને આવ્યો. દરેક કુલકરે કોઈને કોઈ સંસ્કૃતિનું મહાન અંગ શોધી કાઢ્યું. પહેલાં
કલ્પવૃક્ષ તેજ આપતું હતું; પરંતુ સૂર્ય અને ચંદ્રના તેજનું જ્ઞાન ચક્ષુષ્માને આપ્યું.

૧. ૧૫૦ જસુમઝ=યશસ્વી કુલકર. અતુલથાઝ=અતુલસ્થામન્. જેની તુલના ન
કરી શકાય તેવા બલવાળો.

૧. ૧૫૬ પાસે='પાર્શ્વ' પાંસલીઓનો ભાગ - છાતીનો ભાગ.

૧. ૧૫૮. *મંદે=નિબિડેન; સં૦ મન્દ્રેણ.

૧. ૧૬૦. ધૃતિ, કીર્તિ, બુદ્ધિ, ધી, હી અને લક્ષ્મી ૫ છ દેવીઓ ઇન્દ્રના
આદેશથી માનવ વેષ ધરી આવી અને પોતે પરિવારસહિત મરુદેવીની સેવામાં રહી.

૧. ૬૫ *કય વિરવહ=કેશં વિરોલતિ; સંસ્કૃત છાયા કચં વિરચયતિ ।

૧. ૧૬૮-૧૬૯. સુંદર પલંગ ઉપર સૂતેલી તેણે સ્વપ્નમાલા દેખી; અને ત્રીસ પક્ષવા-
દીઓ સુધી પ્રભુને આંગળે વસુની ધારાઓ વરસી.

૧. ૧૭૦-૧૭૯. સોઠ સ્વપ્નો-૧ મદગ્રસ્તો હાથી; ૨ કમલનો સમૂહ ઉસ્વાહનો
વૃષભ; ૩ સિંહ; ૪ કમલારૂઢ લક્ષ્મી; ૫ કુમુદની માઠા; ૬ પૂર્ણિમાનો ચન્દ્ર; ૭ સૂર્ય;
૮ માછલાંનું યુગલ; ૯ પાણીથી ભરેલો મંગલકલશ; ૧૦ કમલમરોવર; ૧૧ ગર્જનો
સાગર; ૧૨ સિંહાસન; ૧૩ ઘંટાનાદથી ધ્વનિવાળો સાત માઠનો મહેલ; ૧૪ નાગોનો મહેલ;
૧૫ રત્નોનો સમૂહ; ૧૬ બલતો અગ્નિ.

સંધિ ૨

૨. ૩. અટ્ટોત્તરસહાસલક્ષણધરે=૧૦૦૮ લક્ષણ ધારણ કરનાર.

૨. ૬. *અહિદ્વિય=હર્ષિત; સં૦ છા૦ આહર્ષિત: ।

૨. ૧૭. યક્ષે (=કુબેરે) જલદી સાકેતનગરી (=અયોધ્યા) તૈયાર કરી દીધી અને હિંદ્રે
(તે નગરની) ત્રણ વાર પ્રદક્ષિણા કરી.

૨. ૧૯-૨૦. બધાં મનુષ્યો ઉપર અવસ્થાપનિકા નામે નિદ્રા દઈને [પુલોમજાણ=ઇન્દ્રા-
ણી], માયામય બાઠક (માતા) આગઠ મૂકીને, ત્રિભુવન પરમેશ્વરને, જ્યાં પરિવાર સહિત
ઇન્દ્ર હતો, ત્યાં લઈ ગઈ.

૨. ૨૫-૩૦. સરસ્વાતી પુષ્પદંતનું મહાપુરાણ, સંધિ ૩, કઢવક ૧૨. સાત સો
યોજન ઝંચે નેવુશી વધારે (=સણવહ) તારાની પંક્તિઓ છે, તેનાથી દશ યોજન ઉપર
સૂર્ય; અને પંચી યોજન ચંદ્ર; ચાર યોજનને અંતરે સત્તાવીસ નક્ષત્રની પંક્તિઓ; અને તેટલા જ

ચાર યોજને બુધનું મંડલ. ત્યાંથી ત્રણ યોજને શુક્ર, ત્રણ યોજને ગુરુ, ત્રણ યોજને મંગલ અને ત્રણ યોજને શનિશ્વર-આ પ્રમાણે ૨૮ હજાર યોજન ઓલંગી-તથા બીજા સો યોજન ઝંબે ચઢી, પાંડુશિલા ઉપર ઋષભદેવને બેસાડ્યા.

૨. ૩૨. કિં હોઈ ન હોઈ વ જોયહો-કેમ છે કે નથી તે જુઓ.

૨. ૩૩. કેહિ મિ ઘોસિઝ ચઝવિહુ મંગલુ.-ચાર પ્રકારનાં મંગલોની ઘોષણા કરી. અરિહંતમંગલ; સિદ્ધમંગલ, સાધુમંગલ, કેવલિપ્રજ્ઞપદધર્મમંગલ.

૨. ૩૬. બારહ તાલઝ સોલહિ અક્ષરુ.-બાર પ્રકારના તાલોનો અર્થ ઉલ્લેખ છે. કયા બાર તાલનો અર્થ ઉલ્લેખ છે તે સમજાતું નથી. સંગીતના પ્રથમમાં તાલની જુદી જુદી સંખ્યા આપી છે સોલ અક્ષર નીચે પ્રમાણે ગણવાય છે: ક ખ ગ ઘ, ટ ઠ ડ ઢ, ત ધ દ ધ. સ ર લ હ ઇતિ ષોડશાક્ષરં (સરસ્વાતો Dr. Vaidya's Ed. of મહાપુ-ગુરાણુ P.607.)

૨. ૩૭. ભરહુત્તઝ [ભરત+ઉત્તકમ્] નાટ્ય. જવરસ-ગુંગાર, હાસ્ય, કરુણ, રૌદ્ર, વીર, મયાનક, બીભત્સ, અદ્ભુત; અદ્ભુત-આઠ સ્થાયીભાવો

‘રતિર્હાસશ્ચ શોકશ્ચ ક્રોધોત્સાહૌ ભયં તથા ।

જુગુપ્સા વિસયશ્ચાપૌ સ્થાયિભાવાઃ પ્રકીર્તિતાઃ ॥’

૨. ૪૦. તિસરિયાઝ=[ત્રિ+સરિકાઃ] મંદ્ર, મધ્યમ અને તાર એ ત્રણેય સ્વર-નાદ યુક્ત. સંગીતમાં સામાન્યતઃ સાત સ્વર ગણાય છે. સ, રિ, ગ, મ, ધ, પ, નિ. ટિપ્પણમાં *તિસરિયાઝ=વીણા ।

૨. ૪૧. *વિણ્ણાસિઝ=કૃતમ્. સં. ત્રા. વિન્યસ્તમ્.

૨. ૪૩-૪૭. દેવોળ કલશ લઈ ઋષભદેવનો અભિષેક કર્યો. નીચેના દેવોળ કલશ લઈ અભિષેચન કર્યું.—૧. અમરેન્દ્ર; ૨. હુતવહ; ૩. યમ; ૪. નરકિકદેવ; ૫. વરુણ; ૬. મારુત; ૭. કુબેર; ૮. ઇશાન ઇન્દ્ર; ૯. ધરણીદેવ; ૧૦. ચંદ્ર.

૨. ૫૪-૫૫. વજ્રસોયથી ઇન્દ્રે ઋષભદેવના કાન વિંધ્યા તેનું વર્ણન. ત્યાર પછી આજ્ઞા કાંડવકર્મા અલંકાર-પરિધાન અને ઇન્દ્રે કરેલી સ્તુતિનું વર્ણન છે. *આહજ્ઞદ=પરિધીયતે.

૨. ૬૪. ધંદળહત્તિ=વન્દન+મક્તિ.

૨. ૬૫. *તિત્તિ=વૃત્તિ.

૨. ૬૬. *પગુત્તહ=પ્રગુપ્તાનિ.

૨. ૬૭. *ણિહારેવિ=મુખં ઉદ્દેલયિત્વા ।

૨. ૭૧. *રિસહુ મળેવિ=ધર્મવંતો વિચાર્ય. ઋષભદેવના ઝરુ ઉપર વૃષભનું ચિહ્ન હતું અને સ્વપ્નામાં પણ પ્રથમ મેરુદેવાળ વૃષભ જ જોયો હતો એટલે વૃષભને લાંબે તેનું નામ ઋષભ પાડ્યું એવો જ અર્થ રામયુક્તિક છે.

૨. ૭૪. પુષ્પહુ વીસ લક્ષ-વીસ લાખ પૂર્વો. પુષ્પહુ છઠ્ઠી ધિમક્તિ ૧૦ ૧૦. પૂર્વ-સીતેર લાખ કરોડ અને છપ્પન હજાર કરોડ વરસ પ્રમાણનો એક કાલાંવભાગ.

૨. ૭૫. ગય પય કુંવારે=ગતા પ્રજા કુમારમ્. કુંવારે (તૃતીયા વિ. નો દ્વિતીયા વિ. જેવો પ્રયોગ); * (ભુક્ષ્ણ) મારે=સમયેન મરણેન વા ।

૨. ૭૭. જીવેવડ છેદોદ્દષ્ટિય યોગ્ય નર્થા; એટલે જીવેવણ જોડે. જીવેવણ=જીવિતવ્યે જીવવા માટે. *પરિહેવણ=તામ્બૂલાદિભિઃ । પરંતુ યોગ્ય અર્થ પરિધેયે=વસ્ત્રો માટે.

૧. ૮૦. સિયસેવિડ=શ્રીસેવિતાઃ ।

૨. ૮૮. પુણ્ણાડસ=પૂર્ણાયુઃ 'જેનું આયુષ્ય પૂર્ણ થયેલું છે તે.' ટિપ્પણમાં ણીલંજણ ના છેલ્લા ણને સુધારી તેને સ્થાને સ મૂક્યો છે.

૨. ૯૧ *પાડજિણિ=ગીતનૃત્યવાદિત્રયકારકૈઃ દેવૈઃ । *પડંજિડ=પ્રયુજિતઃ કૃતઃ. *લક્ષણે=ભરતાંગશાસ્ત્રે યથોક્તં ।

૨. ૯૨. *કર ૬૦=હસ્તાદિભિઃ बहुविन्यासैઃ ।

૩. ૬૭. લોયંતિયહિં=લોકાન્તિકૈઃ દેવૈઃ ।

૨. ૯૮. ડઅહિડ=ઉદ્ધયઃ, સાગરોપમાઃ । ૧૦ કોડાકોડિ પત્યોપમ જેટલો કાઠ તે એક સાગરોપમ. જુઓ વિવેચન માટે મેં સંપાદિત કરેલ સમરાદ્યકહા (ભવ ૧-૨) P. 130.

૨. ૧૦૦. પંચમહદ્વય-પાંચ મહાવ્રત. તત્ત્વાર્થ ૦ ૭. ૧. હિંસાનૃતસ્તેયાબ્રહ્મપરિ-ગ્રહેભ્યો વિરતિવ્રતમ્ ॥ આ વિરતિ સંપૂર્ણતયા શ્રમણ પાઠી શકે. એ મહાવ્રત કહેવાય. ગૃહસ્થ પૂરી રીતે ન પાળે-પણ અમુક બાબતોનો અપવાદ રાત્રી પાળે, ત્યારે એ અણુવ્રત કહેવાય. તિણિણ ગુણદ્વય-જુઓ તત્ત્વાર્થ ૦ ૭. ૧૫. દિગ્વિરતિવ્રત, દેશવિરતિ-વ્રત, અનર્થદંડવિરતિવ્રત. ચડ સિદ્ધિવાચય-સામાયિકવ્રત, પાંચધોપવાસ-વ્રત, ઉપભોગપરિભોગપરિમાણવ્રત, અતિથિસંવિભાગ વ્રત.

૨. ૧૦૫. તેં સિદ્ધત્થુ પરાવિડ-તે સિદ્ધાર્થે નામે (ઉપવનમાં) આવ્યા.

૨. ૧૦૮. પંચમુષ્ટિક લેચનો ઉલ્લેખ છે.

૨. ૧૨૭. ણં તો—[યદિ] તાવત્, સરસાવો ગૂં નહિ તો.

૨. ૧૨૯-૧૩૦. નમિ અને વિનમિ તે કચ્છ અને મહાકચ્છ રાજાઓના બે પુત્રો. કચ્છ અને મહાકચ્છ એ બંને ય રાજાઓએ પળ ઋષભદેવ પાછળ શ્રમણ બન્યા હતા.

૨. ૧૩૯. અવહિ પડંજિવિ=અવધિ પ્રયુજ્ય-અવધિજ્ઞાનનો ઉપયોગ કરી.

૨. ૧૫૫. કણ્ણડં=કન્યા ।

૨. ૧૬૦. સેઅંસે=શ્રેયાંસે-ગાહુબલિના પુત્ર સોમરથનો યુવરાજ શ્રેયાંસ.

૨. ૧૭૦-૧૭૧. અક્ષય તૃતીયાની ઉત્પત્તિ.

પ ડ મ ચ રિ ય - શ બ્દ સૂચિ

*

[શબ્દસૂચિમાં અપભ્રંશરૂપનું સમાન સંસ્કૃતરૂપ નોંધ્યું છે. સંધિની અને સંધિની પંક્તિની સંખ્યા એ અંક અનુક્રમે સૂચવે છે. (•) કુદડી દેશ્ય શબ્દ બતાવે છે. સમાસ- માંથી વિભક્ત કરેલો શબ્દ ઉપર (') કરી સૂચવ્યો છે; તેવા શબ્દ માટે કેવળ સંસ્કૃત સમાનશબ્દ મૂક્યો છે. સિ. હે.=સિદ્ધ હેમચંદ્ર: દે ના. મા.=દેશીનામમાલા: મં.=સંસ્કૃત: પ્રા.=પ્રાકૃત: ગૂ.=ગૂજરાતી]

અદ્યતનુપણ ૧. ૩૭ અતિતનુકેન

અત્યન્ત પાતળા

અદ્ગાવણ ૨. ૧. ણગાવતે

અડઝ્ઝહે ૨. ૬૮. અયોધ્યામ્

અક્ષવદ્ ૧. ૧૬૫. પ્રાગ્ધ્યાતિ

અક્ષવદ્ધયાવલ્ ૨. ૧૬૬. અક્ષવય+યાવલ

(= ચાગ્લ તળૂલા: દે. ના. મા. ૩. ૮.)

અક્ષતતળૂલાન્ વણુભાગેલા ચોખા

અક્ષવય ૨. ૧૭૧. અક્ષય

અક્ષવયતદ્ય ૨. ૧૭૧. અક્ષયનૃતીયા

અક્ષવરુ ૨. ૩૬. અક્ષર્મ્

અક્ષવાણ ૧. ૧૬૫. આરુયાનકમ્

અક્ષાહણિ ૨. ૪૮. અક્ષોદિણી

અંગા ૨. ૧૯: ૨. ૮૧. અંગે

અંગારુ ૨. ૨૮. અક્ષારક: મંગળનો ચહ

અંગુટ્થ ૨. ૬૭. અક્ષુષ્ઠકેન

અચ્છગા ૨. ૧૦૨ અપ્પરમ:

અચ્છિ ૧. ૧૭૦: અચ્છિ ૧. ૧૬૦

અક્ષિ (નપું.) ગૂ. આંખ.

અચ્છિણ ૨. ૪૯. અચ્છિન્ના

અજ્ઞિર્મ ૧. ૧૦૨. આર્યિકા શ્રમણીઓ

અજ્ઞ ૨. ૧૬૧. અજ

અદ્દમુ ૧. ૪૬. અદ્દમ:

અદ્દવિહ ૧. ૧૧૦. અદ્દવિધ

અદ્દાણવહ ૨. ૨૯. અદ્દાણવતિ

અદ્દારહ ૧. ૧૮૬. અદ્દારહ

અદ્દોત્તર ૨. ૩. અદ્દ+ઉત્તર આઠ વધારે

૧.૩.૮.

અણાયપરમત્થહો ૨. ૧૨૬ હે અજ્ઞા

તપરમાર્થ: પરમ અર્થને ન જાણનારા

હે પુરુષો.

અણિદ્વિય ૧. ૩૧. આનિષ્ઠિત

અણુત્તરવાણ ૧. ૩૪. અણુત્તરવાચા

અણુમાણુ ૧. ૧૩૨. અણુમાનમ્ને અણુ-

સરતું માપ.

અણુરાણ ૩૧. ૬ અણુરાગેળ

અણુહરહ ૧. ૮૨. અણુહરતિ મળતું આવે

છે.-અણુહરમાણહ ૨. ૮૧. અ-

ણુહરતામ.

અણુ ૧. ૧૮૫. અન્ય:-અણુહું ૨. ૭૧

અન્યેભ્ય:-અણુહો અણુ ૨. ૫૭.

અન્યોઅન્ય.

અણુ ૧. ૧૨૬. અજમ્

અતિસય ૨. ૮૭. અતિશય

અંતેઝ્ઝરુ ૨. ૭૦. અન્ત:પુરમ્

અત્યાણે ૨. ૯૦. આસ્થાને સ્થામંડપમાં

અદ્દુ ૧. ૧૮૨. અર્ધમ્

અપ્પણ ૨. ૧૧૯. આત્મા-અપ્પણ ૨

૧૭૨. આત્માનમ્:-અપ્પણ ૧. ૫૧

આત્મા:-અપ્પણ ૧. ૨૬ આત્મા

અપ્પણ ૨. ૩૩. આત્મા

અપ્પાલિય ૨. ૩૩. આસ્પાલિતા

અબુહુ ૧. ૫૧. અબુધ:

અબ્મત્થિયણ ૧. ૫૩. અબ્મથિતેન

અબ્મંતરે ૧. ૧૩૫: ૧. ૧૮૪ અબ્મન્તરે

अमराहिषं १. १२५. अमराधिप
अमिउ २. ६७. अमृतम्
अमुल्लं २. १५८. अमूल्य
अम्हे २. ७६. वयम्;—अम्हे २. १३३.
अस्माभिः;—अम्हहं २. ६३; अम्हहं २.
१३५. अस्मभ्यम्.
अरुह २. ६१. अर्हन्
अलहंत १. ५७. अलभमानः
अलिउलण १. १५७. अलिकुलेन
अल्लु १. ८८. आर्द्राद्रि अत्यंत भीनुं.
अवइण्णु १. १८३. अवतीर्णः
अवछप्पिणिं १. १३७. अवमर्षिणी
अवराहु २. १३३. अपराधः
अवलोयइं २. १५८. अवलोकयति;—
अवलोयवि २. १५१. अवलोक्य.
अवहत्थिवि १. ५५. *अपहस्तयित्वा=
दूरीकृत्य, अवगण्य.
अवहिं २. १३९. अवधिम् अवधिज्ञान.
*अवहेरि २. १४६. अवहेलाम्
अविउल्लु २. ११४. अविकलः
असरालइं २. १५७. वह्नि
असीहिं २. २६. अशीत्वाम्
असुरमत्ति २. २८. =असुरमंति=असुर-
मन्त्री शुद्ध
असेसइं २. १०१. अशेषाणि
अहिट्टिय उ. ६. आहट्टः
अहिसिन्नु २. २. अभिषिक्तः
अहिहाणे २. ४६. अभिधानेन
आइउ १. १५९. आयाताः (स्त्री.)
आइज्जइ २. ५५. आदीयते
आइज्जउ १. ६४. आविद्धः पहेरायो,
धारणु करायो.
आउ १. ९४. आयातः
आएसु २. ९०. आदेशः;—आणमि १.
१५९. आदेशेन
आपं २. ४५. आयातेन

आगमजुत्ति १. ४९. आगमयुक्तिम् शास्त्र-
नी युक्तिने
*आढत्त २. ५८. आरब्धम्;—आढत्तइ
२. ३७. आरब्धानि
*आढप्पइ १. ३८. आरभ्यते
आणइ २. १५५. आनयति;—आणेवि
२. २. आनीय.
*आदण्णेहिं २. १२८. व्याकुलः
आमेलेवि २. १२२. आमुच्य
आय २. १०३. आयातः;—आयइं १. १४८
आयातानि.
आयत्त १. ८८. आवृत्त
आयरियं १. ३५. आचार्यः;—आयरिणं
१. ३३. आचार्येण
आयरु १. १८७. आकरः
आयामु १. १३१. आयामः लंघार्ध
आयासु १. १३०. आकाशः
अरिसु १. ६. आर्षम्
आलउं १. १७५. आलयः
आलावणिं १. ७२. आलापनी ऐक्यवाद्य-
विशेष
आलावेण २. १३७. आलापेन
आवहुं २. १४७. आयामः अभिभाषीये.
आसंकिउ २. ५७. आशङ्कितम्
आसणं २. ८. आसन
आसण्णीहअं १. ९९. आसन्नीभूत
आसत्तइं २. ६५. आसक्तानि
आसाइं १. १५७. आशया
आसासयं १. ३१. आश्वासक प्राकृत
काव्यना अथवा तो कोर्धवार अप
अंश काव्यना विभागनुं नाम.
संस्कृतकाव्यना विभाग सर्गना जेवो
आ विभाग छे.
आसि २. १३३. आसीत्
आहयाइं १. ५८. आहतानि
इक्खुं २. १६९. इष्टुं शेरदी

इत्थंतरि २. ५४. अत्रान्तरे
 इन्द्रभूय १. ३३. इन्द्रभूति^१ भगवान्
 महावीरना प्रथम शिष्यः छन्दभूति
 गौतम गालुधर.
 इय १. १८९. इति
 ईसाणें २. ४६. ईशानेन धिमानेन्द्र
 उइउ १. १८८. उदितः
 उअरि १. १३५. उपरि
 उअहिउ १. ९८. उदधयः=सागरोपमाः
 लुओ टिप्पणी.
 उक्खय १. १६५. २. १४३. उत्खात
 जिया करेखा
 उक्खय १. १६९. उत्खात भोटा कढेखा.
 उग्गवियं १. १. करेखुं सरभावो सि.
 डे. १७६. अग्गवइ (पाठान्तरमाः
 उत्सव) पूरणार्थं
 उच्चाइउ २. १०५. ऊचायितम्-उच्चाइअ
 २. ८८ उच्चायिताः
 उच्छण्णा २. ७६. उत्सन्नाः
 उच्छवणइ १. ५८ इच्छवणानि
 उच्छवेण १. ७१. उत्सवेन
 उज्जलं १. ८५. उज्ज्वल
 उज्जाणेहिं २. १६ उज्जाने.
 उड्ढावियं २. ९ उड्ढायित
 उणाइ १. ४५. उणादिः
 उत्तिमं २. १३० उत्तम
 उन्थलिउ १. ५२. २. १५२. उत्थला-
 यित-गू. अथवेखुं; सरी गेखुं.
 सरभावो डे. ना. भा. १. १०७.
 उन्थलियं उन्मुखगतमित्यन्ये ।
 उद्धयउ २. ११२. उद्धताः;
 उद्धयमाणु १. ८५. उद्धयमानः
 उद्धलिउ २. १२९. उद्धलितम् व्याप्त
 थयेखुं; धूणमां व्याप्त थयेखुं. सर-
 भावो सि. डे. ४. २९=उद्धलेइ.
 उप्पण्ण २. ८३. उत्पन्नाः-उप्पण्णण
 २. ६. उत्पन्ने

उप्परि २. २६. उपरि
 उप्पायइ १. १६२. उत्पादयति;-उप्पाइय
 २. १२९. उत्पादिताः (पु.):-उप्पा-
 हउ १. ११९. उत्पादिताः.
 उग्गिय १. ९२. ऊर्ध्व स्थितः-उग्गियाइ
 २. ३८. ऊर्ध्व कृतानि.
 उम्मोहिउ २. ९७. उन्मोहितः
 उयरि २. १०८. उदरे अंहरना अर्थमा
 उलगाए २. ८९. सेवायाम्. डे. ना. भा.
 १. १६४. ओलुग
 उवमिज्जइ १. ७५. उपमीयते;-उवमि-
 ज्जहिं २. ६१. उपगीयसे
 उवरि १. १२१. उदरे
 उवरि २. २१. उपरि
 उववणि २. १०६. उपवने
 उववरेवि १. ९५. अवतीर्थ
 उववासं २. १०१. उपवास
 उवसग्ग १. ४४. उपसर्गाः
 उवसोवणि २. १९. उपस्वापिनीः अंठ
 प्रकारेनी निद्रा.
 उवाउ २. ७७. उपायः
 उव्वेल्लिउ २. ३७. उद्वेलितम् विस्तार्यु
 सरभावो सि. डे. ४. २२३. उव्वे-
 ल्लइ=उद्वेष्टते
 एउ १. १४४; २. १३३, एतद्
 एकं २. ९५. एक
 एकपक्खु १. ७६. एकपक्षः
 एकसि २. १३४. एकशः; सि. डे. ४.
 ४२८. एकशसो डिः ।
 एत्थ १. १००. अत्र
 एत्थंतरि १. १५९. अत्रान्तरे
 एम २. ५१; २. ८८; २. १३८. एवम्,
 सि. डे. ४. ४१८.
 एव १. ५१; १. १७९. एवम्, सि. डे.
 ४. ४१८.
 एवहिं १. ३४; एवहि १. १४५; २. ७७.
 इदानीम्, सि. डे. ४. ४२०.

- एहउ २. ३१. एषः
 एहारमण १. १०६. एकादशे
 ओहं २. ६०. ओघ-समुद्ध
 ओहर १. २८. =ओहार आश्रयो, हे.
 ना. भा. १. १५७.
 कइहिं २. ७३. कविभिः
 कइमुहाइं १. ६०. कविमुखान
 कइरायं १. ३५. कविराजेन
 कइहिं २. ८०. कतिभिः
 कंचणमउ २. १३. कञ्चनमयः
 कच्छ २. १६. कक्षा ओरओ, आंगणुः-
 कच्छ डिनारो.
 कज्जं २. १४३. कार्येण
 कंठियाउ १. ५८. कण्ठकाः गणामां
 पंडरवाणी सोनानी डंडीओ
 कडियले २. ५६. कटीतले=कटीतटे डेउ
 उपर.
 कडिसुत्तउ २. ५६. कटीसूत्रम् डंडोरो
 कणइ १. ६७. क्वणति
 कणउं २. १५५. कन्याः
 कण्णुप्पले १. ९५. कर्णोत्पले
 कंदोइ १. १५६. नीलोत्पल, हे. ना. भा.
 २. ८.
 कप्पंगण १. १०१. कल्पज्जनाः डेउप-
 वासी देवोनी पत्नीओ
 कप्पयरु १. १३७. कल्पतरुः- कप्पयरु
 २. ७६. कल्पतरुः
 कप्पामर २. ७. कप्पामर डेउपवासी देवो
 कर्म १. ७७. कर्म पग.
 कमज्जुयलु १. १५८. कमयुगलम्
 कमलायरु १. १७२. कमलाकरः डमणथी
 लरपूर सरोवर.
 कंपंति १. ५४. कम्पन्तेः-कंपंतु १. ५४.
 कम्पमानः
 कम्मरउ २. ९५. कर्मकारः नोकर
 कम्मेप्पिणु २. २९. कान्वा
 कय १. १६४. कचः अंभोओ, वाण
 कयाइ १. ४१. कदापि
 करमि २. ८५. करोमि-करेप्पिणु २.
 १३१. कृत्वाः-करेवि २. ६९.
 कृत्वाः-करंतहो २. ६४. कुर्वतः.
 कलमि १. ५६. कलमे बहु पाण्णीवाणा
 स्थणमां उत्पन्न थयेवा प्रीडि.
 कलयलु २. ३४. कलकलः
 कल्लण २. १२३. कन्ये=श्वः जीश सवारै,
 आवणी डारे
 कल्लण १. ८६. कल्याण
 कवड २. १२५. कपट.
 कवणु १. ७५. कः; डेटलाड कः+पुनः
 साथे आ शब्दनी व्युत्पत्ति भेटे छेः
 न्यारे Pischel: Grammatik
 der Prakrit Sprachen
 §428मां तेने कि=कव विकारनी
 साथे योश व्युत्पत्ति साधे छे.
 (डा. त. कवोण वगेरै.) कवणेण
 २. १४३. केन. सरभावो सि. छे.
 ४. ३६७.
 कविवरेण १. १२३. कविवरंण
 कह १. ११८. कथा
 कह १. १२३. कथम्
 कहि १. १२१. कुत्र
 कहि १. ११८. कथय
 काइ २. १२३. काइ २. १२०. किम्
 सरभावो सि. छे. ४. ३६७. किमः
 काइ-कवणो वा ।
 काउसाणं २. १११. कायोत्संगण
 काणे २. १२१. कर्णे
 कावि १. १६३. का+आप डोभडि आ
 कावे १. २६. काव्येन
 कित्तिहरेण १. ३४. कीर्तिधरेण
 किपि १. ४९. किमपि
 किय १. ११०. कृत

किर. २. १२०. किल सि. हे. ८. ४१६.
 किलकिलइ १. ७१. (ध्वनिशब्द)
 आनंदनो डिबडिवाट करवो.
 किसि २. ७९. कृषि: भेडवानी उणा
 किह १. १२४. कथम्
 किह १. १०७. कीदशः
 कीलंतहो २. ७४ कीडतः
 कुडिलसक्खु १. ८१. कुटिलसख्यः
 जेनी मैत्री कुटिलताथी लरपूर छे.
 कुंडुयणाइ २. ११७. कण्डयनानि भंज-
 वाणुं ते
 कुंभयण्णु १. १२५. कुम्भकर्णः
 कुम्मे १. १२०. कूर्मेण
 कुलपव्वय १. ११०. कुलपवंत विशंप
 भाटे लुआं रिप्पणी
 कुलयर १. १३८. कुलकराः लुआं
 रिप्पणी.
 कुंवारे २. ७५. कुंवारइ=कुमारं सप्तमी
 विनो प्रयोग जील भाटे कुमारना
 अर्थभां
 कूड २. १२५. कूट उपटी रभत
 कूरभा १. ८० कूरभावः
 केम १. ११८, १. १२२. कथम्
 केरी १. ११८. संभंधार्थसूचक अनुग
 सरभावो मू. डेरो, डेरी, डेरु.
 Pieshel §176=कार्य; सि. हे.
 २. १४७. इदमर्थस्य केरः ।
 केहि २. ३५. कैः
 कोउहल्लु १. १४४. कौतुहलम्
 कोकिय २. ८८. =कोकिय=व्याहृता.
 आहृता; सि. हे. ४. ७६. कोकड
 अने पोक्कइ=व्याहृतति
 कोट्टे १. १०१. कोष्ठे कोठाभां
 खग्ग १. १६५. खड्गः
 खणद्धे २. १३९. क्षणधेन
 खंधु २. १०५. स्कन्धम्

खंभ १. १८०. स्तंभ
 खार १. ७९. क्षार
 खाणे २. ७७. खादनं
 खामिय २. ११६. क्षान्ताः
 खीरु २. ५०. क्षीरम्
 खेत्त १. १३४. क्षेत्रम्
 खेमंकरु १. १४०. क्षेत्रकरः
 गज्जइ १. ७१. गर्जति
 गण्णेहि २. ४८. गण्यैः
 गच्छु १. ८७. गात्रम्;—गत्तं १. ३७.
 गात्रेण
 गंधकुडु १. १७१. गन्धोत्कटम्
 गंधवाउ २. १६९. गन्धवातः
 गंपि २. ६८; गंपिणु १. १७७. गत्वा
 गयणंगणु १. ८३. गगनाङ्गनम्
 गरहंत २. १३८. गर्हमाणाः
 गरुअ २. ७;—गरुयउ १. १५५. गुरुकः
 गह २. १११. ग्रह
 गामेल्लभास १. ५०. ग्रामभाषा
 गायइ १. ७२. गायति
 गिच्चाण १. १८०. गीर्वाणः
 गीदु १. १२०. गृहीतः गीदु १. १८०
 गृहीतम्
 गुरुक्की २. ९५. गुवा
 गेउ २. ९५. गेयम्
 गेण्हिवि २. ५४. गृहीत्वा
 गेहेवि २. ३०५. गृहीत्वा
 गोउरु १. ६५. गोपुरः—गोउराइ १. ९१.
 गोपुराणि
 गोमएण २. १६५. गोमयेन
 घड्डउ १. ४९. घटयत २थो
 *घत्तउ २. ११५. क्षिप्तः
 घाइज्जइ १. १२३. हन्यते
 घिट्ठं १. ११४. घृष्ट
 *घित्तउ २. १०९. क्षिप्ताः
 *घुम्मइ १. ६८. घूर्णति

ચત ૧. ૮૬. ચતુર
 ચતુર્તીસ ૧. ૮૭. ચતુર્થિશત
 ચતુર્થ ૧. ૧૪૦.—ચતુર્થ ૨. ૪૪.
 ચતુર્થ:
 ચતુર્દશ ૧. ૧૩૧.—ચતુર્દશ ૧. ૧૩૪
 ચતુર્દશ
 ચતુર્વિહ ૨. ૩૪. ચતુર્વિધ:
 ચતુર્વીસ ૧. ૨૫. ચતુર્વિશતિમ્
 ચતુર્માણવ ૧. ૧૨. ચતુર્માનવા: ચાર
 માણસની ઉંચાઈ બેટલા.
 ચતુર્સદ્ધિ ૧. ૮૯. ચતુ:ષ્ઠિ:
 ચતુર્હમિ ૨. ૨૭. ચતુર્થે
 ચક્રુ ૧. ૧૩૬. ચક્રમ્
 *ચક્રાવિય ૧. ૧૦૯. આરોપિત સરખાવો.
 સિ. હે. ૮. ૮. ૨૦૫. આરુદ્ધચક્ર-
 વલગૌ—ચક્રાવિય ૨. ૨૩. ચક્રા-
 વેવિ ૨. ૧૭૨. આરોપ્ય:—ચક્રિત
 ૨. ૯. આરુદ્ધ: ગૂ. ચ. ૫૦.
 ચતુ ૧. ૭૮. લક્ષ:
 ચત્તારિ ૨. ૪૯. ચત્તારિ
 ચંદુ ૧. ૫૪. ચન્દ્ર:
 ચરહ ૧. ૧૨૬. ચરિજહ ના અર્થમા:
 ખવાય છે
 ચરણગૌ ૧. ૮૫. ચરણાગ્રેણ
 ચારુગત્ત ૧. ૧૫૩. ચારુગાત્રી
 ચાલિય ૧. ૮૬. ચાલિત
 ચામીયર ૨. ૧૦૮. ચામીકર
 વિંધઈ ૨. ૩૮. વિહાનિ
 ચેલિત ૨. ૧૫૬. ચેલકમ્ વચ્ચે
 છ ૧. ૧૩૬. પદ
 છકારય ૧. ૪૪. પદકારકાન્ બુઝાં ૮૦
 છટ્ટ ૧. ૧૪૧: ૨. ૪૫. પદ્ય:—છટ્ટમિ
 ૧. ૧૦૩. પદ્યે
 છળ ૧. ૧૭૧. છળ ૧. પૂર્ણિમા:—છળઈ ૧.
 ૫૪. છળે પૂર્ણિમાને દિવસે
 *છંદહો ૨. ૧૧૮. મુચ્ચત. સિ. હે. ૮. ૪.
 ૧૧. ગૂ. છોડવું.

છળ્લા ૧. ૧૩૭. છળા:
 છત્તુ ૧. ૮૭. છત્રમ્
 છપ્પ ૨. ૯. છપ્પદે ભમરામાં
 *છલિયણાં ૧. ૧૪૯. વિદગ્ધનામા:—
 બેનું નામ બહુ ચતુર છે; બેની
 વિદગ્ધ કીર્તિ પ્રસરેલી છે તે.
 છલિય=વિદગ્ધ દે. ના. મા. ૩. ૨૪.
 છવિહ ૧. ૩૪. છવિધા:
 છાહ ૧. ૮૩. છાદિતમ્
 *છિવરણાસે ૧. ૭૩. ચિપિટનાસેન બેનું
 નાક ચિબુ છે તે. ચિવિહ=ચપટું. અને
 છિવ=સ્પર્શ એ બંનેની એકમેક પરની
 અસરને લીધે આ શબ્દ બન્યો હોયો
 બેધએ. છિવર—એકલું: ચિબુ
 *છુટ્ટ ૧. ૪૯. કદાચ, બલે, બે, સરખાવો
 સ. હે. ૮. ૮. ૪૨૨. (ઉ. ૧૫) યદે-
 છુટ્ટ ૧. ૧૫૦. ક્ષિપ્રમ્.
 હેમચંદ્ર આપેલા અર્થ કરતાં સાહિત્યમાં
 બુદ્ધનો અર્થ વધારે વિસ્તૃત છે બુઝો
 ડૉ. પી. એલ. વૈદ્ય સંપાદિત મહાપુગણ
 પા. ૫૬૮ ઉપર નોંધ
 છુહચુળ્લ ૧. ૭૩. મુધાચૂળ્લ ચુનાનાં ભૂકાં.
 સરખાવો ગૂ. છો: ચૂનો
 જહ ૨. ૧૧૦. યદિ
 જક્ષ્વકદમેણ ૧. ૧૫૫. યક્ષકર્દમેણ સ-
 રખાવો અમર ૧૫. ૧૩૩. 'કર્પૂર-
 ગુરુકસ્ત્રીકક્ષોર્લેયક્ષકર્દમ.'
 જક્ષ્વે ૨. ૧૭. યક્ષેણ
 જગજણેરિ ૧. ૯૭. જગજ્જનિત્રી જગતની
 માતા.
 જહા ૨. ૧૧૨. જટા:
 જણિય ૨. ૭૧. જનન્યા
 જંતિ ૨. ૬૫. ૨. ૧૨૦. યાન્તિ
 જમરાપે ૨. ૪૪. યમરાજેન
 જંબૂદીવ ૧. ૧૩૩. જમ્બૂદીપ:
 જમ્મુપ્પત્તિ ૨. ૮૮. જન્મોત્પત્તિ:
 જય ૧. ૧૨૦. =જહ =યદિ

जलइ १. १२७. जलानि
 'जलायरेहिं १. ६९. जलकरैः
 जलाशयोथी
 जसु १. ९०. यस्यः जुओ जाम्
 जहि १. ५६. यत्र
 *ज्जे १. ८२. =जि=एव, जुओ शब्द-
 सूचि जि
 जाइ १. १२१. याति
 जाणहुं २. १३३ जानीमः
 जाणियउ १. ४१. ज्ञानम्
 'जाणें २. १०४. यानेन
 जाम १. १८५. यावत्
 जाय २. ९४. जाता
 जाला २. ११३. ज्वाला
 जावेहिं २. १३. २. ८२. यावत् सर-
 भायो सि. हे. ८. ४. ४०९. याव-
 तावनोर्वादेर्मउं महिं ।
 जासु १. ८२. यस्य जुओ शब्दसूचि जम्
 जाहं २. ७६. येषाम्
 जाहि २. ८९. याहि
 जाहुं २. १२१. यामः (आपाणे) जुओ
 *जि १. १५३. एव सरभायो सि. हे.
 ८. ४. ४२० यू. ज.
 जिणिदहो १. ८४. जिनेन्द्रस्य
 जिथु २. १३९. यत्र सि. हे. ८. ४. ४०४
 जिम्भण २. ११६. जृम्भण भणसुं
 जिम २. ७३. यथा
 *जिमिउ २. १७२. भुक्तवान् सि. हे.
 ८. ४. ११०. जिमइ=भुङ्क्ते
 जिह २. १११. यथा सि. हे. ८. ४. ४०१
 जीवेवउ २. ७७. =जीवेण जीवितुम्, जी-
 वितव्याय. विध्यर्थं कृदंत भाटे सि.
 हे. ८. ४. ४३८.
 जुज्झइ १. १२२. युध्यति
 जुयलु १. १७२. युगलम्
 'जुयलपहिं १. ७०. युगलकैः
 जे २. ६६. =जि ज् जि एव ना अर्थभां

जेत्तहे २. २०. २. ९०. यावत्
 जेत्तहिं १. १६१. यत्र
 जेम २. ६९. यथा सरभायो जिम
 जोइम १. १०२. ज्योतिष्क.
 'जोगु २. २२. योग्यः
 जोयहो २. ३२ पश्यतः—जोणप्पिण
 १. ६. दृष्ट्वा यू. जेवुं
 जोयण १. ९०. योजन
 झत्ति २. २१. झटिति
 झल्लरि १. १३२. झल्लरी, आक्षर-डाप्प
 णाना आक्षरनुं वरयेथी पातणुं वाद्य.
 झम् १. १७२. झर्षं मत्स्य
 ठविउ २. २९. स्थापितः—ठवेप्पिण २.
 १९. स्थापयित्वा
 'उहणु १. ८६ दहनः—उहणें २. २१६.
 दहनेन
 *डोरु २. ७. =दवरकः दोरोः
 *डोहहो २. १२१. =डोष २१, कलुषीकृतः
 यू. उक्षीणीः सरभायो सि. हे. ८. ४
 ४३९. उदा. २. अडोहिउ=अदोषितम्
 *ढक्करिवंतएहि १. ११९. आश्चर्यवद्भिः
 सरभायो सि. हे. ८. ४ ४२२.
 उदा. ११. अद्भुतस्य ढक्करिः
 दुक्किउ १. १५१. दौकितः—प्रेषितः.
 दोयइ २. १५८. दोवइ १. १६६. दौकते
 ददाणि उपस्थापयतिः भेटे उरवी,
 पारं वापवुं
 *ढोरि २. ३६. =गवादयः प्राणिनः यू. ढोर
 णउ १. ४१. न खलु
 णज्जंत १. ६०. ज्ञायन्ते सरभायो सि. हे.
 ८. ४ २५२.
 णञ्चंति १. ५९. नृत्यन्ति
 णट्टारंभु २. ८९. नाट्यारंभः
 णट्टउ २. ९८. नष्टम्—णट्टइं २. ९८
 नष्टानि
 णयरिय २. ४५. नरकिक परमधार्मिक
 देव जे नरकना जुवोने पीडा आपे छे.

- णरवइ १. ७५. नरपतिः
 णव १. ४५. नापि—प्रा. णवि. गू. नव
 णवणवइ १. १३५. नवनवतिः. नवाञ्जुं
 णवेप्पिणु १. ९३. नत्वा
 णहयल १. ११५. नभस्तलं
 *णाइ २. ११३. इव सरभावो सि. डे.
 ८. ४. ४४४.
 णाउं २. १७१ नाम
 णाणं १. ८६. जानः—णाणदेह १. १८३.
 जानदेहः
 णावियमत्था २. १४२. नामितमस्तकाः
 णासइ २. ८७. नश्यते
 णासेवि २. ११८. नंष्ट्रा
 *णाहउ २. ३७. नाथः
 णिउ २. २० नीतः
 *णिपवि २. ८४ दृष्ट्वा. सि. डे. ८. ४.
 १८१. निअड = पश्यति
 णिक्खवणु २. १०५. निष्क्रमणम्
 *णिगन्थहो २. १२५. हे निर्ग्रन्थाः
 णिग्गय २. ५. निर्गताः
 णिग्घोसइ २. ५. निर्घोषाः
 णिञ्च १. ७८. नित्य
 *णिणाय २. ६. निनाड
 णिहा २. ११६. निद्रा
 णिहारेवि २. ६७. निदार्थं झीरीने,
 उभाडीने
 *णिम्महण १. ११२. निर्मथन
 णियमु २. ८७. नियमः
 णियरु १. १७६. निकरः
 णियलपहिं १. ७०. निगहकैः
 णिरवेक्खु १. १३०. निरपेक्षः
 *णिरु १. ५५. नितराम् निश्चयं वा
 णिव २. ११५. नृपाः
 णिवडियं १. ७३. निपतितः—णिबडि-
 यइ २. ६६. निपतितानिः—णिवडं-
 तउ १. ६६. निपतन्—णिवडि-
 णिणु २. १३१. निपत्य.
 णिवायगणु १. ४५. निपातगणः
 णिविसे २. १०५. निमिषेण
 णिसण्णु १. ५६. निषण्णः
 णिसुअउ १. ४३. निश्चुताः
 णिसुणिउ १. ४६. निश्चुतम्—णिसुणिवि
 १. १२८. णिसुणेवि २. ७८. निश्चुत्य
 *णिहेलणु २. १६४. गृहम्, दे. ना. भा.
 ४. ५१.
 णीलंजण २. ८९. नीलाङ्गना अथवा तो
 नीलयशाः
 णीलंजम् २. ९४. णुओ णीलंजण
 णीसंगत्तणु २. १२८. निःसंगत्वम्
 णेउरं १. ७०. नूपुर
 *णेत्तइ २. ६५. नेत्राणि
 *णेह १. ११२. स्नेह
 णं १. ५७ इव सि. डे. ८. ४. ४४४
 णणं १. ७६. छ. = ननुः णंतो २.
 १२८. = ननु तावत्
 ण्णाहिं १. ४० = णाहिं नास्ति. सि. डे. ८.
 ४. ४१९ नाहिं = नहि
 ण्हविउ २. ५३. ण्हविउ २. ५१. स्नापितः
 तइअइ १. १०२. तृतीय
 तइल्लोक्कु १. १३१. त्रैलोक्यम्—तइल्लोक्कहो
 २. १. त्रैलोक्यम्
 तउ १. १७९. तव
 तक्खणे २. ९१. तत्क्षणं
 तग्गयं १. ११६. तद्वत्
 तत्ति १. ४३. तत्परता, चित्ता. दे. ना.
 भा. ५. २०
 त्तयं २. १०६. त्रय
 तंमोलु १. १६३. ताम्बूलम्
 तरणि १. ५६. तरणिः = सूर्य
 तलायहिं २. १५. तडागः
 तहंतिउ २. २७. तद्विहितं २. २५. तथा
 +इयल्यः
 तहो १. ५२. तस्य
 ता २. ९४. तावत्

ताइं १. ६०; २. १५८. तानि
ताम १. १८५. तावत्
तारायणं २. २५. तारागण
तालगायाइं २. ३५. तालगतानि
ताव १. ८३; २. १०२. तावत् णुओ शब्द
ता अने ताम
तावेहिं २. १३; २. ८३. तावत्
ताम् १. ७५; १. ८२. तम्मै अथवा तस्य
ति २. १६३. तिस्रः
तिणयणु १. ७६. त्रिनयनः शिव
तिणिण १. ९१. त्रिणि
तित्ति २. ६०. तृप्तिम्
तिन्थपवत्तणु २. ८६. तीर्थप्रवर्तनम्
तिय १. १२१. त्रियम्
तियमइं १. १२३. त्री सरणावो अप
अंशपाडावती ३. ६६. तीमइ=त्रीः
तिहो नीवधः पढ्भी तामि
तियसेंद २. ५९. त्रिदशेन्द्र
तिरिय १. १०६. तिर्यङ्
तिरिलोय १. १३२. तिर्यकुलोकः
तिलउच्छवतें २. ५७. तिलकोन्सवान्ते
तिवार २. १७. त्रिकृत्वः त्राणुवार.-
तिवारउ २. १४१. त्रिकृत्वः
तिस २. ११६. तृप्ता
तिमरियाउ २. ४०. तिस्रिकाः=वीणाः
तिसट्ठ २. ८२. त्रिषष्टि
तिहुणं १. १०८. त्रिभुवन
तीसं १. १६८. त्रिसत्
तुरंतु २. ९. त्वरन्-तुरंतें २. १०७.
त्वरताः-तुरमाणं १. ९२. त्वरमाणेन-
तुरन्ति २. ९२. त्वरन्ती-तुरिउ २.
१४१. त्वरितः. सि. डे. ८. ४. १७२.
*तूह १. ३१. तीर्थ. जलाशयभां उत-
रवा भाटेनी पगधियांनी पंक्ति.
सरणावो दे. ना. भा. ५. १६.
(टीका)=सरिदवतारः
१. ३. ९.

तेत्तहि १. १६१. तेत्तहिं २. २०. तेत्तहे
२. ९०. तावत्
तेत्थ १. १३२. तेत्थु २. ६७. तत्र
तेयपिंडु १. १८६. तेजःपिण्डः
तेह २. १२४. तेषाम्
तो १. १५९. ततः. तोवि १. ४८. ततः
अपि=तावद् अपि.
*तोडहो २. १२७. त्रोटयध्वम्. सि. डे.
८. ४. १७.-तोडेपिणु २. १२१.
त्रोटयित्वा
थक्कु १. १५६. स्थितः. सि. डे. ८. ४. २७.
थग्हरिय १. ९७. कम्पित
थवित २. ६८. स्थापितः-थवियउ २.
१०८. स्थापिताः
थाउं १. १४९. स्थामन् अण.
थाणवि २. १०६. स्थित्वा; १. थाहु २.
१६२. तिष्ठत
थालइं २. १५७. स्थालकानि थाणा.
थिउ १. १८४; २. ९०. स्थितः
थेर १. ५६. स्थिरः
थोन्तइं २. ३८. स्तोत्राणि
थोवंतरे २. १०६. स्तोत्रान्तरे
दइवि २. १२४. दैवी
दक्खवइ २. ७८. दर्शयति. सि. डे. ८.
४. ३२
दंडि १. ४७. दण्डिन् अलंकारशास्त्रेण
अंक ग्रंथ-काव्यादर्शनो रचयिता.
दप्पणु १. १६४. दर्पणम्
दरिस्सत्तिण २. ९४. दर्शयन्त्या
दरिस्सावइ २. ३१. दर्शयति
दससयनेत्तु २. ११. दशशतनेत्रः छन्दः-
दससयणेत्तें २. ५७. दशशतनेत्रेण
दहमुहु १. १२५. दशमुखः रावल्लु
दहवयणु १. १२६. दशवदनः रावल्लु
दाडिमाइं १. ६०. दाढीमानि
दाहिणं १. ८२. दक्षिण

दिङ् १. १०१. दष्टः; दिट्ठी १. १६७. दष्टा
 दिट्ठि २. २१. दष्टिः
 दिण्णउ २. १३५. दत्तः;—दिण्णु १.
 १५४. दत्तः
 दिण्णसोहु १. १७४. दत्तशोभम्
 दिंतु २. १६३. ददत्त
 दिवसहो १. १८२. दिवसस्य
 °दिवायरु १. १८८. दिवाकरः
 दिहिं १. १६०. धृति ओ३ देवीनुं नाम.
 दीवा २. १६६. दीपकान्
 दीसइ १. १६९. दृश्यते
 दीहियं २. १५. दीर्घिका
 दुद्धरु १. १४०. दुर्धरः
 दुंदुहिं २. १६९. दुंदुभिः
 दुब्बल २. ६६. दुर्बलाः
 °दुच्चाएं १. १५५. दुष्पाकेन; दुःभना
 भराभ परिष्ठाभथी.
 दूराठाणु २. १४५. दूरस्थानम्
 देइ १. १६३. ददाति;—देज्ज २. ६२.
 दयाः;—देप्पिणु २. १९. दत्त्वाः;—देवि
 २. २०५. दत्त्वाः;—देवावियं १. ९७.
 दापित, णुओ णीणं ३पो शब्दसूचिः
 दिण्ण, दिंतु, देसहु वगेरे
 देउलं १. ६७. देवकुलः;—देवउलहिं २.
 १४. देवकुलैः
 देविहे १. १६६. देव्याः
 देसहु २. १२३. दास्यथ; णुओ देइ
 देसंतरु २. १४४. देशान्तरम्
 देसीभासां १. ३०. देशीभाषा
 धणपं २. १३. धनदेन कुभेरे
 धणणइं २. १५७. धान्यानि
 धण्णा २. ७६. धन्याः
 °धम्म २. ८७. धर्मः
 धयं १. ६६. ध्वज
 *धयधयंतु १. १७६. ज्वलन् धगधगतुं.
 धरणिंदे २. ४७. धरणीन्द्रेण

धरियउ १. १२०. धृतः
 धिगत्यु २. ९५. धिक्+अस्तु
 धूमद्धउ १. १७६. धूमध्वजः अग्नि
 धूलिसमइं २. ९५९. धूलीसमानि
 धूवं २. १६६. धूप
 नक्खत्तहं २. २७. नक्षत्राणाम्
 नवेप्पिणु १. ५. नत्त्वा
 *नाइ २. १२. =इव; णुओ णाइ
 नावइ २. ३१. =इव णुओ णावइ
 निउंएं २. १२१. नियोगेन
 नेउरसहे १. १५८. नूपूरशब्देन
 न्हवणं १. १८०. स्नान
 पइट्टु २. ९२. प्रविष्टा
 पइं २. १०१. त्वयाः;—पइं १. ४०.
 तुभ्यम्, त्वाम्
 पइसारिअउ २. १६४. प्रवेशितः
 पईहरं १. ३७. १. १७०. प्रदीर्घ
 पउंजिउ १. ९१. प्रयुक्तम्;—पउंजिवि
 २. १३९. प्रयुज्य
 °पउत्तियाउ १. ४३. प्रवृत्तयः
 पउमिणिं १. ३६. पद्मिनी—अतुभुंअ
 कविनी मातानुं नाम.
 पउलोमए २. १८. पुलोमजया धीद्राणीओ
 °पउहराए २. १८. °पयोधरायाः
 पक्ख १. १६८. पक्षाः
 पक्खलइ १. ७०. प्रस्खलति
 °पक्खालणु २. १६४. प्रक्षालनम्
 पगुत्तइ २. ६६. प्रगुप्तानि
 पंगणए १. १६८. प्रांगणे
 पच्चय १. ४४. प्रत्ययाः णुओ टि.
 पच्चाहारहो १. ४२. प्रत्याहारस्य णुओ टि.
 पच्चुत्तरु २. १२३. प्रत्युत्तरम्
 पच्छिम १. ८५. पश्चिमः
 पंचमुहु १. १७०. पञ्चमुखः सिद्ध
 पट्टणु २. १४. पत्तनम्
 पडंतउ १. १२०. पतन्

अंक ३]

पउमचरिय-शब्दसूचि [२८७

पडल° २. १०८. पट+ल (स्वार्थतद्धित)
वस्त्रनो कटको

पडह° २. ५. पटह ढोढ

पडिअंचिउ २. ६९. प्रत्यक्षितः आरे
आणुओ इ२:वुं; प्रदक्षिणा कडावी

पडिबोहिउ २. ९७. प्रतिबोधितः

पडिय २. १७०. पतिताः

पडिरक्खइ १. १६५. प्रतिरक्षति

पडिवक्खे २. ५४. प्रतिपक्षेण

पडिवण्णए २. १२४. प्रतिपन्ने

पडिवाडिउ २. ९८. प्रतिपादितम्

पडिवारउ° १. ६८. -पडिवारिअ°=सं.
प्रतिवारित°

पडीवा २. १४६. प्रतीपाः

पडीवा २. १६६. पटीका वस्त्र.

पढइ १. १६२. पठति

पणच्चइ १. १६२. प्रचल्यति

पणच्चिउ २. ६९. प्रनर्तितः

पणट्टु° १. ११२. प्रणट्ट

पणवइ १. ६९. प्रणमतिः-पणविज्जहिं
२. ६१. प्रणम्यसे

पणारह १. ८८. पञ्चदश

पण्णेहिं १. ७३. पणै.

पत्ति १. १८४. पणै

पत्तिउ २. २७. पङ्क्तयः; आणुओ पंतिउ

पत्थारु १. ४७. प्रस्तारः विस्तार

पदरिसहि २. ८९. प्रदर्शयः-पदरिसिउ
१. ५१. प्रदर्शितः

पंतिउ १. ५७. पङ्क्तयः

पय २. ७५. प्रजा

पयइ १. ९६. पदानि

पयगय° २. ३५. पदगत° आणुओ अ२:ए
संभंधी.

पयागे २. १०६. प्रयागे

पयारउ २. ७९. प्रकाराः

पयासइ २. ८७. प्रकाश्यते;-पयासिउ
२. ४१. प्रकाशितम्

पयासु १. १३४. प्रकाश

पयाहिण १. २३. प्रदक्षिणा

पर १. ५६. परम्, 'डेवण'ना अर्थभां

परणारीहि १. १२६. परनार्याम्

परमत्थे २. १५०. परमार्थेन

परमण्णउ २. ११९. परमात्मा

परमण्णय २. २९. परमात्मा

परमेसरु १. ८५. परमेश्वरः

परलोपं २. १२०. परलोकेन

पराइउ १. ८४. परायातः;-पराइय २.
१३०. परायातः;-पराविउ २.
१०६. परायातः

परिअंचिअ २. १७. पर्याजिता प्रदक्षिणा
कडावी

परिआणिउं २. ४१. परिज्ञातम्

परिट्टिउ १. १०८; १. १३१. प्रतिष्ठितः

परिणाविउ २. ८०. पागणायिताः

परिफुरंतु १. १७६. परिस्फुरन्

परिमिउ २. १११. =परिविउ=परिवृतः
अथवा परिमितः

परियट्टइ २. ७२. परिवर्तयति

परिवेडिउ १. १००. परिवेष्टितः-परिवे-
डिज्जंता २. ११७. परिवेष्ट्यमाणाः

परिसेसिउ १. १२६. परिशेषितः ङणुओ

परिहरणाइं १. ५०. परिहरणानि अ२:अं-
कारो, वस्त्रो.

परिहेवए २. ७७. परिवेद्यके=वस्त्रे

पलयभाउ १. १३०. प्रलयभावः

पल्लंक १. १६७. पर्यङ्क°

पवइआ २. ११५. प्रवजिता;-पवइआ
२. ११०. प्रवजिताः

पवज्जिय २. ४. प्रवादिताः

पवत्तइ २. ८६. प्रवर्तते

पवरिसिय १. १८२. प्रवृष्टः—पवरिसिय	पुत्तहुं २. ८१. पुत्रेभ्यः
१. १८५. प्रवृष्टः	पुष्फइ २. १६६. पुष्पाणि
पविरलदत्तं १. ३७. प्रविरलदन्तेन	पुरंदरासु १. १५१. पुरन्दरस्य
पसाणं २. ७६. प्रसादेन	पुलइअंग १. १०५. पुलकिताङ्ग
पसाहइ १. १६६. प्रसाध्यति;—पसाहेवि	पुव्वहो २. ७४. पूर्वानाम् 'पूर्व' सभयना
२. १५५. प्रसाध्य	परिभाणुं नाम.
पसुत्तियइं १. १६७. प्रसुप्तया	पेसिवि २. १४४. प्रेय
पहाणा २. १४८. प्रधानाः;—पहाणु १.	पोक्खरिणिं २. १५. पुष्करिणी
१३३ प्रधानः	पोंफलेहिं १. ७३. पूगफलः गू. झोझ
पहिलउ १. ५५. प्रथमम् पडेलुं;—पहि-	फणिवइ १. ८०. फणिपतिः
लए १. १०१. प्रथमे	फाडिमं १. ६०. फाड्+इम (तद्धित)
पाउ १. ८८. पादः	सि. डे. ८. १. २३२. फालेइ, फाडेइ
पाउजिएहि २. ९१. प्रातोर्थिकः वादित्रो-	= सं. पाटयति. गू. झोझां
वाणाओओ	फारुचक्खु १. १४२. स्फारचक्षुः
पाडइ १. १६४. पातयति	फुलिगं १. १५५. स्फुलिग
पाण २. ९३. प्राणाः;—पाणहिं २. ९४.	फुलमंडव १. ८८. पुष्पितमण्डप
प्राणैः	वन्नीस १. ११३. १. १८१. द्वात्रिंशत्
पाणे २. ७७. पाने	वारह १. ९१. द्वादश
पायडमि १. २६. प्रकटयामि	वारहमण १. १०६. द्वादशे
पायय १. २९. प्राकृत	विज्जउ २. १५३. द्वितीयः
पायार १. ९१. प्राकाराः श्रुओ	बिहत्था २. १४३. द्विहस्ताः
पारइइं २. ३८. प्रारब्धानि	बिहि २. १३१. द्वाभ्याम्
पावसेण २. ४. प्रावृषा वर्षाः तृती	बीयण १. १०१. द्वितीये
पावहुं २. १४५. प्राप्नुमः;—पाउवि २.	वुज्झिउ १. ४४. बुद्धः = ज्ञातः सि. डे.
१६०. प्राप्तम्.	४. २१७.
पासे १. १५५. पार्श्वे;—पासेहिं २. १३१.	वुहयण १. ८०. हे बुधजन
पार्श्वे	बे २. १४७. द्वे
पिएवय २. ११८. = पिएवए = पानव्ये	वेण्ण २. १३१. = विण्णि = द्वौ
पीवाभां	*बोहइ २. १३२. वदति. सि. डे. ८. ४.
पिंडघासु १. ९८. पिण्डघासः नोडर	२. बोहइ २. १३४. वद
पियारउ २. ८४. प्रियतरः	वोहंतु १. १८६. बोधयन
पिहिमि २. १४६. पृथ्वीम्	भक्खइ २. १२१. भक्षयति
पीलणं १. ८५. पीडन संस्थापौ गू.	भंतिउ १. ११९. भ्रान्तयः
पीडवुं	भंतिएहि १. ११९. भ्रान्तकः भ्रान्तिभां
पुणु १. ८२; १. १८५. ध. पुनः	पडेवा भनुयोथी
पुण्णाउस २. ८८. पूर्णायुः	भडारउ १. १८३. भट्टार्कः

भणिउ २. १६३. २. १६३. भणितम् त२३
 भणेवि २. ४१. भणित्वा त२३; भणेवि
 २. १७१. भणित्वा-ने ङीधे.
 भमंतण १. १५७. भ्रमता
 भम्महं १. ४७. भामह अलंकार उपरना
 ओ३ ग्रंथनो ले३३.
 भरहु १. ४६. भरतः अरतमुनिरयित
 ना३थशास्त्र.
 भरहु १. १३६. भारतः अरतभंडनो ओ३
 प्रदेश.
 भरहुत्तउ २. ३७. अस्तोक्तम् ना३थ
 भरेप्पिणु २. १००. २. १०८. मृत्वा
 भव्वयण १. १८६. भव्वजन
 भसल २. ३३. भ्रमरः, दे. ना. भा. ६.
 १०१. टी३.
 भाणं १. १३६. भागे
 भामरि २. १४१. भ्रमणम्
 भारमत्त १. १५३. भारमात्रम्
 भाव १. ४५. भावे प्रयोग
 भावणं २. ८. भावनक देवोनो प्र३र
 भावेवि २. १७२. भावायेत्वा
 भिंगारें २. १६७. मृद्गारेण
 भिच्चत्तणु २. ५६. मृत्युत्वम्
 भिच्चु १. १२२. मृत्युः
 *भिभलेहि १. ६८. विह्वलः
 *मुक्खा २. ७१. वुहुक्खा > वुमुक्षा. दे.
 ना. भा. ६. १०६: सरभापो वुहु-
 क्खइ=वुमुक्षति, भक्षयति सि. टे.
 ८. ४. ५-मुवखहि २. १६६. वुमु-
 क्षायाम्=क्षुधायाम्. गू. भू३
 भुयणत्तयं १. ८७. भुवनत्रय
 भुवं १. १२५. भू
 भोयणे २. ७७. भोजने
 म २. १२७. मा
 मइ १. ४०. मया;—मइ २. १६१. माम्.
 मउडिं १. ११४. मौलि

मगहदेशु १. ५५. मगधदेशम्
 मगहाहिवु १. १०९. मगधाधिपः
 मंगलगारउ २. १. मङ्गलकारकः
 मज्जणणं १. १८८. मज्जनकं
 मज्झि १. १३१. मध्ये
 मण्णंतउ २. १५९. मन्यमानः
 मढं २. १५. मठ
 मत्थण १. १०८. मस्तके
 मंदें १. १५७. मन्द्रेण=निबिडेन
 मंदोवरि १. १२७. मन्दोदरी
 मयगलु १. १६९. मदकलः=हस्ती. दे.
 ना. भा. ६. १२५.
 मयगिळु १. १६९. मदक+इल (तद्धित)
 मडअरतो
 मयणं २. ६८. मदन
 मयग्रह १. १२४. मकरधरः समुद्र
 मयसिरिं २. १०. मद्रथी
 मरगयं १. ५७. मरकत
 मरुदुयं १. ६६. मरुत्तु उद्धृत
 मसिं २. ७९. मशी शास्त्री-वपयानी कुला
 महग्गहेण १. ५४. महाग्रहेण शङ्खुथी
 महण्णवे २. ५०. महार्णवे
 महराउ १. ९३. महाराजः;—महारायहो
 २. ८३. महाराजस्य
 महाणविण २. १८. महादेव्या
 महायकण्वु १. ८६. महाकाव्यम्, अतुभु३
 पांथमहा३ाव्यो गण्णवे छे; ओ३ कथां
 छे ते कडेवुं विषम छे. कदाच नैषध
 अने भाधनी गण्णतरी ते न पण्ण
 करतो छेय.
 महिअले १. ९६. महीतले;—महियलि
 २. ११९. महीतले
 महिएण १. ७४. मथितेन दहीथी
 महिसाकोडिहिमिण १. १२६. महि-
 साकोडिहिं+इण=महिषकोटीभिः अनेन ।
 महिहरिंदु १. ८५. महीधरेन्द्रः

महुं १. १४६. महा मः-महु १. १४४. मम
 महुमहु १. ८१. मधुमथः मधु राक्षसो
 संहार करनार कृष्ण
 माह १. २२१. माति सभाय छे
 मायाबालु २. १९. मायावी आणक
 मारुड १. ८०. मारुतः
 मारुण्य १. ३६. = माउरण्यः अतुर्भुषणा
 पितानुं नाम
 मारें २. ७५. मरणेन; ओ वारें नो ईरुकर
 भारें छेय तो वारेण समयेन अर्थ
 थाय. आथी टिप्पणुकरे समयेन
 मरणेन वा ओम वपुं छे
 मुक्की २. ९४. मुक्ता
 मुच्छणेहिं १. ७२. मूर्च्छनाभिः
 मुट्टिउ २. १०८. मुष्टिकाः
 मुय २. ७५. मृताः
 मुयणं १. ७७. मोचन. सरभावो सि. डे.
 ८. ८. ९१. मुअइ = मुञ्चति
 मुरयं १. ७१. मुरजं
 मुहयंदै २. १४७. मुखचन्द्रेण
 मुहुलु १. १७५. मुखरम्
 मुहलीहुयउं १. १५८. मुखरी भूतम्
 मेहलहरेहिं १. ६९. मेखलभरैः
 मेहेहिं २. ५२. मेघैः
 मोक्खु १. १०८. मोक्षः
 मोत्तियं १. १५५. मौक्तिक
 रइ १. १५२. रतिः
 रणप्पिणु २. ४९. रचयित्वा
 रक्खइ २. १२१. रक्षति
 *रंगिय १. ७४. रञ्जिता
 *रंगे १. ७४. रंगवडे, रज्ज्धातुभांशी आ
 शब्द आण्यो छे
 रज्जुय १. १३१. रज्जुक अेक प्रकारनुं भाप
 रयडावुत्तु १. ४८. रयडानवुत्तु = राज-
 श्रेष्ठिना उक्तः
 रयणं १. १३८. रत्न

*रवणउ २. १४. सुन्दरः सरभावो सि.
 डे. ८. ४. ४२२. उड ११. रम्यस्य
 रवणः
 रविसेणं १. ३५. रविषेणं
 रसोहु १. १५४. रसौघः रसनो अर्थो
 राउ २. १३. राजन्
 राणा २. १४८. राजानः
 रामणु १. १२५. रामवणु १. १२१. रावणः
 रायलच्छि २. १०६. राजलक्ष्मीम्
 रायहं २. ११०. राज्ञाम्
 *रिण १. १२. = जल अथवा कृण
 रिसहं १. १८८. ऋषभ
 रिसिं १. १०१. २. १२६. ऋषिं
 रुक्खहो १. १४८. वृक्षस्य
 रुच्चइ १. ५३. रोचते
 रुणयं २. १५७. रूप्यकं ३. पुं
 *रेहइ २. ११. राजति सि. डे. ८. ४. १००.
 रेहंति २. ११२. राजन्ति, शोभन्ते
 रोमंचियंगु १. ९६. रोमाञ्चिताङ्गः
 लइ १. १४५. अनर्थक निपात
 लइआ २. २१०. लाताः = गृहीताः; -लइया
 २. ११५. = गृहीताः
 लइज्जइ २. ४७. गृह्यते; -लइयउ २.
 ३९. लाताः वीथीः -लइयउ २. १०८.
 लाताः वेवाया. -लएवि २. ३१. २.
 ९०. लात्वा, -लाएवि २. १०६. लात्वा
 णुओ लयउ, लेइ
 लक्खणं २. ३. लक्षण सामुद्रिक लक्षण
 लक्खणु १. ४६. लक्षणम् संगीत शास्त्र, -
 लक्खणे २. ९१. लक्षणे नाट्यशास्त्रभा
 लक्खिज्जइ २. २६. लक्ष्यते; -लक्खिउ
 २. १४०. लक्षितः
 लग्गा २. ११८. लग्नाः
 लग्गु १. १०९. लग्नः
 लग्गेवि १. १८२. लगित्वा = पर्यन्त
 लच्छिं १. १६०. लक्ष्मी

लंबियं २. ११४. लम्बित
लयउ २. ४६. लातः लुओ लइजइ
ल्यार १. ४४. ल-कार लुओ टिप्पणी
लहु १. ९७. लघु लइटी
लायणु १. १५४. लावण्यम्
लेइ १. ५२; १. १२७. लातिः-लेहुं २.
१५०. लामः अमे लइओ; -लेवि १.
१११; लेप्पिणु २. ५०. लान्वा
लोणहिं १. ११९. लोकैः-लोयहु १. ५१
लोकैभ्यः लोयहो २. ३१. लोकम्
लौयण १. १५६. लो-यने
लौयंतियहिं २. ९७. लोयन्तिकैः लोका-
न्तिक-ओक प्रकाशना देवो छे.
व १. ५८ इव
व २. ३२ व
वइगगहो २. ८५; २. ९६. वैगम्यम्
वउ २. ८७ वतम
वक्कु १. ४५. वाक्यम्
वक्खाणियउं १. ४१. व्याख्यानिमित्तम्
व्याख्यातम्. विवेचन कथुं
*वखुत्तइं २. ६६. निममानि लुओ. खुत्त=
निमम दे. ना. भा. २. ७४; खुप्पइ=मज्जति
सि. हे. ८. ८. १०१. विशेष अर्थो भाटे
Pischel § 286. खुप्पइ=सं. क्षुप्यति
(क्षुप् अवसादने) अने तेना उपरथी
७ खुत्त. गू. भूपीणुं भूतीणुं.
वच्छन्थले २. ५६. वक्षःस्थले
वज्जु २. ९१. वज्र २. ३५. वायम्, गू.
वाणुं
वज्जसूइ २. ५४. वज्रसूचिः वज्रनी सोय
वहुइ २. ७३. वर्धते
वणसिरिं १. ५७. वनश्री
वण्णमि १. ५५. वर्णयामि
वसु १. १७३. वृत्तः गोणाकार
वत्थे १. १६३. वस्त्रेण
वंदणहिं १. १०९. वन्दनाय

वंदिणं १. ९९. वन्दन
*वमालउ २. ३९. कलकलः दे. ना.
भा. ६. ९०
वम्महं १. ११२. मन्मथः-वम्महु २. ७९
मन्मथः कामदेव
वयणु १. ४५. वचनम् - वयणाइं १. ५०
वचनानि गू. वेणु
वयणाइं १. ६०. वदनाति
ववसाउ १. ४५. व्यवसायम्; -ववसाय
१. ७८. व्यवसाय
वरि १. ४८. उपरि ते उपरांत
वरि २. १३४. वरम्
वरिड्डी १. १६८. वृष्टा
वरिसड्डु १. १२६. वर्षार्धम्
वरिसु १. १८२; २. १११. वर्षम्
वलंतहो २. ११३. वलतः-वलेवि २.
१४५. वलित्वा
वलहुं १. ८७. वल्लभः
वसहं १. १६९. वृषभ
वसुहार १. १६८; १. १८५. वसुधारा
रत्नोनी धाराओ
वाणिज्जउ २. ७९. वाणिज्यम्
वामड्डुअ १. ८२. वामद्वय = वामार्धः ३।धुं
५।धुं
वायइ १. १६२. वादयति; -वायउ २. ३६
वादितम्
वायहिं १. ९४. वाचयसि-वदसिना अर्थ
भां, जेनी तुं वात करे छे
वायरणु १. ४१. व्याकरणम्
वि १. ८२; १. १३२; १. १८५. अपि
विअप्पिवि २. ८८. विकल्प्य
विउलहिं २. १५. विपुलैः
विउलइरि १. ८४. विपुलनिरौ
विच्छिउय २. ११७. वृश्चिक वींछी
विज्जउ २. ७९. विद्याः
विज्झइ २. ५५. विध्यति वीधुं

- *विद्वप् १. ३९. अर्ज्यते सि. डे. ८.
 ४. २५१. अर्जेविद्वपः । विवेचन
 भाटे सरभावो Pischel §223,
 §286. = विधापयति, वि+धा. गणु.
 ३. उल्लय. नुं प्रेरक ३५
- विणउ १. ५१. विनयः
 विणिवारइ २. १२२. विनिवारयति
 विणु २. १०३. विना
 विणोउ १. १६२. विनोदः
 विण्णवइ १. ४०. विज्ञापयति
 विण्णाणु २. ४१. विज्ञानम्
 विण्णासिउ २. ४१. विन्यस्तम्
 वित्ति १. ४१. वृत्तिः टीडा
 वित्थरिण १. १३३. वित्थरेण १. १२९.
 विस्तरेण
- विंदं २. ५९. वृन्द
 विप्फुरइ १. ७०. विस्फुरति
 विब्भमं २. ९३. विभ्रम
 विमाणिया २. ११६. विमानितः
 विमुच्चइ १. ५४. विमुच्यते
 विंभउ १. १४२. विस्मयः
 विंयारउ २. ६८. विकारः
 विरवइ १. १६४. विरचयति
 विरुसइ १. ५२. विरुष्यति
 विवरिज्जंतु २. ७३. विव्रियमाणं विवरल्लु
 डरातां
- *विवरेरि १. ११७. विपरीता सरभावो
 सि. डे. ८. ४. ४२४. उल्ल. १
- विविहं २. ७९. विविध
 विसज्जिय २. ९३. विसर्जिताः
 *विसट्टउ २. ७. विकसितः
 विसण्णु १. ५६. विषण्णः
 विसमचक्खु १. ७६. विषमचक्षुः जेनां
 सम अटक्खे जे, नेत्र नथी ते, त्रल्लु
 नेत्रवाणा शिव
 विहंजिबि १. ११५. विभज्य
- विहडउ १. ४९. विघटयत धूटी पाओ
 विहत्तियाउ १. ४३. विभक्तयः विभक्तिओ
 विहसेप्पिणु १. १७९. विहस्य
 विहीसणु १. १२७. विभीषणः
 विंदु १. १२०. पृष्ठम्
 वीस १. ४४. विंशतिः
 वीसहत्थु १. १२५. विंशतिहस्तः
 वुच्चइ १. १२९. उच्यते
 वुत्तु १. १७९. वुत्तउ २. ९१. उक्तम्
 वेंतरेंउ १. १०३. व्यन्तर्यः व्यन्तर नामे
 देवोनी पलीओ
- वेह्ति २. ४९. हार, पंक्ति, सरभावो सि.
 डे. ८. १. ५८. Pischel §107:
 तेमज वद्धा = लता दे. ना. भा. ७.
 ४४. भू. पेक्ष
- व १. १५१. इव लुओ व
 स १. १६३. स्य
 सइ २. ७. सइं १. १८८; २. ४५; सई
 २. ९७. स्वयम्
 सइ १. १५१. शची
 सउं २. ८१. शत
 सउणं १. १४ शकुन पंथी
 सक्कयं १. २९. संस्कृत
 सकु २. ९. शकः
 सक्केयं २. १७. साकेत
 संघापं २. १११. संघातेन
 संक २. ९४. शङ्का
 संचल्लिउ २. १३. संचलितः
 संचारेवि २. ६७. संचार्य
 सच्छरु २. ७०. सह+अप्सरम् अप्सराओ
 सल्लित
- संज्ञा १. १४७. संध्या
 सणवइ २. २५. सह+नवतिः नेतुं थी वधारे
 सणिच्छरु २. २८. शनिश्चरः
 सणेहिं २. ११०. जेहेन
 संडु १. ६९. षंड कथारो

संठिउ १. १०७. संस्थितः
 सण्णिहं २. १० संनिभ; - सण्णिहेण
 २. १६७. संनिमेन
 सत्त १. ४३. सप्त
 सत्तं २. ९६. सत्त्व
 सत्थउ २. ११४. सार्थः
 सत्थु २. ९८. शास्त्रम्
 संथुद्वमाणु १. ९०. संस्तूयमानः
 संधिण १. ४२. सन्धौ संधि उपर
 सपरिवारु १. १६१. सपरिवारः
 समउ २. ११५. समम् साथे
 समणु १. १२६. समनाः भनवाणो,
 अबिवाधावाणो
 समत्थे २. ४५. समर्थेन
 समण्ह २. ५०. समर्पयति
 समय २. १३०. समयाः = सिद्धान्ताः
 समसरणु १. ८४. समवसरणम्
 *समाणीजंतण १. ३९. सि. डे. ८.
 ४. ११०. समाणइ=भुनक्ति; सि. डे. ८.
 ४. १४२. समाणइ=समाप्नोति. परंतुः
 सम्मान्यन्ते नेन 'सम्मानित थयेवाथी'
 ओ अर्थं सयुक्तिः छे.
 समाणु २. ११०. समानम्=सह
 समुट्ठिउ १. १८६; समुट्ठिय २. ६. स-
 मुत्थितः - समुट्ठिय २. १२४. समुत्थिता
 समुज्जलु १. १६४. समुज्ज्वलम्
 सम्महवंतउ १. १३९. सम्मतिवान्
 संपत्तउ २. १५३. संप्राप्तः
 संभरहि १. ५४. संस्मरसि
 संभासिउं २. ४७. संभासितं प्रकाशित
 कथ्युं; शोभायुं
 संमज्जणु २. १६५. संमार्जनम्
 सरगयं २. ३५. खरगत
 सरिं १. ३२. सरिन्
 सरिसउ १. ४०. सदृशः
 सरु २. १६९. खरः
 १.३.१०

संबच्छह २. २८. संवत्सरः
 संवाहइ १. १६६. संवाहयति शरीर
 आपि छे
 ससहरु १. ७६; २. २६. शशधरः अन्द्र
 ससि २. १११. शशी
 ससिकंतं १. ६९. शशिकान्त अन्द्रकान्त
 नामे, पत्थर जे अन्द्रना क्रिस्त्रोथी
 द्रवे छे
 संसउ २. १३७. संशयः
 संसारारापं १. ३४. संसार+अरागेण
 संसार उपर विरज्जिते वीधे
 सहरसेण २. ४४. सहर्षेण
 सहसं १. १३५. सहस्र
 सहसअक्खु १. ८१. सहस्राक्षः; - सह-
 सक्खे २. १७; २. ५४. सहस्राक्षेण
 सहोउ १. ८०, १. ८८. स्वभावः; -सहावे
 १. ११६. स्वभावेन
 सहासं २. ३. सहस्र
 सह १. १६३; २. ७५. सह
 सहोयरेण १. १२३. सहोदरेण
 साउ १. १३० सावु=सव्वु=सर्वः
 सामाणभास १. ४९. सामान्यभाषा
 सायरु १. ७९. सागरः
 सारं १. ६९. सुन्दरं
 साहिउ २. १६०. कथितम्; साहियं १.
 १९०. कथितम्; सि. डे. १. ४. २.
 साहइ = कथयति
 सित्तं २. १०. सिक्त
 सिद्धत्थु २. १०५. सिद्धार्थः सिद्धार्थ
 नामनो णगीथो
 सियं २. ८०. श्रीं
 सियसेविउ २. ८०. श्रीसेविताः
 सिरि १. ६४. शिरसि; -सिरे २. १७२.
 शिरसा
 सिरिं १. १६०. श्री
 सिविआ २. १०४. विविक्वा

°सिहिहे २. ११३. शिखिनः=अग्निनो
 सीउण्हहो २. ११६. शीतोष्णयोः
 सीलु २. ८७. शीलम्
 *सीसइ १. १७८. कथयति सि. डे. ८.
 ४. २.
 सुअण्णइ २. १५७. सुवर्णानि
 सुज्झइ १. १२२. शुध्यति
 सुण्णउं २. १०३. शून्यः
 सुत्तु १. ४१. सूत्रम् व्याकरणां सूत्रो
 सुपरिट्ठियाउ १. ५७. सुपरिस्थिताः
 सुयं १. ५७. शुक्लं
 सुयइ १. १२६. स्वपिति
 सुयवंतउ १. १३९. श्रुतवान्
 सुविणं १. १६७. स्वप्नं
 *सुविहाणइ १. १७८. सुविमानके=मुप्र-
 भाते डे. ना. भा. ७. ९०. विहाणो
 =प्रभातम्.
 सुव्वइ १. ११७. श्रूयते
 सुहणिलए १. १०८. सुखनिलये
 सुहासुहं १. ५. शुभाशुभं
 सूरिं २. ६९. सूर्येण सूर्ये
 सुलगं १. ६७. श्लाघं अण्णीऽर
 लाधानी टोय
 सेअंसं २. १६०. श्रेयांसेन
 *सेदिहिं २. १५३; सेद्धिहिं २. १४८.
 सेदिहि २. १५३. श्रेण्याम्

सेण्णि १. १२२. सैन्ये
 सेदरु १. ६४. शेखरः
 सो १. ८२. सः
 सोत्तं २. १०. स्रोतस्
 °सोमए २. १८. सौम्यायाः
 सोलहि २. ३६. =सोलह-षोडश
 °सोहिलं १. १. सोह+इल्ल =शोभा + इल्ल
 (तद्धित) शोभावाणुं
 *हक्करा २. १०३. आह्वानम्
 हत्थुत्थल्लिउ १. ५२; २. १५२. हस्त+
 उत्स्थलायितम्। हाथभांथी विथदी
 पडेलुं; हाथभांथी सरैलुं. सरभावो
 डे. ना. भा. टीका उत्थल्लियं उन्मु-
 खगतमित्यन्ये।
 हयं २. ५४. हत अथवा हत
 हयसरीरु १. ७९. हतशरीरः
 हय २. १६६. हयः
 हरिसियं १. १००. हर्षित
 हवंतु २. १०१. भवन्तु
 °हियत्तणु २. ८६. हृदयत्वम्
 हिरी १. १६०. ही
 हुअवहेण २. ४३. हुतवहेन
 होउ २. ९६. भवतु; -होतेण २. १०१.
 भवता होतां; -होसइ १. १७९.
 भविष्यति; -होदु २. १४८. भवथ



કવિ શામળની સર્વોત્તમ કૃતિ

લે૦ શ્રીયુત પ્રેમશંકર હ. મદ્ર. એમ. એ. ભારતીય વિદ્યા ભવન

*

શામળે આશરે છવીશ પુસ્તકો, વર્ણનાત્મક અને ઔધાત્મક સ્વરૂપે લખ્યાં છે. એની ‘મદનમોહના’, ‘નંદબત્રીસી’, ‘પદ્માવતીની વાર્તા’, ‘વિદ્યાવિલાસિની’, અથવા ‘વિનેયટની વાર્તા’, ‘વિધાતાની વાર્તા’, ‘લદ્રાલાભિની’, ‘સુડાબહોતરી’, ‘વૈતાલપચ્ચીસી’ ‘સિંહાસન બત્રીસી’ વગેરે કૃતિઓ વર્ણનાત્મક વાર્તાઓ છે: જ્યારે ‘શિવપુરાણ મહાત્મ્ય’ ‘રેવાખંડ’, ‘અંગદવિષ્ટિ’, ‘રાવણમંદોદરી સંવાદ’, ‘રણછોડજીના શલોકા’, ‘કૃષ્ણજન્મનો ગ-ઓ’ વગેરે ઔધાત્મક (didactic) પ્રકારની કૃતિઓ છે. એ બધામાં એની ‘મદનમોહના’નાત્મક કથાત્મક વાર્તા સર્વોત્તમ ગણાય છે. થોડાં વર્ષો અગાઉ તો કોઈ કોઈ વિવેચકો, ‘આપણા સાહિત્યમાં તદ્દન અવનવી લાગે તેવી કેટલીક વસ્તુઓ એના કાવ્યમાં સર્વત્ર છૂં નાથે વેરાયેલી પડી છે; અને પોતાની પાસે રહેલી વસ્તુ-સામગ્રીને તે એટલી અદ્ભુત મૌલિકતાથી ઉપયોગમાં લે છે કે એક તરફથી તે સ્થાનિક લોકમાનસને અનુરૂપ બની રહે છે, અને સાથે સાથે જ તેના કલેવરમાં ક્રાન્તિની ચિનગારી સળગાવે છે’^૧ કહીને, ગુજરાતના તત્કાલીન સાહિત્યમાં એણે અદ્ભુતતા અને કૌતુકપ્રિય (Romantic) કલાનો નવો પ્રવાહ ઉમેર્યો જાણી એના ઉપર પ્રશંસાની અખંડ અર્ધધાર: દોળતા. પરંતુ આજે કાળબળના આઘાતો સહીને એ અભિપ્રાય સ્થિર રહી શક્યો નથી. માત્ર શામળ માટે જ નહિ; પણ સમગ્ર મધ્યકાલીન સાહિત્ય માટે, આજથી અર્ધા શતક પહેલાં બંધાયેલો અભિપ્રાય, નવાં નવાં પુસ્તકો માસ કરીને જૈન કવિઓના અપ્રગટ પુસ્તકો-પ્રાપ્ત થવાથી, પરિવર્તન પામતો ગયો છે. દિ. બા. શ્રી. કૃષ્ણલાલ ઝવેરી કહે છે તેમ ‘જુના સાહિત્ય સંબંધે હાલનો જમાનો અનિશ્ચિતપણાનો-Transitional period-નો છે’^૨. જ્યાં સમગ્ર મધ્યકાલીન સાહિત્ય કે આપણા આદિ કવિ મંનાતા નરસિંહ મહેતાને સમય, એનું સાહિત્ય, એ વેળાની પરિસ્થિતિ વગેરે પરત્વે બંધાયેલાં અભિપ્રાયો અનિશ્ચિત અને અસ્થિર હોય ત્યાં, શામળ કે એની કૃતિઓ પરત્વેનો કોઈ એક વિવેચકનો અભિપ્રાય અંતિમ કે નિશ્ચિત ન હોઈ શકે એ પણ એટલુંજ સ્પષ્ટ અને સ્વાભાવિક છે

પણ શામળની મૌલિકતા કે અપૂર્વતા માટે, ગોવર્ધનરામભાઈ જેવા વિવેચકો જ ગૌરવ અનુભવે છે ને ‘એના ક્ષેત્રમાં એ એકલો છે, એણે કોઈનું અનુકરણ કર્યું નથી અને એને માર્ગે જનાર કોઈ નીકળી શક્યો નથી’ એમ કહે છે એમ નથી: શામળ પોતે પણ પોતાની આ અપૂર્વતા માટે એટલો જ મગરૂર છે: ને મૌલિકતા કે અપૂર્વતા જેનામાં ન હોય તેના પ્રત્યે એણે પ્રયત્નપૂર્વક તિરસ્કાર કેળવ્યો હોય તેમ, પ્રમાણ પ્રત્યે ‘કથું કથે તે શાનો કવિ, શીખી વાત તે શાની નવી?’ કહી પેલી પ્રખ્યાત ઉપહાસ પંક્તિઓ ઉચ્ચારી પ્રહાર કરે છે: -

૧ ગોવર્ધનરામ: *Classical Poets of Gujarat* p. 56.

૨ મધ્યકાલીન સાહિત્ય. પૃ. ૧૩૦

ઘર ઘર રાગ તાણું નહિં, પુત્ર ન મુજ ગુણ ગામ,
રાજદરબારે રઝળવું, મેળવી નથી પસાય.
ભાટ બ્રાહ્મણ ને ભાંડવા, લાંબી મૂઝી પોક,
રીઝી ભલા ભલા કહે, તેથી થાયે શોક.

પરંતુ એણે પોતેજ એની બધી વાર્તાઓનું વસ્તુ સંસ્કૃત કે પૂર્વે થયેલાં જૈનકવિઓ પરથી, હિંદી કે વ્રજભાષમાંથી, અને એ સમયમાં પ્રચલિત એવી દંતકથાઓમાંથી લીધું છે એ હકીકતથી હવે તો સહુ કોઈ પરિચિત છે જ.^૩ અને ‘રાજદરબારે રઝળવું, મેળવી નથી પસાય’ એવો પોતાને માટે એ જે દાવો નોંધાવે છે એ પરત્વે આપણે એણે એના આશ્રયદાતા ‘ભૂપતિ જીજ્ઞેસીજી’ જેવા કણ્ઠથી રખીદાસ વિષે કહેલી પંક્તિઓ સાદર અર્પણ કરી શકીએ છીએ.

અને શામળની આવી દાંભિક બચક વૃત્તિ માટે પ્રેમાનંદ પુત્ર વક્ષભ પણ, એક સ્થળે પોતાની ઉક્તિને કટાક્ષનો દ્રાવ્યો દઈ, તેની મશ્કરી કરી લે છે:—

રખીદાસ રાજસ વડો, પ્રીછે સઘળી પેર,
ઘણે હેતે તેડાવિયો, કવિ શામળ નિજ ઘેર.
ખાન પાન શુભ વિધનાં, અમૃત મેવ આહાર,
પૃથવી કરી પસાયતે, હેતે રોપી હાર.^૪

૩ આ માટે જુદા જુદા લેખકોનો અભિપ્રાય જુઓ:—

(અ) ‘એણે સંસ્કૃત વાર્તા સાહિત્યનો ઉપયોગ કર્યો છે. ‘વૈતાલપચીશી’ તો કથાસરિતસાગરમાંથી ઉતારી છે. અને રેવાખંડ (સ્કંદપુરાણ), શિવપુરાણ વગેરે ગ્રંથો સંસ્કૃત પુરાણો પરથી અને ગવણમંદોદરી સંવાદ, અંગદવિદિ વગેરે રામાયણ ઉપરથી રચ્યાં છે. બચીશ પુત્રાણીની વાર્તા અને સુડા બહાંતરી (સિદ્ધાસન દ્વાવિરિકા અને શુક સમતિ) પણ શામળ પોતાંથી સંસ્કૃતમાં મળે છે’.

શ્રી. દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી. મધ્યકાલીન સાહિત્ય—સંસ્કૃત સાહિત્યનાં આદોલનો—પૃ. ૬૫

(બ) ‘એટલું તો ખરું કે તેની (શામળની) પ્રેરણાનું પ્રભવસ્થાન વેદપુરાણાદિ પ્રાચીન સંસ્કૃતિના અવશેષો કરતાં એકાદ અંશે જ ઉતરતા એવા હિંદી ને વ્રજભાષાના સાહિત્યભંડારમાં હતું..... એની આલમમશાહુર વાર્તા છેક સ્વતઃ કલ્પિત નહિ. પણ હિંદી ભાષાઓની વાર્તાઓને આધારે ચોળએલી માણુમ પડે છે.’

શ્રી. વિજયરાય ક. વૈદ્ય. મધ્યકાલીન સાહિત્ય પૃ. ૩૧

(ક) ‘આ લોકકથા સાહિત્ય જૈનો મુળથી ખેડતા આવ્યા છે. આ પરથી અદારમાં શતકમાં થયેલ શામળ બદ્ધ લોકકથાનાં આદિપ્રવર્તક છે એમ હવે નહિ કહી શકાય’

શ્રી. મોહનલાલ દ. દેસાઈ. મધ્યકાલીન સાહિત્ય પૃ. ૧૪૦

(દ) ‘Samal at one time was appraised as a great writer of original fiction and a peer of Premanand; but materials which are now available necessitate a reestimate of his works He took all his stories from early gujarati fiction.’

—K. M. Munshi. Guja. and its Lit. p. 203

૪ —રખીદાસ વિષે શામળકૃત દોહા.

એવો બેગ બેધ એક, બ્રાહ્મણ કે બાટ આબો,
ગુણ ગાવા લાગ્યો ઝટ, કવિતા નાખી કરી.
શિખિ સમ દાનેશ્વરી, નૃપ અમે ટેક રાખી,
દા કનેથી દાન લેવું, બહું લેઉં ના જરી.^૫

વસ્તુ-વિધાન

પરંતુ એ પ્રશ્ન આબુએ મૂકી, આપણે શામળની વાર્તાઓની વસ્તુ વિધાનની કલા બેધએ. ‘મદન મોહના’ એની ઉત્તમ વાર્તા ગણાતી હોવા છતાં, એમાં એની ખીલ વાનાઓથી-વાર્તા તત્ત્વમાં તો- ખાસ જૂદી તરી આવે એવી વિશિષ્ટતા નથી. નાયક અને નાયિકાની પ્રથમ દૃષ્ટોદૃષ્ટ મળે છે ને મોહના મદનના પ્રેમમાં પડે છે એ આ વાર્તાની વસ્તુનું ખીજ છે. રાજકુંવરી મોહનાને શિક્ષણ આપવા એક પંડિતને રોકવામાં આવે છે ને બન્ને વચ્ચે ‘પડહો બાંધ્યો પટકૂળનો, કોને ન દેખે કોય’ મોહનાના શિક્ષણ માટે પંડિતને રોકવો વગેરે શરૂઆતનો સાગ સંસ્કૃત બિલ્હણ કાવ્ય-જેનું ગુજરાતી ભાષાંતર જ્ઞાનાચાર્ય ઘણા ભાગે સોળમા સૈકામાં કર્યું છે, ને એનું ખીજું ભાષાંતર સં. ૧૫૫૨ માં જૈન કવિ સારંગે કર્યું છે-ને હજુ મળતો આવે છે. પંડિત અને રાજકુંવરી વચ્ચે વિદ્યા સંબંધી એક સમસ્યામાં તકરાર થાય છે ને બરાબર તે જ સમયે પ્રધાન પુત્ર મદન આવી ચઢે છે. રાજકુંવરી તેના પર મોહિત થાય છે. પંડિત બન્ને વચ્ચે ‘ગાંધર્વ વિવાહ’ કરી આપે છે. રાજને (એટલે કુંવરીના પિતાને) બબર પડતાં

મોહું નવ દેખાડશો, જલ ગમે મન જ્યાંય,
રે’શોમાં તમે રોખમાં, મારી અવનિ માંય,

કહી ત્રણેને હદપાર કરે છે. મોહના પુરુષવેશમાં મદન સાથે જાય છે; પણ વચમાં ગુણ-કાના પંત્રામાં ફસાય છે ને માંડ માંડ છૂટે છે; બળતા નાગને બચાવવાથી પાંચ ગુણ-વાળો મળિ પ્રાપ્ત કરે છે; પુરુષવેશમાં જ તે મળિના બેરે ખીલ રાજકુંવરીઓ પરણે છે; ને છેવટ મદનને શોધી કાઢવા એક દેરામાં પૂતળીઓ મૂકાવે છે ને એ પ્રમાણે છેવટ મોહનાના પિતા મદનને ‘પ્રધાનસુત તું પ્રાક્રમી, બેગ તું છે જભાત્ર’ કહી આવકારે છે. મોહના પુરુષવેશે પોતાના પતિ માટે સ્ત્રીઓ પરણી લાવે છે ન પતિને શોધવા દેરામાં પૂતળીઓ મૂકાવે છે વગેરે પ્રસંગો, પ્રેમાનંદના એક શિષ્ય વીરજીએ સં. ૧૭૨૫ માં રચેલ ‘કામાવતીની વાર્તા’ના એવા જ પ્રસંગો સાથે ખૂબ મળતાં આવે છે. વાર્તાનું વસ્તુ-જે શામળની સર્વોત્તમ કૃતિ છે ને કવિ જેની ‘કડી કડી રસાળ’ ગણે છે તે સંક્ષિપ્તમાં ઉપર પ્રમાણે છે. પરંતુ વાર્તાની અદર હિતોપદેશ કાદંબરી, એરેબિયન નાઇટ્સ વગેરેનાં માફક આવતી આંતરવાર્તાઓ; દૃષ્ટાંત લેખે મૂકાયેલ આડકથાઓ, કલ્પનાના રમકારથી પ્રકાશિત સમસ્યાઓ, સાંસારિક રહસ્યોના નમૂનાઓ જેવા છપ્પાઓ મોટો ભાગ રોકે છે. વસ્તુ-વિધાનની કારી-ગીરી પર આથી ઘણાં વિકૃત ટાંકા ટોચા પડે છે. આપણે એ પર દૃષ્ટિપાત કરીએ

તે પહેલાં, શ્રી. ડોલરરાય રં. માંકડ વાર્તાની વસ્તુમાં અસંભવિતતા ને અસંગતતાના જે દોષો બતાવે છે તે જોઈ લેઈએ:¹—

૧, અદેખો રાજ દીકરીને જીવાનીમાં લણાવે? લણવાની વય જ નાની.

૨, પ્રધાનપુત્રને ત્યાં આવવાની શી જરૂર?

૩, છાનાં પરણવું સારું?

શ્રી. ડોલરરાય રં. માંકડના આ પ્રશ્નોનું નિરાકરણ જોઈતું હોય તો આપણને મળે છે ખરૂં. એ રાજ અદેખો હતો તે સાચું: પણ તે પોતાની પુત્રી માટે ‘ઘર જમાઈ કરી રાખીએ’ એવો વર શોધતો હતો: ને રાજકન્યાને લણાવવા માટે ‘પુર પારખો’ પ્રધાન જ સલાહ આપે છે—‘પંડિત એક આવ્યો બારણે, મૂકો એને લણવા કારણે’—ને આ ઉપરાંત રાજ, મોહનાને તથા પંડિતને બાંધું સમજાવીને ‘કોને ન દેખે કોય’ તેવા સાવચેતીનાં ડગલાં તો ભરે છે જ. પ્રધાનપુત્ર પંડિત અને મોહના વચ્ચે વાદવિવાદ ચાલતો હતો ત્યારે જ કેમ આવે છે એના ઉત્તરમાં તો એ અકસ્માત કૃત્રિમ ન લાગવો જોઈએ. એમ તો પ્રખ્યાત ઓથેલો નાટકમાં, નાયિકા ડેસ્ડીમોના, અમુક જ સમયે તેને ઓથેલોએ આપેલ રૂમાલ ગુમાવી બેસે છે: શાકુંતલામાં શકુંતલા કે શકુંતલાની સખીઓ પહેલેથી દુષ્યન્તને વીંટી નથી મોકલતી અને અમુક જ સમયે શચીતીર્થ આગળ ખોઈ નાખે છે એનો શો ખુલાસો આપણે આગળ કરી શકીએ? ‘રાધના પર્વતનું’ વસ્તુ પણ એક જ અકસ્માત પર ટકી રહ્યું છે તેનું કેમ? અકસ્માત કૃત્રિમ ન લાગે તો, મને લાગે છે કે. એની સામે આપણે વાંધો હોવો જોઈએ નહિં. છાના પરણવા સંબંધે, અલ્પજ્ઞતા તે સાફ નથી; પણ અહીં તો મોહના એની માતાને ‘જો કો’ તો સાચું કહ્યું, તુજ મુજ વચ્ચે ઇશ’ કહી શ્રી. ડોલરરાય માંકડ કહે છે તેમ ‘પાપછૂટી’ વાત કહી દે છે: અને વધુમાં મોહનાને ‘પર મુલક તજ ચાલશું, (ત્યારે) વીરો વર કરેશ’ કહી દૃઢ મનોવૃત્તિ ધારણ કરતી, કવિએ બતાવી છે તે આપણે નોંધવું ઘટે છે.

શામળની વાર્તાના વસ્તુ-વિધાનને પાંખું બનાવનાર એક મુખ્ય કારણ, આપણે ઉપર કહ્યું તેમ, તેની આડકથાઓ છે. ‘મદનમોહના’માં બધાં મળીને છએક દૃષ્ટાંતો આવે છે: આ દૃષ્ટાંતો પોતે એક વાર્તા લેખે સુંદર કહી શકીએ તેવી વસ્તુરચનાવાળા હોય છે; પણ અહીં તો મુખ્ય વાર્તાપ્રવાહને રૂંધે છે. મુખ્ય વસ્તુનો તાંતણો આ આડકથાઓના જાળામાં ગૂંચાઈ જાય છે. ચંદ્રાવતીથી મદન અને મોહના નીકળે છે ત્યારે એમને વાટમાં શકુન થાય છે; ને તે પરથી સારાં નરસાં શુકનનું, કવિ લાંબુ વર્ણન કરે છે. આ પ્રકારના વર્ણનો વસ્તુમાં અસમપ્રમાણતાનો દોષ આણે છે ને એમ વસ્તુવિધાન શિથિલ બને છે. શામળની મુખ્ય વિશિષ્ટતા શ્રી. ડોલરરાય કહે છે તેમ તેની સરળતા છે. અખાની જેમ એ પણ ભાષાના બાહ્ય અંગ પર ભાર મૂકતો નથી, પણ ‘સાદી ભાષા સાદી કહી, સાદી વાત વિવેક’ કહે છે. એનું સંસ્કૃત જ્ઞાન પણ અદ્ય છે. એ પોતે જ કહે છે:—

૧ પ્રોફેસર શ્રી. ડોલરરાય રં. માંકડનો લેખ ‘શામળની કૃતિઓ’—કૌમુદી ત્રૈમાસિક પુ. ૨. અં ૧

શામળ કહે સંસ્કૃતમાં, સમજાય નહિ સમર્થ,
વિવેક નહિ કો વેદમાં, અક્કલ ન આવે અર્થ.^૭

ને તે પ્રમાણે એની ભાષા, અલંકારના ઠાઠકારા વિનાની ને સરળ, વાર્તાની વસ્તુ સરળ, તેની લખાવટ સરળ, વાર્તાપ્રવાહ આડોઅવળો અટવાતો છતાં છેવટ સાદો સીધો ને મોટે અંશે એકધારી બની જતી કેડીમાં વહે તેવો હોય છે. એ વાર્તાસ પણ સામાન્ય જનતાને અસર કરે તેવો, ગમે તેવો. એમાં ઊર્મિના તરવરાટ કે લાગણીના ઘેરાં રંગો નહિ; અંતઃક્ષોભ કે મનોમંથનના ધબકારા પણ નહિ. શામળ નાયિકાનું વર્ણન કરે તો પણ નોંધ જેવું, એકધારે (Stereotyped) વર્ણન જ. ‘મદનમોહના’માં નાયિકા મોહનાનું વર્ણન:—

રૂપે રંભા સરીખડી, સતીમાંય સરદાર,
હામ કામ મૃગલોચની, દીલ ઘણી દાતાર.
નખશિખ શોભા નિરખતાં, અંજુજ દલશાં નેણ.
સગતિ ગજગામિની, અનુવદને વેણ.

એ પંક્તિઓમાં પ્રેમાનંદની

ભૂપ મેં દીઠી ગર્વઘેલડી, સખી બે મધ્ય ઉભી અલભેલડી,
કદળી સ્થંભ જુગલ સાહેલડી, વચ્ચે વેદભીં કનકની વેલડી.

એ પંક્તિઓમાં જણાય છે તેવી, શામળમાં, મનુષ્ય અને પ્રકૃતિ વચ્ચેના એક અને અવિનાભાવ સંબંધ દર્શાવતી તાદૃશતા નથી.

રંગદર્શી વાર્તાવરણ

પણ શામળમાં છે તે પ્રેમાનંદમાં નથી. શ્રી. ક. મા. મુનશી જેને ‘romantic atmosphere of early fiction, and thereby providing a valuable literature of escape from the morbid influences of his times’^૮ કહે છે તે શામળમાં ઘણા મોટા પ્રમાણમાં છે. વૈતાળની સહાયથી અંધાર પછેડો ઓઢીને, હાડેન અલ રશીદ પેડે ફરતો, એની અનેક વાર્તાઓનો નાયક ‘ઉજેણ નગરી’નો રાજા વીર વિક્રમ; ‘મદનમોહના’માં બને છે તેમ સ્ત્રી એ ‘ઘડા જેવું રત્ન’ હોવા છતાં પુરુષ વેશે ફરતી મોહના; ગુણકાના પંજમાંથી એનું છટકવું; રાજપુત્રીઓ પરણવી; મદનને શોધી કાઢવો; ‘ભદ્રાભામની’માં હંસ પીડ પર નાયક કસ્તુરને બેસાડી ઊડે છે ને ભદ્રા પાસે લઈ જાય છે તે પ્રસંગ; કે તે જ વાર્તામાં મૃત દેહ જીવતો થાય છે તે વર્ણન; ‘પંચદંડ’ની વાર્તામાં દેવદમતી ઘાંચણ વિક્રમ રાજાની ‘અસ્વારી’ આગળ દંડવતી ત્રણ રેખા દોરી ‘ન જોદી જોદાય, ન પાડી પડે’ એવી ભીંત ઉભી કરે છે તે; ‘વૈતાલપચ્ચીસી’માં શય વિધ વિધ કથાઓ કહી સંલગાવે છે તે; અગ્નિ અને સમુદ્ર-માંથી વગર દાઝ્યે અને ભીંજ્યે પસાર થવાની વિદ્યા; ‘પરકાયા પ્રવેશ’; મનુષ્યને પોપટ બનાવવાની આવડત; ઉડણ દંડ કે ઉડણ પાવડીનો ચમત્કાર; જન્મજન્માંતરની કથાની

૭ બૃહત્ કાવ્ય દોહન ભા. ૨ ભદ્રાભામની—૫૦ ૪૭૨

૮ પ્રેમાનંદ—નળાખ્યાન—કડવું ૧૫ અં

૯ Guj. and its Lit. Page 204

યાદદાસ્ત; મૃત દેહને સજીવન કરવાનો મંત્ર; દેવદેવીઓની આરાધના કરવા કમળપૂજા કરવાનો રિવાજ:- વગેરે પ્રસંગો ને બનાવો રંગદર્શી વાતાવરણનું પટકૂળ વણવામાં તાણાવાણા પેટે વપરાય છે. રંગદર્શી સાહિત્યની વિશિષ્ટતા પણ એજ છે. એમાં રોજંદા બનાવોનું વર્ણન ન હોય-એમાં તો રોજંદા બનાવોના ઊંબરેથી આંખને ઉઠાવીને કદપનાતીત ક્ષેત્રો ખૂંદવાના હોય, વાતાવરણમાં માદકતા હોય, સૌન્દર્ય અને રંગને એમાં વાણી મળે, સ્વર અને માધુર્યને આકાર મળે, કાંઈક અદીકું અવનતું, અકદખું, અવ્યક્ત, કલાકાર પાસે, એના ટાંકણે ટોચાઈ ટોચાઈને ચોક્કસ દેહ અને સ્વરૂપ માંગી રહ્યું હોય અને તલસાટનો કંપ અનુભવી રહ્યું હોય.....આ બધું-જેને શ્રી. મુનશી 'Literature of escape' કહે છે તે-શામળમાં પુષ્કળ પ્રમાણમાં મળી રહે છે.^{૧૦}

પાત્રાલેખન

'મદનમોહના'માં મુખ્ય પાત્રો તો બે જ છે: મદન અને મોહના. પણ પાત્રાલેખનની કલામાં શામળ, પ્રેમાનંદની સરખાણીમાં ક્યાંય ઉતરતો છે. પ્રસંગો પાત્રને ઘડે, પાત્રો પ્રસંગોને ઘડે ને એમ પાત્રનો કૃમિક વિકાસ સધાતો આવે; પાત્રોના હૃદયમાં ભાવ સંઘર્ષણ બળે, મનોમંથન ઊભટે: એ બધું શામળને મન અજાણી વસ્તુ છે. છતાં શ્રી દેશાઈ એના પાત્રાલેખનની કલા માટે 'પાત્રોના અંતરમાં ઉતરી અંતરની ગુચો ઉઠેલવામાં અને ગુણો પારખવામાં શામળ પ્રેમાનંદથી ચટે તેમ છે'^{૧૧} કહે છે તે મારે મન તો આશ્ચર્યનો જ વિષય છે. શામળને વાંચતાં એનું પાત્રાલેખન અને વસ્તુવિધાન બન્ને જાંખું લાગે છે. અલબત્ત શામળ સંસારનો જ્ઞાતા અને માનવ સ્વભાવથી પૂરેપૂરો પરિચિત હતો. અને તે નેમે 'નંદઅત્રોસી'માં કામાતુર રાજાને પ્રતિહારી લાંચ લઈને પ્રવેશ કરાવે છે તે, કે 'અંગદવિષ્ટિ માં અંગદ પાસે લંકાનો પ્રતિહારી 'ગ્રા આપે છે મુજને, વાત ખોચાડે 'હક' કહી રુશ્વત માંગે છે તે પ્રસંગદ્વારા અને 'રત્નાશુભેદોદરી સંવાદ'માં સીતા રામને પાછી સ્વાધીન કરવી કે નહિ તે બાબત પરન્વે જુદા જુદા વર્ણના વૈરથ, વિપ્ર, દરજ, ઘાસી, કણ્ઠી, વૈદ્ય વગેરે પ્રતિનિધિઓના મદોમાં જે ઉક્તિઓ મૂકી છે તે દ્વારા અચ્છી રીતે બતાવ્યું છે. એ પ્રસંગોને ઉક્તિઓથી, શામળનું માનવસ્વભાવની નબળાઈઓ ને મર્યાદા વગેરેનું ઉંદુ જ્ઞાન છતું થાય છે; પરંતુ તેને પોતાની કૃતિઓ માટે પાત્રનિરૂપણની દૃષ્ટિ કે પાત્રવિકાસની કલા લાંબી નથી તે તો ચોક્કસ. પાત્રોમાં સળંગ સાતત્ય (Consistency) હોવું જોઈએ તે પણ તે બળવતો નથી. 'દમયંતી નળથી દશ ગળો, માધવા નળથી મેર' જેવા મદનને, ગુણકા બીવરાવે છે ત્યારે એને શામળ જે રીતે વર્ણવતો વર્ણવ્યો છે તે પાત્રમાં અસંગતતાનો દોષ આણે

^{૧૦} રંગદર્શી સાહિત્ય પરના પ્રા. લગવી અને કલામીયા કૃત *A History of Eng. Lit.* માં (પૃ. ૧૦૩૦) એક મુદ્દા ઉઠાવે છે તે અહીં નોંધવા જેવી છે.-

'The 'wonder' of Romanticists is the enthralling discovery, the progressive lighting-up of an inner horizon, which extends beyond the limits of clear consciousness; it is the perception of objects in the magic garb with which our fresher vision invested them of yore, and which our tired eyes had forgotten.

^{૧૧} જુદા જુદા કાવ્ય દોહન, બા. ૮, પ્રસ્તાવના-પૃ. ૧૧

છે. વધુમાં નાયિકાના પાત્ર પાસે નાયક બહો જાંખો લાગે છે. 'ભદ્રાભામની'ની વાર્તામાં અને 'પદ્માવતી'માં પણ કસ્તુર કે પુષ્પસેનના પાત્રો કરતાં ભદ્રા અને પદ્માવતીનું પાત્રાલેખન વધારે ઉદાત્ત છે. એ રીતે બેઈએ તો રા. ગોવર્ધનરામ કહે છે તેમ 'શામળ ભદ્રાનો સ્ત્રી વર્ગ, પુરુષ વર્ગ કરતાં વિશેષ જાળવલ્યમાન છે. એના ચિત્રપટનો મોટો ભાગ સ્ત્રીઓ જ રોકે છે.'^{૧૨} ગુણકાની સંસ્થાને પણ શામળના યંત્રોમાં આદરભર્યું સ્થાન છે. નાયક નાયિકાને ગુણકા ક્યારેક મદદરૂપ થાય છે તો ક્યારેક ફસાવે પણ છે. 'પદ્માવતીની વાર્તા'માં નાયિકા પદ્માવતીને ગુણકા ચંદ્રાવણ મદદ કરે છે; તો 'ભદ્રાભામની'માં ને 'મદનમોહના'માં ગુણકા નાયિકાને ફસાવે છે: 'ઉઘમકર્મ સંવાદ'માં તો 'ઉઘમવાદી કામકળા'નું નાયિકાના પ્રતિષ્ઠિતસ્થાને પ્રસ્થાપન કરે છે; ને એમ શામળ એ સંસ્થાના સારાં નરસાં બંને તત્ત્વોનું નિરૂપણ કરે છે. માત્ર ગુણકાની સંસ્થા વિષે જ નહિ, સમગ્ર સ્ત્રીજાતિ વિષે -

જશ જીવ જર સમર્પતાં, તન મન ધન દે હેત:
(પણ) પ્રમદા પોતાની નહિ, કબલુક તો જીવ લેત:
અને

છે નીચ કોઈજ નારિઓ, સ્વભાવે સહિ નહિ સરખી.

પાકે ધાન સતી (ને) સને, અર્જુવ રે' મર્જદ,
સતી આધારે મેહિતી, શીદ કરે છે વાદ'

જેવા વિશેષી દૃષ્ટિબિંદુઓ પણ આપાગુને શામળમાં મળે છે. શામળ દુરાચારી સ્ત્રીઓને પણ મારવાની વિરૂદ્ધ હોય તેમ તેની ઉક્તિ 'સ્ત્રીના વાંક શતસહસ્ર, તોય નેન નવ હજુવી' પરથી લાગે છે. દયારામમાં પણ સ્ત્રીઓ વિષેની ભાવના સંબંધેની આવી વિશેષી ભાવવાળી પંક્તિઓ નજરે ચડે છે.^{૧૩} આ બંને વિશેષી દૃષ્ટિબિંદુમાં શામળનો સાચો અભિપ્રાય કયો હશે તે તો કેમ ખબર પડે? પણ શામળ પોતે આ પરત્વે ઉદાસીન હોય; અને ખરૂં દૃષ્ટિબિંદુ તો વાચકની યોગ્યતા અયોગ્યતા પર આધાર રાખે છે તેમ સૂચવતો હોય તે પ્રમાણે 'સૂઝા બોતેરી'ના ઉપસંહારમાં તે લખે છે: -

પાપીને પથ્થર જડે, હરિજનને હીરો લાથ.

સતવાદીને સોનું જડે, કર્મહીણને કથીર.

છપ્પા અને સમશ્યાઓ

શામળની બીજી વાર્તાઓમાં બને છે તેમ 'મદનમોહના'માં પણ છપ્પાઓ અહીં તહીં પુટે લાથે વેરાયલાં છે. આ છપ્પાઓમાંની કેટલીક પંક્તિઓ કહેવતરૂપ બની

૧૨ Classical poets of Gujarat p. ૬૮

૧૩ દયારામ સ્ત્રીને એક જગ્યાએ 'દુઃખ દુષ્ટન નરકની ખાણ' કહે છે ને આગળ ઉપર લખે છે -

તરવાર સરખી તરણી, શાગુચારી તીસે સારી,

ઉપર અનુપમ રૂપ મનોહર, અંતરમાં લચારી

પચડંગી પ્રકુહી પુષ્પ સગાં, મોહન નિરખે નાર:

મસગ્યા પાખી ગ્યાનિ ઉપજે, ચતુર ચિત્ત વિચાર.

અને એ જ પંક્તિઓ ઉચ્ચારનાર દયારામની સ્ત્રીઓ શામળની શ્રેણી એના કૃષ્ણગોપીના શૃંગારકાવ્યોમાં પાતાવી છે તે જાણીતી છે.

મઈ છે: કેટલીક પંક્તિઓ તો સંસારના ગાઢ અરણ્યમાં રોશનીનું કામ સારે તેવી હોય છે. ‘જીવતો નર ભદ્રા પામશે’ ‘વેળમાં વાણુ ક્યમ ખેડાય?’ ‘ટાળી તો ટળતી નથી ફડી બૂડી રેખ’; ‘પેટ કરાવે વેઠ’; ‘લક્ષ્મી તેને લીલા દહેર’; ‘ગરજે ગોમાં ખાય’; ‘ગાઝ્યા મેહ વરસે નહિ’; અને

ઉજ્જડ ખેડાં ફરી વસે, નિર્ધનિયાં ધન હોય,

ગયાં જોખન આવે નહિ; મૂવા ન જીવે કોય;

વગેરે અનેક ઉક્તિઓ ઉપરોક્ત વિધાનના સળળ ઉદાહરણ લેખે રજૂ કરી શકાય.

શામળના છપ્પાઓમાં બોધ અને નીતિ મોટો ભાગ રોકે છે તે આપણે ઉપર જોયું. હવે એ છપ્પાઓનો, અખાના છપ્પા સાથે એને સરખાવીને, એક બીજીરીતે વિચાર કરીએ. શામળના છપ્પાની રચના વૃત્તવિચાર (metrical scheme) પ્રમાણે - પહેલાં ચાર ચરણ કાવ્યમાં (કાવ્ય એક છંદ છે) ને પછી બે દોહરાના - છે; જ્યારે અખો તેના છપ્પા પીંગળશાસ્ત્ર પ્રમાણે નથી લખતો: અખાના છપ્પા છ ચરણની ચોપાઈઓ છે ને ક્યારેક (‘અખાની વાણી’માં છે તેમ) ચોપાઈની બે પંક્તિને એક સાથે છાપીને, છપ્પામાં છ ને બદલે ત્રણ પંક્તિઓ હોય છે.

છન્દોરચનાએ, એ જગેમાં જેમ તફાવત છે તેમ, વસ્તુઘટનાએ પણ બન્નેમાં મોટો તફાવત છે. અખાના છપ્પામાં જીવનની સમીક્ષા મળે છે; ને તે જીવનના વધારે ઉંડા રહસ્યોમાંથી ધાર્મિક જીવન તરફ વળે છે: ત્યારે શામળ જીવનની ઉપલી સપાટીને જ સ્પર્શતો લાગે છે. અખામાં ધાર્મિક વલણને લીધે, સમાજના દૂષણો પ્રતિ વેધક કટાક્ષ વૃત્તિ છે: જ્યારે શામળ કોઈ કોઈ વખત તટસ્થતા જાળવતો હોય છે - સ્ત્રીઓ વિષેની સારીનરસી બહે બાણુ રજૂ કરી છે તે આ વિધાનના ઉદાહરણ લેખે રજૂ કરી શકાય. અખો દુર્ગુણો તરફ સ્વાભાવિક ઘૂણાથી ને ધ્યેયની નિશ્ચિતતાથી (એનું ધ્યેય વેદાન્ત હતું) ઘણીવાર પક્ષપાતી બની જાય છે ને તેની ઉક્તિ ઘણી તીવ્ર બની રહે છે. શામળ અને અખાના છપ્પા વાંચતા એમ પણ પ્રતીત થાય છે કે શામળ સંસારમાં રહી રાચે છે: નવલરામભાઈ કહે છે તેમ તે ‘વાણિયાનો કવિ’ છે; લોકરંજન કરે છે; તે ઉર્મિથી તરવરે છે. કવિ નર્મદાશંકર એની કવિતાનું મૂલ્યાંકન કરે છે તે પ્રમાણે તેની કવિતા ‘ગુર્જરી સ્થિતિપ્રદેશમાં એક રંગમંડપ હોયની શું તેવી શોભે છે કે જેમાં ગુજરાતી સ્ત્રીપુરુષો અનીતિ, મૂર્ખાઈ વગેરેનું હાસ્યરસ નાટક જોઈ અને દ્રષ્ટાંતકથન સાંભળી યુબોધશિક્ષા ચઢણ કરે છે’^{૧૪} જ્યારે અખો ‘જ્ઞાની’ છે ને ‘એની કવિતા બોધક’^{૧૫} છે; એને જીવન પ્રતિ તીવ્ર વૈરાગ્ય અને તિરસ્કાર છે. અને એની કૃતિમાં આ તિરસ્કારની યાત્રા કેમ વધારે છે તેનું કારણ રા. અંબાલાલ જી. જાની કહે છે તે પ્રમાણે ‘અખા ભક્તની કૃતિ ઘણું અંશે દોષ પરિહાર અને શુદ્ધિસંપાદનને અર્થે ચોખ્ખલા વિનાશક પક્ષને અનુસરનારી છે વાંછિત ઉચ્ચગ્રાહને પ્રાપ્ત કરવાના પ્રયત્ન સાફ કવિને દુર્ગમ કંટકમય અરણ્યમાં પ્રયાણ કરવું પડ્યું હતું’^{૧૬} તે છે.

૧૪ નર્મદાનું મંદિર - ગદ્ય વિભાગ, પૃ. ૧૮૮

૧૫ " " " પૃ. ૧૮૧

૧૬ અખા ભક્ત અને તેમની કવિતા - બીજી ગ્રં. સા. ૫. રિપોર્ટ પૃ. ૫

બહેના છપ્પા ધ્યાનમાં લેતાં એમની કથનશૈલી જીવનના અનુભવથી રંગાયલી ને તેથી વેધક અને સચોટ બનેલી જણાય છે. બહેના નિર્દર્શનો ઘરગથ્થુ અને વ્યવહારમાંથી અપાયલા છે. પરંતુ શામળના દૃષ્ટાન્તો સાદા અને સરળ છે; જ્યારે અખાના દૃષ્ટાંતો ખરબચડા, ગ્રામ્ય ને ક્યારેક અશ્લીલ છતાં બળશાળી છે: રા. અંબાલાલ બની કહે છે તેમ ‘અખા ભક્તો જ્ઞાનવિષય સ્ફુટ અને સરલ કરવા માટે દૃષ્ટાન્તનું તિગ્મ શસ્ત્ર લીધું છે’; પણ એ શસ્ત્ર ઘણીવાર સુરચિનો પણ છેદ કરે છે તે આપણે યાદ રાખવું ઘટે છે! શામળની ભાષા સાદી, સરલ, પારદર્શક અને પ્રમાણમાં પાતળી, માંસલ સ્વરૂપ વગરની છે. અખો તો ‘સાહિત્યનાં એરણુ હથોડો લઇને બેઠેલો’ છે અને ‘હેની સામે કવિતા દેવી, પોતાના વિલાસ તજીને, દીક્ષિમય આભૂષણો ફેંકી દઇને સાદાં વસ્ત્ર પહેરી, કમ્પમાન દેહથી ઉભી છે’^{૧૮} ને અખો પોતે પણ ‘બાપાને શું વળગે ખૂર, જે રણમાં જીતે તે શૂર’ એમ જ ઉચ્ચારે છે. એના છપ્પાની ભાષા કડિન, કડકશ, આયુષ્યદ્વ દેહવાળી, આવેગભરી ને સચોટ છે.

‘મદનમોહના’માં મોહના ગુણકાના પંખમાંથી છૂટીને બળતા વનમાંથી ‘મૂઝી ઢાલ અગનમાં ઠેક, પગ મૂઝી પંખગ’ને બચાવે છે તેમાં, પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનમાં નળ કડોટગ નાગને બળતો બચાવે છે તેનું આંધળું અને અધકચરું અનુકરણ છે તે પણ આપણે નોંધી લેવું ઘટે છે. ‘નળાખ્યાન’માં એ બળતા નાગનો પ્રસંગ, આખ્યાનના ઉત્તરાધમાં ચણિયારા (Pivot) જેવો પ્રસંગ બની રહે છે; જ્યારે અહીં તો મોહના નાગ પાસેથી મણિ મેળવી કેટલીક રાજકુમારીઓ પરણે છે, જે કથામાં કશો મહત્વનો ભાગ ભજવતું નથી. સમસ્યાઓ પણ ડગલે પગલે નડે છે; ને એ સમસ્યાઓ કેટલીક વખત તો ઘણી સરળ હોય છે, ને સંખ્યામાં પણ ઘણી હોય છે.

આ બધું હોવા છતાં શામળ કવિ છે—મોટો કે નાનો તે જૂદો પ્રશ્ન—; પણ તેના જમાનાનો તે લોકપ્રિય કવિ છે: એની રીતે એ સાચો કવિ છે. તેના વાર્તાકાવ્યમાં સ્પર્શી વાતાવરણના ઘેઘર રંગો છે; મસ્ત કલ્પનાના ભવ્ય વીંજાટ છે; કથનમાં ઝમઝમતી પ્રવાહિતા ને સરળતા છે: બોધક કહેવતો ને છપ્પાઓનું તેમાં ઘટ્ટ વણુટ છે; આતુર્ય અને ડહાપણની એમાં ઝીણી ઝીણી મનોરમ નકશી કંડારેલી છે; દુનિયાદારીના ઠાવકાં મર્મણાં સૂચનોનાં ‘જનમનરંજિત’ કરે તેવાં એમાં રંગીન છાંટણાં છે; આજના ગુજરાતના સ્ત્રીજીવનના પાંગરતાં યૌવનનું એમાં દર્શન છે: વાણીના પડિયામાં બણે આ બધાં કૌતુકપ્રિય તત્ત્વો (romantic elements) ઝીલાયાં, ન ઝીલાયાં, ને છલકાય છે: ને એ જ શામળની વાર્તાની—‘મદનમોહના’ની—વિશિષ્ટતા કહે તો વિશિષ્ટતા, ને સફળતા કહે તો સફળતા છે. આટલું હોય પછી કવિ પોતે પણ, એપરવા બનીને, ‘સૂડા બોતેરી’ના ઉપસંહારમાં ઉચ્ચારે છે તે લીટી કેમ ન ઉચ્ચારે ?

“વંદો, નંદો, તજો બાજો, કવિતાને શું કામ ?”

*

૧૭ અખા ભક્ત અને તેમની કવિતા—બીજી ગુ. સા. ૫. રિપોર્ટ. પૃ. ૧૦

૧૮ નરસિંહરાવ ભો. દિવેદીયા, ગ્રંથ અને ગ્રંથકાર પૃ. ૨૫. ૧૭૮

મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં નાટક

લે૦ શ્રીયુત મોગીલાલ જ. સાંહેસરા

*

‘મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં નાટક’ એ પરત્વે ચર્ચા કરતાં વિષયનિરૂપણને આપણે ચાર વિભાગોમાં વહેચી દઈશું: (૧) મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં રચાયેલાં અને ભજવાયેલાં નાટકો અર્થાત્ મધ્યકાલીન ગૂજરાતનું નાટકસાહિત્ય અને તેનું મૂલ્યાંકન (૨) નાટકો અને જનતા, (૩) લઘુકાવ્ય, તથા (૪) મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં રંગ-ભૂમિનાં અસ્તિત્વ-અનસ્તિત્વ વિષેની ચર્ચા.

[૧]

ગૂજરાતનું સંસ્કૃત સાહિત્ય તો ઘણા પ્રાચીન કાળથી મળે છે. શ્રીકૃષ્ણના પુત્ર સાંબને નામે ચડેલી ‘સાંબપંચાશિકા’ પાછળના કાળની કૃતિ માનવામાં આવે તો પણ વલ્લભી રાજ્યકાળથી તો સંસ્કૃત સાહિત્ય સારા પ્રમાણમાં પ્રાપ્ત થાય છે. વલ્લભીપુર પછી ગૂજરાતનું પાટનગર શ્રીમાળ. શ્રીમાળમાં રચાયેલું સંસ્કૃત સાહિત્ય આજે પણ ગૂજરાતને મગર બનાવે એવું છે. પરંતુ વલ્લભીપુર કે શ્રીમાળમાં લખાયેલું એક નાટક આજે તો આપણને પ્રાપ્ત થતું નથી. અત્યારે મળતાં સાધનો ઉપરથી જ નિર્ણય કરતાં, ગૂજરાતનું પહેલું સંસ્કૃત નાટક કાશ્મીરી કવિ બિલ્હણનું ‘કર્ણસુન્દરી’ માનવું જોઈએ.† પોતાની માતૃભૂમિ ત્યજીને અનેક દેશમાં ફરતાં ફરતાં બિલ્હણ પાટણમાં કર્ણ સોલંકીના અમાત્ય શાન્ત-સંપત્કર-ના આશ્રયે આવીને રહ્યો અને ત્યાં એણે આ નાટક લખ્યું. ‘કર્ણસુન્દરી’ની નાયિકા કર્ણસુન્દરી વિદ્યાધરી છે. કર્ણરાજ સાધેના તેના પ્રેમપ્રસંગ અને અંતે લગ્નનું આ નાટિકામાં નિરૂપણ છે. નાયિકા કર્ણસુન્દરી તે બીજી કોઈ નહીં, પણ સિદ્ધરાજની માતા અને કર્ણાટકની રાજપુત્રી મયણદેવ છે. નાટિકાનું વસ્તુ કવિએ કાલિદાસ કૃત ‘માલવિકાગ્નિમિત્ર’ અને હર્ષકૃત ‘રત્નાવલી’ના આધારે જ ઘડી કાઢ્યું છે. અમાત્ય સંપત્કર માત્ર તે મત્રી યૌગંધરાયણનું અનુકરણ છે. અને આ લગ્નસંબંધ વડે કર્ણને સક્રવર્તી બનાવવાનો તેનો આશય છે. નાટકનો રચનાકાળ સ્પષ્ટ રીતે વિક્રમના બારમા શતકનો પૂર્વાધ છે. શાન્ત મહેતાની આજ્ઞાથી પાટણમાં આદિનાથના યાત્રામહોત્સવ વખતે તે ભજવાયેલું, એવો તેની પ્રસ્તાવનામાં ઉલ્લેખ છે.

ત્યારપછી, સિદ્ધરાજની સભામાં દિગમ્બર કુમુદચન્દ્ર અને ત્રેતામ્બર વાદી દેવસૂરિ વચ્ચે થયેલો સોળ દિવસનો વાદવિવાદ, અંતે કુમુદચન્દ્રનો પરાજય, અને પરિણામે દિગમ્બરોનું ગૂજરાતમાંથી ચાલી જવું-એ વિષયનું નાટકરૂપે નિરૂપણ કરતું, સપાદ-લક્ષ્મના રાજના આશ્રિત યશશ્વન્દ્રનું ‘સુદ્રિતકુમુદચન્દ્રપ્રકરણ’ નાટક આવે છે. સિદ્ધરાજની રાજસભાનું સરસ વર્ણન આ નાટકમાંથી આપણને મળે છે. યશશ્વન્દ્રનું બીજું નાટક તે ‘રાજમતીપ્રબોધ.’ નેમિનાથ-રાજમતીનું સુપ્રસિદ્ધ કથાનાટક એ જ

† શીલાચાર્ય કે શીલાંકસિં નામના જૈન આચાર્યે મહાપુરિમચરિયં નામના પોતાના પ્રાકૃત ગ્રંથમાં વિરુધાનન્દ નામનું એકાંકી નાટક અર્ચિત કર્યું છે જેનો સમય ઘણું ડરીને વિક્રમના ૧૦ મા સેકાના પ્રારંભમાં જાય છે. — સંપાદક

આ નાટકને વિષય છે. તેની પ્રસ્તાવનામાં સૂત્રધારના કથન ઉપરથી જણાય છે કે યશશ્ચન્દ્રે એ મહાકાવ્યો તથા ચાર નાટકો લખ્યાં હતાં, પરંતુ આ બીજાં એ નાટકોનો તથા મહાકાવ્યોનો હાલમાં પત્તો લાગતો નથી.

કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચન્દ્ર સિદ્ધરાજના સમકાલીન જ છે. ‘મુદ્રિતકુમુદચન્દ્રપ્રકરણ’માં સિદ્ધરાજના સભાજનો પૈકી એક સોમચન્દ્રનું નામ આવે છે તે તથા હેમચન્દ્ર અનન્ય હશે એમ મનાય છે, કેમ કે હેમચન્દ્રનું સૂરિપદ પહેલાંનું નામ સોમચન્દ્ર હતું. હેમચન્દ્રે પોતાના સુપ્રસિદ્ધ અલંકારગ્રન્થ ‘કાવ્યાનુશાસન’માં નાટ્યાલંકારો વિષે લખ્યું છે, પરંતુ તેમણે કોઈ નાટક લખ્યું હોય એમ જાણવામાં નથી. સંખ્યાબંધ લૌકિક વિષયો ઉપર અગિયાર ઉગમ નાટકો લખવાનો યશ તેમના પદ્મશિષ્ય રામચન્દ્રને ફાળે જાય છે. રામચન્દ્ર તો નાટ્યશાસ્ત્રના પણ સારા જ્ઞાતા હતા. સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રના ગણતર ગ્રંથોમાં તેમનું ‘નાટ્યદર્પણ’ સારો ઉમેરો કરી જાય છે, એટલું જ નહીં પણ રસ અને અભિનય વિષે જે નૂતન વિધાનો એ ગ્રંથમાં રામચન્દ્રે કર્યા છે તે પરંપરાથી જટકાયેલા યુગમાં તેમની સ્વતંત્ર વિચારશક્તિ માટે ખરેખર માન પેદા કરાવે તેવાં છે. ‘રઘુવિલાસ’ ‘નલવિલાસ’ ‘યદુવિલાસ’ ‘સત્યહરિશ્ચન્દ્ર’ ‘નિર્ભય-ભીમઆયોગ’ ‘મત્રિકામકરન્દપ્રકરણ’ ‘રાઘવાબ્યુદય’ ‘રોહિણીમૃગાંકપ્રકરણ’ ‘વનમાલા નાટિકા’ ‘કૌમુદીમિત્રાગ્રહ’ અને ‘યાદવાબ્યુદય’ એ પ્રમાણે રામચન્દ્રનાં અગિયાર નાટકો અત્યાર મુઘી જાણવામાં આવ્યાં છે. ગૂજરાતનાં નાટકસાહિત્યમાં રામચન્દ્રની કૃતિઓનું એક વિશિષ્ટ સ્થાન છે. નાટ્યશાસ્ત્રના કવિનો અભ્યાસ, ભાષા પરનું પ્રભુત્વ, નાટકમાં જટાયેલો મર્માંગો વિનોદ, સરળ વિશદ અને મધુર સૂક્તિઓ, કથાનકના પ્રસંગોને નાટ્યાનુરૂપ બનાવવાની આવડત—એ બધું સંસ્કૃત નાટક લેખકોના હાથે પહેલા વર્ગમાં નહીં, તોપણ બીજા વર્ગમાં તો રામચન્દ્રને સહેજે સ્થાન અપાવે તેમ છે.

હેમચન્દ્રના બીજા એક શિષ્ય દેવચન્દ્રનું ‘ચન્દ્રલેખાવિજયપ્રકરણ’ નાટક મળી આવે છે. એની નાયિકા ચન્દ્રલેખા વિદ્યાધરી છે, પરંતુ સપાદલક્ષના રાજા આર્જુનરાજને કુમારપાલે જીત્યા તે પ્રસંગને વર્ણવતું એ નાટક છે. નાટકની નાયિકા ચન્દ્રલેખા વિદ્યાધરી તે આર્જુનરાજની જાહેન જલ્દહણદેવી—જેનું કુમારપાલ સાથે લગ્ન કરવામાં આવ્યું હતું તે—હોવાનું મારું અનુમાન છે. કુમારપાલે આર્જુનરાજ ઉપર મેળવેલા વિજયનો સમય સં. ૧૨૦૭ની આસપાસનો છે, એટલે નાટક પણ એ જ અરસામાં લખાયું હશે. કુમારપાલની આસાથી પાટણમાં કુમારવિહારમાં અગ્નિતનાથના વસન્તોત્સવ વખતે તે જાજવાયું હતું, એવો ઉત્તેજ પ્રસ્તાવનામાં છે.

આ પછી, કુમારપાલના એક મંત્રી યશપાલે રચેલું ‘મોહરાજપરાજય’ નાટક આવે છે. આ નાટક સં. ૧૨૨૯ અને સં. ૧૨૩૨ ની વચ્ચે રચાયું હોવાનું મનાય છે.

૧ નાટકની નાયિકાઓને કોઈ લોકોત્તર નાનિના પાત્ર તરીકે વર્ણવવાના સંસ્કૃત લેખકોને શોખ જાણીતો છે. ‘કલ્પસુન્દરી’ નાટિકાની નાયિકા મયાલક્ષ્મીને બિલ્હાનું વિદ્યાધરી બનાવી છે. ધારાના રાજા અર્જુનવર્મદેવે ગૂજરાતના રાજા અભિનવ જયસિંહને હરાવી તેની પુત્રી સાથે લગ્ન કર્યું હતું, તેણે ધારાના રાજપુત મઢને લખેલા ‘પારિભતમંજરી’ નાટિકામાં—અર્જુનવર્મના ગળા પર પારિભતની માળા—વિજયમાળા—પડો તે એક કન્યા બની ગઈ, રાજાએ તે કન્યા કંચુકીને સોંપી અર્ધાત્ અતઃપુરમાં મોકલી—એણે રૂપકાત્મક વર્ણન છે. એટલે અહીં પણ ચન્દ્રલેખા વિદ્યાધરી તે જલ્દહણદેવી હોવાનો પૂરો સંભવ છે.

કુમારપાલના જૈનધર્મસ્વીકારને આલેખતું એ રૂપકાત્મક નાટક છે. એમાં કુમારપાલ વિનયદ્વારા મોહ ઉપર કેવી રીતે વિજય મેળવે છે તે બતાવ્યું છે, તથા ધર્મરાજ અને વિરતિ દેવીની પુત્રી કૃપાસુન્દરીનું કુમારપાલ સાથે મહાવીર તથા હેમાચાર્ય સમક્ષ પાણ્ડિત્યહાર કરાવ્યું છે. એની તિથિ નાટકમાં સં. ૧૨૧૬ના માગશર સુદ બીજ આપવામાં આવી છે. કુમારપાલે ખરેખર જૈન ધર્મનો સ્વીકાર કરેલો કે કેમ, એ સંબંધમાં વિદ્વાનોમાં હમણાં મતભેદ થયો છે. એ વિષે સત્યના શોધન માટે આ નાટકનો સૂક્ષ્મ અભ્યાસ જરૂરી છે. ‘મોહરાજપરાજય’ નાટક થરાદમાં કુમારપાલે બંધાવેલું કુમાર-વિહારમાં મહાવીર સ્વામીના યાત્રામહોત્સવ વખતે લખવાયું હતું.

આખુના પરમાર ધારાવર્ષના ભાઈ પ્રહલાદનદેવે સં. ૧૨૨૬ આસપાસમાં વિરાટ-નગરમાં અર્જુનનાં પરાક્રમનું નિરૂપણ કરતો ‘પાર્થપરાક્રમવ્યાયોગ’ લખ્યો હતો અને તે આખુ ઉપર શ્રીઅચલેશ્વરના પવિત્રકારોપણ પર્વમાં ધારાવર્ષની આજ્ઞાથી લખવાયો હતો. પ્રહલાદન ત્યારે યુવરાજપદે હતો, એમ નાટક ઉપરથી જણાય છે. મત્સ્યવેધના મુપ્રસિદ્ધ પૌરાણિક પ્રસંગને વર્ણવતું વિજયપાલનું ‘દ્રાપદીસ્વયંવર’ નાટક પાટણમાં ત્રિપુરુષપ્રાસાદમાં વસન્તોત્સવ પ્રસંગે બીમદેવ બીજની આજ્ઞાથી લખવાયું હતું.

જૈનમુનિ રામભદ્રનું ‘પ્રયુદ્ધરૈહિણેય’ નાટક સં. ૧૦૫૬ના અરસામાં જલોરમાં યશોવીર અને અજયપાલ એ બે વર્ણિક ભાઈઓએ બંધાવેલા આદીશ્વરના મંદિરનાં યાત્રોત્સવ પ્રસંગે લખવાયું હતું. મહાવીર અને જુદાના સમકાલીન એક પ્રસંગનું એમાં નિરૂપણ છે. રૈહિણેય નામનો ચોર રાજગૃહમાં ચોરી કરે છે, પણ પકડાતો નથી. શ્રેણિકનો પુત્ર અભયકુમાર પોતાના જુદિબળથી એને પકડે છે અને કરેલી ચોરીઓ કબુલાવવા માટે એક યુક્તિ રચે છે. એક ઓરડો ઇન્દ્રભુવન જેવો શણગારી તેમાં અપ્સરાઓને સ્થાને વેશ્યાઓ મોકલે છે. અને પછી કંઈના ચોરને ત્યાં મૂકી દે છે. રૈહિણેય જાગે છે, એટલે વેશ્યાઓ તેને પૂછે છે કે, “પૂર્વજન્મમાં તમે કેવાં સત્કૃત્યો કર્યાં હતાં, જેથી આ સ્વર્ગ તમને મળ્યું?” હવે, રૈહિણેયના આંખે રૈહિણેયને શિખામણ આપી હતી કે મહાવીરનું વચન કદિ સાંભળ્યું નહીં; પરન્તુ એકવાર પગમાં વાગેલો કાંટો કાઢતાં મહાવીરની દેશનાના કેટલાક શબ્દો અકસ્માત્ તેને સંભળાયા હતા. તેમાં ‘દેવતાઓની આંખો માંચાતી નથી, તથા પગ બોયપર અડતા નથી’ એવું સાંભળ્યું હતું. મહાવીરના આ એક જ વચનના પ્રભાવથી ચોર કૃત્રિમ સ્વર્ગભુવનની યુક્તિ પામી ગયો. મહાવીરના એક જ વચનનો જો આટલો પ્રભાવ, તો તેમના અનુયાયી બનવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ કેમ નહીં થાય? આમ વિચારી રૈહિણેય ચોર મહાવીરને શરણે ગયો. આ નાટકનું કથાનક લોકવાર્તાના તુલનાત્મક અભ્યાસની દૃષ્ટિએ પણ ઉપયોગી છે, એ જોઈ શકાશે.

ધોળકાના રાણા વીરધવલના મુપ્રસિદ્ધ મંત્રી વસ્તુપાલના આશ્રિત કવિ બાલભદ્રનું ‘કરુણાવજ્રાયુધનાટક’ સં. ૧૨૭૭ માં શત્રુંજય ઉપર ઋષલનાથના યાત્રામહોત્સવ પ્રસંગે લખવાયું હતું. વજ્રાયુધ ચક્રવર્તીએ પ્રાણના ભોગે પણ પારેવાનું રક્ષણ કર્યું હતું, એ પ્રસિદ્ધ વસ્તુને અનુલક્ષીને તે લખાયું છે.

વીરધવલના પુરોહિત તથા વસ્તુપાલના ઇષ્ટમિત્ર, 'કીર્તિકામુદી' તથા 'સુરથોત્સવ' ના કર્તા કવિ સોમેશ્વરનું 'ઉલ્લાઘરાઘવ' નાટક દ્વારિકાના જગત્મન્દિરમાં પ્રબોધિની એકાદશીના દિવસે ભજવાયું હતું. 'સુરથોત્સવ'ની પ્રશસ્તિમાં એવો ઉલ્લેખ મળે છે કે સોમેશ્વરે ભીમની સલાને યામાર્ધમાં એક નાટક બનાવીને હર્ષિત કરી હતી. એ નાટક 'ઉલ્લાઘરાઘવ'થી તો ભિન્ન જ, કેમકે 'ઉલ્લાઘરાઘવ' તો સોમેશ્વરે પોતાના પુત્ર ભલ્લશર્માની પ્રાર્થનાથી લખ્યું હતું, એવી તેમાં સ્પષ્ટ નોંધ છે.

ગૂજરાત ઉપર દક્ષિણથી ચઢી આવેલા યાદવ રાજા સિંહણ અને ઉત્તરેથી ચઢી આવેલા મીલચ્છીકાર (સુલતાન અલ્તમશ)^૧નો વસ્તુપાલે એકસાથે પરાજય કર્યો હતો એ વિષય પરનું જયસિંહમુરિનું 'હમ્મીરમદમદન' નાટક ખંભાતમાં વસ્તુપાલના પુત્ર જયંતસિંહની આજ્ઞાથી ભીમેશ્વરદેવના યાત્રામહોત્સવ પ્રસંગે ભજવાયું હતું. આ નાટક સં. ૧૨૭૯ અને સં. ૧૨૮૫ની વચ્ચે લખાયું હતું, એમ માનવાને સમળ કારણ છે.

અંગદવિષ્ણના પૌરાણિક પ્રસંગને લગતું સુભટનું 'દૂતાંગદ' નાટક ત્રિભુવનપાલની સલાની આજ્ઞાથી પાટણમાં કુમારપાલે પધરાવેલી શિવની મૂર્તિના દોલોત્સવ પ્રસંગે ભજવાયું હતું. ત્રિભુવનપાલનો રાજ્યકાળ સં. ૧૨૯૮થી ૧૩૦૦ નો છે, એટલે આ નાટક પણ તે જ અરસામાં લખાયું હશે. દશાર્ણભદ્ર રાજર્પિના ચરિત્રને અવલંબીને લખાયેલું મેઘપ્રભાચાર્યનું 'ધર્માભ્યુદય' નાટક પણ સંઘની આજ્ઞાથી ભજવાયું હતું.

સં. ૧૩૫૦માં કરણ વાઘેલાનો પરાભવ થયો; ગૂજરાતનું છેવું સ્વતંત્ર હિંદુ રાજ્ય નાશ પામ્યું, અને મુસ્લીમ સત્તાનો પ્રારંભિક દોર સારાયે ગૂજરાત ઉપર ગાજી રહ્યો. વિદ્યાને મળતો રાજશ્રય અંધ થયો, રાજદરબારોમાંથી વિદ્વદ્ગોષ્ઠિ અને શાસ્ત્રચર્યાઓને દેશવટો મળ્યો. છતાં ગૂજરાત કાઠિયાવાડના અન્ય હિંદુ રાજાઓ અને ધનિકોએ વિદ્યાને યથાશક્તિ પોપણ આપ્યાં કર્યું છે. પરિણામે મુસ્લીમ સત્તાની સ્થાપના પછી પણ ગૂજરાતમાં સંસ્કૃતના સારસ્વતપ્રવાહનું સાતત્ય જળવાઈ રહ્યું છે.

સ. ૧૫૦૫ આસપાસમાં આપણને 'ગંગાદાસ પ્રતાપવિલાસ' નામનું નવાંકી નાટક મળે છે. ચાંપાનેરના રાજા ગંગાદાસે અમદાવાદના સુલતાન મહમ્મદ તથા તેના આશ્રિત ઇડરના રાજાને હરાવ્યા, તે પ્રસંગને અનુલક્ષીને લખાયેલું એ વીરરસપ્રધાન નાટક છે. ચાંપાનેરનો રાજકવિ ગંગાધર તેનો કર્તા છે. પાવાગઢ અને ચાંપાનેરની સમૃદ્ધિ, પ્રજાની મહાકાળી પ્રત્યેની ભક્તિ અને ગંગાદાસનો અટગ ટેક એ બધાનો એમાંથી સારો ખ્યાલ મળે છે. મહાકાળીના મંદિરના સલાગૃહમાં એ નાટક ભજવાયું હતું.

૧ 'હમ્મીરમદમદન'નો મીલચ્છીકાર તથા 'પ્રબન્ધકોશ'નો મોન્ઘદીન અને એક જ છે પરન્તુ મીલચ્છીકાર અથવા મોન્ઘદીન નામનો કોઈ પાશાહ દિલ્હીની ગાદી ઉપર બાંધાયો નથી મોન્ઘદીન તો બીજો કોઈ નહોતો, પણ ગુલામ વશનો પાદશાહ શમ્શુદીન અલ્તમશ છે, એવી મારી માન્યતા છે (જુઓ 'ગૂજરાતી'ના ૧૬૩૪ના દીપોત્સવી અકમાં ખાસ લેખ "પ્રબન્ધકોશના મુદ્દમુદીન કાણ?") શ્રી. દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રીનો પણ આ જ મત છે. (ગુજરાતનો મધ્યકાલીન રાજપૂત ઇતિહાસ, ભાગ ૨ પૃ. ૩૮૧) બીજા બાણુ શ્રી. રસિકલાલ પરીખ આ મોન્ઘદીન તે મહમ્મદ ધોરી છે, એમ માને છે (જુઓ "જૈનસાહિત્ય-સંશોધક," ખંડ ૩, અક ૧માં તેમનો લેખ "એક ઐતિહાસિક શ્રુતપરંપરા અને તેની સમીક્ષા").

‘ધર્મવિજયનાટક’ નામનું પંચાંકી નાટક દિલીપતિના દાનવેતનાધ્યક્ષ કાયસ્થ કેશવ-દાસ માટે લખાયેલું. તેનો કર્તા ભૂદેવ શુક્લ છે. ‘સ્માર્ત આચારોથી યુક્ત જીવનના પારલૌકિક ફાયદાઓ’ દર્શાવતું એ રૂપક છે. એની હાથપ્રત સં. ૧૮૩૨ની મળે છે, એટલે ત્યાર પહેલાં એ લખાયેલું હોવું બેઠએ.

રવિદાસનું ‘પાખંડખંડનનાટક’ પણ દંભ અને પાખંડનું ખંડન કરી વેદધર્મનું પ્રતિ-પાદન કરતું રૂપક છે. નાન્દીમાં શ્રીદેવી, સૂર્ય, પાર્વતી, વાગ્દેવી, રામ, શિવ અને ગણેશનું આવાહન કર્યું છે. નેપથ્યમાંથી વેદધ્વનિ અને સરસ્વતીની વીણાનો ઝણકાર સંભળાય છે. વેદ અને સરસ્વતી વૈદિક ધર્મનું વિખ્યાવન થયું હોવાની ફરિયાદ કરે છે. ધાર્મિક દંભો તથા પાખંડીઓએ વૈદિક ધર્મની કેવી અવદશા કરી મૂકી હતી તે આમાંથી જણાય છે. કર્તાએ આમાં સરસ્વતી અને વેદો ઉપરાંત વિષ્ણુભક્તિ, ન્યાય, મીમાંસા, વેદાન્ત, પ્રશસ્ત પૌરાણિક, વિટાવતંત્ર વગેરે પાત્રો કદપીને વૈદિક ધર્મની સત્યતા પ્રતિપાદિત કરી છે. અંતમાં પ્રશન્ન પૌરાણિકના પ્રયત્નોથી પાખંડી ધર્મો નાસી જાય છે. તથા નાસ્તિકો આસ્તિક બને છે. કર્તાએ આ નાટક “દ્વારવતી યતિના પ્રિયને માટે લખ્યું છે” એવો તેમાં ઉલ્લેખ છે, પરંતુ તે ક્યારે રચાયું તે વિષે કંઈ જાણવા મળતું નથી. અલબત્ત, એ ઘણું પ્રાચીન તો નથી જ.

રામકૃષ્ણ દેવજીનું ‘ગોપાલકેલિચન્દ્રિકા’ નામે નાટક શ્રીકૃષ્ણની વૃન્દાવનલીલાઓનું ભક્તિભાવપૂર્ણ નિરૂપણ કરે છે તથા પ્રશ્નોરા કવિ જગન્નાથે સં. ૧૮૫૨માં લખેલું ‘ભાગ્યમહોદય’ જુદા જુદા અલંકારોને પાત્રો કદપીને ભાવનગરના મહારાજ વખતસિદ્ધ તથા તેમની સભાનું વર્ણન કરે છે.

હવે પ્રશ્ન એ થશે કે, આ બધાં નાટકોનું સાહિત્યદૃષ્ટિએ મહત્ત્વનું શું? કહેવું બેઠએ કે હેમચન્દ્રના શિષ્ય રામચન્દ્રનાં નાટકોના અપવાદને બાદ કરીએ તો, શુદ્ધ સાહિત્ય દૃષ્ટિએ આ બધાં નાટકોની કિંમત ઝાઝી નથી. પરંતુ માઘ અને આજની પછી સાચું સર્જન સંસ્કૃત સાહિત્યમાંથી લગભગ આથમી ગયું હતું, એટલે મધ્યકાળમાં તો હિન્દના બધા જ પ્રાંતોમાં આ સ્થિતિ છે. આપણાં નાટકોનો ઉદ્દેશ પાત્રોના બાહ્ય કે આંતરિક સંઘર્ષણનું નિરૂપણ કરવાનો નહીં, પણ પ્રશ્નકના મનમાં રસની નિષ્પત્તિ કરવાનો હતો. અર્થાત્ કાવ્યોષુ નાટકં રમ્યમ્ એ ઉક્તિ દર્શાવે છે તેમ, નાટક એ કાવ્યનો જ એક પ્રકાર હતો. સઘળી કવિતાનો હેતુ ભાવ સૂચવવાનો છે; એટલે એ હેતુને સાનુકૂળ ન હોય તે બધા પ્રત્યે નાટકકારે દુર્લ્લેપ કરવું—એવા કોઈ વલણને પરિણામે સંસ્કૃત નાટકની અવનતિ થઈ છે. આપણું પ્રાચીન નાટક શુદ્ધ ભાવનાવાદી છે. નાટકમાં વસ્તુ એ ગૌણ તત્ત્વ છે. હકીકતો પ્રત્યે બેદરકારી, વ્યક્તિનું નહીં પણ આદર્શનું જ આલેખન, વાસ્તવિકતા પ્રત્યેનો અભાવ આજુગમો, કર્મના સિદ્ધાન્ત પ્રત્યેની વફાદારીને કારણે નાટકમાં અચિન્ત્ય વિદ્વાનો અભાવ, શાસ્ત્રોની સબ્જડ પ્રણાલિકાઓ—એ બધાં

૨ આ પછી પણ ગુજરાતમાં સંસ્કૃત નાટકો નથી લખાયાં એમ નહીં. પચાસ-સાઠ વર્ષ પછી લખાયેલાં શાસ્ત્રી સંકરલાલ મહેશ્વરનાં ‘આવિન્ની ચરિત’ આદિ તથા ઠેઠ લખાણાં નરિયાદવાળા શ્રી. મુળશંકર માલોક-લાલ યાજ્ઞિકનાં ‘સંયોગિનારયણવંશ’ ઇત્યાદિ સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રના સિદ્ધાન્તોને અનુસરીને લખાયેલાં નાટકો તેના ઉદાહરણરૂપ છે. પરંતુ એ બધાંનું વિવરણ આ લેખમાં અપ્રસ્તુત છે.

કારણે, પૂર્વકાલીન તેજસ્વી સર્જકતા જ્યારે આશ્ચર્ય આવી હતી તે પાંડિત્ય-યુગમાં, નાટકની અવનતિ કરવામાં ફાળો આપ્યો. વ્યક્તિ પ્રત્યેની ઉદાસીનતાને કારણે સંવાદો ફીકા બનતા ગયા, અને આદર્શો પ્રત્યેની વફાદારીને કારણે શ્લોકો મુક્તકો જેવા-વધુને વધુ લાલિત્યપૂર્ણ બનતા ગયા. લેખકોનું ધ્યાન આવાં મુક્તિકો લખવા ઉપર જ કેન્દ્રસ્થ થતું ગયું, અને નાટકનાં બીજાં અંગો ભૂખે મરવા લાગ્યાં.

ગૂજરાતનાં સંસ્કૃત નાટકો એ અવનતિકાળનાં નાટકો છે, એની કોઈથી ના પાડી શકાય તેમ નથી. પરંતુ ઇતિહાસ અને સમાજશાસ્ત્રના અભ્યાસની દૃષ્ટિએ એ સર્વ નાટકોનું મૂલ્ય ઘણું મોટું છે. એ નાટકો પૈકીનાં કેટલાંક તત્કાલીન ઐતિહાસિક પ્રસંગો ઉપરથી લખાયાં છે, કેટલાંક ધાર્મિક પ્રચારાર્થે લખાયાં છે, અને ઘણાં ખરાં સાર્વજનિક ઉત્સવ પ્રસંગે ખાસ યોજનાથી લખવાયાં છે. ગૂજરાતના મધ્યકાલીન ઇતિહાસ અને જીવનને સમજવામાં નાટક પણ ઘણું અંશે સહાયકૂત થાય છે.

[૨]

મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં નાટક સાધારણ રીતે રાજાશ્રિત અથવા ધનિકાધીન હતું. રાજાની આજ્ઞાથી જેમ વખતોવખત નાટકો લખવાતાં તેમ ધનિક લોકો પણ નાટક કરાવતા. ઉપર નોંધેલાં નાટકો પૈકી ઘણાંક રાજાશ્રી લખવાયાં હતાં, એ આપણે જોઈ ગયા. રામભદ્રનું ‘પ્રયુક્તરૈહિણિય’ નાટક જલોરમાં બે વર્ષિક બાઈઓની સૂચનાથી લખવાયું હતું. ‘પ્રબન્ધચિન્તામણિ’માં ભોજરાજપ્રબન્ધમાં એવો એક પ્રસંગ આવે છે કે-ભોજરાજ નગરચર્યા જેવા ગયો હતો, ત્યાં એક સ્થળે શિવમંદિરમાં એક વાણિયાએ નાટક કરાવ્યું હતું, તેની સમૃદ્ધિ જોઈને વાણિયાને હુંડી લેવાનો રાજાને વિચાર થયો. આ કથાનકમાં ભલે સત્યાશ ન હોય. પરંતુ દેવમંદિરોમાં સામાન્ય લોકો પણ નાટકો કરાવતા, એટલી ઉપયોગી માહિતી તેમાંથી મળે છે. દેવમંદિરોમાં દેવોની વર્ષગાંઠ, ચાત્રામહોત્સવ, વસંતોત્સવ ઇત્યાદિ પ્રસંગોએ ખાસ નાટકો લખવાતાં. બંગાળમાં હજી પણ ‘જાત્રા’ના પ્રયોગો થાય છે.

પૂર્વકાળમાં નાટક માત્ર ઉચ્ચ વર્ગના-રાજા અને તેના દરબારીઓના-આનંદ વિનોદનું સાધન હતું. પણ મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં ધાર્મિક પ્રચારાર્થે પણ નાટકનો ઉપયોગ થતો આપણે જોઈએ છીએ. એ રીતે નાટક જનસમૂહનો સ્પર્શ કરતું પણ બન્યું. ‘મોહરાજપરાજય’ ‘પ્રયુક્તરૈહિણિય’, ‘કરુણાવજ્રાયુધ’ અને ‘ધર્માભ્યુદય’ જેવાં ધર્મના પ્રચારાર્થે જ લખાયાં તથા લખવાયાં હતાં. ‘કરુણાવજ્રાયુધ’ તો ચાત્રાધામ શત્રુજયમાં વસ્તુપાલે કાઢેલા સંઘના પરિતોષ અર્થે લખવાયું હતું, એ પણ ઓછું સૂચક નથી. ‘ધર્મવિજય’ ‘મિથ્યાજ્ઞાનખંડન’ ઇત્યાદિ નાટકો એવી જ રીતે વેદિક ધર્મના પ્રચારાર્થે લખાયાં હતાં.

નાટકો સામાન્યતઃ મંદિરના પટાંગણમાં લખવાતાં હતાં, કારણ કે પ્રાચીન કાળનું મંદિર એ સાર્વજનિક સંમેલનનું એકમાત્ર સ્થાન હતું. લોકો નાટકો જેવા ખૂબ ઉત્સાહથી જતા, અને નાટ્યં મિષ્ણરુચેર્જનસ્ય बहुधाप्येकं समाराधनम् । એ કવિદુલ્લુભની ઉક્તિને સાર્થક કરતાં, એમ પ્રબન્ધો વાંચતાં જણાય છે. સમાજનો મધ્યમ અને ધનિક

વર્ગ સામાન્ય સંવાદો પૂરતું સંસ્કૃત તો સમજી શકતો હશે—જેમ અત્યારે અંગ્રેજી સમજે છે—એમ માનવાને પૂરતાં કારણો છે. આજે પણ મલબારમાં ‘આશ્ચર્યમંજરી’ ‘પ્રતિજ્ઞાચૌધરાયણ’ અને ‘નાગાનંદ’ નાટકો લજવાય છે અને બેનારા તે સમજે છે. જો કે કેટલીકવાર રાજાઓ વગેરે પ્રતિષ્ઠાને ખાતર લલિત કળાઓના જ્ઞાતા હોવાનો ડોળ કરતા—આજે પણ ધનિકવર્ગમાં ક્યાં એવું નથી ચાલતું?

[૩]

ભાંડ અને કૌતુકી વિષેના ઘણા ઉલ્લેખો પ્રબન્ધોમાંથી મળે છે. અજયપાલને જૈન દેવાલયોના વિનાશના કામમાંથી વારનાર સીલણુ ભાંડનો પ્રસંગ પ્રસિદ્ધ છે. ભાંડ લોકો વાક્યાતુરી, હાથચાલાકી અને નજરખંધીના ખેલો કરતા હશે. એ લોકોની એક જુદી જ્ઞાતિ જ હોવી જોઈએ.^૧ ઉપલા વર્ગ માટે જો સંસ્કૃત નાટક હોય તો નીચલા વર્ગો માટે લવાઈ કે એવો નાટ્યપ્રકાર હોવો જોઈએ. પરંતુ એ વિષયમાં કોઈ મંડનાત્મક પ્રમાણો પ્રાચીન ગ્રંથોમાંથી મળતાં નથી. સ્વ. હરિલાલ દુવે ‘લવાઈ’ની વ્યુત્પત્તિ સંસ્કૃત ભાવમાંથી સિદ્ધ કરી છે, તે વાજબી લાગે છે.

લવાઈ સંબંધી જાણીતા નટ શ્રી. જયશંકર ‘સુન્દરી’એ અમદાવાદની રંગભૂમિ પરિષદ સમક્ષ રજુ કરેલા પોતાના એક નિબંધમાં આપેલી દંતકથા નોંધપાત્ર છે—

ઉંઝાના હેમાળા નામના એક પાટીદારની સ્વરૂપવાન કન્યા ગંગાને મુસ્લીમ મુખો ઉપાડી ગયો હતો. પાટીદારના એક બ્રાહ્મણ સ્નેહી આસાયને પોતાની ગાયન, વાદન અને અભિનયકળાથી મુખાને પ્રસન્ન કરી, ‘આ તો મારી પુત્રી છે’ એમ કહી ગંગાને છોડાવી. મુખાએ પરીક્ષા લેવા બંનેને એક થાળીમાં જમાડ્યાં. આથી આસાયતને બ્રાહ્મણોએ નાતબહાર મૂક્યો, પણ પાટીદારોએ તેને અમુક હક્કો આપ્યા, જે તેના વંશને હજી સુધી ભોગવે છે. આ પછી આસાયને લવાઈના ૩૬૦ વેશો લખ્યા. પોતે તો કવિ, વક્તા અને ગાયક હતોજ એટલે પોતાના ત્રણ દિકરાઓની મદદથી આ વેશો તેણે લજવવા માંડ્યા. તેઓ ‘ત્રણધરા’—તરગાળા તરીકે ઓળખાયા. જૈનધર્મી બનેલા શ્રીમાળી બ્રાહ્મણો—ભોજકોએ તેમની સાથે બેટીવ્યવહાર બાંધ્યો, એટલે તેમની એક નાત બની ગઈ. આ પ્રમાણે આસાયત એ અત્યારની નાયક જ્ઞાતિનો પૂર્વજ છે.

આ આસાયત ઐતિહાસિક વ્યક્તિ છે એમાં શક નથી, કેમકે તેણે સં. ૧૪૧૦માં લખેલી ‘હંસવત્સકથા’ મળી આવે છે. તેના એ કાવ્યની હાથપ્રત સં. ૧૭૨૦માં એક છળીલદાસ નાયકને માટે ઉતારવામાં આવી હતી. એ પણ એ જ્ઞાતિમાં એની લોકપ્રિયતાનું સૂચન છે. તેણે લવાઈના વેશો નવા ન લખ્યા હોય, પણ જૂના વેશોનું સંપાદન—સંસ્કરણ કર્યું હોય, એમ બનવાનો સંજવ વધારે છે. લવાઈમાં અત્યારે જે અશ્લીલ તત્ત્વો બેવામાં આવે છે, તેમાં બાણ, પ્રહસન વગેરે સંસ્કૃત નાટિકાપ્રકારોની અસર હોય. અલબત્ત, લવાઈ એ તો લોકસમાજના મનોરંજનનો પ્રયોગ છે, એટલે બીજી પણ ઘણી અસરો તેમાં બેગી થઈ છે. વિકૃત હાસ્યનું સર્વપ્રથમ ભોગમસ્થાન આશ્ચર્યતા—

૧ મહેસાણા પાસે બાંડ નામનું ગામ આવેલું છે, ત્યાં અગાઉ ભાંડ લોકો જ વસતા એમ કહેવાય છે. અત્યારે પણ ભાંડ લોકોની વસ્તી ત્યાં સારા પ્રમાણમાં છે.

અશ્લીલતા છે; પછી અજ્ઞાન નટોને તેવા જ અજ્ઞાન પ્રેક્ષકોનું મનરંજન કરવાનું હોય ત્યાં અશ્લીલતાનો આશ્રય લેવાય એમાં શી નવાઈ?²

[૪]

હવે મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં રંગભૂમિના અસ્તિત્વ-અનસ્તિત્વનો પ્રશ્ન ચર્ચવાનો બાકી રહે છે. હિન્દુ રાજ્યકાળમાં એટલે કે સં. ૧૩૬૦ પહેલાં તો રંગભૂમિ હતી જ, એ યતાવવાને આગળ દર્શાવેલાં સંખ્યાબંધ નાટકોની પ્રસ્તાવનાઓ જ બસ છે. પણ હિન્દુ રાજ્યકાળ પછી-સોળમી, સત્તરમી, અઠારમી સદીમાં ગૂજરાતમાં રીતસરની રંગભૂમિ હતી કે કેમ, એ વિચારવા બેઠું છે. 'પ્રેમાનંદના નાટકો'ના કર્તૃત્વ સંબંધી ચર્ચા કરતાં સદૃગત સાક્ષર શ્રી. નરસિંહરાવે એક ખંડનાત્મક દલીલ એ પણ કરી હતી કે એ કાળમાં અથવા તે પહેલાં ઘણા કાળસુધી ગૂજરાતમાં કોઈ પણ સ્વરૂપમાં રંગભૂમિ ન હોતી. 'પ્રેમાનંદનાં નાટકો'ના કર્તૃત્વ સાથે આપણને અહીં સંબંધ નથી-સો વસા તો એ નાટકો પ્રેમાનંદનાં નથી જ-પરંતુ પ્રેમાનંદ અને તેની પૂર્વેના કાળમાં રંગભૂમિનું અનસ્તિત્વ પ્રતિપાદન કરતી શ્રી. નરસિંહરાવભાઈની દલીલ હવે તો થોડુંક પરીક્ષણ માગી લે છે.

હિન્દુ રાજ્યકાળમાં જે રંગભૂમિનું અસ્તિત્વ હતું, અને જેના ઉપર ઓછામાં ઓછાં એ ડઝન નાટકો ભજવાયાના પૂરાવા તો આજે પણ આપણી પાસે મોજુદ છે, તે રંગભૂમિ મુસ્લીમ રાજ્યઅમલની સ્થાપના થતાં જ એકાએક નાશ પામી જાય એ અસંભવિત હતું. મુસ્લીમ કાળમાં જ રચાયેલાં નાટકો 'પૈકી, 'ગંગાદાસપ્રતાપવિલાસ' નાટક સં. ૧૫૦૫ ના અરસામાં ચાંપાનેરમાં મહાકાલીના મંદિરમાં ભજવાયું હતું. સત્તરમા અથવા અઠારમા સૈકામાં લખાયેલું 'ધર્મવિજય' નાટક પણ ભજવાયું હતું. એ સિવાયનાં બીજાં નાટકો ભજવાયાં હતાં કે કેમ એ કહી શકાય નહીં, પરંતુ ઉપરનાં એ ઉદાહરણો શ્રી. નરસિંહરાવના કથનનું અનૂન ઓછું કરી શકે એમ છે. કહેવાનો આશય એટલો જ છે કે રામલીલા કે ભવાઈથી જુદા પ્રકારની રંગભૂમિ ગૂજરાતમાં અસ્તિત્વમાં હતી એમ માનવાને પ્રેરે એવા પૂરાવા આપણી સમક્ષ પડેલા છે. રાજ્યો કે ધનિકોની ખાસ સૂચનાથી લખાયેલાં નાટકોનો પ્રયોગ પણ નાટ્યશાસ્ત્રની રીતે જ થતો હોવો જોઈએ.

વિક્રમના ઓગણીસમા શતકમાં કે ત્યાર પહેલાં ગૂજરાતી ભાષામાં કોઈ નાટક લખાયેલું હોય જણાયું નથી. નાટકની સાંથી વધુ નજદીકનો સાહિત્યપ્રકાર તે 'મન-મતિસંવાદ', 'સંપલક્ષ્મીસંવાદ', 'લોચનમનનો ઝઘડો' કે 'રાવણમંદોદરી સંવાદ' જેવા પદ્યાત્મક સંવાદોનો છે.

૨ ભવાઈમાંની અશ્લીલતા હીક હીક અળખામણી અને કુપ્રસિદ્ધ બની ગઈ હતી. "લાડ-ભવેયા"ને લગતી અનેક ગૂજરાતી કહેવતો તથા "ગાળા દરી" એ અર્થનો "લાડલુ" શબ્દ એના ઉદાહરણરૂપ છે 'કાલકાર્યાર્થકથા'નું સોળમાં શતકમા લખાયેલું એક ગૂજરાતી પ્રતીક અને પાટણમાંથી પ્રાપ્ત થયું હતું. તેમાં ગદ્યલિપ્ત રાજા કાલકાર્યાર્થની બ્હેન સરસ્વતીને ઉપાડી જાય છે તે પ્રસંગે ઉદ્ભૂત થયેલું એક સંસ્કૃત સુભાષિત પણ નોંધપાત્ર છે-

યત્રાસ્તિ રાજા સ્વયમેવ ચોરો માળીવદ્દો યત્ર પુરોહિતશ્ચ ।

વર્ત્ત મજ્જ્વં નતુ નાગરા મો યતઃ શરણ્યાદ્વયમત્ર જાતમ્ ॥

૨૧. મહીપતરાય નીલકંઠે ભવાઈનાં અશ્લીલ તત્ત્વો દૂર કરી તેને સુધારવાનો પ્રયત્ન કર્યો હતો, પણ તે નિષ્ફળ ગયો. અને હવે તો ભવાઈ પોતે જ છેલ્લા ખાસ ખાઈ રહી છે.

હિંદુનું ઇતિહાસ-સાહિત્ય:—એક દૃષ્ટિ*

શ્રીયુત કનૈયાલાલ મા. મુનશી બી. એ., એલ્.એલ્. બી.

[સંસ્થાપક—અધ્યક્ષ, ભારતીય વિદ્યા મંચન; નિર્વૃત્ત ગૃહમંત્રી, મુંબઈ પ્રાન્ત]

* ૧ *

સન્નારીઓ અને સદ્ગૃહસ્થો,

આજે ‘ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટી’ માટે વાર્ષિક વ્યાખ્યાન આપવાને તમે મને નિમંત્ર્યો તે માટે હું તમારો આભાર માનું છું.

હાલની મારી પ્રવૃત્તિઓને ધ્યાનમાં લેતાં ધારું તે વિષય પર મારાથી વ્યાખ્યાન આપવાનું શક્ય ન હતું એટલે હાલ હિન્દના ઇતિહાસ વિષે જે કંઈ થોડો અભ્યાસ કરી રહ્યો છું તેને લીધે જે દૃષ્ટિબિન્દુ મને સૂઝ્યું છે તે અહીં રજુ કરું છું.

આ લેખમાંનાં નિર્ણયો પરત્વેના આધારો મેં અહીં ટાંક્યા નથી, પણ જિજ્ઞાસુઓને તે માટે ‘ભારતીય વિદ્યા’માં આવતા મારા લેખો જોઈ જવાની ભલામણ કરું છું.

હિન્દના ‘ઇતિહાસો’ જોઈએ નેટલા છે. એના ખાસ વિષયો પર પણ પુસ્તકો પુષ્કળ છે. ઘણું ખરું એ સાહિત્ય પરદેશીની દૃષ્ટિએ લખાયું છે. હિન્દની દૃષ્ટિએ હિન્દનો સંગઠિત ઇતિહાસ હજી લખાવાનો રહ્યો છે, જો કે એનો સમય તો ક્યારનો આવી ચૂક્યો છે. હિન્દનો આત્મા જે ઓળખતો હોય તે જ એ ઇતિહાસ લખી શકે.

૨

‘હિન્દ’નો ઇતિહાસ એટલે કોનો ઇતિહાસ ? હિન્દુસ્થાનનો ? એક જાતિનો ? એક વિજય પામેલી સંસ્થાનો ? વધતીવધતી રાજકીય સીમામાં રહેલા પ્રદેશોનો ?

ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ જે પ્રદેશમાં અગ્રેજી હકુમત આજે પ્રસરી છે તેને હિન્દ નહીં કહેવાય. મુસ્લિમ તવારીખકારોનું ‘હિન્દોસ્તાન’, યવન લેખકોનું ‘ઇન્ડોઈ’, પુરાણકારોનું ‘આર્યાવર્ત’ તે પણ હિન્દ ન કહી શકાય.

હિન્દનો ઇતિહાસ એટલે હિન્દ દેશનો ઇતિહાસ. પણ દેશ એટલે શું ? ભૌગોલિક સીમાઓથી સંવૃત્ત એક પૃથ્વીના વિભાગને ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ દેશ ન કહી શકાય. તેમ જ એવો વિભાગ ન હોય તેને પણ દેશ ન કહી શકાય. દેશ એટલે ભૌગોલિક સીમાઓમાં રહેલો વિસ્તાર અને તે ઉપરાંત બીજું ઘણું. એ ‘બીજું ઘણું’ શું તેનો નિર્ણય દરેક ઇતિહાસકારે કરવો જ રહ્યો.

હિન્દ એ વિશિષ્ટ પ્રદેશ છે. હિમાલય ને હિન્દુકુશ, વિખ્યાયલ ને પશ્ચિમ—પૂર્વના ઘાટ અને કરાચીથી કલકત્તા સુધીનો સાગર કિનારો અને ભૌગોલિક વ્યક્તિત્વ આપે છે. હિમાચલથી સમુદ્ર સુધીનો ભરતખંડ એ જૂની કલ્પના. એ ખંડ હિન્દની મર્યાદા

* અમદાવાદની ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટીની વાર્ષિક સભા સમક્ષ તા. ૨૫-૮-૪૦ ના દિવસે આપેલું વ્યાખ્યાન.

બાંધી શકે છે. એનાં પ્રાકૃતિક તત્ત્વો એને આસપાસના પ્રદેશોથી નિરાળો બનાવે છે. એ જ વિશિષ્ટતાઓ એમાં રહેતાં સ્ત્રી-પુરુષોના શરીર, દૃષ્ટિ, જીવન ને સંસ્કાર વડે છે, અને એમને એક તરફ અકુદાનો ને ધરિનીઓથી અને બીજી તરફ ચીનાઓથી જૂદા પાડે છે.

ભૌગોલિક વિશિષ્ટતાના નિર્ણયાત્મક તત્ત્વોથી એક પ્રદેશના લોકોમાં નીરાળાપણું આવે છે છતાં એનાથી જ લોકોનું જીવન વડાય છે એમ કહીએ તો તે યોગ્ય નથી. એ તત્ત્વોનું બળ બીજાં બળો કમી કરી શકે છે ને નાબૂદ પણ કરી શકે છે. માત્ર એટલું કહી શકાય કે કેટલાંક ભૌગોલિક તત્ત્વો લોકજીવન પર એક પ્રકારની અસર કરી શકે છે. પણ એ તત્ત્વો જ્યાં હોય ત્યાં એ અસર ન જણાય તો બીજાં બળોની શોધ કરવાની રહે છે.

ગુજરાતમાં કૃષ્ણદુષ્પ જમીન છે, ને બિહારમાં પણ છે. છતાં બન્ને પ્રાન્તના લોકો નિરાળા છે. દક્ષીણ ગુજરાત, સાતપૂડા અને ઘાટને લીધે, મહારાષ્ટ્રથી જૂદું છે. છતાં મુખાઈની દક્ષિણે પર્વતની બન્ને બાજુ મહારાષ્ટ્ર છે. સાગરતીરે વસતી પ્રજા પ્રવૃત્તિમય ને સમૃદ્ધશાળી બને છે, તો પણ આપણે વણાય સમુદ્ર-કિનારા શક્તિ ને સમૃદ્ધિ-વિહીન જોઈએ છીએ.

એટલું તો નિઃસંદેહ છે કે હિન્દ દેશ છે, કારણ કે એ ભૌગોલિક વિશિષ્ટતાવાળો પ્રદેશ છે. એ પ્રદેશમાં વસતા લોકોમાં એકતાનતા ન હોય તો તે દેશ ન ગણાય. એ એકતાનતા માત્ર ભૂગોલવધી નથી. એ ઘડનાર તો આપણા ઇતિહાસ-પ્રસંગો ને આપણી સંસ્થાઓને સર્જનાર બળો છે.

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ‘હિન્દ’નો ઇતિહાસ એટલે ‘હિન્દ’ પ્રદેશનો નહી. પ્રદેશ પરાક્રમ કરતો નથી. અનાવૃષ્ટિ ને ભૂકંપ સિવાય પ્રદેશ પર આજી વિપત્તિઓ પડતી નથી. પ્રદેશમાં થયેલા ફેરફારો તો ભૂસ્તરશાસ્ત્રનો વિષય છે.

અમુક પ્રદેશમાં વસતા લોકોના વિશિષ્ટ સંસ્કારોને લીધે એ પ્રદેશને અવલંબીને જે પ્રવૃત્તિઓ યુગે યુગે યોજાય તેનાથી ઉદ્ભવેલી-પ્રદેશથી નોખી નહીં છતાં પ્રદેશથી નિરાળી-જીવંત વ્યક્તિ, તે દેશ.

૩

હિન્દના કહેવાતા ‘ઇતિહાસો’ માં ઘણુંખરું કોઈ એક પ્રાન્ત કે કોઈ એક રાજકુલનો ઇતિહાસ હોય છે. કોઈકમાં દિલ્હીની સલ્તનતની તવારીખો હોય છે, તો કોઈમાં મોગલ ને અંગ્રેજ સામ્રાજ્યની કથા હોય છે. પણ એ બધાનો વિષય હિન્દનો ઇતિહાસ છે એમ ન જ કહી શકાય.

ઇતિહાસ એ રાજ્યો ને વિજેતાઓના પરાક્રમોની કથા નથી. ખરું જોતાં ઐતિહાસિક નવલકથાકારો કે દરબારી સાહિત્યકારોની કીર્તિગાથાનો એ વિષય છે. આ કથાઓનો ખરો ઉપયોગ લોકના સ્મરણબંધારને સમૃદ્ધ કરી તેમને સામુદાયિક પ્રવૃત્તિ

તરફ દોરવાનો છે. જેટલે અંશે એ ઉપયોગ થાય તેટલે જ અંશે એક પરાક્રમકથાનું ઇતિહાસમાં સ્થાન હોઈ શકે.

એક દેશમાં રાજ્યો ઊગે ને આથમે, પણ જો તેમની અસર લોકોના જીવન ને ભાવી પર ન થાય તો તેનું સ્થાન ઇતિહાસમાં ન જ હોય. સાહિત્ય, વિચાર ને સંસ્કાર જે લોકજીવનનાં અંગ છે, તેનું સ્થાન તો ઇતિહાસમાં હોવું જ જોઈએ. સામાજિક ને રાજકીય સંસ્થાનું સ્થાન પણ અવશ્યનું છે. એ બધાં લોકજીવનનાં કલેવર છે.

લોકજીવનની સળંગ કથા તે ઇતિહાસ. જીવનપ્રણાલીના આદર્શરૂપ બને તેવા મહા-પુરુષોનાં જીવન ને પરાક્રમોનો એમાં સમાવેશ થવો જોઈએ. લૌગોલિક ને આર્થિક પરિસ્થિતિએ લોકો પર જે વિશિષ્ટ અસર કરી હોય તેનું પણ દર્શન એમાં થવું જોઈએ. લોકજીવન પર અસર કરનારાં બળો ને સંજોગો; તેના નિર્માતારૂપ રાજકીય ફેરફારો ને વિપત્તિઓ; લાક્ષણિક સામાજિક સંસ્થાઓ, માન્યતાઓ ને ઘટનાઓ; સાહિત્ય ને કલાના ક્ષેત્રમાં મેળવેલી સિદ્ધિ; આ બધાં પણ અગત્યના અંગ છે. પણ ઇતિહાસ તો દેશના લોકનો; એટલે કે લોકસમૂહની એકતાનતા સર્જનાર ને સમૃદ્ધ કરનાર વિચારો, આદર્શો ને સંસ્કારનો.

ઇતિહાસ એટલે લોકો એકતાનતા પ્રાપ્ત કરવા માટે જે સામુદાયિક ઇચ્છાશક્તિ વ્યક્ત કરે તેનો, અને તે શક્તિને સર્જનાર મૂલ્યોનો.

આ મૂલ્યોની તપાસ, આંકણી ને વર્ણન; એ મૂલ્યો વડે પ્રગટતી સામુદાયિક ઇચ્છા-શક્તિની દિશાનું સંશોધન ને પૃથક્કરણ; અને એ ઇચ્છા-શક્તિ કેવી રીતે જીવનની અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓ મારફત વ્યક્ત થાય છે તેનું દિગ્દર્શન—તે ઇતિહાસ.

હિન્દનો આવો ઇતિહાસ હજી લખાવાનો છે.

૪

આપણા ઘણાખરા ઇતિહાસોમાં આ દૃષ્ટિ હોતી જ નથી. એમાં કેટલાક પ્રસંગો કે કેટલાક યુગોનું વર્ણન આવે છે, પણ ઉપર દર્શાવેલા હિન્દની દૃષ્ટિએ નહીં. ઘણે ભાગે એ ઇતિહાસકારોની દૃષ્ટિ તો પરદેશી સામયી વડે ઘડાઈ હોય છે, હિન્દી કરતાં હિન્દેતર વધારે હોય છે. પરિણામે કેટલાક પ્રસંગો પર વધુ પડતો ભાર મુકાય છે અને આખો ઇતિહાસ વિકૃત બને છે.

દૃષ્ટાંત તરીકે યેડવેલનો કૃષ્ણજનો દૃકો હિન્દી ઇતિહાસ લઈએ. આપણા સારામાં સારા ગણાતા ઇતિહાસોમાંનો તે એક છે. એનો પહેલો ભાગ ૨૦૧ પાનાં રોકે છે. એમાં ઈ. પૂ. ૨૦૦૦ થી માંડી ઈ. સ. ૧૦૦૦ એટલે ૩૦૦૦ વર્ષનો ઇતિહાસ સમાયો છે. એમાં લોકોનો ખરો ઇતિહાસ નથી, તેમની સામુદાયિક પ્રવૃત્તિની કથા નથી. એમાં સમગ્ર જીવન જોડે અસંખ્ય એવી થોડા રાજાઓના પરાક્રમોની કથા માત્ર છે.

કૃષ્ણજના આ દૃકા ઇતિહાસમાં, ૨૭ પાનામાં મગધના પહેલા હિન્દી સામ્રાજ્યનો ઇતિહાસ છે. તેનો કાલ ઈ. પૂ. ૭૦૦ થી ઈ. પૂ. ૧૪૯ સુધી વિસ્તરે છે; એટલે કે ૫૫૧ વર્ષ. તે ૨૭ પાનાંમાંથી ૭ પાનાં તો યવન વિજેતા, જેનું આક્રમણ થોડા મહિના

ચાલ્યું ને જોણે માંડમાંડ પંખળનો એક દૂકડો જીત્યો અને જેને થાકી હારી પાછાં જવું પડ્યું, તેને વિશે રોડ્યાં છે.

એમ કહી શકાય કે હિન્દના ઇતિહાસના બધા સમયને સળંગ ન્યાય આપી શકાય એવાં સાધનો નથી. સિકંદર સંગંધી ગ્રીક સાહિત્યમાં ઘણું લખાયું છે ને ગ્રીક લોકોને હાંકી કાઢનાર ચંદ્રગુપ્ત વિશે કંઈ મળતું જ નથી. તો વાસ્તવિક માર્ગ તો એ છે કે એ સાધનોને માટે જુદા પુસ્તકો લખાય. એનો માર્ગ એ નથી કે આખા હિન્દનો ઇતિહાસ એવા એકપક્ષી સાધનોથી વિકૃત અને.

બીજા ભાગમાં તો હિન્દનો ઇતિહાસ મુદ્દલ જ નથી. એમાં પ્રશંસાત્મક મુસ્લિમ તવારીખોએ પૂરી પાડેલી સામગ્રી પર રચાયેલી મુસ્લિમ વિજેતાઓની વાતો છે. આ કંઈ હિન્દનો ઇતિહાસ ન કહેવાય. એ ઇતિહાસમાં તો આ દેશના લોકોનો ઇતિહાસ આવે: જે મળે પરદેશી આક્રમણનો પ્રતિરોધ કર્યો અને પર-સંસ્કારો ઓગાળી તેમને પોતાના કર્યા તેમનો.

૧૧૮૬ થી ૧૮૦૦ સુધી લોકો પર પડેલી વિપત્તિઓને લીધે તેમણે શું સહ્યું, શું વિચાર્યું, શું દ્રેવ્યું, શું શું ઘડ્યું ને બાંધ્યું તેનો એમાં ઇતિહાસ નથી. મુસ્લિમ રાજ્ય-સત્તાઓના સ્પર્શથી જે પુનર્ઘટના થઈ તેની રૂપરેખા પણ એમાં નથી.

ત્રીજા ભાગનું શીર્ષક બ્રિટિશ હિન્દ છે. તે ૧૮૨૧ પાનાં રોકે છે; એટલે કે પુસ્તકનો લગભગ અડધો ભાગ. અને ખરું જોતાં એનું નામ તો ‘યુરોપીય દિગ્વિજય આખ્યાન’ જ આપી શકાય. પુસ્તકના ૬૦૮ પાનાંમાંથી ૩૮૬ પાનાં ૧૭૪૦ થી ૧૮૨૦ સુધીનાં બ્રિટિશ લોકોનાં પરાક્રમોની વાતોથી ભર્યાં છે. આ ૧૮૦ વર્ષમાં ‘હિન્દ’ શું હતું તેની કથા એમાં નથી. આપણા લોકોએ શું જોયું, શું સહ્યું ને શું અનુભવ્યું તે એમાં નથી. એ સમયમાં લોકો પર શું અસર થઈ, અને પરદેશી સત્તા અને સંસ્કારને સાનુદૂલ કે પ્રતિકૂલ થવા તેમણે શું કર્યું તેનો ઇતિહાસ પણ નથી. બ્રિટિશ સંપર્કથી શી શી વ્યવસ્થાઓ લોકોએ રચી, મદ્યોનાં શાં પરિવર્તન કર્યા તે પણ એમાં નથી.

૧૮૫૮ થી ૧૯૧૯ સુધીનાં છેલ્લાં ૧૭૫ પાનાં તો અંગ્રેજી સરકારી Administration Reports ના જેવાં લાગે છે, જેમાં સ્વ. દાદાભાઈ નવરોજીનું નામ એક વાર આવે છે, અને મહાત્મા ગાંધી માત્ર એકવાર શોભે છે, પણ તે એમ. આર. ગાંધી તરીકે !

ઇતિહાસકાર હિન્દની બહાર ઊભો છે. બીજાઓએ હિન્દ પર શી વિધિઓ કરી તેનું પ્રશંસામુગ્ધ દાસ્તાન તે આપ્યે જાય છે. હિન્દ બહારનાઓ પ્રત્યે કેમ વર્ત્યું, તેની એને ઝાઝી પરવા નથી. આને હિન્દનો ઇતિહાસ કહેવાય !

આ પરિણામ આવ્યું તેનું કારણ એ કે ઇતિહાસકારની દૃષ્ટિ આગળથી તેનું મુખ્ય ધ્યેય ખસી ગયું. હિન્દનો ઇતિહાસ લખવાને બદલે પરદેશીઓએ હિન્દમાં શું શું કર્યું એ લખવા તે ખેંચી ગયો. વળી પરદેશીઓએ સારી રીતે જાળવી રાખેલી સામગ્રીઓનો એ ભોગ બની ગયો અને તેથી પરદેશી વિજેતાઓની કીર્તિગાથાનો સારાંશ કાઢવામાં જ એ નિમગ્ન બન્યો.

* ૫ *

હિન્દનો ઇતિહાસ યુરોપીય વિદ્વાનોએ લખવો શરૂ કર્યો. તેમને મન હિન્દ એક જંગલી દેશ હતો. એના પર તેઓ રાજ્ય કરતા હતા. આને લીધે આપણા ઇતિહાસમાં એક ભયંકર વિકારદૃષ્ટિ પેસી ગઈ. પરિણામે હિન્દનો ઇતિહાસ પરદેશી આક્રમણની કીર્તિગાથા બની ગયો.

આર્યોનું જૂનામાં જૂનું શાસ્ત્ર બલે હિન્દમાં રચાયું હોય. બલે ઋગ્વેદસંહિતામાં આર્યો પરદેશી છે, એવું નામનિશાન પણ ન હોય. બલે પુરાણોમાં સંવરેલાં સ્મરણો પ્રમાણે આર્યો અહીંયાં વસતા હોય. પણ આર્યોનો મૂલ વસવાટ અહીંયાં સંભવે જ નહીં !

પરિણામે પહેલાં સરસ્વતીને તીરે અસલી આર્યાવર્ત હતું, તે ઓક્સસને કિનારે ગયું. પછી તિમિસ ને યુક્રેતિસને કિનારે પહોંચી ગયું.

મોનીયર વિલિયમ્સ તેને પામીરમાં લઈ આવ્યો. ૧૮૫૧ માં લેથામ આર્યાવર્તને યુરોપમાં ખેંચી ગયો. ગેગર તેને જર્મનીમાં લઈ ગયો. પેન્કા સ્વીડનમાં ધકેલી ગયો. ઓરે તેને રશિયામાં ઘસડ્યું. ડી મોરગન સમ્રાજીયમાં ઉપાડી ગયો. લોકમાન્ય તિલક ઉત્તર ધ્રુવ પહોંચી ગયા ! પરદેશથી ન આવ્યા હોય તો હિન્દમાં આર્યો વિજય કેમ કરત !

હજી કેટલાક ઇતિહાસકારો ઇરાની સમ્રાટ દારાયૂષે હિન્દ જીત્યું તેની નોંધ કરે છે. ખરી વાત એટલી જ કે ઈ. પૂ. ૫૧૬ પછી સિધુના પશ્ચિમ તીર સુધી ઇરાની લશ્કર આવ્યું હતું ને થોડાં વર્ષ સુધી એક નાનકડો પ્રદેશ તામે રાખ્યો હતો. આખું હિન્દ સ્વતંત્ર પડ્યું હતું તેની ક્યાં કોઈને પરવા હતી ?

સિકંદરના આક્રમણની પણ એ જ કથા. ગાંધારના આર્ય રાજાને મદદ કરવા એ સ્વન વિજેતા આવ્યો. એણે પંજાબના થોડાક નાના રાજાઓને હરાવ્યા. નન્દોની સાથે બાથડવા કરતાં ઝપાટાબંધ એ પાછો ચાલ્યો ગયો. પુરુને આંબી સ્વતંત્ર રાજા બની ગયા અને પાછળ રહેલા યવન સૈન્યને જીવાન ચંદ્રગુપ્તે હાંકી કાઢ્યું. અને ત્રણસો વર્ષથી મગધમાં શૈથુનાગે ને નન્દોએ જે સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું હતું, તેની મહત્તા તો સિકંદરના દિગ્વિજયનો એક ઉપસંહાર બની રહે છે ! આ નાનકડા આક્રમણની શી મહત્તા !

તે જ પ્રમાણે ૭૧૨ માં મહમૂદે સિંધનો થોડો ભાગ લીધો એટલે મુસ્લિમ આક્રમણો શરૂ થયાં. ત્રણસો વર્ષ પછી મહમૂદ ગઝનીએ વીશ વાર હુમલા કર્યા ત્યારથી તો ઇતિહાસકાર હિન્દનો ઇતિહાસ લખવાનું છોડી ગઝનીનો ચારણ બની બેસે છે.

સોમનાથના આક્રમણને પણ કેટલી મહત્તા અપાય છે ! મુસ્લિમ તવારીખોની અતિશયોક્તિભરી કહાણીઓમાં તથ્ય કેટલું છે એ હજી તપાસાયું નથી. ખરું જોતાં આટલી જ હકીકતો સત્ય લાગે છે :

(૧) આશરે ૧૦૨૫ માં મહમૂદે ગુજરાત પર આક્રમણ કર્યું ત્યારે તેને હિન્દી રાજાઓની બીકે રણમાંથી આવવું પડ્યું.

(૨) ગૂર્જરેશ્વર બીમે તેને સતાવ્યો હોવાથી એને કચ્છના રણને વાટે પાહું જવું પડ્યું.

(૩) એણે સોમનાથનું મંદિર તોડ્યું.

(૪) એ આવ્યો ને ગયો તો પણ ગુજરાતનું રાજકીય, સામાજિક ને ધાર્મિક જીવન અભંગ જ રહ્યું. એ આક્રમણ એવું લયજનક નહોતું કે હેમચંદ્ર, સોમેશ્વર કે મેસ્તુંગ જેવા આપણા ઇતિહાસકારોને તેની નોંધ લેવી પડે.

(૫) ગુજરાતની સત્તા કે સમૃદ્ધિમાં ફેર પડ્યો નહોતો. ૧૦૩૦ માં બીમ કચ્છ પર રાજ્ય કરતો હતો અને ૧૦૩૨ માં એનો મંત્રી વિમલ આણુ પર આદિનાથનું મંદિર બંધાવતો નજરે પડે છે.

(૬) ત્યાર પછી મહમદે હિન્દ જીતવાનાં સ્વપ્નાં છોડી દીધાં, અને ૧૬૦ વર્ષ સુધી ફરી પરદેશી હુમલો ન આવ્યો.

મહમદના સોમનાથ પરના આક્રમણ અને નેપોલિયનના મોસ્કો પરના આક્રમણમાં ઘણું સામ્ય છે. બંને મહત્વાકાંક્ષી આક્રમણો હતાં; બંને પરાજયમાં પરિણમ્યાં. નેપોલિયન પ્રકૃતિનો થકવ્યો પાછો હણ્યો. મહમદે રૂઠેલા દુશ્મનોની સામે થવા કરતાં પ્રકૃતિના ભોગ થવાનું પસંદ કર્યું. પણ મોસ્કોનું આક્રમણ વર્ણવતાં રશિયન ઇતિહાસકાર કેન્ચદુષ્ટિ કેળવે એ યૂરોપમાં તો અસ્વાભાવિક. હિન્દમાં ઇતિહાસકારો પરદેશી આક્રમણકારના પ્રશંસકોની દૃષ્ટિએ એ આક્રમણ વર્ણવે એમાં આપણને નવાઈ પણ નથી લાગતી.

તે જ પ્રમાણે ૧૧૮૬ થી ૧૪૦૦ સુધીના સંઘર્ષણકાલનો ઇતિહાસ લખાયો છે. એક, ઇલ્તુતમિશ, અલાઉદ્દીન ખીલજી ને મહમદ તઘલખે દિલ્હીની સલ્તનતને સામ્રાજ્યનું કેન્દ્ર બનાવવાના પ્રયાસો કર્યા. પણ એ દરેક વિજેતા વિદેહી થતાં દિલ્હી માત્ર એક નાનું રાજ્ય જ બની રહ્યું. ઈ. સ. ૧૩૯૯ માં તૈમૂરે દિલ્હી લૂટ્યું ત્યારે દિલ્હીની સલ્તનત પરવારી ગઈ. આ પરિણામ આવ્યું તે હિન્દીઓના જ્વલંત સ્વાતંત્ર્યપ્રેમથી. ખરું જોતાં એ સમયનાં દિને દિન હિન્દી વીરતાના પુનિત રુધિરથી છંટાયા છે.

ઘણા ઇતિહાસોમાં એ વિજેતાઓએ કેટલું જીત્યું તેના નકશા આપવામાં આવે છે; પણ એમના મરણ પછી એમનું રાજ્ય કેટલું રહ્યું તેના નકશા હજી આપણે દોરવાના છે. એ દોરવાથી જ માલમ પડશે કે દિલ્હી સામે જે સતત વિરોધ થતો તેને કેટલી સફળતા મળી.

આ વિરોધના બે મુખ્ય અંગો : એક તો સતત સેવેલાં યુદ્ધો અને બીજું સામાજિક ને સાંસ્કારિક પ્રતિરોધ.

દિલ્હીની સલ્તનત એ પરદેશી રાજ્ય ન હતું. પરદેશીઓના આખા લોકસમૂહ આવીને એ રાજ્ય નહોતું સ્થાપ્યું. દિલ્હી, ખંગાળ, ગુજરાત ને સિંધના રાજકર્તાઓ પરદેશી નહોતા અને પોતાની જાતને પરદેશી ગણતા નહોતા. એ અસલ રાજકર્તાઓમાં પરદેશીઓ ગણ્યાગાંઠ્યા હતા. એમના રાજ્યોમાં હિંદુ અને મુસ્લિમો બન્ને

સંબંધ પણ જેવો આપણને શીખવવામાં આવે છે એવો કડવો નહોતો. એ સંબંધનો ઇતિહાસ હજી આપણે લખવાનો છે.

મુગલ સમ્રાટોએ તો હિંદુ-મુસ્લિમ સંસ્કારોનો સમન્વય આરંભ્યો હતો, અને એમની સત્તા પણ બંને કોમો પર અવલંબતી હતી. એ તો હિંદુ-મુસ્લિમ એકતાનો કળીર ને ચૈતન્યની પ્રેરણાનો યુગ. એમાં પ્રાંતપ્રાંતે એ સંસ્કાર ને એ ધર્મે મૈત્રી સાધી હતી. પણ તે સમયના ઇતિહાસમાં સમન્વય શોધવા કરતાં વૈમનસ્ય શોધવામાં આપણા ઇતિહાસકારો મોજ માને છે.

ઈ. સ. ૧૬૭૫ થી તો હિંદુઓએ સામ્રાજ્ય સ્થાપવાના પ્રયત્નો આદર્યા. અને પરદેશીઓ અને તેમની વચ્ચે ૧૮૫૭ સુધી વિગ્રહ ચાલ્યો. ઘણાખરા ઇતિહાસોમાં આ સમયનો ઇતિહાસ ઈસ્ટ ઇન્ડિયા કંપનીની કારકિર્દીનું સ્વરૂપ લે છે; આ દેશની પ્રજાનું શું થયું એ જરાય જણાતું નથી. અને ૧૮૫૭ માં પરદેશી સામ્રાજ્ય સ્થાપાયું ત્યારથી પ્રજાનો ઇતિહાસ તો ઇતિહાસ સિવાયના બીજા સાહિત્યમાંથી શોધવો પડે છે.

હિંદુના ઇતિહાસમાં હિંદુનું જ દૃષ્ટિબિંદુ રાખવું જોઈએ એ સૂત્ર આપણા લેખકોના ધ્યાનમાં નથી.

* ૬ *

હિન્દના ખરા ઇતિહાસકારને નવા સિદ્ધાંતો શીખવા પડશે. જે સાધનો મળતાં હોય તેના તરફ પહેલાં ધ્યાન આપવું પડશે. પરદેશી સાધનોને ઝીણવટથી તપાસી હિન્દી સાધનની કસોટીએ ચકાવવાં પડશે. પરદેશી સાધનો વધારે મળે છે માટે કોઈ એક પ્રસંગને પ્રમાણ વિનાનું સ્થાન આપતાં અચકાવું પડશે.

આપણા ઇતિહાસોમાં યુગો પાડવામાં આવે છે એ પણ અસ્વાભાવિક હોય છે. રાજકુલ બદલાય તેથી યુગ નથી બદલાતો. યુગ તો કાલનો એક વિભાગ છે. નવાં બળો ને નવી પરિસ્થિતિને લીધે યુગ જન્મે છે. એ પ્રચલે ત્યાં સુધી તે જ બળો ને પરિસ્થિતિની અસર પહોંચે છે. અને જ્યારે તેમની અસર નષ્ટ થાય અને નવાં બળો ઉદ્ભવે ત્યારે તે સંકેલાઈ જાય છે. એ યુગના દૂકડા કરે ઇતિહાસકારની દૃષ્ટિ અંધારી બને છે.

આપણા ઇતિહાસના એવા યુગો સહેલાઈથી પાડી શકાય.

પહેલો યુગ આર્યોના વિજયથી અને હિન્દી સંસ્કારના જન્મથી શરૂ થાય છે. દિવોદાસથી જનમેજય પારિક્ષિત સુધી એ ગણી શકાય.

બીજો યુગ શિશુનાગે (ઈ. પૂ. ૭૦૦) મગધમાં પહેલું હિન્દી સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું ત્યારથી શરૂ થઈ એ સામ્રાજ્ય ઈ. પૂ. ૧૪૯ માં પુખ્તમિત્ર પછી ક્ષીણ થઈ ગયું ત્યાં સુધી વિસ્તરે છે. આખા દેશની વ્યવસ્થા આ યુગમાં થઈ.

ત્રીજો યુગ આંતરરાષ્ટ્રીય સમાગમનો અને સાંસ્કારિક વિસ્તારનો. તે ઈ. પૂ. ૧૫૦ થી શરૂ થાય છે અને ઈ. સ. ૩૦૦ ના અરસામાં ચંદ્રગુપ્તે ગુપ્ત સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું ત્યારે આથમે છે.

ચોથો યુગ હિન્દનો સુવર્ણયુગ છે. ખ્રીષ્ટુ એમાં હિન્દી સામ્રાજ્યની કથા છે. ઈ. સ. ૩૦૦ થી ૬૫૦ સુધી તે પ્રચલે છે. એમાં હિન્દી શક્તિ ને સંસ્કારનો મધ્યાહ્ન નજરે ચઢે છે.

પાંચમો યુગ ૬૫૦ માં, એટલે શ્રીહર્ષના અવસાન પછી શરૂ થાય છે ને ૧૧૮૬ માં, મહમૂદ ઘોરીનાં આક્રમણ શરૂ થયાં ત્યાં સુધી, પ્રવર્તે છે. મધ્યસ્થ સામ્રાજ્યનો અભાવ, પ્રાંતીય અસ્મિતાનો ઉદય અને પ્રાંતીય રાજ્યોના સંઘર્ષણોથી સુવર્ણયુગનાં બળો જુદાં સ્વરૂપ લે છે ને પરિસ્થિતિમાં ફેરફાર કરે છે. પણ સાંસ્કારિક એકતાનતા વધે છે.

છઠ્ઠો યુગ ૧૧૮૬ થી ૧૪૦૦ સુધીનો. એ પ્રતિરોધ-કાલ છે. કાન્હડે પ્રબંધમાં એનું અદ્ભુત ચિત્ર છે. એમાં જૂનાં બળોનો અને નવી થટનાનો ઉદય જોવામાં આવે છે.

સાતમો યુગ ઈ. સ. ૧૪૦૦ થી ૧૭૦૦ સુધી વિસ્તરે છે. એ હિન્દુ-મુસ્લિમના સહકાર પર રચાયેલા મુગલ સામ્રાજ્યની જાહોજલાલીનો સમય છે. સાંસ્કારિક પુનર્થટના પણ આ જ યુગમાં. ભક્તિ કે પ્રાંતીય સાહિત્યોનો ઉદય પણ આ જ યુગમાં. રાજાકીય બળોને નાના ક્ષેત્રોમાં અલગ રાખી સાંસ્કારિક ક્ષેત્રનો સફળ વિકાસ લોકોએ આ જ યુગમાં સાધ્યો.

સાતમો યુગ ૧૭૦૦ થી ૧૮૫૭ સુધીનો છે. એ અંધાધુધીનો સમય. એનું મુખ્ય વસ્તુ તો હિન્દુ અને અંગ્રેજો વચ્ચે હિન્દનાં સામ્રાજ્ય માટે જે વિગ્રહ થયો તે છે. ૧૬૭૪ માં શીવાજી ગાદીનશીન થયા. ૧૬૭૫ માં ગુરુ ગોવિંદસિંહે ખાલસા સ્થાપ્યું. ૧૬૮૧ માં રજપૂતો મુગલ સામ્રાજ્યના વિરોધી થયા ત્યારથી હિન્દુ સામ્રાજ્ય સ્થાપવાના પ્રયત્નો થયા, અને ૧૮૫૭ માં તે નિષ્ફળ ગયા.

આઠમો યુગ ૧૮૫૭ થી અત્યાર સુધીનો; એ છેલ્લો યુગ. પરદેશી સત્તાને બળે પ્રસરેલી આંતર-શાંતિ, પરાધીનતા, સંસ્કાર-સંઘર્ષણ અને રાષ્ટ્રવના ઉદયનો યુગ.

આ દરેક યુગમાં સામુદાયિક પ્રવૃત્તિ હતી. એ પ્રવૃત્તિ પાછળ એકાગ્ર અનેલી સામુદાયિક ઇચ્છાશક્તિ હતી, જેને પ્રતાપે સામુદાયિક અવસ્થા રચાઈ ને સર્વવ્યાપી સંસ્થાઓ ઊભી થઈ. અને યુગેયુગે મૂલ્યો ઉઠ્ઠ્યાં ને પ્રેરણા વડે જીવન ઉત્કૃષ્ટ કરી ગયાં.

આ બધાની કથા ક્યારે લખાશે? ભારતીની આવી આત્મકથા ક્યારે આપણાં બાળકોની કલ્પના પોષશે? તેણે દીધેલી પ્રેરણાથી ક્યારે આપણી દૃષ્ટિ નિર્મલ બનશે? પરદેશીઓના દૃષ્ટિવિકારથી આપણું ઇતિહાસ-સાહિત્ય વિમુક્ત થશે ત્યારે તે માના દૂધસમું જીવનદાતા થશે. ત્યારે આપણા પૂર્વજો વિશેના સાહાનુભૂતિપૂર્ણ જ્ઞાનથી આપણું આત્મજ્ઞાન વિશુદ્ધ ને સમૃદ્ધ થશે. ત્યારે આપણા ઇતિહાસનાં પુસ્તકોમાંથી તરી આવશે સાગરકન્યા સમી ભારતમાતા -યુગે યુગે ઉજ્જવલ, પ્રેરણાના પયથી બાવીને પોષતી, થડતી ને સુવર્ણકાન્તિ કરતી.

ગ્રન્થાવલોકન

અકલંકગ્રન્થત્રયમ્—સંપાદક, ન્યાયાચાર્ય પં. મહેન્દ્રકુમાર શાસ્ત્રી

[પ્રકા. સિંધી જૈન ગ્રન્થમાલા—પૃષ્ઠ ૬+૭+૧૧૬+૧૮૨+૬૦ કિંમત રૂ. પાંચ]

*

આર્યસંસ્કૃતિના સુરેખ ખ્યાલ અને ઉચિત મૂલ્યાંકન માટે જૈન અને બૌદ્ધ વાસ્તવ્યનો તલસ્પર્શી અભ્યાસ આવશ્યક છે એ સત્ય હવે સ્વીકારાવા અને સમજાવા લાગ્યું છે. એના ફલસ્વરૂપ, અનેકાનેક ગ્રંથમાલાઓ સ્થપાઈ છે જેમાં સિંધી જૈન ગ્રંથમાલા, માણિક્યંદ્ર દિગંબર જૈન ગ્રંથમાલા, પરમશ્રુત પ્રભાવક મંડળ, કારંભ જૈન સીરીઝ અને પાલી ટેક્સ્ટ સોસાયટી મુખ્ય છે. મુનિશ્રી જિનવિજયજી, પંડિત પ્રેમી અને પં. જીગલકિશોરજીએ ઇતિહાસની ગંભીર ગવેષણા અને નિષ્પક્ષ સંશોધન કરી, પંડિત સુખલાલજી, પં. મહેન્દ્રકુમારજી અને પં. દલસુખભાઈએ જૈન તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક પાંડિત્યપૂર્ણ સંપાદન કરી, અને પં. બેચરદાસજી, પ્રો. ડૉ. એ. એન. ઉપાધ્યે અને પ્રો. હિરાલાલ જૈને, જૈનસાહિત્યના અપ્રકટ ગ્રંથોનું સૂક્ષ્મ દ્રષ્ટિથી—તુલના-પૂર્વક—વિદ્વત્તાયુક્ત સંપાદન કરી, તેમ જ પં. બેચરદાસજીએ વ્યાકરણ લખી, પં. હરખોવિદાસે પ્રાકૃત કોષ રચી અને પં. લાલચંદ્રજીએ અપભ્રંશ કાવ્યત્રયી જેવા ગ્રંથોનું સંપાદન કરી સાહિત્યપ્રિય જનતા ઉપર જે ઉપકાર કર્યો છે તે વસ્તુતઃ અત્યંત પ્રશંસનીય છે.

સિંધી જૈન ગ્રંથમાલાના પ્રબંધચિંતામણ્યાદિ, માણિક્યંદ્ર દિગંબર જૈન ગ્રંથમાલાના વરાંગચરિત, પરમશ્રુત પ્રભાવક મંડળના પ્રવચનસાર, કારંભ જૈન સીરીઝના કરકંડુચરિતિ વગેરે ગ્રંથોએ જૈન સંસ્કૃતિને સમગ્રપણે સમજવાની એક જૂદી જ અને જરૂરની દિશા ખોલી છે એ હવે લાગ્યે જ કહેવાની જરૂર હોય.

શ્રીમદ્ બૃહ અકલંકદેવની ત્રણ અપૂર્વ કૃતિઓના સંગ્રહરૂપ પ્રસ્તુત ગ્રંથ “અકલંકગ્રંથત્રયમ્” સિંધી જૈન ગ્રંથમાલાનું જાનવલ્યમાન, બહુમુલું ખારમું મણિ છે. “અકલંકગ્રંથત્રયમ્” એટલે લઘીયસ્ત્રયમ્, ન્યાયવિનિશ્ચય અને પ્રમાણસંગ્રહ. સિંધી જૈન ગ્રંથમાલાના બહુશ્રુત સંચાલક શ્રી મુનિ જિનવિજયજીનું પ્રાસ્તાવિક, પાંડિત્યની સાક્ષાત્ મૂર્તિ પ્રજ્ઞાચક્ષુ પં. સુખલાલજીનું પ્રાકૃત્યન, ગ્રંથ—મણિના પ્રકાશને સર્વવ્યાપી સર્વલોચ્ય બનાવે છે. ગ્રંથસમ્પાદકની પાંડિત્યથી છલબલતી પ્રસ્તાવના, સંસ્કૃત ભાષામાં લખેલાં તાત્પર્ય, ઐતિહ્ય અને તુલનાયુક્ત ટિપ્પણો અને નવ પારશિ-દ્રોમાં ગ્રંથકાર અને ગ્રંથ વિષે જે કાંઈ કહેવા જેવું છે તે બધું આવી જાય છે.

“લઘીયસ્ત્રય” માં ૭૮ ગાથા છે અને પ્રમાણપ્રવેશ, નયપ્રવેશ અને પ્રવચન-પ્રવેશ એવા ત્રણ પ્રવેશો છે. “ન્યાયવિનિશ્ચય” માં ૪૮૦ ગાથાઓ છે. તથા પ્રત્યક્ષ પ્રસ્તાવ, અનુમાન પ્રસ્તાવ, અને પ્રવચન પ્રસ્તાવ એવા ત્રણ પ્રસ્તાવો છે. “પ્રમાણ-સંગ્રહ” નવ પ્રસ્તાવમાં વિલક્ષ ૮૭ ગાથાનો બનેલો પ્રકરણગ્રંથ છે. પ્રસ્તુત ગ્રંથ-

મયમાં લઘીયસ્ત્રય અકલંકદેવની પ્રથમ કૃતિ છે અને પ્રમાણસંગ્રહ અંતિમ કૃતિ છે. લઘીયસ્ત્રયમાં પાંડિત્યપ્રવાહ ધીરો ચાલે છે જે પ્રમાણસંગ્રહમાં ગંભીર અને પ્રોઢ બને છે. અકલંકદેવનાં વાક્યવિન્યાસ અને પ્રતિપાદનશૈલી એટલાં દુર્બોધ અને જટિલ છે કે સિદ્ધહરત ન્યાયશાસ્ત્રમર્મજ્ઞ પણ ટીકાડૂપી આલંબન વિના સીધી રીતે તો પ્રવેશ જ ન કરી શકે. સ્વોપસૃષ્ટિયુક્ત ૭૮ ગાથાના બનેલા નાનકડા લઘીયસ્ત્રય ઉપર પ્રભાચંદ્રાચાર્યને અર્થસ્ફોટ માટે ૧૮ હજાર શ્લોકપ્રમાણ મહાકાવ્ય ટીકા લખવી પડી હતી એ જ વસ્તુ અકલંકદેવની સંસ્કૃત વ્યુત્પત્તિ, ન્યાયશાસ્ત્રપારંગતતા અને અબ્બેડ પ્રતિભા બતાવવા પૂરતી છે. ટુંકામાં, એમના ગ્રંથોનાં શાબ્દિક અને આર્થિક શિલાધાર ઉપર ઉત્તરકાલીન આચાર્યોએ જૈનન્યાયનો મહાપ્રસાદ કર્યો હોય એમ જણાય છે.

આવા પ્રકાંડ વિદ્વાન અકલંકદેવની જીવનગાથા એમણે કે એમની પછી તરત જ થએલા કોઈ આચાર્યે લખી નથી એ અત્યંત ખેદજનક છે. એમના જીવન, કવન, દેશ અને સમય બાજુવા જે કાંઈ સાધન આપણી પાસે ઉપલબ્ધ છે તેમાં પ્રભાચંદ્રાચાર્ય-કૃત કથાકોશ અને નેમિચંદ્રાચાર્યકૃત આરાધનાકથાકોશ મુખ્ય છે. ઉક્ત ગ્રંથાનુસાર તેઓ માન્યખેટના રાજા શુભતુંગના મંત્રી પુરુષોત્તમના જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતા. તત્ત્વાર્થ રાજવાર્તિકના પ્રથમ અધ્યાયસ્થ અંતિમ શ્લોકાનુસાર તો તેઓ લઘુહવ્વ રાજના જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતા એમ નીકળી આવે છે. અકલંક દેવનો સમય, નિષ્પક્ષ પર્યાલોચના અને પરામર્શ પછી સંપાદક મહાશયે ૭૨૦ ઈ. સ. થી ૭૮૦ ઈ. સ. સુધીનો નિયત કર્યો છે તે અમને લગભગ મંજૂર છે. પણ આ સમય નક્કી કરતી વખતે જિનદાસ-અણિ મહત્તરના નંદીચૂર્ણિકર્તૃત્વના સંબંધમાં સંપાદકે પ્રસ્તાવનામાં (પૃષ્ઠ ૧૫) કરેલ વિધાન અમને ચાલ્યું નથી. અમે તો ગ્રંથમાલાના સંચાલક મહોદયે કરેલ પ્રાસ્તાવિક ગત (પૃષ્ઠ ૪-૫) સપ્રમાણ નિદર્શન સાથે સર્વથા સંમત છીએ. નિશીથચૂર્ણિ, નંદી-ચૂર્ણિ, અને આવશ્યકચૂર્ણિના કર્તા જિનદાસગણિ મહત્તર જ છે. નિશીથચૂર્ણિમાં આવતો સિદ્ધિવિનિશ્ચયવાળો ઉલ્લેખ અકલંકદેવને નિશીથચૂર્ણિકારના પૂરોગામી ઠરાવે છે અને તેથી કથાકોશગત ઉલ્લેખ તથા મહિષેષુ પ્રશસ્તિગત ઉલ્લેખને તથા બીજી બાબતોને ઘટાવવામાં પૂરી આપત્તિ આવે છે એમ સંપાદક માને છે. જો કે એ આપ-ત્તિઓને સંચાલક મહાશય પ્રાસ્તાવિકમાં જે રીતે ટાળવા પ્રયાસ કરે છે તે રીતે તે આપત્તિએ જરૂર ટાળી શકાય.

અમારું આ દ્રઢપણે માનવું છે કે પુષ્પદંતની ગ્રંથત્રયી આ બાબતમાં જરૂર નિર્ણાયક પ્રકાશ નાખી શકે. પુરાણપુરુષોને યાદ કરતી વખતે મહાપુરાણમાં પુષ્પદંત કવિએ અકલંકને પહેલા યાદ કર્યા છે આ અકલંક તે પ્રસ્તુત લઘીયસ્ત્રયાદિના રચયિતા અકલંકદેવ જ છે એ નિર્વિવાદ છે. કૃષ્ણરાજ ત્રીભના મહામાત્ર ભરતની પ્રેરણા અને પ્રોત્સાહનથી પુષ્પદંતે મહાપુરાણનું નિર્માણ કર્યું હતું. ભરતના અવસાન પછી તેના ત્રીભ પુત્ર નએ પણ કવિને ઉચિત સન્માન આપી ‘જસહરચરિઉ’ રચાવ્યું હતું. કૃષ્ણ ત્રીભના તુડીગ, શુભતુંગરાય અને વલ્લભનૃપ વગેરે ઉપનામો હતા. મહાપુરાણની ૪૫ સંધિમાં ભરતના વંશને “મહામાત્રાદ્વવંશઃ” તરીકે ઓળખાવે છે. ભરતના

પિતાનું નામ “ઐયણ” અને પિતામહનું નામ “અબરથ” હતું. ઉપરાંત ભરતનું ગોત્ર કૌંડિન્ય હતું. આ બધા ઉલ્લેખો મહાપુરાણમાં છે. હરિવંશપુરાણની પ્રશસ્તિમાં પણ કૃષ્ણ પહેલાના પુત્રને જિનસેન શ્રી વલ્લભનૃપના ઉપનામથી ઓળખાવે છે (પાતીન્દ્રાયુધનામ્નિ કૃષ્ણનૃપતૌ શ્રીવલ્લભે દક્ષિણામ્) શ્રવણ બેલગોલા ઇન્સ્ક્રીપ્શન નં. ૬૭ પ્રમાણે અકલંકદેવ સાહસતુંગના સમકાલીન સિદ્ધ થાય છે. પીટર્સન્સ રીપોર્ટ નં. ૨, પૃ. ૭૯ અનુસાર કૃષ્ણ પહેલાના તેઓ પુત્ર હતા એમ ઠરે છે. સાહસતુંગ, શુભતુંગ, વલ્લભ વગેરે રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓના સામાન્ય બિરુદો હશે? અને સાહસતુંગ તે જ દંતિદૂર્ગ દ્વિતીય હશે? અને કૃષ્ણ પહેલો અને લઘુહવ્વ એકવ્યક્તિસૂચક નામો હશે? વળી કથાકોશના આધારે તો તેઓ શુભતુંગ રાજાના મંત્રીના જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતા. આ બધા ઉપરથી એટલું કાંઈક જણાય છે—જે કે અસ્પષ્ટપણે—કે અકલંક ચાહે રાજપુત હો કે મંત્રીપુત્ર હો કે બંને હો—રાષ્ટ્રકૂટ વંશીય રાજા દંતિદૂર્ગ દ્વિતીય તથા કૃષ્ણ પહેલાના સમકાલીન હોવા બેધએ. કૃષ્ણરાજ પ્રથમ લગભગ—ઈ. સ. ૭૫૬ માં ગાદી ઉપર હતો. આ રીતે સંપાદકમહાશયે અકલંકનો નિયત કરેલો સમય (ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ ઈ. સ.) ઠીક લાગે છે. પુષ્પદંતના મહાપુરાણમાં વર્ણવેલ ભરત મંત્રીના કુળમાં પણ અકલંક થયા હોય એમ પણ બની આવે—સાહસતુંગ અને શુભતુંગ એ બંને બિરુદો દંતિદૂર્ગ દ્વિતીયના પણ હોવા સંભવ છે. કારણ તે સાહસિક તેમ જ શુભશીળ હતો. કૃષ્ણરાજ પ્રથમને પોતે ગાદી ઉપર નાની જ વયે આવેલો તેથી મંત્રીપદે મૂક્યા હોય એ સંભવિત લાગે છે. કર્ણાટકમાં “હવ્વ” બાપાના અર્થમાં વપરાય જ છે એ રીતે બેતાં “લઘુહવ્વ” એટલે નાના બાપા અર્થાત્ કાકા એ અર્થ વિશેષ ઉપયુક્ત દેખાય છે. અને દંતિદૂર્ગ દ્વિતીય મૃત્યુબાદ કૃષ્ણરાજ પ્રથમ ગાદીએ આવ્યો હતો અને રાજધિરાજનું બિરુદ પણ મેળવ્યું હતું. અર્થાત્ તે “નૃપતિવર” થયો હતો. એટલે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ એ જ લઘુહવ્વ અને એ જ નૃપતિવર. તેમના પુત્ર તે અકલંક, કૃષ્ણરાજ દંતિદૂર્ગના મંત્રી હતા તેથી અકલંક મંત્રીપુત્ર પણ સિદ્ધ થઈ શકે. આ રીતે તપાસતાં પ્રશસ્તિગત ઉલ્લેખ, કથાકોશગત ઉલ્લેખ, પીટર્સનના બીજા રીપોર્ટવાળી બાબત, રાજવાર્તિક ગત શ્લોક અને અકલંકરચિત ગ્રંથોનું અંતરંગ પરીક્ષણ વગેરે બધી બાબતનો સુમેળ સાધી શકાય. રાજવાર્તિકગત શ્લોકના અર્થની બાબતમાં અમે સંપાદક મહાશયથી ઉપર્યુક્ત રીતે જુદા પડીએ છીએ. જે કે એક જ સમય—નિર્ણય ઉપર આવીએ છીએ. આ જ વિચારસરણી ઉપર અવલંબિત અકલંકદેવના સમય-નિર્ણય વિષે એક ટુંકો લેખ આ પત્રના આવતા અંકમાં પ્રસિદ્ધ કરવા માગીએ છીએ જે જિજ્ઞાસુએ બેઠી લેવો.

સંપાદકમહાશયે ટિપ્પણો હિંદીમાં લખ્યા હોત તો તે વિશેષ આવકારદાયક થઈ પડત. સંસ્કૃતભાષાની સ્વાભાવિક જટિલતા દૂર કરવા માટે ભાષાનું અવલંબન હાલના જમાના માટે લગભગ અનિવાર્ય છે. ટિપ્પણો બેતાં સંપાદકમહાશયે લીધેલ શ્રમની ખરી ઝાંખી થાય છે. એકસો પાંસઠ જેટલા ગહન પુસ્તકોનું અવમાહન કરી તુલનાત્મક દૃષ્ટિએ ઐતિહ્ય તથા તાત્પર્યનો યોગ્ય કરાવ્યો છે એ બેતાં અમે સંપાદકમહાશયને ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

અંતમાં જણાવવાનું કે, અકલંકના આ અદ્ભુત ગ્રન્થત્રયને પુનરુજ્જીવિત કરવા માટે ગ્રન્થમાલાના મુખ્ય સંપાદક તથા ગ્રન્થના સંપાદક મહાશયને સહર્ષ અભિનંદન આપીએ છીએ. ગ્રન્થના પાંડિત્ય આગળ પાંચ રૂપીઆની કિંમત નહિવત છે. તર્ક અને ન્યાયશાસ્ત્રના અભ્યાસી માટે આ ગ્રન્થ સંગ્રહણીય છે. કારણ કે એમાં સ્થળે સ્થળે પ્રાચીન અને અર્વાચીન દ્રષ્ટિબિંદુઓનો સમન્વય થયેલો દેખાય છે. ન્યાયશાસ્ત્રની ઉત્પત્તિ અને વિકાસ જાણવા માટે પણ આ ગ્રન્થ એક સર્વાંગસંપૂર્ણ સાધન છે કારણ કે તેમાં ૧૬૫ જેટલા ગ્રન્થોનું નવનીત સંગ્રહવામાં આવ્યું છે. ઇત્યલભ.

અમૃતલાલ સં ગોપાણિ, એમ. એ.

*

પૃથ્વીરાજ રાસામાં એક અષ્ટપાઠવાલી પ્રાકૃત ગાથા

*

પૃથ્વીરાજરાસાના સમય અને કર્તૃત્વ વિષે પુરાતત્ત્વવેત્તાઓમાં કેટલોક પ્રબળ મતભેદ ચાલ્યો આવે છે. કર્નલ ટૉડ જેવા કેટલાક જૂની પેઢીના વિદ્વાનો એને એક વિશ્વસનીય ઐતિહાસિક કાવ્ય તરીકે માનતા હતા; પણ પાછળથી ડૉં બ્યુહલર જેવાએ એની પ્રામાણિકતા વિષે ભારે શંકા પ્રદર્શિત કરી અને તે અનુસાર બીજા અનેક વિદ્વાનોએ એની આલોચના-પ્રત્યાલોચના કરી, એ એક સત્તરમા સૈકાની અપ્રામાણિક કૃતિ છે એમ ઘણે ભાગે સિદ્ધ કર્યું. મિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલા માં પુરાતન પ્રબંધ સંગ્રહ નામનો જે, ઐતિહાસિક એવા જૂના સંસ્કૃત પ્રબંધોનો, પ્રકીર્ણ સંગ્રહ અમે પ્રકાશિત કર્યો છે તેમાં પૃથ્વીરાજ રાસામાનાં ૩-૪ પદો ઉપલબ્ધ થઈ આવવાથી એ રાસાની પ્રાચીનતા વિષે અમને કેટલીક નવી સ્ફુરણા મળી આવી અને તેથી એ વિષે કેટલોક વિચારવા લાયક ઊઠાપોઠા અમે એ સંગ્રહની પ્રસ્તાવનામાં કર્યો છે. એ ઉલ્લેખના આધારે કેટલાક અભ્યાસી વિદ્વાનો હવે એ રાસાને બીજી દૃષ્ટિએ વિચારવા અને અવલોકવા પ્રયત્નવાન થયા છે. કલકત્તાથી પ્રકટ થતા 'રાજસ્થાની' નામના પુરાતત્ત્વવિષયક ત્રૈમાસિક પત્રના તાજા અંકોમાં શ્રીયુત દશરથ શર્મા એમ. એ. અને શ્રીયુત અગરચંદ્ર નાહટા વિગેરે વિદ્વાનોના ગવેષણાપૂર્ણ મૌલિક લેખો પ્રકટ થયા છે.

અમે ઉક્ત પુરાતન પ્રબંધ સંગ્રહની પ્રસ્તાવનામાં એ વસ્તુ તરફ વિદ્વાનોનું ધ્યાન ખેંચવા પ્રયત્ન કર્યો હતો કે એ રાસાને જે આકારમાં અને જે સ્વરૂપમાં કાશીની નાગરી પ્રચારિણી સલાએ છપાવ્યો છે તે આકાર અને તે સ્વરૂપમાં તો એ ભ્રષ્ટ જ છે અને અતિશય વિકૃત અને ક્ષેપક રચનાથી પરિપૂર્ણ છે; પરંતુ એમાંનો કેટલોક ભાગ જરૂર પ્રાચીન છે એમાં શંકા નથી. એ રાસાની મૂળ ભાષાને, પાછળના લલિયાઓએ કે ભાટ-ચારણોએ પોતાની ભ્રષ્ટ બોલીમાં એટલી બધી ફેરવી નાંખી છે કે જેથી આપણને

એના અસલીરૂપની વાસ્તવિક ઝાંખી પણ ન થઈ શકે. એના ઉદાહરણરૂપે આજે એક અન્ય પ્રાકૃત ગાથાની અહિં નોંધ આપીએ છીએ, જેથી વિદ્વાનોને એ કથનની યોગ્ય પ્રતીતિ થાય.

પૃથ્વીરાજરાસાની ઉક્ત છાપેલી પ્રતિના પૃષ્ઠ ૧૬૫૨ ઉપર, વિવિધ દેશોમાં ફરવાથી મનુષ્યને શા શા લાભો થાય છે તે બતાવનારી એક ગાથા આપેલી છે, જેનો પાઠ આ પ્રમાણે છે—

ગાથા ॥ દીસૈ વિવિહ ચરિયં જાનિજૈ સજ્જન દુજ્જનં ।

અપ્પાનં ચક લિજૈ હિંદિજૈ તેન પુહવીપ ॥

આ એક પ્રાચીન સુભાષિત—સ્વરૂપની શુદ્ધ પ્રાકૃત ગાથા છે જે અનેક સંસ્કૃત, પ્રાકૃત અને દેશ્યભાષાના જૂના જૈન ગ્રંથોમાં મળી આવે છે. પણ અહિં આ ગાથા એવા વિકૃત રૂપમાં આપવામાં આવી છે કે જેથી આપણને એ એક કોઈ પ્રાચીન ગાથા છે એની કલ્પના પણ બરાબર ન આવી શકે. ખરી રીતે એ ગાથાનો શુદ્ધ પાઠ આ પ્રમાણે છે—

દીસહ વિવિહચરિઅં જાણિજહ સજ્જણદુજ્જણવિસેસો ।

અપ્પાણં ચ કલિજહ હિંદિજહ તેણ પુહવીપ ॥*

રાસામાં દીસહ, જાણિજહ, કલિજહ અને હિંદિજહ એ ક્રિયાપદના જૂના—એટલે અસ્સલ પ્રાકૃત રૂપોને દીસૈ, જાણિજૈ, કલિજૈ, અને હિંદિજૈ એવા અર્વાચીન દેશીભાષાના રૂપોમાં ફેરવી નાંખવામાં આવ્યાં છે. ગાથાનો બીજો પાદ તો ત્રુટિત અને અપૂર્ણ જ છે. ત્રીજો પાદ સંપાદક મહાશયે અપ્પાનં ચક લીજૈ આવી રીતે પદ્મછેદ કરીને છપાવ્યો છે જેથી ચક લિજૈ એનો શો અર્થ બેસાડવો તે માટે મોટી શોધ કરવી પડે તેમ છે.

આ ઉદાહરણ ઉપરથી વિદ્વાનો સમજી શકે કે રાસાની ભાષા કેટલી વિકૃત થએલી છે અને તેના સંશોધનની કેટલી આવશ્યકતા છે.

આજે તો આ એક જ ઉદાહરણ નમૂનારૂપે અમે અહિં આપ્યું છે. ભવિષ્યમાં આ ભાતની કેટલીક ઉપયુક્ત અને વિચારણીય સામગ્રી યથાવસરે અમે આપવા ઇચ્છીએ છીએ.

—સંપાદક

*

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच. डी. नियामक: तथा श्रीमुंगलाल गोपनका अध्यापक, संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र
२. पं० मोतीराम शास्त्री, मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीयुत दुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अध्वैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य
२. श्री ए० डी० पुमालकर, एम ए, एलएल. बी.
श्रीस्वामीनारायण व्याख्याता, भागवत धर्म
३. श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम ए एलएल. बी.
श्रीगोवर्धनदास सुन्दरदास भागवतधर्म रिसर्च फेलो

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणी, एम ए
सर फीकाभाई प्रेमचंद अध्यापक - जैनशास्त्र

भारतीय इतिहास

श्री शिवदत्त ज्ञानी, एम. ए.
श्रीरामेश्वरदास बिडला अध्यापक, भारतीय इतिहास

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या-ग्रन्थावली

*

प्रकाशित

१. विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी



उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत - सं० श्री जिन विजयजी मुनि

प्राचीन गुजराती गद्यनिर्देशन :- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत ,,

ऋग्वेद-संहिता, पष्ठ मण्डल; सं० डॉ० मणिलाल पटेल

नाणपंचमीकहा [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय] } सं० श्री

रिष्टसमुच्चय [दुर्गदेवकृत , ,] { अ० स० गोपाणी

भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

*

BHARATIYA VIDYA (JOURNAL OF THE B. V. B.)

Editor Dr. Manilal Patel Ph. D.

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA

by Dr. Manilal Patel

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT

by Shri Durgashanker K. Shastri

assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS

by Shri A. D. Pusalkar



Printed by Ranchandria Venu Shedge, at the Narmada Sagar Press,
26-28, Kolbhat Street Bombay

Published by DR. MANILAL PATEL, Director, Bharatiya Vidya Bhavan,
Aundh, Bombay

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] मार्च, ई० स० १९४१ * कार्तिक, संवत् १९९७ [अंक ४



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-०

*

वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक]

८८

[इंग्रैजी पाण्मासिक

संपादक मण्डल

श्रीमान् क० मा० मुंशी बी. ए. एलएल. बी.; एम्. एल्. ए.

[निवृत्त गृहमंत्री तथा न्यायसचिव, बंबई गवन्मेन्ट]

दीवान-बहादुर श्री क० मो० झवेरी एम्. ए. एलएल. बी.

[निवृत्त न्यायमूर्ति, बंबई हाईकोर्ट,]

डॉ० आइ. जे. एस्. तारापोरवाला बी. ए. पीएच्. डी. बार-एट्-लॉ

प्रो० व० प्रा० भट्ट एम्. ए. (बंबई); बी. ए. (केंष्टब)

श्री जिन विजयजी मुनि (प्रधान संपादक, हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक)

डॉ० मणिलाल पटेल पीएच्. डी. (प्रधान संपादक, इंग्रैजी पाण्मासिक)

*

निवेदन

संकल्पित योजना प्रमाणे, भारतीय विद्यानो प्रस्तुत अंक गत कार्तिक मासमां प्रकाशित थवो जोईतो हतो, अने आ समये २ जा वर्षनो प्रथम अंक प्रकाशमां आववो अपेक्षित हतो; परंतु मुख्य संपादक श्री मुनि जिन विजयजीनुं स्वान्थ्य छेद्दा केटलाक मासथी वरावर न होवार्थी, तेम ज, तमना हाथे 'मिर्घी जैन ग्रन्थमाला' अने 'भारतीय विद्या ग्रन्थावलि' ना केटलाक महन्वना ग्रन्थोनुं संपादन कार्य पण साथे साथे ज सतत चालू होवार्थी, आ अंक एक चातुर्मास जेटलो समय विलंबथी प्रकाशित थाय छे; अने कदाच आ पछीनो २ जा वर्षनो प्रथम अंक पण ए ज रीते कांईक विलंबथी प्रकट थाय तो ते विषे वाचको दरगुजर करशे एकी आशा छे. आगामी अवसरे एक-बे विशेष अंको प्रकाशित करी अमे एनी पूर्ति करवा प्रयत्न करीशुं.

फाल्गुण पूर्णिमा

वि. सं. १९९७

}

मंत्री, भारतीय विद्या

भारतीय विद्या

वर्ष १]

फाल्गुन, सं० १९९७

[अंक ४]

लेखानुक्रम

- (१) श्रीरामानुजाचार्य अने नेमनो सम्प्रदाय
ले० - श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम. ए., एल. एल. बी ३२५
- (२) लक्ष्मीदामकृत 'अमृतपर्चीसी'
संपा० - श्रीयुत भोगीलाल ज० मांडेसरा ३३८
- (३) ब्रह्मनां आख्यानो
ले० - श्रीयुत प्रेमशंकर ह० भट्ट, एम. ए. ३४५
- (४) अकलंकना समयनिर्णय विषे एक नोंध
ले० - श्रीयुत अमृतलाल स० गोपाणी, एम. ए. ३६२
- (५) संस्कृतना कोश साहित्यमां अमरकोशनुं स्थान
ले० - पं० अंबालाल प्रेमचंद झाह, व्याकरणतीर्थ ३६८
- (६) भागवत विषेनुं चर्चापत्र
ले० - श्रीयुत गोविन्द अरण्यदास ३७४
- (७) व्युत्पत्तिशास्त्र अने संस्कृत-प्राकृत शब्दां
ले० - अध्यापक, पं० श्रीबहेवरदास, जी०. दोशी ३८१
- (८) कंटलीक व्युत्पत्ति विषयक चर्चा
ले० - श्रीयुत हरिवल्लभ भायारणी, बी. ए. ४८३
- (९) प्राचीन देशीभाषाग्रथित प्रकीर्णसाहित्य [संपादकीय] ४९०
- (१०) आपणा स्वरो विषे केंद्रक
ले० - श्रीयुत नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल, ४९१
- (११) खरतरगच्छ गुवावेलीक ऐतिहासिक महत्त्व
ले० - श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा ४९९
- (१२) दो राजस्थानी-हिन्दी गजले [- सम्पादकीय] ४९९
- (१३) पुस्तक परिचय [- संपादकीय] ४३६

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नियमावली

- (अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः, माघ, वैशाख, श्रावण और कार्तिक मासके अन्तमें होता है।
- (आ) 'भारतीय विद्या'में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषामें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।
- (इ) 'भारतीय विद्या'में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्व-ज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।
- (ई) 'भारतीय विद्या'की अनुपूर्विक रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश भाषामें ग्रथित कठ प्रकीर्णक कृतियोंके मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।
- (उ) 'भारतीय विद्या'में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठमें छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेंट दी जायगी।
- (ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकोंको करना होगा।
- (ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि—'भारतीय विद्या'में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जायें वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध और सुव्यवस्थित हों।
- (ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।
- (ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार—'संपादक-भारतीय विद्या' इस नामसे करना चाहिए और ग्राहक वर्गसे होनेके विषयका पत्र-व्यवहार—'मंत्री, भारतीय विद्या भवन' इस नामसे करना चाहिए।
- (औ) 'भारतीय विद्या'—**BHARATIYA VIDYA**—इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो पाण्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४-०-० है।

ભારતીય વિદ્યા ભવન

કાર્યપ્રવૃત્તિ

*

[ભવનના ડિરેક્ટર તરફથી, ભવન કરેલી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓની ટૂંકી સત્રવાર નોંધ]

ચતુર્થ સત્ર, જૂન-અક્ટોબર ૧૯૪૦

મુંબઈના પ્રિન્સ ઓફ વેલ્સ યુજિયમના આઈઓલોજી વિભાગના ક્યુરેટર શ્રી. રણછાડલાલ જ્ઞાની. એમ. એ. અને કલાવિભાગના ક્યુરેટર ડૉ. મોતીચંદ એમ. એ., પીએચ. ડી. એ ભવનના હિંદી ઇનિટિયસ વિભાગના અધ્યક્ષ પ્રાધ્યાપકો યવાનું સ્વીકાર્યું છે.

*

શ્રી જયંત રાવળ એમ. એ. (ફર્સ્ટ ક્લાસ) ને સરકૃત વિભાગના રિસર્ચ ફેલો નિમવામાં આવ્યા હતા; તેમને રાજકોટ કોલેજમાં મુખ્ય સંસ્કૃત પ્રાધ્યાપકની જગા મળતાં, એઓ ભવન છાત્રી ત્યાં બેઠાયા છે.

શ્રી પ્રેમશંકર ડૉ. ભટ્ટ એમ. એ. ને ગુજરાતી રિસર્ચ ફેલો નિમવામાં આવ્યા છે. ભવનના ગુજરાતી વિભાગનું કામ હાલ એમના હાથમાં છે. એ પાને હમણાં પ્રાધ્યાપક શ્રી રા. વિ. પાઠકના હાથ નીચે પીએચ. ડી. માટે પરીક્ષેય વિશિષ્ટ નિબંધ માટેની તૈયારી કરી રહ્યા છે.

જયંત વડે નિમવામાં આવેલા એ નિમ્નકૃત રિસર્ચ સ્કોલરશીપથી શ્રીમુકુન્દરાય ત્રિવેદી બી. એ. આ સત્રના પ્રારંભમાં ભવન છાત્રી ગયા છે. શ્રી હરિવલ્લભ ભાયાળી બી. એ આ વડે એમ. એ. ની પરીક્ષામાં બેઠા.

આ સત્રની શરૂઆતમાં ગુજરાતી વિભાગમાં ત્રણ રિસર્ચ સ્કોલર નિમવામાં આવ્યા છે. બી હરિવલ્લભ પંડ્યા બી. એ, જે આ વડે પરીક્ષામાં બેસવાના છે; શ્રી જિનિત ટ. ટ્રવેરી બી. એ અને માલગજાલ બી. સૂર્યક બી. એ (ફર્સ્ટ ક્લાસ) છે. એ બંનેની પરીક્ષા આવતે વર્ષે છે.

શ્રી ઝંઝારીયા સત્રાન્ત અવકાશમાં આવ્યાં અત્રેના એક ફેચર મરાઠી નાટકનું ભાષાન્તર કર્યું હતું.

*

હંમેશાની જેન આ સત્રમાં પણ ભવનના પ્રાધ્યાપકોએ યુનિવર્સિટીના સરકૃત, અર્ધમાગથી, પ્રાચીન હિંદી સંસ્કૃત અને ગુજરાતીના વર્ગોમાં આપ્યાં હતા.

*

ભવનના આશ્રય હેઠળ આ સત્રમાં સાત જ્ઞાનવૃદ્ધ વ્યાખ્યાના નીચેના કેમે અપાયા હતા.

ભાગવતપુરાણ—ગુજરાતી—(શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી)

આઠવક સંપ્રદાય—અંગ્રેજી—(પ્રો. શ્રી ગોપાળી)

ફક્તિ શામળની સર્વોત્તમ કૃતિ—ગુજરાતી—(શ્રી પ્રેમશંકર ભટ્ટ)

રાકો અને હિંદી સરકૃતિને તેમણે શુ આપ્યું ?—અંગ્રેજીમાં—(શ્રી જ્ઞાની)

શ્રી ચૈતન્ય અને તેમનો સંપ્રદાય—ગુજરાતી—(શ્રી સુશીલા મહેતા)

પુરાણની સૃષ્ટિ વિદ્યા—અંગ્રેજી—(શ્રી પુત્રાલકર)

ઉપનિષદની દષ્ટિએ આત્મા—અંગ્રેજી—(ડૉ. મણિલાલ પટેલ)

*

પં રાત્રભોગ ૩૧ મી ઑગસ્ટથી ભવનની સેવા છોડી ચાલ્યા ગયા હતા.

*

મુંબાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળાએ સંતોષજનક પ્રગતિ કરી હતી. પં. જોતમલાલ ભાનુદત્ત દવે, જ્યોતિષશાસ્ત્રી, જ્યોતિષરત્ન, જ્યોતિષાલંકારની, 'શેઠ નાગરદાસ રઘુનાથદાસ જ્યોતિષ શિક્ષા-પીઠ' એ નામે ચાલતા જ્યોતિષ વિભાગના શિક્ષક તરીકે નિમણંક કરવામાં આવી હતી. એ વિદ્યાર્થીઓ કલકત્તાની બેંગાલ એસોસિયેશનની પરીક્ષામાં બેઠા હતા. બંને સારા ગુણ લાવી ઉત્તીર્ણ થયા છે.

*

૧૭ મી ઓગસ્ટને દિવસે જૂની હિંદુ વિધિપ્રમાણે શ્રાવણીનો ઉત્સવ ભવનના મકાનમાં ઉજવાયો હતો, જે વખતે પ્રમુખશ્રી અને વ્યવસ્થાપક સમિતિના સભ્યો વગેરેએ હાજરી આપી હતી.

*

આચાર્ય ધર્માનંદ કાંસંખીએ સંપાદિત કરેલો 'વિસુદ્ધિમગ્ન' નામનો મહાન બૌદ્ધ ગ્રંથ - ભારતીય વિદ્યા ત્રયાવલિના - પ્રથમ ગ્રંથ તરીકે બહાર પડી ગયો છે. પ્રા. ગોપાણીએ અંગ્રેજી ભાષાન્તર સાથે સંપાદિત કરેલું 'ચિદ્દેવમુચ્ચય' અંગ્રેજી ભારતીય વિદ્યામાં પૂરવણી રૂપે પ્રસિદ્ધ થાય છે. ચાકોળીના 'એસેસ ઓન અપભ્રંશ' નામના મહાન જર્મન ગ્રંથના અંગ્રેજી ભાષાન્તરની છપાવવાની વ્યવસ્થા થઈ ચૂકી છે, અને શ્રીદુર્ગાશંકર શાસ્ત્રીના 'વૈષ્ણવધર્મનો ઇતિહાસ' નું શ્રી મુશીલા મહેતાએ કરેલું અંગ્રેજી ભાષાન્તર યોરો વખતમાં પ્રેસમાં જશે.

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ વતી ભવને એના બે રિપોર્ટો, પરિષદ પ્રમુખોના ભાષણોનો સંગ્રહ અને શ્રીદુર્ગાશંકરના ઐતિહાસિક સંશોધનને લગતા લેખો છપાવી પ્રસિદ્ધ કરવાનું માથે લીધું છે, અને ભવનના રિસર્ચ સ્કોલર શ્રી મોહનલાલ સૂર્યક બી. એ એ કામ સંભાળે છે.

*

પ્રા. શ્રી ગોપાણી - 'જ્ઞાનપંચમી કથા' પર, શ્રી મુશીલા મહેતા 'ભાગવત પુરાણ' પર, નં શ્રી જ્ઞાની 'પુરાણોમાં પ્રતિબિંબિત થતું હિંદુ' પર, પીએચ. ડી માટે પરીક્ષેય વિશિષ્ટનિબંધ લખી રહ્યા છે. આ સૌ ડૉ. મણિલાલ પટેલની દોરવાળી નીચે પોતાના નિબંધ તૈયાર કરે છે. શ્રી પ્રેમશંકર ભટ્ટ - 'ગુજરાતી સાહિત્યમાં આખ્યાનો અને રાસા' એ ઉપર પ્રા. પાઠકની દોરવાળી હેઠળ પોતાનો નિબંધ તૈયાર કરી રહ્યા છે.

*

ભવનના મકાનનો પાયો પ્રમુખ શ્રી કનૈયાલાલા મુનશીના વરદ હસ્તે તા. ૧૪ મી સપ્ટેમ્બરે નંખાયો હતો. આ મકાન આવતા ઓગસ્ટ લગભગ તૈયાર થઈ જવાની વક્રી છે. મકાનનો પાયો નાખવાનો ઉત્સવ બહુ ઠાઠમાઠથી ઉજવાયો હતો, અને અનેક સંભાવિત ગૃહસ્થોએ એમાં હાજરી આપી હતી. આ પ્રસંગે હંસરાજ મોરારજી પબ્લિક સ્કૂલે ભવનના મહેમાનોની સારી સગવડ સાચવી હતી. આ મકાનના મંથગૃહને "હેમચંદ્ર સ્મારક મંદિર" કહેવામાં આવશે અને એનો ખર્ચ એ માટે ખાસ ભલા કરવામાં આવેલા એક લંડાળમાંથી કરવામાં આવશે. ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદની કચેરી કાયમ માટે હેમચંદ્ર સ્મારકમાં લઈ જવામાં આવશે.

*

હીમડીના ઠાકોરસાહેબ શ્રી દૌલતસિંહજીનું અવસાન થતાં વ્યવસ્થાપક સમિતિએ શોકનો ઠરાવ પસાર કર્યો હતો. એઓ ભવનના એક સ્થાપક સભ્ય હતા, અને એમણે ભવનને સહાનુભૂતિ અને દ્રવ્ય, બંને વડે સહાય કરી હતી, એ બાબતનો એ ઠરાવમાં ખાસ ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો હતો.

*

બવનના પ્રમુખશ્રી કનૈયાલાલ મુનશીને અમદાવાદની ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટીએ પોતાના વાર્ષિક વ્યાખ્યાન માટે નિમંત્રણ હતા. એમનું ખૂબ વખણાયેલું એ વ્યાખ્યાન ગયા 'ભારતીય વિદ્યા' વર્ષ ૧ અંક ૩ માં પ્રસિદ્ધ થઈ ચૂક્યું છે.

દિ. ૧૫૦ કૃષ્ણલાલ ઝવેરીએ ૧૭ મી જૂને પૂનામાં મહાભારતની 'ક્રિટિકલ એડિશન' ના ઉદ્ઘોગપર્વની પ્રસિદ્ધિ પ્રસંગે પોતાનું પ્રમુખ તરીકેનું ભાષણ આપ્યું હતું. એમાંનો કેટલાક ભાગ અંગ્રેજી 'ભારતીય વિદ્યા' ના ૨ વર્ષ ૧ અંકમાં છપાયો છે.

૭, ૮, ૯ ઓક્ટોબરે ઉદેપુરમાં મળેલા 'રાજસ્થાની હિંદી સાહિત્ય સન્મેલન'ના પ્રથમ અધિવેશનનું પ્રમુખ સ્થાન મુનિશ્રી જિનવિજયજીએ લીધું હતું.

મુંબઈ યુનિવર્સિટીએ ડૉ. મણિલાલ પટેલને મુંબઈ અનુસ્નાતક સમિતિના સભ્ય નીમ્યા છે.

*

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદનું ચૌદમું અધિવેશન ૧૯૪૦ ની આખરે અંબેરીમાં ભરવાનું પરિષદે ઠરાવ્યું હતું, અને એનું આખું કાર્યાલય બવનના મકાનમાં રાખવામાં આવ્યું હતું. ડૉ. પટેલ એના મંત્રીઓમાંના એક તરીકે એની બધી પ્રવૃત્તિઓ ચલાવતા હતા. પરિષદનું આખું દફતર બવનના રિસર્ચ સ્કોલર શ્રી બિપિન ઝવેરી બી. એ. સંભાળતા હતા.

રાજકીય કારણોને અંગે પરિષદનું અધિવેશન હાલ મુલતવી રહ્યું છે.

*

આ લુ સત્ર

આ સત્રમાં બવનમાંથી બે રિસર્ચ સ્કોલરો - શ્રી હરિવલ્લભ બાયાણી બી. એ. (ફર્સ્ટ ક્લાસ) અને શ્રી હરિલાલ પંડ્યા બી. એ (આનર્સ) અનુક્રમે સંસ્કૃત અને ગુજરાતીના વિષયોમાં એમ. એ. ની પરીક્ષા આપશે.

*

પાઠશાળામાંથી ખુદ પં. ગૌતમલાલ દવે, અને એક વિદ્યાર્થી શ્રી ભાસ્કરરાય દિક્ષિત ઊંચી પરીક્ષાઓ આપવા માટે કાશી તરફ રવાના થઈ ગયા છે. પં. શ્રી ગૌતમલાલ ન્યોતિષ આચાર્યની પ્રથમ ખંડની પરીક્ષામાં બેસશે. જ્યારે ભાસ્કરરાય સાહિત્ય આચાર્ય, પ્રથમ ખંડની પરીક્ષા આપશે. આ ઉપરાંત બીજા ત્રણ વિદ્યાર્થીઓ શ્રી પત્રાલાલ વ્યાસ, શ્રી હરિશંકર શુક્લ અને શ્રી ઉમિયાશંકર ઉપાધ્યાય મુંબઈમાં જ ઉંચી પરીક્ષાઓ આપશે. શ્રી પત્રાલાલ સંપૂર્ણ વ્યાકરણ - મધ્યમા, શ્રી હરિશંકર વ્યાકરણ મધ્યમા, ત્રીજા ખંડની અને ઉમિયાશંકર વ્યાકરણ મધ્યમા પ્રથમ ખંડની પરીક્ષા આપશે.

ઉપર્યુક્ત વિદ્યાર્થીઓ પાઠશાળાના સ્થાયી (resident) વિદ્યાર્થીઓ છે. શ્રી હરિનારાયણ પંડિત પણ સંપૂર્ણ વ્યાકરણ - મધ્યમામાં બેસવાના છે. એઓ બહારથી હમેશાં પાઠશાળામાં ભાણવા આવનાર વિદ્યાર્થી છે. બવન અને પાઠશાળા આ ચારે વિદ્યાર્થીઓ માટે ઉંચી આશા સેવે છે.

*

૧૯ મી નવંમ્બરે બવનનો સ્થાપના દિન - સમારંભ ઉજવાયો હતો, જે પ્રસંગે પ્રમુખ શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી, શ્રી લીલાવતી મુનશી અને અનેક સંભાવિત ગૃહસ્થો હાજર રહ્યા હતા. પ્રમુખશ્રીએ આપેલા ભાષણની બવનના રિસર્ચ સ્કોલર શ્રી બિપિન ઝવેરી બી. એ. એ લીધેલી દંડી નોંધ આ પ્રમાણે છે :-

સદ્ગૃહસ્થો અને સુન્નારીઓ

આપણે આજે અહીં શા માટે ભેગા મળ્યા છીએ એ આપ સૌ જાણો છો. આજે ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપનાને બે વર્ષ પૂરાં થઈ ગઈ છે અને એનો આ ઉત્સવ છે.

હું પહેલેથી જ સ્વપ્રદક્ષા છું. ગુજરાતી વાદ્યમય અને સાહિત્યના ઉત્કર્ષનાં જે સ્વપ્ન મેં સેવેલાં એને પરિણામે સાહિત્ય સંસદને જન્મ આપ્યો. ૧૯૨૨ પછીનાં મારાં એ વર્ષો બહુ વ્યવસાયમય બન્યાં છે. સંસદ સ્થપાઈ, અને એણે ગુજરાત શરૂ કર્યું. એ જન્મ્યું, મર્યું, જન્મ્યું મર્યું, ફરી જન્મ્યું ને ફરી મર્યું. સાહિત્ય પ્રકાશક કંપની સ્થપાઈ, અને હુમ્મ પણ થઈ ગઈ. પણ એ વર્ષોમાં સંસદે અને એના સંચાલકોએ અનેક પ્રવૃત્તિઓ આદરી, અને અનેક આદર્શો પાર પાડ્યા.

સંસદને અનેક સહાયકો અને પરિષદના કાર્યકર્તાઓની હાર્દિક સહાય ન હોત તો મારી એ પ્રવૃત્તિઓને સફળતા ન વરત, એ મારે કબ્જ કરવું જોઈએ.

એ રીતે ઘણા વખતથી મારા સંકલ્પો સિદ્ધ થતા આવ્યા છે. છેલ્લા ચારેક વર્ષોથી તો મારા સંકલ્પોની સિદ્ધિ અનેકગણી વધી ગઈ છે.

અલબત્ત, મારી એ બધી સંકલ્પસિદ્ધિઓ માટે હું જરાય અભિમાન નથી લેતાં. ભક્ત જે નમ્રભાવે પોતાનું સર્વસ્વ કૃષ્ણાર્પણ કરે, તે જ વિનમ્ર ભાવે હું એ સર્વે ઈશ્વરાર્પણ કરું છું, અને એની સહાયતા યાદ કરી અભિમાની નહિ પણ આદ્ર બનું છું.

આર્ય સંસ્કૃતિને જ્યાં પુનર્જન્મ મળે, જ્યાંથી એ પ્રસરે ને ફેલાય ને દિશામાંને ભરી દે, એવું એક આર્ય સંસ્કૃતિકેન્દ્ર સ્થાપવાનાં સ્વપ્ન મેં વીસવીસ વરસથી જાણ્યું છે. આજથી બે વર્ષ પૂરાં મારાં એ સ્વપ્નને મૂર્ત સ્વરૂપ લીધું—એ વર્ષ પહેલાં ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપના થઈ.

ભારતીય વિદ્યા ભવન એટલે આજની અને આવતી કાલની આરિએન્ડલ કૉલેજ—આર્ય સંસ્કારથી. બે વર્ષમાં એના એ આદર્શની દિશામાં ભવન ઠીક ઠીક આગળ વધ્યું છે. છતાં, મારી મુરાદ હજી બહુ મોટી છે. મારી ઇચ્છા ભવન સ્થપાયું ત્યારથી એને પોસ્ટ એન્ટ્યુએટ કૉલેજ બનાવવાની રહી છે. મારું એ સ્વપ્ન જે સિદ્ધ થાય તો, સૌ અનુભૂતકોનો અમાં સમાવેશ થાય, અને એ સર્વે આર્યસંસ્કાર ને આર્યવિદ્યાના જ્યોતિર્ધર જેવા થઈ રહે. પણ, સંસ્થામાં એટલો સમાવેશ થઈ શકે એ માટે પૈસાની મદદ જોઈએ. મને આશા છે કે ભવનને આટલા સારા દાનવીરો મળ્યા છે, શ્રી વસંતભાઈ, પ્રતાપકરભાઈ અને નાનાલાલભાઈ જેવાનું એને પીઠબળ છે, એટલે એઓ મન પર લેતાં તો મારું એ સ્વપ્ન પણ સિદ્ધ થશે.

મને લાગે છે કે જતે દહાડે અંધેરી આર્ય વિદ્યાનું કેન્દ્ર થઈ પડશે. ભારતીય વિદ્યા ભવન તો ત્યાં છે જ. પશ્ચિમક સંસ્કૃતિમાં પણ પાંચસો વિદ્યાર્થીઓનો સમાવેશ કરવાની મારી મુરાદ છે, અને કોઈ દાનવીર મળી જશે તો એ પણ બર આવશે. આ ઉપરાંત એ જ સ્થળે કાનજી ખેતરી બાલિકા છાત્રાલય પણ ટૂંક સમયમાં આવી જશે.

હું ઇચ્છુ છું કે કોઈના હૃદયમાં રામ વસે, કાઈ મારી તુંબડીમાં પાંચ લાખ રૂપિયા નાખે, અને ભવનની સાથે આર્ટ્સ કૉલેજ બિના કરવાનું મારું સ્વપ્ન મૂર્તિમત્ત બને.

અને આ પશ્ચિમક સંસ્કૃતિ, આ બાલિકા છાત્રાલય, આ પોસ્ટ એન્ટ્યુએટ હોસ્ટેલ અને સંસ્કૃત પાઠશાળા આર્ય સંસ્કારોની પુનર્ધટના કરશે.

આર્ય સંસ્કૃતિના આદર્શો આજે ભૂલાઈ જવા આવ્યા છે. પાશ્ચાત્ય સંસ્કૃતિનું આક્રમણ એટલું જબરું છે કે આર્ય સંસ્કૃતિ સાચવવાને આવો ઉપાય નહીં કરવામાં આવે તો એક દિવસ એ એની ભીંસમાં કચડાઈ નષ્ટ થઈ જશે. હિંદમાંથી આર્યતા જવા બેઠી છે, જગત્-માંથી એ ચાલી ગઈ છે. દુનિયાની આજની પરિસ્થિતિનો જ વિચાર કરીએ. આજે યુરોપમાં શું ચાલી રહ્યું છે એના તરફ નજર નાંખશો તો મારા આ પ્રયત્નની આવશ્યકતા તમને

સ્પષ્ટ સમજશે. પાશ્વિમાલ્ય દેશો વ્યવસ્થિત વિનાશકતા આદરી બેઠા છે. સ્વાર્થ અને જડ-વાદ એમનો મંત્ર બની બેઠો છે, અને એને અનુસરી એઓ આખી માનવ સંસ્કૃતિનો, સમસ્ત માનવતાનો ખંડ કરી રહ્યા છે.

હિંદનો દાવો છે કે એ માનવતા પિછાને છે. એ કહે છે કે આર્ય સંસ્કૃતિ જગતના પાપ અને દુઃખો નિર્મૂળ કરવા સરખાઈ છે. હિંદનો એ દાવો પૂરવાર કરી બતાવવાનો વખત આજે આવી પહોંચ્યો છે. છ છ હજાર વર્ષ જૂની ભગવાન વેદવ્યાસની સંસ્કૃતિ આજે જગતને જડ-વાદ, સ્વાર્થ અને વિનાશકતાના વમળમાંથી પાણુ નહીં બચાવી શકે ?

છ હજાર વર્ષનો આપણો એ દાવો ને આપણા લાખો સાધુઓની આજ સુધીની સાધનાને મૂર્તિગત કરવાના આર્યસંસ્કૃતિકેન્દ્રની સ્થાપના સિવાય બીજો કોઈ ઉપાય નથી.

હિંદને ભવન માત્ર પચીસ બેખધારીઓ આપશે તો આપણે આપણી એ સંસ્કૃતિને પુનર્જીવિત કરી શકીશું. એ હિંદુસ્તાનના ખૂણ ખૂણામાં ફેલાઈ જશે, અને ત્યાં ભવનના અંગ તરીકે આર્ય ભાવના ફેલાવશે, જે પોતાના સ્વતંત્ર ભવનો - medical foundation જેવાં - સ્થાપી આર્ય સંસ્કૃતિના પરમ મંત્રને વિશ્વવ્યાપી કરશે.

આજે મને સાતસા - આઠસો વર્ષ પહેલાનું હિંદ ને ગુજરાત યાદ આવે છે. ઈ. સ. ૧૧૮૭માં મુસલમાનોએ કરેલા આક્રમણ સામે રાજપૂતાના અને ગુજરાત કેમ ઝૂંઝૂક્યા હતા તેનો ઇતિહાસ મારી આંખ સમક્ષ ખડો થાય છે. બુંદી તે વખતે રાજપૂતાનાના કાશીરૂપ હતું. એ કેન્દ્રમાંથી પ્રેરણા લઈ અને બ્રાહ્મણોએ ગામે ગામ અને નગર નગર પોતાનાં સંસ્કાર-રેફરેન્સો સ્થાપ્યાં હતાં. ત્યારે આર્યસંસ્કૃતિ રક્ષવા માટે રાજાઓ હતા, જેહર માટે તત્પર એવી રાજપૂતાણીઓ હતી; પોતાની સંસ્કૃતિ માટે પ્રાણની પણ પરવા ન કરે એવા સૈન્યો હતાં, આજે આપણે નિરાધાર થઈ ગયા છીએ. એ ચારમાંનું એક પાણુ સાધન આપણી પાસે માંગતું નથી. કાનહડદેના ગારની જેમ, આપણા બ્રાહ્મણો મસ્કાર માટે પ્રાણુ ત્યાગવાની શક્તિ ખોઈ બેઠા છે. કયો બ્રાહ્મણ આજે પ્રાણુ ત્યાગવાને તૈયાર થશે ?

*

એ વૃત્તિની આજે આપણે મસ્કરી કરી રહ્યા છીએ, પણ 'સ્વધર્મે નિધનં શ્રેયઃ' એ ભાવના વિના આપણી મુક્તિ નથી. સંસ્કૃતિમાં કાવ્યમાં કે કલામાં જે એ ભાવનાથી પતિત થશે એનું નૈતિક પતન થશે, જે એ ભાવનાને વળગી રહેશે એ પોતાના ધ્યેયને ફના થઈને પણ પ્રાપ્ત કરશે.

ત્વની આદર્શમયતા સાથે નવી કાર્યદક્ષતા અને વિશાલ દૃષ્ટિનો આપણે સમન્વય સાધવો છે. ભારતીય વિદ્યા ભવન જેવાં સંસ્કૃતિકેન્દ્રો જ એ સમન્વય સાધી આર્યત્વ અને આર્ય ભાવનાઓને ફરી જીવંત કરી શકશે.

*

ગાંધીજીએ વ્યક્તિગત સત્યાગ્રહની ઘોષણા કરતાં પ્રમુખશ્રી કનૈયાલાલ મુનશી અને શુભેચ્છક શ્રીમતી લીલાવતી મુનશીએ જેલ જવાની તૈયારીઓ કરવા માંડી હતી અને એમના અનેક મિત્રો અને આશ્રિત સરથાઓને અનુસરી ભવને પણ એમને મુનિશ્રી જિનવિજયજીના વરદ હસ્તે હારતોરા અને વિદાયમાન આપ્યું હતું.

પાઠશાળાના વિદ્યાર્થીઓના આશીર્વચનોથી એ પ્રસંગ પવિત્ર થઈ રહ્યો હતો. ડિરેક્ટર અને એમના સહકાર્યકર્તાઓ તેમજ સ્કોલરોનો પ્રેન જેઈ શ્રી મુનશી ગળગળા થઈ ગયા હતા, અને એમણે દરેક બેઠે હાથ મિલાવી એમની પાછળ ભવન સંભાળવાની જવાબદારી ન ભૂલવાની વિનંતી કરી હતી.

*

BHĀRATĪYA VIDYĀ

Journal of the Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

[Published twice a Year]

Editor—Manilal Patel, Ph. D. (Marburg)

Vol. II, Part I

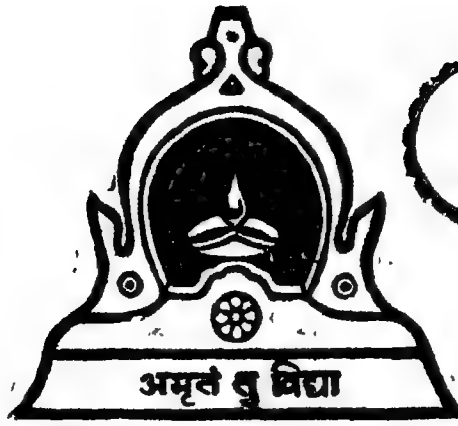
November 1940



CONTENTS

ARTICLES:

ORGANIC PERIODS IN INDIAN HISTORY	K. M. MUNSHI	1
THE POSITION OF LINGUISTIC STUDIES IN INDIA	V. S. SUKTHANKAR	23
ETHIC DISCOURSES OF BHISMA	KRISHNALAL MOHANLAL JHAVERI	36
NĀGĀRJUNA'S CONCEPTION OF THE SUNYA ...	P. T. RAJU	43
GOMMATA	A. N. UPADHYE	48
SCHOLASTIC DISQUISITION IN THE PĀNINIAN SYSTEM OF GRAMMAR...	S. P. CHATURVEDI	59
MS. No. 8771 AT THE S. P. P. LIBRARY, SRINAGAR	P. C. DIVANJI	64
KURUSRAVANA AND KURU-SAMVARANA ...	A. D. PUSALKER	72
KUVALAYAMĀLĀ ...	JINAVIJAYAJI MUNI	77
THE NINTH MANDALA OF THE RĠVEDA	MANILAL PATEL	89
ANCIENT INDIA AND THE OUTER WORLD ...	S. D. GYANI	97
TWO VEDIC VERSES ...	ARYENDRA SHARMA	104
भारतीय विद्या—OUR HINDI-GUJARĀTĪ QUARTERLY		108
REVIEWS: VIDHUSHEKHARA BHATTACHARYA, VASUDEO GOKHALE, D. K. SHASTRI, A. S. GOPANI, A. D. PUSALKER, MANILAL PATEL, JAYANT N. RAWAL, PREMSHANKAR H. BHATT AND	S. D. GYANI	111
NOTES OF THE BHAVAN		124
SUPPLEMENT [RISTASAMUCCAYA]	A. S. GOPANI	15-38



भारतीय विद्या

प्रथम वर्ष, चतुर्थ अंक]



[कार्तिक, वि० सं० १९९७

श्रीरामानुजाचार्य अने तेमनो सम्प्रदाय

ले० - श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्., ए. एलएल्. बी.



जेम गुजरातमां सौथी वधु प्रयार पाभेलो वैष्णव सम्प्रदाय वल्लभाचार्यनो छे, तेम दक्षिणुमां रामानुजाचार्यनो छे. ओ सम्प्रदायनी शर्यात पडेलवडेली दक्षिणुमां द्राविडेशमां - थर्. वैष्णवसम्प्रदायनी पडेली शाखा ते रामानुजाचार्यनो “श्रीसम्प्रदाय” पणु ओमनो मत सम्प्रदायमां परिणुम्यो ते पडेलो ओ मत, द्राविड वैष्णव संतोओ, जे “आलवार”ने नामे ओणाय छे, तेमले उपदेश्यो हतो.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥^१

गीताना आ श्लोक मुण्ण विष्णुओ अधर्ममां अटवाती मानवताने धर्मने खीले यढाववा, मात्र पोते न नही पणु पोताना परिवारमांथी घणुने पृथ्वी पर, अनेक स्थणे, जुटे जुटे सभये अने जुटा जुटा वणुमां जन्म धारणु कराव्यो. तेना परिवार-मांना जे अवतारो तेन आ “आलवारो”.

શ્રીમદ્ભાગવતમાં^૧ કહ્યું છે કે -

કલૌ સ્વલુ ભવિષ્યન્તિ નારાયણપરાયણાઃ ॥
કચિત્ કચિન્ મહારાજ દ્રવિદેષુ ચ મૂરિશઃ ।
તામ્રપર્ણી નદી યત્ર કૃતમાલા પયસ્વિની ॥
કાવેરી ચ મહાપુણ્યા પ્રતીચી ચ મહાનદી ।
યે પિબન્તિ જલં તેષાં મનુજા મનુજેશ્વર ।
પ્રાયો ભક્તા ભગવતિ વાસુદેવેઽમલાશયાઃ ॥

એટલે કે “કલિયુગમાં ક્યાંક ક્યાંક નારાયણપરાયણ મનુષ્યો થશે, પણ દ્રાવિડમાં ઘણા થશે, જ્યાં તામ્રપર્ણી, કૃતમાલા, પયસ્વિની, કાવેરી અને મહાનદી વહે છે. જે મનુષ્યો તે નદીઓનું પાણી પીએ છે, તેઓ ઘણુંખંડે પવિત્ર હૃદયવાળા અને ભગવાન વાસુદેવમાં ભક્તિ રાખનારા હોય છે.”

આ જ નદીઓના પ્રદેશમાં, શ્રીકૃષ્ણસ્વામી આયંગરના મત પ્રમાણે, આલવારોનો જન્મ રામાનુજ પહેલાં થયેલો. ભાગવતનો સમય ઈ. સ. ૮૦૦-૮૫૦નો માન્ય રાખીએ તો દ્રાવિડ દેશમાં સાતમા-આઠમા શતકમાં વૈષ્ણવભક્તિનો પ્રચાર આણુ હોય એમ સહજ પ્રતીત થાય છે.

દ્રાવિડ પરમ્પરા આવા આર વૈષ્ણવ મહાભક્તો ગણાવે છે. તેઓ વર્ણ કે જાતિભેદમાં માનતા ન હતા એમ કહેવામાં જરાપણ વાંધો નથી. કારણ કે આ આરમાંથી બે શૂદ્ર, એક સ્ત્રી, એક ક્ષત્રિય અને એક પનાર જાતિના અનુચિત હતા. એટલે કે ભક્તિનો પરવાનો માત્ર બ્રાહ્મણોનો જ ન હતો. ‘ગુરુપરમ્પરા’ નામથી પ્રસિદ્ધ દ્રાવિડવૈષ્ણવ ભક્તોના કથાગ્રંથો આર આલવારોનાં તામિલ તેમ જ સંસ્કૃત નામ નીચેના ક્રમમાં આપે છે:-

(૧) સરોયોગી (પોઈવિમઈ આલવાર), (૨) જૂતયોગી (જૂતાલવાર), (૩) મહદ્-યોગી કે બ્રાન્તયોગી (પૈય આલવાર), (૪) ભક્તિસાર (તિરૂમલ્લી સઈ આલવાર), (૫) શઠકોપ (નામ આલવાર), (૬) મધુર કવિ, (૭) કુલશેખર, (૮) વિષ્ણુચિત્તા (પેરીય આલવાર), (૯) ગોડા-(આન્ડાલ-વિષ્ણુચિત્તાનાં પુત્રી), (૧૦) ભક્તિ-ત્રિરેણુ (તોંડરપોડી આલવાર), (૧૧) યોગીવાહ (તિરૂપન આલવાર) અને (૧૨) પરાંતક (તિરૂમંગઈ આલવાર).

‘ગુરુપરમ્પરા’ પ્રમાણે સૌથી પહેલા આલવાર-સરોયોગી-ઈ. સ. પૂર્વે ૪૨૦૩માં થયેલા અને છેલ્લા-પરાંતક-ઈ. સ. પૂર્વે ૨૭૦૬માં થઈ ગયા. આ હકીકતમાં ઐતિહાસિક સત્ય નથી એ દેખીતું જ છે. છતાં આ બધા સંતો રામાનુજ પહેલાં થયા એ બાબત તો સંશય નથી. કારણ કે ‘ગુરુપરમ્પરા’ નો જૂનામાં જૂનો ગ્રંથ રામાનુજના સમયમાં જ લખાયો છે અને તેમાં પણ આ બધા આલવારોનાં નામો મળે છે. ડૉ. સર રામકૃષ્ણ ભાંડારકર બે કે રામાનુજ પહેલાં આ સર્વેનું અસ્તિત્વ સ્વીકારવા તૈયાર નથી પણ ગોપીનાથ રાવ અને કૃષ્ણસ્વામી આયંગર જેવા ઇતિહાસવિદો

ડૉ. ભાંડારકરના આ મતને અસત્ય ઠેરવી આલવારો ઈ. સ. સાતમાથી નવમા શતક સુધીમાં થઈ ગયા હોવાનું સિદ્ધ કરે છે. આ સર્વે આલવારો વિષ્ણુના શંખ, ચક્ર, ગદા, નંદક વગેરેના અવતારો હતા એમ મનાય છે. દાખલા તરીકે, સરોયોગી ગદાના, ભૂત-યોગી શંખના, બ્રાન્તયોગી નંદકના અને ભક્તિસાર ચક્રના:—એમ દરેક વિષ્ણુના કોઈક ચિહ્નના અવતાર હતા. તેઓએ તામિલમાં, અને કવચિત્ સંસ્કૃતમાં, ભક્તિરસથી ભરપૂર સ્તોત્રો રચ્યાં છે, અને તેમનામાં ત્રણ દ્રાવિડપ્રબંધના રચનાર હતા. ‘ગુરુ-પરમ્પરામાં તેમને વિષે ઘણી અતિશયોક્તિભરી વાતો છે, જે આપણને ઉપયોગી નથી. આલવારોનો આટલો વૃત્તાન્ત આપણને પ્રસ્તાવના તરીકે જરૂરી હતો, કારણ કે તેમણે ગાયેલી અને ઉપદેશેલી ભક્તિમાં રામાનુજસમ્પ્રદાયનાં બીજ રહેલાં છે.

રામાનુજ પહેલાં બે આચાર્યો થઈ ગયા. તેમાં પહેલા શ્રીનાથમુનિ—(આશરે ઈ. સ. ૮૭૫—૮૦થી ૯૫૦—૬૦). તેમણે એક વખત શકોકોપમુનિના “સહસ્રગીતિ” નામના તામિલ ગ્રન્થના અમુક દશ સ્લોકો એક યાત્રાળુ પાસેથી સાંભળ્યા, અને એ આખોય ગ્રંથ જાણવાની એમને તીવ્ર ઇચ્છા થઈ. શકોકોપના જન્મસ્થાનમાં જઈ ત્યાં રહેતા તેમના શિષ્યો પાસેથી તે ગ્રન્થ હસ્તગત કરવાના મંત્ર શીખ્યા, અને એ સ્લોકોના બાર હજાર જપ કરી સાક્ષાત્ શકોકોપ આગળથી માત્ર તેનો જ નહીં પણ બધા આલવારોના પ્રબંધો મેળવ્યા. વળી તેમણે છૂટાછવાયાં સ્તોત્રો એકઠાં કરી “નાલાયીર પ્રબંધ” નામે એક સંગ્રહ તૈયાર કર્યો. ત્યાંના મંદિરોમાં દ્રાવિડપ્રબંધો ગાવાની પ્રથા શ્રીનાથમુનિથી જ પડી છે. ઐતિહાસિક અગત્યની વાત એ જ છે કે ‘શ્રીસમ્પ્રદાય’ના પહેલા આચાર્ય પણ ભક્તિતત્ત્વના જ્ઞાન માટે આલવારોના જ ઋણી હતા.

નાથમુનિ પછી તેમના પૌત્ર યામુનમુનિ આચાર્યપદે આવ્યા (ઈ. સ. ૯૫૦—૬૦થી ૧૦૪૫). ચોલરાજાના અક્રીયાલ્લાન નામના રાજપુરોહિતને વાદવિવાદમાં હરાવી, રાણી પાસેથી “આલ્વાન્દાર” (મુક્તિ આપનાર)નું બિરૂદ મેળવ્યું. તેમનાં જ્ઞાનના પ્રભાવથી તેમણે રાજ્યમાં મુખ્ય સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું, પણ ઉતરતી અવસ્થામાં તેમણે સંન્યાસ લીધો અને શ્રીરંમમાં હંદગીનો અવશેષ ગાળ્યો.

સિદ્ધિત્રય, આગમપ્રામાણ્ય અને ગીતાર્થસંગ્રહ આ એમના ત્રણ પ્રખ્યાત ગ્રન્થોમાં રામાનુજના વિશિષ્ટાદ્વૈત સિદ્ધાન્તના અંકુર દૃશ્યમાન થાય છે.

રામાનુજનો જન્મ શક સંવત્ ૯૩૯ એટલે કે ઈ. સ. ૧૦૨૭માં શ્રીપેરમ્બુદૂરમાં થયો હતો. તેમના જન્મ સમયે નક્ષત્રના સ્થાન વગેરેનું વર્ણન તેમના સૌથી પહેલાં ચરિત્રલેખક શ્રીઆન્ધપૂણે તેમની ‘ચતિરાજવૈભવમ્’ નામની નાનકડી પુસ્તિકામાં આપ્યું છે. તેઓ વર્ણવે છે કે:—

તતો જગન્મક્કલપિક્કલાન્દે ચૈત્રાપ્પયચુક્કચ્છવપચ્ચમીકે ।

આર્દ્રામિધર્મેણ યુતે ચ વારે વૃહસ્પતેસ્સન્મૃગરાજલગ્ને ॥ ૬ ॥

વેદાન્તસિદ્ધાન્તસમર્થનાય બાહ્યાન્તરબ્રાન્તમતાપનુસ્યૈ ।

શેષાંશકઃ કેશવયજ્ઞ દેવ્યાં તેજોનિધિઃ કશ્ચિદિદાધિરાસીત્ ॥ ૭ ॥

અર્થાત્ “જગન્મંગલકારી પિંગલ સંવત્સરના ચૈત્ર માસમાં શુકલપંચમી અને

ગુરુવારને દિને આર્દ્ર નક્ષત્ર, સિંહલગ્નમાં, વેદાંતસિદ્ધાન્તનાસમર્થનાથે અને બાલમત તથા વૈદિક મતોની શ્રાન્તિ દૂર કરવા માટે, શેષ લગવાનના અંશાવતારરૂપ તથા તેજોના અંબાર એવા રામાનુજનો કેશવસોમયાજી (કિવા આસુરી કેશવ પેરુમાલ) ને ત્યાં (એની લાર્યા ભૂમિપિરાદિયારથી) જન્મ થયો.”

તેનું નામ લક્ષ્મણુ અથવા તામિલમાં ઇલયપેરુમલ પાડવામાં આવ્યું. બાલપણની પ્રાથમિક કેળવણી આપ્યા પછી તેમના પિતાએ તેમને કાંચી કે કોન્જવરમ્માં યાદવ-પ્રકાશ નામે અદ્વૈતવાદી ગુરુપાસે વેદાન્તના અભ્યાસ માટે મોકલ્યા. તેમની હુશાયશુદ્ધિ અને તીવ્ર ગ્રહણશક્તિને લીધે તેઓ પોતાના આચાર્ય યાદવપ્રકાશના પક્ષે ઈર્ષ્યાપાત્ર થઈ પડ્યા. ‘ગુરુપરમ્પરા’માં લખ્યું છે કે એક વખત યાદવપ્રકાશે રામાનુજને ગંગા નદીમાં ડુબાડી દેવાનો ગુપ્ત સંકેત કર્યો. અને એ મતલબથી તેમના બધા શિષ્યો સહિત યાત્રામિષે નીકળ્યા. પણ રામાનુજના પિતરાઈ ભાઈ ગોવિન્દ, જે તેમના અભ્યાસસહચર હતા, તેમણે તેને ચેતવ્યા, અને રામાનુજ ત્યાંથી છટકી ઘેર આવ્યા. ત્યારથી તેમની માતાની સલાહથી તેમણે કોઈની સહાય વિના પોતાનો અભ્યાસ જારી રાખ્યો. કદાચ આ ઐતિહાસિક સત્ય ન હોય છતાં ગુરુ-શિષ્ય વચ્ચે મતાન્તર તથા વિરોધ બહુ થતા એ વાત તો નિઃસંશય છે. કારણકે વૈષ્ણવવૃત્તિના રામાનુજને અદ્વૈતવાદી ગુરુના વ્યાખ્યાનમાં સંતોષ સાંપડ્યો નહીં, અને તેમણે કરેલા શ્રુતિઓના અર્થ તેમને અવારનવાર અનુચિત લાગ્યા કરતા. વળી રામાનુજની અભ્યાસસમાપ્તિ વિષે એવી પણ એક કથા ચાલુ છે કે એક વખત યાદવપ્રકાશે કરેલા એક શ્રુતિના અર્થથી રામાનુજને એટલું તો ખોટું લાગ્યું કે તેમની આંખમાં આંસુ આવી ગયાં. આનું કારણ પૂછતાં રામાનુજે શ્રુતિનો અર્થ કરી બતાવ્યો, જે સાંભળી ગુરુને શિષ્યની ઈર્ષ્યા થઈ અને પોતાની પાઠશાળામાંથી તેને રજા આપી. અહીં રામાનુજનો અભ્યાસકાળ પૂર્ણ થયો અને તેમણે ગૃહસ્થાશ્રમમાં પ્રવેશ કર્યો. ત્યારપછી તેઓ કાંચીમાં જ દેવરાજ મન્દિરના પૂજારી તરીકે રહ્યા. રામાનુજની વધતી જતી કીર્તિ શ્રીરંગમ્માં યામુનમુનિ પાસે પહોંચી અને રામાનુજ તેમનું ખાલી પડેલું સ્થાન સાચવે એવી આશા એ મૃત્યુને આરે બેઠેલા વૃદ્ધ આચાર્યને થવા લાગી. રામાનુજ સાથે છેલ્લા એકવાર છુલ્લે હૃદયે વાત કરવાની ઇચ્છાથી તેમણે પોતાના મુખ્ય શિષ્ય પેરીયાનમ્બીને કાંચી મોકલ્યા. પણ દુર્ભાગ્યે રામાનુજના પહોંચતાં પહેલાં યામુનમુનિએ દેહત્યાગ કર્યો. કહેવાય છે કે આચાર્યના મૃતશરીરે જમણા હાથની ત્રણ આંગળીઓ વાળી તેમની અપૂર્ણ રહેલી ત્રણ ઇચ્છાઓ દર્શાવી. યામુનમુનિના શિષ્યો આગળથી-એક બ્રહ્મસૂત્ર પર સ્વમતનું લાધ્ય, અને શકોપ તથા પરાશરનાં નામ અમર કરવા-આ ત્રણ ઇચ્છાઓ બહી, તે પરિપૂર્ણ કરવાનું પક્ષ લીધું. અને આચાર્યની ઉત્તરક્રિયા કરી પોતે કાંચી પાછા ફર્યા. થોડાં વર્ષો મુઘી તેમણે એકલા જ અભ્યાસ કર્યો પણ પછી યામુનમુનિના શિષ્ય પેરીયાનમ્બીના શિષ્ય થવાનું ઉચિત ધારી, ત્રીસમે કે બત્રીસમે વર્ષે તેમણે તેમની પાસે દીક્ષા લીધી, અને કાંચીમાં રહી તેમની પાસે પ્રબંધોનો અભ્યાસ શરૂ કર્યો. આવામાં આ બંનેની પત્ની વચ્ચે કંઈ વિરોધ ઉત્પન્ન થતાં પેરીયાનમ્બી કાંચી છોડી શ્રીરંગમ્ જઈ રહ્યા.

પોતાની પત્નીનાં અનેક ક્ષુદ્રક કૃત્ત્વોથી કંટાળી, રામાનુજે સંન્યાસ લીધો, અને ‘યતિરાજ’ ને નામે ઓળખાવા લાગ્યા. પછી તેઓ શ્રીરંગમ્ ગયા. ત્યાં તેમના બે શિષ્યો હતા, — એક તેમના ભાણેજ, મુદાલીયાન્ડાન કે દાશરથી સ્વામી અને બીજા કુરૂથ્યાલ્વાન કે કુરૂશ. એક દિવસ રામાનુજને તેમના પ્રથમ ગુરુ યાદવપ્રકાશ સાથે ‘તમમુદ્રા’ ના ઉપયોગ વિષે વાદવિવાદમાં ઉતરવાનો પ્રસંગ આવ્યો, જેમાં યાદવપ્રકાશની સંપૂર્ણ હાર થઈ અને તે ગોવિન્દાચાર્યનું નામ ધારણ કરી રામાનુજના શિષ્ય તરીકે રહ્યા. તેમણે ‘યતિધર્મસમુચ્ચય’ નામનો શ્રીવૈષ્ણવસંન્યાસીઓના ધર્મનો એક મન્થ લખ્યો.

હવે રામાનુજને વૈષ્ણવોના ૧૦૮ પવિત્ર તીર્થસ્થળોની યાત્રા કરવાની ઉત્કણ્ઠા ભળી. દક્ષિણપ્રાંતના લગભગ દરેક મુખ્ય તીર્થસ્થાનમાં તેઓ કર્યા હોવાનું કહેવાય છે. ઉપરાન્ત ‘ગુરુપરમ્પરા’ તો તેઓ કાશ્મીર પોતાના મતનું સ્થાપન તેમ જ પ્રચાર કરવા તેમ જ બાદરાયણના ‘બ્રહ્મસૂત્ર’ પર બોધાયનની વૃત્તિ મેળવવા ગયા હોવાનું જણાવે છે. કારણ પોતે લીધેલી પ્રતિજ્ઞા મુજબ અને તેમની અવસ્થા થતી હોવાથી તે બ્રહ્મસૂત્ર પર લાભ્ય લખવા ખૂબ આતુર હતા. કાશ્મીરથી થોડા સમય માટે તેમણે બોધાયન-વૃત્તિ પ્રાપ્ત કરી, જે દરમિયાનમાં, રામાનુજના બે શિષ્યો, કુરૂથ્યાલ્વાને અને મુદાલીયાન્ડાને તેમની અજબ બહુશક્તિ વડે તેનો મુખપાઠ કરવાનું અતિકઠણ કામ કર્યું. તેમની યાદશક્તિની સહાયથી રામાનુજે ‘શ્રીભાષ્ય’ જેવો મહાન્ ગ્રન્થ જગત્ સમક્ષ ધર્યો. આ પ્રમાણે યામુનાચાર્યને આપેલું પહેલું વચન પાર પડ્યું. પછી પોતાના શિષ્ય કુરૂથ્યાલ્વાનના એક પુત્રનું નામ પરાશર પાડી, તે જ્યારે મોટો થયો ત્યારે તેની પાસે “વિષ્ણુસહસ્રનામ” પર ટીકા લખાવી. આ એમનું બીજું વચન. આ પરાશરભટ્ટ જ રામાનુજના મરણ પછી તેમના માર્ગના આચાર્ય બન્યા. તેમના ત્રીજા વચન માટે શઠકોપમુનિએ કરેલા “તીર્થવાયમોલી” નામના પ્રબંધ પર પીલાન નામના પોતાના એક શિષ્ય પાસે ૬૦૦૦ શ્લોકની ટીકા લખાવી. આમ પરાશર તેમ જ શઠકોપમુનિ, બંનેનાં નામ અમર કર્યાં — કરાવ્યાં.

આચાર્યઋણમાંથી મુક્ત થયા પછી ઉપદેશ કરવામાં તેમ જ શ્રીરંગની સેવામાં રામાનુજ પોતાનો કાળ વ્યતીત કરવા લાગ્યા. એવામાં એમના પર એક મોટી આફત આવી પડી. એ અરસામાં ચોલ રાજાઓ રાજ્ય હતા, જેઓ યુસ્ત શૈવધર્મી હતા અને પોતાની પ્રજા પર શૈવધર્મનો અંગીકાર કરવાની ફરજ પાડતા. આ ચોલ રાજાઓમાં હુલોતુંગ પહેલાએ રામાનુજને પોતાની સલામાં બોલાવવા દૂતો મોકલ્યા. જ્યારે તેઓ શ્રીરંગમ્ પહોંચ્યા ત્યારે રામાનુજ સ્નાનાર્થે ગયા હતા અને કુરૂથ્યાલ્વાને ગુરુની છંદબી બેખમમાં માની રામાનુજનાં કાપાયવસ્ત્ર ધારણ કરી તેને બદલે ગુરુવેષમાં રાજ્ય-સલામાં હાજર થયા. ત્યાં તેને “શિવ કરતાં કોઈ ઉચ્ચતર દેવ નથી” એ અર્થનું એક પત્રક સહી કરવા આપવામાં આવ્યું. કુરૂથ્યાલ્વાને “શિવ કરતાં દ્રોણ^૧ વધુ મોટા છે” એવો જવાબ વાળ્યો. આ ઉદ્ધત જવાબ સાંભળી રાજાએ તેની આંખો ફોડી નખાવી.

૧ “દ્રોણ” શબ્દ આયુર્વેદમાં માપના નામ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. દ્રોણ લગભગ ૧૦૨૪ તોલાનું માપ છે. જ્યારે “શિવ” માપના નામ માટે સંસ્કૃતસાહિત્યમાં અવિદિત છે. કદાચ દાખલમાં પ્રસિદ્ધ હશે.

હુડ્ડથાલ્વાન સાથે પેરીયાનમ્બી પણ હતા, અને એને પણ એ જ સભા ફરમાવવામાં આવી હતી. વૃદ્ધ પેરીયાનમ્બી પાછા ફરતાં રસ્તામાં જ મરણ પામ્યા. હુડ્ડથાલ્વાન ધૈર્ય ધરી કાંચીમાં જ રહ્યા.

બીજી તરફ, રામાનુજે તેમના શિષ્યોની સલાહથી ચોલની રાજધાનીમાંથી લાગી જવાનું નક્કી કર્યું અને ઈ. સ. ૧૦૯૬ માં મહીસૂરની હોઇસાલ રાજધાનીમાં ગયા ને કાવેરીને કાંઠે શાલિયામમાં બાર વર્ષ સુધી વાસ કર્યો. ઈ. સ. ૧૦૯૮ માં હોઇસાલના રાજા બલાલના લાઈ, સીમાડા દેશના હાકેમ, વીઠ્ઠલદેવ (વિઠ્ઠલદેવ) ને પોતાના શિષ્ય કર્યો અને ચાદવાદિમાં તિરૂનારાયણનું મંદિર બંધાવ્યું તથા તિરૂમલસાગર નામે તોષ્ણર પાસે મોટું તલાવ બોદાવ્યું.

થોડા વખત પછી ચોલ રાજા પાઠાના દરદથી મરણ પામ્યો. રામાનુજ શ્રીરંગમ પાછા આવ્યા અને ત્યાં શકોકોપમુનિની પ્રતિમા પધરાવી. તે ઉપરાંત ૪૦૦૦ પ્રબંધોનો સંગ્રહ કરાવ્યો અને બીજા વૈષ્ણવમંદિરોમાં પણ આલવારોની પ્રતિમાઓનું સ્થાપન કર્યું. તિરૂપતિમાં જોવિન્દરાજનું મંદિર બંધાવ્યું.

આવી રીતે, પોતાના મતનું સ્થાપન કરી, હુડ્ડથાલ્વાનના પુત્ર પરાશરની પોતાના વારસ તરીકે નિમણૂક કરી, ૧૨૦ વર્ષનાં લાંબાં અને અતિમહત્વનાં જીવન પછી રામાનુજે ઈ. સ. ૧૧૩૭માં સ્વર્ગવાસ કર્યો. શેષના અવતાર તરીકે પૂજતા આ મહાત્મા આચાર્યની પ્રતિમા દક્ષિણનાં વૈષ્ણવમંદિરોમાં આલવારોની પ્રતિમા સાથે જ બેસાડેલી હોય છે.

તેમના મુખ્ય ગ્રન્થો “વેદાન્તસાર,” “વેદાન્તદીપ,” “વેદાન્તાર્થસંગ્રહ,” “બ્રહ્મ-સૂત્રપરબ્રાહ્મ-” જે “શ્રીભાષ્ય” ને નામે પ્રસિદ્ધ છે, — અને “ગીતાભાષ્ય” ગણાય છે.

હવે આપણે રામાનુજે ઉપદેશેલા વિશિષ્ટાદ્વૈત સિદ્ધાંતનું ટુંકમાં વિવેચન કરીએ.

રામાનુજ પોતાનું લક્ષ્ય જગત ને ઈશ્વરના સંબંધ ઉપર રાખે છે. ઈશ્વર સત્ય છે તેમ સ્વતંત્ર છે, છતાંય દુનિયાના જીવો પણ સત્ય છે; જો કે તેની સત્યતા ઈશ્વર પર અવલંબે છે. જગતની પાછળ કોઈ આધ્યાત્મિક તત્ત્વ, જે માયાથી ભિન્ન છે તેના અસ્તિત્વમાં રામાનુજને અથાગ શ્રદ્ધા છે. તે મુક્ત જીવોના અસ્પષ્ટિત અસ્તિત્વમાં પણ માને છે. ચિત્તતત્ત્વો એટલે કે જીવો તેમ જ અચિત્તતત્ત્વો અર્થાત્ જડમાત્રને પોતાનું સ્વતંત્ર જીવન હોવા છતાં તેઓ બ્રહ્મ નથી, કારણ જ્યારે બ્રહ્મ સદાય અપૂર્ણ-તાથી મુક્ત છે ત્યારે જડમાત્ર ચેતનરહિત, અંધકારમય છે, અને જીવો અજ્ઞાન અને બાધિમાં સડે છે. છતાં તે સર્વેનું એકત્વ સ્વીકારવા રામાનુજ તૈયાર છે. કારણ જીવો તેમજ જડમાત્ર ઈશ્વરના — બ્રહ્મના — શરીરરૂપ છે. એટલે કે તેમનું અસ્તિત્વ તેમ જ વર્તમાન સ્થિતિ સંભવે છે માત્ર એક જ કારણે કે બ્રહ્મ તેમનો આત્મા છે, અંતર્યામી છે. બ્રહ્મથી ભિન્ન તે કંઈ નથી; સ્વભાવથી જીવ તેમજ જડ ઈશ્વરથી જુદાં છે, જો કે તેની સેવા સિવાય, તેનો કે તેના અસ્તિત્વનો હેતુ નથી. આજ રામાનુજનું અદ્વૈત, દ્વૈત નહીં તે, અને તે પણ વિશેષસહિત, કારણ કે તે બહુત્વને સ્વીકારે છે. ઇક્ષિતત્ત્વ જીવ અને જડરૂપી રૂપબદ્ધત્વમાં પરિણમે છે, આ વિશેષ, અને તેથી જ તે વિશિષ્ટાદ્વૈત.

કે ચિદચિદ્વિશિષ્ટાદૈત. ચિદચિદ્વિશિષ્ટ ધર્શતત્ત્વ એ જ બ્રહ્મ, વાસુદેવ, વિષ્ણુ કે નારાયણુ જે કહે છે તે. નારાયણની પ્રાપ્તિ અને ભક્તિ તેમજ પ્રપત્તિથી જીતેલી નારાયણની પ્રસન્નતા તે જીવનનું ધ્યેય.

જગત્ના પદાર્થમાત્રનો પ્રમાણ અને પ્રમેય બેમાં સમાસ થાય છે. રામાનુજ ત્રણ પ્રમાણ સ્વીકારે છે, પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને શબ્દ. પ્રત્યક્ષ દ્વિવિધ છે, સવિકલ્પ તેમજ નિર્વિકલ્પ. યોગિક પ્રત્યક્ષને તેઓ સ્વતંત્ર પ્રમાણમાં ગણતા નથી, કારણ કે બે તે ઇન્દ્રિયો દ્વારા તેનું કર્તવ્ય કરે છે તો તેને ઇન્દ્રિયોથી જુદું પ્રત્યક્ષપ્રમાણ ગણવાની આવશ્યકતા નથી, અને જો તે સર્વ અનુભવથી સ્વતંત્ર હોય તો તે અસત્ય છે.

સામાન્યસિદ્ધાન્ત ઉપરથી પ્રાપ્ત કરેલું જ્ઞાન તે અનુમાન. ઘણુંખરૂં એકાદ દૃષ્ટાન્ત સામાન્યસિદ્ધાન્ત સૂચવે છે. ઘણાં દૃષ્ટાન્તો સંશયનિવારક તરીકે ઉપયોગી છે. તર્ક અને વાસ્તવિક કે અવાસ્તવિક પ્રસંગોના ઉપયોગથી આપણે અનુપયોગી તત્ત્વો દૂર કરી, સામાન્યસિદ્ધાન્ત સ્થાપીએ છીએ. આ જ પ્રમાણે અર્થાપત્તિ અને સંભવ, અનુમાનના પ્રકાર ગણાય છે.

રામાનુજ શ્રુતિ કે શબ્દને પ્રમાણ માને છે. જગતકારણરૂપ પરમતત્ત્વને જાણવા માટે આપણી પાસે એકેય સાધન નથી, સિવાય કે શાસ્ત્રો. બ્રહ્મ નથી પ્રત્યક્ષનો વિષય કે નથી તેનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થતું અનુમાનથી. ઇન્દ્રિયજન્યથી પર વસ્તુઓમાં એક શાસ્ત્રનો જ આધાર છે. બુદ્ધિનો ઉપયોગ શાસ્ત્રાર્થના સમર્થન પૂરતો હોઈ શકે. દુનિયાની સરૂઆત વખતે ઇશ્વરમુખેથી નીકળેલા ઉદ્ધારો-વેદો સનાતન છે અને તેથી પવિત્ર છે, પ્રમાણ છે. તેવી જ રીતે શ્રુતિથી અવિરુદ્ધ સ્મૃતિ ને ઇતિહાસપુરાણનો પણ શબ્દપ્રમાણમાં સમાવેશ થાય છે. તદુપરાંત, પાંચરાત્રઆગમ તેમજ વૈખાનસાગમ પણ ભગવાન વાસુદેવની કૃતિઓ હોઈ પ્રમાણભૂત છે.

હવે પ્રમેયના બે ભેદ છે, દ્રવ્ય અને અદ્રવ્ય. દ્રવ્ય બે જાતનું હોઈ શકે, જડ અને અજડ. જડના વળી અવ્યક્ત કે પ્રકૃતિ અને કાળ એમ બે ભેદ છે. પ્રકૃતિ સાંખ્યમાં વર્ણવેલા ચોવીશ તત્ત્વોની બનેલી છે; કાળ ઉપાધિભેદથી ત્રિવિધ છે.

આ તો થઈ જડની વ્યવસ્થા. અજડના બે ભેદ છે. પરાક (બાહ્ય) અને પ્રત્યક્ષ (આન્તર). બાહ્ય અજડના બે પ્રકાર છે, નિત્યવિભૂતિ એટલે કે કાર્યાકારમાં પરિણામ પામવાની ક્રિયાશક્તિ, અને ધર્મભૂતજ્ઞાન કે બુદ્ધિશક્તિ અથવા જ્ઞાનાકારમાં પરિણામ પામવાની શક્તિ. આન્તર અજડ પણ દ્વિવિધ છે: જીવ અને ઇશ્વર. તેમાં જીવના ત્રણ પ્રકાર છે: બ્રહ્મ, મુક્ત અને નિત્ય. બ્રહ્મ જીવો બે જાતના હોઈ શકે, બુદ્ધિશક્તિ કે ભોગ ભોગવવા ઇચ્છનાર અને મુમુક્ષુ અથવા સંસારમાંથી મુક્તિની અભિલાષા રાખનાર. બુદ્ધિશક્તિ અર્થકામપરાયણ હોય ને ધર્મપરાયણ પણ હોય. ધર્મપરાયણ બુદ્ધિશક્તિઓ વળી બીજા દેવોની આરાધના કરે કાં તો ભગવત્સેવામાં લીન રહે. વળી મુમુક્ષુઓ પણ બે જાતના હોય છે, કેવલ્યપરાયણ અને મોક્ષપરાયણ. મોક્ષપરાયણ મુમુક્ષુઓ કાંતો ભક્ત કે કાંતો પ્રપન્ન હોય. પ્રપન્નમુમુક્ષુ વળી એકાન્તી કે પરમૈકાન્તી હોઈ શકે. પરમૈકાન્તીના પણ બે ભેદ છે-દ્રષ્ટ અને આર્ત (એટલે પરમાત્મા પરના પ્રેમથી દુઃખી). આ પ્રમાણે જીવની શ્રેણી સમાપ્ત થઈ. હવે ઇશ્વરશ્રેણી તરફ દૃષ્ટિપાત કરીએ. ઇશ્વરના

પાંચ વ્યૂહ છે: (૧) પર, (૨) વ્યૂહ, (૩) વિભવ, (૪) અંતર્ધર્મી અને (૫) અર્થા. પર તો એક જ છે. વ્યૂહ ચાર છે: વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રહુમ્મ અને અનિરુદ્ધ. વળી, કેશવ, નારાયણ, માધવ, ગોવિંદ, વિષ્ણુ, મધુસૂદન, ત્રિવિક્રમ, વામન, શ્રીધર, હૃષીકેશ, પદ્મનાભ અને દામોદર, આ બાર ઉપવ્યૂહો છે. મત્સ્ય, કૂર્મ વગેરે વિભવો કે અવતારો અનન્ત છે. અન્તર્ધર્મીરૂપે ઈશ્વર દરેકના શરીરમાં રહે છે અને અર્થાવતારરૂપે શ્રીરંગમ્, વેંકટ વિગેરે મંદિરોની મૂર્તિમાં વિરાજે છે.

હવે, અદ્રવ્ય દશ પ્રકારનું છે: સત્ત્વ, રજસ્, તમસ્, શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગન્ધ, સંયોગ અને શક્તિ.

આ પ્રમાણે રામાનુજમતમાં પદાર્થમાત્રની વ્યવસ્થા થઈ.

સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ વિષે રામાનુજને શું કહેવાનું છે તે હવે જોઈએ. સાંખ્યમતની જેમ વિશિષ્ટાદ્વૈતમતમાં પણ પ્રકૃતિ સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એ ત્રણ ગુણયુક્ત, નિત્ય તેમ જ અક્ષર છે, જે શંકરાચાર્યના અદ્વૈતવાદમાં માયા કે અવિદ્યાને નામે ઓળખાય છે. સાંખ્યની પ્રકૃતિની જેમ આ પ્રકૃતિ સ્વતંત્ર નથી પણ ભગવાનના સંકલ્પથી તેનાં ગુણોમાં વૈષમ્ય ઉત્પન્ન થાય છે, અને તેમાં પ્રકૃતિસૃષ્ટિનો ઉદ્ભવ છે, ત્યારે અવ્યક્ત-માંથી મહત્, મહત્માંથી અહંકાર—જેનાં સાત્ત્વિક, રજસ્ અને તામસ એવા ત્રણ પ્રકાર છે—અને એ ત્રિવિધ અહંકારમાંથી પાંચ ભૂતો, અગિયાર ઇન્દ્રિયો અને પાંચ તન્માત્રાઓ ઉત્પન્ન થાય છે. ઈશ્વરની માયારૂપ પ્રકૃતિ એ સૃષ્ટિનું ઉપાદાનકારણ અને તેનો સંકલ્પ એ નિમિત્તકારણ. આમ ઈશ્વર જ—કેમકે પ્રકૃતિ ઈશ્વરથી સ્વતંત્ર નથી—જગતનું ઉપાદાન તથા નિમિત્તકારણ બન્ને છે. તત્ત્વજ્ઞાનની પરિભાષામાં કહીએ તો સૂક્ષ્મચિત્ અને સૂક્ષ્મ અચિત્ વેષમાં ઉપાદાનકારણ અને સંકલ્પ વેષમાં નિમિત્તકારણ ઈશ્વર છે.

· ઈશ્વરનું સ્વરૂપ:—જગતના કારણરૂપ ઈશ્વરમાં સર્વકલ્યાણભય ગુણો દૃશ્યમાન થાય છે. શંકરના નિર્ગુણ બ્રહ્મ, જે આપણી નિઃસ્વાર્થ ભક્તિ અને મૂક સેવા પ્રત્યે માત્ર થીજી ગયેલી નજરે જોયાં કરે છે, તે રામાનુજના મતે ઈશ્વર નથી. અનંતમાં અંત સમાઈ જાય છે. સ્વમત ભેદ છતાં બ્રહ્મન્ એક છે; ચિત્ અને અચિત્ તેની ક્ષણો માત્ર છે. સત્, ચિત્ અને આનંદ એ ત્રણ ગુણો એને વ્યક્તિત્વ અર્પે છે તેનું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયો પર અવલંબતું નથી. બ્રહ્મન્ સઘળું જાણે છે અને પરમ પુરુષ છે, જ્યારે જીવોનું વ્યક્તિત્વ અપૂર્ણ છે. ઈશ્વરનું વ્યક્તિત્વ સંપૂર્ણ છે કારણ કે જગતના સઘળા અનુભવ તેનામાં સમાય છે, અને કોઈ પણ બાહ્યવસ્તુ પર આધાર રાખતા નથી. વ્યક્તિત્વ માટે આવશ્યક બિલાંશો પણ તેના પોતાનામાં જ રહેલા છે. ઈશ્વરના મુખ્ય ગુણો જ્ઞાન, સત્તા અને કરૂણા છે. આ કરૂણાને લીધે ઈશ્વરે આ સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરી, નિયમો ઠેરવ્યા અને સદા ય સંપૂર્ણતાને શોધતા મનુષ્યને સહાય કરે છે એ પણ કરૂણા જ. આ ગુણો એકબીજાથી બિલ્લ જોવા છતાં, તેઓ એકમાં જ રહેલા છે અને તેના એક-વમાં ભાગ પડાવતા નથી. ઈશ્વરનો તેની સાથેનો સંબંધ સ્વાભાવિક છે, સનાતન છે. ઈશ્વર આ સ્વગુણોનો અને ઈશ્વર પર અવલંબેલી વસ્તુઓના ગુણોનો આધાર છે. ઈશ્વરનું રૂપ દેવી છે, જેનાથી પ્રકૃતિરૂપ જુદું જ છે, અને તે દેવીરૂપ કર્મથી

સંભવ્યું નથી. ઈશ્વર કવચિત્ શરીરી હોવા છતાંય, દુઃખ તેને અડકી શકતું નથી. કેમકે દુઃખનું કારણ કર્મ છે, શારીરત્વ નથી. દુનિયામાં દુષ્ટિએ પડતાં દુઃખ કે વ્યાધિ માટે ઈશ્વર ભેખમદાર નથી. જીવોનાં પૂર્વકર્મો જ તેનો સંભવ શક્ય બનાવે છે.

“જગત્તા કારણરૂપ ઇશતત્ત્વમાં સર્વેશ્વરપણું, સર્વકર્મથી આરાધ્યપણું, સર્વફલપ્રદપણું અને સર્વકાર્યોનું ઉત્પાદકપણું છે. તે અનન્ત છે, વિભુ છે અને એનામાં જ્ઞાન, શક્તિ, બલ, ઐશ્વર્ય, વીર્ય, તેજ, સૌશીલ્ય, વાત્સલ્ય, આર્જવ, સૌહાર્દ, સ્થૈર્ય, સામ્ય, કાર્ણવ્ય, માધુર્ય, ગાંભીર્ય, ઔદાર્ય, શૌર્ય, પરાક્રમ વિગેરે અનન્ત કલ્યાણગુણો નિરતિશય રૂપમાં રહ્યા છે. જ્ઞાન એટલે સર્વનો સાક્ષાત્કાર અને શક્તિ એટલે અઘટિત ઘટનાનું સામર્થ્ય.” ઉપર વર્ણવેલા ગુણો ઈશ્વરનું સત્ય સ્વરૂપ સમજાવે છે. એમાંના કેટલાક સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ માટે યોગ્ય છે તો કેટલાક એને વિશ્વસનીય આશ્રયસ્થાન તરીકે સિદ્ધ કરે છે. સર્વકલ્યાણમય દિવ્યગુણોના અધિષ્ઠાન આ ઈશ્વરને પાંચ રૂપે ગણાવેલા છે.

પહેલું પર રૂપ:-અસંખ્ય દ્વારપાલો યુક્ત, ધર્મ વગેરે આઠ પાયાવાળા સિંહાસને, શેષશય્યા પર, શ્રી, ભૂ, વગેરે અનેક પત્નીઓ સહિત, શંખ, ચક્ર આદિ આયુધવાન, દિવ્ય આભૂષણો ધારી, અનન્તગુણોવાળા, દિવ્યદેહધારી, ચતુર્ભુજ ભગવાન વૈકુણ્ઠના દિવ્યધામમાં વિરાજે છે. એ ભગવાન નારાયણ, પરબ્રહ્મ અથવા પરવાસુદેવને નામે પણ ઓળખાય છે.

બીજું ખૂલરૂપ:-તેમાં વાસુદેવ, જ્ઞાન, બલ, ઐશ્વર્ય, વીર્ય, તેજ અને શક્તિ એ ષડ્ગુણયુક્ત; સંકર્ષણ જ્ઞાન અને બલ યુક્ત, પ્રભુઝ ઐશ્વર્ય અને વીર્યથી યુક્ત અને અનિરુદ્ધ શાંત ને તેજથી યુક્ત છે.

ત્રીજું વિભવ રૂપ:-પુરાણોક્ત વિભવ કે અવતારો રામાનુજે માન્ય રાખ્યાં છે. અવતારો ૩૬ કે અહિર્બુધ્ન્યસંહિતા પ્રમાણે ઓગણચાલીસ છે.

ચોથું અંતર્યામી રૂપ:-જીવાત્માની કોઈપણ અનુભવની દશામાં પણ તે તેના સખારૂપ, હૃદયમાં વસેલા, જેને યોગીમુનિઓ અનાદિકાળથી ટુંઢતા આવ્યા છે, તે અંતર્યામીરૂપ. આ રૂપમાં ઈશ્વર જીવની સાથે હોવા છતાં તેનાં દોષ દુઃખ વિગેરેથી અલિપ્ત છે.

પાંચમું અર્ચા રૂપ:-મંદિરમાં મૂર્તિમંત થતા, પૂજારીની ભક્તિ ને સેવાને વશ, જ્ઞાન, ભોજન વગેરે માનુષિક સગવડો સ્વીકારતા દેવ, તે અર્ચારૂપ. એના ચાર ભેદ છે; સ્વયંબ્રહ્મા (જાતે પ્રકટ થયેલા), દૈવ (દેવોએ સ્થાપેલા), સૈદ્ધ (સિદ્ધોએ સ્થાપેલા) અને માનુષ (મનુષ્યોએ સ્થાપેલા).

આ પાંચે અવસ્થામાં ભગવાન લક્ષ્મીની સાન્નિધ્યમાં જ હોય છે.

જીવનું સ્વરૂપ:-રામાનુજે ઈશ્વરનું કૈવલ્ય એવું વિશિષ્ટ માન્યું છે કે સૃષ્ટિની પ્રવૃત્તિમાં સ્વતંત્ર જીવોનું અસ્તિત્વ સ્વીકાર્યા વિના છૂટકો જ નથી. તેઓ જે છે તે ઈશ્વરને લઈને જ છે, છતાં પણ તેમનું ભિન્ન વ્યક્તિત્વ માન્ય રાખવું પડે તેમ છે. જીવ, પરમતત્ત્વનો એક પ્રકાર હોઈ, સત્ય છે, અપૂર્વ છે, નિત્ય છે, નિષ્કલ છે, અદૃશ્ય તેમ જ અણુ છે. તે શરીર, ઇન્દ્રિયો, પ્રાણ અને શુદ્ધિથી ભિન્ન છે. તે જ્ઞાતા, કર્તા અને

ભોક્તા છે. આજીવન હૃતપદ્મમાં વસેલો છે અને સુખસાવસ્થામાં તે હૃદય અને ધરમ-તત્ત્વમાં આરામ મેળવે છે. જીવ અણુ હોવા છતાં, જ્ઞાનગુણયુક્ત હોઈ, આખા ય શરીરનાં સુખ અને દુઃખ તેને સ્પર્શી શકે છે. તે પ્રતિશરીર લિંગ હોઈ, બહુ છે અને તેથી દરેક શરીરનાં સુખદુઃખ તે તે જીવનાં જ છે. મોક્ષપર્યન્ત તેઓ પ્રકૃતિ સાથે બંધાયેલા છે, જે જીવનું વાહન છે. તે વારંવાર જન્મે છે તેમ મરણ પામે છે, પણ એક જંદગીમાં તે પોતાનું સ્વત્વ ગુમાવતો નથી. પ્રલય વખતે પણ તે પોતાની પૂર્વજંદગીનાં કર્મોમાંથી છટકી શકતો નથી અને તેથી નવી સૃષ્ટિ વખતે યથાકર્મ જન્મ મેળવે છે.

જીવનું મુખ્ય લક્ષણ તેની અહંયુક્તિ છે. બદ્ધ તેમ જ મુક્તાવસ્થામાં પણ તે તેનું જ્ઞાતાપણું ખોતો નથી. તે કર્તા પણ છે છતાં તે હંમેશા કર્મ કરે જ છે એવું કંઈ નથી. કારણ જ્યાંસુધી કર્મને અંગે ઉદ્ભવેલા શરીર સાથે તે સંબંધ ધરાવે છે ત્યાંસુધી તેના કર્મો પૂર્વનિયત છે, માત્ર શરીરથી વિખૂટાં થતાં જ તેઓ પોતાના સંકલ્પથી મનોકામના પરિપૂર્ણ કરવાની શક્તિનો ઉપયોગ કરી શકે છે.

તે બ્રહ્મનો અંશ છે, ને ઈશ્વરના વિશેષણો કિવા પ્રકાર છે. તેઓ ઈશ્વરના કાર્યરૂપ માનવામાં આવે છે; કારણ તેનાથી લિંગ તેમનું અસ્તિત્વ નથી, છતાં આકાશ, વગેરેની પેઠે તેઓની કાર્યરૂપે ઉત્પત્તિ નથી.

જીવના ત્રણ ભેદ છે. (૧) નિત્ય, એટલે જે વૈકુંઠમાં વસે છે અને અનન્ત આનંદ અનુભવે છે. તેઓ પ્રકૃતિ અને કર્મથી રહિત છે. (૨) મુક્ત જીવો, જેઓએ પોતાના જ્ઞાન, ગુણ અને બક્તિથી મોક્ષ મેળવ્યો છે. અને (૩) બદ્ધ કે જે તેમનાં અજ્ઞાન અને સ્વાર્થમાં સંસારની ઘટમાળમાં આંટા માર્યા કરે છે. સંસારમાં રચીપચી રહેલા જીવો ચાર ભતના છે: દૈવી, માનુષી, પાશવ અને સ્થાવર.

“આ જીવોમાં સ્મૃતિ, સંશય, વિપર્યય, ભ્રમ, વિવેક, મોહ, રાગ, દ્વેષ, મદ, માત્સર્ય ધૈર્ય, આપદ્ય, દમ્ભ, લોભ, ક્રોધ, નિર્વેદ, આનન્દ, શાંતિ, વિરક્તિ, રતિ, શ્રદ્ધા, બક્તિ, પ્રપત્તિ વગેરે ગુણો રહેલા છે.”

શરીર:-રામાનુજના મતમાં શરીર જે ભતનાં માન્યા છે-નિત્ય અને અનિત્ય. ઈશ્વરનું શરીર જે ત્રિગુણપ્રકૃતિ, કાળ, જીવ, વિગેરેનું બનેલું છે તે નિત્ય છે, જ્યારે જીવનું આ દેખાતું સ્થૂળ શરીર અનિત્ય છે.

રામાનુજના કહેવા પ્રમાણે શાંકરમતનો મોક્ષ, એટલે આત્માનો તિરોભાવ તેમને માન્ય નથી, પણ તેની ઉપાધિમાંથી મુક્તિ એ જ તેમનો મોક્ષ છે. મુક્ત જીવ બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્ત કરે છે, નહીં કે બ્રહ્મનું સ્વરૂપ. “બ્રહ્મણો માયઃ ન તુ સ્વારૂપૈવ્યમ્ ।” તેને બીજા કશાની અભિલાષા નથી અને તેથી તે સંસારચક્રમાં ફરી પડતો નથી. અહંભાવ મોક્ષથી વિરોધી છે, વ્યક્તિત્વ નહીં. મોક્ષાવસ્થા એટલે ચિત્ અને આનન્દ એ સ્વાભાવિક ગુણોનો આવિર્ભાવ રામાનુજ માટે જીવ-મુક્તિ જેવી વસ્તુ નથી. સર્વ કર્મના નાશ અને સ્થૂળ શરીરના ત્યાગ પછી જીવ ઈશ્વર સાથે સામ્ય પ્રાપ્ત કરે છે. બધા મુક્ત જીવો એકસરખાં છે, ત્યાં મનુષ્ય, પશુ કે વનસ્પતિના ભેદ નથી. જ્યારે સંસારમાં આ ભેદ અર્થવાન છે.

મુક્તાવસ્થામાં જીવો બે સિવાય ઈશ્વરની દરેક સંપૂર્ણતામાં ભાગીદાર થાય છે. તેઓ અણુ જ રહે છે, જ્યારે ઈશિતત્ત્વ વિશુ છે. બીજું, તેઓ અનેક શરીરમાં પ્રવેશી જુદી જુદી દુનિયાનાં અનુભવો માણી શકે છે, પણ દુનિયાના સ્મૃત્ત્વમાં તેમનો બિલકુલ હિસ્સો નથી, જે ફક્ત શ્રદ્ધાનનો જ અધિકાર છે.

વિશિષ્ટાદ્વૈત બે ભતના મુક્ત જીવો ગણાવે છે: એક તો જે પૃથ્વીપર ઈશ્વરસેવાની ઉત્કણકાવાળા હોઈ, તે ઇચ્છા સ્વર્ગમાં પૂરી પાડે છે; અને બીજા કેવલિન, જે બાધી-નાથી જુદા છે, કારણ તેઓએ પોતાનું ધ્યેય જીવના સ્વરૂપનું સતત મનન કરીને સાધ્યું છે.

મુક્ત જીવો જ્યાં વાસ કરે છે તે સ્વર્ગનું વર્ણન બધા પુરાણોમાં મળે છે તેવું જ છે. દરેક ભતના સુખસગવડમાં રહેતા જીવો ત્યાં અપૂર્વ, અનહદ આનંદ અનુભવે છે. આવું સ્વર્ગનું વર્ણન કદાચ કોઈયોગી જે પોતાનું વ્યક્તિત્વ ઈશ્વરમાં ભેળવી દેવા તલ્લપતો હોય તેને પસંદ પડે એવું નથી. પણ રામાનુજને તો ઈશ્વરમાં લીન થઈ જવાની વાત અશક્ય લાગે છે; કારણ તે કહે છે કે જે ઈશ્વર બની ગયો હોય તે તેનો અનુભવ કહેવા અહીં ફરી આવતો નથી; અને જે તેની વાતો કરે છે તે તો ઈશ્વર નથી જ બન્યો !

ઉપર વર્ણવેલાં મોક્ષ મેળવવા બે વસ્તુઓ ઉપયોગી છે—ભક્તિ અને પ્રપત્તિ. કર્મ, જ્ઞાન કે સંન્યાસ મોક્ષના સાધન તરીકે ઉપયોગી ખરાં, પણ તે ભક્તિદ્વારા જ એટલે એ બધાં ગૌણ સાધન માની શકાય. મુખ્ય તો ભક્તિ અને પ્રપત્તિ જ.

ભક્તિ:—રામાનુજની ભક્તિ એટલે શાંતિથી અને ધ્યાનપૂર્વક ઈશ્વરના અધિકતર જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ. ભક્તિના સાધનો તરીકે તેમણે નીચેના ગુણો કહ્યા છે. વિવેક કે આદ્ય-વસ્તુમાં સારાસારની પસંદગી; વિમોક કે બીજાં બધામાંથી મુક્તિ અને ઈશ્વર પર અનુ-રાગ; અભ્યાસ અથવા ઈશ્વરનું અખંડિત ધ્યાન; ક્રિયા અથવા અન્યનું હિત; કલ્યાણ અથવા સર્વનું હલું વાંછવું; સત્ય, આર્જવ, દયા, અહિંસા, દાન, અનવસાદ, પોતાનામાં દીનતાનો અભાવ અને અનુદર્પ કે કર્તવ્યમાં અસંતોષ. ભક્તિ તે માત્ર અન્ધશ્રદ્ધા નહીં, પણ ઈશ્વરના ગુણ જાણ્યા પછી જે અનુરક્તિ તે ભક્તિ. જ્ઞાનકર્માનુગૃહીતં મક્તિયોગમ્ । ઈશ્વરનું જ્ઞાન અને તેની ઇચ્છાને આધીનતા તે ભક્તિ.

ભક્તિ એ મોક્ષનું પગથીયું છે, અને બીજાં સાધનો કરતાં વધુ ઉચ્ચ છે, કારણ તે તેનું પોતાનું ફળ છે. ભક્તિથી જીવ તેનો ઈશ્વર સાથેનો સંબંધ વધુને વધુ જાણે છે અને અંતે તે આત્માના આત્મા ઈશ્વરને શરણુ ભય છે. ત્યાર પછી ત્યાં આત્માનુરક્તિ કે આત્માની શોધને સ્થાન નથી, કારણ ઈશ્વરે ભતે જ જીવને બદલે વાસ કર્યો છે.

વૈધી અને મુખ્યા એવા ભક્તિના બે પ્રકાર છે. પ્રાર્થના, મૂર્તિપૂજા તેમ જ ઉત્સવો એ પહેલી અને શરૂઆતની ભક્તિ. તે જીવનો ઉચ્ચ કોટિમાટે તૈયાર કરે છે ખરાં પણ એટલાથી જ જીવનો ઉદ્ધાર શક્ય નથી. પરમતત્ત્વનું પૂજન એ જ ખરી ભક્તિ છે, કારણ તે મહંતતત્ત્વ વિના મુખ્યા ભક્તિમાં બીજું એકેય ધ્યાનનું પત્ર બની શકે નહીં, કારણ રામાનુજ એક ગુરુનું વાક્ય ટાંકે છે કે:—

આબ્રહ્મસ્તમ્બપર્યન્તા જગદન્તર્વ્યવસ્થિતાઃ ।

પ્રાણિનઃ કર્મજનિતસંસારવશવર્તિનઃ ॥

યતસ્તતો ન તે ધ્યાને ધ્યાનિનામુપકારકાઃ ।

અવિદ્યાન્તગતાસ્સર્વે તે હિ સંસારગોચરાઃ ॥

અર્થાત્ “બ્રહ્મથી માંડીને તે ઘાસનાં તણુખલાં સુધી દરેક વસ્તુઓ જે જગતમાં વસે છે તે કર્મને અંગે સંસારને વશ છે, તેથી તેઓ ધ્યાનના પાત્ર તરીકે ઉપયોગી થઈ શકે નહીં, કારણ કે તેઓ સર્વે અજ્ઞાનથી ભરપૂર અને સંસારમાં જકડાયેલા છે.

પ્રપત્તિઃ—ભક્તિનું એક અંગ તે પ્રપત્તિ છે. ઈશ્વરને સંપૂર્ણ નિવેદન તે પ્રપત્તિ. એનાં છ અંગો આવશ્યક છે. (૧) ઈશ્વરને અર્પણ કરવાયોગ્ય ગુણોની પ્રાપ્તિ (આનુકૂલ્યસ્ય સંપત્તિઃ ।), ઈશ્વરને પ્રતિકૂળ આચારનો ત્યાગ (પ્રાતિકૂલ્યસ્ય વર્જનમ્ ।), ઈશ્વર સર્વથા રક્ષણ કરશે જ એવી શ્રદ્ધા (રક્ષિષ્યતીતિ વિશ્વાસઃ ।), રક્ષણ માટે પ્રાર્થના (ગોમૃત્વ-વર્ણનમ્ ।), પોતાની ક્ષુદ્રતાનો ખ્યાલ (કાર્પણ્યમ્), અને આત્મસમર્પણ. આને ન્યાસ અને શરણાગતિ પણ કહે છે. પ્રપત્તિ ચારેય વર્ણોને સુગમ છે, જ્યારે ભક્તિમાં જ્ઞાન અને કર્મની આવશ્યકતા હોઈ, પહેલા ત્રણ વર્ણો જ તેના અધિકારી થઈ શકે છે. કોઈ પણ મનુષ્ય ગુરુને શરણે જઈ, ઈશ્વરના ચરણમાં પોતાનું સર્વસ્વ મૂકી શકે છે અને ઈશ્વર તેની અવશ્ય રક્ષા કરે છે.

રામાનુજ મતાનુયાયીઓ વિષ્ણુની પૂજના સોળ પ્રકાર બતાવે છે, જેમાં ભાગવ-તોક્ત નવધા ભક્તિમાંથી ‘સખ્ય’ સિવાયના આઠ છે. બીજા આઠ નીચે પ્રમાણે છે:—

(૧) શરીર ઉપર શંખ, ચક્ર વગેરે વિષ્ણુના આયુધોના ચિહ્ન ધારણ કરવાં, (૨) કપાળ ઉપર વિષ્ણુના વાહનનું ચિહ્ન ધારણ કરવું, (૩) અવકાશના વખતમાં ગુરુએ આપેલા મંત્રનો જપ કરવો, (૪) હરિચરણામૃત પીવું, (૫) નૈવેદ્ય ખાવું, (૬) વિષ્ણુભક્તોની સેવા કરવી, (૭) એકાદશીનું વ્રત કરવું, તથા (૮) હરિની મૂર્તિની કુલતુલ્યશી ધરી પૂજા કરવી.

પૂજના પ્રકારમાં, કપાળ પર વિષ્ણુના વાહનનાં પ્રતીક તરીકે કપાળમાં ઘોળી માટીના બે લીટા કરી, તેની નીચે એ બેને બેડનારો લીટો કરી, ઉપર બે લીટા વચ્ચે હળદરનો ત્રીજો લીટો કરવાનું કહ્યું છે.

રામાનુજમતનો પ્રચારઃ—રામાનુજે ચલાવેલા શ્રીસમ્પ્રદાયના અનુયાયીઓ ઉત્તર હિન્દુસ્તાનમાં જવલે જ મળી આવે છે, પણ દક્ષિણમાં એ સમ્પ્રદાયનો પ્રચાર ખૂબ છે. રામાનુજના અનુયાયીઓમાં બે વર્ગ છે, (૧) વદગણધર્મે ઉત્તરજ્ઞાની અને (૨) તેનગણધર્મ અથવા દક્ષિણ જ્ઞાની. રામાનુજ પછી લગભગ બસો વર્ષે આ બે ફાંટાઓ પડ્યા છે. તેમાંનો પહેલો વર્ગ પ્રપત્તિને મોક્ષ સાધન માને છે પણ તે એક જ સાધન છે તેમ કયુલ રાખતો નથી. પ્રયત્ન મોક્ષ મેળવવા આવશ્યક છે. ‘મર્કટન્યાય’ પ્રમાણે જેમ વાંદરીનું બચ્ચું મહેનત કરીને પણ માને વળગી રહે છે, તેમ ભક્તને પણ ઈશ્વરને વળગી રહેવા પ્રયત્નની જરૂર છે. બીજા વર્ગના અનુયાયીઓ ‘માર્કટન્યાય’માં

માને છે. જેમ જમ્યાને કંઈ પણ શ્રમ વિના ખિલાડી પોતાના મોઢામાં લઈ આમ તેમ ફરવે છે અને તેનું રક્ષણ કરે છે, તેવી જ રીતે ઈશ્વર પણ ભક્તને મોક્ષપથે દોરી જાય છે; અર્થાત્ વદગલ્લધિમાર્ગી એમ માને છે કે ભક્ત ઈશ્વરને શરણે જાય છે ત્યારે તેનગલ્લધિની માન્યતા મુજબ ઈશ્વર જ ભક્તને પોતાને શરણે લે છે.

આ બે માર્ગમાં બીજો તફાવત એ છે કે ઉત્તરજ્ઞાનીઓ શુદ્ધાદિ સાથે કૃત્ર વાતચીતમાં જ સમાનતા રાખવાનું કહે છે, જ્યારે દક્ષિણ જ્ઞાનીઓ દરેક બાબતમાં તેમની સાથે સમાનભાવ જ ઉપદેશે છે. ઈ નમો નારાયણાય મંત્રનો શુદ્ધને ઉપદેશ કરતાં પહેલા વર્ગ મુજબ ઈ શબ્દ છોડી દેવાનું કહ્યું છે જ્યારે બીજા પ્રમાણે આખોય મંત્ર ઉપદેશાય છે.

રામાનુજની વિષ્ણુપૂજનું મૂળ જૂની પાંચરાત્રસંહિતાઓ છે. દક્ષિણમાં જુદા જુદા મંદિરોમાં જુદી જુદી સંહિતાઓ વપરાય છે. દાખલા તરીકે, કાંચીમાં અને તિરૂપતિમાં વૈખાનસ સંહિતાનો ઉપયોગ થાય છે. શ્રીસમ્પ્રદાયના ગ્રંથોમાં પરમાત્માના મુખ્ય નામ તરીકે વિષ્ણુ કે વાસુદેવ કરતાં નારાયણ નામનો વધુ ઉપયોગ થયો છે. વ્યૂહમાં બે કે વાસુદેવનું નામ છે, છતાં વ્યૂહથી પરતરવને પરવાસુદેવ કે નારાયણને નામે ઓળખવામાં આવે છે. રામાનુજની ભક્તિ પ્રેમલક્ષણા કરતાં ધ્યાન કે ઉપાસના પ્રધાન કહી શકાય છતાં ઉપાસનામાં સ્નેહ તો અવશ્ય હોય છે. એનો ભક્તિમાર્ગ ખાસ કરીને વૈદિક જ છે છતાં તેમાંથી નીકળતા ફાંટાઓએ એને સર્વગ્રાહી લૌકિકરૂપ આપ્યું છે.

આ સમ્પ્રદાયમાં વર્ણભેદનો આગ્રહ રાખ્યો નથી. છતાં અનુયાયીઓ ઘણુંખરૂં ગ્રામ્યજીવે ઈ, અન્નાદિની પવિત્રતાના નિયમો સખ્ત રીતે પળાય છે; સ્પર્શસ્પર્શમાં પણ શિથિલતા નથી છતાં મંદિરોમાં અંત્યબેને અમુક દિવસે દર્શનાર્થે જવાની છૂટ રામાનુજે આપી છે.

રામાનુજે તેના સિદ્ધાન્તમાં વિશુદ્ધહૃદયની તત્પરતાથી અને તર્કથી ધર્મ અને કીલ્-સુકીના દેખાતા વિરોધીતત્વોનું સમાધાન કરવાનો પ્રયાસ કર્યો છે. આત્માની અગાધતા વિનાના કોઈ આછી યુદ્ધિવાળા મનુષ્યે ઈશ્વરના આશ્ચર્યભર્યા માર્ગો ન સમજી, તેનું સાદું નિરાકરણ આપવા પ્રયત્ન કર્યો હોત, પણ રામાનુજ એવાથી ઉચ્ચ કક્ષાએ છે, અને સ્વાભાવિકતાભર્યા એકેશ્વરવાદનો શ્રેષ્ઠ નમૂનો એ મહાન આચાર્યે આપણી સમક્ષ ધર્યો છે.

લક્ષ્મીદાસકૃત ‘અમૃતરસપચીસી’

(વૃત્તબદ્ધ પ્રાચીન કાવ્ય)

સંપાદક — શ્રીયુત મોગીલાલ જ. સાંઢેસરા

*

છવીસ કડીનું આ નાનકડું પ્રાચીન કાવ્ય ગૂ. વ. સો. ના હસ્તલિખિત પુસ્તકસંગ્રહના નં. ૪૮૬ના ગુટકામાં, પાન ૨૧૯ થી ૨૨૨ સુધીમાં, લખાયેલું મળી આવ્યું છે. એ જ ગુટકામાં આ કાવ્યની પહેલાં શિવદાસકૃત ‘ભલંધરઆખ્યાન,’ વસ્તાકૃત ‘શુક-દેવઆખ્યાન,’ હરિદાસકૃત ‘નરસિંહ મહેતાના પુત્રનો વિવાહ’ તથા વલ્લભ ભટ્ટ કૃત ‘રેવા માહાત્મ્ય’ એટલી કૃતિઓની નકલ કરવામાં આવેલી છે, અને એમાંની પ્રત્યેકની સાથે સં. ૧૭૭૪ ની ઉતાર્યા સાલ આપેલી છે. વળી આખો ગુટકો એક જ હસ્તાક્ષરમાં લખાયેલો છે, એટલે પ્રસ્તુત ‘અમૃતપચીસી’ ની નકલપણું સં. ૧૭૭૪ ના અરસામાં જ કરવામાં આવી હશે, એવું સહજ અનુમાન થઈ શકે છે.

પ્રત્યેક કડીના અંતે આ કાવ્યનાં કર્તા લક્ષ્મીદાસે પોતાના નામની છાપ લગાવી છે. પરંતુ એના વ્યક્તિજીવનની બીજી કોઈ હકીકત આપણને એમાંથી મળતી નથી. આ જ લક્ષ્મીદાસે ‘રામરક્ષાસ્તુતિ’ નામનું બીજું એક કાવ્ય આખું ભુજંગપ્રયાત વૃત્તમાં લખેલું છે,^૧ પણ તેમાંથી આ પ્રશ્ન ઉપર કંઈ પ્રકાશ પડતો નથી. હવે, કેટલાંક આખ્યાનકાવ્યોનો કર્તા લક્ષ્મીદાસ નામનો એક કવિ વિક્રમના સત્તરમાં શતકમાં થઈ ગયો છે. એણે સં. ૧૬૩૯માં ‘જ્ઞાનબોધ’, ૧૬૪૭માં ‘ચંદ્રહાસનું આખ્યાન’, ૧૬૬૦માં ‘લક્ષ્મણાહરણ’, ૧૬૭૨માં ‘જ્ઞાનબોધ’ અને ૧૬૭૪માં ‘દશમસ્કન્ધ’ લખેલ છે, જે સર્વ કૃતિઓ હજી સુધી અપ્રસિદ્ધ છે.^૨ આ ‘બોખાસુત લક્ષ્મીદાસ’ જ્ઞાતિએ વાલ્મીકી બ્રાહ્મણ હતો, અને મહેમદાવાદનો વતની હતો. આ લક્ષ્મીદાસ અને ‘અમૃતરસપચીસી’નો કર્તા અનન્ય હોવાનો સંભવ છે. જે તેમ હોય તો આપણા કવિના સમયનિર્ણયનો કોયડો બહુ સરળ રીતે ઉકલી જાય છે.

‘અમૃતરસપચીસી’ની ઉપર જણાવી તે સિવાય બીજી કોઈ હાથપ્રત ભણવામાં નથી, એટલે તે એક જ પ્રત ઉપરથી કાવ્યનું સંપાદન કરવામાં આવ્યું છે. જે રચણે મૂળ પાઠમાં મેં કંઈ ફેરફાર કે સુધારો કર્યો છે ત્યાં એ સુધારેલો પાઠ મુખ્ય પાઠ તરીકે રાખીને મૂળ પાઠ પાદટિપ્પણરૂપે નોંધ્યો છે. સુધારાઓ મુખ્યત્વે અર્થ, ભેડણી અને વૃત્તાર્ણવની દૃષ્ટિએ કર્યા છે. અક્ષરમેળ વૃત્તોનો અસિધિલ બંધ શબ્દોના માત્રા-મૂલ્યનું પરિવર્તન માત્રામેળ જાહેરને મુકાબલે થતું ઓછું થવા દે છે. આ કારણથી — હાથપ્રત સં. ૧૭૭૪માં લખાયેલી એટલે કે મુકાબલે અર્વાચીન કોઈ તેમાં જૂનાં શબ્દરૂપોનો પ્રાયઃ અભાવ હોવા છતાં — વૃત્તાર્ણવની દૃષ્ટિએ કેટલેક રચણે જૂનાં રૂપોને

૧. ગુજરાતી હાથપ્રતોની સંગ્રહિત ગદી, પૃ. ૧૮૬.

૨. એજન, પૃ. ૧૮૫-૮૬

સ્થાન આપવું પડ્યું છે. ઉદાહરણ તરીકે, સન્ધ્યાઈ (કડી ૬), જિ (કડી ૯), કુષ્ઠિ (કડી ૧૦), બિહુ, ક્યાહરિ (કડી ૧૧), જસિ (કડી ૧૨), ગલિ (કડી ૧૩), પ્રેમિ, તિ, અંતિ (કડી ૨૬) ઇત્યાદિ. આ વસ્તુ પણ બતાવે છે કે કવિ સોળમા સૈકાના ઉત્તરાર્ધમાં થયેલો, અને મધ્યકાલીન ગૂજરાતીની ચોથી ભૂમિકામાં તેણે પોતાનું કાવ્ય લખેલું. પરંતુ આવી ધારણા બાંધીને, વૃત્તબંધ જ્યાં અર્વાચીન રૂપોને પણ થકાવી લે છે ત્યાં કાવ્યના પાઠમાં સુધારો કરવાને બદલે હું હાથપ્રતને જ વધારે વફાદાર રહ્યો છું, તે વાચક બેઈ શકશે. વળી આપણી શિષ્ટ બેડણી અનુસાર હાથપ્રતોમાં 'કાંએ,' 'તાહારે,' 'મેહેલો,' લખાવા છતાં તેનો ઉચ્ચાર 'કાંય,' 'તહારે,' 'મેહેલો' એવો લગભગ થતો; પણ ઉચ્ચારણશાસ્ત્રના અભ્યાસની દૃષ્ટિએ 'કાંએ' ઇત્યાદિ રૂપો અગત્યનાં હોવાથી તેમને મુખ્ય પાઠમાં જ સ્થાન આપીને, તેમનો ઉચ્ચાર અવહારમાં 'કાંય' થતો એમ ટિપ્પણમાં દર્શાવ્યું છે.

કાવ્યત્વની દૃષ્ટિએ 'અમૃતરસપચીસી' માં કોઈ વિશિષ્ટતા નથી. એનો વિષય પણ કંઈ નવો નથી. સંસારની નિઃસારતા અને વિષયોની ક્ષણભંગુરતા, નામસ્મરણની મહત્તા અને ભક્તિથી લવસાગર તરવાની આવશ્યકતા—જે આપણાં બીજાં સૈંકડો પ્રાચીન કાવ્યોમાં બતાવી છે, તે એમાં પણ બતાવી છે. માત્ર વયમાં વિભક્તિના અવતારોનું વર્ણન કરીને કવિએ જરા વિવિધતા આણવાનો પ્રયાસ કર્યો છે. પણ આ કૃતિની બહિર્ગતી એક વિશિષ્ટતા છે—તે આખીયે માલિની વૃત્તમાં છે.^૩ આ વિશિષ્ટતાએ જ તેનું સંપાદન હાથ ધરવા મને પ્રેર્યો છે.

ગૂજરાતીભાષાના આરંભકાળથી માંડી વિક્રમની ઓગણીસમી સદીના અંતસુધી—દયારામયુગ સુધી ગૂજરાતી ભાષામાં અનેક વૃત્તબદ્ધ કાવ્યો લખાયાં છે. અત્યાર સુધીમાં એવાં લગભગ બાવીસ કાવ્યો મળ્યાં છે, અને પ્રકીર્ણ વૃત્તો પણ બીજાં અનેકમાં મળે છે. અલબત્ત, દેશીબદ્ધ આખ્યાનો કે છન્દોબદ્ધ વાર્તાઓની જેમ આવાં કાવ્યોની પરંપરાબંધાયેલી નહીં. એ તો દલપત—નર્મદના કાળ પછી જ બંધાઈ. દયારામયુગ સુધીનાં ગૂજરાતી વૃત્તબદ્ધ કાવ્યોની સવિસ્તર આલોચના 'પ્રાચીન ગૂજરાતી સાહિત્યમાં વૃત્તરચના' એ નામના નજદીકના લવિષ્યમાં બહાર પડનાર મારા નિબંધમાં કરી છે, એટલે એ સંબંધી વિશેષ બિહાપોહ અહીં કર્યો નથી.

✽

૩. આ રીતે સોળમાં સૈકામાં થઈ ગયેલા, 'વિમલપ્રબંધ' ના કર્તા જેવે કવિ લાવણ્યસમચક્રત 'ચતુર્વિંશતિબિનસ્તુતિ' સાથે આ કાવ્યની તુલના કરવા જેવી છે. બન્ને કાવ્યો માલિનીમાં છે, લક્ષ્મીદાસનું કાવ્ય ૨૬ કડીનું છે, બ્યારે લાવણ્યસમચનું ૨૫ નું છે, બન્ને પોતાના નિઃસ્પંધ વિષયને, કૃતિઓનાં નામ જ સૂચવે છે તે પ્રમાણે, અનુક્રમે ૨૫ અને ૨૪ કડીએ સમાપ્ત કરી ઇપસંહાર એક એક કડીનો ઉમેરે છે. આટલું સામ્ય બહિર્ગતું, પણ કાવ્યત્વની દૃષ્ટિએ લાવણ્યસમચની કૃતિ લક્ષ્મીદાસ કરતાં ચક્ષુ અદિ-માત્રી છે.

અમૃતરસપચીસી

શ્રી ગણેશાય નમઃ ॥ શ્રી રામજી સત્ છે ॥

(માલિની)¹

રઘુપતિપદસેવા² મૂલ એ ધર્મ તાહારે,³
કમલનયણ મૂકી કાંઈ⁴ બીજું⁵ વિચારે⁶ ?
તનધનસુતદારા⁷ એ નહીં દૂત⁸ વારે,
હરિ⁹ ભજ લક્ષ્મીદાશા,¹⁰ પામ સંસારપારે. ૧

જનમરુચિરકારી¹¹ કાંઈ¹² મેહેલો¹³ વિશારી¹⁴ ?
ધિક ધિક¹⁵ મૈદભાગી મોહિઓ¹⁶ રૂપ નારી;
અનેક જતન પોષી દેહ નોહે તાહારી,¹⁷
હરિ¹⁸ ભજ લક્ષ્મીદાશા પાદજુગમ મુરારિ.¹⁹ ૨

અભિનવવધનસામં²⁰ સામવર્ણ²¹ ક્રિપાલં,²²
કનકરુચિરકાંતં રાજવૈદેહી²³ બાલં;
નવ નિધિ રિધિ²⁴ તાહારે²⁵ અન્ય તે મોહજાલં,
હરિ²⁶ ભજ લક્ષ્મીદાશા મારુદેશ મરાલં.²⁷ ૩

જય જય રઘુનાથા,²⁸ નામ સંસારસારં,²⁹
મમ મન રુચિઆણં³⁰ છાંડ બીજુ વિચારં,³¹
જનનીજટરકેરા દૂલનો³² આણ પારં,
હરિ³³ ભજ લક્ષ્મીદાશા જાનકીકંઠહારં. ૪

1 હાથપ્રતમાં છંદનું નામ નથી. 2 રઘુપતીપદસેવા. 3 છંદ માટે છે તે સુબળ, ઉચ્ચાર 'ત્હારે' કરવાનો છે. 4 ઉચ્ચાર 'કાંઈ' કરવાનો છે. સરખાવો - 'સોહો છો શું ગમે તે ચટચટ કરતા, ભઓ કૂડે ભર્ષા છો' ('રૂપસુન્દરકથા' કડી ૫૪). આમાં 'ભઓ'નો ઉચ્ચાર 'ભવ' કરવાનો છે. 5 બીજું 6 વીચારે. 7 'સૂત' 8 દૂત. 9 હરી. 10 લક્ષ્મીદાશા. કવિનું આ નામ દરેક કડીમાં આવે છે. અને તે સર્વેન આમ એક જ રીતે જ લખાયેલું છે. સુધારેલા પાઠમાં પણ છંદોલંગ થાય છે, છતાં જ્ઞાત્યંબની દૃષ્ટિએ મૂળ પાઠ કરતાં તે વધુ ગ્રાહ્ય છે. 11 'રુચીર'. 12 ઉચ્ચાર 'કાંઈ' 13 ઉચ્ચાર 'મેહેલો'. 14 વીશારી. 15 ધીક ધીક. 16 મોહીઓ. 17 'તા'માં રહેલા 'આ'કારનું ઉચ્ચારણ અંકપથી બોલતાં કંઈકે 'અ'કાર જેવું થતું હશે - 'ત્હારે'માંના 'ત'ને સહેજ લંબાવીને બોલીએ તેવું. 18 હરી. 19 મોરારિ. 20 'સામં'. 21 'વર્ણ'. 22 ક્રિપાલં. 23 નીપારીખી. 24 ઉચ્ચાર 'ત્હારે'. 25 હરી. 26 'ભાવદેશભરાલં' એટલે શું? પાઠ બહુ લાગે છે. 27 રઘુનાથા 28 સંસારસાર. 29 રુચીરઆણં. 30 વીચારં. 31 દુખનો. 32 હરી.

वदनकमलशोभा को कवी जाए^{३३} बोली ?
 तृपित^{३४} अलक राजे मानुनी भंग टोली;
 मुरली मधुर नादे मोहीआ^{३५} चंद्रमौली,
 हरि भज लखमीदाशा^{३६} दानवा रंगरोली. ५
 जनम प्रथम ताहारे^{३७} जाण को साथ^{३८} हूतो ?
 वसन वचन हीणो भोमि^{३९} सज्याइं^{४०} सूतो;
 अशुचि^{४१} रुधिरमध्ये देह ताहारो^{४२} वगूतो,^{४३}
 हरि भज लखमीदाशा काढसे पंकखूतो.^{४४} ६
 जनक जननीं माता स्त्री सुता पुत्र काया,
 धन गृह^{४५} गज वाजी दास संसार माया;
 अनेक जनम भोगी साथ^{४६} को नाहि^{४७} आया,
 हरि भज लखमीदाशा जानकीनाथगया.^{४८} ७
 मनसिजमदहारी^{४९} रासलीलाविहारी,^{५०}
 सुखितसकलनारी^{५१} नंदआनंदकारी;
 गिरिवर^{५२} कर धारी मेघधारा निवारी^{५३}
 हरि भज लखमीदाशा कृष्णनाथा मुरारि.^{५४} ८
 धरी हरि^{५५} मन ध्याने पूर्ण^{५६} प्रेमे जि^{५७} गाए,^{५८}
 निगम^{५९} रुचिर^{६०} वाणी ब्रह्म^{६१} आनंद थाए;
 चरणस्रवित^{६२} गंगा, बोलतां पाप जाए,
 हरि भज लखमीदाशा कृष्ण श्रीकृष्ण राये.^{६३} ९
 धरम करम छांडी मूढ तू कुंणि^{६४} वाह्यो^{६५} ?
 कुण^{६६} जतन प्रमाणे^{६७} मूकशे^{६८} दूत साह्यो^{६९} ?
 फरीं फरीं पसताशे,^{७०} तू समो^{७१} कोण डाह्यो^{७२} ?
 हरि भज लखमीदाशा छोड ए नाग ग्राह्यो. १०

३३ छन्दार 'नय'. ३४ तृपित. ३५ मोहीआं. ३६ हवे पछी पथीसरी हरी सुधी 'हरि.....दाशा'
 जे आभाओ वाक्यभंड 'हरि० ल०' जे प्रभाजे दुकमां लगेबो छे. ३७ छन्दार 'ताहारे'. ३८ साथ.
 ३९ भोगी. ४० सज्याओ. ४१ असूची. ४२ छन्दार 'ताहारे'. ४३ वगूतो. ४४ छं. ४५ अड.
 ४६ साथ. ४७ नही. ४८ 'सज्यां. ४९ भनसीन'. ५० रासलीलाविहारी. ५१ सुधीत. ५२ गीरीवर.
 ५३ नीचरी. ५४ भोसरी. ५५ हरी. ५६ पूरख. ५७ जे. ५८ ग्राह्य. ५९ नीगम. ६० स्त्रीर.
 ६१ छं. ६२ अवीत. ६३ साथ. ६४ कोण. ६५ वाह्यो. ६६ कोण. ६७ पभाजि. ६८ छुंशे.
 ६९ ग्राह्यो. ७० भन भनसरी. ७१ समो. ७२ ग्राह्यो.

निशिदिन^{७३} बिहू^{७४} ताहारे^{७५} आयु^{७६} संख्यानि^{७७} आणे,
 निमिष निमिष^{७८} खूटे^{७९} आस^{८०} केरे प्रमाणे,
 प्रगट नयण ताहारे^{८१} फूटियां^{८२} क्याहूरि^{८३} जाणे ?
 हरि भज लखमीदाशा वेद जेहने^{८४} वखाणे.^{८५} ११

मदनजलधिमध्ये झीलतां आंख फूटी,
 तरुणीमकरप्राप्त्यो^{८६} भक्षियो^{८७} सर्व छूटी;
 क्षण क्षण गणनाए जाए^{८८} छे आय खूटी,
 हरि भज लखमीदाशा जासि^{८९} मोहजाल^{९०} त्रूटी. १२

कपट अनेक कीधां पोषियां^{९१} पुत्र नारी,
 बुँद बुँद गलि^{९२} लागे^{९३} तर्स^{९४} आ आस ताहारी;^{९५}
 अनेक जनम हार्यो,^{९६} हारियो^{९७} स्नेह वारी,
 हरि भज लखमीदाशा, काण^{९८} मेहेल्यो^{९९} विसारी.^{१००} ? १३

निगम^{१०१} अभय देवा मीन रूपी^{१०२} मुरारि,
 धरम करम थाप्या^{१०३} दानवा शंख^{१०४} मारी;
 त्रिभुवनजनकेरा^{१०५} शोकसंतापहारी,^{१०६}
 हरि भज लखमीदाशा विश्व आनंदकारी.^{१०७} १४

सुरपति^{१०८} सुख^{१०९} दीधां कूर्मरूपे^{११०} अपारं,
 जलधिमथन^{१११} काजे मेदिनी^{११२} पृष्ठधारं;^{११३}
 चतुरदश सुरतं काढियां^{११४} दूखहारं,^{११५}
 हरि भज लखमीदाशा, भक्त आनंदकारं.^{११६} १५

अवनि^{११७} जलनिमग्ना दानवाभार त्राहासी,^{११८}
 जय जय रघुनाथा, शर्ण^{११९} ते आर्वी नाहाशी;^{१२०}

७३ निशिदिन. ७४ जेहू. ७५ छिन्नार 'ताहारे'. ७६ आयु. ७७ संख्याने. ७८ निमिष निमिष. ७९ खूटे. ८० खास. ८१ बाहारे. सुधारेल्या पाठमां पाळ् छिन्नार 'ताहारे' करवानो छे. ८२ फूट्यां. ८३ क्याहारे. ८४ जेहने. ८५ वखाणे. ८६ प्राप्ति. ८७ लक्ष्यो. ८८ छिन्नार 'लय'. ८९ लखे. ९० छिन्नार 'अहो'लख. ९१ पोष्यां. ९२ गले. ९३ वलजे. ९४ तरस. ९५ छिन्नार 'ताहारे'. ९६ हारो. ९७ हारीयो. ९८ छिन्नार 'कांय'. ९९ छिन्नार 'मेहेल्यो'. १०० विसारी. १०१ निमय. १०२ रूपी. १०३ थाप्या. १०४ शंख. १०५ त्रिभुवन. १०६ शोक. १०७ विरचे. १०८ सुरपती. १०९ सुख. ११० रूपे. १११ जलनिमिष. ११२ मेदिनी. ११३ प्रष्टधारं. ११४ लढ्यां. ११५ दुखहारं. ११६ लगत. ११७ अवनी. ११८ छिन्नार 'त्राहासी'. ११९ सरख. १२० छिन्नार 'नाहाशी'.

धरनीं धरीं डोंढाग्रे शूकरादेहवाशी,¹²¹
 हरि भज लखमीदाशा कंप लीलाविलाशी.¹²² १६
 असुरकुंअर काजे रूप नृसिंह¹²³ राजे,
 मुख¹²⁴ वपु¹²⁵ विकरालां,¹²⁶ हाक त्रैलोक्य गाजे;
 कर नख रुदें फाडी आंत्र कंटे विराजे,¹²⁷
 हरि भज लखमीदाशा नामनीशाण वाजे. १७
 द्विजवरवपुधारी¹²⁸ कुब्जरूपी¹²⁹ मुरारि¹³⁰
 बलिमख छलकारी,¹³¹ शुक्र¹³² एकाक्षहारी;¹³³
 पदनखजलधारा¹³⁴ धीर ब्रह्मा¹³⁵ विहारी,¹³⁶
 हरि भज लखमीदाशा जाहूवी¹³⁷ ब्रह्मचारी.¹³⁸ १८
 अखिल भुवन केरां दूखनाशावतारं,¹³⁹
 अचनि¹⁴⁰ रुधिर¹⁴¹ पोषी, क्षत्रियावंशहारं,¹⁴²
 ग्रही जल कुश¹⁴³ आपी मेदिनी¹⁴⁴ विप्र सारं¹⁴⁵
 हरि भज लखमीदाशा, कूर्मधारी¹⁴⁶ मुरारं.¹⁴⁷ १९
 रविकुल¹⁴⁸ रविजोरं¹⁴⁹ राम श्रीराम श्यामं,
 त्रिभुवनजनकंटे¹⁵⁰ हार श्री रामनामं,
 सुखद सुखद¹⁵¹ प्राणी बोलतां रामनामं,
 हरि भज लखमीदाशा राम श्रीराम नामं. २०
 नटरवरवपुधारी ब्रह्म¹⁵² साक्षात श्यामं,
 अचनि¹⁵³ सुखद¹⁵⁴ स्वामी, गोपिका¹⁵⁵ पूर्णकामं;¹⁵⁶
 अघदुखमृग¹⁵⁷ त्रासे¹⁵⁸ सिंघ श्रीकृष्णनामं,
 हरि भज लखमीदाशा, कृष्ण श्रीकृष्णधामं. २१
 रुदयकमल जाणी घोर निद्रा¹⁵⁹ विसारो,¹⁶⁰
 फरीं फरीं पसताशो,¹⁶¹ दोहलो¹⁶² एह वारो;

121 सुकृशं. 122 'कंपलीला' अर्थले? [पंकलीला होय अम लाजे छे-संपादक]. 123 नरसिंह.
 124 भू. 125 वपु. 126 विकरालां. 127 वीराने. 128 द्विजवरवपु. 129 कुब्जरूपी.
 130 मोरारी. 131 बलीमख. 132 सुक. 133 ऐक्यक्ष. 134. 'नप'. 135 ब्रह्मा. 136 वीहारी.
 137 लंनवी. 138 ब्रह्म. 139 कुश. 140 अचनी. 141 रुधिर. 142 क्षत्रीयावंश. 143 कुशम.
 144 मेदिनी. 145 सारं. 146 कूर्म. 147 मोरारं. 148 रवी. 149 रवीपीनोरं. 150 श्रीभुवन.
 151 सुखद सुखद. 152 ब्रह्म. 153 अचनी. 154 सुखद. 155 गोपिका. 156 पूर्णकामं.
 157 'अम. 158 त्रासे. 159 निद्रा. 160 वीरारो. 161 अम प्रस्ताशो. 162 दोहलो.

નરકસદનમાંહે કો નથી સાથ¹⁶³ તાહારો,¹⁶⁴
હરિ ભજ લક્ષ્મીદાશા, કામ તૃષ્ણા¹⁶⁵ વિહારો.¹⁶⁶ ૨૨

નરકસદનકેરૂ દ્વાર સ્ત્રીસંગ જાણે,
કહુ છૌ¹⁶⁷ ચરણ લાગી, શ્રાંત મા¹⁶⁸ મન¹⁶⁹ આણે;
નિશિદિન¹⁷⁰ હરિ¹⁷¹ કેરું નામ જિહ્વા¹⁷² ચ્વાણે,¹⁷³
હરિ ભજ લક્ષ્મીદાશા, રાખસે¹⁷⁴ સાર્હીં પાણે. ૨૩

ચરણકમલ કેરૂ ધ્યાન તૂ મન¹⁷⁵ રાખે,¹⁷⁶
મનસિ¹⁷⁷ વચન કાચે શુદ્ધ¹⁷⁸ તૂ સત્ય ભાખે;¹⁷⁹
કપટ કઠિણ¹⁸⁰ વાળી મેહેલ¹⁸¹ તૂ¹⁸² દૂર¹⁸³ નાચી,
હરિ ભજ લક્ષ્મીદાશા, સત્ય¹⁸⁴ એ વેદ સાચી.¹⁸⁵ ૨૪

પતિત અધમ કેરો રામ શ્રીરામ ત્રાતા,
જનક જનનીં સ્વામી રામ શ્રીરામ શ્રાતા;
ભગતવદ્ધલ બીજો કો નથી રે વીંછાતા,¹⁸⁶
હરિ ભજ લક્ષ્મીદાશા રાખસે¹⁸⁷ નર્ક¹⁸⁸ જાતા. ૨૫

અમૃતરસપચ્વીસી¹⁸⁹ દાસ જે પ્રેમિ¹⁹⁰ ગાએ,
અનેક સુખ તિ¹⁹¹ પામે અંતિ¹⁹² વૈકુંઠ જાએ;
લલિત મધુરી વાળી સર્વ¹⁹³ આનંદ યાએ,
હરિ ભજ લક્ષ્મીદાશા જાનકીનાથ રાચે.¹⁹⁴ ૨૬

इति श्रीभक्तपञ्चीसीरस संपूर्ण ॥ शुभं भवतु ॥

*

163 સાત. 164 ઉચ્ચાર 'હારો'. 165 કામસૂત્ર. 166 વીહારો. 167 અહીં 'એ'માંના 'ઓ'નો ઉચ્ચાર કૃત્ય તરીકે કરવાનો છે; તેમ જ જતબંધમાં પણ તેની ગણના લખુ તરીકે કરવાની છે. પ્રાકૃત પિંગલમાં 'એ' 'ઓ' ઇત્યાદિ સ્વરો યુર તેમજ લખુ, બમે પ્રકારના છે, એ સુપ્રસિદ્ધ છે. 168 અ. 169 મન. 170 નીશીદીન. 171 હરી. 172 જિહ્વા. 173 ચ્વાણે. 174 રાખસે. 175 મન. 176 રાખે. 177 મનસી. 178 સુધ. 179 ભાષે. 180 કઠીણ. 181 ઉચ્ચાર 'ઝેલ'. 182 તૂ. 183 દૂર. 184 સત. 185 સાચી. 186 વીંછાતા. 187 રાખસે. 188 નરક. 189 અમૃત. 190 પ્રેમિ. 191 તે. 192 અંતે. 193 સર્વ. 194 રાચે.

વલ્લભનાં આખ્યાનો

છે૦—શ્રીયુત્ત પ્રેમશંકર હ. મદ્, એમ. એ.

✱

વલ્લભ પોતાની ભાતને 'ફાંકડો' ^૧ કહે છે: અને તેણે પોતાના માટે વાપરેલા આ વિશેષણને આપણા વિદ્વાનો પણ માન્ય રાખે છે. ^૨ પરંતુ વલ્લભની આ ફક્કડાઈ 'છેલછળીલો વરણુખીઓ નટવર નાવલીઓ' ^૩ ગણાતા દયારામથી, કે 'ઝોઈવાર ચાર દોસ્તમાં મને કોઈ દાઈ પીવાને કહે છે તો હું પીઉં છું..... મેં કેફની નિંદા કીધી છે તે વ્યસનીઓને માટે, પ્રસંગે કેફ કીધો ને તે જીરવાયો તો હરકત નથી..... મને તો મજા જ પડી છે' ^૪ કહેનારા, કેફી, રંગીલા, મજાશોખી નર્મદથી જૂદા પ્રકારની છે. સાચું પૂછાવો તો એ ફાંકડો નથી, પણ અભિમાની છે; સ્વચ્છંદી, મિજાજી, ગર્વીલો ને તે પોતે જ કહે છે તેમ 'વસમો' ^૫ અને 'હડીલો' ^૬ છે. પોતાની ભાતને એ સ્થળે સ્થળે 'કવિભૂપ', 'કવિમણિ' અને 'કવીશ્વર' ^૭ કહે છે; જે પોતાની કવિતાને એ કેટલી અધી વધારે પડતી ઉચ્ચ કોટિની ગણતો તે પ્રત્યક્ષ કરે છે. બિચારા શામળ બદને તો

૧ ચક્ષુપ્રભોત્તરમાં પોતાના જેવા ફકડ માણસને કશું રસ નહોતો પડે છે તેથી તે કુઝા અનુભવે છે ને કહે છે:-

અકડપણું સુમાનું, ફકડનું આજ જેણે,
છકડ લગાવી છેડું, લકડ લોડું લયું.

ચક્ષુપ્રભોત્તર, ઇ. ૧૮, પૃ. ૧૬.

અને આજે જ 'અકડ', 'ફકડ', 'છકડ'ને 'લકડ' શબ્દનો અર્થહીન પ્રયોગ દુરાસનશિરપાનાખ્યાનમાં પણ મળે છે:-

ફકડનું વેણુ સુણી, અકડ હતો તે ટળ્યો,
છકડ આપી ત્યાં છેકે, લકડ લાડુ જમ્યો.

દુરાસનશિરપાનાખ્યાન, ઇ. ૧૬, પૃ. ૧૩.

૨ જુઓ 'વલ્લભ ફાંકડો' નામક શ્રી અતિસુખશંકર કમળાશંકર ત્રિવેદીનો લેખ - આતમી ગુ. સા. ૫. રિપોર્ટ, પૃ. ૬૫ (સાહિત્ય વિભાગ).

૩ શ્રી ક. મા. મુનશી-ચોડાંક રસદર્શનો પૃ. ૨૩૮

૪ હિતર નર્મદ ચરિત્ર પૃ. ૧૧, ૧૫.

૫ સુણી રહું આપ ધારી, પીળને લગાડું લાત,
વસમો છે વલ્લભ આ, ખેન કરો જોરો છે.

ચક્ષુપ્રભોત્તર, ઇ. ૧૫, પૃ. ૧૩.

૬ નામના છે નવ ખંડે હડીલા યવાની ગાય.

ચક્ષુપ્રભોત્તર, ઇ. ૨૦, પૃ. ૧૭.

૭ એકું કપટ સ્વરૂપ, નમે તેને કવિભૂપ,
કવિમણિ કવીશ્વર, જેનો સદા ઉંચો કર.

ચક્ષુપ્રભોત્તર, ઇ. ૪૩૦, પૃ. ૨૭૧.

તે 'શામ લક્ષણવંતા' ને 'ગુજરાતને કલંક' રૂપ એવું બિરુદ આપે છે. વાંકદેખા (cynic) માનવીની પેઠે એને કોઈને માટે આદર નથી, એ બધાને ધિક્કારે છે. પોતાના પિતાની કવિતાને 'પ્રેમાર્નદની કવિતા, સવિતા શી પેખીયે' કહી વખાણવા છતાં, ને તેની કવિતા આગળ 'ચંદ મંદ દેખીયે' તેમ કહેવા છતાં, તે તેની; અરે ખુદ દેવોની પણ કૂર વિડુંબના ને ઠેકડી કરે છે. આવો વલ્લભ-એને ફાંકડો અને ફક્કડ કહેવો બેઈએ કે ડોળી અને અભિમાની? સમજી અને સ્વતંત્ર ગણવો બેઈએ કે ઉદ્ધત અને ઉછાંછળો?

આખ્યાનોનું સ્વરૂપ

વલ્લભે જૂદા જૂદા રસના જૂદા જૂદા આખ્યાનો લખ્યાં છે. એને માટે એમ કહેવાય છે કે એણે પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે 'શૃંગારાદિ નવે રસનાં નવ પુસ્તકો લખવાં અને પ્રત્યેક પુસ્તકમાં પ્રતિજ્ઞાત રસ અબલિયારીપણે વર્ણવવો' અને તેની તે પ્રતિજ્ઞાનુસાર તેણે 'દુઃશાસનરૂઢિરપાનાખ્યાન' માં વીર, 'કુંતિપ્રસન્નાખ્યાન' માં અદ્ભુત, 'યક્ષપ્રભોત્તર' માં કરુણ, 'યુધિષ્ઠિર વૃકોદર સંવાદાખ્યાન' માં રૌદ્ર, 'ધૃતરાષ્ટ્ર કુરૂક્ષેત્ર દર્શન' માં બીભત્સ (આ પુસ્તક વલ્લભના પુસ્તકોની યાદીમાં છે, પ્રગટ થયું જણાતું નથી) વગેરે રસોને બહલાવ્યા છે. 'મિત્રધર્માખ્યાન' નામક સામાજિક કથાવસ્તુ લઈને પણ તેણે એક આખ્યાન રચેલ છે.

ગુજરાતી સાહિત્યમાં આખ્યાનના શ્રીગણેશ આદ્ય કવિ નરસિંહ મહેતાના (સમય વિ. સં. ૧૪૭૦ થી ૧૫૩૬ લગભગ) ભાગવત પરથી લખાયેલા સુદામાચરિત્રથી મંડાય છે. પછીથી લાલણ (વિ. સં. ૧૪૯૦ થી ૧૫૭૦), કર્મભૂમંત્રી, નાકર (સં. ૧૫૫૦ થી ૧૬૩૦), તુલસી (સં. ૧૬૧૪), વસ્તો (સં. ૧૬૨૪) વગેરેએ સાહિત્યના આ પ્રકારને ખેડેલ છે. આ અંગની ઉચ્ચોચ કક્ષા આપણને મહાકવિ પ્રેમાર્નદમાં, અને તે પણ આખ્યાનસાહિત્યનાં શિરોબિંદુ જેવા 'નળાખ્યાન' માં બેવા મળે છે. ત્યાર પછી વલ્લભ, ભોબે લક્ષ્મણ, અને દયારામ વગેરેએ આ પ્રકારને ખેડેલ છે. વલ્લભ પ્રેમાર્નદનો જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતો. એણે આપણે ઉપર બેયું તેમ જૂદા જૂદા રસના જૂદા જૂદા આખ્યાનો લખ્યાં છે.

૮

કવીશ્વર પ્રેમ બેવા, કોક તો અમારા બેવા;
શામ લક્ષણવંતા કો, રાયરંક સેવતા.
અબલ્યક કત તણ, માગણની રીત બણ,
બજવાનું તે ન બણ, બને મોટા રેવતા.
દિલ્લખરે બૂલનારા, વાસ વસ્યા તેણે કરી,
ગૂજરાતને કલંક, રેણ વિના રેવતા.

મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૮, પૃ. ૬.

૬ કુંતિપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૧, પૃ. ૧.

૧૦ યક્ષપ્રભોત્તર, ગ્રંથવિવેચન, પૃ. ૧

વલ્લભે આખ્યાનો સિવાય 'મારુતિવિજય' નામક નાટક લખ્યાનું કહેવાય છે ને તેનો થોડો ભાગ 'પ્રેમા' નંબાં નાટકો' નામક 'સ' ના પુસ્તકમાં, પરિશિષ્ટ ૪ થામાં પૃ. ૧૪૬-૧૧૩, 'વલ્લભકૃત મારુતિવિજય શીર્ષક તળે છપાયેલ છે. તેમાં ખૂટતો ભાગ હજી સુધી બહાર પડ્યો નથી.

આખ્યાનનું ક્ષેત્ર આટલું ખેડાયું હોવા છતાં અને મધ્યકાલીન ગુજરાતી સાહિત્યનું તો એ જ એકમાત્ર સાહિત્યધન હોવા છતાં, હજી મુખી આપણે ત્યાં એનું ચોક્કસ સ્વરૂપ બંધાયું નથી. શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી કહે છે તેમ ‘સાહિત્યના એક પ્રકાર તરીકે આખ્યાન એટલે શું એ કહેવું પણ મુશ્કેલ છે.’^{૧૧} સંસ્કૃત સાહિત્યનાં અને આપણા આખ્યાનોમાં આગળ પડતું લક્ષણ તો વર્ણનની ઝમક, કથન પ્રધાન શૈલી, પ્રસાદ, સુવાચ્યતા ને સરળતા છે. સંસ્કૃત આખ્યાનોમાં વિન્ટરનિટ્ઝ જેવા વિદ્વાનો મુખ્ય આટલાં લક્ષણો તારવે છે:^{૧૨} ૧, સંવાદના સ્વરૂપમાં વાર્તા કે દેવકથા ૨, વિચિત્ર પાત્રાલેખન ૩, અર્ધ મહાકાવ્યાત્મક-અર્ધ નાટ્યાત્મક આલેખન ૪, લોકકથાથી સંકલિત (‘The cycle of ballads means Akhyān’), ૫, ક્રિયાત્મક (Full of dramatic movement—Morey Miller જેને ‘Ballad—Plays’ કહે છે તે). આ તત્ત્વોમાંથી થોડાં ઘણાં તત્ત્વો આપણને કદાચ પ્રેમાનંદમાંથી મળે; વલ્લભનાં આખ્યાનોમાંથી એ તત્ત્વો પ્રાપ્ત કરવાની આશા અસ્થાને છે.

જૂના સમયમાં લેખકો સ્વતંત્ર આખ્યાનો લખતા નહિ, પરંતુ સંસ્કૃતમાંથી અનુવાદો કરતા. એની શરૂઆત બાલણ્યથી થઈ અને પછી તો મૂળમાં લેખક તરફથી નવું ઉમેરણ મળીને પણ આખ્યાનો રચાયાં છે. શ્રી દુર્ગાશંકરશાસ્ત્રી પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનને ‘સ્વતંત્ર આખ્યાન કૃતિ’^{૧૩} કહે છે તે આવા, લેખક તરફથી થયેલા ઉમેરણ પ્રત્યે આંગળી ચીંધવા ને ભાર મૂકવા અર્થે જ. આવી રીતે મધ્યકાલીન આખ્યાન પ્રવાહ અનુવાદ અને ઉમેરણ એ બે કાંઠા વચ્ચે વહી રહ્યો છે; ને તેમાં પહેલ વહેલા મૌલિક સર્જનનો દીપ તરતો મૂકવાનું માન વલ્લભને—જો તેના આખ્યાનોના કર્તૃત્વ વિશે શંકા ન લાવીએ તો—મળે છે.^{૧૪}

આખ્યાનોનું કર્તૃત્વ

પરંતુ આખ્યાનોના કર્તૃત્વ વિશે શંકા કેમ ન આવે? ભાષાની દૃષ્ટિ, આખ્યાનોમાં વ્યક્ત થયેલા વિચારોની દૃષ્ટિ, તેની રજુઆત, શબ્દોની ભાંગફોડ, અંગ્રેજી સાહિત્યની તેના પર પડેલી અસર, આમ્ય કહેવતો ને શબ્દો પ્રત્યે વધુ પડતો પક્ષપાત, ફારસી શબ્દોનો અતિરેક, એ જમાનાના લક્ષિત્રીના વાતાવરણમાં આખ્યાનોમાં થતી શ્રાક્ષણોની અને અશ્લીલતાની હદે ખોંચતી દેવોની ઠેકડી અને કટાક્ષ:—આખ્યાનોના હરકોઈ તટસ્થ વાચકને તેના કર્તૃત્વ સંબંધે સાશંક કરે તે સાવ સ્વાભાવિક છે. તે જમાનાના વાતાવરણને લક્ષમાં લઈએ, અને એ દૃષ્ટિએ વલ્લભનાં આખ્યાનો જોઈએ તો સ્હેજે જ લાગે કે ગુજરાતી સાહિત્ય સરિતામાં પ્રેમાનંદે તરતા મૂકેલાં સૌમ્ય શીતળ

૧૧ ગુજરાતી મધ્યકાલીન સાહિત્ય, ખંડ ૫ ભો, પ્રકરણ ૭, પૃ. ૫૮.

૧૨ M. Winternitz, Some problems of Indian Literature, Page 41-58.

૧૩ ‘પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનમાં એટલું બધું નવું ઉમેરેલું છે કે એ અનુવાદ નહીં પણ સ્વતંત્ર આખ્યાન કૃતિ જ ગણાય’—ગુજરાતી મધ્યકાલીન સાહિત્ય, ખંડ ૫ ભો, પૃ. ૫૨.

૧૪ શ્રી ક. મા. મુનશીના વચનો ‘If this work (ચિત્રધર્મખ્યાન) is not a forgery, Akhyān for the first time drops its borrowed sanskritie frame work and becomes a story of real life’ (Guj. and its Lit., P. 202) પણ ઉપરોક્ત કથનને પુષ્ટિ આપે છે.

પ્રલાવંતા બહિરસભર્યા અનેક આખ્યાનદીપોને જૂઝવતો આવા ઉછાંછળા પવનનો સૂસવાટો ક્યાંથી? આ વિરોધાભાસ સમજવો કઠણ છે. જો કે સ્વ. કેશવ હર્ષદ ક્રમ જેવા તો વલ્લભ વજ્રેની આ કૃતિઓને તે સમયની સાહિત્યની શુદ્ધ ભૂમિમાં 'કાળે જિન્હાળે પૂર' જેવી ગણે છે ને આવકારે છે; ને વલ્લભે 'નવ રસનાં નવ કાવ્યો રચી સાહિત્યની સમૃદ્ધિમાં વધારો કરવા ઉપરાંત દુરારાધ્ય પ્રેમાનંદને પણ કૃષ્ણવિદિ કાવ્યથી રંજિત' કર્યાનું માને છે.^{૧૫} પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો સ્વ. કાંટાવાળા અને નાથાશંકર શાસ્ત્રી વજ્રેનો આવા પ્રકારના મતનું પ્રતિસ્થાપન કરવામાં મોટો હિસ્સો છે તે બાણીતું છે.

પરંતુ આ આખ્યાનોનો ઝીણવટથી અભ્યાસ કરતાં તેના કર્તૃત્વ વિશેની શંકા દૃઢતર અને છે. 'ઘણુંક ઘણું બાંધવું ઘણુ ઉઠાવ મારી ખૂબ' ^{૧૬} એ અર્વાચીન યુગની સમાજવાદી ભાવનાથી પ્રેરાયો હોય તેમ વલ્લભ, તે સમયના લોકોની ધાર્મિક માન્યતાઓ પર અનેક અસત્ય લા કરે છે. પવિત્ર ને ઉપાસ્ય શ્રાદ્ધણી, મહાભારતના પૂજ્ય પાત્રોની અને દેવોની, અર્વાચીન યુગનેજ અનુરૂપ એવી નિંદા કરે છે. ચક્ષુપ્રશ્નોત્તરમાં શ્રાદ્ધણુનું જે વર્ણન છે તે જુઓ:—

શ્રાદ્ધણુભાઈ બિચારા, તેમાં વળી કર્મેકાંડી,
હારી છૂટ્યા નાશી છૂટ્યા, એક મૃગલા ચક્રી.^{૧૭}

અને આટલી મરકરી કર્યા પછી તે શ્રાદ્ધણુને 'માગણુ' ને 'તુંબી' ના ઉપનામે (શ્રાદ્ધણુને તિરસ્કારમાં તુંબડા કહે છે તે વ્યંગ્યાર્થ) નવાજે છે!

કહે માગણુ તે વાર, જરઠ તું બેશી રહે,
તારે આપે ધર્મ કેરી, કોઈ તુંબી બોધતી?^{૧૮}

મિત્રધર્માખ્યાનમાં તો વલ્લભે સ્થળે સ્થળે શ્રાદ્ધણુ પ્રત્યે તિરસ્કાર, ઘૃણા ને કટાક્ષનાં વચનો વ્યક્ત કરેલ છે. ચક્ષુપ્રશ્નોત્તરમાં ધૌમ્ય જેવા ઋષિઓને વેદિયા ને બીકણુ કહ્યા છે. વલ્લભ દેવો માટે જે ઘૃણા ને તિરસ્કાર દર્શાવે છે તે વિસ્મયકારક છે. વલ્લભના મતે દેવો પણ સામાન્ય મનુષ્યની માફક લઢકણા હોય છે:—

ભય લાગ્યો રક્ષકને આ તો વળી ભોગ મળ્યા,
લઢ્યા માંહોમાંહી આજ, દૈવ તો નહાઈ છે!^{૧૯}

તેઓ મનુષ્યના મુખ અને વૈભવની અદેખાઈ કરે છે: ક્રોધનો રોષ ક્રોધપિર ઠાલવે છે:—

પખાલીને વાંકે ડામે, પાડાને તો આડા લોક,
ભલા દેવના ભવાડા, એવા ત્યાં શરૂ થયા.^{૨૦}

૧૫ આ સંબંધે વિસ્તૃત ચર્ચા માટે જુઓ:—

વસંત સંવત ૧૬૫૧, આવણુ-ભાદ્રપદ-આસો એ બંદોમાં પૃ. ૨૫૧, ૨૮૬, ૨૨૬, ૫૨નો 'પ્રેમાનંદ' નામક ૨૧. કે. હ. મુવનો લેખ.

૧૬ સુન્દરમ-વસુધા. પૃ. ૭૨.

૧૭ ચક્ષુપ્રશ્નોત્તર, ઇ. ૬૬, પૃ. ૬૭.

૧૮ ચક્ષુપ્રશ્નોત્તર, ઇ. ૧૧૦, પૃ. ૭૦.

૧૯ ચક્ષુપ્રશ્નોત્તર, ઇ. ૭૬, પૃ. ૫૨.

૨૦ કૃત્તીપ્રસાખ્યાન, ઇ. ૧૨૪, પૃ. ૮૮.

અને આટલું અધૂરું હોય તેમ દેવો જીલ્મી છે ને તેમના કરતાં માનવ વધારે ઉચ્ચ છે તેવું તે સ્પષ્ટતાથી બ્રજ કરે છે:-

અભયુખા બ્રાહ્મયુખા, ત્રિષટાદિયુખા દેવ,
કુરૂપા લાગે અપાર, કે'વા દેવ તેહને !
તેથી ઇન્દ્રપ્રસ્થ મધ્ય, નરની શોભા અધિક,
.....

પુરજનો કષ્ટો વળી, રક્ષણુ તેનું કરે
બે મગનો માર એવો, સત્વર ચલાવો સર્વ.^{૨૧}

દેવોનું આવું ચિત્ર સત્તરમા કે અઠારમા સૈકાના શ્રદ્ધા અને ભક્તિભર્યા વાતાવરણમાં સંભવિત હોય ? આ પરત્વેનું પ્રોફેસર શ્રી રવિશંકર મ. જોષીનું વિધાન 'આવો પ્રણાલિકા ભંગ મુનશીયુગમાં સંભવે; પ્રેમાર્નવયુગમાં નહિ'^{૨૨} યથાર્થ જ છે. પરંતુ આ બધાના શિરડોચ જોવો એક પ્રસંગ:-

દેવ ક્યાં ટોળે તર્ત, લાગી નાખી ભેદને,
પાણિમાં પાપાણુ ગ્રહી, વાણીમાં વિરોધ કહી,
પાણીમાં પલાળી દઈ, શિર ઊભો એવને.^{૨૩}

વલ્લભ દેવોની ભૂર્તિઓને પાણીમાં નાખી તે પર ઊભો રહે છે તે પ્રસંગ આપણને શું સૂચવે છે ? દેવો સામે ખંડની પરાક્રાંતિની આવી ઉચ્ચ ઝાળ એ જમાનાના ભક્તિરસલીલા વાતાવરણમાં ક્યાંથી પ્રગટી ? મહાભારતના પૂજ્ય પાત્રો-પાંડવો-ની ઉત્પત્તિનો એણે જે ઇતિહાસ આપ્યો છે તે પણ એ દૃષ્ટિએ ચમકાવે એવો છે.^{૨૪} અત્યારના વિલાસી રાત્ન-મહારાત્નઓને એમના પાશવાનો પોતાના હિતાર્થે જે રીતે સુરા અને સુંદરી તરફ વાળે છે તે રીતે, ઐરાવત ન દેવો પડે તે ખાતર ઇંદ્ર, ભીમ અને અર્જુનને -અને અર્જુન તો ઇંદ્રનો પુત્ર હતો-જે ઉક્તિઓ કહે છે તે જીઓ:-

અપ્સરાઓ આવી નવ સુખ કેરો સ્વાદ છે,
કે'વાય ન મારા થકી અધિક હવે તો કાંઈ;
સ્વર્ગમાંહી લજ્જા કશી માનવ પ્રમાદ છે !!^{૨૫}

એનું પાત્રાલેખન પણ વિચિત્ર છે. કુંતીપ્રસન્નાખ્યાનમાં કુંતીને ઝઘડાખોર ને અદેખી સાસુ બનાવી છે; દુઃશાસનચંદ્રિરપાનાખ્યાનમાં દ્રૌપદીને, પતિને આકરા મેણાં ટોણાં મારતી, ડામતી, ને ઉશ્કેરતી, 'કષ્ટદેણુ'^{૨૬} નાર આલેખી છે. બન્ને આખ્યાનોમાં ભીમ,

૨૧ કુંતીપ્રસન્નાખ્યાન, ઇ. ૧૦૫, પૃ. ૭૭.

૨૨ પ્રોફેસર શ્રી ર. મ. જોષીનો 'વલ્લભનાં આખ્યાનોનું કર્તૃત્વ' નામક લેખ, શાસ્ત્ર, ઓગસ્ટ ૧૯૩૬ પૃ. ૪૨૪.

૨૩ કુંતીપ્રસન્નાખ્યાન, ઇ. ૧૬, પૃ. ૨૪.

૨૪ લંબાણુ ભયે પંક્તિઓ દાંકતો નથી: જીઓ કુંતીપ્રસન્નાખ્યાન, ઇ. ૨૬, ૨૭, ૨૮, પૃ. ૨૮, ૨૯.

૨૫ કુંતીપ્રસન્નાખ્યાન, ઇ. ૧૪૩, પૃ. ૧૦૦.

૨૬ ભીમ દ્રૌપદીના વચનો સાંભળી કોપથી સળગી ઉઠે છે ને કહે છે:-

અરે ! નારી નીચ વેણુ, કથી કેમ કષ્ટદેણુ

- દુઃશાસનચંદ્રિરપાનાખ્યાન, ઇ. ૧૦૮, પૃ. ૮૨.

યુધિષ્ઠિર અને અન્ય દેવોના પક્ષે અતિ ઉપહાસમય ચિત્રો દોર્યા છે. યુધિષ્ઠિરવૃકોદર-સંવાદાખ્યાનમાં, ભીમ ક્રોધે બરાઈને યુધિષ્ઠિરને ‘બકખ્યાન’, ને ‘બોબડો’ કહે છે ને પછીથી

બૂચટ ! ન બોલ હજી, બુદ્ધિહીન ! બેશી રહ્યો,
અવજ્ઞા કરે શું અલ્યા ! નીચપણું આ નર્યું ! !

અને છેવટે ઉશ્કેરાઈ જઈને યુધિષ્ઠિરને મારવા હોડે છે:-

મૃગ પર સિંહ જેમ, તરાપ મારીને પડે,
તેમ સાઘો યુધિષ્ઠિર, ક્રોધે મૂઠ થૈ મતિ.
કૃષ્ણ કૃષ્ણ હોડી આવ્યાં, જ્યાં ત્યાં કરી ઝાલ્યો ભીમ,
ક્ષમા કરો કરો કહે, કૂર કર્મ આ અતિ !^{૨૭}

ભીમનું યુધિષ્ઠિર પ્રત્યેનું આ વર્તન એ પાત્રના ગૌરવને ખંડિત કરે છે. મહાભારતના મૂળ કથા પ્રસંગમાં, સલાપર્વમાં દ્રૌપદીના વસ્ત્રાહરણસમયે જ્યારે ભીમને વધારેમાં વધારે ઉશ્કેરાઈ જવા પૂરતું કારણ હતું ત્યારે-પણ ભીમ, યુધિષ્ઠિર પ્રતિ આટલો ઉશ્કેરાયલો નથી.^{૨૮} આ આખ્યાનમાં જ દ્રૌપદી યુધિષ્ઠિરને યુદ્ધ માટે ઉશ્કેરવા મેણાં ટોણાં મારે છે, ને છેવટ ન બોલવાના વચનો બોલવા માટે, પોતાની જાતને કૂતરી સાથે ને પોતાના બોલવાને કૂતરીની લવારી સાથે સરખાવે છે.^{૨૯} સાચું પૂછાવો તો વલ્લભને પાત્રગૌરવ કે પાત્રપ્રતિષ્ઠાની ગતાગમ જ નથી.

વલ્લભનાં આખ્યાનોને આધુનિક ઠરાવનાર બીજું તત્ત્વ તેમાં વપરાયલી શિકાર અંગેની કહેવતનો ઉલ્લેખ છે. પ્રેમાનંદનાં નાટકોમાં ‘એક કાંકરે બે પક્ષી પડે’ કે ‘કાગડો કામઠીને ન ધીરે’^{૩૦} જેવી કહેવતો, નરસિંહરાવભાઈના મત પ્રમાણે અંગ્રેજી સાહિત્યની અસર નીચે લખાયેલી છે. આનો ખુલાસો રા. રા. ‘એ વખતે દેશી રાજ્યની રાજધાની-ઓમાં ને ખંદરોમાં ઘણા ગોરા લોક રહેતા હતા તેથી પણ પ્રેમાનંદને કાને એ કહેવત આવવાનો સંભવ છે’^{૩૧} કહીને કરે છે પણ આ ખુલાસો લૂકોપાંગળો, રા. નરસિંહરાવે કહેલું તેમ ‘અદ્ભુત અસંભવ પરંપરાની વાત’^{૩૨} છે. વલ્લભમાં પણ આવી કહેવતો:-

૨૭ યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૧૯૩-૬૪, પૃ. ૧૦૨.

૨૮ મહાભારતમાં અર્જુન કહે છે તે પ્રમાણે ભીમ આ પ્લેલાં આટલો ક્યારેય ઉશ્કેરાયલો નથી: તે ખતાં મહાભારતકારે એને યુધિષ્ઠિર ઉપર ‘મૃગ પર સિંહ જેમ’ તરી પડતાં નથી બતાવ્યો, પરંતુ સહદેવ પાસે યુધિષ્ઠિરના હાથ બાળવા અગ્નિ માંગતો બતાવ્યો છે. જુઓ:-

अस्याः क्रुते मन्युरयं त्वयि राजन्निपाल्यते ।

बाहू ते संप्रबद्धयामि सहदेवाग्निमानय ॥ ૬ ॥

Nirnaya-sagar edition Sabha parva II P. 136.

૨૯

નમું ગજ રૂપધારી, લેખો નવ શુન્ય બરશું

યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૬૪, પૃ. ૫૩.

૩૦ આને મળતી એક કહેવત ‘અરે કાગડો છેતરાઈ મથો તો !’ બોટાલાલ વરભેરામ ભટ્ટના ‘પ્રજ્ઞ-રાક્ષસ’ નામક પુસ્તકમાં (પૃ. ૧૦૫) મળે છે: પરંતુ હું વિસ્તારથી આગળ ઉપર લખવાનો છું.

૩૧ વસન્ત, સં. ૧૯૬૧ કાર્તિક, ‘પ્રેમાનંદના નાટકો’, પૃ. ૪૮૩.

૩૨ વસન્ત, સં. ૧૯૭૦ આશ્વિન, ‘પ્રેમાનંદનાં નાટકોનાં પક્ષકારો’, પૃ. ૪૦૨.

અને
'કોઠિલા ઉપર યાજ' ^{૩૩}
'પતિ શય્યા સૂતા હંસ પીછમાં
અરર શું સૂતા પાદ રીંછમાં !' ^{૩૪}

મળી આવે છે. હંસના પીંછાનો આવો-શય્યા બનાવવાનો રિવાજ તે જમાનામાં હતો? વલ્લભનો સમય વિ. સં. ૧૭૮૦ એટલે ઇ. સ. ૧૭૨૪: એ સમયમાં અંગ્રેજોની ગુજરાતમાં આટલી અસર પડે ખરી કે એમને ટોપામાં હંસને પીંછા ખોસતાં બેઠેને આપણે એને કવિતામાં કે કહેવતના રૂપે ચલણી સિંકો બનાવી દઈએ?

વલ્લભની ભાષાભક્તિ-ભક્તિ કરતાં વિશેષ અંશે ભાષાભિમાન અને બડાઈ-અદ્-ભુત છે. પ્રેમાનંદને ગૂર્જર ગિરા વિશે ભક્તિ હતી; પણ એણે પોતાના કાવ્યોમાં એ સંબંધે મૌન જ પાળ્યું છે; ^{૩૫} જ્યારે વલ્લભ તો સ્થળે સ્થળે એ સંબંધે બડાઇ મારે છે એટલું જ નહિ પણ ગુજરાતીની સરખામણીમાં મરાઠી અને હિંદી ભાષાને 'સારો શબ્દ રૂપી નર' જડપી લેતી વ્યભિચારિણી સ્ત્રી સાથે સરખાવે છે, નીચી કક્ષાની 'બ્રહ્મ ભાષા દેવી' ને 'લોભીઆણુ' ગણે છે અને મરાઠીને 'મલિન' કહે છે, ^{૩૬} ને મારવાડી વગેરે બીજી ભાષા માટે લખે છે:-

અબે તમે અઠે કહે, ઇકડં ને તિકડં,
શું શાં થઈ ચઢે કેમ, જૂહી વાત જેની છે.
કાનપટી સાહી કર, બિનારસ સલા મધ્ય,
ખેંચી જાડાં ખંત ધરી, જલેમલે કેની છે? ^{૩૭}

અને ગુજરાતી માટે તો

કોમળતા કમળથી, અધિક દેખાય જેમાં,
મધુસુધા મિષ્ટપણે, હારી હારી જાય છે;
અમલતા એના જેવી, નથી કોઈ ભાષા મધ્ય,
પ્રાર્થનાપણું તો જેનું, મોટેરૂં મનાય છે.

૩૩ ચક્ષુપ્રશ્નોત્તર, ઇ. ૮૮, પૃ. ૫૮.

૩૪ ચક્ષુપ્રશ્નોત્તર, ઇ. ૪૧૧, પૃ. ૨૧૫.

૩૫ આ પરત્વે વિરુદ્ધ નોંધ માટે જુઓ-૨૧. નરસિંહરાવનો 'પ્રેમાનંદના નાટકો' નામક નિબંધ, પૃ. ૧૬.

૩૬ સારો શબ્દ રૂપી નર, જડપી લે જોતા મહાં,

એવી બ્રહ્મ ભાષા દેવી, સેવી હિંદુસ્તાની તમે,
લોભીઆણુ તણું જન, લોભમાં લોલુપ રહે.

કોક ભાષાદેવી દીન, મલિન ને માલવની,
કરે માલવાળી તેને, સાજ શો સભવિયો.

યુધિષ્ઠિરકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૧૦, ૧૨, ૧૩. પૃ. ૭-૬.

૩૭ યુધિષ્ઠિરકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૮, પૃ. ૫.

નવરસની નામકા, સુખદાયકા છે સિદ્ધ,
બાણે નહિ તેહ એના, ખોટા ગુણ ગાય છે.
કડકણાપણું કે' છે, નથી એના મહી રજ,
વીર ગ્રંથ લાઠ્યા નહિ, ખત્તા તેણે ખાય છે.^{૩૮}

ગુર્જર ગિરાની તુલ્ય, ઉપમા ઉર્વીમાં નથી,
સર્વગુણસંપન્ન છે, ઉચ્ચાર રસાળ શો.^{૩૯}

પિતા જેટલું આયુષ્ય, સુત બે સપુત પામ્યો,
તો ગિર્વાણ ગભરાશે, શું હિટી સ્વરૂપમાં.^{૪૦}

ગુજરાતી ભાષાભક્તિનો આ અતિશય ઉત્સાહ અને બીજી ભાષાઓને હલકી પાડવાનો આ પ્રયાસ - તે બંનેનો તે સમયના વાતાવરણમાં મેળ એસારવો અશરો છે. ગુજરાતી સાહિત્યની સમૃદ્ધિને ખાતર પાઘડી ન પહેરવાની પ્રતિજ્ઞા પ્રેમાનંદે લીધી હતી તેવી લોકોક્તિ છે: પ્રેમાનંદના કાવ્યોમાંથી આ સંબંધે નોંધપાત્ર ઉલ્લેખ કે આ માન્યતાને અનુમોદન મળતું નથી; જ્યારે વલ્લભના આખ્યાનોમાં, વલ્લભે પોતાની રચનાઓ એટલી ઉત્તમ કોટિની બનાવી હતી કે પ્રેમાનંદે ક્ષણભર તો પોતાની પ્રતિજ્ઞા વિસારીને ટપ દઈને પાઘડી માથે મૂકીને વલ્લભને બિરદાવ્યો તેવું કથન છે: -

માગ માગ મારા સુત, મુખ માગ્યું આપ્યું તને,
કવીશ્વરે એવી ઘડી, એકવાર આણીતી.

પાઘ પે'રાવી કવિએ, કવિતા વખાણીતી,
વીરજીએ પાછી આપી, પ્રેમથી પ્રમાણીતી.^{૪૧}

પ્રેમાનંદનું પોતાનું, પોતાની ભાષાભક્તિ વિષેનું સંપૂર્ણ મૌન અને વલ્લભની અર્થહીન આવી અનેકાનેક ઉક્તિઓ, એ બેને કેમ ઘટાવવી? ભાષાભિમાની વૃત્તિથી ઉભરાઈ જતાં કોઈ આધુનિક લેખકે આ પ્રસંગ કદપ્યો ને અક્ષરાંકિત કર્યો એ સિવાય એનો બીજો શો અર્થ?

બીજી એક વાત પણ લક્ષમાં રાખવા જેવી છે. પ્રેમાનંદ અને શામળના જગડા વિષે પણ પ્રેમાનંદના કાવ્યોમાં ખાસ ઉલ્લેખ મળતો નથી. શામળ પણ આ સંબંધે બહુધા^{૪૨}

૩૮ યુધિષ્ઠિરવ્રકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૧૬, પૃ. ૧૧.

૩૯ યુધિષ્ઠિરવ્રકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૧૭, પૃ. ૧૨.

૪૦ યુધિષ્ઠિરવ્રકોદરસંવાદાખ્યાન, ઇ. ૧૮, પૃ. ૧૩.

૪૧ ચક્ષુપ્રભોત્તર, ઇ. ૫૨૧, પૃ. ૨૬૫.

૪૨ બહુધા લખવાનું પ્રયોજન એકે કેવચિત્ અપવાદરૂપે શામળમાં, પ્રેમાનંદે કે વલ્લભ પ્રત્યે કરાક્ષની નીચેની પંક્તિઓ મળી આવે છે: -

ધર ધર રાગ તાણું નહિ, પુત્ર ન મુજ ગુણ ગાય,
રાજદરબારે રજ્જવું, મેળવી નથી પસાય.
ભાટ ગ્રાહણને લાંઠવા, લાંબી મૂકી પોક,
સીઝી જલા જલા કહે, તેથી ઘાયે સોક.

મૌન પાળે છે. પરંતુ વલ્લભના આખ્યાનોમાં આ વિશેનો ઉલ્લેખ અપરંપાર મળે છે; (આ લેખની શરૂઆતમાં પણ મેં તે સંબંધે ઇશારો કરેલ છે) ને પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો કહે છે તેને પ્રમાણભૂત ગણીએ તો તો 'શામળ વલ્લભ ઝગડો' પણ વલ્લભે રચી કાઢ્યો છે ! પરંતુ અહીં એ નોંધવું ઘટે છે કે 'વલ્લભ ઝગડો' જે વલ્લભે રચ્યો હોવાનું સંપાદકો કહે છે તે, સ્વ. કેશવ હ. ધ્રુવે, સંપાદકો પાસેથી પુસ્તકોની ટીપ માંગતાં તેઓએ જણાવ્યું તે પ્રમાણે, શુદ્ધિપ્રકાશ, જન્યુઆરી ૧૯૧૧ ના અંકમાં, પ્રેમાનંદના નામે ચઢાવેલ છે ! એક જ પુસ્તકના કર્તૃત્વની આવી અવળાસવળી સમજાસમજી કૃતિ રચાયા હોવા વિશે પણ આપણને શંકાશીલ ન બનાવે ?

એક બીજી વાત: શામળની 'અંગદવિદિ' ની હરીફાઈમાં વલ્લભે 'કૃષ્ણવિદિ' રચ્યાનું પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો કહે છે; ને તેમાંથી વલ્લભનાં વાક્યો ટાંકે છે કે 'શામળ ! બાનરાને વિદિકાર બનાવીને રાજકાજના દાવપેચ વર્ણવી શકાતા નથી, તે પણ તું સમજી શકતો નથી, છતાં તું કવિપદ ધારણ કરી બેઠો છે ! પણ દાવપેચની મૂર્તિરૂપ કૃષ્ણને વિદિકાર વર્ણવીને હું તારા કાવ્યને છક્કડ ખવરાવું છું તે તું જાણે !' ^{૪૩} અને આ કાવ્ય રચીને તેણે પ્રેમાનંદને બતાવ્યું; પ્રસન્ન કર્યા અને પાછી પહેરાવી તેવો ઉલ્લેખ આપણને દુ:શાસનચંદ્રિરપાનાખ્યાનમાં (છંદ ૫૨૧, પૃ. ૨૬૫) મળે છે; કવિચરિત્રમાં પણ સંપાદકો તે પ્રમાણે નોંધે છે. અહીં આ ઉલ્લેખોથી 'કૃષ્ણવિદિ' વલ્લભે 'અંગદવિદિ' ની હરીફાઈમાં રચ્યું છે તે સંપાદકોનું કથન ખોટું ઠરાવી શકાય છે. 'અંગદવિદિ' રચાયું સં. ૧૮૦૮ માં એટલે 'કૃષ્ણવિદિ' તે પછી જ રચાયલું હોવું ઘટે. પ્રેમાનંદની મૃત્યુ-તિથિ નર્મદાશંકર સં. ૧૭૯૨ માં ગણે છે: ^{૪૪} અહીં પ્રશ્ન એ ઉપસ્થિત થાય છે કે સં. ૧૮૦૮ પછી રચાયેલી કૃતિ વલ્લભ પ્રેમાનંદને સં. ૧૭૯૨ પહેલાં કેવી રીતે બતાવી શકે ને તેને પ્રસન્ન કરી શકે ? પ્રેમાનંદ અને શામળ એ બન્ને પ્રતિસ્પર્ધીઓનું પરસ્પરની ભલીબૂરી લાગણી વિષેનું મૌન અને એના પડછે વલ્લભનો (એણે 'વલ્લભ ઝગડો' રચ્યો એમ ન માની શકાય, છતાં ઘડીભર માનીએ તો;) શામળના દૂબળા પાતળા યશદેહને ડગલે પગલે પીંખી નાંખતો દૂમલો પણ અમુક અંશે સૂચક છે.

૪૩ દુ:શાસનચંદ્રિરપાનાખ્યાન, કવિચરિત્ર, પૃ. ૫.

૪૪ 'દશમસ્કન્ધના ૬૦ અધ્યાયમાંથી પર અધ્યાય પ્રેમાનંદના પોતાના કરેલા છે, ને બાસજી ભટ્ટો કહે છે કે પ્રેમાનંદને દશમસ્કન્ધ પૂરો કરવાનું થયું કોડ હતું ને મરતી વેળા શિષ્યને કહી ગયો કે જેમ બને તેમ તાકીદથી એ ગ્રંથ પૂરો કરજે - એ ઉપરથી જણાય છે કે એના મુઆ પછી ૩૮ અધ્યાય પૂરા કરતાં સુંદરને ધણામાં ઘણાં ૪ વરસ લાગ્યાં હશે ને એ ઉપરથી જણાય છે કે પ્રેમાનંદ ૧૭૬૨ માં દેહ છોડેલી.....'

જૂનું નર્મગદ્ય - 'પ્રેમાનંદ' - પૃ. ૪૬૨.

અને આ પ્રેમાનંદના મૃત્યુની તિથિ સાચી છે, કારણ દશમસ્કન્ધ પૂરો કર્યાની તિથિ સુંદર મેવાડાએ ૧૭૬૬ આપેલી છે:-

સંવત સત્તર છ નેઉએ વસન્ત પંચમી દિન

અધ્યાય બાવનથી અધૂરો, તે થયો હરિકૃપાથી સંપૂર્ણ.

દશમસ્કન્ધ, અધ્યાય ૬૦, કંઠકું ૨૦૩.

નરસિંહરાવભાઈ પ્રેમાનંદના નાટકોમાં 'સંસ્કૃત છંદશાસ્ત્ર વગેરેમાં સ્વીકારાયલાં શુદ્ધ વૃત્તો તથા છન્દો વાપર્યાં છે તેથી વળી નાટકના કર્તૃત્વ વિષે સંશયમાં મથાળળ ઉમેરો' ૪૫ થયેલો ગણે છે. એ દૃષ્ટિએ જોઈએ તો વલ્લભના દુઃશાસનરૂપિરપાનાખ્યા-નમાં શંકરસ્તુત્યષ્ટક શુદ્ધ શિખરિણી વૃત્તમાં રચાયલું માલમ પડે છે. યજ્ઞપ્રશ્નોત્તરમાં દ્રૌપદીના વિલાપમાં લલિત છંદની યોજના કરવામાં આવી છે. પ્રેમાનંદની કવિતામાં સંસ્કૃત છંદનો ઉપયોગ નથી થયો—જે એકાદ શ્લોક સંસ્કૃત વૃત્તમાં રચાયેલો મળે છે તે ક્ષેપક છે. ૪૬ તો પછી વલ્લભના આ વૃત્તોનું શું? જો કે આવા બાહ્ય પ્રમાણ અને પૂરાવાઓ કેટલીકવાર સત્યનિર્ણયમાં બાધકર્તા પણ નીવડે છે. દાખલા તરીકે આ સંસ્કૃત વૃત્તોની જ વાત કરીએ તો 'ગુજરાતી સાહિત્યનો ઇતિહાસ જોતાં સંસ્કૃત વૃત્તોને નવો ઉદય આધુનિક કવિતામાં જ—પાછલા પચાસ વર્ષની અંદર—થયો છે' ૪૭ એ વિધાન સામે જૈન સાધુ શાલિસૂરિકૃત 'વિરાટ પર્વ' આપણે રજૂ કરી શકીએ છીએ. 'વિરાટપર્વ' આખું, એ સમયની જૂની ગુજરાતીમાં રચાયેલું છતાં, અક્ષરમેળ વૃત્તોમાં જ રચાયેલું છે. ભાષાની દૃષ્ટિએ એ પંદરમાં સૈકાના અંત સમયની રચના ગણાય છે. ગુજરાતીમાં—જૂની કે નવી—સંસ્કૃત વૃત્તોના વપરાશનો પ્રશ્ન અને તેને અવલંબીને લેખકનો નક્કી કરવાનો સમય, એ ગણતરી બરાબર નથી; છતાં પરંપરાની દૃષ્ટિએ યોગ્ય ભૂમિકા વગર પરાપૂર્વથી ચાલી આવતી ઘાટીને ફંગોળી દેવાના કે તેમાં યોગ્ય પરિવર્તન કે સુધારા દાખલ કરવાના સળળ કારણો સિવાયના પ્રયાસો અભ્યાસ-કને વિચારમાં તો જરૂર નાંખી દે જ.

આખ્યાનોનું વસ્તુ

વલ્લભે એનું એક આખ્યાન—મિત્રધર્માખ્યાન—બાદ કરતાં, બધાં આખ્યાનોનું વસ્તુ મહાભારતમાંથી લીધું છે; એમાં ઘટતા અઘટતા ફેરફારો ને ઉમેરણ કરેલ છે—શ્રી. ગજેન્દ્રશંકર પંડ્યાના શબ્દોમાં કહ્યું તો 'વલ્લભે પિતાના મતને અનુસરીને મહાભાર-તના કોઠારમાંથી સીધું લીધું, પણ એ સીધામાંથી એણે નવીન તરેહની, નવીન ઢબની અને નવીન સ્વાદની જ વાનીઓ બનાવી છે.' ૪૮ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાનમાં અર્જુન બાણપર

૪૫ ત્રીજી સાહિત્ય પરિષદ રિપોર્ટ—કવિ પ્રેમાનંદનાં નાટકો પૃ. ૨૧.

૪૬ જે ચક્રવાક દિવસે વહુ સાથે રાખે,
તે સંગરંગ રમનાં રવિતાપ સાંખે;
રાતે વિયોગ થકી ચન્દ્રપ્રકાશ ખૂંચે,
જે હોય દુઃખ દિલમાં કશુંએ ન રૂંચે.

ઉપરોક્ત વસન્તતિલકા વૃત્તમાં રચાયેલો શ્લોક પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનમાં છે; પણ તે કવિ દલપતરામે સંસ્કૃત શ્લોકને ભાષાંતરિત કરીને મૂકેલો તે હવે સાબિત થયું છે. જુઓ ત્રીજી સા. ૫ રિપોર્ટમાં કવિ પ્રેમાનંદના નાટકો નામક, ન. જો. દિ. નો લેખ—પૃ. ૨૧—'કવિ દલપતરામને મ્હેં શોલાપુરથી કામળ લખી આ વિષે પ્રશ્ન પૂછ્યો હતો; ત્હેના ઉત્તરમાં એઓએ લખ્યું હતું કે હસ્તલેખમાં એ શ્લોકનું ભાષાન્તર મૂકેલું નહોતું તેથી મ્હારા મનમાં થયું કે ભાષાન્તર પણ મૂક્યું હોય તો ઠીક, એમ કરીને જી વસન્તતિલકા મ્હેં મૂક્યો છે.'

૪૭ ત્રીજી સાહિત્ય પરિષદ રિપોર્ટ—ન. જો. દિ.—કવિ પ્રેમાનંદનાં નાટકો પૃ.—૨૬.

૪૮ વલ્લભ, પ્રકરણ સાતમું, પૃ. ૩૮.

ઇદ્રને સ્વર્ગમાં પત્ર મોકલે છે તે બનાવ મહાભારતમાં નથી, પરંતુ મહારાષ્ટ્રના અનંત કવિના ગજગૌરી મતને (કડી ૧૭-૨૦) આભેહ્ય મળતો આવે છે. બન્ને સમકાલીન કવિઓ હતા છતાં આ સામ્ય સંબંધે નરસિંહરાવભાઈને, અનંત કવિએ વલ્લભમાંની એ વસ્તુનું અનુકરણ કર્યું તેવી સંભાવના નથી જણાતી. ઉલટ પક્ષે વલ્લભે પણ અનંત કવિનું અનુકરણ નથી કર્યું પરંતુ કોઈએક સામાન્ય મૂળમાંથી બન્નેએ આ વસ્તુ લીધી તેમ તેઓ કહે છે.^{૧૧} પરંતુ હું અહીં એક એવું જ બીજું ઉદાહરણ ટાંકી આ મતથી થોડો બૂહો પડવાનું સાહસ કરું છું.

મિત્રધર્માખ્યાન અને બ્રહ્મરાક્ષસ

વલ્લભના મિત્રધર્માખ્યાનનું આખું વસ્તુ મને છોટાલાલ નરસેરામ લટ્ટના બ્રહ્મરાક્ષસના વસ્તુ સાથે હૂબહૂ મળતું લાગે છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં આવે છે તે બે બ્રાહ્મણ-મિત્રો ઇંદુ ને મિંદુ, બ્રહ્મરાક્ષસના વિદ્યારામ ને લક્ષ્મીરામનાં જ રૂપાંતરો છે. બન્નેમાં નામ પ્રમાણે ગુણ છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં મિંદુ ઇંદુને મારી નાસી જાય છે તો બ્રહ્મરાક્ષસમાં લક્ષ્મીરામ વિદ્યારામને છરો ઘોંચી નાસી જાય છે. મિંદુ ઇંદુને મારતાં પહેલાં શોચે છે:-

મહામોટા મુનિઓએ આવાં કૃત્ય કર્યાં ઘણાં,
પાપ નથી રજ એમાં, ઘાટ મેડો શે ઘડું ?^{૧૦}

બ્રહ્મરાક્ષસમાં લક્ષ્મીરામના મનમાં આવતાં વિચારો:-

‘તેનું હૃદય કંપે છે, અંતરાત્મા ના કહે છે, લોભવૃત્તિ હવે તેનો ધિક્કાર કરે છે. અરે બાવલા ! અરે નામદ ! પાપ શું ? પુણ્ય શું ? નરક શું ? સ્વર્ગ શું ? ધન વડે ધર્મ કરજે.....મૂળરાજની હલ્યા દૂર ન્હોતી થઈ? બળરામે હલ્યા ન્હોતી કરી? સ્વાર્થને માટે ઇંદ્રે વૃત્રને નથી હણ્યો? દધિચિની હલ્યા નથી કરી? પરશુરામનો કયો છોકરો કુવારો હતો કે તેણે આબાલવૃદ્ધ અનિયોનો નિર્વેશ કાઢ્યો !.....વિશ્વામિત્રે વસિષ્ઠના સૌ પુત્ર ન્હોતા માર્યા ?’^{૧૧}

ઇંદુને મારીને મિંદુ નાસી જાય છે ને તે કલિપત લયથી ડરે છે, એમાં મેકબેથમાં ડંકનના ખૂન પછી લેડી મેકબેથ અમિત થાય છે એનું અનુકરણ તો જણાય જ છે; પરંતુ મિત્રધર્માખ્યાનની મિંદુના મનોભાવ નિરૂપતી પંક્તિ ‘ડર નથી હવે કશો જાણે નવ કોઈ પણ’^{૧૨} ને હૂબહૂ મળતી આવતી લક્ષ્મીરામના મનોભાવ આલેખતી કંડિકા બ્રહ્મરાક્ષસમાં આ પ્રમાણે છે:-

‘હવે તેને લાગ્યું કે મારી પાછળ કોઈ આવતું નથી તથા મને કોઈ પાપકર્મી જાણતું નથી ત્યારે તે માર્ગ શોધી કાઢી ગૂજરાતને માર્ગે પડ્યો.’^{૧૩}

૪૬ Gujarati Language and Literature Vol. II, P. 251.

૫૦ મિત્રધર્માખ્યાન, ઇ. ૭૬, પૃ. ૩૬.

૫૧ બ્રહ્મરાક્ષસ, પ્રકરણ બીજું, પૃ. ૨૨.

૫૨ મિત્રધર્માખ્યાન, ઇ. ૮૪, પૃ. ૪૨.

૫૩ બ્રહ્મરાક્ષસ, પ્રકરણ ત્રીજું, પૃ. ૨૭.

મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુના વૃદ્ધ પિતા સમાચાર જાણવા મિંદુ પાસે આવે છે તે મિંદુ તેણે તેને મારેલો (ગર્દન પર પાટુ મૂકી, પત્થર મારી) છતાં પોતાનાથી, તે મહીકાંઠે લૂંટાયા પછી, વિપૂટા પડ્યાની વાત કહે છે; અક્ષરાક્ષસમાં પણ વિદ્યારામના વૃદ્ધ પિતા લક્ષ્મીરામ પાસે સમાચાર મેળવવા આવે છે ને તેને પોતે છરો ઘોંચ્યો હતો છતાં તે મણિકર્ણિકાના ઘાટ પર ડૂબી ગયાનું જણાવે છે.

અક્ષરાક્ષસમાં વિદ્યારામને છરો ઘોંચ્યા પછી લક્ષ્મીરામને વળગેલા અક્ષરાક્ષસ વગેરેનું લંબાણથી વર્ણન આવે છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં પણ મિંદુ ઇંદુને મારી પોતાના ગામમાં વિદ્વાન ગણાય છે, તેની પોલ પકડાય છે વગેરે લંબાણ વર્ણન મળે છે. અનેમાં વિદ્યારામ અને ઇંદુ વિષે આ લંબાણ ચર્ચા ને કથન પછી જ નિર્દેશ મળે છે તે સામ્ય પણ અદ્ભુત છે ! અક્ષરાક્ષસમાં વિદ્યારામ સંન્યાસી રૂપે લક્ષ્મીરામને મળે છે; મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુ મહંત સ્વરૂપે મિંદુને મળે છે; અક્ષરાક્ષસમાં વિદ્યારામ લક્ષ્મીરામને સંન્યાસી સ્વરૂપે મળે છે ત્યારે ‘લક્ષ્મીરામને પોતાનો જૂનો મિત્ર મળ્યો અને જોણે તેનો આવો મોટો અપરાધ કર્યો છે તે પોતાના તરફ આવી પ્રીતિ બનાવે છે તે ભ્રેષ્ઠ ને તેને અતિ આનંદ થયો’^{૫૪} તેવો ઉલ્લેખ છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુ મિંદુને મારવા આવતા લોકોમાંથી બચાવે છે—અપકાર પર ઉપકાર કરે છે ત્યારે

મિંદુ માર્ગમાંહી વદે, ભાઈ રાખ્યો જીવતો તે;

ઉપકાર તારો અતિ, ધરૂં ધ્યાન ધારણે.^{૫૫}

એ પંક્તિઓ મળે છે.

મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુને મહંત લેખી, મુખી પૂજે છે, તેનો શિષ્ય બને છે, તેની પાછળ પાછળ આવે છે; અક્ષરાક્ષસમાં વિદ્યારામને આવી રીતે શિવલાલ શેઠ પૂજે છે, સહાય કરે છે, પાછળ પાછળ આવે છે.

અક્ષરાક્ષસ અને મિત્રધર્માખ્યાનના વસ્તુના આ સામ્ય ઉપરાંત બંને પુસ્તકોની લેખન શૈલીમાં પણ મને સામ્ય જણાય છે. વલ્લભમાં સામ્ય ને અપરિચિત શબ્દો અને વાક્યો પુખ્તળ મળે છે તે આપણે આગળ ઉપર બોધ્યું. અક્ષરાક્ષસના લેખકની ‘શૈલીમાં પણ આવા શબ્દો ને વાક્યો મળે છે: શબ્દો:—‘ખાચે’ (અક્ષ. પૃ. ૫) ‘વજ કારા’ (પૃ. ૫), ‘લખલખવા’ (પૃ. ૨૫), ‘ભામા’ (પૃ. ૯૧), ‘કાઠમાળ’ (પૃ. ૩૮) શીયાવીયા’ (પૃ. ૧૦૧): વાક્યો:—

૧, ‘મૂક તારૂં બિલાડીનું બચોવીયું ઠેકાણું’ (પૃ. ૧૪)

૨, ‘કહોં સુબાગિરિનું કામખામ કર્યું હશે ખરૂં,

ઠાઠ તો એનો જણાય છે.’ (પૃ. ૯૫)

૩, ‘એકને પાપે બધાને હેડમાં ખોરી લાલશે’ (પૃ. ૧૦૧)

૪, ‘રૂઝાયલો ઘા ઉભળે છે, !’ (પૃ. ૧૧૪)

૫, ‘મેલ ચાળા ! એવો કાંઈ ઠાલી લોક દેખાડો કરીશ નહિ (પૃ. ૧૧૭)

૫૪ અક્ષરાક્ષસ, પ્રકરણ સાતમું, પૃ. ૮૮.

૫૫ મિત્રધર્માખ્યાન, ઇ. ૧૭૬, પૃ. ૮૨.

૬, ‘અરે કામડો છેતરઈ ગયો તો !’ (પૃ. ૧૦૫)

૭, ‘કોઈ સખઓના દરબારમાં માથામારું સંસ્કૃત કાપાના પંડિતો કે હિંદી લાખાનું સાહિત્ય બહુનાર ભાટચારણો અડી ગયા હતા’

૮, ‘પડો ખાડમાં ફૂટી ગયું !’ (પૃ. ૮૯)

વલ્લભમાં ફારસી શબ્દો અપરંપાર મળે છે (જેની ટીપ હું આગળ ઉપર આપું છું) : અક્ષરાક્ષસના લેખક પણ અક્ષરાક્ષસમાં ફારસી શબ્દોનો અતિરેક થાય તેટલો ઉપયોગ કરે છે. જુઓ : —

‘કાસદ’ (પૃ. ૪), ‘હકીમ’ (પૃ. ૮), ‘ટંડેલ’ (પૃ. ૯), ‘બડી’ (પૃ. ૧૧) ‘બંદ’ (પૃ. ૪૦), ‘જન’ (પૃ. ૪૭), ‘ગુનેહગાર’ (પૃ. ૮૯), ‘ધલિમી’ (પૃ. ૫૦), ‘હાદીસ’ (પૃ. ૫૦), ‘કીમીઓ’ (પૃ. ૫૦), ‘હેડ’ (પૃ. ૧૦૧), ‘તીરંધાલ’ (પૃ. ૧૦૬), ‘પદવી’ (પૃ. ૧૧૦), ‘સ્વારી-અસ્વારી’ (પૃ. ૧૧૪-૧૧૫), ‘છડીદાર’ (પૃ. ૧૧૪) વગેરે.

વલ્લભનાં બધાં આખ્યાનો આધુનિક હોય તેમ તો મેં ઉપર કહ્યું જ છે, પરંતુ વલ્લભનાં મિત્રધર્માખ્યાન અને છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટના અક્ષરાક્ષસની વસ્તુવટનાના આવા અદ્ભુત સામ્યથી, અને બન્ને કૃતિની રચનાપરંપરા, ભાષા, શૈલી, માંડણી, ફારસી શબ્દોનો ઉપયોગ, આમ્ય શબ્દો ને કહેવતો પરનો વધુ પડતો પક્ષપાત વગેરે તત્ત્વોના મળતા-પાણાથી હું તો એવા અનુમાન પર આવવાની હિંમત કરું છું કે મિત્રધર્માખ્યાનના લેખક કદાચ છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટ પણ હોય ! વલ્લભનાં આખ્યાનોના સંપાદનકાર્ય માટે છોટાલાલ ભટ્ટ ને રોકવામાં આવ્યા હતા. આખ્યાનોની ટીકા એમણે લખી છે પરંતુ વલ્લભની પંક્તિઓનો ટીકાકારે બેસાડેલો અર્થ (જે કેટલીક વાર આખ્યાનમાંથી તારવવો મુશ્કેલ હોય છે) પણ ટીકાકાર અને આખ્યાનલેખક એક હોવા વિષેના અનુમાનને પુષ્ટિ આપે છે. પરંતુ હું મારું કથન માત્ર વલ્લભના એક જ આખ્યાન — મિત્રધર્માખ્યાન — પૂરતું મર્યાદિત કરું છું તે ફરીથી અહીં સ્પષ્ટ કરી લઉં.

હવે આપણે વલ્લભનાં આખ્યાનોમાંથી છતાં થતા વલ્લભના વ્યક્તિત્વને અને એની કથનશૈલીને બેઈ લઈએ.

વલ્લભનું વ્યક્તિત્વ

લેખકોની કૃતિઓ પરથી લેખકોનું વ્યક્તિત્વ વરતાઈ આવે છે. અલબત્ત, પોતાના વ્યક્તિત્વને પરખાવા ન દેવું કે વ્યક્તિત્વને કૃતિની વિશ્વ જેવી વિશાળતામાં સંક્રાન્ત કરવું એમાં લેખકની કલાની ફતેહ છે પણ દરેક લેખકને આ સાધ્ય નથી. પ્રેમાનંદ કે ગોવર્ધનરામનું વ્યક્તિત્વ જટ દઈને એમની કૃતિઓમાંથી ન મળી આવે, કલાપી કે ભર્મદાશંકર વિષે આમ ન કહી શકાય.

વલ્લભની કૃતિઓ વાંચતાં જ આપણી સમક્ષ એક મૂર્તિ તરવરે છે. ચહેરા પર ઉચ્ચતા અને રોષની કરચલીઓ પડેલી છે, ક્ષણે ક્ષણે માનસિક બચ્ચતા એના બોલવાના ઢંગ પરથી પરખાઈ આવે છે. વાણીમાં સંસ્કારિતા નથી, માધુર્ય, માર્દવ, ક્રોમળતા કે લાલિત્ય નથી; અવાજ તરડામલો, તીખો, રુદ્ધ ને ખરબચડો છે. નેત્રો પર અંધારાથી

ઘાડી કાળી ભસ્મરમાંથી તિરસ્કાર અને ઘૃણા ઝરે છે. દૂંકા, ભડા, બળવાન ને માંસલ બે હાથો ભણે પાસે પડેલી ચીજને મસળવા ઉત્સુક હોય તેમ ઘડીએ ઘડીએ ઊંચા-નીચા થયા કરે છે. એના ચહેરાને વિરૂપ બનાવતા મોટા લાંબા કાન કોઈની ફથલી સાંભળવા ઉત્સુક છે; એના વિશાળ ને રોષથી લાલધૂમ એવા નેત્રોમાંથી મિત્રો અને વૈરીને સમાનભાવે ડામતો, ઊભા ને ઊભા બાળી મૂકે એવો અગ્નિની ધાર જેવો દાહક તેજપ્રવાહ રેલાવે છે. મોટાને પહોળા કાળા નાકના ઘડીએ ઘડીએ ફૂલાતા ફોયણાં, એને કોઈ પ્રસન્ન કરી ન શકે, એ કોઈને પ્રસન્ન કરવાની પરવા ન કરે—એમ સૂચવે છે. એની દૂંકી ભડી ગરદન અભિમાનથી અફ્રડ અને ફૂલેલી છે. સમગ્ર ચહેરો વ્યર્થ અભિમાન, બડાશ, કબ્જિયો, ફથલી, અતઝાઈ, નિરર્થક બંડખોરપણું, ઉદ્વેગ, ઉછાંછળાપણું અને અસંસ્કારિતાની છાપ આપણા પર પાડી ભય છે. વલ્લભનું કોઈ ચિત્રકાર આતું ચિત્ર દોરે તો તેમાં જરાય અતિશયોક્તિ ન થાય. એ કલ્પનાવિલાસ પણ ન બને. વલ્લભની કૃતિઓ વાંચતાં મારા મન પર જે છાપ પડી એને મેં અશ્વરાંકિત કરવાનો પ્રયાસ માત્ર કર્યો છે. એની શૈલીને આપણે આ દૃષ્ટિએ નિહાળીએ તો આપણને સર્વત્ર સંપૂર્ણપણે ટેકો જ મળે છે.

વલ્લભની શૈલી

એ શબ્દોની બહુ લાંગરોડ કરે છે. ચંદને માટે એ જે પંક્તિ લખે છે તે હૂબહૂ એને જ લાગુ પડે છે:—‘તોડ્યા શબ્દ છોડ્યા નહિ, બોડ્યા કર તોય ઝુડ્યા !’^{૧૫}—એ ‘સ્મરણ’ નું ‘સ્મર્ણ’ (મિત્રધ. પૃ. ૫૦), ‘ફરતા’ નું ‘ફર્તા’ (મિત્રધ. પૃ. ૧૧૧) કરે છે, તો ક્યારેક ‘સાર્થક’ નું ‘સારથક’ (મિત્રધ. પૃ. ૯૧) ને ‘સન્માન’ નું ‘સનમાન’ (મિત્રધ. પૃ. ૯૩) કરે છે. ‘ગુરૂકિણી’ (મિત્રધ. પૃ. ૨૦), ‘હેલા’ (મિત્રધ. પૃ. ૭૦) ‘શબ્દ’ (મિત્રધ. પૃ. ૧૦૩), ‘અરૂપરૂ’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૧૦૦), ‘રૂખ’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૪૦) ‘હુંકિયે’ (મિત્રધ. પૃ. ૮૧), ‘સોંઢી’ (મિત્રધ. પૃ. ૯૦) ‘પાઘડી’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૧૮) ‘બિલ્લરુ’ (=વૈંત, યુધિ.વૃકો. પૃ. ૩૭), ‘સવાકવા’ (યુધિ.વૃકો. પૃ. ૮૮), ‘મીચધર’ (=મૃત્યુને ધારણ કરનારો, યુધિ.વૃકો. પૃ. ૮૫), જેવા અપરંપાર અપ્રચલિત, બૂના ને દેશ્ય શબ્દોનો વલ્લભ ઉપયોગ કરે છે.

વલ્લભ ક્યારેક શબ્દશ્લેષ (Punning) નો પણ ઉપયોગ કરે છે:—

વલ્લભ વલ્લભ વલ્લભ જે અતિ

વલ્લભ લાવી મૃગમંદ મેરૂ (કુ:શાસનરુધિર. પૃ. ૬૮)

કે

ઉરવશી વશી ઉર આપને,

ઉર વશી ખશી ભપું ભપને!! (યક્ષપ્ર. પૃ. ૨૦૭)

એ પંક્તિઓ ઉદાહરણાર્થ રજૂ કરી શકાય. વલ્લભ એક શબ્દને બે ભાગમાં વહેંચી નાખે છે કે વિભક્તિને છૂટી પાડી દે છે:—

તે થકી ધારૂં હું ના તરૂણી નજ—

દીક વસો પ્રિય હે રતનાળી. (કુ:શાસન. પૃ. ૬૬)

અમારેક એ પ્રત્યયોનું કે વિભક્તિનું નિરર્થક પુનરાવર્તન પણ કરે છે: જુઓ:—

તોય અર્થ સધાયો ન, કાષલાલ લધાયો ન,

શિવ ! શિવ ! તૂણાં તાન, મૃગલાં તણાં તણાં ! !

(યક્ષપ્ર. છં. ૧૨૦, પૃ. ૭૫)

વલ્લભનાં આખ્યાનોમાં ફારસી શબ્દો પણ પુષ્કળ જડે છે—પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો કહે છે તેમ તેણે ‘શબ્દો ધર્યાં યાવની કાય કાય’^{૫૭} ‘ઈશારત’ (મિત્રધ. પૃ. ૧૦૮), ‘ગુન્હો’, ‘દુશ્મન’ (મિત્રધ. પૃ. ૧૧૭), ‘બાજુગર’ (મિત્રધ. પૃ. ૮૦), ‘જીવબન’, ‘બેહક’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૪૮), ‘દરિયાવ’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૭૮), ‘પીર’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૨૪૬), ‘સાંઈ’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૨૬૯), ‘ઇતેખાપ’, ‘ખૂત’ (દુ. રુ. પા. પૃ. ૭), ‘માતબર’ (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૪૩), ‘રોફદાર’ (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૪૩), ‘ખલક’ (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૫૨), ‘કરામત’ (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૭૩), ‘મજબૂત’ (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૪૯) વગેરે જેવા અનેક શુદ્ધ ફારસી શબ્દો ઉદાહરણ લેખે આપણે રજૂ કરી શકીએ. પ્રેમાનંદમાં ફારસી શબ્દોનું મિશ્રણ ભાગ્યે જ માલૂમ પડશે; ને એની કયાશ ભાંગી નાખવાનો નિર્ણય કરીને એકો હોય એમ વલ્લભ એનો ખડોળા હાથે ઉપયોગ કરે છે; જે તે જમાનામાં હોવો અસંભવિત એવા ફારસી સાહિત્યના અભ્યાસનો ગાઢ સંપર્ક સૂચવે છે.

આપણી ગ્રામ્ય કહેવતોનો ઉપયોગ પણ વલ્લભે કર્યો છે. કેટલીકવાર લોકોક્તિ કે કહેવત લેખકની કલમે ચઢી આવે ને અર્થાન્તરન્યાસની ગરજ સારે; પણ વલ્લભ તો સ્થાને અસ્થાને કહેવતોને, અતિરેક થાય તે રીતે પોતાના કથાપથમાં ગૂંથતો ગયો છે: નમૂના દાખલ થોડીક કહેવતો સાંભળો:—

૧, ‘ગુરૂ થકી ચઢ્યા ચેલા’ (મિત્રધ. પૃ. ૧૭)

૨, ‘ઉંધા ઘડા પર પાણી’ (મિત્રધ. પૃ. ૧૯)^{૫૮}

૩, ‘ન મામાથી કે’ણા મામા’ (મિત્રધ. પૃ. ૩૩)

૪, ‘ભણ્યા પણ ગણ્યા નહિ’ (મિત્રધ. પૃ. ૭૦)

૫, ‘પય પાઈ સાપ ઉછેરવો’ (મિત્રધ. પૃ. ૮૦)

૬, ‘વાંકા હોય વાળદના, દિવસ તો જ્યારે ત્યારે,

કોથળી મધ્યેથી આવે, સર્પ ચાલી રૂખમાં’

(યક્ષપ્ર. પૃ. ૬૧)

૭, ‘સુખે સોનીડાનું અને, દુઃખે નામ રામનું !’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૧૯૦)

૮, ‘ઓલામાંથી નીકળીને, પડે ચૂલામાંહી જેમ’ (યક્ષપ્ર. પૃ. ૮૧)

૯, ‘પખાલીને વાંકે ડામે પાડાને તો આડા લોક’ (કુન્તીપ્ર. પૃ. ૮૮)

૧૦, ‘વાઘને વળાવવા તણી ગર્જ નવ હોય કદી’ (કુન્તીપ્ર. પૃ. ૯૫)

૧૧, ‘ફૂલ નહિ ત્યારે પ્રભુ, પાંખડી અર્પું હું તેની’ (યુધિ.વૃકો. પૃ. ૫૩)

૫૭ દુ:શાસનરધિરપાનાખ્યાન, કાવ્યવિવેચન, પૃ. ૧૪.

૫૮ આ કહેવત મરાઠી ભાષાની છે ને મહારાષ્ટ્રમાં ખબુજ પ્રચલિત છે:—‘વાઘચ્યા વઘ્યાવર પાજી’ વલ્લભમાં મરાઠી ભાષાના શબ્દો પણ મળી આવે છે.

આવી તો અનેક કહેવતો વલ્લભમાંથી આપણને પ્રાપ્ત થાય છે. ક્યારેક એક સખ્દનો કોઇ અક્ષર, ક્યારેક વાક્યમાં એકાદ સખ્દ—બાજું કરીને કર્તા—વલ્લભ અધ્યાહાર રાખે છે: એ ‘મા’કૂર’ (મિત્રધ. પૃ. ૩૯) કહે ત્યારે આપણે ‘મહાકૂર’ સમજવાનું! ક્યારેક તો એક કડીમાં છેલ્લી બીંટીનો ઉત્તરાર્ધ, સખ્દરચનાને અર્થરચના બનેલી દૃષ્ટિએ, આગળની બીંટીઓથી સંદર્ભમાં છૂટો પડી લટકતો હોય છે. આમાં એક એ ઉદાહરણો બેઈએ:—

દુઃખીયાના દુઃખ ટળ્યાં, મુખીયાને છીધાં મુખ,
કવિના મૂકાવ્યાં માન ચણોઠીને દેવતા ૪

(કુન્તીપ્ર. પૃ. ૧૭)

અહીં ચણોઠીને દેવતા ‘જૂદાં પાડી બતાવ્યાં’ અધ્યાહાર રાખેલ છે.

એમ કહી સાથ ચાલ્યો નિશ્ચકર્મા દાનવનો
માનવ મનોર્થ પૂરે, શાપું શાપવાનું જે.

(કુન્તીપ્ર. પૃ. ૩૫)

અહીં ‘શાપું શાપવાનું જે’ નો અર્થ ‘તજવા જેવું તણશ’ તેવો કર્યો છે.

અહીં હું એક ખુલાસો કરી લઉં. વલ્લભની શૈલીનું નિરૂપણ કરવા, ને મારા કથનને ટેકો આપવા મેં જે ઉદાહરણો—જૂના કે ફારસી સખ્દોના, અધ્યાહાર રચનાના કે કહેવતોના—ની ટીપ આપી છે તેને સંપૂર્ણ બનાવવાનો મારો ધરાદો કે પ્રયાસ નથી. એમ કરવા મેસું તો એ ઉદાહરણોનો જ એક જૂદો લેખ બને! તેથી લંબાણભયે વધારે દાખલાઓ આપવાનું પ્રલોભન હું ખાળી રાખું છું.

વલ્લભનાં આખ્યાનોની ખીલ થોડીક લાક્ષણિક વિશિષ્ટતાઓ બેઈ લઈએ. તેણે જૂદા જૂદા રસનાં સળંગ આખ્યાનો લખવાનો નિર્ણય કર્યો હતો. તે તો આપણે ઉપર બોયું છે. વલ્લભ એક આખ્યાનમાં એક જ રસ વહાવે છે; પ્રેમાનંદની જેમ એક આખ્યાનમાં વિવિધ રસોની ફૂલમૂંછણી કરતો નથી; એની એ પ્રમાણે એક રસમાંથી ખીલ રસમાં સંક્રાન્ત થવાની, નવલરામભાઈ કહે છે તેમ ‘તાડયું તીર’ મારવાની શક્તિ પણ નથી. અધા રસોમાંથી કયો રસ એના મને શ્રેષ્ઠ હતો, કયા રસમાં એ વધુ રાચતો—એ આપણને ન જણાય; તો કયા રસને એ પ્રિયારતો તે તો સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. એ કરુણરસને ‘ઓરમાઈ’ અને ‘અનાર્થ’ મણે છે ને કરુણરસની કૃતિ (યક્ષપ્રશ્નોત્તર) રચવાના કારણ તરીકે

રાંડ જેવાં રોદણાં, રડી જાણે નવ લાઈ
એ લોભે થવું છે રાંડ, પછે કહો દખ શે!*

જેવા તિરસ્કાર ને વૃણા નિતરતાં વચનો રજૂ કરે છે.

એનાં આખ્યાનોમાં ચરોતરી બોલીનો પડઘો ઠેર ઠેર સંભળાય છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં કોળીઓ બોલે છે તે ભાષા પાત્રાનુરૂપ તો છે જ, પણ એમાં કલાની ઝલક પ્રતિબિંબિત થાય છે. તેથી વધુ તો—

આપનો બિચો'તો આવ, પુંક જાધી જાહી બહ
મુચ્ચ મુચ્ચ વે'લો મુચ્ચ, મિંદુ અતિ ત્રાસે છે.^{૧૦}

એ કોળીના વચનોમાં કે ધન્દુ મિન્દુની મુસાફરીમાં મહી નદીના લયાનક કોતરોનું
ફળદ વર્ણન, મહી નદીના ખારા પાણીનો ઉલ્લેખ^{૧૧}, એ આખ્યાનના લેખકને એ પ્રદે-
શના ગાઢ સંપર્કમાં આવેલા ભોમિયા તરીકે આપણી સમક્ષ રજૂ કરે છે.

વલ્લભના મતે કવિતા લખવી એ સહેલું કામ નથી. કવિનો સ્વભાવ 'અક્કડ',
'ફક્કડ' ને 'સ્વતંત્ર' જોઈએ. જ્ઞાતિમાં પણ એ દ્વિજ કે છેવટ ક્ષત્રિય હોવો જોઈએ.^{૧૨}
કવિની બીજી નહિ તો આ લાક્ષણિકતા તો વલ્લભમાં સાંગોપાંગ ને સુરેખપણે જીલાઈ છે !

વલ્લભનાં આખ્યાનો પરત્વેનું મારું વક્તવ્ય અહીં પૂરું થાય છે. વલ્લભના આખ્યાનોના
કર્તૃત્વનો પ્રશ્ન અત્યારે ઠહોળાયલો તો છે જ.^{૧૩} આવી પરિસ્થિતિમાં વલ્લભના એક
આખ્યાન - મિત્રધર્માખ્યાન - ના કર્તૃત્વની જવાબદારી છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટ પર
ઓઢાડીને હું એક નવું વમળ તો ઊભું નથી કરતોને ? અગાઉ એકવાર ગુજરાત
વર્નાક્યુલર સોસાયટીએ પત્ર લખી પ્રાચીનકાવ્યમાળાના સંપાદકો પાસે મૂળ હસ્ત-
પ્રતોની માંગણી કરેલી; ને સ્વ. કે. હ. ધ્રુવ નોંધે છે તે પ્રમાણે 'માત્ર એકવાર એક
મરજીવાએ દરિયાના કાળા પાણીમાં ગુમ રહેલો કેટલોક ખજનો કાઢી આપવાની
તૈયારી પૂર્વે જણાવી હતી;^{૧૪} પરંતુ આજે તો એ ખજનો દૃષ્ટિપથમાં પડતો નથી; ને
એ જ્યાં લગી ન પડે ત્યાં સુધી તે બોળી કાઢવાના, તેનું મૂલ્યાંકન કરવાના, મારા
જેવાના આંખગુકિયા, પણ નિષાભર્યા, પ્રયાસો આવશ્યક તો ઠરે છે જ.

૧૦ મિત્રધર્માખ્યાન, ઇ. ૧૨૫, પૃ. ૬૦.

૧૧ જાધીએ પાણી જેવો ખારું લાગ્યું તેહ

-- -- -- --

મુખમાંહી પેસે નહિ, પીવાય તે પછે કેમ.

મિત્રધર્માખ્યાન, ઇ. ૫૯, પૃ. ૩૦-૩૧.

૧૨ કવિ કેવો જોઈએ તે, હવે કે'વું છે જ મારે,

અક્કડ ને ફક્કડ તો, કવિ કહેવાય છે.

કવિનું સ્વભાવ કહું એક ચિત્તે સાંભળ્યું હું,

જોઈએ સ્વતંત્ર તેહ, જેહ કવિરાય છે !

-- -- -- --

ભતિ કવિ તણી હવે, રહી બાકી કે'વાની તો,

દ્વિજલાલે ક્ષત્રી ગ્રહો, અન્યથા તબય છે.

ચક્ષુપ્રશોતર, ઇ. ૫૦૭, પૃ. ૨૫૮.

૧૩ જુઓ પ્રોફેસર શ્રી હોલરસચ રં. માંકડનો 'એ તણ નાટકો' નામક લેખ, સાતમી છ. સા. ૫.
રિપોર્ટ, પૃ. ૧૪-૪૩ : પ્રોફેસર શ્રી રવિશંકર મ. જોશીનો 'વલ્લભનાં આખ્યાનોનું કર્તૃત્વ' નામક લેખ,
શારદા, ઓગસ્ટ, ૧૯૩૯.

૧૪ પુલ્હિપ્રકાશ, માર્ચ ૧૯૧૧, પૃ. ૯૩.

અકલંકના સમયનિર્ણય વિષે

एक नोध

ले०-प्रो० अमृतलाल स० गोपाणि, एम्. ए.

*

[નોંધ:—“અકલંકઅન્યત્રયમ્” ની સમાલોચના કરતી વખતે એ અન્યને આદ્યંત તપાસી જવાની મને તક મળી. તેમાં સંપાદક મહાશયે અકલંકના સમયનિર્ણય સંબંધમાં જે યુક્તિઓ યોજી છે તેના અનુસંધાનમાં મેં ન્યાયકુમુદચંદ્રની પ્રસ્તાવના વગેરે વાંચ્યું અને અકલંકના સમયનિર્ણયના સંબંધમાં મને જે નવી દિશા સૂઝી તેનું જ આલેખન આ લેખમાં મેં કર્યું છે. અર્થાત્ એ બંને પુસ્તકોમાં પ્રયુક્ત દલીલોને અહિંઆ મેં એવડાવી નથી. એ દલીલો, પુરાવા, અને કારણો માટે તે તે પુસ્તકો જોઈ લેવાં અને આ નાની નોંધને એના સંદર્ભમાં તથા ગત અંકમાં પ્રસિદ્ધ થયેલા “અકલંકઅન્ય-ત્રયમ્” ના મારા અવલોકનના અનુસંધાનમાં વાંચવા જિજ્ઞાસુને મારી ભલામણ છે.]

અકલંકના સમય માટે બે મતપ્રણાલિકાઓ છે. એકને મતે તેઓ શકસંવત્-૭૦૦ એટલે કે ઈ. સ. ૭૭૮ માં થઈ ગયા. આ મતના આદ્ય આધિકર્તા કે. વા. ડૉ. કે. બી. પાઠક છે અને ડૉ. ભાંડારકર, સતીશચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ અને પંડિત પ્રેમી તે મતના સમર્થક છે. મલ્લિષેણપ્રશસ્તિ અને અકલંકચરિત તેમની દલીલોના આધાર છે. અકલંક-ચરિતસ્થિત “વિક્રમાર્કશકાબ્દ” પદનો અર્થ શક સંવત એવા આ મતના પ્રસ્થાપક અને અનુયાયીઓ કરે છે.^૧

બીજાના મતે તેઓ ૭૦૦ વિ. સં. અર્થાત્ ૬૪૩ ઈ. સ. માં જીવિત હતા. આ મતના આદ્યસ્થાપક શ્રી કંઠશાસ્ત્રી અને જીગલકિશોર મુખતાર છે અને પ્રો. ડો. ઉપાધ્યે તથા પં. કૈલાસચંદ્રજી આ મતના અનુયાયી છે. અકલંકચરિતગત “વિક્રમાર્કશકાબ્દ”નો અર્થ વિક્રમસંવત થાય છે એ એમનો મુખ્ય આધાર છે.^૨

પ્રથમ મતના પક્ષમાં, અકલંકદ્વારા ધર્મકીર્તિનું ખંડન તેમજ પ્રભાચંદ્રકૃત કથાકો-શમાં અકલંકને શુભતુંગના મંત્રીપુત્ર તરીકેનું નિદર્શન વગેરે દલીલો પણ છે. તેમ જ બીજા મતની પુષ્ટિમાં વીરસેનદ્વારા ધવલાટીકામાં રાજવાર્તિકનાં કેટલાંક વાક્યોનાં અવ-તરણો, હરિભદ્રકૃત “અકલંકન્યાય” પદપ્રયોગ, સિદ્ધસેન ગણિનો સિદ્ધિવિનિશ્ચયવાળો હિલેખ અને નિશીથચૂર્ણિમાં સિદ્ધિવિનિશ્ચયનો દર્શન પ્રભાવક અન્ય તરીકે નિર્દેશ વગેરે દલીલો પણ છે.

“અકલંકઅન્યત્રયમ્” ના સંપાદક મહાશય શ્રી પંડિત મહેન્દ્રકુમારજીએ પ્રકાંડ થાંડિલપૂર્ણ પ્રસ્તાવનામાં અન્યના અંતરંગ પરીક્ષણનો આધાર લઈ અકલંકનો સમય ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ નો^૩ ઠરાવ્યો છે તે જ સમય મારે નિમ્નલિખિત ઐતિહાસિક

૧ “અકલંકઅન્યત્રયમ્”, પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૩. સિંધી જૈન અન્યમાલા-મણિ ૧૨ (અમદાવાદ કલકત્તા ઈ. સ. ૧૯૩૬).

૨ ઉપયુક્ત પુસ્તક, સંપાદકીય પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૩.

૩ ઉપયુક્ત પુસ્તક, પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૩૨.

આબતોથી નિયત કરવાનો છે અને એ જ આ ટૂંકી નોંધનો ઉપક્રમ છે. માટે અંતરંગ પરીક્ષણગર્ભિત યુક્તિઓ વાંચક તદ્દન-અસ્થ પ્રસ્તાવનામાંથી બેઠેલેશે એવી આશા રાખું છું.

મને પ્રથમ મતપ્રજ્ઞાવિ ઇષ્ટ છે એટલે બીજી મતપ્રજ્ઞાવિના અભિપ્રાયનું નિરસન એ આશય પ્રસ્તુત છે.

હરિભદ્રની કૃતિઓમાં અત્યારપુધી એવો કોઈ ઉલ્લેખ મળતો નથી કે જેના ઉપર આધાર રાખી એમ અસંદિગ્ધપણે કહી શકાય કે તેઓ અકલંકની કૃતિઓથી પરિચિત હોય.^૪ હરિભદ્ર “અકલંકન્યાય” પદનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત સાચી. પણ અકલંક શબ્દનો અર્થ એ સ્થળે મહાવીર થતો હોય એમ લાગે છે. સન્મતિતર્ક અને અકલંકન્યાય એ બન્ને પદો મારે મન તો સમાનાર્થક કે સમકક્ષ હોય એમ લાગે છે. સન્મતિનો અર્થ મહાવીર છે એ તો હવે પંડિત સુખલાલજીએ “સન્મતિપ્રકરણ” ની પ્રસ્તાવનામાં સિદ્ધ કરી આપ્યું છે.^૫ એ રીતે અકલંક પણ મહાવીરના અર્થમાં જ હરિભદ્રે વાપર્યો હોય એમ કાં ન હોય? કારણ કે અકલંક એટલે અકલંકદેવ એ જ અર્થે હરિભદ્રને અભિપ્રેત હોય તો માત્ર આટલો જ નામોલ્લેખ કરીને એ કાંઈ બેસી ન રહતે. સારાંશ એ કે અકલંકન્યાય પદ મહાવીરન્યાય અર્થાત્ અનેકાંતના લાક્ષણિક અર્થમાં જ ઉપયુક્ત થયું છે એમ મારું માનવું છે.

તત્ત્વાર્થ લાખ્યવૃત્તિકાર અને ગંધહસ્તી ઉપનામક સિદ્ધસેન ગણિએ પોતાની તત્ત્વાર્થ-લાખ્યવૃત્તિમાં અકલંકની રચેલી મનાતી સિદ્ધિવિનિશ્ચય નામની કૃતિનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. ઉપરાંત, જિનદાસગણિ મહત્તરે પણ નિશીથચૂર્ણિમાં અકલંકની આ જ કૃતિનો નિર્દેશ દર્શનપ્રભાવક અન્ય તરીકે કર્યો છે. નંદીચૂર્ણિના પ્રાન્તોલ્લેખથી જિનદાસગણિ મહત્તરનો સમય ઈ. સ. ૬૭૮ - પુરવાર થયો છે.^૬ આ રીતે અકલંક જિનદાસગણિના પૂરોગામી હોઈ ઈ. સ. ૬૭૮ પહેલાં થયા એમ ઠરે. પણ એ કોઈ રીતે ખંધબેસતું થતું નથી. એટલે મારી એ સંબંધની વિચારસરણિ આ પ્રમાણે છે. નંદીચૂર્ણિના કર્તા જિનદાસ ગણિ છે એ પ્રવૌષ માત્ર છે એ તદ્દન ખોટું છે.^૭ હું અવશ્ય એમ માનું છું કે નંદી-ચૂર્ણિ-નિશીથચૂર્ણિ અને આવશ્યકચૂર્ણિ એ ત્રણેય ચૂર્ણિના કર્તા જિનદાસગણિ જ છે. પણ એમાં જે “સિદ્ધિવિનિશ્ચય” નો ઉલ્લેખ આવે છે તે “સિદ્ધિવિનિશ્ચય” અકલંકકૃત છે એમ હું નથી માનતો. અકલંક જેવા ધુરંધર દિગંબરાચાર્યના અન્યનો ઉલ્લેખ દર્શનપ્રભાવક અન્ય તરીકે ચુસ્ત અને પ્રાભાવિક શ્વેતાંબરાચાર્ય જિનદાસગણિ અને સિદ્ધસેનગણિ કરે એ વસ્તુ મને અઘટનીય લાગે છે. હું તો એમ જ માનવા તૈયાર છું કે કોઈ વિદ્વાન શ્વેતાંબરાચાર્યનો સિદ્ધિવિનિશ્ચય નામનો અન્ય હોવો બેઠેલે જે અત્યારે અનુપલબ્ધ છે અને એને જ અનુલક્ષીને જિનદાસગણિવાળો અને સિદ્ધસેન

૪ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પં. સુખલાલજીનું પ્રાકરણ, પૃષ્ઠ ૧૦.

૫ “સન્મતિતર્ક” (પ્રો. આપવલે અને પ્રો. ગોપાલિનો અંગ્રેજી અનુવાદ) પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૧૭ (અંબઈ, ૧૯૩૬).

૬ “અકલંકઅન્યત્રય”માં, અન્યમાલાના મુખ્ય સંપાદક મુનિશ્રી જિનવિજયજીએ લખેલ પ્રાસ્તાવિક, પૃષ્ઠ ૪.

૭ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પ્રાસ્તાવિક, પૃષ્ઠ ૪.

મણિવાળો પણ ઉલ્લેખ હોવો જોઈએ. સાંપ્રદાયિક અભિનિવેશને લઈને લખાયેલા એક નામધારી ગ્રન્થો જેવા કે—સમયસાર, સિદ્ધપાદુક, નયચક્ર, ધર્મપરીક્ષા વગેરે બંને સંપ્રદાયોમાં મળી આવે છે. એકનામધારી ગ્રન્થો તો શું? પરંતુ એક નામક વિદ્વાનો પણ બંને સંપ્રદાયમાં બિન બિન સમયે થઈ ગયેલ હોવાના દાખલાઓ મોજૂદ છે.^૬ એટલે આ દૃષ્ટિએ પણ મારી વિચારસરણિને જરાય બાધ આવતો હોય એમ મને લાગતું નથી.

હવે એથી દલીલ વિચારીએ. વીરસેનની ધવલા ટીકામાં ઘણાં અવતરણો એવાં આવે છે કે જેમનું અકલંકના રાજવાર્તિકગત વાક્યો સાથે શાબ્દિક સાદૃશ્ય છે એ જાત સાચી છે.^૭ એટલે કે અકલંક વીરસેનના પૂરોગામી હોવા જોઈ એ અને એથી મારી વિચારસરણિને બાધ આવે એવી દલીલ થઈ શકે. આ બાબતમાં હું એમ કહેવા માગું છું કે આવું શબ્દ સાદૃશ્ય એટલું સ્વરપ્રકૃતિક હોય છે કે એને જે બાળુ ખેંચવું હોય તે બાળુ ખેંચી શકાય. વીરસેનનો સમય જાણે કે તદ્દન નિયતજ કેમ ન થઈ ગયો હોય એમ માનીને જ આ દલીલ કરવામાં આવે છે. હું તો ઉલટું એમ માનું કે અકલંકના રાજવાર્તિકમાંથી વીરસેને પોતાની ધવલા ટીકામાં અવતરણો લીધાં છે એટલે અકલંક પછી અર્થાત્ ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ પછી વીરસેન કયા એમ કેમ ન હોય? આવી જ દલીલથી હરિભદ્રે અકલંકન્યાય પદ પ્રયોગ કર્યો છે એટલે અને અમુક બાબતમાં સરખી વિચારસરણિ ચોજી છે તેથી^૮ અકલંક પછી હરિભદ્ર થયા એમ સિદ્ધ કરવા માટે તો તે ખોટું છે કારણ કે અન્ય પ્રબળતમ પ્રમાણોથી હરિભદ્રને અકલંકના પૂર્વકાલીન જ માનવા પડે છે, તેવું વીરસેનની બાબતમાં, નથી. સારાંશ કે વીરસેને ધવલાટીકામાં રાજવાર્તિકમાંથી અવતરણો લીધાં છે એટલે વીરસેન અકલંક પછી અર્થાત્ ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ પછી થયા એમ જ કહી શકાય. તદુપરાંત, હું એમ પણ માનું છું કે આવા સાધારણ અવતરણો ઉપર સમયનિર્ણય જેવી બાબતમાં કશો મદાર બાંધી શકાય નહિ. જે અવતરણો છે તે અવગ્રહ, ઇલા, સત્પ્રરુપણાદિ વિષયોને લગતાં છે. આ વિષયો બંને સંપ્રદાયોને એક સરખાં જ ઇષ્ટ છે. બંને સંપ્રદાયોને માન્ય એવા કોઈ પ્રમાણુભૂત તટસ્થ ગ્રન્થકારની (દા. ત. વાયકઉમાસ્વાતિ) કોઈ કૃતિમાં ઘણી વખત આવા સર્વસાધારણ અવતરણોનું મૂળ મળી આવે છે. જે અવતરણો ધવલા ટીકાકાર વીરસેને રાજવાર્તિકમાંથી લીધેલાં હોવાનું મનાય છે તે સન્મતિટીકામાં અને જૈનતર્કભાષામાં પણ શાબ્દિકસાદૃશ્ય સાથે મળી આવે છે. એટલું જ નહિ પણ અકલંકના પૂરોગામી પૂજ્યપાદની સર્વાર્થસિદ્ધિમાં પણ મળી આવે છે.^૯ રાજવાર્તિક અને વિશેષાવશ્યક લાખ્યમાં તથા તત્વાર્થધિગમલાખ્યમાં પણ

૬ ઉપરોક્ત પુસ્તક, પ્રાસ્તાવિક, પૃષ્ઠ ૫-૬.

૭ ઉપરોક્ત પુસ્તક, સંપાદકીય પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૩.

૮ જ ન્યાયકુમુદચંદ્રની પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૭૮ (આ. દિ. જી. ગ્રંથમાલા-નં. ૩૮).

૧૦ ધવલા ટીકા, રાજવાર્તિક, સન્મતિટીકા, જૈનતર્કભાષા, અને સર્વાર્થસિદ્ધિ વગેરેમાં મળી આવતાં અવતરણો વચ્ચે સામ્ય જેવા માટે જુઓ:—

ધવલા ટીકાની સત્પ્રરુપણાધિકાર; રાજવાર્તિક, ૧-૧૫; પૃષ્ઠ ૨૦; સન્મતિટીકા પૃષ્ઠ ૫૫૨-૫૫૩; જૈનતર્કભાષા પૃષ્ઠ ૫; સર્વાર્થસિદ્ધિ, ૧-૧૫.

અધ્યાધિક શાબ્દિક સાદૃશ્યવાળા ઉલ્લેખો મળી આવે છે એ ઉપરથી આપણે શું સમજવું ?^{૧૧} કયા અન્યકારના કયા પુસ્તકમાંથી અમુક અવતરણ લેવામાં આવ્યું છે એ બાબતનું સ્પષ્ટ વિધાન અન્યકર્તાના નામ સાથે ન હોય ત્યારે તો સર્વસાધારણ અવતરણો માટે કોઈ ત્રીજાનું જ મૂળ આપણે શોધવાનું રહ્યું. અન્યના અંતરંગ પરીક્ષણ અને અન્ય સામગ્રીદ્વારા અકલંકનો સમયનિર્ણય સચોટ રીતે થઈ શકતો ન હોત તો વીરસેનની ધ્વજા ટીકામાં રાજવાર્તિકામાંથી ઉતારેલા અવતરણોના સંબંધમાં આપણે વિશિષ્ટ વિચાર અને ઊહાપોહ કરવાનો રહેત. અસ્તુ.

અકલંકના સમયનિર્ણયમાં ઐતિહાસિક સામગ્રી આપણને ક્યાંસુધી લઈ જઈ શકે તેમ છે તે બાબતનો આપણે હવે વિચાર કરીએ.

(૧) શ્રવણબેદગોલા ઇન્સ્ક્રીપ્શનમાં અકલંકને સાહસતુંગ રાજ પાસે પોતાનું મહત્ત્વ અને વિદ્વતા વર્ણવતા ચીતરવામાં આવ્યા છે. આ સાહસતુંગ રાજ દંતીદ્વર્ગ હોય એમ અનુમાનવામાં આવે છે.^{૧૨}

(૨) પ્રભાચંદ્રકૃત ગદ્યકથાકોશમાં તથા ગ્રહચારી નેમિદત્તના આરાધના કથાકોશમાં અકલંકને શુભતુંગ રાજના મંત્રીપુત્ર તરીકે ઓળખાવવામાં આવ્યા છે અને માન્યબેટને તેમના જન્મસ્થાન તરીકે જણાવેલ છે.

(૩) પીટર્સનનો રિપોર્ટ બીજો તેઓ કૃષ્ણ પહેલાના પુત્ર હતા એવી દન્તકથાનો ઇશારો કરે છે.^{૧૩}

(૪) અકલંક રચિત રાજવાર્તિકાના પ્રથમ અધ્યાયના અંતમાં નીચે લખેલો શ્લોક આવેલો છે :-

जीयाखिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहृद्वनृपतिवरतनयः ।

अनवरतनिखिलजननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः ॥

રાજવાર્તિકાગત આ શ્લોક અકલંકનો પોતાનો જ હોઈ એના ઉપર હું સંપૂર્ણ વિશ્વાસ મૂકું છું અને ઉપર્યુક્ત પ્રથમ ત્રણ ઉલ્લેખોને હું તે શ્લોકના અર્થ સાથે બંધબેસતા કરવા માગુ છું. આ શ્લોકનો અર્થ પં. મહેન્દ્રકુમારજી અકલંકઅન્યત્રયની પ્રસ્તાવનામાં એવો તારવે છે કે “હવ” એટલે બાપ અને દંતીદ્વર્ગદ્વિતીય પોતાના કાકા કૃષ્ણરાજ પ્રથમને “અવ” શબ્દથી બોલાવતા હોય. પુરુષોત્તમ નામનો માણસ કૃષ્ણરાજ પ્રથમનો મૂળથી જ સહકારી રહ્યો હોય અને તેથી દંતીદ્વર્ગ તેમને પણ “લઘુહવ” નાં ઉપનામથી બોલાવતા હોય. કૃષ્ણરાજ પ્રથમ શુભતુંગના બીજા નામથી ઇતિહાસપ્રસિદ્ધ છે. ઉપરાંત, લઘુહવ અર્થાત્ પુરુષોત્તમ એક સામંત હોઈ રાજમાન્ય હતા અને તેથી તેમને પણ નૃપતિ શબ્દ લગાવવામાં આવ્યો હોય. પુરુષોત્તમ અને કૃષ્ણરાજ પ્રથમ સમવયસ્ક હોઈ પુરુષોત્તમના પુત્ર શ્રી અકલંક ને સાહસતુંગ બિરુદધારી

૧૧ જુઓ - તત્ત્વાર્થધિગમલાખ્ય, ૧-૫; રાજવાર્તિક. પૃષ્ઠ-૨૦; વિશેષાવસ્થક લાખ્ય, ગા. ૨૬.

૧૨ શ્રવણબેદગોલા ઇન્સ્ક્રીપ્શન નં. ૬૭.

૧૩ પીટર્સનનો રિપોર્ટ ૨, પૃષ્ઠ ૭૯.

દંતીદૂર્ગની સભામાં પોતાના શાસ્ત્રાર્થની વાત કરવાનો પ્રસંગ મળ્યો હોય.^{૧૪} આવી રીતે પંડિતજી મહિષેણુપ્રશસ્તિ, કથાકોશગત શુભતુંગના મંત્રીપુત્રવાળી બાબત, અને રાજ વાર્તિકના શ્લોકાર્થનો સુમેળ સાચવવા મથે છે. મને તે અર્થમાં ત્રણ ક્ષતિઓ દેખાય છે. એક તો એ કે કૃષ્ણરાજ પ્ર૦ કે જે દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ નો કાકો થાય તેને દંતીદૂર્ગ “હવ” અર્થાત્ આપ શું કામ કહે ? તે ઉપરાંત, દંતીદૂર્ગ જેવો પ્રતાપી રાજ પોતાના કાકાના સહકારીને “લઘુહવ” જેવા માનાર્થક શબ્દપ્રયોગથી શું કામ સંબોધે ? પુરુષોત્તમને સામંત શું કામ માનવો ? અને વળી સૌથી બેહુકું તો એ છે કે એ સામંત હોય તો પણ “નૃપતિ” શબ્દથી તો વાચ્ય નથી જ. આ બધી રીતે મને પંડિતજીકૃત ઉક્ત અર્થવિવૃત્તિ જરાય આકર્ષક અને નિયમબદ્ધ લાગતી નથી. એ શ્લોકનો મારો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે.

રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓ જૈનધર્માનુયાયી અથવા જૈનમતપોષક હતા એ તો હવે નિર્વિવાદ છે. એટલું જ નહિ પણ એમની નીચેના અકસરો અને ખંડિયા રાજાઓ પણ જૈનમત-પ્રેમી હતા^{૧૫} એટલે અને અકલંકની જન્મભૂમિ માન્યખેટ હતી^{૧૬} એ નિર્દેશના આધારે હું ઉક્ત શ્લોકને રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓના સંબંધમાં જ ઘટાવવા માગું છું.

સાહસતુંગ, શુભતુંગ, વલ્લભ, અને તુડિગ વગેરે બિરુદો રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓના હતા.^{૧૭} સાહસતુંગને દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ તરીકે ઓળખવવામાં આવે છે.^{૧૮} હું તો “લઘુ-હવ” શબ્દને કૃષ્ણરાજ પ્રથમના ઉપનામ તરીકે યોજાએલો માનું છું—કર્ણાટક પ્રાન્તમાં “હવ”, “અવ”, “અપ”, આપ વગેરે શબ્દો પિતાના અર્થમાં વપરાતા હતા. “હવુહવ” એટલે નાના બાપા અર્થાત્ બાપાના બાઈ કે કાકા અને આ કેકાણે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ. દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ નાની ઊંમરે ગાદી ઉપર આવ્યો હતો અને તેથી તેના કાકા કૃષ્ણરાજ પ્રથમ તેના મંત્રી તરીકે કામ કરતા હોય એ સ્વાભાવિક છે. કૃષ્ણરાજ પ્રથમને દંતીદૂર્ગ પ્રેમથી “લઘુહવ” કહે એ તદ્દન સહજ છે. દંતીદૂર્ગ ઘણો જ સાહસિક હતો તેથી કદાચ તેને “સાહસતુંગ” બિરુદ મળ્યું હોય.^{૧૯} તેમજ તે ઘણો જ દાનશીલ હતો^{૨૦} અને તેથી તે “શુભતુંગ” પણ કહેવાતો હોય. જે કે દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ને “શુભતુંગ” નું બિરુદ આપ્યાનો ઉલ્લેખ ક્યાંય મળતો નથી. કૃષ્ણરાજ પ્રથમ જ

૧૪ “અકલંકગ્રન્થત્રયમ”-સંપાદકીય પ્રસ્તાવના-પૃષ્ઠ, ૧૨.

૧૫ ડૉ એ એસ. અસ્તોકર લિખિત “ધી રાષ્ટ્રકૂટાઝ એન્ડ ધેર ટાઇમ્સ” નું પ્રકરણ-૧૩ (પૂના આરીએન્ટલ સોસાયટી નં. ૩૬. પૂના ઈ. સ. ૧૯૩૪).

૧૬ ભુઓ-પ્રભાચંદ્રકૃત ગચ્છકથાકોશ તથા બ્રહ્મચારી નમિદત્તકૃત આરાધના કથાકોશ.

૧૭ ધી રાષ્ટ્રકૂટાઝ એન્ડ ધેર ટાઇમ્સ; પૃષ્ઠ ૪૦૬ અને પુષ્પદંત રચિત તથા ડૉ. પી. એલ. વૈદ્ય સંપાદિત “મહાપુરાણ” ની પ્રસ્તાવના; પૃષ્ઠ ૨૬. (માણિકચંદ્ર દિગંબર જૈન ગ્રન્થમાલા-નં. ૩૭ મુંબઈ. ઈ. સ. ૧૯૩૭)

૧૮ ધી રાષ્ટ્રકૂટાઝ એન્ડ ધેર ટાઇમ્સ; પૃષ્ઠ ૪૦૬.

૧૯ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ-૪૦

૨૦ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ-૪૧.

“શુભતુંગ” બિરુદધારી હતો.^{૨૧} જે કે આ બિરુદ દંતીદૂર્ગ દ્વિં ને પણ મળ્યું હોય એમ માનવા લલયાઉં છું. કૃષ્ણરાજ ત્રીજે શુભતુંગ-તુડિંગ-અને વલ્લભ ત્રણેય બિરુદોથી ઓળખાતો એટલે હું તો એમ માનું છું કે જેમ જેમ જે રાજા જે સિદ્ધિઓ પ્રાપ્ત કરતો ગયો અથવા જે ગુણ-અવગુણનું પ્રાધાન્ય અને પ્રકર્ષ બતાવતો ગયો તે પ્રમાણે તેને બિરુદો-ઉપનામો મળતા ગયા હોય. સારાંશ એ કે દંતીદૂર્ગ દ્વિતીય “સાહસતુંગ” અને “શુભતુંગ” બંને બિરુદોનો ધારક હતો. દંતીદૂર્ગનો મંત્રી એટલે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ અથવા “લઘુહવ્વ નૃપતિવરતનયઃ” એ પદમાં આવેલ “વર” શબ્દને હું “નૃપતિ” ના વિશેષણ રૂપે લેવા માગું છું એટલે કે નૃપતિવર અર્થાત્ રાજધિરાજ. હવે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ રાજધિરાજ પરમેશ્વર નામના બિરુદનો ધારક હતો. એ તો ઇતિહાસસિદ્ધ છે.^{૨૨} તેમના પુત્ર તે અકલંક. સારાંશ એ કે દંતીદૂર્ગ દ્વિં ના એક વખતના મંત્રી અને પાછળથી તેના મૃત્યુ બાદ રાજ્યના અધિકારી એવા “લઘુ હવ્વ” ના વહાલસોયા ઉપનામધારી કાકા કૃષ્ણરાજ પ્રથમ કે જેઓને પોતાની સિદ્ધિના બદલામાં “રાજધિરાજ” નું બિરુદ પ્રાપ્ત થયું હતું તેમના પુત્ર તે અકલંક. આ રીતે મધ્વિષેણુપ્રશસ્તિગત સાહસતુંગનો ઉલ્લેખ પણ સાર્થક થઈ શકે. કારણ કે અકલંક દંતીદૂર્ગ દ્વિં ના કાકાના દીકરા પિત્રાર્થભાઈ હોઈ લગભગ સમવયસ્ક હશે. દંતીદૂર્ગ દ્વિં ઈ. સ. ૭૫૪ માં મર્યો ત્યારે લગભગ ત્રીશ વરસનો હતો તેથી તે ઈ. સ. ૭૨૪ લગભગમાં જન્મ્યો હોવો જોઈએ.^{૨૩} અર્થાત્ અકલંકનો જન્મસમય પણ ઈ. સ. ૭૨૪ લગભગ આપણે લેવો જોઈએ અને તેમણે સાહસતુંગ-શુભતુંગ બિરુદધારી દંતીદૂર્ગ દ્વિં ની સલામાં પોતાના થનારા વાદની વાત કરી હોય. આરીતે તપાસતાં અને અર્થ એસાડતાં મધ્વિષેણુપ્રશસ્તિગત સાહસતુંગનો ઉલ્લેખ, પીટર્સન રિપોર્ટ બીજાનો કૃષ્ણરાજ પ્રથમના પુત્ર હોવાની કિવદન્તીનો ઇશારો, કથાકોશગત શુભતુંગના મંત્રીપુત્ર હોવાનો, અને રાજવાર્ત્તિકગત શ્લોકનો-બધાનો મેળ બરાબર ઘટાપી શકાય.

ભર્તૃહરિ, કુમારિલ, ધર્મકીર્તિ, પ્રજાકર ગુપ્ત, કર્ણકગોમિ, ધર્મોત્તર અને શાંતિરક્ષિત-આમાંના બધાનો અકલંકે નિર્દેશરૂપે, ખંડનરૂપે, સમાલોચનારૂપે પોતાના ગ્રન્થમાં પરિચય કરાવ્યો છે. ભર્તૃહરિના સમાલોચક કુમારિલ, કુમારિલનું નિરસન કરનાર ધર્મકીર્તિ, ધર્મકીર્તિના દીકાકાર પ્રજાકર ગુપ્ત અને પ્રજાકર ગુપ્તના વાર્ત્તિકાલંકારની પછી રચાયેલી કર્ણકગોમિની દીકાની આલોચના કરનાર અકલંક કોઈ હિસાબે કુમારિલ અને ધર્મકીર્તિના સમકાલીન સિદ્ધ થઈ શકતા નથી. અર્થાત્ અકલંક ચરિતાંતર્ગત “વિક્રમાર્કશકાબ્દ” પદનો અર્થ કે. વા. ડૉ. કે. બી. પાઠકે કર્યો છે તેમ શક સંવત્ કરી શક સંવત્-૭૦૦ (ઈ. સ. ૭૭૮ માં) અકલંકનો કાર્યકાળ હતો તે વિસંવાદી બાબતોની એકવાક્યતા કરી ઐતિહાસિક અને અન્ય યુક્તિઓદ્વારા હું ઉપર પ્રમાણે સિદ્ધ કરું છું. ધૃત્યલભ.

*

૨૧ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ-૪૭.

૨૨ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ-૪૩.

૨૩ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ-૪૧.

સંસ્કૃતના કોશ સાહિત્યમાં અમર કોશનું સ્થાન

છે૦—પં૦ અંબાલાલ પ્રેમચંદ સાહ, વ્યાકરણતીર્થ; ભારતીય વિદ્યા મંડળ ।

*

કોશનું વૈજ્ઞાનિક મહત્ત્વ નહિ હોવા છતાં તે ભાષાશાસ્ત્રનું એક મહત્ત્વનું અંગ છે. ભાષાના બધા અંગોમાં વ્યાકરણ અને કોશ એ બે અતિ મહત્ત્વનાં અંગો છે, અને તેથી જ કોઈકે “વ્યાકરણ વિનાનો માનવી આંધળો અને કોશ વિનાનો બહેરો છે” એવી મતાર્થ ઉક્તિ કરી છે. વ્યાકરણ કેવળ યૌગિક શબ્દોની સિદ્ધિ કરી બતાવે છે પણ રૂઢ અને યોગરૂઢ શબ્દો માટે તો આપણે કોશનો જ આશ્રય લેવો પડે છે.

ભારતવર્ષમાં વૈદિકકાળથી જ કોશનું જ્ઞાન અને મહત્ત્વ સ્વીકારાયેલું હતું એ નિષ્કણ્ડકોશ ઉપરથી જાણી શકાય છે. વેદ પરના નિરુક્તકાર યાસ્કમુનિ આગળ નિષ્કણ્ડના જુદા જુદા પાંચ સંગ્રહો હતા; જેમાં પહેલા ત્રણમાં એક અર્થવાળા જુદા જુદા શબ્દોનો સમૂહ, ચોથામાં અઘરા શબ્દો અને પાંચમામાં વેદના જુદા જુદા દેવતાઓનું વર્ગીકરણ આપવામાં આવેલું હતું. એ નિષ્કણ્ડકોશ પાછળના પદ્ધતિસરના લૌકિક શબ્દકોશોથી જુદો પડે છે. નિષ્કણ્ડમાં ખાસ કરીને વેદઆદિ સંહિતાગ્રંથોના અસ્પષ્ટ અર્થોને સમજાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે જ્યારે લૌકિક કોશોમાં કવિઓ કે અન્ય શાસ્ત્રકારોને તેમના વિષયને ઉપયોગી એવા વિવિધ વિષયોના શબ્દોનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. નિષ્કણ્ડમાં કેવળ નામોનો જ સંગ્રહ નથી પણ ધાત્વાદેશોનો પણ સાથે સાથે સંગ્રહ કરેલો છે, જ્યારે લૌકિક કોશોમાં નામ, અવ્યય અને ક્લિગનો ઓધ કરનારા શબ્દોનો સંગ્રહ હોય છે. પહેલો કોશ વૈદિક ગ્રંથોમાંના વિષયની ચર્ચા પૂરતો મર્યાદિત છે; જ્યારે બીજો વાઙ્મય વિષયના સર્વ શબ્દોના અર્થો સમજાવનાર વ્યાપક શબ્દ ભંડારરૂપ છે.

નિષ્કણ્ડકોશ પછી યાસ્કના નિરુક્તમાં વિશિષ્ટ શબ્દોનો સંગ્રહ થયેલો મળે છે અને ત્યાર પછી પાણિનિની અષ્ટાધ્યાયીમાં યૌગિક શબ્દોનો વિશાળ સમૂહ કોશની સમૃદ્ધિનો વિકાસ કરતો જણાય છે.

૧ “અવૈયાકરણસ્ત્વન્મ્હો વધિરઃ કોશવિવર્જિતઃ ।”

૨ મા. યાકાળી વેદોનો રચના-કાળ ઈ. સ. પૂર્વે ૪૦૦૦, મેકડોનલ ૧૫૦૦ થી ૨૦૦૦, મેકસમૂલર ઈ. સ. પૂર્વે ૧૨૦૦ થી ૮૦૦ સુધી, જ્યારે ભારતીય પુરાતત્ત્વવિદ ઈ. ય. ગૌરીપ્રસાદે ઓગાલ વેદકાળની સમાપ્તિ ઈ. સ. પૂર્વે ૧૪૭૧ માને છે.

૩ યાસ્ક પાણિનિની પહેલાં થયા હરો; કેમકે તેમણે તેમના પૂર્વના વીરોક વૈયાકરણોનાં નામ ઉલ્લેખ્યાં છે; તેમાં શાકટાયન, ગાર્ગ્ય અને શાકલ્ય મહત્ત્વના છે, તેની સાથે પાણિનિનું નામ નથી. એટલે યાસ્કની પાછલી સીમા ઈ. સ. પૂર્વે ૫૦૦ લગભગ ગણાવી શકાય.

૪ પાણિનિનો સમય ઈ. સ. પૂર્વે આશરે ૪૦૦ નો મેકડોનલ વગેરે વિકાસોએ નક્કી કર્યો છે. જુઓ “સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસ” મેકડોનલ (ચૂંચરાતી) પૃ. ૧૬.

પાણિનિ મુધીના બધા કોશ જેવા એ ગ્રંથો આપણને મદદમાં જ ઉપલબ્ધ થાય છે; પણ ત્યાર પછીના લૌકિક કોશોની રચના અનુષ્ટુપ્, આર્યા વગેરે વૃત્તોથી પદ્યબદ્ધ કરવામાં આવેલી છે. આ કોશો ખાસ કરીને શબ્દોને કંઠસ્થ કરવાના ઉદ્દેશથી રચાયેલા હોય છે. પણ એમાં શબ્દને શોધી કાઢવાની કોઈ પદ્ધતિ રાખવામાં નથી આવી અને તેથી તેમાં આધુનિક પદ્ધતિ મુજબની અકારાદિ-અનુક્રમણિકા વગેરેની કોઈ ઓઠવણ મળી આવતી નથી. પ્રો. ક્રીથ જેવા વિદ્વાનો અનુમાન કરે છે કે “આવા પ્રકારની રચનાત્મક પદ્ધતિ કદાચ ધાતુપાઠ અને વ્યાકરણની બીજી સૂચિઓના અસ્તિત્વકાળથી જ વિકસી હશે.”

કોશોમાં ખાસ કરીને બે પ્રકારો અસ્તિત્વ ધરાવે છે. એકાર્થકોશ (Synonymous) અને બીજો અનેકાર્થકોશ (Homonymous). પહેલો કોશ એક જ અર્થના અનેક શબ્દોનું જ્ઞાન કરાવે છે; જ્યારે બીજો એક શબ્દના અનેક અર્થોનું સૂચન કરે છે.

સંસ્કૃત ભાષાના કેટલાક પ્રાચીન કોશકારોનાં નામ આપણને અર્વાચીન કોશકારો અને કાવ્યાદિ ગ્રંથોના ટીકાકારો આપે છે પણ તેમનો સમય, દેશ કે રચના વિષેના ઐતિહાસિક ઉલ્લેખો મળી શકતા નથી. અહીં તો બે કે કોશકારોનો જ નિર્દેશ પ્રસ્તુત છે છતાં કોશ-ધત્તર એવા કાવ્યાદિ ગ્રંથોના રચનારાઓ ‘વાલ્મીકિ, વ્યાસ, ‘ભાસ, ‘અશ્વધોષ, કાલિદાસ, ‘સિદ્ધસેન, ‘ભારવિ, ‘માઘ, ‘ભવભૂતિ જેવા મહાકવિઓના સમયનિર્ણય કરવાનાં પણ આપણી પાસે યથેષ્ટ પુરતાં અને નિશ્ચયાત્મક સાધન નથી.

૫ “A History of Sanskrit Literature” Keith P. 412.

૬ વાલ્મીકિ ના “રામાયણ” અને વ્યાસના “મહાભારત” માટેનો વિસ્તૃત ઉદ્ધાપોહ-જુઓ “સં. સ્મ. ઇ.” (૩૫.) પૃ. ૩૮૬.

૭ શ. કેશવલાલ હ. મુવના “સ્વપ્રવાસવદતા” માંનો “સાચું સ્વપ્ન” ઉપોદ્ધાત અને તે પર વિવેચન કરતો રા. આનંદશંકર બા. મુવનો “કાવ્યતત્ત્વવિચાર” માંનો “સાચું સ્વપ્ન” લેખ.

૮ બુદ્ધચરિતનો કર્તા અશ્વધોષ કનિષ્કનો સમકાલીન હતો. કનિષ્કનો સમય ઇ. સ. ૧૨૦-જુઓ “મારતકે પ્રાચીન રાજવંશ” વિશ્વેશ્વરનાથ રેવકૃત મા. ૨ પૃ. ૨૧૩ અને “Early History of India.” P. 257.

૯ સન્મતિતર્ક, ન્યાયાવતાર વગેરેના કર્તા જૈનાચાર્ય સિદ્ધસેન દિવાકર, વિક્રમીય પાંચમી શતાબ્દિમાં થયા. જુઓ “સન્મતિતર્ક” પં. સુખલાલજી અને પં. બહેચરદાસજી કૃત લા. ૧ નો ઉપોદ્ધાત.

૧૦ કિરાતાર્જુનીય કાન્થના કર્તા ભારવિનું નામ ઐહોલના ઇ. સ. ૬૩૪ ના શિલાલેખમાં કાલિદાસ સાથે ઉલ્લેખાયું છે. તેથી ભારવિનો સમય તે પૂર્વનો નિશ્ચિત થાય છે.

૧૧ શિશુવાલ્મીક કાન્થના કર્તા માઘ કવિનો સમય ક્રીલહોર્ને ઇ. સ. ૬૫૦ થી ૭૦૦ મુધીનો નિર્ણીત કર્યો છે. માધના પિતા કૃત્તક અને પિતામહ સર્વાશ્રય બન્ને લિજ્જમાલના રાજા વર્મલાતના મંત્રી હતા-એમ કવિ પોતે જ પ્રશસ્તિમાં લખે છે. વર્મલાતનો ઇ. સ. ૬૨૫ નો શિલાલેખ મળી આવેલ છે તેથી તેઓ ઇ. સ. ૭૦૦ પછી તો થયા નહિ હોય. પ્રો. ચાકાબી તો માધને બાણ અને સુબંધુનીયે પહેલાં એટલે જહા સૈકાના મધ્ય કરતાં વધારે અર્વાચીન નથી માનતા.

૧૨ ચીરચરિત, હસરરામ અને માલતીમાધવ એ ત્રણે નાટકોના કર્તા ભવભૂતિ અને ગૌડકવિઓના કર્તા ચાંપતિરાજ-એ બંને કાન્થકુળ (કનોજ) ના રાજા ચસોવર્માની સલામાં હતા. કાસ્મીર નરેશ લલિતાદત્તે (મુક્તાપોદ) ઇ. સ. ૭૪૧ લગભગમાં મહાઈ કરી ત્યારે તે યુદ્ધમાં મરાઓ. જુઓ “જા. ૧ મા. ૨ પૃ. ૩૭૬.

કાવ્યાદિના ટીકા-ગ્રંથોમાં આવતા કોશ અને કોશકારોના નામોનો ઉલ્લેખ જે આપણને જોવા મળે છે તેમાં કાત્યાયનની નામમાલા, વાચસ્પતિનો શબ્દાર્ણવ, વિક્રમાદિત્યનો સંસારાવર્ત, વ્યાડિનો ઉત્પલિની, ભાગુરિનો ત્રિકાષ્ઠ, ધન્વંતરિનો નિષ્કણ્ડ વગેરે મુખ્યપણે છે. આ સિવાય ^{૧૩}બાણ, મયૂર, મુરારિ અને શ્રીહર્ષના નામે ચડેલા કોશોમાં શ્લેષાર્થપદસંગ્રહ છે; જે એક જ શબ્દને બે અર્થમાં ઉપયોગ કરવાનું સૂચવે છે. આ કોશગ્રંથો આજે આપણને ઉપલબ્ધ નથી. વેળરના હસ્તલિખિત ગ્રંથોની સૂચિમાં ખતાવ્યા પ્રમાણે, કાશ્ગરમાંથી એક કોશનો ત્રુટિત ભાગ તેમને જોવા મળ્યો હતો, પરંતુ તે કયો કોશ હશે તેનો નિર્ણય કરાયો નથી.^{૧૪}

ઉપલબ્ધ કોશોમાં અમરસિંહનો નામલિંગાનુશાસન કોશ; જે અમરકોશના અપરનામે પણ ઓળખાય છે; તે જ અત્યારે તો સાંથી પ્રાચીન કોશ માનવામાં આવે છે.

આ કોશનો કર્તા કવિ અને વैयाકરણ હતો, એવો ઉલ્લેખ આપણને મળે છે; પરંતુ તેનો કવિતાનો કે વ્યાકરણનો કોઈ ગ્રંથ હજી મુદ્દી જ્ઞાત થયો નથી.

પ્રસિદ્ધ આઠ વैयाકરણોમાં અમરસિંહ પણ એક હતો એવું એક શ્લોક આપણને પ્રમાણ આપે છે:-

“इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शकटायनः ।

पाणिन्यमर-जैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ॥”

આ સિવાય તેના તરફ કટાક્ષના ઉદ્દેશથી કોઈ શ્રાદ્ધાશુ વિદ્વાને કરેલી નિન્દાબ્ધ-જક ઉક્તિથી તેનું પ્રૌઢ વैयाકરણત્વ સૂચિત થયા વિના રહેતું નથી. એ ઉક્તિ તે

“अमरसिंहो हि पापीयान् सर्वं भाष्यमचचुरत् ।”

એ છે. આ પંક્તિથી જાણી શકાય છે કે મહાભાષ્યના તત્ત્વને જાણનારા વિદ્વાનોને તે એક પ્રખર વैयाકરણ તરીકે પ્રતીત થયેલો હોવો જોઈએ. અને તેથી જ તેણે સંગ્રહેલા શબ્દોથી મહાભાષ્યનું મહત્ત્વ ઘટવાનો ભય લાગતાં તેને પાપી કહી તિરસ્કાર્યો હશે.

અમરકોશ પહેલાંના પ્રાચીન કોશોમાંના કોઈ, કયાં તો કેવળ નામાનુશાસન અને અને ક્યાં તો કોઈ કેવળ લિંગાનુશાસન દર્શાવનારા હતા, અને કેટલાક અસ્તવ્યસ્ત કે બહુ વિસ્તૃત હતા તેથી સહજસાધ્ય નહોતા; અને તેથી જ એ કોશોમાંથી પ્રાયઃ કોઈ પણ, ઉપયોગના અભાવે, સુરક્ષિત રહી શક્યા નથી. જ્યારે અમરકોશમાં નામાનુશાસન, લિંગાનુશાસન, અવ્યય અને નાનાર્થનો પણ સમાવેશ કરવામાં આવ્યો છે અને ટુંકાણુમાં લગભગ બધા વિષયોના શબ્દોનો ઉત્તમ સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. તેમાં ત્રણ કાંડો છે અને એ ત્રણ કાંડોમાં અનેકાનેક વિષયોનો સંગ્રહ થયેલો છે. જેમ કે -

પ્રથમ કાંડમાં—(૧) સ્વર્ગ, (૨) વ્યામ, (૩) દિગ્, (૪) કાલ, (૫) ધી, (૬) શબ્દ, (૭) નાઘ્ય, (૮) પાતાલ, (૯) નરક, (૧૦) વારિ.

૧૩ કાદમ્બરી અને હર્ષચરિત ગ્રંથના કર્તા બાણભટ્ટ છે. મયૂર પણ તેનો સમકાલીન હતો. તેઓ હર્ષવર્ધનના આશ્રિત હતા. પ્રો. એડમ્સ અને ડૉ. આમના ગણિતાનુસાર હર્ષનો રાજ્યારોહણ અને હર્ષ સંવત પ્રચલિત કરવાનો સમય ૬૦૬ નક્કી થયો છે. જુઓ “ભારતીય પ્રાચીન લિપિમાળા” પૃ. ૧૭૭.

૧૪ ‘A History of Sanskrit Literature’ Keith P. 413.

ખીજ કાંડમાં—(૧) ભૂમિ, (૨) પુર, (૩) શૈલ, (૪) વનૌષધિ, (૫) સિંહાદિ,
(૬) મનુષ્ય, (૭) ઘ્રજા, (૮) ક્ષત્રિય, (૯) વૈશ્ય, (૧૦) શુદ્ર.

ત્રીજા કાંડમાં—(૧) વિશેષ્યનિધન, (૨) સંકીર્ણ, (૩) નાનાર્થ, (૪) અવ્યય,
(૫) લિંગાદિસંગ્રહ.

આમ લગભગ ૧૫૦૦ અનુષ્ટુપ્ શ્લોકોનો આ કોશ, શબ્દોનો બહુજ મુંદર સંગ્રહ ધરાવે છે અને કર્તાના નામ પ્રમાણે જ એ કોશ સાહિત્યમાં અમર સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે. આથી જ કોઈ મુગ્ધ કવિએ અમરને ૨૬ કોશ અને કોશકારોમાં અમર તરીકે વર્ણવ્યો છે—

મેદિન્યમરમાલા ચ ત્રિકાણ્ડો રત્નમાલિકા ।
રન્તિદેવો ભાગુરિશ્ચ વ્યાહિઃ શબ્દાર્ણવસ્તથા ॥
દ્વિરૂપશ્ચ કલિક્લ્લશ્ચ રમસઃ પુરુષોત્તમઃ ।
દુર્ગોઽભિધાનમાલા ચ સંસારાવર્ત-શાશ્વતૌ ॥
વિશ્વો વોપાલિતશ્ચૈવ વાચસ્પતિ-હલાયુધૌ ।
હારાવલી સાહસાક્કો વિક્રમાદિત્ય એવ ચ ॥
હેમચન્દ્રશ્ચ રુદ્રશ્ચાપ્યમરોઽયં સનાતનઃ ।

एते कोशाः समाख्याताः सङ्ख्या पदविंशति स्मृताः ॥

અમરસિંહે પોતાના પૂર્વના કોશો અને કાવ્યોમાંથી શબ્દોનો સંગ્રહ કર્યો છે; એવું એ કોશના પ્રાસ્તાવિક-કથન-શ્લોકથી જણાઈ આવે છે:—

“समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः ।

संपूर्णमुच्यते वर्गेर्नामलिङ्गानुशासनम् ॥”

અમરકોશના પ્રાચીન ટીકાકાર ક્ષીરસ્વામી, જેઓ ૧૧ મી શતાબ્દમાં થઈ ગયા છે અને વંદ્યગતીય સર્વાનંદ, જેમનો સમય સને ૧૧૫૯ નો છે—તે અને તેમના પૂર્વવર્તી કોશો અને તેના પ્રણેતાઓનાં નામો નોંધે છે. આથી જણાઈ આવે છે કે, અમરસિંહને પોતાના કોશના રચના સમયે એ બધા કોશો ઉપલબ્ધ હશે અને તેમનો પૂર્ણ રીતે પોતાના કોશમાં તેમણે ઉપયોગ કર્યો હશે.

અમરકોશ અભ્યાસીઓને કેટલો બધો પ્રિય થઈ પડ્યો છે તેનું સહજ અનુમાન, પ્રાપ્ત થતી એ કોશની અનેક ટીકાઓ ઉપરથી આપણે બાંધી શકીએ.

(૧) અમરકોશોદ્ઘાટનમ્—કર્તા: ક્ષીરસ્વામી (૧૧મી શતાબ્દ). આ ટીકામાં ^{૧૫}ભોજ, ^{૧૬}રાજશેખર, ^{૧૭}ભટ્ટિ, માઘ વગેરેનાં નામોનો ઉલ્લેખ છે.

૧૫ ભોજનો સમય તેના દાનપત્ર અનુસારે ઇ. સ. ૧૦૨૧ (વિ. સં. ૧૦૭૮) નો નક્કી છે.

૧૬ કર્પૂરમંજરી, વિદ્યશાલમંજરિકા, બાલરામાયણ અને પ્રચન્ડપાણ્ડવ (બાલમારત) નો કર્તા રાજશેખર પ્રતિદાર રાજા મહેન્દ્રપાલનાં સુર હતા. તે ઇ. સ. ૬૦૦ માં થયો.

૧૭ મટ્ટિકાવ્યનો કર્તા ભટ્ટિ, જે અંત્રીશ્વર તરીકે પ્રસિદ્ધ હતો તે વલ્લભી (વળા) ના ચોથા ધર-સેનના રાજ્યકાળ ઇ. સ. ૬૪૧ થી ૬૫૧ માં થયો.

- (૨) અમરદીપિકા (?)—કર્તા: વંદગતીય સર્વાનંદ (સને ૧૧૫૬)
 (૩) પદચન્દ્રિકા—કર્તા: રાયમુકુટ (શકાબ્દ ૧૩૫૩+૭૮ = સને ૧૪૩૧).
 આ ટીકામાં આવતા સોળ અંથકારોનાં નામોનો
 ઉલ્લેખ ડૉ. ભાંડારકરે કર્યો છે.
 (૪) બુધમનોહરા—કર્તા: સ્વયંપ્રકાશના શિષ્ય વેદાંતી મહાદેવ. આમાં મુકુ-
 ટનું નામ આવે છે.
 (૫) પીયૂષવ્યાખ્યા—કર્તા: રામકૃષ્ણ દીક્ષિત. આમાં પણ મુકુટનું નામ
 આવે છે.
 (૬) અમરચન્દ્રિકા—કર્તા: પરમાનંદ મૈથિલ. આ ટીકા મુકુટના સારરૂપે છે.
 (૭) પદવિવૃત્તિ—કર્તા: ક્ષિગસૂરિ.
 (૮) વ્યાખ્યાસુધા—કર્તા: ભાનુજી દીક્ષિત.
 (૯) અમરવિવેક—કર્તા: મહેશ્વર.

આ સિવાય બીજી અવાંચીન ટીકાઓને જો ગણીએ તો લગભગ તેની સંખ્યા ત્રીશેક જેટલી થવા જાય છે. આ ટીકાકારો અને તેના અભ્યાસીઓની બહુલતાથી જાણી શકાય છે કે આ કોશ આજે પણ કેટલો લોકપ્રિય છે.

અમર નામના અનેક વિદ્વાનો થઈ ગયાના ઉલ્લેખો આપણા સાહિત્યમાંથી મળે છે. અમરસિંહ નામનો એક વિદ્વાન વિક્રમની રાજસભાના નવરત્નોમાંનો એક હતો એવું કથન નીચેના શ્લોકમાં મળે છે

“ધન્વન્તરિઃ ક્ષપણકોઽમરસિંહ-શકુ-
 વેતાલ-મટ્ટિ-ઘટસ્વર્પર-કાલિદાસાઃ ।
 રૂપાતો વરાહમિહિરો નૃપતેઃ સભાયાં
 રત્નાનિ વૈ વરરુચિર્નવ વિક્રમસ્ય ॥”

કાલિદાસના સમય-નિર્ણય માટે જ્યાં ત્યાં આ પદનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવે છે પણ એનું પ્રામાણ્ય સિદ્ધ થઈ શક્યું નથી. કેમકે આમાં “વરાહમિહિરનેકે” જેનો સમય લગભગ છઠી શતાબ્દિ છે, તેને વિક્રમ સંવત્ પ્રવર્તક વિક્રમાદિત્યનો સમકાલીન કહેવામાં આવ્યો છે. પણ આ વિક્રમ તે કોણ અને તે ક્યારે થઈ ગયો એ વિષે હજી કશો ચોક્કસ નિર્ણય વિદ્વાનો કરી શક્યા નથી. કારણ કે વિક્રમ નામના અનેક રાજાઓ થઈ ગયા છે. તેથી આ પદમાં જણાવેલો વિદ્વાન અમરસિંહ પણ કોણ હતો અને તે ક્યારે થઈ ગયો તે વિષે કશું નિશ્ચિત કહી શકાય તેમ નથી; પરંતુ કેટલાક વિદ્વાનોનું મંતવ્ય છે કે આ જ અમરસિંહ “અમરકોશનો” કર્તા હોવો જોઈએ.

આ રીતે અમરસિંહ કોણ અને કયા પ્રાંતનો તેમ જ કયા સમયમાં વિદ્યમાન હતો વગેરે પ્રશ્નો પર પ્રકાશ પાડવાને આપણી પાસે કંઈ ખાસ સાધન નથી. કેવળ એ કોશની રચનામાંથી પ્રાપ્ત થતા કેટલાક શબ્દો પરથી જો કંઈ અનુમાન બાંધી શકાય છે, તે

૧૮ “इतिहासप्रवेश” जयचंद विद्यालंकार कृत, भा० १, पृ० २३२.

૧૯ અમરકોશ મૂલમાત્ર । (નિર્ણયસાગરપ્રેસ) પં. ૧૧.

પરથી તેમજ અમરકોશના મંગલાચરણ અને રચના-શૈલી પરથી તે ધર્મે 'બૌદ્ધ' હશે એમ માનવામાં આવે છે. કેમકે તેણે "અમરા નિર્જરા દેવાલ્લિદશા વિબુધાઃ સુરાઃ" એ શ્લોકોથી દેવોનાં નામો ગણાવી તરત જ બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, મહેશ્વરની નામ-ગણના પહેલાં જ ^{૨૦}"સર્વજ્ઞો સુગતો બુદ્ધઃ"નું વર્ણન કરીને મંગલાચરણમાં વર્ણવેલા "યસ્ય જ્ઞાન-દયાસિન્ધોઃ" એ અર્થને પ્રસ્ફુટ-વિશદ કર્યો હોય તેમ લાગે છે. બૌદ્ધ ગ્રંથકર્તા પોતાની કૃતિમાં પોતાના ઇષ્ટદેવ બુદ્ધ ભગવાન, જેઓ જ્ઞાન અને દયાના સાગર છે, તેમના ગુણોનું સ્મરણ કરે એ સ્વાભાવિક છે.

ક્ષીરસ્વામી અમરસિંહને જિનધર્માનુયાયી સમજે છે અને જિનમનુસ્ય જેવાં પદો જ્યાં ત્યાં ઉલ્લેખે છે, પરંતુ આ જિનનો અર્થ અહિં જૈનધર્માનુયાયી તરીકે અભિપ્રેત ન હોઈ-જેમકે કેટલાક માને છે તેમ-જિન એટલે બુદ્ધ એ અર્થ લેવાનો છે. અને એથી જ કોઈ બ્રાહ્મણ વિદ્વાને તેને

અમરસિંહો હિ પાપીયાન્ સર્વ માળ્યમચૂચુરન્
એ ઉક્તિથી તેને તિરસ્કાર્યો છે અને તેને 'પાપી' તરીકે સંબોધ્યો છે.

બીજું - ^{૨૧}"ધર્મરાજૌ જિન-યમૌ" એ શ્લોકમાં યમ શબ્દનો પૂર્વનિપાત ન કરતાં જિન શબ્દનો જે પૂર્વનિપાત કરવામાં આવ્યો છે તે પણ કર્તાનું બૌદ્ધ હોવાનું સૂચવે છે. કેમકે વ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે [^{૨૨}"લઘ્વક્ષરાડ્ઝીઢૂતઃ" એ સૂત્રથી] અદ્યાક્ષર યમનો પૂર્વનિપાત થાય, પણ અર્ચ્યવાચી-પૂજ્યવાચી શબ્દ હોય તો તેનો અદ્યાક્ષરની પૂર્વમાં પણ નિપાત થાય એ ઉપનિયમના આધારે બૌદ્ધ કર્તા પોતાના ઇષ્ટદેવ બુદ્ધના અપર પર્યાયનો પૂર્વનિપાત કરે છે. અહીં ગ્રંથકર્તા જે વૈદિક હોત તો જિનની અપેક્ષાએ યમનું અદ્યાક્ષરત્વ અને પૂજ્યત્વ ગણીને જિનની પૂર્વમાં તેનો નિપાત કરત.

ત્રીજું-ગ્રંથમાં યોગેલા ^{૨૩}બોધિદ્રુમ અને ^{૨૪}પદ્મક જેવા અને બીજા એવા શબ્દો

૨૦ અ૦ કો૦ મૂ૦ (નિ૦ સા૦) પં. ૨૫

૨૧ અ૦ કો૦ મૂ૦ (નિ૦ સા૦) પં. ૧.

૨૨ અ૦ કો૦ મૂ૦ (નિ૦ સા૦) પં. ૨૬, ૧૬.

૨૩ સિદ્ધહેમશબ્દાનુશાસન-સૂત્ર ૨-૧-૬૦.

૨૪ બોધિદ્રુમ-પાંપળનું વૃક્ષ. બુદ્ધગયામાં ગૌતમબુદ્ધને બુદ્ધત્વની પ્રાપ્તિ પાંપળ નીચે થઈ હતી, તેથી તેને બોધિદ્રુમ કહેવામાં આવે છે.

૨૫ એડુક-બૌદ્ધ સમાધિસ્તૂપ. બૌદ્ધધર્માવલંબી ત્રિપિટકાચાર્ય જેવા આદરણીય વ્યક્તિઓનાં હાક-કાંને જમીનમાં ઢાળી દઈ, તેના પર ચારે બાજુએ ઊંચી દિવાલો બાંધી દેવામાં આવે છે. અને બૌદ્ધો તેવા સમાધિ-સ્તૂપોની પૂજા કરે છે. આવા સ્તૂપો ભારતવર્ષમાં ઘણે સ્થળેથી મળી આવ્યા છે. મહાભારતના વનપર્વમાં લખ્યું છે કે-

"પદ્મકાન્ પૂજયિષ્યન્તિ વર્જયિષ્યન્તિ દેવતાઃ ।" (૧૧૦-૬૫)

"પદ્મકવિહ્વા પૃથ્વી ન દેવગૃહમૃષિતા ।" (૧૧૦-૬૭)

અર્થાત્ બૌદ્ધકાળ (કલિયુગ) માં લોકો સ્તૂપોની પૂજા કરશે, ભારતવર્ષમાં દેવતાઓનાં મંદિર નહીં કરો પણ પૃથ્વી સ્તૂપોથી જ આરાધન કરશે. જુઓ - Edukas = Buddhist stupas. "History of India" K. P. Jaysawal - 150 A. D. - 350 A. D. P. 47.

જે સંખ્યાન્તર કે પ્રકારાન્તરે ઔદ્ધ પરિભાષાને લગતા બની શકે, તેવા શબ્દોથી પણ તેમનું ઔદ્ધપણું સ્પષ્ટ સમજી શકાય છે.

અમરસિંહ ક્યા સમયમાં વિજયાન હશે એનો કાંઈક આભાસ અમરકોશના કેટલાંક અવાન્તર પ્રમાણેથી કરી શકાય તેમ છે.

(૧) અમરકોશનો છઠ્ઠી શતાબ્દિમાં ચીનીભાષામાં અનુવાદ થયો અને તે ઉબ્જોનીના ગુણરાતે કર્યો હતો, તેથી અમરસિંહ તે પૂર્વમાં થયો હોવો બેઠે એ એ નિશ્ચિત છે.

(૨) અમરકોશમાં “^{૨૬}દ્વૌ દ્વૌ માર્ગાદિમાસૌ સ્યાદ્દતુઃ ૧” આ ઉલ્લેખથી સ્પષ્ટ થાય છે કે અમરસિંહના સમયમાં માર્ગશિર માસથી વત્સરાસલ થતો હોવો બેઠે એ અને જ્યોતિષશાસ્ત્રની ગણનાનુસાર આ સમય લગભગ ૧૫૦૦-૧૬૦૦ વર્ષ પૂર્વે હતો. તેથી અમરસિંહ ચોથી શતાબ્દિમાં થયેલ હોય એમ માની શકાય.

(૩) પોતાના કોશમાં સાંખ્યમતનો આ રીતે ઉલ્લેખ કરે છે - “^{૨૭}ક્ષેત્રજ્ઞ આત્મા પુરુષઃ પ્રધાનં પ્રકૃતિઃ સ્ત્રિયામ્” - કપિલના આ મતમાં વિશ્વવાસી ઈશ્વરકૃષ્ણે પોતાની સાંખ્યકારિકામાં સુધારો કર્યો છે. અમરસિંહ કહે છે કે, “^{૨૮}અન્તરામવત્સ્ત્વેષ્ઠે ગન્ધર્વો દિવ્યગાયત્રે” આમાંનો અન્તરામવ શબ્દ ગંધર્વવાચક છે. જ્યારે - “^{૨૯}કુમારિલલદ આનું ખંડન કરતાં કહે છે કે -

“અન્તરામવદેહસ્તુ નૈષ્યતે ચિન્ચ્યાવાસિના ।

તદસ્તિત્વે પ્રમાણં હિ ન કિચ્ચિદવગમ્યતે ॥”

અર્થાત્ અન્તરામવત્સ્ત્વનો સિદ્ધાન્ત વિશ્વવાસી (ઈશ્વરકૃષ્ણ) સ્વીકારતા નથી. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ઈશ્વરકૃષ્ણદ્વારા પ્રચાર પામેલા આ સાંખ્યદર્શનનું સુધરેલું સ્વરૂપ અમરસિંહને માલુમ ન હતું. તેથી અમરસિંહ ^{૩૦}ઈશ્વરકૃષ્ણની પૂર્વે થયો હોવો બેઠે એ. ઈશ્વરકૃષ્ણનો સમય પાંચમી શતાબ્દિનો નિર્ણય થયો છે.

(૪) બે કે તે ઔદ્ધ હતો છતાં પાણિનિના સૂત્ર “^{૩૧}સમા રાજા મનુષ્યપૂર્વા” અનુસારે તેણે “શાલાડર્ષાપિ પરા રાજા મનુષ્યાર્ષાદવાચકત્” એવો અર્થ માન્ય રાખ્યો છે.

૨૬ અ૦ કો૦ મૂ૦ (નિ૦ સા૦) પં. ૨૪૩.

૨૭ અ૦ કો૦ મૂ૦ (નિ૦ સા૦) પં. ૨૭૨.

૨૮ અ૦ કો૦ મૂ૦ (નિ૦ મા૦) પં. ૨૬૦૦.

૨૯ “ક્લોકવાર્તિક” વગેરે ગ્રંથોના કર્તા કુમારિલલદનો સમય ઇ. સ. ૭૦૦-૭૬૦નો કેટલાક વિદ્વાનોએ નક્કી કર્યો છે.

૩૦ “સાંખ્યકારિકા”નો કર્તા ઈશ્વરકૃષ્ણ ઇ. સ. ૫૫૭ થી પૂર્વમાં થયો છે. કેમ કે ઉક્ત ગ્રંથનો ઇ. સ. ૫૫૭ થી ૫૮૩ સુધીમાં ચીનીભાષામાં અનુવાદ થયો હતો. એટલે તે અમરસિંહનો સમકાલીન કે પછીનો હોવો બેઠે એ.

૩૧ “મહાવ્યાસી” પામિનીવ - સૂત્ર - ૨-૪-૨૩. જુઓ “સિદ્ધાન્તકોમુદી” ભરૂચ ઇશ્વિત્ર પુસ્તકાલય (નિ૦ સા૦) પૃ. ૧૮૧.

પરંતુ ઔદ્ધ વૈયાકરણ ચંદ્રગોમિનના “જિજ્ઞાર્થાદરાજઃ સમા” ના અર્થને સ્વીકાર્યો નથી. એથી આની શકાય છે કે અમરસિંહ ચંદ્રગોમિનથી પૂર્વમાં થયો હશે.

ઉપર્યુક્ત પ્રમાણોથી એટલું તો નક્કી થઈ શકે છે કે અમરસિંહ પાંચમી શતાબ્દ પછી તો નથી થયો. બેશક, એક પ્રમાણ એવું છે કે અમરસિંહને કાલિદાસના પૂર્વનો નહિ તો સમકાલીન માનવાને કારણ આપે છે:—કાલિદાસે “રઘુવંશ અને કુમારસંમવ વગેરેમાં દૂતી શબ્દનો દૂતિ એવો હસ્ત પ્રયોગ જ જ્યાં ત્યાં મૂક્યો છે; જ્યારે અમરસિંહે દૂતી એવો દીર્ઘ પ્રયોગ નોંધ્યો છે, હસ્ત ઉલ્લેખ્યો નથી. આથી તે કાલિદાસનો પૂર્વવર્તી હોવો ભેદ છે, અને જો સમકાલીન હોય તો, પોતાનો સમકક્ષ વિદ્વાન સમજી એ શબ્દ સ્ખલનારૂપ ગણી તેને અવગણ્યો હોય. આવા મોટા કવિને, તેના પછીનો વિદ્વાન ઉપેક્ષવાનું સાહસ ન કરી શકે. છતાં કેટલાક વિદ્વાનો આ દૂતિ પ્રયોગને અશુદ્ધ ગણે છે. સ્વયં ટીકાકાર જ કહે છે કે—છન્દોમજ્જમયાદ્ હસ્તઃ; છતાં આ પ્રશ્ન વિચારણીય તો ગણાય જ. પણ કાલિદાસ જો, લાઉ દાણ જેવાના અભિપ્રાય મુજબ, છઠી શતાબ્દનો હરે તો પછી આ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થતો નથી.

કોશની રચના

અમર પછી તો કોશ—સાહિત્યમાં પૂર આવ્યું હોય તેમ લાગે છે. અમરકોશ પર વિશિષ્ટ શબ્દોની અનુપૂર્તિરૂપે રચેલો પુરુષોત્તમદાસનો ત્રિકાંડશોષ; આર વર્ષના પ્રયત્ન પછી એકાર્થ અને અનેકાર્થનો સંગ્રહ કરતો નાનો હારાલી કોશ, જે અગત્યના ઔદ્ધ ગ્રંથોમાંના વિશિષ્ટ શબ્દોનો સંગ્રહ આપે છે; શાશ્વતનો અનેકાર્થસમુચ્ચય—જે લગભગ અમરકોશ જેટલો પ્રાચીન હશે—તેમાં અનેકાર્થ શબ્દો આખા, અર્ધા કે પા સ્લોકમાં આપી શકાય તેટલા આખ્યા છે અને તેમાં અવ્યયોનો પણ સમાવેશ કર્યો છે.

બીજા કોશો નિશ્ચયરૂપે પાછળથી રચાયેલા છે. ઈ. સ. ૯૫૦ પછી કવિ અને વૈયાકરણ તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામેલા હલાયુધની ‘અભિધાનરત્નમાલા’ અને તેથી એક શતાબ્દ પછી રચાયેલો યાદવપ્રકાશનો વૈજયન્તી—જેમાં શ્રુતિ (Syllable) લિંગ અને આદ્ય વર્ણથી લઈને વ્યંજનાન્ત સુધીની ક્રમપૂર્વકની રચના છે—કોશસાહિત્યનો અનોખો ગ્રંથ ગણાવી શકાય.

એ પછી બારમી સદીમાં આપણને અનેક પ્રકારના કોશોની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેમાં સંસ્કૃત—સાહિત્યના અનેક વિષયના ગ્રંથોની રચનાથી વિદ્વાનોમાં ઉચ્ચતર સ્થાન મેળવનાર ઈ. સ. ૧૦૮૮—૧૧૭૨ માં થયેલા શ્રીહિમચન્દ્રાર્યાયનું કોશ—સાહિત્યમાં પણ મહત્ત્વનું અને નોંધવાયોગ્ય કાર્ય ગણાવી શકાય. તેમણે એકલાએ જ છ કોશગ્રંથો

૩૨ “ચાન્દ્રબ્યાકરણ”ના કર્તા ઔદ્ધ ચંદ્રગોમિને પોતાના વ્યાકરણમાં ભજવદ્ ગુપ્તો જ્ઞાનાન્ એવં ઉદાહરણ મૂક્યું છે. તે પરથી ભણી શકાય છે કે સ્કન્દગુપ્તે હજી પર જે સામાન્ય વિજય મેલ્યો તેનો સમય ઈ. સ. ૪૫૫ થી ૪૬૭ લગભગનો છે અને યશોધર્માએ જે સંપૂર્ણ વિજય મેળવ્યો તેનો સમયકાળ ઈ. સ. ૪૬૦ થી ૫૨૦ છે. તેથી ચંદ્રગોમિનનો સમય ઈ. સ. ૪૬૦ પછીનો કદપી શકાય.

૩૩ “રઘુવંશ”નો સર્ગ ૧૬ વા સ્લોકો ૧૮—૨૩—૩૩ અને “કુમારસંમવ”નો સર્ગ ૪ નો સ્લોક ૧૬.

રચ્યા છે. તેમાંનો અભિધાનચિન્તામણિ છ કાંડમાં એકાર્થ શબ્દોનો સંગ્રહ આપે છે. આ કોશને બિંબ બિંબ ગ્રંથોના ટીકાકારોએ ખૂબ અપનાવ્યો છે એમ અનેક ટીકા-ગ્રંથોમાં મળી આવતા એના વિષેના ઉલ્લેખોથી માલુમ પડે છે. તેની રચના દેવાધિદેવ-કાંડથી પ્રારંભ થાય છે જેમાં જૈનોના તીર્થંકર દેવો, ગણધરો, તીર્થંકર-અતિશયો, મોક્ષ, શ્રમણ, યમ-નિયમ વગેરે વિષયના શબ્દોથી શરૂઆત થાય છે. અને અંતે ભાવવાચક નામો, વિશેષણો અને નિપાતના શબ્દો આપી પૂર્ણ કરે છે. તેની અનુપૂર્તિ-રૂપે વનસ્પતિશાસ્ત્ર સંબંધી બીજે નિષ્પટ્કોશ છે. ત્રીજે કોશ અનેકાર્થસંગ્રહ-જે છ કાંડમાં છે અને એક શ્રુતિ (Syllable) થી શરૂઆત કરી છ શ્રુતિ સુધીના આઠ વર્ણથી લઈને વ્યંજનાન્ત સુધીના ક્રમે ગોઠવાયેલા શબ્દો આપે છે. આ કોશનો પણ ટીકાકારો વારંવાર ઉલ્લેખ કરે છે. ચોથો કોશ હૈમલિજ્ઞાનુશાસન-જેમાં એકાર્થ અને અનેકાર્થ-એ બંને કોશોમાં આવેલા શબ્દોના લિંગભેદની સમજણ બિંબ બિંબ છંદબદ્ધ પદ્યોમાં સ્વોપજ ટીકાસાથે આપેલી છે. તેવો જ પાંચમો કોશ 'उणादिसूत्र'-જે સિદ્ધ-હેમશબ્દાનુશાસન અન્તર્ગત સૂત્રોની સાધનિકા પૂર્વક વૃત્તિસહિત છે. અને છઠ્ઠો દેશી-નામમાળા. આ કોશ વાસ્તવિકરીતે દેશી એટલે પ્રાકૃત ભાષાનો છે છતાં તેનું એક યા બીજી રીતે સંસ્કૃત સાથે નિકટ સંબંધ ધરાવતું મહત્વ છે.

દેશીનામમાળામાં દેશ્ય શબ્દોનો સંગ્રહ છે અને તે પ્રાકૃતભાષાના શબ્દોના વિકાસ ઉપર અપૂર્વ પ્રકાશ પાડે છે. હેમચંદ્ર પોતાના એ દેશ્ય કોશમાં અભિમાન ચિહ્ન, ગોપાલ, દેવરાજ, દ્રોણ, ધનપાલ, પાદલિખાચાર્ય, રાહુલક અને શીલાંક નામના પુરાતન દેશીકોશકારોનાં નામોનું સ્મરણ કરે છે. છતાં તેમાંના ધનપાલના પાદલલચ્છીનામમાળા સિવાયનો બીજા કોઈનો કોઈ ગ્રંથ અસ્તિત્વ ધરાવતો નથી. આ કોશની રચના આધુનિક પદ્ધતિ મુજબ અકારાદિ ક્રમથી થયેલી છે. તેમાં એક અક્ષર, દ્વિ અક્ષર વગેરેનો ક્રમ છે. જે અક્ષરથી આરંભ થનાર શબ્દ જ્યાં ગણવામાં આવ્યો છે ત્યાં તેવા નાનાર્થ શબ્દો પણ સંગ્રહા છે. ત્યાં જેટલાં ઉદાહરણ એક ગાથામાં આવી શકે તેટલાંને ઠાંસીને ભરવામાં આવ્યાં છે. આમાંનાં કેટલાક શબ્દો તો તે સમયના રીતરિવાજ અને વિનોદના પણ સૂચક છે.

આ કોશની સ્વોપજ-ટીકામાં ^{૩૪}ધનપાલ કવિની પાદલલચ્છીનામમાળા-જે તેણે પોતાની બહેન સુંદરી માટે ઈ. સ. ૯૭૨ માં રચેલી છે, તેનો ઉપયોગ શ્રીહેમચંદ્રે ખૂબ કર્યો છે. અને ધનપાલને ^{૩૫}વ્યુત્પત્તિર્ધનપાલતઃ કહીને ખૂબ સન્માન્યા છે.

એ પછી ધનંજય કવિની નામમાળા છે-જે ઈ. સ. ૧૧૨૩ થી ૧૧૪૦ ના અરસામાં રચાયેલી છે. તેમાં એકાર્થના ૨૦૦ અને અનેકાર્થના ૫૦ મળીને ૨૫૦ શ્લોકોમાં અત્યંત પ્રચલિત શબ્દોને સરસ રીતે સંગ્રહવામાં આવ્યા છે.

૩૪ “લિલકમલરી” વગેરેના કર્તા ધનપાલ માટે જુઓ-“પ્રમાવકચરિત”માંનો મહેન્દ્રસુત્રપ્રગ્વજ અને “જ્ઞેનસાહિત્ય સંસોધક” ખંડ ૩ નો અંક ૩ પૃ. ૨૫૦.

૩૫ “અભિધાનચિન્તામણિ” કોશની વિજ્ઞાનના ગ્રંથભાષ્યરજુનો શ્લોક ૩.

એ પછી જૈન વિદ્વાનોએ રચેલા કોશોમાં વિશ્વલોચન કોશ અને સાધુસુંદરગણિનો શન્દરક્ષાકર કોશ પણ ગણાવી શકાય.

ત્યારપછી મહેશ્વરનો વિશ્વપ્રકાશ સને ૧૧૧૧, મંખનો સ્વોપજ્ઞટીકાયુક્ત અનેકાર્ય કોશ સને ૧૧૫૦ નો છે; જેમાં અમર, શાશ્વત, હલાયુધ, અને ધન્વંતરિ વગેરેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. જો કે આ કોશ કંઈક પાછળનો છે. તે પછી કેશવસ્વામીનો નાનાર્થ-ર્ણવસંક્ષેપ લગભગ સને ૧૨૦૦ માં રચાયેલો છે. અને ચૌદમી સદીના મેદનીકારનો અનેકાર્યશબ્દકોશ અને હરિહર રાજાના અધિકારી વર્ગના વિદ્વાન ધરુગુપ્તે રચેલી નાનાર્થરક્ષમાલા ગણાવી શકાય. આ બંને કોશોનો કાવ્યાદિના ટીકાકારો વારંવાર ઉલ્લેખ કરે છે.

અનિશ્ચિત સમયના, પણ વિવિધ વિષયો પર પ્રકાશ પાડનારા બીજા કોશો પણ રચાયેલા આપણને ઉપલબ્ધ થાય છે. તેમાં એક શ્રુતિવાળા એકાક્ષર કોશો અથવા જુદા જુદા રૂપોવાળા શબ્દોના દ્વિરૂપ અથવા ત્રિરૂપ કોશો ગણાવી શકાય.

જ્યારથી યુરોપીય વિદ્વાનોએ સંસ્કૃત સાહિત્યનો પરિચય કરવા માંડ્યો ત્યારથી પશ્ચિમની નવી પદ્ધતિ મુજબ શબ્દોને તરત ગોતી કાઢી શકાય તેવા સંસ્કૃત કોશો રચાવા માંડ્યા અને ધીમે ધીમે તેમાં ખૂબ વિકાસ થયો. અને કયો શબ્દ કયા કાવ્યાદિ ગ્રંથમાં વપરાયો છે તેના ઉલ્લેખ (Reference) યુક્ત કોશો પણ પ્રકટ થયા. આમ ધીમે ધીમે ભારતવર્ષની પ્રત્યેક પ્રાન્તીય ભાષામાં સંસ્કૃત ભાષાના અર્થો સૂચવતા અનેક કોશો બહાર પડ્યા છે અને પડતા જાય છે. પરંતુ એ બધામાં સૌથી પહેલું અમર નામ અને સ્થાન અમરકોશનું રહે છે અને રહેશે એમાં શંકા નથી.

ભાગવત વિષેનું ચર્ચાપત્ર

*

[ભારતીય વિદ્યાના ૨૭ અંકમાં પ્રકટ થયેલા, શ્રીમતી હુમારી સુશીલા મહેતાના 'વલ્લભાચાર્ય અને તેમનો સંપ્રદાય' એ લેખમાંના કેટલાક વિચારો સામે, સંપ્રદાય પ્રેમી કેટલાક સંજ્ઞનોએ પોતાનો વિરોધાત્મક અભિપ્રાય વ્યક્ત કરવા - કરાવવા જે પ્રયત્ન કરેલો તે વિષે એક ખુલાસો અમે ગયા અંકમાં કર્યો છે. એ ખુલાસાને વાંચી અમદાવાદ નિવાસી શ્રીયુત ગોવિંદશરણદાસે, એ મૂળ લેખના વિચારો વિષે એક ચર્ચાપત્ર લખી મોકલ્યું છે અને તેને ભારતીય વિદ્યામાં પ્રકટ કરવાની અમને વિનંતી કરી છે. તેમણે પત્રમાં જણાવ્યું છે કે - "છેલ્લા અંકમાં સંપાદક તરીકે આપે યોગ્ય ન્યાય આપવાની જે પ્રતિજ્ઞા કરી છે એ ધ્યાનમાં રાખી હું મારો પક્ષ એ લેખપરત્વે અહીંયા રજુ કરું છું. આપને યોગ્ય લાગે તો એને ચર્ચા તરીકે ભારતીય વિદ્યામાં સ્થાન આપશો. અગર તો ઉક્ત લેખિકા બહેનને એ વાંચવા આપશો, કે જેથી એમના ભ્રમનું નિવારણ થાય અને સંપ્રદાય અંગે જેરવાજખી માહિતી વધુ ફેલાતી અટકે." તેમની એ ઇચ્છાનુસાર અમે તેમની એ નોંધ શ્રીમતી હુમારી સુશીલા બહેનને વાંચવા આપી, અને તેમણે વળી ભાગવત આદિ સંપ્રદાયોના વિશિષ્ટ અભ્યાસી અને વિદ્વાન્ લેખક સાક્ષર શ્રી દુર્ગાશંકરભાઈ કેં શાસ્ત્રીને પણ એ વાંચવા આપી. શાસ્ત્રીજી ભાગવત શાસ્ત્રના મર્મેષ્ટ વિદ્વાન્ હોઈ, ભારતીય વિદ્યા ભવનના એ વિષયના સંમાન્ય અધ્યાપક છે અને એમની સાથે જ શ્રીમતી હું સુશીલા મહેતા પોતાનું સંશોધન કાર્ય કરે છે. અમારી વિનંતીથી શાસ્ત્રીજીએ એ આવેલા ચર્ચાપત્ર વિષે પોતાની એક ટુંકી નોંધ લખી આપી છે, જેથી વાચકોને એ વિષયમાં શાસ્ત્રીજીનો શો અભિપ્રાય છે તે પણ જાણવા મળી શકે.

આ નીચે શાસ્ત્રીજીની એ નોંધ અને તે સાથે શ્રીયુત ગોવિંદશરણદાસનું ચર્ચાપત્ર બંને પ્રકટ કરીએ છીએ. આ અંગે હવે પછી, તેવા ચર્ચાપત્રોને, નિરર્થક પિષ્ટપેષણ કરનારા સમજી, લાંબાં વિં માં સ્થાન આપવામાં નહિ આવે, તે લક્ષ્યમાં રાખવા નિવેદન છે.

-સંપાદક]

શાસ્ત્રીજી શ્રી દુર્ગાશંકર કેં ની નોંધ-

શ્રી ગોવિંદશરણદાસનું ચર્ચાપત્ર અહીં છાપવામાં આવે છે તે તેના લેખકને ન્યાય આપવા ખાતર. બાકી એમણે જે દૃષ્ટિબિન્દુ રજુ કર્યું છે તે સાંપ્રદાયિક છે અને એ સાંપ્રદાયિક મંતવ્ય શ્રી સુશીલા બહેનના કે અમારા જાણવામાં નથી એમ નથી. શ્રી વલ્લભાચાર્ય અને પુષ્ટિ સંપ્રદાય એમ જ માને છે કે શ્રીભાગવતનું યથાર્થ રહસ્ય શ્રી વલ્લભાચાર્યે જ દર્શાવ્યું છે. પણ બીજા આચાર્યો અને ટીકાકારોનો એથી જુદો મત છે એ હકીકત જ જતાવે છે કે મતભેદનું કારણ છે. અને અમારી-ભારતીય વિદ્યા ભવનની દૃષ્ટિ સાંપ્રદાયિક નહિ પણ તટસ્થ ઐતિહાસિક છે. એ દૃષ્ટિને અનુસરીને ભાગવત ધર્મેના ઇતિહાસની ગવેષણાનું કાર્ય કરતાં શ્રી સુશીલા બહેનની તટસ્થ

દૃષ્ટિને કોઈ ઠેકાણે, શ્રી વલ્લભાચાર્ય કરતાં શ્રીધર ણોપદેવ ભાગવતના તાત્પર્યની વધારે નિકટ છે, એમ જણાય તો એમાં સાંપ્રદાયિકોએ વાંધો હોવા જેવું કશું જ નથી. એમની દૃષ્ટિ જ સાંપ્રદાયિક નથી. તે તે સંપ્રદાયના અનુયાયીઓ પોતપોતાના સાંપ્રદાયિક મન્તવ્યને જ મથાર્થ માને એમાં અમને—ઐતિહાસિકોને કશો જ વાંધો નથી. આટલા ખુલાસાથી ચર્ચાપત્રના લેખકના મનનું સમાધાન થશે, અવી આશા છે.

*

શ્રીયુત ગોવિંદશરણદાસનું ચર્ચાપત્ર—

ભારતીય વિદ્યાના અંક બીજાના ૧૫૩ મા પાના પર, ચોથા ફકરામાં લેખિકા બહેન લખે છે કે—જે કે વલ્લભે ભક્તિના સિદ્ધાંતો ભાગવતમાંથી તારવ્યા છે, છતાં પણ ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે. ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી. તેમાં તો ગોપીઓના વર્તન માટે અચાવનો પ્રયાસ જોવામાં આવે છે. ત્યારે પુષ્ટિમાર્ગમાં તો ગોપીઓની જ ભક્તિ આદર્શ ગણાય છે.

આ વિચારો સામે હું વાદ રજૂ કરું છું. હું વલ્લભમતાનુયાયી વૈષ્ણવ છું. સ્વમતના સંસ્થાપન અર્થે શ્રીવલ્લભે શ્રીવ્યાસની સમાધિભાષા૩૫ શ્રીમદ્ભાગવતને એક પ્રમાણુ ગ્રંથ તરીકે સ્વીકાર્યો છે. (જૂઓ તત્ત્વાર્થદીપ નિબંધ) આ જ ગ્રંથમાં એઓ એક વધુ પ્રતિજ્ઞા કરે છે કે—એક શાસ્ત્ર અને તે દેવકીપુત્રનું ગીત છે. દેવકીનો પુત્ર એ જ એક દેવ છે, દેવકીપુત્રનાં નામો એ જ એક મંત્ર છે અને કર્મોમાં કર્મમાત્ર હોય તો તે દેવકીપુત્રની સેવા છે. હું અત્ર એવો આગ્રહ રાખું છું કે દેવકીપુત્ર કૃષ્ણના મહાત્મ્યનું વર્ણન શ્રીમદ્ભાગવત સિવાય અન્ય કોઈ પુરાણમાં નથી. લેખિકા બહેન લખે છે કે—‘જે કે વલ્લભે ભક્તિના સિદ્ધાંતો ભાગવતમાંથી તારવ્યાં છે, છતાં.’—આનો અર્થ એવો માલૂમ પડે છે કે આગલા ફકરામાં એમણે શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રીના એક ગ્રંથનું અવતરણ આપ્યું છે એને જ સ્વીકારી તેઓ પોતાનો વિચાર રજૂ કરે છે. ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન હોવાનો વાદ કરતાં એ બહેને પોતાના વિચારને સમર્થ કરનારું એકેય ઉદાહરણ આપ્યું નથી. હું અત્ર એ કર્તવ્ય હાથ ધરું છું.

શ્રીવલ્લભ પોતતાની ભક્તિવ્યાખ્યા રજૂ કરતાં કહે છે—મહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સુદૃઢ અને સર્વતોડધિક જે એહ પ્રભુપ્રત્યે જામે એ જ ભક્તિ. આવી ભક્તિ કરનારાઓને મુક્તિની કોઈ ચાહના નથી. શ્રીભાગવતનો દશમસ્કંધ વાંચવામાં આવે તો એટલું સ્પષ્ટ થશે કે પ્રજાંગના અને પ્રજાંગનોએ આ પ્રકારની ભક્તિનો જ આશ્રય લીધો છે અને એટલે જ શ્રીકૃષ્ણે એ સ્કંધના ૨૫ મા અધ્યાયના ૧૮ મા શ્લોકમાં પ્રતિજ્ઞા કરતાં કહ્યું છે કે જેમણે માઈ શરણુ યહી મને નાથ તરીકે સ્વીકાર્યો છે એવાનું રક્ષણ કરવાનું માઈ વ્રત છે. આ એક શ્લોક એટલું બધું ગોપગોપીઓના સ્નેહનું નિરૂપણ કરે છે કે : ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી એમ કહેવું એક ભાગવત ધર્મના રીસર્ય ફેલો માટે સંપૂર્ણ અજ્ઞાન યતાવનારું કહેવાય. માઈ તો એ વ્રત છે : એવી આગ્રહપૂર્વકની પ્રતિજ્ઞા ભાગવતમાં સૂચવાયલા કોઈપણ ભગવદવતાર સ્વરૂપ પાસે ભાગવતકારે કરાવી નથી એમ મને માઈ નિત્યનું અધ્યયન અને પઠન અનુમાન બાંધવા પ્રેરે છે : એટલું ચોક્કસ કે હું શ્રદ્ધાળુ છું—રીસર્ય ફેલો નથી.

વાટ આડી ફંટાઈ પણ, દશમસ્કંધના પૂર્વાર્ધના શરૂઆતના અધ્યાયોમાં શ્રીકૃષ્ણની જે પ્રજલીલાઓનું નિરૂપણ છે એ બધીજ લીલાઓને પ્રમાણ તરીકે સ્વીકારી શ્રીવલ્લભસૂચિત ભક્તિમાર્ગની કૃષ્ણસેવાપ્રણાલિ રચાયેલી છે. વલ્લભસૂચિત ભક્તિમાર્ગની સેવાપ્રણાલિમાં દિવસના આઠેય પ્હોર પ્રજજનનો નિત્યનો કાર્યક્રમ સૂચવનારાં રક્ષાં છે. એ માર્ગનાં પ્રતોત્સવો પણ પ્રજજનનોના પ્રતોત્સવો જ છે. શ્રીકૃષ્ણને ગૂંજ - ચણોડી જેવાં ધાન્યનાં શૃંગાર અને કાચનાં આભરણ જેવાં ચામળનોનાં શૃંગારનો ઉલ્લેખ પણ ભાગવતમાં છે. કુંડવારો, નવધાન્યનો ઉત્સવ વગેરે ઉત્સવો પણ ગોપજનોના જ ઉત્સવો છે અને દશમસ્કંધમાં એનું સર્વત્ર નિરૂપણ કરવામાં આવેલું છે. શ્રીભાગવતના ધૃતર સ્કંધોમાં ભગવત્કેહ પ્રાપ્તિ માટે આટલો સરળ એકેય માર્ગ નિરૂપવામાં નથી આવ્યો અને એટલે જ નવધાભક્તિથી આ ગોપીજન સૂચિત સેવામાર્ગને શ્રીવલ્લભે નિજ સેવ્ય ભક્તિમાર્ગ સ્વીકાર્યો અને પ્રબોધ્યો.

શ્રીવલ્લભે કૃષ્ણના જેટજેટલાં લીલાસ્વરૂપને પોતાના ભક્તિમાર્ગમાં અપનાવ્યાં છે એ સર્વ ભાગવત કથિત છે. પંચમસ્કંધમાં પ્રચેતાઓએ પ્રભુની સ્તુતિ કરી અને પ્રભુએ એમને અષ્ટાયુધ સજ્જ સ્વરૂપે જે રાજસસ્વરૂપનું દર્શન આપ્યું એ સ્વરૂપનું પણ સેવાસ્વરૂપ તરીકે એમના ભક્તિમાર્ગમાં સ્થાન છે. ભાગવતમાં સૂચવ્યા ચતુર્ભૂજ સ્વરૂપો જ આ સંપ્રદાયમાં ગણાયા છે. ટૂંકમાં સંપ્રદાયનું મૂર્તિવિધાનશાસ્ત્ર પણ શ્રીભાગવતને અનુલક્ષીને જ છે. શ્રીભાગવતના અગીયારમા સ્કંધના ૨૭ મા અધ્યાયમાં આઠ પ્રકારના સાધનો - પદાર્થોમાંથી મૂર્તિ તૈયાર કરવાનું કહ્યું છે અને એ મુજબ જ આ સંપ્રદાયમાં સ્વરૂપો સિદ્ધ કરવામાં આવ્યા છે.

આટલો વાદ રજૂ કર્યા પછી પણ હું એક વસ્તુ તરફ લેખિકા બહેનનું ધ્યાન ખેંચવા માંગું છું. શ્રીબોપદેવ અને શ્રીધરનો ગમે તે મત હોય પણ એઓ શ્રીભાગવતના ચૂસ્ત અભ્યાસી ન હોતા - એમ માનવાને મને કારણ છે. ચોક્કસ ગ્રંથની ટીકા રચવાથી એ ગ્રંથનું હાર્દ પચાવી ગયા હોવાનું આપણે માનવા તૈયાર નથી થતા; પણ શ્રીભાગવતને પ્રાણરૂપ ગણનાર શ્રીવલ્લભની ભાગવતને વફાદાર રહેવાની ખીના માટે શંકા નથી રહેતી. એ માર્ગમાં અપાતો બ્રહ્મસંબંધમંત્ર એ એનો પૂરાવો છે. નિત્ય ભાગવતનો અભ્યાસ કરનાર એ આચાર્યો કીટબ્રમર ન્યાયે ભાગવતમાંથી ગદ્યમંત્રરૂપ ફલ મેળવ્યું કહી શકાય. બારેય સ્કંધનો સાર, નવે પ્રકારની ભક્તિ અને જીવ - શિવનો સંબંધ જે મુંડકના પ્રથમ ખંડમાં દર્શાવાયા છે અને જે શ્રીભાગવતના એકાદશ સ્કંધના અગીયારમા અધ્યાયમાં સુપર્ણવેતૌ સદૃશૌ સસ્ત્રાયૌ - વાળા શ્લોકમાં સ્પષ્ટપણે તારવી બતાવાયા છે - એનું જ હાર્દ આ ગદ્યમંત્ર છે. આમ છે તો શ્રીવલ્લભસૂચી પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિ ભાગવતની ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે એમ કહેવું એ વધુ પડતું સાહસ નથી શું ?

વ્યુત્પત્તિશાસ્ત્ર અને સંસ્કૃત-પ્રાકૃત શબ્દો

હે૦ - અધ્યાપક, પં૦ શ્રી વેચરવાસ, જી૦, દોશી

*

વ્યુત્પત્તિશાસ્ત્ર, ભાષાશાસ્ત્રનું એક મહત્ત્વનું અંગ છે. તે, શબ્દોનું મૂળ શોધી બતાવી શબ્દના મૌલિક અર્થને પ્રગટ કરે છે. જગતમાં, વ્યવહારમાં આવતા એવા અનંત પદાર્થો - ભાવો - વસ્તુઓ - સત્ત્વરૂપ દ્રવ્યો વિદ્યમાન છે કે જેઓ પોતપોતાની સ્વતંત્ર સંજ્ઞા - નામ - આલ્યા - અભિધા ધરાવે છે. જેટલા પદાર્થો છે તેટલા વા તેથી ય વધારે તેમના વ્યવહારનાં નામો છે, અને એ નામો સાથે તેમનો વાચ્ય-પદાર્થ કોઈ ને કોઈ પ્રકારે સંબંધ પળ ધરાવે છે.

જગતમાંથી નામોને બાદ કરીએ તો એક જ ક્ષણમાં જગત્ આણું શૂન્ય થઈ જાય. એ માટે જ કેટલાક તત્ત્વજ્ઞાનિઓ જગતને નામરૂપ જ માને છે. મહાન શબ્દશાસ્ત્રી ભર્તૃહરિ તો ત્યાંસુધી કહે છે કે આ જગત એ તો શબ્દોના વિવર્તરૂપ છે - જગતનું મૂળ કારણ શબ્દો છે. શબ્દો યસી જાય તો પછી જગત જેવું કશું રહેતું નથી.

એક રીતે વિચારીએ તો ભર્તૃહરિની વાત યોટી પળ નથી. જગતમાંથી ભાષાને કાઢી નાખવામાં આવે તો પછી જગત્ અને નિર્વાળ એ બેમાં કશો જ મેદ નહીં દેખાય.

પ્રાચીન અને અર્વાચીન વૈજ્ઞાનિકોએ શરીરનું, મનનું, વૃત્તિઓનું, બુદ્ધિનું, ઇન્દ્રિયોનું અને પંચ મહાભૂતોનું પૃથક્કરણ કરી તેમના ગુણદોષો વિશે વા તેમના સ્વરૂપ કે સ્વભાવ વિશે અમુક નિર્ણયો કરી રાખ્યા છે; તેમ વૈયાકરણોએ પણ જગતની અસ્તિતાના આધારસ્તંભ શબ્દોના મૂળોનું પૃથક્કરણ કરી, તેમના મૂળસ્વરૂપ વિશે, મૂળ અર્થો વિશે, અને શબ્દો અને તેમના વાચ્ય ભાવો વચ્ચે કયા પ્રકારનો સંબંધ હોઈ શકે - એવી અનેક હકીકતો વિશે અમુક સિદ્ધાંતો ઘડી રાખ્યા છે; અને એ સિદ્ધાંતો આપણા શ્યાલમાં બરાબર આવે એ રીતે તેઓ પોતપોતાના શબ્દશાસ્ત્રમાં નોંધતા પળ ગયા છે.

એ બાકતનો રસિક જિજ્ઞાસુ ઉપમન્યુ, વાર્થ્યાયણ, યાસ્ક, વ્યાઢિ કરોનાં વચ-નોને વિચારશે તો માતૃતીય શબ્દશાસ્ત્ર તરફ જરૂર તે ગૌરવમરી રીતે વર્તશે.

શબ્દના સ્વરૂપ વિશે પ્રાચીન વિચારકો અનેક મતો ધરાવે છે. તેમ શબ્દ અને અર્થ વચ્ચેના સંબંધ બાબત પણ તેઓની વિવિધ વિચારધારાઓ વહેલી છે. એમના એ વિવિધ મતો પ્રસ્તુત લેખમાં ચર્ચા શકાય તેમ નથી. એ મતો સાથે પૌરુષેયવાદ અપૌરુષેયવાદ જેવા વિશેષ સૂક્ષ્મ સિદ્ધાંતો અને એ સિદ્ધાંતોનો મૂળ ઇતિહાસ સંકળા-
 ણ્યો છે; એટલે એવી બધી સૂક્ષ્મ તર્કની ચર્ચાઓ પ્રસ્તુતમાં અરોચક નીવડે છતાં શબ્દાર્થ-સંબંધની જે હકીકત તદ્દન વ્યવહારુ છે તેને અહીં જણાવી દઉં છું.

પ્રત્યેક શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત જુદું જુદું હોય છે અને એટલા પૂરતો એ શબ્દ પોત-પોતાનો સ્વતંત્ર એવો જુદો જુદો અર્થ ધરાવે છે. કોઈ શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ‘ગુણ’ છે, બીજા કોઈ શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ‘ક્રિયા’ છે; ત્યારે વળી એવા પણ અનેક શબ્દો છે જેમનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ‘અમુક પ્રકારનો સંબંધ’ છે.

‘મહાદેવ’ અર્થ માટે ‘નીલકંઠ’ શબ્દ પ્રચલિત છે. જેનો કંઠ નીલો છે તે નીલકંઠ, એ રીતે ‘નીલકંઠ’ શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કંઠની નીલતા — નીલસર ગુણ છે. એ જ પ્રમાણે ‘ગવણ’ માટે ‘દશમસ્તક’ શબ્દ વપરાય છે. તેનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત મસ્તકની દશ સંખ્યા — સંખ્યારૂપ ગુણ છે. આવા બધા શબ્દો ગુણપ્રવૃત્તિનિમિત્તક કહેવાય.

‘રસોયા’ માટે ‘પાચક’ અને ‘દેહનાર’ માટે ‘દ્રષ્ટા’ શબ્દ વપરાય છે. પચ્ચ એટલે પકાવવું — રાંધવું અને દ્રશ્ એટલે દર્શન કરવું — નજરે જોવું. જે રાંધતો હોય તે ‘પાચક’ કહેવાય અને નજરે જોતો હોય તે ‘દ્રષ્ટા’ ગણાય. દેવની સેવા કરનાર માટે ‘પૂજારી’ અને માગી રાનાર માટે ‘મીઠવારી’ શબ્દ ચાલુ છે. પૂજા+કારી — પૂજા કરે તે પૂજારી અને મિત્સા+કારી — મિત્સા કરે તે મીઠવારી. ઘૂત+કારી — જુઆરી — જુગટું રમનારો. એમ એ બધા શબ્દો ક્રિયાપ્રવૃત્તિનિમિત્તક છે. કુંભ+કાર — કુંભાર. ચર્મ+કાર — ચમાર. લોહ+કાર — ત્સહાર. સુવર્ણ+કાર — સોનાર. કાંસ્ય+કાર — કંસારો. આવા ક્રિયાપ્રવૃત્તિનિમિત્તક શબ્દો ભાષામાં સ્વૂં સ્વૂં પ્રચલિત છે.

ત્રીજા પ્રકારના શબ્દોનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ‘સંબંધ’ હોય છે — ભૂપતિ, મણિધર, દંડી, સંન્યાસી, વગેરે. મૂ એટલે મોં—પૃથ્વી, તેનો પતિ તે ભૂપતિ — રાજા. મોં અને રાજા એ બેમાં મોં ‘સ્વ’ છે અને રાજા તેનો ‘સ્વામી’ છે, એટલે એ બે વચ્ચેનો સ્વ-સ્વામિ માવનો સંબંધ ‘ભૂપતિ’ શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે. મણિધર એટલે મોટો સર્પ. મણિ

એ ધાર્ય છે અને સર્પ તેનો ધારક છે એટલે મણિ અને સર્પ વચ્ચે ધાર્યધારકભાવનો સંબંધ ‘મણિધર’ શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે. ‘દંડી’ શબ્દમાં પણ એ જ પ્રમાણે સમજવાનું છે.

આવા પ્રકારના સંબંધો પારવિનાના છે: સ્વસ્વામિભાવ (ભૂપતિ), જન્યજનક-ભાવ (વિશ્વવિધાતા), ધાર્યધારકભાવ (ચંદ્રશેખર), ભોજ્યભોજકભાવ (મધુપ-ભ્રમર), મર્ત્યકલત્રભાવ (ગૌરીવર અથવા શિવકાન્તા), મિત્રતાભાવ (મધુમિત્ર-કામદેવ અથવા અર્જુનસલા-કૃષ્ણ), ગાહ્યગાહકભાવ (વૃષાસન — મહાદેવ), સગ-પણનો ભાવ (પર્વતપુત્રી — પાર્વતી), આશ્રયાશ્રયિભાવ (શેષશાયી — કૃષ્ણ), વચ્ચ-ધાનકભાવ (મુરનો અરિ — કૃષ્ણ). ઉક્ત સંબંધો ઉપરાંત બીજા પણ સંખ્યાતીત સંબંધો શબ્દ અને અર્થ વચ્ચે યોજી શકાય એમ છે પરંતુ અહીં તે બધા સંબંધે લાક્ષી ન શકાય.

સાધારણ રીતે ઉક્ત ત્રણ પ્રવૃત્તિનિમિત્તોમાંથી ગમે તે એકને આધારે શબ્દની પ્રવૃત્તિ થયા કરે છે. બોલનાર મળે એ હકીકત ન જાણનો હોય તો પણ શબ્દ પોતાની શિસ્તનો મંગ નથી કરતો. જે શબ્દો યાદચ્છિક છે એટલે અર્થદૃષ્ટિએ જેમનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ગુણ, ક્રિયા કે સંબંધ નથી હોતાં તેવા શબ્દોના અર્થો માટે કેવળ રૂઢિનો આધાર છે — અર્થાત્ એવા શબ્દો ઉક્ત પ્રવૃત્તિનિમિત્તને અનુસરતા નથી. કોઈ વ્યક્તિના નામ માટે વપરાતો ‘રણછોડ’ શબ્દ અથવા એવા બીજા ‘જગજીવન’ ‘ઉમાશંકર’ વગેરે શબ્દો યાદચ્છિક છે.

ઉક્ત પ્રવૃત્તિનિમિત્તોવાળા શબ્દો ઉપરાંત બીજા કેટલાક શબ્દો કાલ્પદર્શક છે, તેમનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કાલ છે અને એવા બીજા પણ સંખ્યાતીત શબ્દો છે જેમની સાધના ધાતુઓદ્વારા સમજાવી શકાય એમ છે.

કહેવાનું તાત્પર્ય એ કે શબ્દોની વ્યુત્પત્તિઓ બતાવતાં આપણા પ્રાચીન વૈયાકરણોએ ઉક્ત સાધનોમાંથી ગમે તે એકને મુખ્ય રાક્ષી શબ્દોનું પૃથક્કરણ કરી બતાવ્યું છે; પરંતુ જ્યાં તેઓને ઉક્ત સાધનોમાંનું એક નિમિત્ત જડ્યું નથી ત્યાં તેઓએ આદેશો, નિપાતો અને કલ્પિત પ્રત્યયોનો આધાર લઈ શબ્દોની નિષ્પત્તિ સમજાવી છે.

હમણાં હમણાં ભાષાનું શાસ્ત્ર ઠીક ઠીક સેડાતું આવે છે; અને એક બીજી ભાષાઓ વચ્ચેની તુલનાત્મકદૃષ્ટિને પ્રધાનપણું આપનારો અભ્યાસ વધવા લાગ્યો છે.

તેથી કેટલીક એવી તર્કણાઓ સૂઝી આવી છે કે જેમનો આધાર હઈએ તો આદેશ, નિપાત કે પ્રત્યયોની બનાવટી કલ્પના કર્યા વિના પણ શબ્દોની વ્યુત્પત્તિ સમજી શકાય એમ છે.

આ નીચે કેટલાક એવા શબ્દોની વ્યુત્પત્તિ ચર્ચવાની છે કે જે શબ્દો માટે વैयाकरणોએ આદેશ, નિપાત કે પ્રત્યયોની બનાવટી કલ્પના કરી રાખી છે.

સંસ્કૃત ભાષામાં, પરેશ્વર અથવા પૂર્વેશ્વર: અન્યેશ્વર: અન્યતરેશ્વર: इतरेश्वर: अपरेश्वर: અધરેશ્વર: ઉભયેશ્વર: ઉભયશ્વર: અને ઉત્તરેશ્વર: — વગેરે શબ્દો કાઢદર્શક છે. પરેશ્વર — પરમ દિવસે અથવા તેનાથી પણ આગળના દિવસે. અથ — આ દિવસે — આજ. પૂર્વેશ્વર: — પૂર્વ દિવસે — આગલા દિવસે. અન્યેશ્વર: — અન્ય દિવસે — બીજે દિવસે. અન્યતરેશ્વર: — બીજા — બેમાંના — ગમે તે એક દિવસે. इतरेश्वर: — इतर — બીજે — દિવસે. अपरेश्वर: — अपर — બીજે — દિવસે. અધરેશ્વર: — અધર — બીજે — દિવસે. ઉભયેશ્વર: કે ઉભયશ્વર: — ઉભય — બન્ને — દિવસે. ઉત્તરેશ્વર: — ઉત્તર — પછીના — દિવસે.

ઉક્ત અર્થો જોતાં પરેશ્વર વગેરે શબ્દોમાંના આગલા પર પૂર્વ અન્ય વગેરે શબ્દો ‘પરમ’ ‘પૂર્વ’ ‘અન્ય’ના અર્થને સૂચવે છે અને પાછલો શ્વ, શ્વ: કે એશ્વ: શબ્દ દિવસના અર્થનો વાહક છે.

એ બધા શબ્દોની નિષ્પત્તિ માટે વैयाकरण पाणिनि કહે છે કે “सद्यः—परत् परारि—ऐषमः—परेश्वरि—अथ—पूर्वेश्वरः—अन्येश्वरः—इतरेश्वरः—अपरेश्वरः—अधरेश्वरः—उभयेश्वरः—उत्तरेश्वरः—(५-३-२२ काशिका) सप्तम्याः काल इति वर्तते। सद्यः प्रभृतयः शब्दाः निपात्यन्ते। प्रकृति-प्रत्यय-आदेशः कालविशेषः इति सर्वमेतद् निपातनाद् लभ्यते” — (काशिकावृत्ति) अर्थात् ‘सद्यः’ यी માંડીને ‘उत्तरेश्वरः’ સુધી બધા શબ્દો અમુક કાલ વિશેષના સૂચક છે અને તે બધાની સિદ્ધિ નિપાત દ્વારા થાય છે.

એ શબ્દોમાં પાણિનિને ક્યાંય ‘શ્વ’ ‘એશ્વસ્’ કે ‘શ્વસ્’ એમ જુદા જુદા ત્રણ પ્રત્યયોની કલ્પના કરવી પડી છે. ‘અથ’નો અ+અથ, ‘પૂર્વેશ્વર:’નો પૂર્વ+એશ્વસ્, અને ‘ઉભયશ્વર:’નો ઉભય+શ્વર: એવો વિભાગ કલ્પેલો છે.

અહીં વિચારણીય તો એ છે કે આ, પૂર્વ, પર વગેરે અર્થોના વાહક ‘અ’ ‘પૂર્વ’ ‘પર’ વગેરે શબ્દો સુપ્રતીત છે, પરંતુ ‘શ્વ’ ‘એશ્વસ્’ કે ‘શ્વસ્’ પ્રત્યયનો ‘દિવસ’ અર્થ કી રીતે સમજાવો ?

વ્યુત્પત્તિશાસ્ત્રનો આશ્રય લઈ વિચાર કરીશું તો સ્પષ્ટ જણાશે કે એ વધા ‘અથ’ વગેરે શબ્દોમાં અમુક ભાગ પ્રકૃતિ છે અને અમુક ભાગ પ્રત્યય છે—એવો વિભાગ કરવા કરતાં એ શબ્દો બે પદોના સમાસદ્વારા બનેલા છે એમ કહેવું વધારે યુક્તિસંગત છે—અર્થાત્ એ શબ્દો કોઈ અલંકારપદરૂપ નથી પરંતુ જુદા જુદા બે સ્વતંત્ર શબ્દના બનેલા એવા સામાસિક શબ્દો છે.

જેમ ‘રાજપુરુષ’ કે ‘નીલોત્પલ’ શબ્દો કોઈ અલંકારપદરૂપ નથી પરંતુ ‘રાજ’ અને ‘પુરુષ’ તથા ‘નીલ’ અને ‘ઉત્પલ’ એવા બે જુદાં જુદાં પદોના સમાસદ્વારા રાજપુરુષ અને નીલોત્પલ શબ્દો બનેલા છે, તે જ રીતે પૂર્વ અને ઘુઃ, ઉભય અને ઘુઃ, અપર અને ઘુઃ એવા બે જુદાં જુદાં પદોના સમાસદ્વારા પૂર્વેઘુઃ ઉભયઘુઃ અને અપરેઘુઃ વગેરે શબ્દો નીપજેલા છે. પૂર્વ વગેરે છેડે એકારવાળાં પદો સત્તમી વિભક્તિવાળાં છે અને તેમનો ‘ઘુસ્’ સાથે સમાસ થતાં પળ તે વિભક્તિ કાયમ રહી છે. જેમ ભસ્મનિ+દ્રુતમ્, કળ્પ+કાલઃ, વને+વાસી વગેરે શબ્દોમાં પૂર્વપદની સાતમી વિભક્તિ કાયમ રહે તેમ અહીં ‘પૂર્વેઘુઃ’ વગેરેમાં પળ પૂર્વપદની વિભક્તિ કાયમ રહે તેમાં કોઈ વાધ આવતો નથી.

નિરુક્તકાર યાસ્કાચાર્યે પોતાના નિરુક્તમાં જ્યાં ‘દિવસ’ના સમાનાર્થક શબ્દો આપ્યા છે ત્યાં ‘ઘુ’ શબ્દને પળ ‘દિવસ’ વાચી તરીકે સ્પષ્ટપણે બતાવેલો છે.

“અથ અહર્-નામાનિ—વસ્તોઃ ઘુઃ માનુઃ વાસરમ્ સ્વસરાણિ ધ્રંસઃ ધર્મઃ ઘૃણઃ દિનમ્ દિવા દિવેદિવે યવિઘ્વિવિ ઇતિ દ્વાદશ અહર્-નામાનિ” — (પૃ. ૧૫૨ અ. ૨ ધ્રં. ૨૧ વૈકટેશ્વર પ્રેસ)

આચાર્ય હેમચંદ્ર પળ ‘ઘુઃ’ને ‘દિવસ’નો સમાનાર્થક કહી નીચે પ્રમાણે જણાવે છે. “ઘુર્ દિને વહનૌ” — (અનેકાર્યસંગ્રહ કાંડ ૧૦ શ્લો. ૧૧)

તથા

“તત્ર અહર્ દિવસઃ દિનમ્, દિવં ઘુર્ વાસરો ઘ્વઃ ।”

(હૈમ-અભિધાનચિંતામણિ, કાં. ૨, શ્લો. ૫૨)

ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે ‘દિવસ’નો વાચક ‘ઘુઃ’ શબ્દ ઉપલબ્ધ છે અને તેની સાથે ‘પૂર્વ’ વગેરે શબ્દોનો સમાસ કરતાં ‘પૂર્વેઘુઃ’ ‘ઉભયઘુઃ’ વગેરે વધાં પદો નીપજી જાય છે, તેથી કરીને ઘ, ઘુસ્ કે ઇઘુસ્ એવા કોઈ પ્રત્યયને કલ્પવાની જરૂર નથી.

‘અથ’માં એ ‘થુ’ શબ્દ ‘થ’ રૂપે બોલાયો છે. એ સંબંધે યાસ્કાચાર્ય પોતે જ કહે છે કે — ‘અથ અસ્મિન્ થવિ । ‘થુઃ’ ઇતિ અહ્નો નામધેયમ્’ — (નિરુક્ત પૃ. ૪૦) અર્થાત્ ‘થુ’ એ ‘દિવસ’નો પર્યાય છે અને ‘આ’ અર્થવાળા ‘ઈદમ્’ શબ્દ સાથે તેનો સમાસ કરતાં ‘અથ’ પદ વને છે.

સંસ્કૃતમાં અમુક વિભક્તિઓમાં — અયમ્ અનેન અસ્મૈ અસ્માત્ અસ્ય અસ્મિન્ આમ્યામ્ એમિઃ — વગેરે રૂપોમાં ‘ઈદમ્’ શબ્દ ‘અ’ ધ્વનિને ધારણ કરે છે; ત્યારે અપભ્રંશ ભાષામાં તો સર્વ વિભક્તિઓમાં ‘ઈદમ્’નો પર્યાય ‘આય’ શબ્દ વપરાય છે. પ્રસ્તુત ‘અથ’માં ‘ઈદમ્’નો ‘અ’ ધ્વનિ ઘટાવવા કરતાં ‘આય’નો ‘અ’ ધ્વનિ ઘટાવવાની રીત વિશેષ પાસેની છે. અથવા ઈદમ્ અ અને આય એ ત્રણે સમાનાર્થક શબ્દો ઘણા પ્રાચીન સમયથી ચાલ્યા આવતા હોય અને તેથી ઉક્ત ‘અથ’ માટે યાસ્કે ‘ઈદમ્’ના પર્યાય ‘અ’ ને ગોઠવેલો હોય. જેવો આધાર ઈદમ્ અને આયના અસ્તિત્વમાટે ઉપલબ્ધ છે તેવો આધાર ‘અ’ માટે શોધવાનો છે.

તાત્પર્ય એ કે અથ, પૂર્વેથુઃ, ઉભયથુઃ વગેરે શબ્દો માટે થ, એથુસ્ કે થુસ્ પ્રત્યયને કલ્પવાની જરૂર નથી. પરંતુ એ વધા શબ્દો સામાસિક છે અને અ+થુ, પૂર્વે+થુ, ઉભય+થુ, એ પ્રકારે તેમનો ન્યયોગ થવાથી એ અખંડ જેવા બનેલા છે.

હવે પછીના વીજા લેખમાં વૈયાકરણોએ જે પદોને પ્રત્યયરૂપે કલ્પેલાં છે તે પદો સ્વરેખરા પ્રત્યયો છે કે વિશેષ પ્રકારનાં નામો છે એ વિશેષ વિચારણા કરવાની છે. વૈયાકરણોની દૃષ્ટિએ ‘ગોષ્ઠ’, ‘ગોયુગ’, ‘પડ્ગવ’, ‘તૈલ’, અને ‘ઠ’ વગેરે પ્રત્યયો છે ત્યારે મારી દૃષ્ટિએ એ વધાં વિશેષ પ્રકારનાં નામો છે; અને એ વિશેષ પ્રકારનાં નામો જ જતે દિવસે પ્રત્યય રૂપ થઈ ગયાં છે. એ સંબંધે સવિસ્તર વિચારણા હવે પછીના લેખમાં કરવામાં આવશે.

કેટલીક વ્યુત્પત્તિ વિષયક ચર્ચા

છે૦ — શ્રીયુત હરિવલ્લભ માયાળી, બી. એ.; રીસર્ચ સ્કૉલર, ભારતીય વિદ્યા મંડળ

*

૧- ‘પરોણો’

કેટલાક વિદ્વાનોએ^૧ ગુજરાતી ‘પરોણો’ સંસ્કૃત ‘પ્રહરણક’ માંથી સાધવા પ્રયાસ કર્યો છે. તેમનો સાધનક્રમ આ પ્રમાણે છે: પ્રહરણક>પહરણડ>પ્હરણડ>‘પરોણો’. આમાં રહેલી, અ> વિવૃત ઓ એ અસામાન્ય પ્રક્રિયા માટે, પ્હરણડ ના રૂ પછી હ નો પ્રક્ષેપ થઈ પરિણામે ર નો ‘રો’ થયો હોય એવું તેઓ માને છે, અને આને મળતા ઉદાહરણ તરીકે પ્રહર>પહર>‘પ્હર’ શબ્દ આપે છે.

પણ પં૦ એચરદાસજીએ સૂચવ્યું છે તેમ ‘પરોણો’ ના મૂળ ઊગમસ્થાન તરીકે સં૦ *પ્રતોદનક સ્વીકારવો એ વધારે ઉચિત લાગે છે. (૧) *પ્રતોદનકં>*પહો-અણઅં (સર૦ પ્રા. પહિ<સં. પ્રતિ-)>*પરોઅણઅં (સર૦ પ્રા. સત્તરસ<*સત્ત-હસ<સં. સત્તદશ)>*પરોઅણડ>*પરોણડ (સર૦ ‘થોડું’<*થોહડં<*થોઅહડં<*થોવહડં<*સ્તોકટકમ્)>‘પરોણો’: આ ક્રમ આગળના ક્રમ કરતાં વધારે શુદ્ધ છે. (૨) આમાં ‘રો’ ના ‘ઓ’ ની વિવૃતતા સમજાવવી પણ મુશ્કેલ નથી. શબ્દમાં, પૂર્વવર્તી ‘એ’, ‘ઓ’ ઉપર તેમના અનુગામી નાસિક્ય ધ્વનિનું વળન પડતું હોય તો તેમનું વિવૃત ઉચ્ચારણ થાય છે એ ગૂજરાતીના ધ્વનિ-તંત્રનો એક જાણીતો નિયમ છે.^૨ એટલે ‘રો’ ના ‘ઓ’ ની વિવૃતતા તેના અનુગામી ભૂકારને આભારી છે. (૩) ‘પરોણો’ એવું ‘હ’ શ્રુતિ વિનાનું સ્વરૂપ જ સાચું છે. ‘હ’ શ્રુતિવાળું સ્વરૂપ સં. પ્રાચુર્ણક: માંથી ઉતરી આવેલા મહેમાન-વાચક શબ્દ માટે જ વપરાય છે. કોઈ સ્થળે લાકડી-વાચક ‘પરોણો’, હશ્રુતિ સહિત ઉચ્ચારાતો હોય તો તે મહેમાન-વાચક હશ્રુતિવાળા ‘પરોણો’ ના સામ્યને લીધે જ. એટલે હકાર સમજાવવાની જરૂર રહેતી નથી. આમ ધ્વનિ-દૃષ્ટિએ *પ્રતોદનક મૂળસ્વરૂપ તરીકે નિર્દોષ છે. બીજું, પ્રાચીન-માંથી મધ્યકાલીન ભૂમિકામાં કે મધ્યકાલીનમાંથી અર્વાચીન ભૂમિકામાં આવતાં કેટલાક ભારતીય-આર્ય (‘ઇન્ડો-આર્યન’) શબ્દોનાં લિંગ ફરી જાય છે એ પણ જાણીતી બિના છે.^૩ એટલે વ્યાકરણની દૃષ્ટિએ પણ મૂળ નપુંસકલિંગી *પ્રતોદનકમ્ માંથી પુલ્લિંગી ‘પરોણો’ થાય એ દોષયુક્ત ન ગણાય. છેલ્લે, મૂળ અને સાધિત સ્વરૂ-

૧ ચતુરલાઈ પુ. પટેલ “જૂની ગુજરાતી ભાષા” પા. ૩૪૮. કાન્તિલાલ બ. વ્યાસ “જર્નલ ઓફ ધ ગુજરાત રિસર્ચ સોસાયટી” એપ્રિલ, ૧૯૪૦.

૨ કૃષ્ણલાલ હ. મુવ: ‘વાગ્ધ્યાપાર’. નરસિંહરાવ આનો અરવીકાર કરે છે. (‘ગુ. લે. એન્ડ લિ.’ વો. ૧ પા. ૧૫૮-૬૧). પણ ચુનીલાલ વર્ધમાન શાહનું સમર્થનપ્રતીતિ-જનક છે. (‘પુલ્લિપ્રકાશ’ એપ્રિલ, જૂન, ૧૯૩૪). તેમજ જુઓ ‘જૂની ગુજરાતી ભાષા’ પા. ૩૪૦.

૩ સરખાવો, હેમચંદ્ર-લિંગમતજ્ઞમ્ (૮. ૪. ૪૪૫)

પોના અર્થ વચ્ચેનો સંબંધ તપાસતાં ‘પરોણો’ (= ‘આરવાળી કે આર વિનાની ઢાંબી ઢાકડી’) *પ્રતોદનકથી (સર૦ સં. પ્રતોદઃ, પ્રતુદઃ “ઢાંબો ચાણુક, અંકુશ, વૉચવાનું હથિયાર”) ખાસ બિજ હોય એવું નથી લાગતું; બ્યારે તે પ્રહરણક થી (= ‘હથિયાર’) પ્રમાણમાં વધારે દૂર છે.

ટર્નર (“નેપાલી ડિક્શનરી”) પણ ‘પરોણો’ ના મૂળ-સ્વરૂપ તરીકે *પ્રતોદન૦ આપે છે.

‘પરોણો’ નું સ્વરૂપાન્તર ‘પરાણો’ (સ્ત્રી. ‘પરાણી’) સમજાવવું બાકી રહે છે.

૨-‘ચૌદું’

નરસિંહરાવ ચતુર્વર્ત્તકં>ચઝ્વટ્ઠં>ચઝ્વટ્ઠં>“ચૌદું” એવો ક્રમ આપે છે.^૪ આ વ્યુત્પત્તિ સ્વીકારવામાં મુશ્કેલી એ છે કે તેનાથી “ચૌદું” ના ચકાર પછી કોઈ કોઈ સ્થળે ઉચ્ચારાતી હ્રસ્વિતિ સમજાવી શકાતી નથી. આ હકાર સભાતીય હિં. જોહા માં સ્પષ્ટ સંભળાય છે. એટલે ચતુર+હટ્ઠકમ્ (“બહાર”) એ સમાસદ્વારા ચઝહટ્ઠં-ચં>*ચઝહટ્ઠં>*ચહઝટ્ઠં (વ્યત્થ)>*ચહટ્ઠં>*ચહટ્ઠં>ચહટ્ઠં>“ચૌદું”>“ચૌદું” એ સાધના સ્વીકારવી બેઠીએ. ચઝહટ્ઠ-ચઝહટ્ઠ એ પ્રાકૃત સાહિત્યમાં સામાન્ય શબ્દ તરીકે મળે છે. (દા. ત. સોમપ્રભકૃત “કુમારપાલ-પ્રતિષ્ઠા” પા. ૧૬૨.) ચતુર-ભાઈને પણ આ જ વ્યુત્પત્તિ માન્ય છે. (‘ભૂની ગુજરાતી ભાષા’, પા. ૪૯).

૩-‘બગડવું’

વિદ્વાનોનો મત છે કે સંસ્કૃત, પ્રાકૃત વગેરે દ્વારા ગુજરાતીમાં જિતરી આવેલા શબ્દોમાં મૂળના આદિ ‘વ’ નો ‘બ’ નથી થતો. એટલે, નરસિંહરાવ માને છે તેમ, ‘બુદ્ધો’ ‘બત્તી’ ‘બોભે’ ‘બુઝાવવું’ વગેરે મૂળ આદિ વકારવાળા શબ્દોની જગ્યાએ આ ‘બગડવું’ પણ મૂળે તો હિંદીમાંથી ઉછીતો લેવાયો હોય એમ ગણીને આપણે આગળ વધીએ. બાણકારકર અને નરસિંહરાવ આ ધાતુના મૂળસ્વરૂપ તરીકે સં. ચિન્નવદ સ્વીકારે છે. ટર્નર^૫ અને બ્લોચ (Bloch) પણ એજ મતના છે. પણ, ટર્નર સૂચવે છે તેમ આ વ્યુત્પત્તિ સામે ધ્વનિદૃષ્ટિએ બે વાંધા છે. એક તો એ કે મૂળનું વિષદત્તિ ભારતીય-આર્યની મધ્યકાલીન ભૂમિકામાં વિહરજ બનતું હોઈ, એ વિહરજ માંથી અર્વાચીન ભારતીય-આર્ય ભાષાઓના શબ્દસ્વરૂપોમાં રહેલો ‘ગ’ કે ‘ઘ’ (હિં. ચિગડના, બં. ચિગડા, મ. ચિગડળે, ચિગડળે વગેરે) સાધી શકાય નહિ. આ મુશ્કેલીનો તોડ લાવવાનો પ્રયાસ કરતાં બ્લોચ કહે છે કે બીજા શબ્દો સાથે ધ્વનિ-સામ્યને લીધે /ઘડનો આદિ વ્યંજન બેવડાયો હોય અને એ રીતે સાક્ષિત શબ્દ-સ્વરૂપોમાં તે વ્યંજનની સ્પર્શતા જળવાઈ રહી હોય. બીજા મુશ્કેલી વધારે જટિલ છે. મૂળ અને સ્થાને સાક્ષિત સ્વરૂપોમાં, માત્ર મરાઠીના વૈકલ્પિક ચિષ્ઠળેને બાદ કરતાં, સર્વથા મ થયો છે. આ મહાપ્રાણતાનો લોપ સમજાવી શકાય તેમ નથી. ટર્નર તર્ક ચલાવે છે કે કદાચ ચિષ્ઠળ જેવા કોઈ શબ્દના સંગ-લોપથી થતો મ થયો હોય.

૪ ‘ગુ. લે. એન્ડ સિટ.’ વો. ૧. પા. ૧૩૫.

૫ ‘નેપાલી ડિક્શનરી’ સિંગલ નીચે.

આ ઉપરથી ભેદ શકાય છે વિ+ષદ્ પરથી ‘બગડવું’ સાધવામાં ધ્વનિ-દૃષ્ટિએ બે ખામી રહેલી છે અને એ ખામીઓને દૂર કરવા માટે ટર્નર અને ય્વોએ કરેલાં સૂચનો સંતોષકારક નથી. વળી અર્થ-દૃષ્ટિએ પણ મને વિ+ષદ્ (= “ભાંગવું, વિખુટું પડવું”) એ ‘બગડવું’ થી વધારે પડતો દૂર લાગે છે. એટલે મારું સૂચન ‘બગડવું’ વગેરેને સં. વિકૃત પરથી અવતારવા માટે છે. વિકૃતનું પાલિ વિકટ, પ્રાકૃત વિગડ અને (સરં જૈન અંગ સુચકાંગ-સૂત્રકૃતાન્ન); અને ભૂતકૃદન્ત કે નામ પરથી જ અર્વાચીન ભારતીય-આર્યમાં કેટલાક ધાતુઓ આવ્યા છે એ હકીકત ભણીતી છે.^૬ આથી ભુક્>‘મૂકવું’, જન્મ>‘જનમવું’ વગેરેની હરોળમાં વિકૃત>વિગડના વગેરે પણ મૂકી શકાય; તેમ ટર્નર વગેરેએ સૂચવેલી વ્યુત્પત્તિમાં ધ્વનિ અને અર્થની દૃષ્ટિએ નડતી મુશ્કેલીઓ આમાં ઉપસ્થિત જ ન થાય.

૪-‘વાછરું’

“વાછરું” નો ‘વાછ૦’ અંશ તો દેખીતી રીતે જ સં. વત્સ૦ નું રૂપાન્તર છે. બાકીના ‘-રું’ નું મૂળ સમજાતું ન હતું. સોમપ્રભકૃત કુમારપાલપ્રતિબોધ થી એ સ્પષ્ટ થયું. તેમાં વચ્છરૂવાઈ પદ વપરાયું છે. એટલે વત્સરૂપ૦>વચ્છરૂવ૦>*વાછરૂવ૦> (જૂ. પ. રા.) *વાછરૂ૦ (જુઓ, ટેસીટરી, ‘નોટ્સ’, પરિચ્છેદ. ૩૫)>‘વાછરું’ એવો ક્રમ બાંધી શકાય. મૂળ વત્સ૦ ને પ્રશંસાર્થે -રૂપ૦ લાગતાં (જુઓ, પાણિનિ, અષ્ટાધ્યાયી ૫, ૩, ૬૬) વત્સરૂપ (= “પ્રશંસાપાત્ર વાછડું”) સધાયો. એટલે વત્સરૂપ૦ ને “વાછરું” વચ્ચે અર્થ-દૃષ્ટિએ પણ સંગતિ રહેલી છે. આ પ્રકારના ધ્વનિ-વિકાસના એક બીજા ઉદાહરણ તરીકે સં. કામરૂપ૦ માંથી નિષ્પન્ન થયેલ ‘કામરુ-’ (‘કામરુદેશ’) ટાંકી શકાય. વળી ડૉ. નોર્મેન ગ્રાઉન સ્વસંપાદિત “મહીપાલ-ચરિત્ર” માં આવતો ગોરૂ૦ શબ્દ (>હિ. ગોરૂ, ગોરૂઆ, ગોરૂવા) સં. ગોરૂપ૦ માંથી જ સાધે છે.^૭

*

૬ સરખાવો “જૂની ગુજરાતી ભાષા” પા. ૧૮૫-૨૦૦.

૭ જુઓ ‘ભારતીય અનુશીલન’, પા. ૬૧૨૮.

† વચ્છરૂવાઈ એવો જ પાઠ (લેસના ખચ્ચા) માટે વજુરૂમાઈ શબ્દ મળે છે. જુઓ-પ્રબંધચિન્તા-મણિ, મારી આશ્રિતના પૃ. ૨૪; તેમ જ પુરાણન પ્રબંધ સંગ્રહ, પ્ર. ૧૪. -સંપાદક
૧.૪.૧.

प्राचीन देशीभाषाग्रथित प्रकीर्ण साहित्य

[१] मीरांके दो मधुर पद

पुरातन ग्रन्थ भण्डारोंका निरीक्षण करते समय हमें ऐसे सैंकड़ों ही कवियोंके रचे हुए गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी और पंजाबी आदि प्राचीन देशी-भाषामें ग्रथित दोहा, सोरठा, छप्पय, सवैया, ख्याल, ठप्पे, ध्रुपद और भिन्न भिन्न राग-रागिणीमें बने हुए गीत और पदरूप पद्यों और काव्योंके दर्शन हुए जो अद्यावधि अप्रकाशित और अज्ञातप्राय हैं और जिनकी संख्या हजारोंकी हैं। हमारे पास इस प्रकारके साहित्यका जो विशाल संग्रह संचित किया हुआ है उसमेंसे कुछ कुछ यथावकाश हम भारतीय विद्यामें प्रकाशित करनेका मनोरथ कर रहे हैं। आज हम यहां पर मंगलरूपमें भक्त शिरोमणि बाई मीरांके दो मधुर पद देते हैं जो शायद अभी तक अप्रसिद्ध हैं। —संपादक भा० वि०।

पद १. राग सोरठ ।

कैसे लिखुं लिखीयो न जाय, पतीयां; कैसे लि० ।

कलम भरत मेरो कर कंपत है,

हिबडो रह्यौ धरराय; प० । १

बात करुं तो मुझे बात न आवै,

नैण रह्या झरराय; प० । २

मीरांके प्रभु गिरधर नागर,

रही हूं मधु पर छाव; प० । ३

पद २. राग सोरठ ।

कां गया नेह लगाय, प्रभुजी; कां० ।

ब्रह्म समुद्र छोड चले हो,

ग्यांनकी नाव बणाय; प्र० । १

छोड चले हो विसवास संगती,

प्रेमकी बात बणाय; प्र० । २

मीरांके प्रभु गिरधर नागर,

हर चरणां चित लाय; प्र० । ३

આપણા સ્વરો વિષે કંઈક

કે. - શ્રીયુત નરસિંહભાઈ ઈશ્વરભાઈ પટેલ.

*

[પંદરેક વર્ષ ઉપર આ વિષય ઉપર લખાણો મારો એક લેખ વડોદરાના 'સાહિત્ય' માસિકમાં છપાણો, સ્વાર પછી મારા સંશોધનથી તે વિષયમાં થયેલા સુધારાવધારા કરીને આ લેખ નવેસરથી લખ્યો છે. - ન. ઈ. પ.]

મને આપણા સ્વરો વિષે કેટલીક શંકાઓ છે તે નીચે પ્રકટ કરું છું :

§ ૧. પ્રથમે તો નીચેના કોષ્ટક ઉપર ધ્યાન દેઈએ :

મૂળ		ગુણ	વૃદ્ધિ
√અ	√ઞ	અ	આ
ઇ	ઈ	ए	ऐ
उ	ऊ	ओ	औ
ऋ	ॠ	ऋ	ॠ
ऌ	ॡ	ऌ	ॡ

મગવાન્ પાણિનિએ અદેહુણઃ (૧ : ૧ : ૨) અને વૃદ્ધિરાદૈચ્ (૧ : ૧ : ૧) એ બે સૂત્રોને પોતાના અષ્ટાધ્યાયી વ્યાકરણની શરૂઆતમાં જ મૂકીને માન્યું છે કે અ ગુણ-સ્વર અને આ વૃદ્ધિ-સ્વર છે; છતાં એ ગુણ અને વૃદ્ધિ કયા મૂળ સ્વરની છે તે વિષે એમણે કશો ઉલ્લેખ કર્યો નથી. એ મૂળ સ્વરનું સ્થાન પૂરવા મેં કલ્પિત √અ અને √ઞ ઉપરના કોષ્ટકમાં મૂક્યા છે.

શાન્તિનિકેતન - વિશ્વભારતીમાં, હું ગ્રીક વ્યાકરણ સાથે તુલનાત્મક ભાષા-શાસ્ત્રનું અધ્યયન કરતો હતો ત્યારે, અમારા તે વખતના અધ્યાપક, પળ મૂલે તો પ્રાગ (Prague) વિદ્યાપીઠના ચેક (Czeck) વિભાગના અધ્યાપક મિ. લેસ્નીએ (Lesney) કહેલું કે પ્રાગ્વૈદિક ભાષામાં આજના અનો સજાતીય મૂળ સ્વર હતો, પળ કાઢે કરીને તે લોપ પામી ગયો છે. એ વખતે તો એ વાત મને ગળે નહોતી ઉતરી; પળ પછી વધારે અધ્યયન કરતાં અને ગુણ-સ્વર અ અને વૃદ્ધિ-સ્વર આ તરફ નજર નાખતાં એ વાત આજે સાચી લાગે છે, એટલું જ નહિ પળ લાગે છે કે ઉપરનું કોષ્ટક સંપૂર્ણ થવાને માટે હવે અને દીર્ઘ એમ બે સ્વર લોપ પામી ગયા હોવા જોઈએ. અને એ હુસતા પામી ગયેલા સ્વરનું સ્થાન આજે તે સમયના

ગુણ-સ્વર અ અને વૃદ્ધિ-સ્વર આ એ લીધું છે. બાકી સાચી રીતે તો અ હ્રસ્વ અને આ दीर्घ स्वर તો નથી જ. બીજા હ્રસ્વ અને दीर्घ स्वरોમાં કાઠ્ઠમાન સિવાય ઉચ્ચારણમાં તો કંઈ મેદ નથી, ત્યારે આ બે સ્વરોમાં તો બીજા ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વરોના જેવો ઉચ્ચારણમાં પણ મેદ છે.

પણ અક્રઃ સર્વર્ણે दीर्घः (૬: ૧: ૧૦૧), એ સૂત્ર પ્રમાણે અ, ઇ, ઉ, ઋ અને ૠ એ સ્વરો પછી સર્વર્ણ સ્વર આવે તો એ બે મઠીને दीर्घस्वर થાય. પણ ઉપર આપેલાં બે સૂત્રો પ્રમાણે તો અ ગુણ-સ્વર અને આ વૃદ્ધિ-સ્વર છે, એટલે આ સૂત્ર ઉપરનાં બે સૂત્રો વિરુદ્ધ જતાં મને દેખાય છે; જો કે આજે તો અ અને આ પછી સર્વર્ણ સ્વર અ અને આ આવતાં दीर्घ આ થાય છે.

બઢી આદ્ય ગુણઃ (૬: ૧: ૮૭), એ સૂત્ર ઉપર લઘુકૌમુદીમાં વૃત્તિ છે, કે અવર્ણાત્ અચિ પરે પૂર્વપરયોઃ એકઃ ગુણાદેશઃ સ્યાત્ (અકાર અથવા આકારની પછી સ્વર આવે તો એ બંને મઠીને એક ગુણ થાય). પણ અકાર કે આકારની પછી અકાર કે આકાર આવે તો આજે તો આ થાય છે, એટલે કે ઉપર જણાવેલા ૬: ૧: ૧૦૧ સૂત્ર પ્રમાણે માત્ર दीर्घ થાય છે. અથવા આને પાણિની વૃદ્ધિ કહે છે તે પ્રમાણે વૃદ્ધિ થાય છે. આનો શો સુલ્હાસો થઈ શકે !

§ ૨. હવે નીચેના પ્રચલિત વ્યાકરણના કોષ્ઠક તરફ ધ્યાન દેઈએ :

(ક) ગુણ વા વૃદ્ધિ + મૂલ = ગુણ; (સ્વ) ગુણ વા વૃદ્ધિ + ગુણ = વૃદ્ધિ

અ વા આ + ઇ = એ;

અ વા આ + એ = ઈ

અ વા આ + ઉ = ઓ;

અ વા આ + ઓ = ઔ

ઉપરના પ્રચલિત વ્યાકરણના વિધિમાં ફેરફાર કરીને નીચે પ્રમાણે હવે ગોઠવું છું :

ગુણ + મૂલ = ગુણ; ગુણ + ગુણ અથવા વૃદ્ધિ + મૂલ = વૃદ્ધિ

અ + ઇ = એ; અ + એ, અથવા આ + ઇ = ઈ

અ + ઉ = ઔ; અ + ઓ, અથવા આ + ઉ = ઔ

ગુણની બાબતમાં ઉપરનું સમીકરણ પ્રચલિત અને સ્પષ્ટ છે, પણ વૃદ્ધિની બાબતમાં નીચેનાં સમીકરણ સ્પષ્ટ થશે :

(૧) અ + (અ + ઇ) = એ; અ + અ + ઇ = આ + ઇ = ઈ

(૨) એ + અ = અય; ઈ + અ = આય

ત્યારે અય = અ + ય (= ઇ + અ) = અ + ઇ + અ = એ + અ;
આમાંથી સમાન અ કાઢી લેઈએ તો અ + ઇ = એ થાય.

પણ આય = આ + ય (= ઇ + અ) = આ + ઇ + અ = એ + અ =
આમાંથી સમાન અ કાઢી લેઈએ તો આ + ઇ = એ થાય.

ત્યારે પ્રચલિત વ્યાકરણના કોષ્ઠક ક્રમાં જણાવ્યા પ્રમાણે તો વૃદ્ધિમાં મૂળ
ઉમેર્યે (આ + ઇ) ગુણ (એ) થાય છે, એટલે કે વૃદ્ધિમાં ઘટાડો થઈને ગુણ
થાય છે ! પણ કંઈક ઉમેર્યે ઘટાડો તો થાય જ કેમ ?

સારાંશ કે અ + ઇ = એ અને અ + ઊ = ઓ થાય એ તો સ્પષ્ટ; પણ આ + ઇ =
એ અને આ + ઊ = ઑ થવા જોઈએ. પ્રચલિત વ્યાકરણમાં એમ શાથી નથી
થતું એ કોઈ સમજાવશે ?

§ ૩. હવે નીચેના કોષ્ઠક તરફ નજર કરીએ :

અ + ઇ = એ, આ + ઇ = એ, ઇ + અ = ય, એ + અ = અય, એ + અ =
આય; તેમ જ અ + ઋ = ઋ, આ + ઋ, ઋ + અ = ર, ઋ + અ = અર,
ઋ + અ = આર

ઉપરના કોષ્ઠકમાં ઋ + અ = અર થાય છે તે તો જાણે બરાબર છે, પણ
પ્રચલિત વ્યાકરણમાં ઋનો ગુણ અર થાય છે તે બરાબર નથી; ઋના તેમ જ
ૠના ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વરનો લોપ થયો લાગે છે, તેથી જ મેં ઉપરના કોષ્ઠકમાં
તે સ્વરોને સ્થાને ઋ અને ઋ મૂકી ખાલી પડતાં ઋનાં પૂરાં કર્યાં છે; તથા
એ ગુણ-સ્વરમાં અ ઉમેરીને અર અને વૃદ્ધિ-સ્વરમાં અ ઉમેરીને આર મૂક્યા છે, એ
તો પ્રચલિત વ્યાકરણ પ્રમાણે બરાબર છે અને ઉપરનાં ઋનાંમાં એ + અ = અય
અને એ + અ = આય એને પણ સમરૂપ છે.

આના આધારની મારી કલ્પના આ પ્રમાણે છે :

(૧) જસિ ચ (૭ : ૩ : ૧૦૯) સૂત્ર પ્રમાણે હ્રસ્વ સ્વરાન્ત નામનું બહુ-
વચન કરતાં બહુવચનનો પ્રત્યય (જસ્) અસ્ ઉમેરતાં એ હ્રસ્વ સ્વરનો ગુણ
થયા પછી તેમાં અસ્ પ્રત્યય ઉમેરાય છે. તે પ્રમાણે મુનિ અને સાધુ શબ્દોનું
બહુવચન કરતાં પ્રપમ મુને અને સાધો થયા પછી તેમાં અસ્ પ્રત્યય ઉમેરાય,
એટલે મુનયઃ અને સાધવઃ થાય છે,

તેવી જ રીતે પિતૃ શબ્દમાં છેવટના ક્રનો ગુણ થયો જોઈએ; પણ તે તો લોપ પામી ગયેલો હોવાથી બારોબાર ક્ર+અસ્=અર્; બારોબાર મૂકી પિતરઃ કરી દેવાય છે. આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ક્રનો અને ક્રનો લોપ થયો છે જ, અને તેથી તેમને બદલે અર્ અને આર્ મૂકી તેમની મીઠ ભાગી છે. એમ તો ક્રનો ગુણ અર્ અને વૃદ્ધિ આર્ પણ મૂકીને તેવે પ્રસંગે ચલાવી લેવાય.

વળી (૨) નીચેના કોષ્ટક તરફ નજર કરતાં એ વાત બધારે સ્પષ્ટ થશે :

૧	૨	૩	૪	૫	૬
ની	નીતિ	નેતા	નૈતિક	નયન	નાયક
શ્રુ	શ્રુતિ	શ્રોતા	શ્રૌત	શ્રવણ	શ્રાવક
કૃ	કૃતિ	કર્તા	કાર્ય	કરણ	કારક

ઉપરના કોષ્ટકમાં પ્રથમની ઉમી લીટીમાં અનુક્રમે ક્રકારાન્ત, ઉકારાન્ત અને ક્રકારાન્ત ધાતુ છે. બીજીમાં ક્તિન્ પ્રત્યય લાગ્યે ધાતુઓ મૂળ રૂપે જ રહ્યા છે. ત્રીજીમાં ને ચોથીમાં સ્વરના અનુક્રમે ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વર થયા છે. પાંચમી અને છઠ્ઠીમાં અનુક્રમે ગુણમાં અને વૃદ્ધિમાં અ ઉમેરાયો છે. ની અને શ્રુનાં એ બધાં રૂપ જોયાથી એ નિયમ બરાબર સચવાયો દેખાય છે; ક્રકારાન્ત કૃ ધાતુનાં પ્રથમનાં બે રૂપ બરાબર સચવાયાં છે, પણ ત્રીજા અને ચોથા ધાતુના તરફ નજર કરતાં જણાશે કે તેના ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વરને બદલે તે ગુણ-સ્વરમાં અને વૃદ્ધિ-સ્વરમાં અ ઉમેરાયેલાં (પણ વ્યાકરણના પ્રચલિત નિયમે માની લીધેલા ગુણ-સ્વર અને વૃદ્ધિ-સ્વરનાં) રૂપ મૂકી દેવામાં આવ્યાં છે ને તેથી તેનું ત્રીજા અને ચોથા ધાતુનાં રૂપ અનુક્રમે પાંચમા અને છઠ્ઠા ધાતુના રૂપ જેવું બની ગયું છે; ઉપરના ધાતુઓમાં જેવાં એ રૂપોમાં મેદ પડ્યો છે, એવો આ રૂપોમાં નથી પડ્યો. ક્રનાં ગુણ અને વૃદ્ધિનાં સાચાં રૂપ લોપ પામ્યાથી જ, તેમાં અ અને આ ઉમેરતાં થતાં અર્ અને આર્ રૂપોને આજે ગુણ અને વૃદ્ધિ માની લેવાયાં છે.

(૩) ક્ર અને ઉ સ્વરનો ગુણ એને અને ઓને તેમ જ વૃદ્ધિ એને અને ઔને આપણી પ્રચલિત સ્વરમાળામાં સ્થાન મળ્યું છે, પણ ક્ર અને લૃ સ્વરના ગુણને અને વૃદ્ધિને આજે સ્થાન નથી, એનો અર્થ જ એ કે તે સ્વરોનો લોપ થયો છે.

ઉપરનાં ત્રણે કારણો એવું સાબિત કરવા પૂરતાં છે કે ક્ર અને લૃ સ્વરના ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વરોનો લોપ થયો છે.

આરે હવે પ્રાગ્વૈદિક ભાષામાં નીચે પ્રમાણે સ્વરો હોવાનું અનુમાન કરી શકાય

સ્થાન	મૂળ	ગુણ	વૃદ્ધિ
	હસ્ત	દીર્ઘ	
કંઠ	✓અ	✓અ	અ
તાલુ	ઈ	ઈ	એ
ઓષ્ઠ	ઉ	ઊ	ઔ
મૂર્ધા	ઋ	ઋ	ઋ
દન્ત	ૃ	ૃ	ૃ

આચાર્ય પાણિનિ આદિ અને અન્ય વૈયાકરણો દીર્ઘ ૃ ને સ્વીકારતા નથી, પણ મુગ્ધબોધના કર્તા કોપદેવ આદિ કેટલાક વૈયાકરણો સ્વીકારે છે, તેથી જ તે જાનું પૂરવા મેં એનો સ્વીકાર કર્યો છે; પ્રાગ્વૈદિક ભાષામાં એ સ્વર હોય પણ સ્વરો.

§ ૪. આચાર્યે સ્વરોનો ક્રમ પોતાના અષ્ટાધ્યાયી વ્યાકરણની શરૂઆતમાં જ માહેશ્વર સૂત્રોમાં નીચે પ્રમાણે મૂક્યો છે : અ ઇ ઉ ણ્ । ઋ ૃ ક્ । એ ઔ ઙ્ । એ ઔ ચ્ । પહેલા અને બીજા સૂત્રમાં મૂળ સ્વર છે, ત્રીજામાં અને ચોથામાં પહેલા સૂત્રના પછીના બે સ્વરોના ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વર આપ્યા છે; પણ બીજા સૂત્રમાંના સ્વરોના ગુણ અને વૃદ્ધિ સ્વરોનો લોપ થયાથી તે આપ્યા નથી. તેમ જ અ ગુણ-સ્વર હોવા છતાં તેનો મૂળ સ્વર લોપ થયાથી એને જ મૂળ સ્વર માની મૂળસ્વરોની પંક્તિમાં મૂક્યો છે.

કંઠ	તાલુ	ઓષ્ઠ	મૂર્ધા	દન્ત
અ	ઈ	ઉ	ઋ	ૃ
+ અ = આ	ય	વ	ર	લ

પાણિનિ એ જ આપેલો સ્વરનો ક્રમ આજે પ્રચલિત છે, અને એ સ્વરોને અનુ-રૂપ અંતઃસ્થોનો ક્રમ પણ આચાર્યે તો હ ય વ ર ટ્ । લ ણ્ । એ બે સૂત્રોમાં એ સ્વરો પ્રમાણે જ મૂક્યો છે. પણ કોણ જાણે કેમ એ અંતઃસ્થોનો ક્રમ બદલાઈને ય ર લ વ એ પ્રમાણે થઈ ગયો છે. એ ક્રમ શાથી, ક્યારે અને કોણે બદલ્યો હશે ?

બેશક, ય ર લ વ એ ક્રમ જ સ્વાભાવિક છે, કારણ કે વર્ણોચ્ચાર કરવાનાં કંઠ, તાલુ, મૂર્ધા, દંત અને ઓષ્ઠ એ જે પાંચ સ્થાન છે તે મુખની અંદર એ જ ક્રમે ગોઠવાયા છે, અને આપણી પ્રચલિત વ્યંજનમાલ્યાનો પણ એ જ ક્રમ છે. અ અને ક્ વર્ગના વ્યંજન કંઠસ્થાની; ઇ, ય વર્ગ અને ય તાલુસ્થાની; ઋ, ટ

વર્ગ અને ર મૂર્દસ્થાની; લૃ, ત વર્ગ અને લ દંસ્યસ્થાની અને ઉ, ષ વર્ગ અને વ ઓષ્ઠસ્થાની છે. પળ ત્યારે એ ક્રમે તો આપણા સ્વરોનો ક્રમ ઇ, ઋ, લૃ અને ઉ એ પ્રમાણે હોવો જોઈએ; પણ પાણિનિએ આપેલો ક્રમ હજી ચાલુ છે. સ્વર એ જ ક્રમે રહ્યા અને અંતઃસ્થ બદલાઈને સ્વાભાવિક ક્રમે ગોઠવાયા એ કેમ અને ક્યારે બન્યું હશે ? પાણિનિને તો પોતાના વ્યાકરણમાં સંધિ વગેરેનાં સૂત્રો રચવા માટે વર્ણોનો ક્રમ ફેરવ્યા વિના છૂટકો નહોતો, પણ ત્યાં આ લૌકિક સ્વાભાવિક ક્રમમાં ફેર શાયી થયો હશે ?

§ ૫. ઉપરના અંતઃસ્થો ઉપર નજર નાખતાં જણાય છે કે તે ચાર છે. તથા તે ઇ, ઉ, ઋ અને લૃને અનુરૂપ છે, ત્યારે અ અને અનુરૂપ પ્રથમ વર્ગનો અંતઃસ્થ કેમ નહિ હશે ? અથવા અ તો ગુણસ્વર છે, એનો મૂળસ્વર લોપ પામ્યો તેની સાથે તેનો અંતઃસ્થ પણ લોપ પામ્યો હશે ? વળી ઇ નો અને તેમ જ ઉ નો અનુરૂપ ઉષ્મવર્ણ પણ કેમ નથી ? કારણ કે આજે તો ઇ, ઋ અને લૃ એ ત્રણને જ અનુરૂપ ઉષ્મવર્ણ શ્વસ છે, શું ઉષ્મવર્ણ પણ પ્રાગ્વૈદિક ભાષામાં હશે અને પછી લોપ પામ્યા હશે ? અથવા શું હ તે અ નો ઉષ્મવર્ણ હશે ?

§ ૬. અને એમ લોપ પામેલા જેમને આપણે માર્તા લેઈએ છીએ, એ બધાનાં સ્થાન પૂરતાં આપણી વર્ણમાલા નીચે પ્રમાણે બને :

સ્વર				વ્યંજન				અંતઃસ્થ	ઉષ્મ
હ્રસ્વ દીર્ઘ ગુણ વૃદ્ધિ									
કંઠ	✓અ	✓આ	અ આ	ક	ઘ	ગ	ઙ	?	?(હ?)
તાલ	ઇ	ई	ए ऐ	च	छ	ज	झ	ञ	श
મૂર્દા	ऋ	ॠ	ऋ ॠ	ट	ठ	ड	ढ	ण	र
દંત	लृ	लृ	लृ लृ	त	थ	द	ध	न	ल
ઓષ્ઠ	उ	ऊ	ओ औ	प	फ	ब	भ	म	व

અમુક વર્ણો લોપ પામ્યા છે એવી મારી કલ્પના વિરુદ્ધ એવી દલીલ કરવામાં આવશે કે એ લુપ્ત માનેલા વર્ણોને આપણે ઉચ્ચારતા નથી કે ઉચ્ચારવાની કલ્પના પણ કરી શકાતી નથી, એ જ સાબિત કરે છે કે એ કદી હતા જ નહિ. આના જવાબમાં મારે જણાવવાનું કે જેમ બાર ગાઉએ બોલી બદલાય છે તેમ જ બાર વર્ષે પણ બોલી બદલાય છે. અને તેથી કેટલાંક ઉચ્ચારણો કરવાની માણસની શક્તિ

પણ, અનમ્યાસને કારણે નાશ પામી જાય છે. ઝ નો ઉચ્ચાર તો આપણે કરીએ જ છીએ, છતાં એ વર્ણ ગુજરાતી વર્ણમાલામાંથી હુત થતો જાય છે, એ તો પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ છે. પ્રાકૃત ભાષાઓમાં એ નો અને ઔ નો લોપ થયો છે, તેમ જ વિવર્ણ યુક્તાક્ષરનો ઉચ્ચાર અશક્ય થઈ પડ્યાથી એ બે યુક્તાક્ષરોને સ્વર્ણ યુક્તાક્ષર બનાવી દેવાયો છે. આજે પણ બંગાળીઓ મહાત્માને સ્થાને મહાત્તા જ બોલે છે.

§ ૭. વ્યંજનો સ્વયંસંપૂર્ણ નથી, એટલે એમાં સ્વર મેલવીને સંપૂર્ણ બનાવાય છે, અને એમ મેલવવા માટે સ્વરોની વિશિષ્ટ સંજ્ઞાઓ બનાવવામાં આવી છે: અ મેલવતાં વ્યંજનની સંજ્ઞા ઉઠાવી દેવામાં આવે છે; આ, ઇ, ઈ, ઉ, ઊ, ઋ, ઌ, એ, ઐ, ઓ, ઔ, એ સ્વરો માટે અનુક્રમે િ, િ, િ, ં, ં, ં, ં, િ, િ, એ સંજ્ઞાઓ વ્યંજનને લગાડાય છે.

સ્વરો તો પોતે જ સ્વયંસંપૂર્ણ છે, એટલે એમને તો આવી કોઈ સંજ્ઞા લાગી શકે જ નહિ; એમનાં પોતાના ઉચ્ચારનાં સ્થાન સ્પષ્ટ રીતે વિશિષ્ટ અને જુદાં છે અને તેથી તેમની સંજ્ઞાઓ પણ સ્પષ્ટ રીતે વિશિષ્ટ અને જુદી જ હોવી વટે, એમાં જ શાસ્ત્રીયતા છે. આ વાત આપણા પ્રાચીન વૈયાકરણો સારી રીતે સમજતા હતા અને તેથી જ તેમણે સૌ સ્વરોની વિશિષ્ટ અને જુદી સંજ્ઞાઓ યોજી છે.

પણ હાલ કેટલાક લિપિસુધારકો વ્યંજનોને લગાડવાની સ્વરોની સંજ્ઞાઓ સ્વરોને પણ લગાડે છે અને ઇ, ઈ, ઉ, ઊ અને ઋ એ સ્વરોને બદલે ઝિ, ઝી, ઝુ, ઝૂ, અને ઝૃ લખે છે તથા છપાવે છે. આમ કરવામાં મને શાસ્ત્રીય દોષ દેખાય છે. કારણ કે કૂ વગેરે વ્યંજનોની સાથે એ સ્વરો જોડાતાં, હલની સંજ્ઞા ઊઢી જઈને, તેને બદલે િ વગેરે સંજ્ઞાઓ લાગે છે, પણ અ સાથે એ ચાર સ્વરો જોડાતાં તે તે સ્વરના ગુણ-સ્વર થાય છે. કૂ + ઇ = કિ એ બરાબર; પણ અ + ઇ = ઝિ નહિ, પણ ઈ જ થાય. આમ એ મૂલસ્વરની સંજ્ઞાઓ વ્યંજનની પેઠે અ ને ન જ લગાડી શકાય. ગુણ અને વૃદ્ધિ મૂલસ્વર નહિ, પણ અ ની સાથે મઢેલા મૂલસ્વરથી બનેલા હોવાથી અ ની સાથે તેમની વિશેષ સંજ્ઞાઓ લગાડવાની યોજના પ્રાચીન વૈયાકરણોએ કરી છે.

કોઈ દાવો કરશે કે લેખનની સરલતાને હેતુએ આ સુધારો કરવામાં આવ્યો છે; પણ હું પૂછું છું કે ઇ, ઈ, ઉ, ઊ અને ઋ એમને બદલે ઝિ, ઝી, ઝુ, ઝૂ અને ઝૃ લખવામાં કંઈ સરલતા થઈ ? લેખનમાં સરલતાનો પ્રથમ નિયમ એ છે કે અક્ષરો

ને શબ્દો પણ લખતાં કલમ વગર ઉપાધ્યે સરલતાએ ચાલે, કલમ બને તેટલી ઓછીવાર ઉપાડવી પડે. એ નિયમે યુરોપની તમામ ભાષાઓ લખવામાં સરલ છે. મરઝાઈને તૈયાર થયેલી મોઢી કહેવાતી મરાઠી લિપિ પણ એટલી જ સરલ છે. ગુજરાતી લિપિનાં છાપખાનાં થતાં પહેલાં, દેવનાગરી લિપિનાં માયાને સરલતાથી, કલમ ઉપાધ્યા વિના, લખવાને માટે એ જ નિયમે જુદાં માયાં એક સઠંગ લીટીના સ્વરૂપમાં દોરી દેવાતાં. અને એ દૃષ્ટિએ અભ્યારે લખાતા મૂલ્યરો, સુધારેલી લિપિના સ્વરો કરતાં, લખવામાં વધારે સરલ છે.

અને વઢી સુધારેલી લિપિના સ્વરો લખવામાં સરલ હોય, તોપણ તેટલા જ યાત્રા શાસ્ત્રીયતાનો ભોગ તો ના જ અપાય. અંગ્રેજી Knowledge શબ્દનો ઉચ્ચાર ‘નોલેજ’ યાય છે, તેમાંના Kનો ઉચ્ચાર ઘસાઈને ઝડી ગયો છે અને તે અક્ષર આજે અજાગલસ્તન પેઠે નિરર્થક થઈ પડ્યો છે; છતાં એ શબ્દને સંસ્કૃત જ્ઞા શબ્દ સાથે ધાતુસંબંધ છે, એ ઐતિહાસિક શાસ્ત્રીયતા (જાણે કે) સાચવી રાખવા માટે એ નિરર્થક K અક્ષરનો સંગ્રહ અંગ્રેજ વૈયાકરણોએ કરી રાખ્યો છે, સરલતા રાખવા યાત્રા એને હઠસેલી દીધો નથી.

શાસ્ત્રીયતાનો ભોગ ન અપાતો હોય ત્યાં સરલતા સાધવી એ હ્રષ્ટ છે. દેવનાગરી અક્ષરોનાં માયાંની એક સઠંગ લીટી, સરલતાને માટે, આપણા પૂર્વજોએ બનાવી દીધી છે, તેમ જ જી, જુ અને જૂ એમને કલમ ઉપાધ્યા વિના સઠંગ રીતે લખાય, એ સરલતા માટે તેમને બદલે જી, જુ બનાવ્યા છે. પણ આ લિપિસુધારકો એકરૂપતાને માટે કે કોણ જાણે કયે હેતુએ આ અક્ષરોની સરલતા તોડીને પાછા મૂલ્ય રૂપે લખવાનું યોજે છે !

§ ૮. આ વિષે અમ્યાસીઓ ચર્ચા કરશે અને મારી શંકાઓનું નિવારણ કરશે અથવા મારી આ વિચારશ્રેણીમાં કંઈ દોષ હોય તો દેખાડશે એવી આશા છે.

‘પાટીદાર’ મંદિર, આણંદ.

સુ. ૧૪ : ૩ : ૧૯૯૭.

खरतरगच्छ - गुर्वावलीका ऐतिहासिक महत्त्व

ले० - श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा - संपादक 'राजस्थानी'

*

[सिंधी जैन ग्रन्थमालामें खरतरगच्छ-युगप्रधानाचार्य-गुर्वावली नामक एक संस्कृत गद्य ग्रन्थ छप रहा है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इस ग्रन्थमें विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके प्रारंभमें होनेवाले आचार्य वर्द्धमान सूरिसे लेकर १४ वीं शताब्दीके अन्तमें होनेवाले जिनपद्म सूरि तकके खरतर गच्छके मुख्य आचार्योंका विस्तृत चरितवर्णन है। गुर्वावली अर्थात् गुरुपरम्पराका इतना विस्तृत और विशिष्ट चरितवर्णन करनेवाला ऐसा कोई और ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्रायः ४००० श्लोक परिमाण यह ग्रन्थ है और इसमें प्रत्येक आचार्यका जीवनचरित्र इतने विस्तारके साथ दिया गया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थमें, किसी भी आचार्यका नहीं मिलता। पिछले कई आचार्योंका चरित्र तो प्रायः वर्षवारके क्रमसे दिया गया है और उनके विहार-क्रमका तथा वर्षा-निवासका क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्यने कब दीक्षा ली, कब आचार्य पदवी प्राप्त की, किस किस प्रदेशमें विहार किया, कहां कहां चातुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-शिष्याएं आदि दीक्षित किये, कहांपर किस विद्वानके साथ शास्त्रार्थ या वादविवाद किया, किस राजाकी समामें कैसा सम्मान आदि प्राप्त किया - इत्यादि बहुत ही ज्ञातव्य और तथ्य-पूर्ण बातोंका इस ग्रन्थमें बड़ी विशद रीतिसे वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, सिन्ध, बागड़, पंजाब, और बिहार आदि अनेक देशोंके, अनेक गांवोंमें होनेवाले सेंकड़ों ही धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओंके कुटुंबोंका और व्यक्तियोंका नामोल्लेख इसमें मिलता है और उन्होंने कहांपर, कैसे पूजा-प्रतिष्ठा, और संघोत्सव आदि धर्मकार्य किये इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह ग्रन्थ, अपने ढंगकी एक अनोखी कृति जैसा है। हम इसका हिन्दी अनुवादके साथ संपादन कर रहे हैं। इस ग्रन्थके आविष्कारक बीकानेर निवासी साहित्योपासक श्रीयुत अगर चन्दजी नाहटा हैं और इन्होंने हमें इस ग्रन्थके संपादनकी सादर प्रेरणा की है। नीचे दिये गये लेखमें नाहटाजीने, इस ग्रन्थका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है और सार्वजनिक दृष्टिसे भी किन किन ऐतिहासिक बातोंका ज्ञातव्य इसमें प्राप्त होता है, यह संक्षेपमें बतानेका प्रयत्न किया है। - संपादक भा० वि०]

ऐतिहासिक साहित्यकी दृष्टिसे खरतरगच्छ गुर्वावली एक अत्यन्त महत्त्वका और अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ है। कुछ वर्ष पूर्व, बीकानेरके प्राचीन जैन ज्ञान भंडारोंका अन्वेषण करते हुए हमें यह निधि उपलब्ध हुई थी। इसमें विक्रमकी ग्याहरवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धसे लेकर वि० सं० १३९३ तकके खरतरगच्छीय जैनाचार्योंका विस्तृत और विश्वसनीय इतिवृत्त लिखा हुआ है। इस वृत्तान्तसे तत्कालीन भारतीय इतिहासकी और और बातोंपर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। जो लोग कहते हैं कि भारतमें संवतानुक्रमसे शृंखलाबद्ध इतिहास लिखनेकी प्रणाली सर्वथा नहीं थी उन्हें निरुत्तर करनेके लिये यह ग्रन्थ एक पर्याप्त उदाहरणरूप है।

यह ग्रन्थ दो तरहकी शैलीमें संकलित किया हुआ है। श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे श्रीजिनदत्त सूरिजीके खर्गवास सं० १२११ तकका वृत्तान्त तो, सं० १२९५ में सुमतिगणि द्वारा रचित 'गणधरसार्द्धशतक—बृहद्वृत्ति' के अनुसार ही प्राचीन शैलीका है। पर इसके पश्चात्की प्रत्येक घटना संवतानुक्रम और शृंखलाबद्ध रूपसे लिखी गई है, जो घटनाओंके साथ साथ लिखी हुई डायरीसी प्रतीत होती है। जैनाचार्योंका विहारानुक्रम, मार्गवर्ती ग्राम-नगर, दीक्षाएं, प्रतिष्ठाएं, तत्तत् ग्रामवासी श्रावकोंके नाम, राजसभाओंमें किये गये शास्त्रार्थ, तीर्थयात्रा वर्णन—इत्यादि सभी बातें इतनी विशदताके साथ लिखी गई हैं कि तत्कालीन परिस्थिति आंखोंके सामने आजाती है। भ्रमणशील जैनाचार्योंके प्रवासमार्गका वर्णन तो भारतीय साहित्यमें एक नवीन वस्तु है। क्यों कि भारतके साहित्यमें प्रायः इसका अभाव ही है। हमारे पास, जो कुछ विदेशी विद्वानोंने भ्रमणवृत्तान्त लिखे, वे ही उपलब्ध हैं; पर उनमें स्थानोंके नामादिमें कई भूलें हुई हैं; किन्तु इसमें विशुद्ध भौगोलिक वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत निबन्धमें हम, इस गुर्वावलीमें उपलब्ध राजकीय इतिहास सामग्री और भौगोलिक बातोंका संक्षिप्त परिचय देना चाहते हैं। आशा है, विद्वानोंको इससे कुछ नवीन ज्ञातव्य मिलेगा।

† गुर्वावलीके आधार पर, पं० दशरथजी शर्मा एम्. ए. ने, इंडियन हिस्टोरिकल कार्टर्ली, बॉ० ११, नं० ४, और पूना ऑरिएण्टलिस्ट बॉ० २, पृ० ७५ में, संक्षिप्त नोट लिखे थे जिनमें भी इसके ऐतिहासिक महत्त्वका अतिसंक्षेपसे शिर्दर्शन कराया था। यहां पर हम बचावश्यक पूर्ण ज्ञातव्य प्रकाशित करते हैं।

राजकीय इतिहास-सामग्री

पाटणके दुर्लभराज चौलुक्यका उल्लेख ।

श्रीवर्द्धमान सूरिके शिष्य श्रीजिनेश्वर सूरिने अणहिल पत्तनमें गूर्जरेश्वर दुर्लभ-राजकी सभामें चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ कर उनको जीता जिसका विस्तृत वर्णन इस पट्टावलिमें दिया गया है ।

धारानरेश नरवर्मका निर्देश ।

श्रीजिनवल्लभ सूरि [स्वर्ग सं० ११६७] जब चित्तौड़में थे तब, धारा-धीश नरवर्मकी सभामें दो दक्षिणी पण्डितोंने “कण्ठे कुठारः कमठे ठकारः” यह समस्यापद रखा । स्थानीय विद्वानों व राजपण्डितोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार समस्यापूर्ति की; पर उससे उन दक्षिणी विद्वानोंको सन्तोष नहीं हुआ । तब किसीसे श्राजिनवल्लभ सूरिजीकी प्रतिभाका परिचय पाकर राजाने यह समस्यापद उनके पास भेजा । सूरिजीने तत्काल ही सुन्दरताके साथ उसकी पूर्ति कर दी, जिससे समग्र विद्वान संतुष्ट हुए । फिर जब सूरिजी चित्तौड़से विहार कर धारा पधारे, तब नृपतिने उन्हें अपने प्रासादोंमें बुलाकर उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया । राजा सूरिजीका भक्त हो गया और उसने ३ लाख रुपये और ३ ग्राम उन्हें भेंट किये । परन्तु सूरिजी निरीह थे । उन्होंने उस दानका ग्रहण करना अस्वीकार किया, तब उनके उपदेशानुसार उसने चित्तौड़के दो जैन मन्दिरोंमें २ लाख रूपयोंसे पूजाके लिये मण्डपिकाएं बनवा दीं ।

—प्रस्तुत गुर्वावलीमें सं० १३०५ आषाढ सु० १० तकका वृत्तान्त तो श्रीजिनपति सूरिजीके विद्वान् शिष्य श्रीजिनपालोपाध्यायने दिह्ली निवासी सेठ साहुलीके पुत्र हेमचंद्रकी अभ्यर्थनासे संकलित किया है । इसके पश्चात्का वर्णन भी पट्टधर आचार्योंके साथमें रहने वाले व दफ्तर रखनेवाले विद्वान् मुनियों द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है । यह प्रति पत्र ८६ की है और प्रायः पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दीमें लिखी होकर बीकानेरस्थ श्रीक्षमाकल्याण ज्ञानभंडारमें विद्यमान है । इसमें सं० १३९३ तकका इतिवृत्त है । इसके पीछेका इतिहास जाननेके लिये हमें कोई भी इस कोटिकी गुर्वावली उपबन्ध नहीं है, परन्तु शुंखलाबद्ध इतिहास लिखनेकी प्रणाली तो पीछे भी बराबर रही है । सं० १८६०की एक सूचीके अनुसार, जेसलमेरके सुप्रसिद्ध ज्ञानभंडारमें, उस समय ३१२ पत्र जितनी विस्तृत एक गुर्वावली वहां विद्यमान थी । यदि यह गुर्वावली प्राप्त हो जाय तो अनेकों नवीन ज्ञातव्य मिले, खेद है कि अभीतक तो वर्तमान श्रीपूज्योंके पास प्राचीन दफ्तर भी नहीं मिलते । पाठकोंको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इसका सम्पादन पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजयजी जैसे विद्वान् द्वारा हो रहा है ।

अजमेरके अर्णोराजका उल्लेख ।

श्रीजिनदत्त सूरिजी जब अजमेरमें पधारे तो वहांका राजा अर्णोराज स्वयं दर्शनार्थ आया और उनके उपदेशसे अतीव प्रसन्न होकर उन्हें सर्वदा अजमेरमें ही रहनेकी विज्ञप्ति की । परन्तु सूरिजीने साध्याचारका स्वरूप बतलाया और समय समय पर वहां आते रहनेका कह कर राजाको सन्तुष्ट किया । इस नृपतिने अजमेरके दक्षिणी भागमें पहाडीके नीचे श्रावकोंको मन्दिर व निवासगृह बनानेके लिये यथेच्छ भूमि दी ।

त्रिभुवनगिरिका राजा कुमारपाल ।

श्रीजिनदत्त सूरिजीने त्रिभुवनगिरि पधार कर वहांके महाराजा कुमारपालको प्रतिबोध दिया । श्रीशान्तिनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा की और उधरके प्रदेशमें प्रचुरताके साथ अपने शिष्योंको विहार कराया ।

दिल्लीके महाराजा मदनपाल ।

सं० १२२३ में श्रीजिनदत्त सूरिजीके शिष्य श्रीजिनचंद्र सूरिजी दिल्लीके निकटवर्ती ग्राममें पधारे । उनको वन्दनार्थ जाते हुए श्रावक-समुदायको राज-प्रासादस्थित महाराजा मदनपालने देखा और मंत्रियोंसे सूरिजीके पधारनेकी खबर पाकर महाराजने समस्त मुसाहिबों और सेनाको एकत्र किया और बड़े समारोह पूर्वक सूरिजीके पास गया । उनसे धर्मोपदेश श्रवण कर महाराजा अत्यन्त प्रमुदित हुआ और उनको अपने नगरमें पधारनेकी अत्यन्त आम्रहपूर्वक वीनति की । सूरिजी अनिच्छाके होते हुए भी राजाग्रहसे दिल्ली पधारे । बड़े भारी समारोहसे उनका प्रवेशोत्सव हुआ । महाराजा मदनपाल स्वयं सूरिजीका हाथ पकड़े हुए उनकी पेशवाईमें चल रहा था । राजाकी प्रार्थनासे उन्होंने वहां चातुर्मास किया और दुर्भाग्यवश उनका वहीं स्वर्गवास हो गया ।

आशिकानरेश भीमसिंह ।

श्रीजिनपति सूरिजी सं० १२२८ में बम्बेर नगरको पधारे । संवाद पाकर आशिकाके श्रावक लोग राजा भीमसिंहके साथ सूरिजीके दर्शनार्थ आए । सूरिजीके उपदेशसे प्रसन्न होकर उन्हें आशिका पधारनेकी वीनति की । राजाके विशेष अनुरोधसे पूज्यश्री आशिका आए । भूपति भीमसिंहके साथ पूर्वोक्त दिल्लीके प्रवेशकी भांति आशिकामें प्रवेशोत्सव हुआ । सूरिजीने स्थानीय दिग्गज-

चार्यके साथ शास्त्रार्थ किया और उसमें सूरिजीका विजय हुआ । इससे आशिका (हांसी) नरेश बहुत प्रसन्न होकर सूरिजीके प्रति श्रद्धालु बना ।

सं० १२३२ में मन्दिरकी प्रतिष्ठा करनेके हेतु सूरिजी फिर आशिका पधारे । उस समय आशिकाका वैभव दर्शनीय था । नगरके बाहर राजा भीम-सिंहके आज्ञावर्ती राजाओंके तंबू-डोरे लगे हुए थे, राजकीय फौज-पलटनका जमघट लगा हुआ था । राजप्रासादों और बाग-बगीचोंके मनोहर दृश्यसे आशिका नगरी चक्रवर्तीकी राजधानीसी प्रतीत होती थी ।

अजमेरका महाराजा पृथ्वीराज चौहान ।

श्रीजिनपति सूरिजी सं० १२३९ में अजमेर पधारे । राजसभामें चैत्यवासी उपदेशगच्छीय पं० पद्मप्रभके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें सूरिजीकी विजय हुई । महाराजा पृथ्वीराजने स्वयं नरानयनके राजप्रासादोंसे अजमेर आ कर सूरिजीको “जय पत्र” समर्पण किया । इस वर्णनमें यह भी बताया गया है कि उसी वर्षमें महाराजाने भादानक देशको जीता था । इस शास्त्रार्थका वृत्तान्त बड़े विस्तारके साथ इस गुर्वावलीमें दिया गया है जिसमें बहुत सी अन्य ऐतिहासिक बातें भी हैं । विशेष जानने के लिये ‘हिन्दुस्तानी’ नामक त्रैमासिक पत्रिकामें प्रकाशित “पृथ्वीराजकी सभामें जैनाचार्योंका शास्त्रार्थ” नामक हमारा विस्तृत निबन्ध पढ़ना चाहिये ।

अणहिल्लपुर (पाटण) का राजा भीमदेव ।

सं० १२४४ में, अणहिल्लपुरका कोट्याधिपति श्रावक अभयकुमार तीर्थयात्राके हेतु संघ निकालनेकी इच्छासे महाराजाधिराज भीमदेव और प्रधान मंत्री जगदेव पड़िहारके पास गया और उनसे अरज करके स्वयं राजाके हाथसे अजमेर निवासी खरतर संघके नामका आज्ञापत्र लिखवा लाया । फिर एक वीनति-पत्र अपनी ओरसे श्रीजिनपति सूरिजीको लिख कर अजमेर भेजा । सूरिजीने निमन्त्रण पाकर अजमेरी संघके साथ विहार कर दिया । तीर्थयात्राके अनन्तर वापस लौटते हुए सूरिजी आशापल्ली पधारे । वहां चैत्यवासी प्रद्युम्नाचार्यसे उनका शास्त्रार्थ हुआ जिसमें विजयलक्ष्मी सूरिजीको मिली । इससे प्रतिपक्षीके भक्त अभयद्व दण्डनायकने कुटिलतासे संघको यह कह कर अटका लिया कि — ‘महाराजाधिराज भीमदेवकी आज्ञा है कि आप लोग हमारी आज्ञा बिना यहाँसे

नहीं जा सकेंगे ।’ इतना ही नहीं उसने संघकी चौकीके लिये १०० सैनिकोंकी गारद डाल दी । इस प्रकार १४ दिन संघ अटके रहा ।

इधर अपने बचावके लिये अभयडू दंडनायकने प्रतिहार जगदेवके पास, (जो उस समय गूर्जर कटकके साथ मालव देशमें गया हुआ था) पत्रके साथ, अपना सेवक भेज कर कहलाया—‘यहां सपादलक्ष—अजमेरका एक विशाल और वैभवशाली संघ आया हुआ है; यदि आपकी आज्ञा हो तो सरकारी घोड़ोंके लिये दाल-दानेका प्रबन्ध कर लें—अर्थात् लूट कर या तंग कर द्रव्य एकत्र करूं ।’ जगदेव अपने कर्मचारीसे पत्र सुनकर आगबबूला हो गया, और उसी क्षण अपने आज्ञाकारी व्यक्तिके हाथसे एक आज्ञापत्र लिखा भेजा कि—‘मैंने बड़े कष्टसे अजमेर नरेश पृथ्वीराजके साथ सन्धि की है; यह संघ भी वहीं का है; अतः इस संघकी तनिक भी छेड़छाड़ मत करना । यदि करोगे तो तुम्हें गधेकी खालमें सिला दिया जायगा ।’ जब अभयडूको यह आज्ञा मिली तो उसने फौरन संघसे क्षमा मांग कर उसे रवाने किया ।

लवणखेड़का राणा केलहण ।

सं० १२४९ में श्रीजिनपति सूरिजी लवणखेड़ासे विहार करके पुष्करिणी, विक्रमपुर आदिमें विचरते हुए सं० १२५१ में अजमेर गये । दो मास वहां पर मुसलमानोंके उपद्रवके कारण बड़े कष्टसे बीते । फिर पाटण, भीमपल्ली, कुहियप होकर पुनः राणा केलहणके आग्रहसे लवणखेटक पधारे । वहां ‘दक्षिणावर्त्तआरात्रिकावतारणोत्सव’ बड़ी धूमधामसे मनाया ।

नगरकोटका राजा पृथ्वीचन्द्र ।

सं० १२७३ में बृहद्धार (हरिद्वार) में गंगादशहरे पर गंगास्नानके लिये बहुतसे राणाओंके साथ महाराजाधिराज श्रीपृथ्वीचंद्र नगरकोटसे आया । उसके साथ पं० मनोनानन्द नामक एक काश्मीरी पण्डित भी था । उसने श्री जिनपति सूरिके उपाश्रय पर शास्त्रार्थके चैलैङ्गका नोटिश लगा दिया । तब सूरिजीके शिष्य जिनपालोपाध्याय आदि शास्त्रार्थके लिये महाराजा पृथ्वीचन्द्रकी सभामें आये, और वाद-विवादमें उक्त पण्डितको परास्त कर दिया । महाराजाने पण्डितके चैलैङ्गको फाड़ कर उपाध्यायजीको जयपत्र दिया ।

पालनपुरका राजकुमार जगसिंह ।

सं० १२८८ में पालनपुरके सेठ भुक्नपालने, राजकुमार जगसिंहकी उपस्थितिमें ध्वजारोपणका उत्सव बड़े समारोहसे मनाया ।

जावालिपुरका राजा उदयसिंह ।

सं० १३१० वैशाख सुदि १३ शनिवार स्वाति नक्षत्रके दिन, श्रीमहावीर विधिचैत्यमें, राजा व प्रधान पुरुषोंकी उपस्थितिमें राजमान्य महामन्त्री जैत्रसिंहके तत्वावधानमें, पालनपुर, वागडदेश आदिके श्रावकोंके एकत्र होनेपर श्रीचौबीस जिनालय आदिकी प्रतिष्ठा, दीक्षादि महामहोत्सवपूर्वक हुई ।

सं० १३१४ में माघ शु० १३ को राजा उदयसिंहके प्रमोदपूर्ण सान्निध्यसे कनकगिरिके मुख्य मन्दिर पर ध्वजारोप हुआ ।

स्वर्णगिरिका चाचिगदेव ।

सं० १३१६ के माघ सुदि ६ को, राजा चाचिगदेवके राजत्वकालमें स्वर्णगिरिके शान्तिनाथ मन्दिर पर स्वर्णमय ध्वजदंड व कलश स्थापित किये गये ।

भीमपल्लीका राजा माण्डलिक ।

सं० १३१७ वैशाख सुदि १० सोमवारको, भीमपल्लीमें राजा माण्डलिकके राजत्वकालमें टण्डनायक श्रीमीलगण (?) के सान्निध्यसे महावीर जिनालय पर स्वर्णदण्ड-कलशादि चढ़ाये गये ।

चित्तौड़का महाराजा समरसिंह ।

सं० १३३५ फा० कृ० ५ को, महाराजा समरसिंहके रामराज्यमें, चित्तौड़ के चौरासी मुहल्लेमें जलयात्रापूर्वक स्थानीय ११ मन्दिरोंके ११ छत्र व मुनि-सुव्रत, आदिनाथ, अजितनाथ, वासुपूज्य प्रभुकी प्रतिमाएं स्थापित की गई ।

चित्तौड़के युवराज अरिसिंह ।

सं० १३३५ फाल्गुन शुक्ल ५ को, सकलराज्यधुराको धारण करनेवाले राजकुमार अरिसिंहके सान्निध्यसे आदिनाथ मन्दिरपर ध्वजारोप हुआ ।

बीजापुर नरेश सारंगदेव ।

सं० १३३७ ज्येष्ठ कृष्ण ४ शुक्रवारको, महाराजाधिराज सारंगदेवके रामराज्यमें, महामाल्य मल्लदेव व उपमंत्री विन्ध्यादित्यके कार्यकालमें, बीजापुरमें श्रीजिनप्रबोध सूरिजीका नगरप्रवेश बड़े समारोहसे हुआ । सं० विन्ध्यादित्य सूरिजीकी स्तुति करता था ।

शम्यानयन (सिवाना) का राजा श्रीसोम ।

श्रीजिनप्रबोध सूरिजीने (सं० १३४० में) सन्मुख आये हुए श्रीसोममहाराजाकी वीनति स्वीकार कर शम्यानयनमें चातुर्मास किया ।

जेसलमेर नरेश कर्णदेव ।

सं० १३४० के फाल्गुनमें श्रीजिनप्रबोध सूरिजी जेसलमेर पधारे । नगर प्रवेश बड़े समारोहसे हुआ । राजा कर्ण ससैन्य दर्शनार्थ सामने आया । महाराजाके आग्रहसे चातुर्मास भी उन्होंने वहीं किया ।

जावालपुरका राजा सामन्तसिंह ।

सं० १३४२ ज्येष्ठ कृष्णा ९ को, जालौरमें, सुप्रसन्न महाराजा सामन्तसिंहके सांनिध्यसे अनेक जिनप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा और इन्द्रमहोत्सव सम्पन्न हुआ ।

शम्यानयनका महाराजा सोमेश्वर चौहान ।

सं० १३४६ फाल्गुन शुक्ल ८ को, महाराजा सोमेश्वरकारित विस्तृत प्रवेशोत्सवसे श्रीजिनचन्द्र सूरिजी शम्यानयन पधारे । सा० बाहड, भां० मीमा, जर्गसिंह, खेतसिंह सुश्रावकोंके बनवाए हुए प्रासादमें उन्होंने शान्तिनाथ प्रभुकी स्थापना की ।

जेसलमेर नरेश जैत्रसिंह ।

सं० १३५६ में राजाधिराज जैत्रसिंहकी प्रार्थनाको मान दे कर, श्रीजिनचन्द्र सूरिजी, मार्गशीर्ष शुक्ला ४ को, जेसलमेर पधारे । पूज्यश्रीके स्वागतार्थ महाराजा ८ कोश सन्मुख गया था । सं० १३५७ मार्गशीर्ष कृष्णा ९ को, महाराजा जैत्रसिंहके मेजे हुए वाजित्रोंकी ध्वनिके साथ मालारोपण व दीक्षा महोत्सव सम्पन्न हुआ ।

शम्यानयन नरेश शीतलदेव ।

संवत् १३६० में महाराजा शीतलदेवकी वीनति और मङ्गी नाणचन्द्र आदिकी अभ्यर्थनासे श्रीजिनचन्द्र सूरिजी शम्यानयन पधारे और शान्तिनाथ भगवानके दर्शन किये ।

सुलतान कुतुबुद्दीन ।

सं० १३७४ में, मग़िदलीय ठकुर अचलसिंहने बादशाह कुतुबुद्दीनसे सर्वत्र निर्विघ्नतया यात्रा करनेके लिये फरमान प्राप्त कर नागौरसे संघ निकाला । जब

मारवाड़ और वागड़ देशके नाना नगरोंको पार कर, संघ दिल्लीके समीपवर्ती तिलपंथ नामक स्थानमें पहुंचा तो इष्प्यालु द्रमकपुरीय आचार्य (चैत्यवासी) ने यह कह कर उकसाया कि — ‘जिनचन्द्र सूरि नामक साधु स्वर्णका छत्र सिंहासन धारण करता है ।’ बादशाहने संघको रोक लिया और ठक्कुर अचलसिंहादिके साथ सूरिजीको अपने पास बुलाया । सूरिजीकी शान्त मुद्रा देख कर सम्राट् अत्यन्त प्रभावित हुआ और बातचीत होने पर उसे पूर्ण विश्वास होगया कि द्रमकपुरीय आचार्य मिथ्याभाषी है । अलाउद्दीनके पुत्र सुलतान कुतुबुद्दीन ने कहा — ‘इन श्वेताम्बर मुनियोंमें उसके कथनानुसार एक भी बात नहीं पाई जाती’ — अतः दिवानको हुक्म दिया कि इनके आचार व्यवहारकी अच्छी तरह परीक्षा कर अन्यायीको सजा दिया जाय । राज्याधिकारियोंने सूरिजीको निर्दोष पाकर द्रमकपुरीय आचार्यको गिरफ्तार कर लिया । दयालु सूरिजीने श्रावकोंसे कह कर उसे छुड़वा दिया । सूरिजीने दिल्लीकी खण्डासरायमें चातुर्मास किया । पश्चात् सुलतान व संघके कथनसे प्राचीन तीर्थस्थान मथुराकी यात्रा करने पधारे ।

मेड़ताका राणा मालदेव चौहान ।

सं० १३७६ में राणा मालदेवकी प्रार्थनासे श्रीजिनचन्द्र सूरिजी मेड़ता पधारे और वहां राणा व संघकी प्रार्थनासे २४ दिन ठहरे ।

दिल्लीपति गयासुद्दीन बादशाह ।

सं० १३८० में दिल्लीनिवासी सेठ रयपतिके पुत्र सा० धर्मसिंहने प्रधान मन्त्री नेब साहबकी सहायतासे सम्राट् गयासुद्दीन द्वारा तीर्थयात्राका फरमान निकलवाया, और श्रीजिनकुशल सूरिजीके नेतृत्वमें शत्रुंजयादि तीर्थोंका संघ निकाला ।

सं० १३८१ में मीमपल्लीके सेठ वीरदेवने भी सम्राट्से तीर्थयात्राका फरमान प्राप्त कर श्रीजिनकुशल सूरिजीके उपदेशसे शत्रुंजयादि तीर्थोंके लिये संघ निकाला । विशेष जाननेके लिए हमारी ‘दादा जिनकुशलसूरि’ नामक पुस्तक देखना चाहिये ।

सौराष्ट्रनरेश महीपालदेव ।

सं० १३८० में शत्रुंजय यात्राके प्रसंगमें, सेठ मोखदेवको, सौराष्ट्रमही-मंडनभूपाल महीपालदेवकी दूसरी देह सदृश अर्थात् अत्यंत प्रभावशाली लिखा है ।

बाहड़मेरनरेश राणा शिखरसिंह ।

सं० १३९१ में श्रीजिनपन्न सूरिजी बाहड़मेर पधारे । उस समय चौहान-कुलप्रदीप राणा शिखरसिंह, राजपुरुष व नागरिक जनोंके साथ, सूरिजीके सन्मुख गया और महोत्सवपूर्वक उनका नगरप्रवेश कराया ।

साचोर (सत्यपुर) का राणा हरिपालदेव ।

सं० १३९१ में श्रीजिनपन्न सूरिजी बाहड़मेरसे सत्यपुर पधारे उस समय राणा हरिपालदेव आदि उनके स्वागतार्थ सन्मुख गये ।

आशोटाका राजा रुद्रनन्दन ।

सं० १३९३ में पाटणसे नारउद्र होते हुए श्रीजिनपन्न सूरिजी आशोटा पधारे । उस समय वहांका राजा रुद्रनन्दन, [अपने पुत्र ?] राज० गोधा सामन्त-सिंहादिके साथ स्वागतार्थ पूज्यश्रीके सन्मुख आया ।

बूजद्रीका राजा उदयसिंह ।

सं० १३९३ में श्रीजिनपन्न सूरिजी बूजद्री पधारे । वहां सुश्रावक मोखदेवने राजा उदयसिंह एवं समस्त नागरिकोंके साथ सूरिजीका बड़े समारोहसे नगर प्रवेश कराया । इसके बाद अन्यत्र विहार करके सूरिजी फिर वहां पधारे तब भी राजा उदयसिंह प्रवेशोत्सवमें सम्मिलित हुआ था ।

त्रिशूङ्गम नरेश रामदेव ।

संवत् १३९३ में, श्रीजिनपन्न सूरिजी त्रिशूङ्गम पधारे । मन्त्रीश्वर सांगणके पुत्र मण्डलिकादिकने, महाराजा महीपालके अंगज महाराजा रामदेवकी आज्ञासे राजकीय वाजित्रोंके साथ बड़े समारोहपूर्वक प्रवेशोत्सव किया । सूरिजीको संघके साथ चैत्यपरिपाटी करते समय उनकी प्रशंसा सुनकर महाराजाके चित्तमें उनके दर्शनकी उत्कण्ठा जागृत हुई । महाराजाने सेठ मोखदेव और मन्त्री मण्डलिक आदिको कहा — ‘छोटी उम्रवाले होते हुए भी आपके गुरु बड़े चमत्कारी सुने जाते हैं, मुझे उनके दर्शनोंकी अभिलाषा है । आप कहें तो मैं उनके पास चढ़ या वे कृपा कर मेरी सभामें पधारें !’

श्रावकोंकी प्रार्थनासे सूरिजी राजसभामें पधारे । नृपतिने उन्हें आते देख कर, राजसिंहासनसे नीचे उतर कर, उनकी चरणबन्दना की । पूज्यश्री आशीर्वाद देकर चौकीपर विराजे । महाराजा सारंगदेवके व्यासने अपनी रचना पढ़ कर सुनाई, जिसमें श्री लब्धिनिधानोपाध्यायजीने कई त्रुटियां बतलाई । महाराजा

रामदेव कहने लगे — ‘उपाध्यायजीका वचनचातुर्य और शास्त्रीय ज्ञान असाधारण है । इन्होंने तो हमारे व्यासजीकी भी त्रुटियां बतलाई !’ इसी प्रकार अन्य सभासदोंने उपाध्यायजीकी भूरि भूरि प्रशंसा की ।

सूरिजीने तात्कालिक कवितामें राजा रामदेवका वर्णनात्मक श्लोक कहा । जिसे सुन कर राजसभामें उपस्थित सम्यगण आश्चर्य निमग्न हो गये । राजा रामदेवने सिद्धसेन आदि पण्डितोंसे उस श्लोकको विकटाक्षरोंमें लिखवाया । सूरिजीने नानार्थक नाममाला कोपके बलसे उसके अनेक अर्थ कह सुनाये, जिससे सब लोग एक नजर होकर पूज्य श्रीके मुखकमलकी ओर निहारने लगे । इसके बाद सूरिजीने लहियोंसे प्रत्येक श्लोकके एक एक अक्षरको भिन्न भिन्न लिखवा कर और उन्हें गिटा कर तीसरी बार तीन श्लोकोंको सम्पूर्ण करवा दिया । फिर उन तीनों श्लोकोंको एक पट्टी पर लिखवा कर नृपतिके मनोरञ्जनार्थ राजहंस-मय चित्रकाव्यकी रचना की । सूरिजीकी इस प्रतिभा और बुद्धिवैभवको देख कर राजा और सभाके सारे लोगोंके चित्तमें चमत्कृति उत्पन्न हुई ।

महामात्री वस्तुपालका उल्लेख ।

सं० १२८९ में श्रीजिनेश्वर सूरिजीके खंभात पधारने पर महामात्य वस्तुपालने बड़े समारोहसे उनका नगर प्रवेशोत्सव किया था । गुर्वावलीमें, श्रीजिनकुशल सूरिजीके खंभात पधारने पर भी इस उत्सवकी याद दिलाई गई है ।

राजकीय हलचलें और उपद्रव ।

म्लेच्छोपद्रव होनेका उल्लेख ।

सं० १२२२ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजीने रुद्रपल्लीसे बिहार कर बोरसिदा ग्रामके पास संघके साथ पड़ाव डाला । सूरिजीने साथ वालोंको आकुल व्याकुल देख कर पूछा — ‘आप लोग भयभीत क्यों हो रहे हैं ?’ उन लोगोंने कहा — ‘भगवन् ! देखिये न इस ओर आकाश धूलिसे आच्छादित हो गया है — मादूम देता है समीप ही में कोई म्लेच्छ कटक है ।’ सूरिजीने कहा — ‘महानुभावो ! धैर्य रखो, अपने बैल आदि चतुष्पदोंको एकत्र कर लो; प्रभु श्रीजिनदत्त सूरिजी सबका भला करेंगे ।’ पूज्यश्रीने मन्त्र ध्यान पूर्वक अपने दण्डसे संघके पड़ावके चारों तरफ कोटके आकार वाली रेखा खींच दी । सब लोग उसमें छिप गये । संघके लोगोंने आस-पाससे जाते हुए हजारों म्लेच्छोंको देखा पर सूरिजीके प्रभावसे वे लोग संघको न देख सके; केवल कोटको देखते दूर चले गये, जिससे सब लोग निर्भय हुए ।

सं० १२५१ में माण्डव्यपुरसे अजमेरके लिये श्रीजिनपति सूरिजीने विहार किया। वहां म्लेच्छोंका उपद्रव होनेसे २ मास बड़े कष्टसे बीते।

सं० १२५३ में मुसलमानोंने पाटणका भंग कर दिया। गुर्वावलीमें “पत्तनभंगानन्तरं धाटीग्रामे चतुर्मासी कृता” लिखा है।

सं० १३७१ ज्येष्ठ वदि १० को, जावालिपुरमें कलिकाल-केवली श्रीजिन-चन्द्र सूरिजीकी विद्यमानतामें दीक्षा, मालारोपणादि उत्सव हुए। फिर म्लेच्छोंने उस नगरका भंग कर दिया—“ततो म्लेच्छकृतो भंगः श्रीजावालपुरे जातः।”

सं० १३७७ में, पाटणको “म्लेच्छबहुलेऽपि समप्रजनपदे” लिखा है और सं० १३८० के वर्णनमें “प्रभूतम्लेच्छव्यवहारीसमूहसंकुले श्रीपत्तने श्री-महाराजाधिराजसैन्यलीलायमान आवासितः” लिखा है।

सं० १३८४ में श्रीजिनकुशल सूरिजीने सिन्ध प्रांतमें विहार किया। उस समय सिन्ध देशको “महाम्लेच्छकुलाकुलगुरुतरश्रीसिन्धुमण्डलोपरि” लिखा है। उच्च नगरके प्रवेशोत्सवके समयमें “हिन्दुराज्यकालमें श्रीजिनपति सूरिजी पधारे थे” लिखा है, इससे निश्चित है कि उस समय वहां मुसलमानोंका शासन हो चुका था।

पाटणमें भीषण दुष्काल।

सं० १३७७ में श्रीजिनकुशल सूरिजीके महोत्सवके समय पाटणमें महा-दुर्मिक्ष था। लिखा है कि—“श्रीपत्तने समागताः, तत्र च विषमकाले महादुर्मिक्ष-प्रवर्तमानेऽपि”।

भौगोलिक नामावलि

इस गुर्वावलीमें बहुतसे नगर और ग्रामोंके नाम आये हैं जिनकी सूची यहां क्रमानुसार दी जाती है। जिन ग्राम नगरोंका नाम कई बार आया है उनको हमने एक ही बार लिखा है। अधिकांश स्थान अपने प्राचीन नामोंसे व कुछ परिवर्तित नामोंसे अब भी प्रसिद्ध हैं। जो स्थान हमें अज्ञात हैं उनके आगे * ऐसा चिह्न कर दिया है; जिन महाशयको ज्ञात हो हमें सूचित करनेकी कृपा करें।

अम्भोहर देश

दिल्ली, योगिनीपुर

बादली

उच्चनगर

व्याघ्रपुर

त्रिभुवनगिरि*

नागहृद

दारिद्रिरक

बृहद्गार

पाली	उज्जयिनी	पालणपुर
अणहिल्लपाटण	गणपद*	कणपीठ*
आशापल्ली	मथुरा	श्रीमालपुर
आबू	मेवाड	वाग्भटमेरु
डिडियाणा	सागरपाडा*	बीजापुर
गिरनार (उज्जयन्त)	बम्बेरक	नगरकोट
जावालपुर (स्वर्णगिरि)	महावन	भीमपल्ली
शंभाण*	इन्द्रपुर	शान्तनपुर
स्तंभनपुर (खंभात)	तगला	तारणतीर्थ
पालहउद	नरपालपुर*	देवपत्तन
आशिका	बोरसिदा*	भृगुकच्छ
मरुकोट	पुष्करिणी	पूर्णगिरि*
माइयडग्राम	धनपाली*	बद्रदहा*
चित्तौड	फलवर्द्धि	जाहोड़ा*
प्रल्हादनपुर	डेड़ा नगर	वरडिया स्थान*
वागड़देश	शत्रुंजय	रामशयन
धारानगरी	जेसलमेर	शम्यानयन
नागपुर	माण्डव्यपुर	रत्नपुरी
नरवर	चन्द्रावती	खदिरालुका
विक्रमपुर	कासहद	वटपद्र
धवलक	मांडर्वा	थीरापल्ली*
अजमेर	लवणखेटक	करहटा
सपादलक्ष	श्रीपत्तन (पाटण ?)	बनारस
रुद्रपल्ली*	धाटीग्राम*	कौशाम्बी
राजगृह(वैभारगिरि)	कुहियपग्राम*	काकिन्दी
खण्डासराय (दिल्लीमें)	देवगिरि	अयोध्या
पावापुरी	भीमपुर*	लूणीवड़ी
नालिन्दा	त्रिश्रृंगम*	द्रमकपुर
क्षत्रियकुण्ड	आरासण	तिलपथ

रत्नपुर	खाट्ट	यमुनापार*
हस्तिनापुर	गुइहा*	धामहना*
सस्यपुर	कोरण्टक	रोहतक, रोहद
संखेश्वरपुर	हम्मीरपुर	मुद्रस्थला
रूणापुर*	काठियावाड़	झुंझु
सिरियाणक*	खंगारगढ़	नाणा
शेरीषक	मंगलपुर	नवहा*
पीपलाउली	पीथोथा	बूजद्री*
श्रीराणकोट*	वेलाकुल	भूधराज*
पाटला*	सिरसा	आदित्यपाटक*
वायड़	धांधूका	मारुवत्रा*
देवराजपुर	पाडल	जीरापल्ली
क्यासपुर*	लाटहद	मेड़ता
कन्यानयन	वहिरामपुर*	नारऊद*
नरभट	मलिकपुर*	कडुयारी*
डालामऊ*	सिलारवाहण*	आशोट*

कोशवाणा

खोजावाहण*

दो राजस्थानी-हिन्दी गजलें

*

संशोधनप्रेमी मुनि श्री कान्तिसागरजीने भारतीय विद्यामें प्रकाशित करनेके लिये दो गजलें हमें भेजी हैं जो इसके नीचे दी जाती हैं। ये दोनों गजलें स्थलवर्णनात्मक हैं। पहली गजलमें बंगालकी और उसमें भी उसके मुख्य स्थान मुर्शिदाबादका वर्णन है; दूसरीमें मेवाड़की राजधानी उदयपुरका वर्णन है।

इस प्रकारके स्थलोंके वर्णनकी पद्धति भारतमें बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। पुराणकारोंने इसका माहात्म्यके नामसे व्यवहार किया है और जैन ग्रन्थकारोंने इसका कल्प नामसे व्यवहार किया है। काशीमाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, गयामाहात्म्य, श्रीस्थलमाहात्म्य — इत्यादि नामसे संकड़ों ही स्थानोंके ऐसे माहात्म्य वर्णन पुराणोंमें लिखे हुए मिलते हैं। पुराणोंकी दृष्टि धार्मिक है इसलिये उनके वर्णनमें प्रधानतया स्थानका दैवी माहात्म्य और पावित्र्य बतलाया गया है और उसके अंगभूत जो नदी, सरोवर, देवस्थान और पूजनीय वृक्षादि हैं उनका ही विशेष वर्णन किया गया है। इस माहात्म्यवर्णनमें, कहीं कहीं कुछ प्राकृतिक वर्णन और कुछ ऐतिहासिक स्मरणका भी यथातथा उल्लेख किया हुआ मिल जाता है। जैन ग्रन्थकारोंके कल्पात्मक स्थानवर्णन भी प्रायः इसी धार्मिक दृष्टिको सामने रख कर लिखे हुए होते हैं और उनमें भी विशेषतया स्थान या तीर्थका माहात्म्य बतलाया गया होता है। परंतु साथमें उनमें कुछ ऐतिहासिक उल्लेखोंकी उपलब्धि भी अधिक परिमाणमें पाई जाती है। जिनप्रभ सूरिका विविध तीर्थकल्प नामका ग्रन्थ इस विषयका मुख्य उदाहरणभूत है। पुराणोंकी और कल्पग्रन्थोंकी पद्धतिका अनुसरण पिछले देशीभाषाके कवियोंने भी किया और उन्होंने भी लोकभाषामें ऐसे स्थलवर्णनात्मक और तीर्थमाहात्म्य-विषयक अनेक रचनाएं कीं। इन्हीं रचनाओंके जैसी ये गजलात्मक कृतियां समझनी चाहिए। फरक इनमें इतना है कि ये कृतियां माहात्म्यकी दृष्टिसे नहीं किन्तु केवल मनोरंजन और स्थलपरिचयकी दृष्टिसे बनाई गई हैं। जैन अजैन ऐसे अनेक कवियोंकी अनेक कृतियां पुराने पुस्तक संग्रहोंमें उपलब्ध होती हैं।

पिछली कई शताब्दियोंसे भारतमें, मुसलमानोंका प्राबल्य बढ़ जानेके कारण और उनके निकट सहवासमें अधिकाधिक आनेके कारण हिन्दू लेखकोंका भी

उनकी भाषा और संस्कृतिके साथ बहुत कुछ परिचय बढ़ गया था और इसलिये उनमें अधिक प्रचलित ऐसे रेखता और गजल आदि पद्यबन्ध हिन्दुओंको भी बड़े प्रिय लगने लगे थे । इसलिये उन्होंने भी ये कृतियां अपने पुराने ढंगके दोहा, चोपाई, छप्पय और सवैया आदि प्रचलित छन्दोंमें न बना कर रेखता और गजलकी चाल-ढालमें बनाई मालूम देती है । भाषा भी प्रायः इनकी उर्दूमिश्रित हिन्दी है । यद्यपि भाषा या साहित्यकी दृष्टिसे ये कोई उत्तम प्रकारकी रचनाएं नहीं कही जा सकतीं; तथापि लोकसाहित्य और ऐतिह्य साधनकी दृष्टिसे इनका संग्रह और संशोधन अवश्य उपयुक्त है ।

नीचे दी हुई गजलोंमेंसे पहली गजलका कर्ता कोई **निहाल** नामका जैन यति है । इसने अपना और कोई परिचय नहीं दिया । इसलिये यह नहीं जाना जाता कि यह किस गच्छ या समुदायका था और कब इसने इसकी रचना की । पर गजलके वर्णनसे मालूम होता है, कि वि० सं० १७८२-९५ के बीचमें कभी इसने इस गजलको बनाया होना चाहिए । इसमें मुख्यतया बंगालके मुर्शिदाबादका वर्णन किया गया है और उस समय वहां पर नवाब **सुजासाह** राज्य कर रहा था । यह सुजासाह और कोई नहीं पर इतिहासोंमें जिसे **शुजाखान** या **शुजा-उद्-दौला** कहा गया है वही है । बंगाल प्रांतके इतिहाससे ज्ञात होता है कि शुजाखानने ई० स० १७२६ से १७३९ तक मुर्शिदाबादकी नवाबी की । यह शुजाखान, मुर्शिदाबादको बसानेवाले मुर्शिदकुलीखान — जिसका मूल नाम जाफरखान था — का दामाद था और उसके पीछे उसकी गद्दी पर यही नवाब बना था । इस गजलमें, इसके राज्यकारभारकी बड़ी प्रशंसा की गई है और इसके राज्यको **रामराज्य**सा लोकप्रिय बताया गया है । कवि कहता है कि — इसके राज्यमें सब लोक बड़े सुखसे रह रहे हैं और वे इसे अवलीया, पीर, जौंद और परदुःख हरनेवाला आदि कहते रहते हैं । इसकी रैयत दिलसे इसे यह आशीष देती रहती है कि — इसका राज्य जुगानजुग तक अटल बना रहो, यह धनदौलत और पुत्र परिवारसे बढ़ता रहो और इसकी उम्र एक हजार वरसकी हो । एक मुसलमान नवाबके बारेमें एक हिन्दू कविका यह कथन अवश्य बड़ा औदार्यद्योतक है और साथमें वास्तविकताका ज्ञापक है । -

इस गजलमें, बंगाल और उसकी राजधानीकी तत्कालीन परिस्थितिका अच्छा रेखाचित्र है। इसके पढ़नेसे पता लगता है कि उस समय मुर्शिदाबादकी आबादी और समृद्धि कैसी बढ़ी चढ़ी थी, लोक कैसे सुखी थे, देशका मालिक मुसलमान नवाब था, लेकिन क्या हिंदू और क्या मुसलमान — सारी प्रजा उससे कैसी संतुष्ट थी, वह अपनी रैयतको किस तरह चाहता था और किस तरह सबको समानदृष्टिसे देखता था। उसके राज्यमें न कोई दुःखी था और न कोई त्रस्त था। न कहीं चोर-लुटेरोंका डर था और न कहीं राज्यकर्म-चारियोंका जुल्म था। जिनको बंगालके उस समयके इतिहासका अच्छा ज्ञान है उनको ये सब बातें अच्छी तरहसे ज्ञात हैं।

बंगालकी इस सुख-शान्ति भरी हुई दशाका परिवर्तन होना, शुजाखानकी मृत्युके साथ ही शुरू हो गया था। जो अंगरेज सौदागर अपनी कोठी डाल कर व्यापारके बहाने मुर्शिदाबादमें बैठे हुए थे उनके कुटिल कारनामे देशके और भागोंमें बड़े जोरजोरसे चल रहे थे। अपनी कुटिल चालोंसे ये देशमें चलती हुई दुर्बल नीतिका पूरा पूरा फायदा उठा रहे थे। शुजाखानके बाद उसका लडका **सर्फराजखान** उसका उत्तराधिकारी बना लेकिन उसकी शासन-नीति ठीक नहीं रही और उसने अपने बापके मर्जीवाले बड़े आदमियोंमेंसे — जिनमें जगतसेठ भी शामिल थे — कुछके साथ अन्यायाचरण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक वर्षके भीतर ही सर्फराजखान मारा गया और उसके स्थान पर अलिबर्दिखान नामका एक सुबेदार बना — जो शुजासाहका बड़ा प्रियमित्र था और जिसका उत्तराधिकारी इतिहासप्रसिद्ध **शिराज-उद्-दौला** हुआ। इसी समयमें धूर्त अंगरेज मुत्सद्दी **क्लाइव** अपनी कुटिल नीतिका जाल देशमें फैला रहा था जिसके परिणाममें बंगालका वह स्वातंत्र्य और स्वराज्य सदाके लिये लुप्त हो गया। हमारे देशके इतिहासके इन गहरे घावोंकी अधिक चर्चा करनेका यहां कोई उपयुक्त अवसर नहीं है इसलिये 'इत्यलं प्रसंगेन' कह कर हम संक्षेपमें इस गजलमें कही गई बातोंका सार लिख देते हैं।

१. बंगाल देशकी गजलका सार

सद्गुरु, शारदा और गौरीपुत्र (गणपति)को नमस्कार करके कवि बंगाल देशकी सरस गजल बनानेका उपक्रम करता हुआ कहता है कि — बंगाल एक

अबल दर्जेका देश है जिसमें बहुतसे नदी-नाले और जंगल रहे हुए हैं। इसके रास्ते सकड़ी गलियोंसे हैं। इसके आखिरमें नवलख कामरु (आसाम) देश है जिसमेंसे आनेका एक ही रास्ता है और बिना दस्कत लिये देशके अंदर नहीं आने दिया जाता। इस रास्तेमें बाईं ओर गंगा बहती है और दाहिनी ओर ऊंचे ऊंचे पर्वत खड़े हैं।

पहले राजमहल स्थान मिलता है जिसे राजा मानने बसाया था। यहां पर बहुतसे बाड़ी-बाग हैं और अच्छे अच्छे मंदिर और महल हैं। गुदरी, चौक और बाजार आदि देखने लायक हैं। गोलागंज जगहमें मच्छीभवन स्थान है जहां सुजासाह रहा करते हैं। पडवा नामक जगहमें हजरत कुतुबका मकान है जहां पर बड़ा मेला लगता है और लोग यात्राके लिये आया करते हैं। उसके बाद गौडका किला है जिसके पास गंगा बह रही है। इसका मैदान १२ कोसके घेरेमें है जिसमें बीच-बीचमें कई कमठान (मकानात आदि) बने हुए हैं। हुसैन नामका पहले एक बादशाह हो गया है जिसने इसका कोट बनाया है—ऐसा बुजर्ग लोग जिक्र किया करते हैं। फिर मालदह नामक शहर मिलता है जो एक बड़ी जगह है। यहां पर तरह-तरहके ऐसे कपड़े बनते हैं जिनकी तारीफ करना मुश्किल है। मसरू, खार, सक्कर, अतलस, इलायची आदि बहुत चीजें यहां बिकती हैं और सौदागर माल खरीदते रहते हैं। उनके साथ दलाल भी बहुत फिरते रहते हैं।

इसी बंगला देशके बीचमें प्रसिद्ध शहर मकसूदाबाद (मुर्शिदाबाद) है जिसको जाफरखानने आबाद किया है। इसके पास गंगा बह रही है जिसमें स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं। इस नदीमें तरह-तरहकी बनी हुई बहुत नावें चलती रहती हैं। इनमें कोसे, परंदे और लाल किस्मकी जो नावें हैं उनके बनानेमें खूब दाम लगते हैं। बजरे और महलगिरी नामकी नावें होती हैं उनमें अच्छी कारीगिरीका काम किया हुआ होता है। बादशाही जो नावें हैं उनकी तो तारीफ ही क्या की जाय। वे तो देवविमान जैसी मालूम देती हैं।

शहरका बाजार देखो तो उसमें अठारहों वर्णके लोक रहते दिखाई देते हैं। बड़ी बड़ी कोठियां बनी हुई हैं। कई कटला, कोठ और टंकशाळ आदि हैं जिनमें बड़े बड़े व्यापारी, शाह, सर्राफ आदि बैठे रहते हैं और वे रूपया, मणोर

और दामोंकी परीक्षा करते रहते हैं । ये देश-देशावरोंकी हुंडियां लेते देते हैं । बड़े बड़े बजाज बनठन कर बैठे रहते हैं और खूब कपड़ोंका व्यापार करते हैं । ये मलमल, डोरीया, चौतार, बाफता, गढवार, जरी, जरब, मखमल, खीम-खाप, फताक आदि तरह तरहके कपड़े बेचते हैं । जवहरी (जौहरी) लोक बैठे बैठे लाल, हीरा, चूनी, मोती, पंना, मणि आदि अनेक प्रकारका जवाहिर परखते हैं और लेते देते हैं । महाजनोंकी खूब टोलियां बनी हुई हैं और वे बड़े मजेमें रहते हैं । ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय और शूद्र सब जातिके लोग; तथा, गंधी, मसारी, अत्तार, सुंखडीगर, सुनार, ठठार, सोनी, सालवी, सुतार, फांदू, कागदी, कुंभार, नाई, नायता, नटुवा, छीपी, छापगर, पटुवा, तेली, तंबोली, तुनिया, धोबी, धनकुटे, धुनिया, माली, मलमोजे, सूचिगर, हलवाई आदि सब पेशोंके लोक अपना अपना कामधंधा करनेमें मशगुल है ।

शहरमें, अच्छे अच्छे मन्दिर, मस्जिद, धर्मशाला और मिनारे आदि बड़ी कारीगिरीके बने हुए हैं । जोगी, जती, नाथ, अलेख, जंगम, भगत, दंडी, कनफटे, मस्तान आदि अनेक मेखवाले इधर उधर घूमते फिरते दिखाई देते हैं ।

शहरका वह भाग जो बाटूचर कहलाता है उसमें खास कर कसेराहाट देखने लायक है जिसमें लोटा, थाल, झारी, गगरी, चरी, दीवट आदि खूब अच्छे घाटवाले नाना प्रकारके वासन-वर्तन बिकते रहते हैं । वहां तांती लोक (कपडा बुननेवाले) भी बहुत रहते हैं जो जामे आदिका बडा कीमती कपडा बुनते हैं ।

महिमापुर नामक बस्तीमें जैनधर्मका बडा मन्दिर है और जहां जगत्सेठ रहते हैं । इन सेठके दरवाजे पर सारे खलकके लोक भेंट करनेके लिये खड़े रहते हैं । याचक लोक जय जय किया करते हैं और उन्हें यथायोग्य खूब दान दिया जाता है ।

कासमबजार और सैदाबाद आदि बस्तीमें गुजराती लोक रहते हैं और उनके साथ ही जितने टोपीवालोंकी जातिके (विदेशी) लोक हैं वे रहते हैं । इन टोपीवालोंमें — आरब, आरमनी, अंगरेज, हबसी, डुरमजी, उलंदाज, सीदी, फरासीस, अलेमान, मुगल, पठान आदि सब तरहके सौदागर हैं । कंपनीकी कोठी बड़ी भारी बनी है और उसमें लाखों रूपये लगे हैं । ये लोक दूर दूरके

बंदरोंसे अपना अपना माल लाते हैं और यहां पर रीझा रीझा कर लोकोको बेचते हैं । करोड़ों रूपयेका ये व्यापार करते हैं और यहांसे रेशमका कपड़ा खरीदते हैं ।

बंगाली लोक भी यहां वैसे ही रहते हैं और जिनके घर घर पर बाग और बाड़ी होते हैं । ये लोक बहुत नियम और आचार रखते हैं पर इनके दिलमें दया नहीं होती (— बंगालियोंके लिये यह ऐसा कटाक्षमय कथन इस गजल-वालेने क्यों किया सो समझमें नहीं आता । शायद बंगाली लोग मछली बहुत खाते हैं और वे अपने घरके बाग-बगीचेके तालाबमेंसे उन्हें रोज पकड़ते रहते हैं, जिसे देख कर, इस जैन यतिको घृणा आई हो और इसलिये बंगालियोंके दिलमें दयाका नहीं होना इसने कहा हो ।)

इसके बाद शहरके उस भागका जिक्र है जहां पर बादशाही लश्कर रहता है । यह जगह दिल्लीके बाजारके जैसी गुलजार है । इसमें शेख, मुगल, पठान आदि लश्करी पेशेके लोक रहते हैं और साथ ही में ब्राह्मण, बनिये, कायस्थ आदि भी, जो इनके साथ सम्बन्ध रखते हैं वे सब बड़ी तादादमें बसते हैं । घुड़दोड़के मैदानमें घोड़े दोड़ते रहते हैं और वहां अक्बल दरजेका गुदरीका बाजार लगता है ।

इस तरह यह शहर बड़ा आबाद है । इसमें **सुजावर्दि महमद** शाहका राज्य है जिसका नाम सारा खलक आठों प्रहर लिये करता है । रामके जैसा इसका राज्य है और यह सब राजाओंका शिरताज जैसा माना जाता है । इसकी आज्ञा समुद्र तक मानी जाती है । इसने अपने दुश्मनोंको जेर करके अपना विकट रास्ता साफ किया है । इसके पास बड़े शूर और सब्बे सिपाहियोंकी खडी फोजें रहती हैं । सिपाहियोंको अच्छा दरमाहा दिया जाता है और वे बड़े ताजे बने रहते हैं । इसके राज्यकी सीमा बड़ी लंबी चौड़ी है । कहते हैं कि कोई आदमी रोज बारह कोस चलता रहे तो पूरे चार महीनेके बाद वह इसके राज्यकी हदको पार कर सकता है ।

इस नवाबके रहनेके जो महल बने हुए हैं उनकी तो तारीफ ही क्या की जाय । उनके पास ही गंगा बहती है और उसके ऊपर अच्छे कोटसे घिरा हुआ बड़ा भारी बाग है । इस बागमें सैंकड़ों ही प्रकारके फूल और फलवाले

झाड़-पौधे लगे हुए हैं। बीच-बीचमें पानीके बड़े बड़े होज बने हुए हैं। कहीं कहीं ऐन प्रकारके आईने जड़े हुए हैं और उनके इर्द-गिर्द अच्छे तबक मढ़े हुए हैं। कहीं मजेदार तंबू तने हुए हैं।

नवाब जब कभी यहां पर आ कर बैठता है तो मानों इंद्रकीसी सभाका ठाठ लगता है। बड़े बड़े खान-खानान, मीर, मुगल, पठान, सेठ, साहुकार, मुत्सदी, हुंदादार, चोपदार आदि खड़े रहते हैं। रक्षक लोक हाथमें गोल गुर्ज ले कर खड़े रहते हैं। फोज अपने हथियारोंसे सज्ज हो कर, समुद्रकी लहरोंकी तरह उमड़ आती है। हाथी और घोड़ोंकी ठट्ट लग जाती है। किसी महत्त्वके कामका फैसला नवाब खुद अपने ही मुंहसे सुनाता है। इसके राज्यमें न कहीं तूफान और जुल्म है, न कहीं चोर-चरटेका डर है और न कहीं रास्तेमें छुट जानेका भय है। मुसाफिर रास्तेमें कहीं भी चला जाय—कहीं कोई कुछ नहीं पूछता। इस प्रकार सारी रैयत सुखी है—कोई कहीं दुःखी नहीं दिखाई देता।

नवाबके महलोंके दरवाजे पर हरहमेश नौबत बजती रहती है और याचक लोक जय-जय-कार करते रहते हैं। नवाब रोज उन याचकोंको बक्षिस दिया करता है जिसमें हाथी, घोड़े, सिरपाव आदि सब तरहकी मूल्यवान वस्तुएं होती हैं। ब्राह्मण और भाट आदि भी इन याचकोंमें शामिल होते हैं।

सब जगह इसने अपनी सरहद पर सूबे भेज रखे हैं और वे सब राज्यकी मर्यादाका पालन करते हैं। इन सूबोंके नाम इस प्रकार हैं—हाजीपुर और अजीमाबाद उड़ीया (ओरिसा)की सरहद तरफ है। ढाका, रंगपुर, चटगांव, सिलहट, रंगामाटी, ढुगली, वीरभूमि, पचेट, हिजली, विसनपुर, अकबर नगर और कोचविहार—ये सब बंगालकी हदके स्थान हैं।

इस देशमें बहुत रेशम होता है—ऐसा रेशम दूसरी किसी जगह नहीं सुना गया। अबल तरहके कपड़ेकी यहां पैदायश होती है। बादशाही पोशाकें यहीं बनती हैं।

नवाबका जो बाग है वह खास देखने लायक चीज है। उसमें चारों ओर फूल खिल रहे हैं और जोरसे पानीकी नहरें बह रही हैं।

सेठ (जगत्सेठ) माणिकचन्दजीके नामका जो विश्रामधाम है वह भी खूब अच्छा बना है । उसमें मंदिर, महल और तालाब बने हुए हैं वे — क्या रंक और क्या राव — सब हीके देखने लायक हैं ।

इस तरह इस शहरकी कहां तक तारीफ की जाय । काबुल, कास्मीर, कंधार, अरब, इसफान, अंजार, मरु, मालवा, मेवात, दक्षिण, गुजरात, दिल्ली, आगरा, लाहोर, ठट्टा, भखर, पटना आदि सब देशोंके लोकोंके थोकके थोक यहां आ कर बड़े सुखसे बस रहे हैं और वे सुजावर्दि महमदको करोड वर्ष तक जीते रहनेकी आशीष दे रहे हैं ।

गजलके अंतमें कवि बंगाल देशका माहात्म्य बतलाता हुआ कहता है कि — इस देशकी क्या महिमा गई जाय ? — इसमें खयं भागीरथी गंगा बह रही है, यहां पर समेतशिखर पहाड है जिस पर पारसनाथ प्रभु है, झाडखंडमें महादेव है, पचेट नगरमें रघुनाथ है, गंगासागर स्नानका स्थान है, और उड़ीसामें जगन्नाथका धाम है ।

इस प्रकार बंगाल देशकी यह गजल निहाल नामक जतीने बनाई है । मूलके मनमें इसका कुछ महत्त्व नहीं हो, लेकिन पण्डित लोकोंका दिल इससे खुश होगा — ऐसी आशा रखते हुए कविने अपना कथन पूरा किया है ।

*

२. उदयपुरकी गजल

दूसरी गजल मेवाडकी राजधानी उदयपुर शहरकी है । इसका कर्ता जती खेता नामक है जो अपनेको खरतरगच्छका कहता है । इसने भी अपने गुरु वगैरहका कोई नामनिर्देश नहीं किया जिससे यह नहीं जाना जाता कि यह कहां और कब हुआ । मेवाडमें, इस नामका एक और कवि हो गया है जिसने सं० १७३२ में, मेवाडके वेराट गांवमें घन्नारासकी रचना की थी; पर वह अपनेको लोकागच्छके पूज्य दामोदरजीका शिष्य बतलाता है। इसलिये वह इस खरतर कवि खेतासे भिन्न ही है । संभव है कि यह भी कवि मेवाड ही का हो ।

† देखो, श्रीयुत मोहनलाल दजीचंद देसाईकृत, 'जैन गूर्जर कविओ' नामक ग्रन्थ, भाग २, पृ० २८६-८७.

क्यों कि इसकी भाषामें मेवाड़ीकी झलक स्पष्ट दीखाई दे रही है। समय इसका ठीक तो निश्चित नहीं किया जा सकता किन्तु गजलमें जो उदयपुरके महाराणा अमरसिंहका वर्णन किया गया है उससे, उसीके समयमें इसकी रचना हुई होनी चाहिए यह खतः सिद्ध है।

उदयपुरकी गद्दी पर अमरसिंह नामके दो राणा हो गये हैं। इनमें पहला तो महाराणा प्रतापका पुत्र था जिसने सं० १६५३ से १६७६ तक राज्य किया था; और दूसरा महाराणा जयसिंहका पुत्र था जिसने सं० १७५५ से १७६७ तक राज्य किया था। इसी दूसरे महाराणा अमरसिंहके समयमें प्रस्तुत गजलकी रचना हुई होनी चाहिए। क्यों कि इसमें देवरके पासके जयसमुद्र नामक सरोवरका उल्लेख है और यह सरोवर महाराणा जयसिंहने—दूसरे अमरसिंहके पिताने—ही बनवाया था।

इस गजलमें भी, ऊपरवाली बंगाल देशकी गजल हीकी तरह, उदयपुरका स्थानिक वर्णन है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

प्रारंभमें कवि एकलिंगजी और नाथदुवारेके श्रीनाथजीको नमन करता हुआ उदयपुरके गुणगान करनेमें संतजनोंसे सहायताकी प्रार्थना करता है। इसके साथ राठसेन गिरिदेव, आंबेरी उमारमण, भुवाणा भोलानाथ और रतनपुर हनुमंतको भी नमस्कार करता है।

फिर उदयपुरके समी देव-देवताओंका स्मरण करता है जिनमें गणपति, हरसिद्धि, शारदा, हनुमंत वीर, शीतला माता और नीलकंठ आदिका समावेश होता है।

फिर दिवान याने महाराणाके दरबारका वर्णन किया गया है जिसमें राज-द्वार और उसके नोबतखाना और निशान स्थानका उल्लेख है। फिर महलोंका वर्णन है जिनके जालीदार झरोखे और गोखड़े बड़े झांकीदार बतलाये गये हैं। महलोंके आगे बड़े बड़े दंतावलवाले, सावनके मेघकेसे काले और मदझरने वाले हाथी घूम रहे हैं जिनमेंसे किसीका नाम दिलसिणगार है, किसीका दल-सुंदर है और किसीका अंबप्रसाद—इत्यादि है। हाथियोंके बाद घोड़ोंकी पायगा है जिसमें इराकी, तुरकी, कच्छी, काबूली, कंधारी आदि कई जातिके जातवान् और मूल्यवान् घोड़े बंधे हुए हैं।

फिर महाराणा अमरेश याने अमरसिंहका उल्लेख है जो इन हाथी घोड़ों पर सवार हो कर क्रीडा आदि करनेको राजसवारीके रूपमें जाया करते हैं । इस सवारीमें राणाके साथ सब दल बल चलता है और बाग बगीचेकी सैर की जाती है । वहां पर फोजोंकी लड़ाई होती है, मछलोंकी कुस्ती होती है और हाथियोंकी मारामारी होती है ।

महलोंके पीछे पीछोला तालाब है जो पानीकी लहरोंसे कछोल करता दिखाई देता है । इसमें मोहन मन्दिर और बादर महल नामके बड़े अच्छे महल बने हुए हैं । राणा नावमें बैठ कर इस तालाबकी सैर किया करते हैं । तालाबके पनघट पर पानिहारियां पानी भरती रहती हैं जिनके रूप और शृंगारकी वर्णना कवि बड़ी दिलचस्पीसे करता है । इसकी लोक इन स्त्रियोंके मुंह देखनेके लिये पाल पर आ कर बेशर्म हो कर बैठे रहते हैं । कोई खान करता है तो कोई पानी भरता दिखाई देता है । घननंकार वाली घंटोंकी आवाज करते हुए हाथी भी इसीमें पानी पीने आते हैं ।

फिर शहरके मुख्य देवस्थानोंका उल्लेख है जिनमें कृष्णका मन्दिर, धाईका मन्दिर, शीतलनाथका मन्दिर, दिगंबर और भैरवके मन्दिर आदि मुख्य हैं ।

बादमें बाजारका वर्णन किया गया है । यहां पर एक भट्टारककी पोसाल प्रसिद्ध है जिसमें अच्छी चित्रकारी की हुई है । हाटोंमें सबसे पहले हलवाई-योंकी दुकानोका जिक्र है जिनमें मीठी मिठाई बनाई जाती है । उनके पास ही गांधी लोक हैं जो अत्तर, तेल, अरगजा आदि बेचते हैं । फिर सराफ और बजाज आते हैं । उसके आगे कोटवालीका चोतरा है जहां शहरका रखवाला रहता है । उसीके पास जकातका चोतरा है जहां सब प्रकारका हांसल अदा किया जाता है । उसके पास मणिहारियोंकी हाटें हैं जिनमें ढेरकी ढेर चीजें रखी हुई रहती हैं । जवहरी (जौहरी) लोकोंके पास मोती, लाल, मुंगा मणि आदि सब प्रकारका कीमती माल धरा रहता है । आगे चलने पर पटवा लोक दिखाई देते हैं जो खूब लंबे लटकाये हुए बैठे रहते हैं । इनके बाद जोड़े और जीन आदि बेचनेवाले, तथा बोहरे लोक हैं जो माले, खज्ज, तलवार, ढाल, बख्तर टोप, बरछी आदि शस्त्रास्त्र बेचा करते हैं ।

इस शहरमें चार वर्ण और ३६ उपवर्णके लोक बसते हैं जिनमें पुरोहित, पल्लीवाल, महेसरी, ओसवाल आदि सब जातिके लोक हैं। साधक, सिद्ध, संन्यासी, जंगम, जती, जोगी आदि छहों दर्शनोंके अनुयायी यहां पर मिलते हैं। दानी लोक याचक जनोको दान देते रहते हैं और याचक उनका जय-जय-कार करते रहते हैं। मंदिरोंमें झालर और शंखके झनकार, घंटाके घन-नंकार और तत्ता-थेईके तानारंभ सदा होते रहते हैं। व्यास लोक बैठे बैठे हरिकथा किया करते हैं जिसे श्रोता जन एकसाथ मिल कर सुनते रहते हैं।

अधिक क्या कह जाय — जैसे मनुष्योंमें राजा मुख्य माना जाता है वैसे नगरोंमें यह शहर नायक समझा जाता है। इसमें सब प्रकारके विलास होते रहते हैं।

इसके बाद शहरके बाग बगीचोंका वर्णन है जिनमें तरह तरहके वृक्ष और पौधे लगे हुए हैं। राजा इनमें समय समय पर आनंदोपभोगके लिये जाया करता है और वहां पर बैठ कर रावत, राव और उमराव आदिकोंका मुजरा लेता है। हुक्का, चिलमकी लेन-देन होती है। पानबीडा और अत्तरसे म्रिजबानी की जाती है। पात्रजनोंका नाच होता है और गीत-गानका गुंजारव होता है। राणा रीझ कर उन्हें वक्षिस देता है। वेदपाठी पण्डित, नैयायिक, वैयाकरण और वादी जन शास्त्रोंके बारेमें अनेक तर्क-वितर्क भी करते रहते हैं। तेलंगी, कर्णाटी आदि विद्वान् भी उपस्थित होते हैं। राजाको ये सब करण, विक्रम, भोज आदि बिरुदोंसे बधाते रहते हैं। यह दीवान (राणा) इंद्रके जैसा दानी, भीमके जैसा बलवान् और अर्जुनके जैसा बाणावलि है। चित्तोड इनका मूल वतन है और सारी हिन्दु जातिके यह मोड (मुकुट) समान है।

दसहजार वाला मालवदेश इसके अधिकारमें है और इसके राज्यमें तुकोंका कोई प्रवेश नहीं है। सागरके जैसे इसके समुद्र (सरोवर) हैं। देबर गांवके पास जयसमंद नामका बड़ा सरोवर है जिसका पानी १२ गांवके लोक पीते हैं। देवारीका कोट बड़ा देखने लायक है। रिषभदेवके देवलमें चेतके महिनेमें मेला लगता है जो देखने योग्य है। इसी तरह एकलिंगजी और नवसतियांका मेला लगता है। जगह जगह पर जुदा जुदा वारोंमें (दिनोंमें) हटवाडा भरता है। चतुर्मुख, रूपजी, राणपुर आदिके बड़े देवस्थान इस राज्यमें हैं। छप्पनके

पहाड़ोंमें कई छानी (छिपकर रहनेकी) जगह है जहां राणा अपने हिन्दुपनकी नेक रखनेके लिये चला जाया करता है । राणाका राज्य हिन्दुस्थानकी सरहद जैसा है जहां पर दुश्मनोंके छलबल रह किये जाते हैं । इसके राज्यमें बड़े बड़े गहन गिरिवर हैं तब भी भील और चौरोंका कोई जोर या डर नहीं है । रात और दिन रास्ता चलता रहता है । इसने अवघट घाटोंको सुगम बना दिये हैं । दिलका यह दरियाव जैसा है और षड्भाषाओंसे इसका बड़ा भाव है । समुद्रके किनारे तक इसकी कीर्ति फैली हुई है और कविजन मनमें उत्कंठाके साथ इसकी स्तुति किया करते हैं ।

खरतर जती कवि खेताने मौजसे यह इतना कयन किया है । राणा अमर और यह उदयपुरका राज अमर रहो यही इसकी प्रार्थना है ।

*

[टिप्पणी—यह लिखनेके बाद, फार्बस गुजराती साहित्य सभा बंबईके त्रैमासिक पत्रमें उक्त मुनि श्री कांतिसागरजीने ' चित्तौड़की गजल ' छपाई है जो शायद इसी कवि खेताकी बनाई हुई है । चित्तौड़की यह गजल सं. १७४८ में, राणा जयसिंहके समय में बनाई गई थी ।]

*

१. बंगाल देशकी गजल

*

दृष्टा

श्रीसद्गुरु सारद प्रणमि, गवरी पुत्र मनाय ।

गजल बंगाला देशकी, कहु सरस बनाय ॥

१

गजल

अवल देस बंगाला कि, नदीयां बहुत है नाला कि ।

सकडी गली है जहाँ जोर, जंगल खूब धिरे चहुं ओर ॥

२

नवलख कामरु इक द्वार, दस्तक बिना नहि पैसार ।

बाए हाथ बहती गंग, दक्षिण ओर परबत तुंग ॥

३

देखा राजमहिल सुयांन, वसती करी राजा मान ।

बाडी बाग है जिहां घने, आछे मेहल मंदिर बने ॥

४

गुदरी चोक अर बाजार, गोलागंज है गुलजार ।

सूजा साह रहते जहाँ, मच्छीभवन देखा तहां ॥

५

हजरत कुतबका मक्काम, पडवा खूब देखा यांन ।

आवं लोक जारत करे, मेला खूब अच्छा भैर ॥

६

किल्ला गोडका है खास, जाकै वही गंगा पास ।

बारा कोसका मैदान, बिच बिच खूब है कमठांन ॥

७

बंगला बादसा हूसैन, तिन यह कोट कीना ऐन ।

ताकी रही कहबत तात, बुजरक लोक कहतै बात ॥

८

मोटी मालदहकी जाय, ऐसी अडंग दूजी नांहि ।

कपडा होत जात जेतीक, कीजै सिफत कहो केतीक ॥

९

मसरु खार सकर सुचंग, अतलस इलायचा बहुरंग ।

सोदागर खरीदै माल, बिच बिच फिरै बहुत दलाल ॥

१०

बंगाला देसकै दरम्यान, जाहिर सहर देखा आंन ।

जाका नांम मकसूदाबाद, जाफरखां किया आबाद ॥

११

तिह तट वही गंगा पूर, न्हाए पाप जावै दूर ।

नावां देखीये अति घणी, विध विध भांतसेती वणी ॥

१२

कोसे अर परंदे लाल, लगे खूब दमडै माल ।	
बजरे महलगीरी नांम, बिचि बिचि खूब कीन्हां कांम ॥	१३
नावां बादसाही रहै, ताकी सिफत कहो कुन कहै ।	
जैसै देवनुंकै वास, तेसी बनी नावा खास ॥	१४
देखा सहरका बाजार, वसती वसै बरन अटार ।	
कोठी बहुत कोठीवाल, कटला कोट अरु टंकसाल ॥	१५
बैठै सरस साइ सराप, लेखा खूब करतै आप ।	
परखे मोहर रुपैया दाम, हुंडी लिखै ठांमो ठांम ॥	१६
बैठै बहुत आंन बजाज, बेचै खूब कपडा साज ।	
मुलमुल डोरीया चौतार, खासे बाफते गढवार ॥	१७
बेचै जरी जरब फताक, मखमल खीमखाप सुखास ।	
बैठै जवरी मणिहार, बेचै माल अरज बाजार ॥	१८
परखै लाल हीरा चुनी, मोती सरस पन्नां मणी ।	
टोली माहजनांकी खूब, रहते लोक जिहां महबूब ॥	१९
बांभण वाणियै अरु सूद्र, क्षत्रीय वसै जात अलुद्र ।	
गंधी पसारी अतार, सुंखडीगर सुनार ठंठार ॥	२०
सोनी सालवी सूतार, कांदू कागदी कूंभार ।	
नाइ नायता नटुवा कि, छीपी छापगर पटुवा कि ॥	२१
तेली तंबोली तुनिया कि, धोबी धनकटे धूनिया कि ।	
माली मलमोजे साज, सूचिगर हलवाइ वाज ॥	२२
अच्छे देहरे पोसाल, सिवकै धाम अरु ध्रमसाल ।	
महजिद मुनारे मकांम, क्या क्या बने है कमठांन ॥	२३
जोगी जती नाथ अलेख, जंगम भगत नाना मेख ।	
दंडी कनफटे मसतांन, रहते मेख [भजे] भगवांन ॥	२४
वालूचर कसेरा हाट, बासन बिकै बहुत सुघाट ।	
लोटा पाल गगरा चरी, झारी दीवटा बहुधरी ॥	२५
तांतीलोक रहतै घने, जामै वार चीवली बुणै ।	
महिमापुर महाअबाद, जिहां जिनधरमका परसाद ॥	२६

जिहां जगतसेठजी सेठ, आवै खलक जाकी मेट ।	
दीजै दान जाकै द्वार, जाचिक करै जै जै कार ॥	२७
वसती कासमा बाजार, सैदाबाद खगडा सार ।	
रहते लोक गुजरातीक, टोपीवाल जेती जातीक ॥	२८
आरब आरमनी अंगरेज, हबसी डुरमजी उलंदेज ।	
सीदी फरासीस अलेमान, सोदागर मुगल पठान ॥	२९
कोठी कुंपनीकी जोर, दमडे लगे लाख किरोर ।	
क्या क्या बने है कमठान, बाडी बाग महिल मंडान ॥	३०
ल्यावै बंदरोंकी चीझ, बैचै माल अपना रीझ ।	
करते कोडका व्यापार, रेसम जिनस कपडा सार ॥	३१
वसते लोक बंगालीक, घरघर बाग अरु बाडीक ।	
करतै बहुत नियमाचार, दिलमै दया नांहि लगाय ॥	३२
सब ही नगरके सिर मोड़, देखा खूब लसकर ठौर ।	
जैसा दिल्लीका बाजार, तैसा चोक है गुलजार ॥	३३
बसै सेख मुगल पठान, मनसबदार थांनापती थान ।	
बांमण वांणीयै सब थोक, कायस्थ..... ॥	३४
गुदरी लौ अबलन खास, घोडे फेर कीजै रास ।	
ऐसा मुलक है आबाद,द ॥	३५
सुजावर्दी महमद नाम, गावै खलक आठौं जाम ।	
जाका राम जैसा राज, सब ही भूपत्यो सिरताज ॥	३६
जाकी आन चिहुं दिसि फिरी, सागर सीम लौं हद करी ।	
लीन्है विकट, दुसमन जेर कीन्है खास ॥	३७
निसदिन रहै फोजां बनी, सावंत सूर साची अनी ।	
पावै दादना दरमाह, ताजे रहै बोहत सिपाह ॥	३८
जिनकै राजकी हदमांहि, बारह कोस जो नित जाहि ।	
चौथे मास पावै और, एता हद है चिहुं ओर ॥	३९
ताके महिल है कैसेक, कीजै सिफत है जैसेक ।	
जिनकै बहै गंगा ओट, उपर बने अच्छे कोट ॥	४०

- तां मध बनी आछी ठोर, देखी सुनी नाहि न और ।
 फलै फल गुल गुलजार, विच विच करै भंवर गुंजार ॥ ४१
- चहल सेतूतकी सोभा कि, देखै नैन भी लोभा कि ।
 आछै भरे जलके हौज, छूटै समंदकैसी मोज ॥ ४२
- अवल ऐन ऐने जडै, तिनमै तबक अच्छे मढे ।
 परदेका रचोबी बने, उपर खूब तंबू तने ॥ ४३
- बैठे आप आय नब्बाब, जैसे इंदकैसी आब ।
 ठाढे खान अरु खानान, ठाढे मीर मुगल पठान ॥ ४४
- ठाढे साह साहुकार, ठाढे मुसदी हुदेदार ।
 ठाढे जालमी जासोल, करमै लीयै गुरजां गोल ॥ ४५
- ठाढे चोपदार अनेक, ठाढे घने बांके पैक ।
 ठाढी पट्टाबांधे फोज, उमडै समुदकीसी मौज ॥ ४६
- ठाढे मत्त मैगल गोल, ज्यों हिमवंतकैसे टोल ।
 हैवर हीसते बहु खडे, जिनके जीन ज्यौहार जडै ॥ ४७
- श्रीमुख करै आप निबाब, आदिल आदिलहक की साब ।
 नांहि तुंतीया तोफान, नांहि जोर अर जुलम्यान ॥ ४८
- नांहि बाटमै बटपार, नांहि चोर चेटक वार ।
 पंथी चलै निसदिन जांहि, कोउ बात पूछै नांहि ॥ ४९
- इहविध रहै रेयत सुखी, देखा कोउ नांहि न दुखी ।
 नोबत धुरे निसदिन द्वार, जाचिक करै जै जै कार ॥ ५०
- बैठै करै नित बकसीस, ताकी करै कहौ कुन रीस ।
 बकसै मत्त मैगल बाट, ले ले जात बांभण भाट ॥ ५१
- बकसैस करै घोडे घणै, गिणती जात कापै गिणै ।
 बकसै जरकसी सिरपाव, रीझै देख राणां राव ॥ ५२
- सूबे भेज दीन्हैं जिहां, सरैहद बादस्याही तिहां ।
 हाजीपुर अजीमावाद, उडीया देसकी मरग्याद ॥ ५३
- ढाका रंगपुर चटगांव, सिव्हर रंगामाटी ठांव ।
 हुगली वीरभूमी पचेट, हिजरी बिसनपुर लें ठेट ॥ ५४

अकबनगर कोचविहार, बंगला देसका विसतार ।	
रेसम होत है इहां घणा, दूजा देसमै नहि सुणा ॥	५५
फपै अवलकी पैदास, पोषाख बादस्याही खास ।	
छहकै हांथीयांकी वेस, देखा ऊपजता इह देस ॥	५६
श्रीनबाबजीका बाग, जागा देखवेके लाग ।	
क(फ?)रहावाद है आबाद, देखै होत दिल खुस्याल ॥	५७
फूले च्यमन च्यारुं ओर, पंती नहरकी भी जोर ।	
मंदिर महिल और तलाव, देखै रंक राजा राव ॥	५८
अच्छा बना विसरांम धांम, माणिकचंदजीके नाम ।	
ताकी कहुं क्या तारीफ, जगह वर्ना अति बारीक ॥	५९
काबिल कासमीर खंधार, आख इसफां अंजार ।	
मारु मालवा मेवात, दक्षिणदेश अरु गुजरात ॥	६०
दिली आगरा लाहोर, ठट्टा भखर पटना ठोर ।	
इन इन देसके सबलोक, सुखसौं बसै योकाथोक ॥	६१
पेरा अवलीया जिंद पीर, पर दुख हरन गुहिर गंभीर ।	
जाको अटल जुग जुग राज, दिन दिन बधो सुख समाज ॥	६२
बाधो पुत्र धन परिवार, उमर होउ वरस हजार ।	
रेयत देत है आसीस, जीवो सुजावर्दि महमद कोट बरिस ॥	६३

रेखना

यारो देस बंगाला खूब है रे जिहां बहत भागीरथी आप गंगा,	
जिहां सिखर समे [त] पर नाथ पारस प्रभू झाडखंडी महादेव चंगा ।	
नगर पचेटमें खुनाथका बडा न्हाण है गंगासागर सुसंगा,	
देस उडीस जगनाथ अरु वा कुंडके न्हात सुध होत अंगा ॥	१

दूहा

गजल बंगाला देसकी, भाषित जती निहाल ।	
मूरखकै मन ना बसै, पंडित होत खुस्याल ॥	६४

*

२. उदयपुरकी गजल

दूहा

जपूं आदि इकलिंगजी, नाथदुवारै नाथ ।	
गुण उदयापुर गावतां, संतां करो सनाथ ॥	१
सघन अंब गिरिवर सघन, शिखर रमै सुरराय ।	
राठसेन सुप्रसन रही, प्रथम नमंतां पाय ॥	२
आंबेरी उमयारमण, भुवाणै भोलानाथ ।	
रतनपुरै हनमंत रिघु, सो सुप्रसन सनाथ ॥	३

गजल

समरुं देवता सगला क्, गणपति आदि दस अगला क् ।	
हाजर मात हरसिद्धी क्, सारदमात वरसिद्धी क् ॥	४
हनुमंत वीर है हाजर क्, जैसी सीतलाजी हरक् ।	
नीलकंठ चाठीयां निरभीक्, ठवीय पूज मन करि ठीक् ॥	५
जागै स्वर्ग लहै जूना क्, देखत होत दिल दूहना क् ।	
पल्लीवालका पूजा क्, देवल ओर भी दृजा क् ॥	६
दांनी रायका दरसन, पूज्या मन लहे परसन ।	
कर दोय जोडीयां कैसा क्, आगै गुरुडजी ऐसा क् ॥	७
श्री दीवानका दरवार, दीसै पोल राजद्वार ।	
गवासा उर कारखाना क्, नोबत घुरत नीसाना क् ॥	८
आगै महिला अति उत्तंग, नवनव रावटी नवरंग ।	
झांखी खूब झरोखा क्, जालीदार दिल जोखा क् ॥	९
श्रावण मेघकै साथी क्, मद झर घूमते हाथी क् ।	
दिल सिणगार दंताला क्, बीजू सार मतवाला क् ॥	१०
दलअर दलसुंदर गज, लंगर लोह जडीया लज्ज ।	
गाढै गव गज गंजन्, अंबप्रसाद गज अंजन् ॥	११
पोहपलदंत है परचंड, गज गोपा लक्षित नक्खंड ।	
गैवर गरजतै उभा क्, श्री दीवानकी सोभा क् ॥	१२

सोवन सागती घोडा क्, सनमुख रहित स जोडा क् ।	
अबलखघाट ऐराकी क्, तुरंगम उर है बाकी क् ॥	१३
तुरकी कच्ची के ताजी क्, देखत होत दिल राजी क् ।	
काबल सिंधू खंधारी क्, करतै आप असावारी क् ॥	१४
है बगसीस पर बगसीस, जलधर जलध ज्यू जगदीस ।	
उपम इंद्र ज्युं अमरेस, नमतै चरन सकल नरेस ॥	१५
रसतर सरस है रंगराग, निकलंक खाग त्याग सोभाग ।	
सबजी करत बागां शैल, लख दल चढत जिसके गैल ॥	१६
कब ही मलु आखाढा क्, पाइक लडन है गाढा क् ।	
हस्ती लडत चढि चौगान, देखत आप श्री दीवान ॥	१७
पीछै तलाव पीछोला क्, करना लहिर किल्लोला क् ।	
मोहन मंदर वादर महिल, अंदर खूब उजल अहल ॥	१८
माहै रहित मगरमच्छ, कूरम कमल दादुर कच्छ ।	
सारस हंस बनका सोर, मधुरे मोरकें झिंगोर ॥	१९
नरपति बैठकर नावा क्, देखत सैल दरीयावा क् ।	
छकसुं देखीइ छतरी क्, पलकां बीच ज्युं पुतरी क् ॥	२०
पनघट प्रकट पनिहागी क्, निरमल नीर भरि झारी क् ।	
गोरी सीस करि गागर क्, चशमं डार कै काजर क् ॥	२१
कैसा रंग है केसर क्, नीकी नथ नकवेसर क् ।	
पाइक पायमै ठमकै क्, झांझर नेवरां झमके क् ॥	२२
भर सिर कुंभ बींदली भाल, चलती मस्त मदझर चाल ।	
मुखसुं दूर कर चादर क्, निकस्यां चंद ज्युं वादर क् ॥	२३
अपछर रंभसी ऐसी क्, परतिख पदमनी जैसी क् ।	
दंपत दीप ज्युं दामन क्, केहरलंकसी कामन क् ॥	२४
मोहन वेल मृगनैनी क्, बल्लभरूप पिक बैनी क् ।	
खजन चस्म है पैनी क्, दाडमदंत सुख देंनी क् ॥	२५
क्या गुलबदन है महिरी क्, निज वस करित है सहरी क् ।	
चीर रूप घाट परिवारी क्, सूरत देख बैसारी क् ॥	२६

बैठे आइ कर इसकी क्, करत है सरम नही किसकी क् ।	
केइ असनांकुं करनै क्, आवत नीर कै भरनै क् ॥	२७
घननंकार होइ घंटा क्, थननंकार होइ थटा क् ।	
हस्ती डोर पटहस्ती क्, मदझर करत है मस्ती क् ॥	२८
पीवन आवते पानी क्, महावत करत है फानी क् ।	
धूआ धोरसुं धत्ता क्, मैगल बहुत मदमत्ता क् ॥	२९
अस्थल मठ ध्रमसाला क्, मुनीजन जपत है माला क् ।	
दीसै कृष्ण कै द्वारा क्, जप तप वेद विध सारा क् ॥	३०
देवल धाईका दीठा क्, शीतलनाथ भी बैठा क् ।	
डिगंबर देहर भैरु क्, कर तर सूरु अर डैरु क् ॥	३१
फनि सुपास देवाला क्, पातिक दूर पै माला क् ।	
देवल ओर भी अनेक, अब बाजारकी कहुं टेक ॥	३२
परगट एक है पोसाल, भट्टारक मन धर आल ।	
चिहुं दिस महि चित्रसाली क्, कुल आराससै ढाली क् ॥	३३
हाटां प्रथम हलवाई क्, मीठी करत मिठाई क् ।	
गांधी करत है गजा क्, अतर तेल अरगजा क् ॥	३४
बहुत सराफ अरु बजाज, बैचै कपडा सिरताज ।	
आगै चोतरा कुटवाल, करता सहिरकी गृपाल ॥	३५
जिहां चोतरा जगान, हासल की जुं क्या क्या बात ।	
मालूम हाट मणिहारी क्, वसनां ढेर विसनारी क् ॥	३६
मोती लाल मणि मुंगा क्, जवहर बाब सब चंगा क् ।	
पटवा बेचते आगे क्, लूबा खूब छिब लागे क् ॥	३७
जोडा जीनगर बैचे क्, ग्राहक आवतै खैचे क् ।	
बहुरै मंडतै व्यापार, बैचे कुंत खग तरवार ॥	३८
वगतर टौप अर जीन शाल, बरछी शेल जमभर ढाल ।	
छविहुं पवन जिहां छर्त्तिस, वण च्यार विसत्राबीस ॥	३९
प्रोहित न्यात पल्लीवाल, वाणीया महेसरी ओसवाल ।	
छायै पवन छर्त्तैसे क्, दरसण षट जिहां दीसे क् ॥	४०
साधक सिद्ध सन्यासी क्, ब्रह्मा विष्णु मठवासी क् ।	
जंगम जती अरु जोगी क्, साहुकार के सत्ती क् ॥	४१

दोलत खैराद देदैं कार, जिहां तिहां होत जै जै कार ।	
झालर संखके झनकार, घंटा शब्द घननंकार ॥	४२
तानारंभ तत्ता थेई क्, कीरत होत है केई क् ।	
ध्वनि मृदंगके धोंकार, करते रातदिन ततकार ॥	४३
कहते व्यास हरिकथा क्, सुरता सुनत इकसथा क् ।	
वाडी वागका वणाव, भाषित सरस रागवत भाव ॥	४४

दूहा

ज्युं नायक नरसै नृपति, सबविध पूरन आस ।	
त्युं नाईक इह नगरमै, विचि सर्वत्र विलास ॥	४५

गजल

तो सर्वत्र है विलास, रसता खूब दरखत खास ।	
कैसे फूल गुलक्यारी क्, पेखत चूप तैय्यारी क् ॥	४६
छविसुं खूब अंबराई क्, बहु रुत रहत है अंब छाई क् ।	
तोता कोईल टहके क्, चंपा मोगरा महके क् ॥	४७
वठलश्री जूइवेली क्, चंदन जाई चंबेली क् ।	
कहांई केवडा करना क्, द्रुमप्रसाद अरु दौना क् ॥	४८
सुथग गुल सेवती क्, वासै खूब वासंती क् ।	
बहत रोस है वडी क्, महिलाइत जिहां मंडी क् ॥	४९
बंगला रावटी वारी क्, ठावी गोठ मजलस ठीक् ।	
कब ही खुलत है कारंज, नलकै जोरसु नारंज ॥	५०
कमल भुरज है कैसा क्, आसन इंद्रका ऐसा क् ।	
पंकत कवल परिवानी क्, परिमल विमल है पानी क् ॥	५१
सोभत मान ज्युं सरवर क्, तैसे सघन है तरवर क् ।	
समला नाव है समर क्, निरखै रंग भर नागर क् ॥	५२
हींदूपति अति हौसी क्, रमते रंग बहु रौसी क् ।	
कब कारंज भी छूटे क्, जालम हस्ति भी जूटे क् ॥	५३
गैवर डोर सिणगारी क्, बनी है खूब अंबारी क् ।	
मेवाडंकर मंडाणा क्, श्री अमरेश जू राणा क् ॥	५४
कब ही मौज बैराप्र क्, हाजर होत सौदाप्र क् ।	
घूकर मालसै बोडा क्, दे मैदान फित दोडा क् ॥	५५

फकड कंधसै केकांण, पन्नाजडत नग पल्लांण ।	
कुंदण जडत जोटरु जवाल, फाला देत बहै मृगफाल ॥	५६
दोलत निजर कर देखे कू, लख्या कोड कै लेखे कू ।	
सिंघलदीपमै धुरकू, झरतै दांतसुं मदझर कू ॥	५७
पट झर चूवते पटा कू, गति घनघोर गजघटा कू ।	
मुजरा करत माहाराजा कू, तब सनमानं दै ताजा कू ॥	५८
रावत राव के उमराव, पावत रीझ नित सिरपाव ।	
बीडा पांन दै बहुमानं, सोधा रागसुं गलतान ॥	५९
कर ताजीम अनमी कंध, बलवंत भीमसेन गजबंध ।	
महुली लेत कब ही मोज, फरहर धजर डंबर फोज ॥	६०
हुकादारु हुसीयारी कू, ताजा तुरत तइयारी कू ।	
चिलमां जडत नग चुंनी कू, दीपत दैत दिल दुर्नी कू ॥	६१
नगसुं जडत है नैहचा कू, खुच करि भारे चलम खिचा कू ।	
जरदा जोर सुरती कू, पीवे आप छत्रपती कू ॥	६२
क्या घनसार कस्तूरी कू, अत्तर गुलाबसुं चूरी कू ।	
सूधा अगरकी सोरंभ, लुंबत आई मधुकरलंभ ॥	६३
चोवा अरगजा चंदन, लावन अंग पुनि लेपन ।	
बांधत पाघ जरकसू पेच, किलिगी रूप शिरपर पेच ॥	६४
तब ही राग तानादंभ, नाचत पात्र रूपै रंभ ।	
धकरी आलाप सुर ततकार, मुखसुं गीत घनि उच्चार ॥	६५
सुनकर रीझते राना कू, दारद दूर ही जाना कू ।	
पाठी वेदकै पंडित, नेयाईक चावा नित ॥	६६
वेईयाकर्ण के वादी कू, विद्या मन उनमादी कू ।	
भाषै तरक पटभाषा कू, ले ले शाखकी साखा कू ॥	६७
पंचाख्यान परिपाटी कू, केई तेलिंग कर्णाटी कू ।	
विक्रम भोज सम वरणाव, राजा करण जैसो राव ॥	६८
दांनी इन्द्रसो दीवान, बलवंत भीम, अर्जुन बान ।	
चावा उत्तन है चीतोड, महि सकल हींदू मोड ॥	६९

दिढ दस सहस मालव देस, नही तुरकाणका परवेस ।	
सागरराजसे समंद, नीपजे शाल साकर कंद ॥	७०
देबर गांम अछै ढांग, जयसमंद तिहां अति सांग ।	
बारै गांमकी सीवे क्, पानी होदका पीवे क् ॥	७१
दीपत कोट दहबारी क्, मालमश्रेष्ठ मैसारी क् ।	
रिषभदेवसै देवल्ल, मेला चेत मिलत अवल्ल ॥	७२
इकलिंग आवतै हैला क्, मिलते नवसती मेला क् ।	
वारोवार हटवाडा क्, तिहां चोधार आखाढा क् ॥	७३
देवल रूपजी चत्रभुज, राणपुर सादडी इक रज्ज ।	
छपन्न पर्यनां छांना क्, रहैतै आप जिहां राना क् ॥	७४
दल्लीपतिसुं याकी क्, राखन हींदू ही नाकी क् ।	
हींदूस्थानकी सरहद, रिपुदल कीन छलबल रद ॥	७५
गिरकर गहन जालम जोर, चावा भील न लगै चोर ।	
वहति गहत निसदिन वाट, अवघट सुगम कीने घाट ॥	७६
दिलका जोर है दरीयाव, भाषा पटसुं है बहुभाव ।	
कीरत पसरी समदां कंठ, कविजन धरत मन उतकंठ ॥	७७
खरतरजती कवि खेता क्, आखै मोजसूं एता क् ।	
राणा अमर कायमराज, लायक सुन जस मुखलाज ॥	७८

कलस

लायक जस मुख लाज सुनहु तारीफ सहिरकी,	
गुनियन सुनके गजल निजर कर नेक मेहरकी ।	
फतै जु गरुर फजर रिघु अमरसिंह जू राना,	
उदयापुर जू अनूप अजब कायम कमठांना ।	
वाडी तलाव गिर बाग वन चक्रवर्ति ढलै चमर,	
अनभंग जंग कीरत अमर अमरसिंह जुग जुग अमर ॥	७९

इति श्रीउदैपुररी गजल संपूर्ण । लिखतं पं० नेतसी पं० प्रभुदत्त-
जीरे लिखी छै । पांचपदरा मध्ये । संवत १८५० जेठ सुद ७ दिने ।

પુસ્તક પરિચય

*

શ્રીજિનપ્રભસૂરિ અને સુલતાન મહમદ - લે૦ પં૦ લાલચન્દ્ર ભગવાન ગાન્ધી

પ્રકાશક, શ્રીજિનહરિસાગરસૂરિ-જ્ઞાનમંડાર, લોહાવટ (મારવાડ)

વિક્રમના ૧૪ મા સૈકાની અંતમાં શ્રીજિનપ્રભ સૂરિ નામના એક સમર્થ વિદ્વાન, ગ્રન્થકાર, ઔર પ્રભાવશાલી જૈનાચાર્ય થઈ ગયા છે જેમણે પોતાના પાણ્ડિત્ય અને ચારિત્ર્ય-તેજથી, દિલ્હીપતિ મુસ્લીમ સુલતાન મહમદ તુગલક ઉપર અર્પૂર્વ પ્રમાવ પાડ્યો હતો અને એ સુલતાન પાસેથી એમણે વિશિષ્ટ સન્માન પ્રાપ્ત કરી તેની પાસેથી પોતાના ધર્મ અને સમાજના હિતકર એવાં કેટલાંક કાર્યો સિદ્ધ કરાવ્યાં હતાં। જિનપ્રભ સૂરિએ અલા-ઉદ્-દીનનો શાસનકાલ પળ પ્રત્યક્ષ જોયો હતો અને તેણે જે રીતે હિન્દુઓ અને જૈનોનાં અસંખ્ય દેવસ્થાનોનો ધ્વંસ કર્યો-કરાવ્યો તે પળ તેમણે પ્રત્યક્ષ નિહાળ્યું હતું. એજ અલા-ઉદ્-દીનના ઉત્તરાધિકારીના દરબારમાં એ જૈન સૂરિએ કઈ રીતે ઉત્તમ સન્માન અને સ્વધર્મસંરક્ષણ પ્રાપ્ત કર્યું તેનો વિસ્તૃત પરિચય, એ પુસ્તકમાં પં૦ લાલચન્દ્રજી ગાન્ધીએ ઐતિહાસિક પ્રમાણોના ઝહાપોહ સાથે, સુંદર રીતે આલેખ્યો છે. જિનપ્રભ સૂરિના એ પરિચયમાં, પંડિતજીએ, સુદ એ આચાર્યની પોતાની કૃતિયોમાંથી તેમ જ એમના શિષ્ય અને વીજા તેવા ઉત્તરકાલીન ગ્રન્થકારોના ઉલ્લેખોમાંથી, એમના પરિચાયક જે જે પ્રમાણો અને અવતરણો મળી આવે છે તે વધાનો સારો ઉપયોગ કર્યો છે અને એ સર્વને આધારે એ મહાન્ આચાર્યના ચરિત્રનું ઉત્તમ દિગ્દર્શન કરાવ્યું છે. અલ્પત્ત ચરિત્રમાં અનેક ચમત્કારિક ઘટનાઓનું પણ કેટલુંક સંમિશ્રણ રહેલું છે જે વિશુદ્ધ ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ વાસ્તવિક ન કહી શકાય. પણ એ તો એ વ્યક્તના ગ્રન્થકારોએ જે કાંઈ લખી રાખ્યું છે તેના જ સાર અને આધાર રૂપે લખવામાં આવેલું હોવાથી, તેની સારાસારતાની યોગ્ય કલ્પના વાંચકોએ જ કરી લેવાની રહે છે. પંડિતજીની ખાસ શૈલી એ છે કે ‘નામૂલં લિખ્યતે કિંચિત્’ જે દરેક સંશોધનપ્રેમી અને ઇતિહાસ-રસિક જનને ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે.

- જિ. વિ.

